सुश्रुतसंहिता-भा.टी.

भाग ३.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहिता.

श्रीधन्वन्तरिभगवता समुपदिष्टा तच्छिष्येण
सुश्रुतेन विरचिता ।

सा च

आरोग्यसुधाकरसम्पादकेन फ़र्रुखनगरनिवासिना
पण्डितमुरलीधरशर्मणा राजवैद्येन सान्व-
यसटिप्पणीकसपरिशिष्टया

भाषाटीकया विभूषिता ।

तस्या अयं तृतीयोभागः ।

अत्र

४–चिकित्सितस्थानं ५–कल्पस्थानं च

तदिदम्

खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शके १८२१, संवत् १९५६.

प्रस्तावना ।

प्रायः ऐसा अनुमानमें आता है कि—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि समस्त कार्योंका मूल केवल शरीरही है इस का आरोग्य रहनेसे संपूर्ण कार्य ठीक होते हैं इसीलिये नीतिशास्त्रज्ञोंने भी कहा है कि—" आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि " और भगवान् धन्वंतरिजीने तो इसकी रक्षाके अर्थ आयुर्वेद और अनेक प्रकारकी औषधियां निर्माण करीही हैं इसलिये शरीरकी मुख्यरक्षा क्या है कि आरोग्य होना, वह वैद्यविद्याके अधीन है यद्यपि उस वैद्यक विषयके बृहत् ग्रंथ अनेकहैं कि जिनमें प्रत्येक रोगोंके निदान और रोगानुसार उपयोगी औषधियां तथा और २ उपाय कथन किये हैं तथापि महात्मा सुश्रुतजीकी रची हुई यह 'सुश्रुत संहिता' सब ग्रंथोंसे बढकर है, क्योंकि ऐसा कोई रोग नहीं कि जिसके दमनार्थ इसमें औषधियां नहीं कही हों और विचित्रता यह है कि धनी व कंगाल सबके योग्य औषधियां इसमें कही हैं इसीलिये कहा है कि—" सुश्रुतो न श्रुतो येन वाग्भटो न च वाग्भटः । चरको नालोकितो येन सवैद्यो यमकिंकरः " ॥ यह ग्रंथ ऐसा उत्तम होनेपर भी संस्कृत होनेके कारण इससे सर्व संसारी जीवोंको विशेष लाभ न होताथा इसी कारण विचारांश कर सबके सुलभार्थ इस ग्रंथकी मनोहर व सर्वगुणसंपन्न भाषाटीका पंडितवर श्रीमुरलीधरजी राजवैद्यद्वारा निर्माण करा, यह ग्रंथ भाषाटीका विभूषित मुद्रित किया है, परन्तु ग्रंथ बाहुल्यता होनेसे इसके भिन्न २ भाग मुद्रित किये हैं अर्थात् इस तृतीय भागमें चिकित्सित और कल्प दो स्थान हैं कि जिनमें से चिकित्सितस्थान में तो संपूर्ण प्रकार के रोगोंकी चिकित्सायें अनेक २ प्रकार से वर्णित की हैं और कल्पस्थान में वे अनेक प्रकारके सुंदर कल्प कहे हैं कि जिनके करनेसे मनुष्य वृद्धताको त्यागकर पुनः युवा होजाता है।

सर्वसंसारमें विदितगुणवाला अत्युत्तम इस ग्रंथकी विशेष प्रशंसा क्या करसकते हैं अर्थात् नहीं कर सकते क्योंकि सागर का जल कभी गागरमें समाता है ? इसलिये देखने से ही इसके गुणविदित होंगे हे वैद्यविद्या रसिकजनो! इस ग्रंथको विचार और इसके द्वारा अनेकानेक लाभ उठा हमारे परिश्रमको सफल करिये । इत्यलम् ।

विद्वज्जनकृपाभिलाषी-

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालय-मुम्बई.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहितायाः–

चिकित्सितस्थानस्य अनुक्रमणिका प्रारभ्यते ।

विषय.	पृष्ठांक.

अथ चिकित्सितस्थानम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः १.

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

अथाऽष्टमोऽध्यायः ८.

विषय. पृष्ठांक.

अथ सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथाऽष्टादशोऽध्यायः १८.

विषय. पृष्ठांक.

अथैकोनविंशोऽध्यायः १९.

अथ विंशतितमोऽध्यायः २०.

अथैकविंशोऽध्यायः २१.

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः २२.

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः २४

अथ पंचविंशतितमोऽध्यायः २५.

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः २६.

विषय. पृष्ठांक.

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः २७.

अथाष्टविंशतितमोऽध्यायः २८.

विषय. पृष्ठांक.

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०.

अथैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१.

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३३.

परिशिष्ट १

परिशिष्ट २.

समाप्तमिदं चिकित्सितस्थानं चतुर्थम्.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहितायाः–

कल्पस्थानस्य विषयानुक्रमणिकाप्रारभ्यते ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ पंचमोऽध्यायः ५.

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

इतिसुश्रुते कल्पस्थानानुक्रमणिका समाप्ता.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहितायाः

चिकित्सितस्थानम् ।

प्रथमोध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

शारिरक स्थानके अनंतर अब चिकित्सितस्थानका प्रारंभ करते हैं उसमें प्रथम द्विव्रणीय अर्थात् दोनों प्रकारके शारीर और आगंतुक व्रणोंकी चिकित्साका व्याख्यात करते हैं ॥

दोप्रकारके व्रण ।

द्वौ व्रणौ भवतः शारीर आगंतुकश्चेति । तयोः शारीरः पवनपित्तकफ-शोणितसन्निपातनिमित्तः । आगंतुरपि पुरुषपशुपक्षिव्यालसरीसृपप्रपतन-पीडनप्रहाराग्निक्षारविषतीक्ष्णौषधशकलकपालश्रृंगचक्रेषुपरशुशक्तिकुन्ता-द्यायुधाभिघातनिमित्तः ॥ १ ॥

व्रण दो प्रकारके होते हैं एक शारीरक दूसरे आगंतुक । इनमेंसे जो वायु पित्त कफ रुधिर तथा सन्निपातके कारण शरीरहीमेंसे उत्पन्न हो उसे शारीरक व्रण कहते हैं । और जो मनुष्य पशु (बैल घोडे आदि) पक्षि (गिद्ध शुक आदि) व्याल (सिंह वृक आदि) तथा सरीसृप (सर्प विच्छु आदि) के आघात चोट लगने काटने आदिसे तथा ऊंचे परसे गिरने दबजाने और लकडी आदिके प्रहारसे तथा अग्निके जलने क्षार (तेजाब) लगनेसे विषके स्पर्शादिसे तथा तीक्ष्ण औषध (भिलावे आदि) के लगनेसे शकल अर्थात् वांसकी कच्चट कांचका टुकडा आदि कपाल (ठेकरा खोपरी) सींग और चक्र (पहियेकी रगड) इषु (तीर) तथा परशु (कल्हाडा) शक्ति (बरछी) कुंत (तोमर) आदि शस्त्रोंकी चोट लगनेके कारणसे उत्पन्न हो उसे आगंतुक व्रण कहते हैं ॥ १ ॥

(वाक्य १) द्वौव्रणौ अधिकृत्य कृतं द्विव्रणीयम् । चिकित्सितं विकारप्रतीकारः । चक्रं स्वनामख्यातः आयुधविशेषः तथा रथादीनां चक्रं च । आदिशब्देन खड्गादयो ग्राह्याः ॥

तत्र तुल्ये व्रणसामान्ये द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद् द्विव्रणीय इत्युच्यते ॥ २ ॥

व्रणमात्र सामान्यतासे तुल्य होनेपरभी दो कारणोंसे उत्पन्न होते हैं इस प्रयोजनसे "द्विव्रणीय" ऐसा कहा जाता है ॥ २ ॥

आगंतुक व्रणमें तात्कालिक विधि ।

सर्वस्मिन्नेवाऽऽगंतुव्रणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रसृतस्योपशमार्थं पित्तवच्छीतक्रियावधारणविधिर्विशेषः संधानार्थं च मधुघृतप्रयोग इत्येतद्विकारणोत्थानप्रयोजनमुत्तरकालं तु दोषोपप्लवविशेषाच्छारीरवत्प्रतीकारः॥ ३ ॥

सब प्रकारके आगंतुक व्रणोंमें (आघात होतेही) तात्काल घावकी गरमी फैलनेकी शांतिके लिये पित्तकी शांतिके समान शीतल क्रियाका अवधारण करना विशेषविधि है (अर्थात् ताजा आगंतुक क्षतपर उसी समय ठंढा पानी डालना भीगा कपडा लपेटना आदि उचित है) और घावके भरनेके लिये शहत और घृतका उपयोग करे यह दोनों प्रकारके व्रणोंमें योजना करसकते हैं और आगंतुक व्रण भी अधिक दिनका होजावे (पकजावे सहजमें अच्छा नहो) तो फिर दोषोंकी उल्बणताके भेदसे शारिरक व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

व्रणमें दोषभेद ।

दोषोपप्लवविशेषः पुनः समासतः पंचदशप्रकारः प्रसरणसामर्थ्याद्यथोक्तो व्रणप्रश्नाधिकारे शुद्धत्वात् षोडशप्रकार इत्येके ॥ ४ ॥

दोषों (वायु पित्त कफ और रुधिर इन चारों) के उपप्लव (उफान) के जो पंदरह भेद प्रसरणकी सामर्थ्यसे होते हैं वे व्रण प्रश्नाधिकार (सूत्रस्थानकी इक्कीसवी अध्याय) में वर्णन होचुके हैं. परंच सर्व दोषोपप्लवरहित शुद्ध व्रण ऐसा सोलहवाँ भेद कई आचार्य एक और मानते हैं ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) सूत्रस्थानकी २१ वी अध्यायमें दोषोंके प्रसरण रूपसे १५ भेद कहे हैं जिसको किसी टीकाकारने अनार्ष कहा है परंतु चिकित्सित स्थानके इस उपरोक्त वाक्यसे वह अनार्ष (क्षेपक) नही किंतु महर्षिधन्वंतरिजीका ही वाक्य सिद्ध होताहै ॥

व्रणके सामान्य विशेष लक्षण ।

तस्य लक्षणं द्विविधं सामान्यं वैशेषिकश्च तत्र सामान्यं रुक् । व्रण गात्रविचूर्णने व्रणतीति व्रणः विशेषलक्षणं पुनर्वातादिलिंगविशेषः ॥ ५ ॥

व्रणमात्रके लक्षण दो प्रकारके हैं सामान्य और विशेष. जिसमें सामान्य लक्षण तो पीडा होनाही है व्रणधातु गात्रके विचूर्णन अर्थमें है उससे व्रण शब्द (क्षत-वाचक) बनता है. इसके विशेष लक्षण वात-पित्त-कफ-रुधिर-वातपित्त-वातकफ आदि भेदसे (एक एक दोषके तथा दो दो दोष मिलकर और तीन तीन दोष मिलकर तथा चारों दोष मिलकर) पंद्रह प्रकारके अथवा शुद्ध व्रण सहित १६ प्रकारके होते हैं जिन्हें जुदा जुदा वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

वातादि भेदसे १६ प्रकारके व्रणलक्षण।

तत्र श्यावारुणाभस्तनुः शीतपिच्छलाल्पस्रावी रूक्षश्चटचटायनशीलः स्फुरणायामतोदभेदवेदनाबहुलो निर्मांसश्चेति वातात् ॥ ६ ॥ क्षिप्रजः पीतनीलाभकिंशुकोदकाभोष्णस्रावी दाहपाकरागविकारी पीतपिडिकाजुष्टश्चेति पित्तात् ॥ ७ ॥

ऊदा सुरखी लिये छोटा जो व्रण हो तथा ठंढा गाढा और थोडा जिससे स्राव हो रूखा हो जिसमें चटचटीसी उठें और स्फुरायमान हो जिससे अंगमुडे नही जिसमें चीस और भेदन करनेकासा दुःख और पीडा अधिक हो तथा निर्मांस हो उसे वातज व्रण जानो ॥ ६ ॥ जो शीघ्र उत्पन्न हो और बढे जिसमें पीलापन और नीलापन हो जिसमेंसे केसूके फूलके रंग जैसा गरम स्राव हो जिसमें जलन और पकानेकीसी पीडा और राग (चमक) इत्यादि विकार हों और आसपासमें पीली २ फुन्सियां हों उसे पित्तज व्रण जानो ॥ ७ ॥

प्रततचंडकंडूबहुलः स्थूलो घनः स्तब्धशिरास्नायुजालावततः कठिनः पांड्वभासो मंदवेदनः शुक्लशीतसांद्रपिच्छलास्रावी गुरुश्चेति कफात् ॥ ८ ॥ प्रवालदलनिचयप्रकाशः कृष्णस्फोटपिडिकाजालोपचितस्तुरंगस्थानगंधः सवेदनो धूमायनशीलो रक्तस्रावी पित्तलिंगश्चेति रक्तात् ॥ ९ ॥

जो फैला हुवा हो ऊंचा हो जिसमें खाज अधिक हो मोटा हो करडा हो खिची हुई रगों और नसोंके जालसे व्याप्त हो कठोर हो जिसमें पीलापन झलके थोडी २ पीडा हो जिससे सुपेद ठंढा चिकना गाढा मल स्रावे और भारी हो उसे कफज व्रण जानो ॥ ८ ॥ जो मूंगेके ढेरके सदृश रंगवाला हो काले फोडे और फुन्सियोंके जालसे व्याप्त हो जिसमें घोडेके स्थान जैसी गंध आवे वेदना अधिक हो. धूमसे व्याप्त हो जिसमेंसे रुधिर स्रवे और पित्तके लक्षण हो उसे रक्तज व्रण जानो ॥ ९ ॥

तोददाहधूमायनप्रायः पीतारुणाभासस्तद्वर्णस्रावी चेति वातपित्ताभ्याम् ॥ १० ॥ कंडूयनशीलः सनिस्तोदो दारुणो मुहुर्मुहुः शीतपिच्छलस्रावी चेति वातश्लेष्मभ्याम् ॥ ११ ॥ गुरुः सदाह उष्णः पीतः पांडुस्रावी चेति पित्तश्लेष्मभ्याम् ॥ १२ ॥ रूक्षस्तनुस्तोदबहुलः सुप्त इव च रक्तारुणाभस्तद्वर्णस्रावी चेति वातशोणिताभ्याम् ॥ १३ ॥ घृतमंडाभो मीनधावनतोयगंधिर्मृदुर्विसर्प्युष्णकृष्णस्रावी चेति पित्तशोणिताभ्याम् ॥ १४ ॥ रक्तो गुरुः पिच्छलः कंडूप्रायः स्थिरः सरक्तपांडुस्रावी चेति श्लेष्मशोणिताभ्याम् ॥ १५ ॥

जिसमें व्यथा दाह धूमव्याप्ततासी हो पीला सुरखी लिये रंगहो और ऐसा ही स्राव होतो उसे वातपित्तज व्रण जानो ॥ १० ॥ जिसमें खाज हो दारुण पीडा हो बार बार शीतल गाढा मल स्रवे उसे वातकफज व्रण जानो ॥ ११॥ जो भारी हो दाहयुक्त हो गरम हो पीला हो और जिसमेंसे पीला स्राव हो उसे कफपित्तज व्रण जानो ॥ १२ ॥ जो रूखा हो छोटा हो जिसमें व्यथा अधिक हो त्वचा सुप्तसी हो रंग सुरख ऊदासा हो और ऐसा ही स्रावहो उसे वातशोणितका व्रण जानो ॥ १३ ॥ जो घृत और मांडके रंगवाला हो जिसमें मछली धोवन केसी गंध आवे कोमल हो विसर्पी (फैलनेवाला) हो जिसमेंसे गरम काला स्राव हो उसे पित्त शोणितका व्रण जानो ॥ १४ ॥ जो भारी हो सुरख हो चिकना हो जिसमें प्रायः खाज आवे स्थिर हो रुधिर सहित पीला स्राव जिसमें हो उसे कफ शोणितज व्रण जानना चाहिये ॥ १५ ॥

स्फुरणतोददाहधूमायनप्रायः पीततनुरक्तस्रावी चेति वातपित्तशोणितेभ्यः ॥ १६ ॥ कंडूस्फूरणचुमचुमायनप्रायः पांडुघनरक्तास्रावी चेति वातश्लेष्मशोणितेभ्यः ॥ १७ ॥ दाहपाकरागकंडूप्रायः पांडुघनरक्तास्रावी चेति श्लेष्मपित्तशोणितेभ्यः ॥ १८ ॥ त्रिविधवर्णवेदनास्रावविशेषोपेतः पवनपित्तकफेभ्यः ॥ १९ ॥

जिसमें स्फुरण व्यथा दाह तथा धूम व्याप्ततासी विशेष हो और पीला हलका सुरख स्राव हो उसे वायुपित्त और रक्तज व्रण जानो ॥ १६ ॥ जिसमें खाज स्फुरण चुमचुमाट विशेष हो पीला गाढा सुरख स्राव हो वह वायु कफ और रुधिरका व्रण है ॥ १७ ॥ जिसमें जलन पकनेकीसी व्यथा और झलक तथा खाज हो

पीला भारी सुरखी लिये स्राव हो वह कफ पित्त और रुधिरका व्रण होताहै ॥ ॥ १८ ॥ जिसमें तीन प्रकार (श्याम पीत श्वेत) रंग हो और तीनों प्रकारकी वेदना (तोद दाह और खाज) हो और तीनों प्रकारका स्राव (काला पीला सुपेद) हो वह वायु पित्त और कफका व्रण होताहै ॥ १९ ॥

निर्दहननिर्मथनस्फुरणतोददाहपाकरागकंडूस्वापबहुलो नानावर्ण-
वेदनास्रावविशेषोपेतः पवनपित्तकफशोणितेभ्यः ॥ २० ॥

जिसमें जलने कीसी पीडा मथने कीसी व्यथा और स्फुरण तथा चीस दाह और पाक तथा राग और खाज तथा त्वक् स्वापविशेष हो अनेक प्रकारका वर्ण और अनेक प्रकारकी वेदना हो और नाना प्रकारहीका स्राव हो तौ उसे वायु पित्त कफ और रुधिर चारों दोषोंका व्रण जानो ॥ २० ॥

शुद्ध व्रण ।

जिह्वातलाभो मृदुः स्निग्धः श्लक्ष्णो विगतवेदनः सुव्यव-
स्थितो निरास्रावश्चेति शुद्धो व्रण इति ॥ २१ ॥

जो जिह्वाके तलभागके समान (सुपेदीलिये सुरख) हो कोमल हो चिकना हो श्लक्ष्ण (लजलजा) हो जिसमें व्यथा नहो जिसकी व्यवस्था अच्छी हो जिसमेंसे पीव राध नहीं झिरे उसे शुद्ध व्रण जानो ॥ २१ ॥

व्रणके ६० उपक्रम ।

तस्य व्रणस्य षष्टिरुपक्रमा भवंति । तद्यथा अपतर्पणमालेपः परिषेको ऽभ्यंगः स्वेदो विम्लापनमुपनाहः पाचनं विस्रावणं स्नेहो वमनं विरेचनं छेदनं भेदनं दारणं लेखनमेषणमाहरणं व्यधनं स्रावणं सीवनं सन्धानं पीडनं शोणितास्थापनं निर्वापणमुत्कारिका कषायो वर्तिः कल्कः सर्पि-स्तैलं रसक्रियाऽवचूर्णनं व्रणधूमनमुत्सादनमवसादनं मृदुकर्म दारुणकर्म क्षारकर्म अग्निकर्म कृष्णकर्म पांडुकर्म प्रतिसारणं रोमसंजननं लोमा-पहरणं बस्तिकर्मोत्तरबस्तिकर्म बंधः पत्रदानं कृमिघ्नं बृंहणं विषघ्नं शिरो-विरेचनं नस्यं कवलधारणं धूमो मधुसर्पिर्यंत्रमाहारो रक्षाविधानम् ॥ २२॥

उपरोक्त लक्षणोंवाले व्रणके ६० उपक्रम (प्रतीकार) हैं जैसे १ अपतर्पण

(वाक्य २०) दाहस्तु सामान्यं, निर्दहनं विशेषतया दहनमिति भेदः । पचनमिव पाकः ।

(बढाव रोकना तृप्ति नकरना) २ आलेप (लेपकरना) ३ परिषके (सेचनकरना तरडे देना) ४ अभ्यंग (कोई औषधादि मलना) ५ स्वेद (पसीनादिलाना) ६ विम्लापन (विलयन करना) ७ उपनाह (गरमवस्तुसे सेकना या गरम लेप करना) ८ पाचन (पकाना) ९ विस्रावण (जोक पछने आदिसे रक्त निकालना) १० स्नेह (चिकनाई पहुंचाना या स्नेहपान) ११ वमन (वमन कराना) १२ विरेचन (विरेचन कराना) १३ छेदन (फोडना) १४ भेदन (चीरना) १५ दारण (विदारण करना फाडदेना) १६ लेखन (छीलना) १७ एषण (खेंच लेना) १८ आहरण (निकालना) १९ व्यधन (वीधना) २० स्रावण (राध पीव झिराना, छांटना) २१ सीवन (सीना) २२ संधान (जोड मिलाना) २३ पीडन (दबाना सूंतना) २४ शोणितास्थापन (खून रोकना) २५ निर्वापण (शांति करना दोषोंको मारना) २६ उत्कारिका (लूपरी) २७ कषाय (क्काथ व्रणधोने आदिके लिये) २८ वर्त्ति (बत्ती औषध स्नेहादिमें भरकर घावमें रखना) २९ कल्क (लुगदी) ३० सर्पिः (घृत) ३१ तैल ३२ रसक्रिया (शोधनी रसक्रिया) ३३ अवचूर्णन (पिसी औषध बुरकाना) ३४ व्रणधूपन (व्रणको धूनी देना) ३५ उत्सादन (ऊपरको उकसाना) ३६ अवसादन (नीचेको बिठाना) ३७ मृदुकर्म (कोमल करना) ३८ दारुणकर्म (कठोर करना) ३९ क्षारकर्म (तेजाबका उपयोग करना) ४० अग्निकर्म (व्रणको दाग देना) ४१ कृष्णकर्म (कालापन करना) ४२ पांडुकर्म (पीलापन करना) ४३ प्रतिसारण (फैला देना एकसा करना) ४४ रोमसंजनन (बाल पैदा करना) ४५ लोमापहरण (बाल दूर करना) ४६ बस्तिकर्म (पिचकारी देना) ४७ उत्तरबस्तिकर्म ४८ बंध (पट्टी बांधना) ४९ पत्रदान (पत्ते लगाना या पत्ते बांधना) ५० कृमिघ्न (यदि कीडे पडगये हों तो उन्हे नाश करना या कृमि नही पडने देना) ५१ बृंहण (मांसादि बढाना) ५२ विषघ्न (व्रणसे जहरी लापन दूर करना) ५३ शिरोविरचेन (मूर्द्धाका विरेचन कराना) ५४ नस्य (नास सुघांना) ५५ कवलधारण (मुखमें दवा रखना) ५६ धूम (धूमपान कराना या धूम पहुँचाना) ५७ मधुसर्पि (शहतघीका उपयोग) ५८ यंत्र (सलाई चिमटी आदि) ५९ आहार (व्रणितको पथ्यभोजन देना) ६० रक्षाविधान (व्रणकी रक्षा रखना छिल न जावे दब न तथा रगड आदि आघात न पहुंचने पावे) ॥ २२ ॥

इनके कार्य और कथन ।

तेषु कषायो वर्त्तिः कल्कः सर्पिस्तैलं रसक्रियावचूर्णनमिति शोधनरो-

पणानि ॥ २३ ॥ तेष्वष्टौ शस्त्रकृत्याः । शोणितास्थापनं क्षारोऽग्निर्यन्त्र-
माहारो रक्षाविधानं बंधविधानं चोक्तानि ॥ २४ ॥

इन ६० उपक्रमोंमेंसे कषाय वर्ति कल्क घृत तैल रसक्रिया और अवचूर्णन ये शोधन और रोपणके वास्ते किये जाते हैं॥२३॥ और इनमेंसे आठ उपक्रम (छेदन भेदन लेखन वेधन एषण आहरण विस्रावण और सीवन) ये शस्त्रके कृत्य हैं (ये अष्टविध शस्त्रकर्म सूत्रस्थान २५ वी अध्यायमें पहले वर्णन करचुके हैं) और शोणितास्थापन ४ प्रकारका (संधान स्कंदन पाचन दहन) ये रुधिर बंध करनेके चार उपाय सूत्रस्थानकी १४ वी अध्यायमें कहचुके हैं तथा क्षार दो प्रकारका-(१ प्रतिसारणीय २ पानीय) ये सूत्रस्थान ग्यारहवी अध्यायमें कहा गया है और अग्निकर्म (दाग देना) यह सूत्रस्थान १२ अध्यायमें कहा जा चुका है तथा यंत्र सूत्रस्थान ७ अध्यायमें वर्णन होचुके हैं और आहारका वर्णन हिताहितीय तथा अन्नपान विधिनामक अध्यायोंमें होचुकाहै इसी भांति रक्षाविधान सूत्रस्थान पंचमाध्यायमें वर्णन होचुका है और बंधाविधि (१४ प्रकारके बंध) सूत्रस्थान १८ अध्यामें कहचुके हैं ॥२४॥

स्नेहस्वेदनवमनविरेचनबस्त्युत्तरबस्तिशिरोविरेचननस्यधूमकवलधारणान्य-
न्यत्र वक्ष्यामः । यदन्यदवशिष्टमुपक्रमजातं तदिहं वक्ष्यंते ॥ २५ ॥

स्नेहपानादि स्वेदविधि वमनविधि विरेचन बस्तिकर्म उत्तरबस्ति शिरोविरेचन और नस्य (नास लेना) धूमपान और कवलधारणविधि और ठौर अगाडी वर्णन करेंगे इनके सिवाय जो उपाय ६० उपक्रमोंमेंसे शेष रहे वे यहांपर वर्णन किये जाते हैं ॥ २५ ॥

षड्विधः प्रागुपदिष्टः शोफस्तस्यैकादशोपक्रमा भवंत्यपतर्पणादयो
विरेचनांतास्ते च विशेषेण शोथप्रतीकारा वर्तंते व्रणभावमापन्नस्य
च न विरुध्यंते । शेषास्तु प्रायेण व्रणप्रतीकारहेतव एव । अपतर्पणं
त्वाऽऽद्य उपक्रम एष सर्वशोफानां सामान्यः प्रधानतमश्च ॥ २६ ॥

पहले जो ६ प्रकारका शोथ वर्णन किया है उसके अपतर्पणसे लेकर विरेचन पर्यंत ११ उपक्रम है और ये ग्यारह उपाय शोथ (जो शारीरक व्रणके पूर्व होता है) के ही प्रतीकार है परंतु शोथ व्रणभावको प्राप्त होने परभी ये विरुद्ध नहीं हैं परंच शेष जो उपक्रम रहे वे व्रण (घावहीके प्रतीकारके हेतु है इन सबमें

(वाक्य २४) तेषु षष्ठ्युपक्रमेषु अष्टौ छेदनादयः शस्त्रकृत्याः ॥

भी अपतर्पण (लंघन या जिससे वृद्धिका वेग रुके) यह तो सब शोथोंमें आद्य सामान्य और विशेष प्रधान उपाय है ॥ २६ ॥

अपतर्पण ।

दोषोच्छ्रायोपशांत्यर्थं दोषानद्धस्य देहिनः । अवेक्ष्य दोषं प्राणं च कार्यं स्यादपतर्पणम् ॥ २७ ॥ उर्ध्वमारुततृष्णाक्षुन्मुखशोषश्रमान्वितैः । न कार्यं गर्भिणीवृद्धबालदुर्बलभीरुभिः ॥ २८ ॥

दोष करके व्याप्त जो मनुष्य हो उसके दोषोंके उफाण (बढाव) की शांतिके अर्थ उसका दोष और बल देखकर उसके अनुसार अपतर्पण कर्म करना उचित है ॥ २७ ॥ और जिसके वायु ऊर्ध्वगामी हो तथा तृषा और क्षुधाकी व्यथा हो जिसका मुख सूखता हो जो श्रमसे थका हो तथा गर्भिणी स्त्री वृद्ध बालक दुर्बल और डरपोक इन्हे अपत ९० कराना ॥ २८ ॥

लेपन ।

शोफेषूत्थितमात्रेषु व्रणेषूग्ररुजेषु च । यथास्वैरौषधैर्लेपं प्रत्येकं च वै कारयेत् ॥ २९॥ यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यंभसा परिषेचनम् । क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमाऽऽलेपनं रुजः ॥ ३० ॥ प्रल्हादने शोधने च शोफस्य हरणे तथा । उत्सादने रोपणे च लेपः स्यात्तु तदर्थकृत् ॥ ३१ ॥

शोथके उठतेही अथवा दारुण व्यथावाले व्रणके उत्पन्न होतेही यथोक्त औषधोंका लेप दोष दोषके प्रति करना चाहिये ॥ २९ ॥ (इसमें दृष्टांत है कि) जैसे घरके जलते समय जल डालनेसे शीघ्रही अग्नि शांत हो जाती है ऐसेही लेपन रोगकी व्यथाको शांत करता है ॥ ३० ॥ लेप प्रल्हादन (सुख उत्पन्न) करने और शोधन तथा शोथके हरने और उत्सादन एवं रोपण और चकारसे अवसादन रोमसंजन आदिमें भी हित होता है ॥ ३१ ॥

परिषेक ।

वातशोफे तु वेदनोपशमार्थं सर्पिस्तैलधान्याम्लमांसरसवातहरौषधनिःक्काथैरशीतैः परिषेकान् कुर्वीत ॥ ३२ ॥ पित्तरक्ताभिघातविषनिमित्तेषु क्षीरघृतमधुशर्करोदकेक्षुरसमधुरौषधक्षीरवृक्षनिःक्काथैरनुष्णैः परिषेकान्

(श्लोक २८) अपतर्पणं न कार्यं, अपतर्पणे, नपूर्वोक्तेनान्वयः ॥

(श्लोक २९) प्रत्येकप्रत्येकदोषानुरूपेणेत्यर्थः ॥

कुर्वीत ॥ ३३ ॥ श्लेष्मशोफे तु तैलमूत्रक्षारोदकसुराशुक्तकफघ्नौषधनिः-क्वाथैरशीतैः परिषेकान् कुर्वीत ॥ ३४ ॥

वायुका शोथ हो तो उसकी वेदनाकी शांतिके लिये घृत मीठा तैल धान्याम्ल (एक प्रकारकी कांजी) मांसका रस और वायुनाशक औषधोंके क्वाथ इनमेंसे जो जो उचित हो उन्हे गरम कर परिषेक (तरडा देना) चाहिये ॥ ३२॥ पित्त रुधिर तथ अभिघात (चोट) तथा विषके शोथमें दूध घृत शहत शरबत ईखका रस मधुर औषध (जैसे मधुयष्टी) क्षीर वृक्ष (दूधवाले वृक्ष जैसे गूलर वट) इनके शीतल क्वाथ-का परिषेक करना उचित है ॥ ३३ ॥ कफके शोथमें कटुतैल मूत्रक्षारोंका जल मदिरा सिरका तथा कफनाशक औषधोंके गरम क्वाथका परिषेक करना चाहिये॥ ३४॥

यथांबुभिः सिच्यमानः शांतिमग्निर्नियच्छति ।
दोषाग्निरेवं सहसा परिषेकेण शाम्यति ॥ ३५ ॥

परिषेक उपाय पर दृष्टांत कहते हैं कि जैसे जलके छिडकनेसे अग्नि शांत हो जाती है इसी भांति परिषेक करनेसे दोषकी अग्नि शीघ्र शांत होती है ॥ ३५ ॥

अभ्यंग ।

अभ्यंगस्तु दोषमालोक्योपयुक्तो दोषोपशमं मृदुतां च करोति ॥ ३६ ॥ स्वेदविम्लापनादीनां क्रियाणां प्राक् स उच्यते । पश्चात्कर्मसु चादिष्टः स च विस्रावणादिषु ॥ ३७ ॥

अभ्यंग (तैलादिका मर्दन) दोषोंको देखकर उसपर जो उचित हो सो दोषों-को शांत करता है तथा मृदुता (कोमलता) करताहै ॥ ३६ ॥ वह अभ्यंगकर्म स्वेद और विम्लापन आदि क्रियाओंसे पहले करना उचितहै तथा विस्रावण (रुधिरनिकालने) आदि कर्मोंसे पीछे करना उचित है ॥ ३७ ॥

स्वेदन ।

रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ।
शोफानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ ३८ ॥

वेदनावाले दारुण और कठिन (कठोर) जो शोथ होते हैं अथवा ऐसे ही जो व्रण होतेहैं उनका स्वेदनकर्म (पसीना निकालना अर्थात् औषधोंसे या ईट मिट्टी आदिसे सेकना) चाहिये ॥ ३८ ॥

(श्लोक ३८) येच एवंविधा व्रणास्तत्रापि स्वेदनं कार्यमित्यन्वयः ॥

विम्लापन ।

स्थिराणां रुजतां मन्दं कार्यं विम्लापनं भवेत् । अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुना वा शनैः शनैः । विमर्दयेद्भिषक् प्राज्ञस्तलेनांगुष्ठकेन वा ॥ ३९ ॥

जो वात कफके स्थिर और मंद पीडावाले शोथ हैं उनमें विम्लापन कर्म (उचित) होताहै । यह इसभांति करना चाहिये कि पहले तैलादिका मर्दन और स्वेदन कराकर चतुर वैद्य धीरे २ वांसकी पोरीसे या अँगूठेसे दबा कर मले जिससे संचित दोष फैलकर विलाय जावें ॥ ३९

उपनाह ।

शोफयोरुपनाहं तु कुर्यादामविदग्धयोः ।
अविदग्धः शमं याति विदग्धः पाकमेति च ॥ ४० ॥

आम (कच्चे)और विदग्ध (पके) दोनों प्रकारके शोथ पर उपनाहकर्म (गरम २ भुरता या अन्य स्निग्ध गरम औषध बांधना या इनसे सेकना) करना चाहिये इससे कच्चा शोथ हो तो बैठ कर शांत हो जाता है और जो पक्का शोथ होता है वह पक जाता है ॥ ४० ॥

पाचन तथा उत्कारिकाविधि ।

निवर्तते न यः शोफो विरेकान्तैरुपक्रमैः । तस्य संपाचनं कुर्यात् समाहृत्यौषधानि तु॥ ४१ ॥ दधितक्रसुराशुक्तधान्याम्लैर्योजितानि तु। स्निग्धानि लवणीकृत्य पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥ ४२ ॥ सैरंडपत्रया शोफं नाहयेदुष्णया तया । हितं संभोजनं चापि पाकायाभिमुखो यदि ॥ ४३ ॥

जो शोथ अपतर्पणको आदिले विरेचन पर्यंत उपक्रमोंसे शांत न हो तौ औषधोंसे उसे पकाना ही चाहिये ॥ ४१ ॥ दही छाछ मदिरा सिरका कांजी इनकी योजना युक्त स्निग्ध (चिकनाई युक्त) और लवण सहित सुंदर उत्कारिका (लूपरी) पकावे उसे अरंडके पत्ते पर रखकर (या उसमें अरंडके पते मिले हों) उससे गरम गरमसे शोथको सेके (या उस पर बांध दे) और हित (पथ्य) भोजन दे यादि पकाव पर आता देखे तब यह उत्कारिकाबंधन (पाचन) कर्म करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

(श्लोक ४१ । ४२ । ४३) समाहृत्यौषधानि औषधानि मिश्रकोक्तानि शणमूलादीनि समभागानीति, तत्र चतुर्गुणप्रमाणदध्यादिद्रव्याणि समाहृत्य स्पष्टलवणीकृत्य उत्कारिकां लपसिकाकृतिं पचेत्, अन्ये पूपालिकाकृतिं नाहयेत् बध्नीयात् (इति डल्हनः)

रक्तस्रवण ।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकशमाय च । अचिरोत्पतिते शोफे कुर्य्याच्छोणितमोक्षणम् ॥ ४४ ॥ सशोफे कठिने श्यामे सरक्ते वेदनावति । संरब्धे विषमे वापि व्रणे विस्रावणं हितम् ॥ ४५ ॥ सविषे च विशेषेण जलौकाभिः पदैस्तथा । वेदनायाः प्रशांत्यर्थं पाकस्याप्राप्तये तथा ॥ ४६ ॥

तात्कालके उठे शोथमें वेदनाकी शांतिके लिये और पकावके रोके जानेके अर्थ रक्तमोक्षण (सिरामोक्ष या जलौक आदिसे रुधिर निकालना) हित है ॥ ४४ ॥ तथा शोथ युक्त कठिन काले रुधिर युक्त तथा वेदना सहित और संरब्ध (संरंभवाले) तथा विषम ऊंचे नीचे ऐसे व्रण (घाव) में भी विस्रावण (रुधिर निकलवाना) हित है ॥ ४५ ॥ और जो घाव विषयुक्त हो उसमें विशेष करके जलौक अथवा पछने (शृंग) आदिसे वेदनाकी शांतिके अर्थ और बकावकी रोकके लिये रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ४६ ॥

स्नेहपान ।

सोपद्रवाणां रूक्षाणां कृशानां व्रणशोषिणाम् ।
यथास्वमौषधैः सिद्धं स्नेहपानं विधीयते ॥ ४७ ॥

व्रण करके शुष्क जो मनुष्य होगये हो तथा जो दुबले हो उनके और रूक्ष मनुष्योंके उपद्रव युक्त व्रण हो उन्हें यथोक्त औषधोंसे सिद्ध किया हुआ स्नेहपान करना चाहिये ॥ ४७ ॥

वमन और विरेचन ।

उत्सन्नमांसशोफे तु कफजुष्टे विशेषतः । संक्लिष्टश्यामरुधिरे व्रणे प्रच्छर्दनं हितम् ॥ ४८ ॥ वातपित्तप्रदुष्टेषु दीर्घकालानुबंधिषु । विरेचनं प्रशंसंति व्रणेषु व्रणकोविदाः ॥ ४९ ॥

जिसमें मांस ऊपरको उकसा हो ऐसे शोथमें तथा कफयुक्त शोथमें और जिसमें करडा और काला रुधिर हो ऐसे व्रणमें वमन कराना उचित है ॥ ४८ ॥ वात पित्तसे दूषित और अधिक समयका ठैरा हुआ (शोथ) अथवा व्रण हों उनमें विरेचन देना ठीक समझा जाता है ॥ ४९ ॥

(श्लोक ४५) संरब्धे विशालमूले, विषमे निम्नोन्नते ।
(श्लो० ४६) जलौकाभिस्तदापदैः विस्रावणं हितं इत्यन्वयः ।
(श्लो० ४७) व्रणशोषिणां व्रणनिमित्तक्षीणानां ॥
(श्लो० ४८) संक्लिष्टं दुष्टं । श्यामं इषत्कृष्णं ।

छेदन ।

अपाकेषु रोगेषु तु कठिनेषु स्थिरेषु च ।
स्नायुकोथादिषु तथा छेदनं प्राप्तमुच्यते ॥ ५० ॥

जो न पके ऐसे (अर्बुदादि) रोगोंमें तथा कठिन और स्थिर (ग्रंथि आदि) रोगोंमें तथा स्नायु कोथादि व्रणमें छेदन (काटना) उचित कहा जाता है ॥ ५० ॥

भेदन ।

अंतःपूयेष्ववक्त्रेषु तथैवोत्संगवत्स्वपि ।
गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं प्राप्तमुच्यते ॥ ५१ ॥

जिसमें भीतरकी तरफ पीव प्रवेश कर रहा हो–जिनके मुह न हो या छोटा मुँह हो तथा जो उत्संगवाला हो अर्थात् गहरा हो तथा चलायमान हो एसे व्रणोंमें भेदनकर्म (चीरना) उचित है ॥ ५१ ॥

दारण ।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि । मर्मोपरि च जातेषु रोगेषूक्तं च दारणम् ॥ ५२ ॥ सुपक्के पिंडिते शोफे पीडनैरवपीडिते । पाकोद्वृत्तेषु दोषेषु तैर्त्तु कार्यं विजानता । सुपिष्टैर्दारणद्रव्यैर्युक्तैः क्षारेण वा पुनः ॥ ५३ ॥

बालक वृद्ध तथा जो छेदन भेदनकी शस्त्रपीडा नही सहसके और जो क्षीणहो तथा डरपोक हो तथा स्त्री हो इनके शोथ (गुमडा) हो उसे तथा मर्मस्थानोंपर जो विद्रधि आदि हो उन्हे दारण करना चाहिये अर्थात् औषधोंसे ही फोडना चाहिये ॥५२॥ जो शोथ खूब पकगया हो सिमटकर एक ठौर पिंडासा होगया हो और पीडन कर्मसे पीडित किया गया हो (आस पासका मवाद सूतकर एक जगह इकट्ठा कियां गया हो) और दोष खूब पकाव पर आगये हो तब दारण कर्म करना (फोडना) चाहिये–सुज्ञ वैद्य पिसे हुवे दारण द्रव्योंसे (जैसे कपोतकी विष्ठा कांचलवण आदि है उनसे) अथवा उचित तेजाबसे दारण कर्मकरे ॥ ५३ ॥

लेखन ।

कठिनान्स्थूलवृत्तौष्ठान्दीर्यमाणान् पुनः पुनः । कठिनोत्सन्नमांसांश्च

(श्लो० ५०) अपाकेषु अविद्यमानपाकेषु भेदः कफग्रंथिमांसकफादिषु अथवा ईषत्पाकेषु वल्मीकादिषु प्राप्तं युक्तं ॥

लेखनेनाचरेद्भिषक् ॥ ५४ ॥ समं लिखेत्सुलिखितं लिखेन्निरवशेषतः । वर्त्मनोऽनुप्रमाणेन समं शस्त्रेण निर्लिखेत् ॥ ५५ ॥ क्षौमं प्लोतं पिचुं फेनं यावशूकं ससैंधवम् । कर्कशानि च पत्राणि लेखनार्थे प्रदापयेत् ॥ ५६ ॥

जिन व्रणोंके किनारे मोटे मोटे और गोलहों तथा जो कई कई वार फटने पर शुद्ध नहो जिनमें करडा उठा हुआ मांस हो उसका लेखनकर्मसे यत्न करे अर्थात् ऐसे व्रणोंको आवश्यक ठौरसे खुरचदे छीलदे ॥५४॥ जहांसे छीले वहां एकसा छीले और छीलने या खुरचनेके समय निःशेष खुरचदेना चाहिये और खुरचनेके समय मुखके अनुगत खुरचना चाहिये और शस्त्रके अनुसार छीलना चाहिये ॥ ५५ ॥ क्षौम प्लोत (कर्पट) पिचु (रुई) फेन (समुद्रफेन) यावशूक (यवक्षार या यवशूक) और सैंधव तथा करडे पत्ते ये वस्तु कई जगह लेखने (खुरचने) के लिये उपयोग किये जावें ॥ ५६ ॥

एषण ।

नाडीव्रणाञ्छल्यगर्भानुन्मार्ग्युत्संगिनः शनैः । करीरवालांगुलिभिरेषण्या वैषयेद्भिषक् ॥ ५७ ॥ नेत्रवर्त्मगुदाभ्यासनाड्योऽवक्त्राः सशोणिताः । चुच्चूपोदकजैः श्लक्ष्णैः करीरैरेषयेत्तु ताः ॥ ५८ ॥

नाडीव्रणोंको और जिनमें भीतर शल्य (कांटा नोक आदि) हो तथा उन्मार्गी (जिनका उपरिमार्गकी ओर गमन हो जैसे भगंदर) और उत्संगी (जैसे शंबूकावर्त आदि) ऐसे व्रणोंमेंसे वैद्य करीर (वासके अंकुर) वाल तथा अंगुली अथवा एषणीयंत्रसे धीरे धीरे शल्य खेंचकर निकाले ॥ ५७ ॥ नेत्रवर्त्म और गुदाके आसपासके व्रण और नाडीव्रण तथा जिनके मुख न हो या सूक्ष्म मुखहो ऐसे रुधिरसे भरे व्रणहो उन्हे चुच्चूशाक या पोई के शाककी लजलजी नालीसे या वांसकी नालीसे एषण करें (चुसाना चाहिये) ॥ ५८ ॥

(श्लोक ५४ । ५५ । ५६) लेखनविषयंडल्लनएवंव्याख्याति–कठिनान् मांसहीनान् अधिकं लिखेत् । स्थूलवृत्तौष्ठान् सुलिखितं लिखेत् । पुनः पुनः दीर्यमाणान् निरवशेषतो लिखेत् कठिनोत्सन्नमांसान् वर्त्मनानुप्रमाणेनसमं लिखेदिति।श्रीसवीरजैटब्रम्हदेवाश्चतुरोविषयानाह तथाहि कठिनान् इत्येको विषयः, स्थूलवृत्तौष्ठानितिद्वितीयो विषयः, दीर्यमाणान् पुनः पुनः इति तृतीयो विषयः । कठिनोत्सन्नमांसानितिचतुर्थः । तत्र समंलिखेत् सुलिखितं लिखेत् निरवशेषतोलिखेत् वर्त्मनानुप्रमाणेनसमंशस्त्रेण लिखेदिति प्रत्येकं विषयेन संबध्यते इति । परंच सर्वेभ्योर्थेभ्यः समाहारार्थो भाषयोदितः श्रेष्ठतमः ॥

(श्लो० ५७) उन्मार्गी भगंदरः अथवा उत्सृष्टो मार्गो विद्यते येषांते उन्मार्गिणो व्रणाः उत्संगिनः उर्द्धसंगिन अथवा शंबुकावर्ताद्याः इति डल्लनः । करीरः वंशांकुरः (इति शब्दस्तोमः) वालाः करिशूकरादीनां॥

(श्लो० ५८) गुदाभ्यासनाड्यः गुदासमीपजा नाड्यश्च अवक्त्रा अमुखाः ॥

आहरण ।

संवृतासंवृतास्येषु व्रणेषु मतिमान् भिषक् ।
यथोक्तमाहरेच्छल्यंप्राप्तोद्धरणलक्षणम् ॥ ५९ ॥

जिन व्रणों (घावों) का मुह खुला हो अथवा नहीं खुलाहो उनमेंसे बुद्धिमान वैद्य शल्यको जब आहरण करे (निकाले) जब वह शल्य सर्वतो भावसे प्राप्त होसके और उसमें निकल आनेके यथोक्त पूरे लक्षण पाये जावें ॥ ५९ ॥

व्यधन और स्रावण ।

रोगे व्यधनसाध्ये तु यथोद्देशंप्रमाणतः ।
शस्त्रं निदध्याद्दोषं च स्रावयेत्कीर्तितं यथा ॥ ६० ॥

जो रोग व्यधनसाध्य है अर्थात् बींध कर मल निकालनेसे साध्य हों जैसे जलोदरादि या विस्फोटक फालके आदि उनमें उपदेशके अनुसार प्रमाणसे शस्त्र प्रवेश करके यथोचित स्राव करावे ॥ ६० ॥

सीवन और संधान ।

अपाकोपद्रुता ये च मांसस्था विवृताश्च ये ।
यथोक्तं सीवनं तेषु कार्यं संधानमेव च ॥ ६१ ॥

जो पाकावके उपद्रवोंसे रहित तत्कालके कटे घाव है और मांसमेंसे (या त्वचामेंसे) फट गये हैं उनको यथोक्त रीतिसे सीवना और संधान करना (जोडना) चाहिये ॥ ६१ ॥

पीडन ।

पूयगर्भानणुद्वारान् व्रणान्मर्मगतानपि । यथोक्तैः पीडनद्रव्यैः समंतात्परिपीडयेत् ॥ ६२ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति । न चाभिमुखमालिंपेत्तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ६३ ॥

जिनके भीतर पीव हो और उनका मुह तंग हो तथा मर्म स्थानोंमें जो व्रण हों उन्हें यथोक्त पीडन द्रव्योंसे मुखके आसपासमें पीडन करे दबावे या सूंते या गद्दी चढाके बांधे जिससे सब पीव छंट जाय॥ ६२॥ जहां जहांसे व्रण सूखता जावे वहां वहां

(श्लो० ६०) व्यधनसाध्ये दकोदरमूत्रवृद्ध्यादौ ॥

(श्लोक ६३) यथोक्तैः पीडनद्रव्यैः त्वङ्मूलादिभिः प्रदेहं लेपनं+दोषःपूयः ॥

प्रदेह (लेप या मल्हम) नही लगावे और वहां पीडन भी नही करे तथा व्रणके मुहको लेप आदिसे रोकनाभी नही चाहिये जैसे उसके दोष छंट जावें उस प्रकार लेप आदि यत्न करें ॥ ६३ ॥

शोणितास्थापन ।

तैस्तैर्निमित्तैर्बहुधा शोणिते प्रस्रुते भृशम् ।
कार्यं यथोक्तं वैद्येन शोणितास्थापनं खलु ॥ ६४ ॥

रक्तमोक्षण विस्रावणादि कारणोंसे बहुत रुधिर निकलने स्वयं बंधन हो तहाँ वैद्यको यथोक्त रीतिसे शोणित स्थापन करना (रुधिर रोकना) चाहिये ॥ ६४ ॥

निर्वापण ।

दाहपाकज्वरवतां व्रणानां पित्तकोपतः। रक्तेन चाभिभूतानां कार्यं निर्वापणं भवेत् ॥६५॥ यथोक्तैः शीतलद्रव्यैः क्षीरपिष्टैर्घृतप्लुतैः।दिह्यादवहलाल्लेपान् सुशीतांश्चावचारयेत् ॥ ६६ ॥

जिन व्रणोंमें दाह और पकने किसी पीडा तथा ज्वर हो जो व्रण पित्तके कोपसे उपजेहो तथा रुधिरदोषसे उठे हों उनमें निर्वापण (शीतल लेप सेचन) कर्म करना उचित है ॥ ६५ ॥ जो पहले मिश्रकाध्यायमें कहे गये हैं दूर्वादि शीतल द्रव्य उन्हे दूधमें पीस घृत मिलाकर ठंडा २ हलका लेप करना चाहिये ॥ ६६ ॥

उत्कारिका स्वेदन ।

व्रणेषु क्षीणमांसेषु तनुस्राविष्वपाकिषु । तोदकाठिन्यपारुष्यशूलवेपथुमत्सु च ॥ ६७ ॥ वातघ्नवर्गेऽम्लगणे काकोल्यादिगणे तथा । स्नैहिकेषु च बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम्।तेषां च स्वेदनं कार्यं स्थिराणां वेदनावताम् ॥ ६८ ॥

जिन व्रणोंमें मांसकी क्षीणता हो जो कम झिरते हो जो पकते न हो जिनमें तोद (तरडाव) करडापन खरदरापन शूल और वेपथु (कंप या झनझनाट) हो उनपर वायुनाशक द्रव्यों और अम्लगणों तथा काकोल्यादि गण एवं स्नैहिक (चिकनाईवाले) बीज (अलसी तिलादि) मिलाकर अच्छी (न बहुत करडी न नरम) उत्कारिका (लूपरी या पुलटस) पकाकर बांधे और उससे उपरोक्त स्थिर और व्यथायुक्त व्रणोंका स्वेदन कर्म करें ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

शोधन ।

दुर्गन्धानां क्लेदवतां पिच्छलानां विशेषतः । कषायैः शोधनं कार्यं शोधनैः प्रागुदीरितैः ॥ ६९ ॥ अंतःशल्यानणुमुखान् गंभीरान्मांससंश्रितान् । शोधनद्रव्ययुक्ताभिर्वर्त्तिभिस्तान् यथाक्रमम् ॥ ७० ॥ पूतिमांसप्रतिच्छन्नान् महादोषांश्च शोधयेत् । कल्कीकृतैर्यथालाभं वर्तिद्रव्यैः पुरोदितैः ॥ ७१ ॥ पित्तप्रदुष्टान् गंभीरान् दाहपाकप्रपीडितान् । कार्पासीफलमिश्रेण जयेच्छोधनसर्पिषा ॥ ७२ ॥

जिन व्रणोंमें दुर्गंध हो जो आर्द्र ही बनेरहे जो पिच्छल (स्निग्ध) हो उन्हें विशेष कर पूर्वोक्त शोधन द्रव्योंके क्वाथसे शोधन करना चाहिये (व्रणशोधनद्रव्य सूत्रस्थानकी ३८ अध्यायमें कह आये हैं) ॥ ६९ ॥ जिनके भीतर शल्य हो जिनका मुह छोटा हो जो गंभीर हो जिनपर मांस छाया हो उन्हे शोधन द्रव्योंसे सानी हुई बत्तीसे शुद्ध करे (अर्थात् उनमें शोधन औषधोंकी बत्ती स्थापनकर शोधन करे) ॥ ७० ॥ जो सडे मांससे आच्छादित हों जिनमें प्रबल दोष हों उन्हे पूर्वोक्त शोधन द्रव्योंके कल्ककी बत्तीसे शोधन करना चाहिये ॥ ७१ ॥ जो व्रण पित्तदूषित हो गंभीर हो जिनमें दाह और पाककी पीडा हो उन्हे कार्पासबीज (विनोले)से मिश्रित शोधनद्रव्योंके घृतसे शुद्ध करे ॥ ७२ ॥

उत्सन्नमांसानस्निग्धानल्पास्रावान् व्रणांस्तथा । सर्षपस्नेहयुक्तेन धीमांस्तैलेन शोधयेत् ॥ ७३ ॥ तैलेनाशुध्यमानानां शोधनीयां रसक्रियाम् । व्रणानां स्थिरमांसानां कुर्य्याद्द्रव्यैरुदीरितैः ॥ ७४ ॥

जिन व्रणोंमें मांस उभराहुवा हो जो रूखेहों जिनमेंसे स्राव कम हो ऐसे व्रणोंको सरसोंके तैलसे मिले शोधन द्रव्योंसे शुद्ध करे ॥ ७३ ॥ जो व्रण तैलसे शुद्ध नहीं हों और जिन व्रणोंमें स्थिरमांस हो उनके लिये पूर्वोक्त शोधन द्रव्योंकी रसक्रिया करनी चाहिये (अर्थात् शोधनद्रव्योंके रसका उपयोग करे) ॥ ७४ ॥

शोधनी रसक्रिया ।

कषाये विधिवत्तेषां कृते व्यामिश्रयेत्पुनः । सुराष्ट्रजां सकासीसां दद्याच्चापि मनःशिलाम् ॥ ७५ ॥ हरितालं च मतिमांस्ततस्तामवचारयेत् । मातुलुंगरसोपेतां सक्षौद्रामतिमर्दिताम् ॥ ७६ ॥ व्रणेषु

दत्वा तां तिष्ठेत्त्रींस्त्रींश्च दिवसान्परम्। गंभीरान्मेदसा जुष्टान्दुर्गंधांश्चूर्ण-शोधनैः। उपाचरेद्भिषक् प्राज्ञः श्लक्ष्णैः शोधनवर्तिजैः ॥ ७७ ॥

विधिपूर्वक उक्त शोधन द्रव्योंका क्वाथ करके उसमें फटकडी कसीस मिलावे और मैनसिलभी डाले ॥ ७५ ॥ तथा हरताल भी बुद्धिमान वैद्य इसमें मिलावे और मातुलुंग (नींबूके रसकी योजना भी करे और शहत मिलाकर इसे खूब मले॥७६॥ फिर इसे व्रणोंमें भरकर तीन तीन दिनतक रहने दें (चौथे दिन बदल दियाकरें जब-तक व्रण खूब शुद्ध नहो ऐसे ही करें) तथा जो व्रण गंभीर और मेदयुक्त हो और जिनमें दुर्गंध आती हो उन्हे शोधन द्रव्योंके चूर्णसे शोधन करे अथवा शोधन द्रव्यों-की मुलायम (स्निग्ध बत्तीसे शोधनका उपाय) करे ॥ ७७ ॥

रोपण।

शुद्धलक्षणयुक्तानां कषायं रोपणं हितम्। तत्र कार्यं यथोद्दिष्टैर्द्रव्यैर्वैद्येन जानता ॥७८॥ अवेदनानां शुद्धानां गंभीराणां तथैव च। हिता रोपण-वर्त्यंगकृता रोपणवर्त्तयः ॥ ७९ ॥

जिन व्रणोंमें शुद्ध हुवेके लक्षण पाये जावें उनमें रोपण (भरनेवाला) क्वाथ उपयोग करना हित है वह रोपण क्वाथ जानकर वैद्योंको पूर्वोक्त रोपण द्रव्योंसे बनाना चाहिये ॥ ७८ ॥ जिन व्रणोंमें वेदना नहीं रहे और शुद्ध हो जावे पर गंभीर हो उनमें रोपणबत्तीके द्रव्योंकी बत्ती बनाकर स्थापन करके रोपणकरना चाहिये ॥ ७९ ॥

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्। कल्कः संरोहणः कार्यस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ८० ॥ स माधुर्यात्तथौष्ण्याच्च स्नेहाच्चानिलनाशनः। कषायभावान्माधुर्यात्तिक्तत्वाच्चापि पित्तहृत्। औष्ण्यात्कषायभावा-च्च तिक्तत्वाच्च कफे हितः ॥ ८१ ॥

जिनमेंसे दुर्गंधयुक्त दूषित मांस दूर होगया हो और जो मांसमें हो ऐसे व्रणोंमें यदि अंकुर नही आता हो तौ तिल और शहदका कल्क करके उसपर योजन करनेसे संरोहण होताहै अर्थात् अंकुर आजाताहै ॥ ८० ॥ यह कल्क मीठे और गरम तथा स्निन्ध होनेसे वायुनाशक है और कसैले मीठे और थोडा तिक्त होनेसे पित्तनाशक है और गरम कसैले और कडवेपनसे कफके लिये भी हितहै ॥ ८१ ॥

शोधयेद्रोपयेच्चापि युक्तैः शोधनरोपणैः। निंबपत्रमधुभ्यां तु युक्तः

(श्लोक ७९) रोपणवर्त्यंगकृता रोपणवर्तिद्रव्यकृताः। रोपणवर्तयोहिताः ॥

संशोधनः स्मृतः ॥८२॥ पूर्वाभ्यां सर्पिषा चापि युक्तः संरोपणे भवेत् । तिलवद्यवकल्कं तु केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ८३ ॥ शमयेदविदग्धं च विदग्धमपि पाचयेत् । पक्वं भिनत्ति भिन्नं च शोधयेद्रोपयेत्तथा ॥८४॥

यह तिलकल्क (लुगदी) शोधन भी करती है और रोपण भी करती है इससे यह शोधन और रोपण दोनोंमें हित है तथा निंबके पत्ते और शहद मिलाकर शोधनके योग्य होवे है ॥ ८२ ॥ पूर्वोक्त दोनों घृत मिलानेसे रोपण होजाताहै और कोई २ बुद्धिमान वैद्य जौके कल्कको भी तिलके कल्ककी समान गुणवाला कहते हैं ॥८३॥ यह कल्क कच्चेको बिठा देता है और पकावपर आयेको पका देता है और पके हुवेको फोडदेता है और फूटेका शोधन करके रोपणकर देता है (तिलवद्यवकल्क इसका यह भी अर्थ कई करते हैं कि तिल युक्त यवकल्क) देखो टिप्पणी ॥ ८४ ॥

पित्तरक्तविषागन्तुगंभीरानपि च व्रणान् । रोपयेद्रोपणीयेन क्षीरसिद्धेन सर्पिषा ॥८५॥ कफवाताभिभूतानां व्रणानां मतिमान् भिषक् । कारये-द्रोपणं तैलं भेषजैस्तदर्थोदितैः ॥ ८६ ॥

पित्त रुधिर विष इनसे उपजे व्रण तथा आगंतु और गंभीर व्रण इन्हे दूधसे सिद्ध किये हुवे रोपणीय घृत करके रोपण करे ॥ ८५ ॥ कफ वायुसे उत्पन्न हुवे व्रणोंमें बुद्धिमान् वैद्य पूर्वोक्त रोपण द्रव्योंसे सिद्ध किये हुवे तैलसे रोपण करे ॥८६॥

अवंध्यानां चलस्थानां शुद्धानां च प्रदुष्यताम्। द्विहरिद्रायुतां कुर्याद्रोपणार्थां रसक्रियाम् ॥ ८७ ॥ समानां स्थिरमांसानां त्वक्स्थानां रोपणं भि-षक्। चूर्णं विदध्यान्मतिमान् प्राक्स्थानोक्तो विधिर्यथा ॥ ८८ ॥

जो व्रण बंधनेमें न आसके या बंधने योग्य न हो तथा चल स्थानमें हो (जैसे संधिका व्रण) ये शुद्ध हो और चाहे दूषित हों इन पर दोनों हलदियों सहित रोपणी रसक्रिया करनी चाहिये (प्रदुष्यतांके जगह अप्ररोहतां यह भी पाठांतर है) अर्थात् जिस पर अंकुर न आया हो उस पर रोपणी रसक्रिया करे ॥ ८७ ॥ जो व्रण समानहो तथा जिनमें स्थिर मांस हो जो त्वचामें हो उनपर रोपणके अर्थ चूर्णका उपयोग सूत्रस्थानोक्त विधिके अनुसार करे ॥ ८८ ॥

(श्लोक ८०) पूतिमांसं अपेतं निर्गतं येभ्यः तेषां ॥

(श्लोक ८३) तिलवद्यवकल्कत्वित्यत्रातिलसदृशोयवकल्क इति डल्लनः। जैज्जटगयदासौतुयथा तिलाविद्यंते-स्मिन्निति तिलवान् तिलवांश्चासौयवकल्कश्च तिलवद्यवकल्कस्तंतिलवद्यवकल्कं फलतः तिलयुक्तोयवकल्कः अविदग्धंशमयेदित्यादि ॥

शोधनो रोपणश्चैवं विधिर्योयं प्रकीर्तितः । सर्वव्रणानां सामान्येनोक्तो दोषाविशेषतः ॥ ८९ ॥ एष आगमसिद्धत्वात्तथैव फलदर्शनात् । मंत्रवत्संप्रयोक्तव्यो न मीमांस्यः कथंचन ॥ ९० ॥ स्वबुद्ध्या चापि विभजेत्कषायादिषु सप्तसु । भेषजानि यथायोगं यान्युक्तानि पुरा मया ॥ ९१ ॥

शोधन और रोपणकी जो विधि कही वह सब व्रणोंमें सामान्यतासे कही है दोषोंकी विशेषता न्यूनताका विचार इनमें नहीं ॥ ८९ ॥ यह विधि आगम (शास्त्र) से सिद्ध होनेसे और श्रेष्ठ फल दिखानेसे मंत्रकी भांति शंका समाधान त्यागकर उपयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥ और अपनी बुद्धिसे विचार कर वैद्य क्राथ आदि सात उपायोंमेंसे यथायोग्य जो पहले वर्णन कर दिये गये हैं उनमेंसे कल्पना करके उपयोग करे ॥ ९१ ॥

आद्ये द्वे पंचमूल्यौ तु गणो यश्चानिलापहः । स वातदुष्टे दातव्यः कषायादिषु सप्तसु ॥ ९२ ॥ न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु काकोल्यादिश्च यः स्मृतः । तौ पित्तदुष्टे दातव्यौ कषायादिषु सप्तसु ॥ ९३ ॥ आरग्वधादिस्तु गणो यश्चोष्णः परिकीर्त्तितः । तौ देयौ कफदुष्टे तु संसृष्टे संयुता गणाः ॥ ९४ ॥

आद्य दोनों पंचमूली और वायुनाशक गण वायुसे दूषित व्रण होतो सातों कषायादिकमेंसे यथायोग्य मिलाकर देना चाहिये ॥ ९२ ॥ पूर्वोक्त न्यग्रोधादिक गण अथवा काकोल्यादिक गण ये दोनों सप्तकषायादिमें योजनाकर पित्तदुष्ट व्रणवालेको देना चाहिये ॥ ९३ ॥ आरग्वधादि गण तथा जो उष्ण (गरम द्रव्योंके) गण पहले कहचुके हैं कफदूषित व्रणमें ये दोनों उपयोग करने चाहिये तथा संसृष्ट दो दोषोंका व्रण तथा संन्निपातका व्रण होतो उन्ही उन्ह गणोंको संयुक्त करके देना चाहिये ॥ ९४ ॥

व्रणधूपन ।

वातात्मकानुग्ररुजान् सास्रावानपि च व्रणान् ।
सक्षौमयवसर्पिर्भिर्धूपनांगैश्च धूपयेत् ॥ ९५ ॥

वायुके व्रण जिनमें उग्र पीडा हो जो स्रावयुक्त हो ऐसे व्रणोंको क्षौम वस्त्र जौ और घृत मिलाकर धूपन द्रव्यों (गुग्गुलादि) की धूनी देना उचित है ॥ ९५ ॥

उत्सादन ।

परिशुष्काल्पमांसानां गंभीराणां तथैव च ।
कुर्य्यादुत्सादनीयानि सर्पींष्यालेपनानि च ॥ ९६ ॥

जिन व्रणोंमें सूखकर थोडा मांस हो तथा जो व्रण गंभीर (नीचे) हो उन्हे उत्सादन (उकसानेवाले) घृत तथा लेपोंसे उपचार करे ॥ ९६ ॥

मांसाशिनां च मांसानि भक्षयेद्विधिवन्नरैः ।
विशुद्धमनसस्तस्य मांसं मांसेन वर्द्धते ॥ ९७ ॥

जो मांसभक्षी मनुष्योंके मांस अल्प हो तो उसे विधिपूर्वक मांस भक्षण करावे क्योंकि जब उसके मनमें किसी प्रकारके शोकादि नही हो तब मांसको मांस बढाताही है ॥ ९७ ॥

अवसादन ।

उत्सन्नमृदुमांसानां व्रणानामवसादनम् ।
कुर्याद्द्रव्यैर्यथोद्दिष्टैश्चूर्णितैर्मधुना सह ॥ ९८ ॥

जिसमें कोमल और उठा हुआ मांस हो उन व्रणोंको पूर्वोक्त कासीसादि द्रव्योंके चूर्णको शहतमें मिलाकर लगाने आदिसे अवसादन कर्म करना (अर्थात् उनका मांस नीचा करना) चाहिये ॥ ९८ ॥

मृदुकर्म ।

कठिनानाममांसानां दुष्टानां मातरिश्वना । मृद्वी क्रिया विधातव्या शोणितं चापि मोक्षयेत् । वातघ्नौषधसंयुक्तान्स्नेहान्सेकांश्च कारयेत् ॥ ९९ ॥

जिन व्रणोंमें विशेष करडापन हो जिनमें मांस नही हो जो वायु करके दुष्ट हो उनको वायुनाशक औषधों सहित घृत तैल वसा आदिसे तथा ऐसे ही अभिषेकोंसे मृदु (नरम) करना चाहिये तथा रक्तमोक्ष (फस्त आदि) करना चाहिये ॥ ९९ ॥

दारुण कर्म ।

व्रणेषु मृदुमांसेषु दारुणीकरणं हितम् । धवप्रियंग्वशोकानां रोहिण्याश्च त्वचस्तथा ॥ १०० ॥ त्रिफलाधातकीपुष्पराेध्रसर्जरसान्समान् । कृत्वा सूक्ष्माणि चूर्णानि व्रणं तैरवचूर्णयेत् ॥ १०१ ॥

(श्लोक १००) दारुणीकरणं त्वचः काठिन्यकरणम् ॥

जिन व्रणोंमें बहुत नरम (लजलजा और शीला) मांस हो उन्हे धव प्रियंगु (गोंदी) अशोक रोहिणी इनकी छाल ॥१००॥ त्रिफला धायके फूल लोध सर्जरस (राल) इन्हे सम भागले सूक्ष्म चूर्णकर उसे व्रणपर उरकावे जिससे वह करडा होवे इस प्रकार दारुणी करण करना ॥ १०१ ॥

क्षारकर्म ।

उत्सन्नमांसकठिनान् कंडूयुक्तांश्चिरोत्थितान् ।
तथैव खलु दुःशोधान् शोधयेत्क्षारकर्मणा ॥ १०२ ॥

जिनमें उभरा हुवा करडा मांसहो जो खाज युक्त हो बहुत समके उठे हों तथा जो दुःशोध्य हो उन्हें क्षारकर्म (तेजाब) से शोधना उचित है ॥ १०२ ॥

अग्निकर्म ।

स्रवतोऽश्मभवान्मूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः ।
निःशेषच्छिन्नसंधींश्च साधयेदग्निकर्मणा ॥ १०३ ॥

जो पथरीके कारण व्रण होकर उनमेंसे मूत्र स्रवने लगे अथवा अन्य व्रण जिनसे रुधिर वहा करताही हो तथा जिन संधि निःशेष छिन्न हो गई हो उन्हे अग्निकर्म (दाग लगाने) से साधन करें ॥ १०३ ॥

कृष्णकर्म ।

दुरूढत्वात्तु शुक्लानां कृष्णकर्म हितं भवेत् । भल्लातकान् वासयेत्तु क्षीरे प्राङ्मूत्रभावितान् ॥ १०४ ॥ ततो द्विधा छेदयित्वा लौहे कुंभे निधापयेत् । कुंभेन्यस्मिन्निखाते तु तं कुंभमथ योजयेत् ॥ १०५ ॥ मुखं मुखेन संधाय गोमयैर्दाहयेत्ततः । यः स्नेहश्च्यवते तस्माद् ग्राहयेत्तं शनैर्भिषक् ॥ १०६ ॥ ग्राम्यानूपशफान्दग्ध्वा सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । तैलेनानेन संसृष्टं शुक्लमालेपयेद्व्रणम् ॥ १०७ ॥ भल्लातकविधानेन सारस्नेहांस्तु कारयेत् । ये च केचित्फलस्नेहा विधानं तेषु कीर्तितम् ॥ १०८ ॥

बहुत दिनतक दुःखसे भरनेके कारण जो व्रण सुपेद (दागसे) रहजावे उन्हे कृष्णकर्म (काला करना) उचित है इसके लिये भिलावोंको पहले (सातदिन) गोमूत्रमें भिगो कर फिर गोदुग्धमें भिगोवे फिर उन्हे दोदो टुकडे कर लोहेकी कुप्पीमें भरे फिर दूसरी लोहकी कुप्पी नीचे गढेमें रख उसपर भिलावेसे भरी कुप्पी मुखमिला कर संधित कर देवे फिर ऊपर गोवर (छाणे)की आंचदे फिर जो

तैल नीचेवाली कुप्पीमें टपक आवे उसे वैद्य निकालले ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ ॥ १०६ ॥ फिर ग्राम्य (घोडा आदि) आनूप (महिषादि) इनके नख जलाकर चूर्ण करले फिर इस चूर्णको उस भिलावेंके तैलमें मिलाकर सुपेद दाग पर लेप करे ॥ १०७ ॥ इसी विधिसे सारोंका तैलभी निकाले और जो फलोंके तैल होते हैं उनकी विधि पहले कही जा चुकी है ॥ १०८ ॥

पांडुकर्म ।

दुरूढत्वात्तु कृष्णानां पांडुकर्म हितं भवेत् । सप्तरात्रं स्थितं क्षीरे छागले रोहिणीफलम् । तेनैव पिष्टं सुश्लक्ष्णं सवर्णकरणं हितम् ॥ १०९ ॥

दुरूढताके कारण जिसमें काला दाग रहगया हो उसपर पांडुकर्म (पीलापन) करना हित है इसके लिये रोहिणी फल कडवी तूंबीको तोड सात दिनतक बकरीके दूधमें भिगोवे फिर उसे गीलाही पीसकर व्रणके काले दागपर लगानेसे शरीरके सदृश वर्ण हो जाता है ॥ १०९ ॥

नवं कपालिकाचूर्णं वैदुलं सर्जनाम च । कासीसं मधुकं चैव क्षौद्रयुक्तं प्रलेपयेत् ॥ ११० ॥ कपित्थमुद्धृते मांसे मूत्रेणाजेन पूरयेत् । कासीसं रोचना तुत्थं हारितालं मनःशिलाम् ॥ १११ ॥ वेणुनिर्लेखनं चापि प्रपुन्नाटं रसांजनम् । अधस्तादर्जुनस्यैतन्मासं भूमौ निधापयेत् । मासादूर्ध्वं ततस्तेन कृष्णमालेपयेद्व्रणम् ॥ ११२ ॥

अथवा नवीन ठेकरीका चूर्ण और वैदुल (वेतसकी जड) और सर्ज (रालके वृक्ष) की जड तथा कसीस और मुलेठी इन्हे शहदमें मिलाकर लेप करे (तो कृष्णता मिटे) ॥११०॥ अथवा कपित्थ कैथके भीतरकी गिरी निकालकर उसमें बकरीका मूत्र भर दे और इसीमें कसीस गोरोचन नीलाथोथा हरताल मैनसिल वांसका बुरादा पंवाडेके बीज और रसोत भर दे और इसे अर्जुनवृक्षके नीचे जडमें पृथ्वी खोदकर गाडदे एक महीने पीछे उसे सबको पीस काले व्रणोंपर लेप करे१११।११२॥

प्रतिसारण ।

कुक्कुटांडकपालानि कतकं मधुकं समम् । तथा समुद्रमंडूकी मणिचूर्णं च दापयेत् । गुटिका मूत्रपिष्टास्ता व्रणानां प्रतिसारणम् ॥ ११३ ॥

(श्लोक १०९) रोहिणीफलं रोहिणी हरीतकीभेदस्तत्फलं,अन्ये कटुतुम्बीफलमाहुः ॥

(श्लोक ११०) कपालिका शरावकर्परिका, वैदुलं विदुलोवेतसस्तद्भवं वैदुलं मूलमितिशेषः, सर्जनाम सर्जवृक्षमूलम् ॥

(श्लोक ११२) वेणुनिर्लेखनं वंशत्वगिति (डल्हनः) ॥

(श्लोक ११३) समुद्रमंडूकी मुक्ताशुक्तिः ॥

मुरगेके अंडेके ऊपरका भाग (छिलका) कैथ (निर्मली) मुलेठी तथा समुद्रमंडूकी (समुद्रसीप) और मणिका चूर्ण (स्फटिकचूर्ण) ये समभाग ले गोमूत्रसे पीस गोली बनाले ये लेपन करनेसे व्रणोंका प्रतिसारण होताहै अर्थात् वर्ण पलट जाता है॥ ११३॥

रोमसंजनन ।

हस्तिदंतमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसांजनम् । रोमाण्येतेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ ११४ ॥ चतुष्पदानां त्वग्रोमखुरशृंगास्थिभस्मना । तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ ११५ ॥ कासीसं नक्तमालस्य पल्लवांश्चैव संहरेत् । कपित्थरसपिष्टानि रोमसंजननं परम् ॥ ११६ ॥

हाथीके दांतको जलाकर उसकी काली राख करले उसमें रसोत मिलाकर लेप करनेसे (जिस व्रणकी जगह बाल नहीं आते हो वहां इससे) रोम आजाते हैं यहांतक कि हथेली जैसी कठिन जगहमें भी इससे रोम पैदा होजावे ॥ ११४ ॥ अथवा चतुष्पदोंकी चर्म रोम खुर सींग और हड्डियां जलाकर उनका चूर्णकर तेल मिलाकर लेप करनेसे या तैल लगाकर वह चूर्ण बुरकनेसे उस ठौर रोम होजाते हैं ॥११५ ॥ अथवा कसीस करंजके पत्ते जलाकर कैथके रसमें पीस कर लेप करना परम रोमसंजनक है (अवश्य रोम पैदा करनेवाला है) ॥ ११६ ॥

रोमापहरण ।

रोमाकीर्णो व्रणो यस्तु न सम्यगुपरोहति । क्षुरकर्तरिसंदंशैस्तस्य रोमाणि निर्हरेत् ॥११७॥ शंखचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम् । शुक्तेन सह पिष्टानि लोमशातनमुत्तमम् ॥ ११८ ॥ तैलं भल्लातकस्याथ स्नुहीक्षीरं तथैव च । प्रगृह्यैकत्र मतिमान् रोमशातनमुत्तमम् ॥ ११९ ॥ कदलीदीर्घवृंताभ्यां भस्माऽऽलं लवणं शमी । बीजं शीतोदपिष्टं वा रोमशातनमाचरेत् ॥ १२० ॥

जो व्रण आसपास रोमों अथवा बालोंसे व्याप्त होनेके कारण ठीक नही भरता हो तो उस्तरे या कैंची या मोचनेसे उसके पास या ऊपरके बाल दूर करडालने चाहिये ॥ ११७ ॥ तथा शंखका चूर्ण दोभाग या शंख और चूना दोनों दो भाग और हरताल एक भाग इन्हे सिरकेमें पीस कर लगा देना उत्तम रोमनाशक है ॥ ११८ ॥ अथवा भिलावेका तैल और थूहरका दूध इन्हें इकठ्ठा कर लगाना भी उत्तम रोमनाशक है ॥ ११९ ॥ अथवा केला सोनापाठा हरताल इनकी भस्म-

में लवण और शमी (जांट) वृक्षके बीज मिला ठंढे पानीसे पीस लेप करनेसे भी रोम (बाल) उडजाते हैं ॥ १२० ॥

आगारगोधिकापुच्छं रंभाऽऽलं बीजमैंगुदम् ॥
दग्ध्वा तद्भस्म तैलांबु सूर्यपक्वं कचांतकृत् ॥ १२१ ॥

छिपकलीकी पुच्छ केला हरिताल इंगुदीके बीज इन्हे जलाकर भस्मको तैल पानी मिला कई दिन धूपमें रख उसका लेप करनेसे बाल दूर हो जाते हैं ॥१२१॥

बस्ति और उत्तर बस्ति ।

वातदुष्टो व्रणो यस्तु रूक्षश्चात्यर्थवेदनः । अधः काये विशेषेण तत्र बस्तिर्विधीयते ॥ १२२ ॥ मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषेऽश्मरीव्रणे । तथैवाऽऽर्तवदोषे च बस्तिरप्युत्तरो हितः ॥ १२३ ॥

जो व्रण वायुसे दूषित हो रूक्ष हो जिसमें वेदना विशेष हो विशेष कर नीचेके शरीरमें हो तौ बस्तिकर्म करना हित है ॥ १२२ ॥ मूत्राघात मूत्रदोष और शुक्रदोष तथा पथरीके कारण जो व्रण हो तथा स्त्रियोंके आर्तव रजोधर्म दूषित हो तौ उत्तर बस्तिकर्म हित है ॥ १२३ ॥

बंधन ।

यस्माच्छुध्यति बंधेन व्रणो याति च मार्दवम् ।
रोहत्यपि च निःशंकस्तस्माद्बन्धो विधीयते ॥ १२४ ॥

जो कि बंधनसे व्रण शुद्ध होता है तथा कोमलताको प्राप्त होता है तथा निःशंक भरकर अंकुर आजाता है इस लिये व्रणमें बंधन बांधना ठीक है ॥ १२४ ॥

पत्रदान ।

स्थिराणामल्पमांसानां रौक्ष्यादनुपरोहताम् । पत्रदानं भवेत्कार्यं यथादोषं यथर्तु च ॥ १२५ ॥ एरंडभूर्जपूतीकहरिद्राणां तु वातजे । पत्रमाश्वबलं यच्च काश्मरीपत्रमेव च ॥ १२६ ॥ पत्राणि क्षीरवृक्षाणां मौदकानि तथैव च । दूषिते रक्तपित्ताभ्यां व्रणे दद्याद्विचक्षणः ॥ १२७ ॥ पाठामूर्वागुडूचीनां काकमाचीहारिद्रयोः । पत्रं च शुकनासाया योजयेत्कफजे व्रणे ॥ १२८ ॥

जो व्रण स्थिर हो अल्पमांसवाले हो रूक्षतासे अंकुर न आता हो ऐसे व्रणोंपर दोष और ऋतुके अनुसार पत्ते बांधना या लगाना योग्य है ॥१२५ ॥ वातके व्रणों-

पर एरंडके पत्ते या भूर्जदत्र या पूतिकरंज या हलदीके पत्र बांधना पित्त और रक्तके व्रणोंपर अश्वबल (आसबल) खंभारीके पत्ते अथवा दूधके वृक्षों (गूलर आदि) के और जलज (कमल आदिके) पत्ते बांधने ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ कफके व्रणोंपर पाठा मूर्वा गिलोय और मकोय तथा हलदी एवं शोनाकके पत्तोंका उपयोग करना चाहिये ॥ १२८ ॥

अकर्कशमविक्लिन्नमजीर्णं सुकुमारकम् । अजंतुजग्धं मृदु च पत्रं गुणवदुच्यते ॥१२९॥ स्नेहमौषधसारं च पट्टवस्त्रांतरीकृतम् । न दूषयंति यत्पत्रं लेपस्योपरि दापयेत् ॥ १३० ॥ शैत्यौष्ण्यजननार्थाय स्नेहसंग्रहणाय च । दत्तौषधेषु दातव्यं पत्रं वैद्येन जानता ॥ १३१ ॥

जो पत्र करडे न हों क्लेदित (सडे) न हों बहुत पुराने न हो किंतु कोमल हो तथा कीडे आदिके खाये न हो एसे नरम पत्ते गुणकारक होते हैं ॥ १२९ ॥ चिकनाई और औषधका सार जो बांधनेकी पट्टीके बाहर फूटकर नहीं जाने इस लिये बांधनेकी औषध और लेपपर पत्ते लगाकर बांधना अच्छा है ॥ १३० ॥ पित्त और रुधिरके व्रणोंमें शीत तथा वायु कफके व्रणोंमें उष्णता उत्पन्न करनेके लिये तथा चिकनाई संगृहीत रखनेके लिये व्रणपर लगाई हुई औषधपर चतुर वैद्यको पत्ते अवश्य लगाने या बांधने चाहिये ॥ १३१ ॥

कृमिनाशन ।

मक्षिका व्रणजातस्य निक्षिपंति यदा कृमीन् । श्वयथुर्भक्षिते तैस्तु जायते भृशदारुणः ॥ १३२ ॥ तीव्रा रुजो विचित्राश्च रक्तास्रावश्च जायते । सुरसादिर्हितस्तत्र धावने पूरणे तथा ॥ १३३ ॥ सप्तपर्णकरंजार्कनिंबराजादनत्वचः । हिता गोमूत्रपिष्टाश्च सेकः क्षारोदकेन च ॥ १३४ ॥ प्रच्छाद्य मांसपेश्या च कृमीनपहरेद्व्रणात् । विंशतिः कृमिजातीस्तु वक्ष्याम्युपरिभागशः ॥ १३५ ॥

मक्खियां व्रणके ऊपर बैठके कदाचित् कीडे डालदें तब उन कीडोंके कटानेसे दारुण सोजा हो जाता है ॥ १३२ ॥ और बड़ी पीडा और रुधिरका स्राव होता है तो इस व्रणके धोने और घावभरनेको सुरसादिक गणका क्वाथ हित होता है॥१३३॥ सप्तपर्ण (सातला) करंज आक नींब और खिरनीकी छालको गोमूत्रमें पीसकर लगावे अथवा क्षारोदक तेजाबके पानीसे धोवें (जैसे आजकल डाक्टर कारबोलिक

एसिडके पानीसे धोते हैं) ॥ १३४ ॥ अथवा (अन्य अजादिके मांसमें शर्करा गोदकर उस) मांसको कृमियुक्त व्रणपर लगावे जिससे सब कृमि उसमें चढ आवें फिर उसे फेंकदे कीडोंकी जो २० जाति हैं वे उत्तर तंत्रमें कहेंगे ॥ १३५ ॥

बृहण कर्म ।

दीर्घकालातुराणां तु कृशानां व्रणशोषिणाम् ।
बृंहणीयो विधिः सर्वः कार्योऽग्निं परिरक्षिता ॥ १३६ ॥

जो बहुत समयसे रोगी हों दुबले हों व्रणके कारण जो क्षीण हो गये हों उनको बृंहण औषधादिका उपयोग जठराग्निकी रक्षापूर्वक करें अर्थात् बृंहण आहार औषध इतनी करें कि जठराग्नि मंद न हो जाय ॥ १३६ ॥

विषनाशन ।

विषजुष्टस्य विज्ञानं विषनिश्चयमेवं च ।
चिकित्सितं च वक्ष्यामि कल्पे तु प्रतिभागशः ॥ १३७ ॥

विषजुष्ट व्रण आदिका विज्ञान और विषका निश्चय और उसकी चिकित्सा भेद-पूर्वक कल्पस्थानमें अगाडी वर्णन करेंगे ॥ १३७ ॥

शिरोविरेचन नस्य ।

कंडूमंतः सशोफाश्च ये च जत्रूपरि व्रणाः । शिरोविरेचनं तेषु विदध्या-त्कुशलो भिषक् ॥ १३८ ॥ रुजावंतोऽनिलाविष्टा रूक्षा ये चोर्ध्वजत्रुजाः। व्रणेषु तेषु कर्तव्यं नस्यं वैद्येन जानता ॥ १३९ ॥

जिन व्रणोंमें खाज हो और शोथ हो ऐसे व्रण ग्रीवाके जोतोंके ऊपरि भागमें हों तौ उनमें चतुर वैद्य शिरो विरेचन कर्म करें ॥ १३८ ॥ जो व्रण व्यथा युक्त और वायुसे आविष्ट और रूखे ऐसे व्रण ऊर्ध्वजत्रु (ऊपले जोतों) से ऊपर हों तौ उनमें वैद्य नस्य (नास) दें ॥ १३९ ॥

कवलधारण ।

दोषप्रच्यवनार्थाय रुजादाहक्षयाय च । जिह्वादंतसमुत्थस्य हरणार्थं मलस्य च ॥ १४० ॥ शोधनो रोपणश्चैव व्रणस्य मुखजस्य वै । उष्णो वा यदिवा शीतः कवलग्रह ईष्यते ॥ १४१ ॥

(श्लोक १४०) दंतशब्देन चात्र दंतसमीपानि तन्मूलानि ग्राह्याणि ।

जिह्वा दांत और मुखके व्रणोंके दोष नाश करनेके लिये तथा व्यथा और दाह नष्ट करनेके लिये तथा मल दूर करनेके लिये शोधन तथा रोपण द्रव्योंका उष्ण अथवा शीतल जैसा उचित हो तैसा कवल ग्रह (ग्रासरूप लुगदी) मुखमें रखना उचित है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

धूमपान ।

उर्ध्वजत्रुगतान्रोगान्व्रणांश्च कफवातजान् ।
शोफस्रावरुजायुक्तान्धूमपानैरुपाचरेत् ॥ १४२ ॥

ऊपरके जोतो (ग्रीवा) से ऊपर प्राप्त हुवे रोगोंको कफ वायुसे उपजे शोथ और स्राव तथा पीडायुक्त व्रणोंको धूमपानसे उपचार करें (उर्ध्वजत्रु ऊपर गमन करनेवाले जोते जो नाभिसे ऊपरको गमन कर शिरतक पहुँचते हैं कई ऊर्ध्वजत्रु ग्रीवासे ऊपरके जोतोंको ही कहते हैं) ॥ १४२ ॥

मधुसर्पि ।

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं संधानार्थं तथैवच ।
सद्योव्रणेष्वायतेषु क्षौद्रसर्पिर्विधीयते ॥ १४३ ॥

घावकी गरमी शांत करनेके लिये तथा सद्यव्रणके जुडजानेके जो विस्तार-युक्त तात्कालके व्रण हों उनमें शहद घृतका उपयोग करना उचित्त है ॥ १४३ ॥

यंत्रकर्म ।

अवगाढास्त्वणुमुखा ये व्रणाः शल्यपीडिताः ।
निवृत्तहस्तोद्धरणा यंत्रं तेषु विधीयते ॥ १४४ ॥

जो व्रण गहरे हो और उनका मुख छोटा हो तथा जिन व्रणोंके भीतर शल्यहो और वह शल्य हाथसे नहीं निकलसके तो ऐसे व्रणोंमें यंत्र (स्वस्तिक संदंश आदि) से कार्य करना चाहिये ॥ १४४ ॥

आहार ।

लघुमात्रो लघुश्चैव स्निग्ध उष्णोऽग्निदीपनः ।
सर्वव्रणिभ्यो देयस्तु सदाऽऽहारो विजानता ॥ १४५ ॥

सब प्रकारके व्रणरोगीको सुज्ञ वैद्य ऐसा आहार (भोजन) दिलावे कि, जो मात्रामें लघु हो (कम हो) तथा लघु (हलका) हो चिकना हो उष्ण हो और अग्निको दीपन करनेवाला हो (परंतु व्रणके आरंभिक शोथमें जहां अपतर्पण उ-चितहो वहां स्निग्धताका परित्याग रक्खें) ॥ १४५ ॥

रक्षाविधान ।

निशाचरेभ्यो रक्षेयस्तुं नित्यमेवं क्षतातुरः ।
रक्षाविधानैरुद्दिष्टैर्यमैः सनियमैस्तथा ॥ १४६ ॥

क्षतातुर (जखमी मनुष्य) को नित्य निशाचरों (राक्षसों) से रक्षित (रखना) चाहिये और पूर्वोक्त रक्षाविधानसे यमों (अहिंसा सत्य चोरी न करना ब्रह्मचर्य और व्यवहारनिवृत्ति इन पांच यमों) तथा नियमों (अक्रोध गुरु जनोंकी शुश्रूषा पवित्रता लघु और शुद्ध भोजन तथा अप्रमाद इन पांच नियमो) पूर्वक रखना चाहिये (निशाचर शब्दसे कई चंद्रमा और तारागण ऐसा अर्थ मानकर यह तात्पर्य लेते हैं कि क्षतातुरको चौडेमें नहीं रखना चाहिये क्योंकि बाजे समय चंद्रमाका कई तारोंका विषैल प्रभाव क्षतमें प्रवेश कर जानेसे व्रणितको एक प्रकारकी चमक हो जाती है जिससे व्रण असाध्य हो जाता है देश भाषामें इसे कहा करते हैं कि, अमुक क्षतातुरको चांद मारगया बल्कि इसी अभिप्रायसे जर्राह लोग फस्त खोले आदमीको चांदकी चांदनीमें नहीं रखते हैं) ॥ १४६ ॥

षण्मूलोष्टपरिग्राही पंचलक्षणलक्षितः ।
षष्ट्युपक्रमनिर्दिष्टश्चतुर्भिः साध्यते व्रणः ॥ १४७ ॥

यह श्लोक भी कठिन समझ कर कूटमुद्गर नाम ग्रंथमें रक्खा है, ऐसा व्रण जिसके वातपित्त कफ रुधिर सन्निपात और आगुंतु ये छः मूल कारण हैं और आठ (त्वचा मांस शिरा स्नायु संधि अस्थि कोष्ठ और मर्म ये) परिग्राही अर्थात् स्थान हैं और पांच (वात पित्त कफ सन्निपात और आगंतु अथवा गंध वर्ण स्पर्श स्राव वेदना इन पांच) लक्षणोंसे लक्षित है सो वह व्रण पूर्वोक्त साठ उपक्रमों द्वारा चारों (वैद्य रोगी औषध और परिचारक) से साधन किया जाता है ॥ १४७ ॥

औषधिप्रयोगविधिः ।

योऽल्पौषधकृतो योगो बहुग्रंथभयान्मया । द्रव्याणां तत्समानानां तत्राऽऽवापो न दुष्यति ॥ १४८ ॥ प्रसंगाभिहितो यो वा बहुदुर्लभभेषजः ।

(श्लोक १४६) यमाःपंच नियमा अपिपंच । उक्तंच—अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यंतथैवच । व्यवहारनिवृत्तिश्च यमाःपंचप्रकीर्तिताः १ अक्रोधो गुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् । अप्रमादश्चपंचैते नियमाः परिकीर्तिताः२इतिडल्लनः।

(श्लोक १४७) षण्मूल इति वातपित्तकफशोणितसंन्निपातागंतवः । षडेवमूलंयस्य, अष्टपरिग्राहीति त्वङ्मांसशिरास्नायुसंध्यस्थिकोष्ठमर्माणीत्यष्टौ परिग्रहाः यस्य परिग्रहोऽधिष्ठानम्, पंचलक्षणलक्षितइति वातपित्तकफ सन्निपातागंतूनां लक्षणानि तैर्लक्षितः रक्तजस्यात्रपित्तवल्लक्षणंबोध्यं अथवा गंधवर्णस्पर्शास्राववेदनालक्षणानि तैर्लक्षितः, षष्ठ्युपक्रमाःपूर्वोक्ताः, चतुर्भिःवैद्यातुरपरिचारकौषधैः साध्यते (इति नि० सं०) ॥

यथोपपत्तितश्चाऽपि कार्यमेवं चिकित्सितम् ॥ १४९ ॥ गणोक्तमपि यद्द्रव्यं भवेद्व्याधावयौगिकम् । तदुद्धरेद्यौगिकं तु प्रक्षिपेदप्यकीर्तितम् ॥ १५० ॥

यह योग (नुसखा) थोडे औषधोंका किया है ग्रंथ बढनेके भयसे विशेष नहीं वधाया उसमें आवश्यकता होतो उसके समान (रसगुण वीर्य विपाकमें समान) अन्य औषध और अपनी बुद्धिसे वैद्य डालदे तो उसका कुछ दोष नहीं ॥ १४८ ॥ प्रसंगाभिहित योगमें यदि बहुतसी और दुर्लभ औषधें हो तो जितनी २ जहांतक मिलसके उन्हींसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४९ ॥ जो औषधगणमें कहाभी है पर वह व्याधिमें अयोग्य है तो उस कहे हुवेको भी निकाल देना उचित है और जो व्याधिके अनुसार गुणकारी हो वह बिना लिखा भी औषध मिला देना उचित है ॥ १५० ॥

व्रणके उपद्रव।

उपद्रवास्तु द्विविधा व्रणस्य व्रणितस्य च । तत्र गंधादयः पंच व्रणस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १५१ ॥ ज्वरातिसारौ मूर्च्छा च हिक्का छर्दिररोचकम् । श्वासकासाविपाकाश्च तृष्णा च व्रणितस्य च ॥ १५२ ॥

व्रणित मनुष्यके दो प्रकारके उपद्रव होते हैं एक तो व्रणके उपद्रव दूसरे व्रणयुक्त रोगीके उपद्रव जिनमेंसे दुर्गंध आदि (दुर्गंध शूल दाह दुरास्राव कृमि प्रभृतिः) पांच तो व्रणमें होनेवाले उपद्रव हैं ॥ १५१ ॥ तथा ज्वर अतिसार मूर्च्छा हिचकी वमन अरुचि श्वास खांसी अपरिपाक और तृषा ये दश व्रण रोगीमनुष्यके उपद्रव होजाते हैं ॥ १५२ ॥

व्रणक्रियास्त्वेवमाशु व्यासेनोक्तास्त्वऽपि क्रियाम् ।
भूयोऽप्युपरि वक्ष्यामि सद्योव्रणचिकित्सिते ॥ १५३ ॥

इति चिकित्सितस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यद्यापि यहाँ विस्तारपूर्वक व्रणकी क्रिया चिकित्सा वर्णन करी है तथापि अगाडी सद्योव्रणचिकित्सित अध्यायमें फिर और भी क्रिया वर्णन करें गे ॥ ५३ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः सद्योव्रणचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे तात्कालिक व्रण (तुरतके कटे) हुवेकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

धन्वंतरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः।विश्वामित्रात्मज मृषिं शिष्यं सुश्रुत-मन्वशात् ॥ १ ॥ नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः । नानारूपा व्रणा ये स्युस्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ वाणी बोलनेमें चतुर श्रीधन्वंतरि भगवान् विश्वामित्रके पुत्र निजशिष्य सुश्रुत ऋषिके प्रति शिक्षा देते हैं कि नाना प्रकारकी धार और नाना-प्रकारके मुख नोकवाले शस्त्रोंके नानाप्रकारके(शारीरिक) स्थानोंपर पडने या लगनेसे नानाप्रकारके रूपवाले व्रण (घाव) होते हैं उनके लक्षण वर्णन करते हैं ॥१॥ २ ॥

अयताश्चतुरस्राश्च त्र्यस्रा मंडलिनस्तथा । अर्द्धचंद्रप्रतीकाशा विशालाः कुटिलास्तथा ॥ ३ ॥ शरावनिम्नमध्याश्च यवमध्यास्तथा परे । एवंप्र-काराकृतयो भवंत्यागंतवो व्रणाः । दोषजा वा स्वयंभिन्ना नतु वैद्य-निमित्तजाः ॥ ४ ॥

आयत (लंबे) चौकोन त्रिकोण गोल तथा आधे चंद्रमाके आकार तथा विशाल (बडे फैले हुवे) कुटिल (बाँके टेढे) तथा सलाईकी भाँति बीचसे नीचे तथा बीचमें जौके समान इस प्रकार कई आकृतिवाले आगंतुक घाव होते हैं अथवा वात आदि दोषोंसे पककर स्वयं फोडा फुंसीरूप होके फूट जातेहैं और घाव हो जाते हैं इनका कारण वैद्य नहीं होता (वैद्यनिमित्तजाकी जगह घातनिमित्तजा ऐसा पाठांतर है सो श्रेष्ठ है अर्थात् इन वातादि दोषोंके पके फोडे फुन्सी आदिका कार-ण आघात अर्थात् चोट नहीं होता है) ॥ ३ ॥ ४ ॥

भिषक् व्रणाकृतिज्ञो हि न मोहमधिगच्छति ।
भृशंदुर्दर्शरूपेषु व्रणेषु विकृतेष्वपि ॥ ५ ॥

जो वैद्य व्रणों (घावों) की आकृतिको जाननेवाला होता है वह बहुत दुर्दर्शन (जो बुरेदीखें) और विकारयुक्त (बिगडे) व्रणोंमें भी मोहको प्राप्त नहीं होता अर्थात् कैसीही जखम हो उससे घबराता नहीं ॥ ५ ॥

(श्लोक १) अन्वशात् शिक्षितवानित्यर्थः ।

(श्लोक ४) नतुवैद्यनिमित्तजाइत्यत्रनतुघातनिमित्तजाइति पाठांतरं श्रेष्ठम् ।

सद्योव्रणके ६ प्रकार।

अनेकाकृतिरागंतुः सभिषग्भिः पुरातनैः। समासतो लक्षणतः षड्विधः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥ छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेवच। घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ७ ॥

आनेक आकृतिवाला आगंतुक व्रण (घाव) जो ऊपर वर्णन हुवा वह पुरातन (पुराने) वैद्योंने संक्षेपता पूर्वक लक्षणोंसे छः प्रकारका कहा है ॥६॥ १ छिन्न २ भिन्न ३ विद्ध ४ क्षत ५ पिच्चित (पिसा) ६ घृष्ट (रगडाहुवा) इस प्रकार ६ भेदहैं इनके लक्षण (जुदे जुदे) वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

छिन्नके लक्षण।

तिरश्चीन ऋजुर्वापि यो व्रणश्चाततो भवेत्।
गात्रस्य पातनं चापि छिन्नमित्युपदिश्यते ॥ ८ ॥

जो घाव तिरछा हो अथवा सीधा हो या लंबाहो अथवा कोई अंग कट गया हो उसे छिन्न कहते हैं (जो खड्ग छुरे आदिकी सीधी धारके खिंचावसे कटे वह छिन्न कहलाता है) ॥ ८ ॥

भिन्नके लक्षण।

कुंतशक्त्यृष्टिखड्गाग्रविषाणादिभिराशयः।
हतः किंचित् स्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ९ ॥

कुंत (भाला) शक्ति (बरछी) ऋष्टि (द्विधाराखड्ग अर्थात् किरच) और खड्ग (तरवार) इनके अग्रभागसे अथवा शृंग आदिके घुसनेसे जो आशय भेदा जावे और कुछ रक्तादि स्रवे उसे भिन्न कहते हैं ॥ ९ ॥

कोष्ठ और वहांके भेदनके लक्षण।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ १० ॥ तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते। मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ११ ॥ मूर्च्छाश्वासतृडाध्मानमभक्तच्छंद एव च। विण्मूत्रवातसंगश्च स्वेदास्रावोऽक्षिर-

---

(श्लोक ८) ऋजुः अवक्रः, आततः लंबः ॥

(श्लोक९) कुंतः भल्लाख्यः शस्त्रः भाला इति, शक्तिः त्रिधारो वा चतुर्धारो भल्लः बरछी इति, ऋष्टिः द्विधारः खड्गविशेषः किरचवत् (श० स्तो०) आशयः अमाद्याश्रयः ॥

क्ता ॥ १२ ॥ लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गंध्यमेव च । हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चाऽत्र मे शृणु ॥ १३ ॥

आमस्थान (अमाशय, मेदा) अग्न्याशय तथा पक्काशय मूत्राशय और रक्ताशय हृदय उंडुक (मलाशय) फप्फुस (फेफडा) इनकी कोष्ट संज्ञा है अर्थात् जिस शरीरभाग (धड) में ये रहते हैं उतनेको कोष्ट (कोठा) कहते हैं ॥ १० ॥ उक्त कोष्ठगत आशयोंके भेदन होनेसे रक्तपूर्णता होकर ज्वर दाह उत्पन्न होता है तथा मूत्रमार्ग गुदा तथा मुख एवं नासिकासे रुधिर निकलने लगता है ॥ ११ ॥ फिर मूर्च्छा श्वास तृषा अफारा अरुचि विष्ठा मूत्र अधोवायुका रुकाव और पसीना आना नेत्र लाल होना तथा मुहसे लोह केसी गंध आना और शरीरमें दुर्गंध हृदयमें शूल और पंसवाडेमें भी दरद होता है इतने उपद्रव कोष्ठभेदनमें होते हैं और इनके विशेष लक्षण (जुदे जुदे) और सुनो ॥ १२ ॥ १३ ॥

आमाशयादिगत रुधिरके लक्षण ।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयेत्पुनः । आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ १४ ॥ पक्काशयगते चापि रुजो गौरवमेव च । शीतता चाप्यधो नाभेः खेभ्यो रक्तस्य चागमः ॥ १५ ॥

यदि आमाशयमें रुधिर हो तौ रुधिरका वमन होता है और बहुत अफारा और दारुण शूल होता है ॥ १४ ॥ जो पक्काशयमें रुधिर होता है तौ वहां पीडा और भारीपन होता है तथा शरीरमें शीतता होती है और नाभिके नीचेके छिद्रों (लिंग गुदा) से रुधिर निकलता है ॥ १५ ॥

अभिन्नेप्याशयेंत्राणां खैः सूक्ष्मैरंत्रपूरणम् ।
पिहितास्ये घटे यद्वल्लक्ष्यते तस्य गौरवम् ॥ १६ ॥

यदि अंत्राशय (अंतडियोंका स्थान) नभी फटे तौ भी (आमाशयादिके फटनेका रुधिर) सूक्ष्म छीद्रोंद्वारा आंतोंमें भर जाता है जैसे मुँह बंधा घडा (पानीमें रखनेसे पानीसे भर जावे और) उसमें भारीपन होजाता है ॥ १६ ॥

विद्धलक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदंगं त्वाऽऽशयाद्विना ।
उत्तुंडितं निर्गतं वा तं द्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

पतली नोकवाले तीर आदिसे जो शरीर आशयोंसे पृथक् वींध जावे यदि वह तीर आदिकी नोक टूटकर रह जावे अथवा निकल जावे तौ इसे विद्ध कहतेहैं ॥ १७ ॥

क्षतके लक्षण ।

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमंगे यत्तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥

जो न ज्यादा छिन्न हो और अधिक भिन्न भी नहो परंतु छेदन (कटाव) और भेदन इन दोनोंके मिले झुले लक्षण हों और बांका टेढा ऊंचा नीचा या उखडा हुआसा घाव शरीर पर हो उसे क्षत कहते हैं ॥ १८ ॥

पिच्चितके लक्षण ।

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत् पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १९ ॥

चोट लगने या दबजाने तथा मिच जाने आदिसे जो शरीर कुचला जावे और चपटा पडकर फैल जावे (और यदि हाडवाला अवयव होतो) हाडसमेत कुचला जाकर उसमेंसे मज्जा और रुधिर निकलकर उसे परिप्लुत करदे तौ उसे पिच्चित कहते हैं ॥ १९ ॥

घृष्टके लक्षण ।

विगतत्वग्यदंगं हि संघर्षादन्यथापि वा ।
उषास्रावान्वितं तत्तु घृष्टमित्युपदिश्यते ॥ २० ॥

किसी खरदरे पदार्थकी रगडसे अथवा औरभाँतिसे रगडा जाकर शरीरकी त्वचा छिल जावे या घिस जावे और उसमें दाह विशेष हो और रुधिर आदि निकल आवे तौ उसे घृष्ट कहते हैं ॥ २० ॥

यत्न ।

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वाऽसृगति स्रवेत् । रक्तक्षयाद्रुजस्तत्र करोति पवनो भृशम् ॥ २१ ॥ स्नेहपानं हितं तत्र तत्सेको विहितस्तथा । वेसवारैः सकृशरैः सुस्निग्धैश्चोपनाहनम् ॥ २२ ॥ धान्यस्वेदांश्च कुर्वीत स्निग्धान्यालेपनानि च । वातघ्नौषधसिद्धैश्च स्नेहैर्बास्तिर्विधीयते ॥ २३ ॥

छेदन (कटे) हुवे तथा भेदन हुवे और विद्ध (बींधे) तथा क्षत कुरेचे हुवे घावोंसे रुधिर अधिक निकलता है तो रुधिरक्षय होनेसे वायु (प्रबल होकर) उसस्थानमें दारुण पीडा करता है ॥ २१ ॥ ऐसी अवस्थामें स्नेह (घृतादिका) पान कराना श्रेष्ठ है तथा उसस्थानको तात्काल ही (ठंढेपानीसे सेचन करना हित है) कोई

कुछ कुछ गरम सेचन ठीक बताते हैं (और बेसवार) जिसमें हलदी सरसों और धान्यादिका चूर्ण हो जैसे उबटन उसमें (कृशरा) कसार अर्थात् गोधूमचूर्णादि मिलाकर स्निग्धतायुक्त उसे पकाकर कबलिका (लूपरी) बनाकर गरम २ सेककरें ॥ २२ ॥ तथा माषादि धान्य चिकनाई युक्त पकाकर उससे सेककर पसीनादिलावें और स्निग्ध लेपकरे तथा वायुनाशक औषधोंसे सिद्ध करे स्नेहसे बस्तिकरें ॥ २३ ॥ (वक्तव्य) नाभीसे उपरके सद्योव्रणमें स्नेहपान करना और नाभिसे नीचे स्नेहबस्ति करना (ऐसा डल्हनमिश्र कहते हैं) ॥

पिच्चिते च विघृष्टे च नाति स्रवति शोणितम् । अगच्छति भृशं तस्मिन् दाहः पाकश्च जायते ॥ २४ ॥ ततोष्मणो निग्रहार्थं तथा दाहप्रपाकयोः । शीतमालेपनं कार्यं परिषेकश्च शीतलः ॥ २५ ॥

जो पिच्चित (कुचला गया) हो तथा विघृष्ट (रगडा गया) हो ऐसी अवस्थामें रुधिर अधिक नहीं निकलताहै और रुधिरके न निकलनेसे उसमें तीक्ष्ण दाह होताहै और पाक होजाता है ॥ २४ ॥ तब उसके गरमीकी रोकके लिये तथा दाह और पाककी शांतिके लिये शीतल ही लेप करना तथा शीतल ही परिषेक (ठंढे ही छिडके देना) चाहिये ॥ २५ ॥

षट् स्वेतेषु यथोक्तेषु छिन्नादिषु समासतः ।
ज्ञेयं समर्पितं सर्वं सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ २६ ॥

ऊपर कहे हुवे छः प्रकारके छिन्न आदि व्रणोंकी जो संक्षेपसे चिकित्सा कही वह तात्कालही करने योग्य समझनी चाहिये ॥ २६ ॥

अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि छिन्नानां तु चिकित्सितम् ॥ २७॥ ये व्रणा विवृताः केचिच्छिरःपार्श्वावलंबितः । तान्सीव्येद्विधिनोक्तेन बध्नीयाद्गाढमेव च ॥ २८ ॥ कर्णं स्थानादपहृतं स्थापयित्वा यथास्थितम् । सीव्येद्यथोक्तं तैलेन स्रोतश्चाप्यभितर्पयेत् ॥ २९ ॥

इससे अगाडी अब हम छिन्न अर्थात् सीधे कटे हुवेकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ॥ २७ ॥ यदि शिर या पसवाडेमें लंबा घाव हो तौ उसे विधिपूर्वक सीम कर करडा बंध बांध देवे ॥ २८ ॥ जो कान कटकर अपनी जगहसे अलग हो जावे

(श्लोक २५) ततोष्मणोनिग्रहार्थं इत्यत्र ततोष्मण इत्यार्षः ।
(श्लोक २६) समर्पितं सम्यक् आर्पितम् (इति नि० सं०)
(श्लोक २७) अत्र तु शब्दः निर्धारणार्थे ।

तौ उसी जगह जोडकर शीघ्र सीम देना चाहिये और कानके भीतर तैल डाल देना चाहिये ॥ २९ ॥

कृकाटिकांते छिन्ने तु गच्छेत्यपि समीरणे । सम्यग्निवेश्य बध्नीयात्सीव्येच्चाऽपि निरंतरम् ॥ ३० ॥ आजेन सर्पिषा चैव परिषेकं तु कारयेत् । उत्तानोऽन्नं समश्नीयाच्छयीत च सुयंत्रितः ॥ ३१ ॥

कृकाटिका (ग्रीवाका भाग) तक कट जावे और उधरसे वायु निकलने लगे तब भी उसे ठीक स्थित करके बांध देवे और टांके लगाकर जोड देवे ॥ ३० ॥ और बकरीके घृतसे सींचता रहे और ग्रीवा नीची किये हुये ही कुछ अन्न (पतलासा) भोजन करें तथा यंत्रसे बंधे और जिसभांति वह स्थान हिले नहीं उसी भांति सोवे ॥ ३१ ॥

शाखासु पतितांस्तिर्यक् प्रहारान्विवृतान्भृशम् । सीव्येत्सम्यग्निवेश्याऽऽशु संध्यस्थीन्यनुपूर्वशः ॥ ३२ ॥ बध्वा वेल्लितकेनाशु ततस्तैलेन सेचयेत् । चर्मणा गोफणाबंधः कार्यो यो वा हितो भवेत् ॥ ३३ ॥

हाथ वा पावोंमेंसे किसीमें तिरछे प्रहारसे चौडे मुखका घाव हो जावे तौ उसे हड्डी संधी जहांकी तहाँ ठीक जोडकर यथायोग्य सीम देना चाहिये ॥ ३२ ॥ और वेल्लित बंधसे शीघ्र बांधकर उस पर तैल सींचता रहे और (जो संधीकी जगह कोहनी आदि पर घाव होतौ) चर्मका गोफणा बंध लगाकर बांध दे अथवा जहां जैसा बंध उचित हो वहाँ वैसा बंध लगाकर बाँध दे ॥ ३३ ॥

पृष्ठे व्रणो यस्य भवेदुत्तानं शाययेत्तु तम् ।
अतोऽन्यथा चोरसिजे शाययेत्पुरुषं व्रणे ॥ ३४ ॥

जिसकी पीठमें घाव हो जावे उसे औंधा सुलाना चाहिये और जिसके छातीमें घाव होवे तो उस मनुष्यको इसके विपरीत चित्त सुलावे ॥ ३४ ॥

छिन्नांन्निःशेषतः शाखान्दग्ध्वा तैलेन बुद्धिमान् ।
बध्नीयात्कोशबंधेन प्राप्तं कार्यं च रोपणम् ॥ ३५ ॥

यदि हाथ या पांव कोई निःशेष कटकर गिर जावें तौ बुद्धिमान वैद्य गरम तैलसे उसे दग्ध करके फिर कोशबंधसे बांध दे और यथाप्राप्त रोपण क्रिया करें ॥३५॥

रोपण तैल ।

पद्मकं चंदनं रोध्रमुत्पलानि प्रियंगवः । हरिद्रा मधुकं चैव पयः स्यादत्र

(श्लोक ३० । ३१) कृकाटिकांते ग्रीवायाः पश्चात् कृकाटिकापर्यंते । उत्ताने अधोमुखः ।
(श्लोक ३६) प्रियंगव इत्यत्र बहुत्वेन त्रिविधाः प्रियंगवो बोध्याः ।

चाष्टमम् । तैलमेभिर्विपक्वं तु प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ ३६ ॥ चंदनं कर्कटाख्या च सहे मांस्याह्वयामृते । हरेणवो मृणालं च त्रिफलापद्मकोत्पलम् । ॥ ३७ ॥ त्रयोदशांगं त्रिवृतमेतद्वा पयसान्वितम् । तैलं विपक्वं सेकार्थे हितं त व्रणरोपणे ॥ ३८ ॥

पद्माख चंदन लोध और कमल और प्रियंगु (गांदे) हलदी मुलेठी और आठवाँ दूध इनमें पकाया हुवा तैल घावके भरनेमें प्रधान है ॥ ३६ ॥ अथवा चंदन काकडासिंगी सहे (क्षुद्रसहा महासहा अर्थात् मुद्गपर्णी माषपर्णी) (मांस्याह्वया जटामांसी) अमृता (गिलोय) हरेणु (कलायभेद धान्य) और मृणाल (उशीर) त्रिफला पद्माख और उत्पल (कमल) और त्रिवृत (निशोथ) और दूध इनसे पका हुआ तैल सेचनके लिये भी हित है और व्रणके रोपण (घाव भरने) में भी श्रेष्ठ है (त्रिवृत के कई अर्थ इस प्रकार करते हैं कि घृत वसा मज्जा इन तीनोंसे वृत अर्थात् युक्त ऐसा तैल) यह त्रयादशांग नाम तैल है (दुग्धकी मात्रा यहाँ चतुर्गुण लेनी) ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

भिन्नकी चिकित्सा, निकले हुवे नेत्रको फिर चढाना।

अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भिन्नानां तु चिकित्सितम् ॥ ३९ ॥ भिन्नं नेत्रमकर्मण्यमभिन्नं लंबते तु यत् । तन्निवेश्यं यथास्थानमव्याविद्धं शिरं शनैः ॥ ४० ॥ पीडयेत्पाणिना सम्यक् पद्मपत्रांतरेण तु । ततोस्य तर्पणं कार्यं नस्यं चानेन सर्पिषा ॥ ४१ ॥ आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च । जीवकर्षभकौ चैव पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् । सर्वनेत्राभिघाते तु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ४२ ॥

अब यहांसे अगाडी भिन्न हुवे की चिकित्सा वर्णन करते हैं ॥ ३९ ॥ यदि नेत्र भेदन होजावे तौ वह अकर्मण्य (असाध्य) है और जो विना भेदन हुवा लटक-

(श्लोक ३७) सहे इति क्षुद्रसहामहासहा, मांस्याह्वयाभृते इत्यत्र मांस्याह्वया मांसी अमृतागुडूची द्वयोः समाहारे द्विवचनम्, हरेणवो धान्यविशेषकलायभेदाः, मृणालं उशीरः । डल्लनस्तु सहेमांस्याह्वया माषपर्णी मुद्गपर्णी इति ब्रूते ॥

(श्लोक ३८) त्रिवृतं इति त्रिभिर्घृतवसामज्जाभिवृतं युक्तं तैलं त्रयोदशांगं स्यात् । क्षीरेणचतुर्गुणेनपक्वमिति निबंधसंग्रहः ॥

(श्लोक ४०) अकर्मण्यं असाध्यं, अव्याविद्धशिरं अनाकुलितशिरम् (इति नि० सं०)

(श्लोक ४२) क्षीरपात्रं क्षीराढकं दत्वा विपचेत् (इति डल्लनः) घृतं प्रस्थम् ॥

जावे तो उसे फिर अपने स्थानमें बैठाकर सीधी शिराके अनुसार न बींधा हो तो शनैः शनैः (धीरे धीरे) हाथसे दबाकर कमलका पत्र ऊपर लगाकर बाँधदे और नीचे लिखे घृतसे उसकी तृप्ति करे और उसी घृतकी नासभी देवे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ बकरीका घृत जिसमें एक आढक दूध डालकर और मुलेठी कमलजीवक ऋषभक पीसकर उस घृतको पकाले सबप्रकार नेत्रके अभिघातमें यह घृत श्रेष्ठहै ॥ ४२ ॥

उदरभिन्नकी चिकित्सा ।

उदरान्मेदसो वर्तिर्निर्गता यस्य देहिनः । कषायभस्ममृत्कीर्णां बध्वां सूत्रेण सूत्रवित् ॥ ४३ ॥ अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिंद्यान्मधु समायुतम् । बध्वा व्रणं सुजीर्णेन्ने सर्पिषः पानमिष्यते ॥ ४४ ॥ स्नेहपानादृते चापि पयःपानं विधीयते । शर्करामधुयष्टिभ्यां लाक्षया वा श्वदंष्ट्रया । चित्रासमन्वितंचैव रुजादाहविनाशनम् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यके पेटमें भेदन होकर मेदकी बत्तीसी बाहर निकलआवे उसे कसीली भस्म और मिट्टी लगाकर सूत्रका ज्ञानी वैद्य सूत्रसे बांधदे ॥ ४३ ॥ फिर अग्निमें लालकिये हुये शस्त्रसे काटकर उसपर शहत लगाकर उसके घावको बांधदे और पेटके भीतरके अन्न पच जानेपर घृत पिलावे ॥ ४४ ॥ घृतपानके सिवाय दूधमें शर्करा मुलेठी मिलाकर या लाख अथवा गोखरू मिलाकर या चित्रा (अरंडबीज) युक्त करके पिलावे इससे पीडा और दाह शांत होता है ॥ ४५ ॥

आटोपो मरणं वा स्याच्छूलो वाऽच्छिद्यमानया ।
मेदो ग्रंथौ च यत्तैलं वक्ष्यते तच्च योजयेत् ॥ ४६ ॥

यदि वह मेदकी वर्ति न भी काटें तो उससे अफारा और शूल होजाता है अथवा मृत्युभी हो जावे इससे यदि नहीं काटे जानेपर मेदकी ग्रंथीपर जो तैल अगाडी कहेंगे उस तैलकी योजना करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

शल्ययुक्तके उपद्रव ।

त्वचोतीत्य शिरादीनि भित्वा वा परिहृत्य वा । कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ ४७ ॥ तत्रांतर्लोहितं पांडुं शीतपादकराननम् । शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं च विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

जो शल्य त्वचाके भीतर जाकर सिराआदिको वेधकर या बचाकर कोष्ठके अंतर्गतहो तो वह उक्तउपद्रवोंको करता है अर्थात् पूर्वोक्त सूत्रस्थानोक्त आटोप आदि

(श्लो० ४३) सूत्रवित् शास्त्रवित् ।

(श्लोक ४५) चित्रा एरंडः दंतीत्यन्ये (इति नि० सं०)

उपद्रवोंको करता है ॥ ४७ ॥ जिसमें भीतर रुधिर इकट्ठा होजावे पांडु हो हाथ पांव शीतल हो जावें ठंढे श्वास लेने लगे नेत्र लाल होजावें और पेट फूल जावे ऐसे शल्यरोगीको त्याग देवे ॥ ४८ ॥

आमाशय और पक्काशयगत रुधिरमें यत्न ।

आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ।
पक्काशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ४९ ॥

यदि आमाशयमें रुधिर हो तो वमन कराना हितहै और जो पक्काशयमें हो तो निःसंदेह विरेचन कराना चाहिये ॥ ४९ ॥

आस्थापनं च निःस्नेहं कार्यमुष्णैर्विशोधनैः । यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च ॥ ५० ॥ भुंजीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैंधवसंयुताम् । अतिनिस्रुतरक्तो वा भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक् ॥ ५१ ॥

तथा स्नेहरहित आस्थापनबस्ति करना चाहिये जिसमें उष्णद्रव्य और शोधन द्रव्यहो–तथा जौ कोल कुलथीके रस चिकनाई रहितके संग अन्नखावें तथा सैंधवयुक्त यवागू पीवे और जिसका कोष्ठभेदन हुआहो अतिरुधिर बहाहो वह रुधिरका पान करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

भिन्नकोष्ठका साध्यत्व ।

स्वमार्गप्रतिपन्नास्तु यस्य विण्मूत्रमारुताः ।
व्युपद्रवः स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवति मानवः ॥ ५२ ॥

जिस मनुष्यके विष्ठा मूत्र और वायु (श्वास और अधोवायु) अपने अपने मार्गसे ठीक २ प्रवर्त होते रहें और कोई तीक्ष्ण उपद्रव भी न हो तो कोष्ठके भेदन होजाने पर भी मनुष्य जी सकता है ॥ ५२ ॥

अंत्रप्रवेशन ।

अभिन्नमंत्रं निष्क्रांतं प्रवेश्यं नान्यथा भवेत् । पिपीलिकाशिरोग्रस्तं तदप्येके वदन्ति तु ॥ ५३ ॥ प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांशुभिः । प्रवेशयेत्कृतनखो घृतेनाक्तं शनैः शनैः ॥ ५४ ॥ प्रवेशयेत्क्षीरसिक्तं शुष्कमंत्रं घृतप्लुतम् । अंगुल्याभिमृशेत्कंठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥ ५५ ॥

(श्लोक ५३) अभिन्नं अंत्रं प्रवेश्यम् । भिन्नमपिमतांतरेण प्रवेश्यमितिनिर्दिशन्नाह । पिपीलिकाशिरोग्रस्तमित्यादि तदपि भिन्नमपि अंत्रं पिपीलिकावदनसंदंशसहितं प्रवेश्यमिति (नि० स०)॥

जो आंतें कटी न हो और बाहर निकल आई हो वह भीतर प्रवेश करने योग्य होती हैं और जो कटगई हो वह फिर भीतर प्रवेश करने योग्य नहीं होती (अर्थात् जिसकी आंतें कट जावे वह नहीं जी सकता) परन्तु कई ऐसा कहते हैं कि कटी हुई आंतें भी शीघ्र जोड मिलाकर उस पर चेंटीसे कटा कर चेंटीके शिर सहित भीतर प्रवेश कर देनेसे आंतें जुड जाती हैं और मनुष्य जीसकता है (चेंटीके डंककी पकड टांकोंका काम देती है और टांके आँतोंमें काम नहीं देते. देखो ! क्षतोदरकी चिकित्सामें भी कटी आंतें चेंटीके डंकसे जोडना लिखा है) ॥ ५३ ॥ जिनके रुधिर और धूलसे सनी हुई आंतें हो तो दूधसे धोकर घृत चुपडकर न खून कटाये हुये वैद्य धीरे धीरे भीतरको प्रवेश करदे ॥ ५४ ॥ यदि आंतें सूख गई होतो उसे दूधसे सेचन करके घृत चुपडकर भीतर प्रवेश करना चाहिये और आंतें भीतर प्रवेश करते समय कंठको अंगुलिसे मलते रहे और पानीसे उद्वेजन करें (छींटें देवे)॥५५॥

हस्तपादेषु संगृह्य समुत्थप्य महाबलाः । भवत्यंतःप्रवेशस्तु यथा निर्द्धुनुयुस्तथा ॥५६ ॥ यथांत्राणि विशंत्यंतः स्वां कलां पीडयंति च ॥५७॥

अथवा बलवान् पुरुष उसके हाथ पांव पकडकर उठाले और हिलावें ज्योंही हिलावेंगे त्योंही आंतें भीतरको प्रवेश होजावेगी ॥ ५६ ॥ जब निकली हुई आंतें भीतर प्रविष्ट होती हैं तब अपनीकला (मलधरा) को पीडित करतीहैं॥५७॥

आतोंका यथास्थान स्थापन करना ।

व्रणाल्पत्वाद्बहुत्वाद्वा दुष्प्रप्रवेशं भवेत्तु यत् । तदा पाट्य प्रमाणेन भिषगंत्रं प्रवेशयेत् ॥ ५८ ॥ यथास्थानं निविष्टे च व्रणं सीव्येदतंद्रितः । स्थानादपेतमादत्ते प्राणान् गुंफितमेव वा ॥ ५९ ॥ वेष्टयित्वा तु पट्टे न घृतं सेकं प्रदापयेत् । घृतं पिबेत्सुखोष्णं च चित्रातैलसमन्वितम् ॥ ६० ॥

जब घाव बहुत छोटा (तंग) होता है और आंतें उसमेंसे बाहर निकल आती हैं तो फिर भीतरको प्रवेश होनेमें दुःख होता है और बडी कठिनाई पडती है तथा जब घाव बहु बडा होता है तो भीतर प्रविष्ट आंतें झट फिर बाहर निकल पडती हैं इन दोनों अवस्थाओंमें दिक्कत होती है. तब यदि घाव तंग हो तो उसे चीरकर ठीक प्रमाणका करले (जिसमें सहजतासे आँतें प्रवेश होजावे) फिर आंतोंका प्रवेशकरें और जो घाव बडा हो तौ पहले थोडा सीमलें फिर आंतें प्रवेश करें ॥ ५८ ॥

(श्लो० ५८) व्रणाल्पत्वात्, व्रणसूक्ष्मत्वात् । बहुत्वत् व्रणस्य बहुलत्वात् व्रणोल्पत्वात्पाट्य बहुलत्वात् सीव्य इति डल्लनः ॥

(श्लो० ६०) घृतसेकं इति घृतेन कोष्णेन सिंचेदिति ॥

जब आंतें ठीक २ अपने ठिकाने बैठजावे तब घावको सीमकर बंद करदें यदि आंतें ठीक अपनी जगह नहीं बैठे या उसमें उलझाव होकर गुच्छा पडजावे तो उससे व्रणी पुरुष मरजाता है इससे ठीक २ आंतें प्रवेश करना चाहिये ॥ ५९ ॥ फिर ऊपरसे पट्टी बाँधकर घृत सींचते रहें और थोडा गरम घृत अरंडके तैलमें मिलाकर पिलावें ॥ ६० ॥

मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये ।
ततस्तैलमिदं कुर्य्याद्रोपणार्थं चिकित्सकः ॥ ६१ ॥

उपरोक्त अरंड तैलयुक्त घृत इसलिये पीवें कि, इससे पुरीष मृदु होजाता है और अधोवायु भी नीचेको प्रवृत्त होता है इसके अनंतर रोपणके अर्थ वैद्य नीचे लिखा हुवा तैल उपयुक्त करें ॥ ६१ ॥

त्वचोश्वकर्णधवयोर्मोचकीमेषशृंगयोः । शल्लक्यर्जुनयोश्चापि विदार्याः क्षीरिणां तथा ॥ ६२ ॥ बलामूलानि चाहृत्य तैलमेतैर्विपाचयेत् । व्रणं संरोपयेत्तेन वर्षमात्रं यतेत च ॥ ६३ ॥

अश्वकर्ण (जिसके पीपलकेसे पत्ते होते हैं यह पूर्वमें होता है) धव (धौ) मोच (शाल्मली) मेषशृंगी (मेढासिंगी) शल्लकी (शाल) अर्जुन (कुहा) विदारीकंद और क्षीरवृक्ष (दूधवाले वृक्ष गूलर वट आदि) इन सबकी छाल और खरेंटीकी जड लेकर इन्हें तैलमें पकावे इस तैलसे उपरोक्त व्रणका रोपण करें और एक वर्षतक यत्नपूर्वक पथ्यसे रहे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अंडकोशभिन्नका यत्न ।

पादौ निरस्तमुष्कस्य जलेन प्रोक्ष्य चक्षुषी । प्रवेश्य तुन्नसेवन्या मुष्कौ सीव्येत्ततः परम् ॥ ६४ ॥ कार्यो गोफणिकाबंधः कट्यामावेश्य यंत्रकम् । न कुर्य्यात्स्नेहसेकं च तेन क्लिद्यति हि व्रणः ॥ ६५ ॥ कालानुसार्या गुर्वेलाजातीचंदनपद्मकैः। शिलादार्व्यमृतातुत्थैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ॥ ६६ ॥

जिसके अंडकोशोंमें घाव होकर वे बाहर निकल आवें उसके पावों और नेत्रोंको जलसे धोकर अंडगोलकोंको भीतर प्रवेश करके ऊपरसे तुन्नसेवनी सीमनसे सीमदें॥६४॥फिर गोफणा बंधसे बांध दे और कमरमें यंत्र (पट्टा) लगा दें अंडकोशके घावपर चिकनाईका सेचन नहीं करें क्योंकि चिकनाईसे यहाँका व्रण क्लेदित

(श्लो० ६१) शकृतो पुरीषस्य मृदुक्रियार्थं वायोश्चाधःप्रवृत्तये चित्रातैलान्वितं सुखोष्णघृतं पिबेदिति पूर्वेणान्वयः । रोपणार्थं तैलं वक्ष्यमाणं बोध्यम् ।

(गीला लजलजा) रहता है ॥ ६५ ॥ कालानुसारी (तगर) अगर इलायची जाती (जातिपत्री) चंदन पद्माखशिल (मैनसिल) देवदारु अमृता (गिलोय) तुत्थ (नीलाथोथा) इनसे तैल पकाकर उक्त व्रणका रोपण करें ॥ ६६ ॥

शिरसोपहृते शल्ये बालवर्तिं प्रवेशयेत् । बालवर्त्यामदत्तायां मस्तुलुंगं व्रणात्स्रवेत् ॥ ६७ ॥ हन्यादेनं ततो वायुस्तस्मादेवमुपाचरेत् । व्रणे रोहति चैकैकं शनैर्बालमपक्षिपेत् ॥ ६८ ॥

यदि शिरमेंसे शल्य निकाला जावे तो उस घावमें बालोंकी बत्ती बनाकर शीघ्र प्रवेश करदेवे क्योंकि जो बालोंकी बत्ती नहीं भरी जावे तो उस घावमेंसे मस्तुलुंग (मस्तकमज्जा) निकल जाती है ॥ ६७ ॥ और फिर वहाँ वायु भरकर उस मनुष्यको मृत्युकारक होती है इस हेतु उपरोक्त ही उपाय करना चाहिये और फिर ज्यों ज्यों घाव भरने लगे त्यों त्यों एक २ बाल धीरे २ निकालते जावें ॥ ६८ ॥

गात्रादपहृतेन्यस्मात्स्नेहवर्तिं प्रवेशयेत् । कृते निःशोणिते चापि विधिः सद्यःक्षते हितः ॥ ६९ ॥ दूरावगाढाः सूक्ष्मास्युर्ये व्रणास्तान्विशोणितान् । कृत्वा सूक्ष्मेण नेत्रेण चक्रतैलेन तर्पयेत् ॥ ७० ॥

शिरके सिवाय और किसी अंगसे जो शल्य निकाला जावे तो उस घावमें चिकनाईकी भरी बत्ती प्रवेश करनी चाहिये और जब घाव रुधिर रहित हो तब सद्यक्षतमें कही हुई विधि करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ जिन व्रणोंमें दूर और गहरा शल्य घुसा हो उन व्रणोंको रुधिरसे रहित करके "सूक्ष्म नेत्र नामक" यंत्रसे चक्र तैल (ताजाकोल्हूका निकला तिलतैल) से तर्पण करे (नेत्र नामक व्रण धोनेका यंत्र आठ अंगुल लंबा मूंगके बराबर आकारवाला होता है) ॥ ७० ॥

समंगां रजनीं पद्मां त्रिवर्गं तुत्थमेवच । विडंगं कटुकां पथ्यां गुडूचीं सकरंजिकाम् । संहृत्य विपचेत्काले तैलं रोपणमुत्तमम् ॥ ७१ ॥

समंगा (मंजीठ) हलदी पद्मा (भारंगी) त्रिवर्ग (त्रिफला) लीलाथोथा वायविडंग कुटकी और हरीतकी गिलोय और करंज इन्हें लेकर तैल पकावे यह तैल गहरे घाव भरनेमें उत्तम है ॥ ७१ ॥

(श्लो० ७०) नेत्रेण व्रणप्रक्षालनयंत्रेण तच्च अष्टांगुलं मुद्गतुल्याकारकम् (इति डल्लनः)

(श्लो० ७१) पद्मा भार्गी त्रिवर्गं त्रिफला, त्रिफलाग्रहणेनैव पथ्यायां लब्धायां पुनः पथ्याग्रहणं भागद्वयप्रक्षेपार्थम् ।

तालीशं पद्मकं मांसी हरेण्वगुरु चंदनम् । हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः । पक्वं सद्योव्रणेषूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ॥ ७२ ॥

तालीस पत्र पद्माख जटामांसी हरेणु अगर चंदन दोनों हलदी कमलके बीज और उसीर (खस) और मुलेठी इनसे पका तैल सद्योव्रणके रोपणमें बहुत उत्तम कहाहै ॥ ७२ ॥

क्षते क्षतीविधिः कार्यः पिच्चिते भग्नवद्विधिः ।
घृष्टे रुजो निगृह्याशु चूर्णैरुपचरेद्व्रणम् ॥ ७३ ॥

क्षतमें तौ क्षतहीकी विधि करनी चाहिये और पिच्चितमें भग्नके समान विधि करें तथा घृष्टमें पीडाकी शीघ्र शांति (पूर्वोक्त शीतल सेचनादि द्वारा) करके व्रणपर (खदिरादिका) चूर्ण बुरकावें ॥ ७३ ॥

विश्लिष्टदेहं पतितं मथितं हतमेव च । वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाशनम् ॥ ७४ ॥ अयमेव विधिः कार्यः क्षीणे मर्महते तथा ॥ ७५ ॥ रोपणे सपरिषेके पाने च व्रणिनां सदा । तैलं घृतं वा संयोज्यं शरीरर्तूनवेक्ष्य हि ॥ ७६ ॥

जिसका शरीर विश्लिष्ट (चूर) होगया हो जो वृक्षादिसे पडगया हो जो विलोडाला सा होगया हो जो मुक्के आदि भीतरी मारसे मारा हुवा हो उन्हें तैलसे भरे हुवे द्रोणपात्र (टप या कठरे या कडाह आदि) में बिठाया रक्खें और मांसका रस पिलावें ॥ ७४ ॥ और क्षीण मनुष्यको तथा जिसके मर्ममें चोट (भीतर) लगी हों उसे भी इसी विधिसे उपचार करे (अर्थात् तैल भरे पात्रमें बिठावें) ॥ ७५ ॥ रोपण (घावभरनेमें) परिषेक (सेचन करनेमें) पान करानेमें व्रणी मनुष्योंको शरीर और ऋतु विचारकर सदा तैल अथवा घृत ही उपयोग करना चाहिये ॥ ७६ ॥

सद्योव्रणका यत्न ।

घृतानि यानि वक्ष्यामि यत्नतः पित्तविद्रधौ । सद्योव्रणेषु देयानि तानि वैद्येन जानता ॥ ७७ ॥ सद्यःक्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् । सर्पिषा नातिशीतेन बलातैलेन वा पुनः ॥ ७८ ॥

जो घृत पित्तविद्रधीकी चिकित्सामें अगाडी कहे जावेंगे वे सम्पूर्णही जानकारको सद्यव्रणोंको यत्नपूर्वक लगादेने (उपयोग करने) चाहिये ॥ ७७ ॥ तात्काल-

(श्लो० ७४) विश्लिष्टदेहं इति नमनाकर्षणारोपणयानपतनवधसाहसादिभिः । स्वस्थानच्युतावयवं, पतितं वृक्षाश्वादिभ्यः, मथितं विलोडितं, हतं वेगवता द्रव्येण दंडमुष्ट्यादिभिः (इतिडल्लनः) ।

का क्षत व्रणशूल युक्त होतो उसे निवाये घृतसे अथवा बला (खिरेंटी) के तैलसे सेचनकरना चाहिये ॥ ७८ ॥

समंगां रजनीं पद्मां पथ्यां तुत्थं सुवर्चलाम् । पद्मकं रोध्रमधुकं विडंगानि हरेणुकम् ॥ ७९ ॥ तालीसपत्रं नलदं चंदनं पद्मकेशरम् । मंजिष्ठोशीरलाक्षाश्वक्षीरिणां चापि पल्लवान् ॥ ८० ॥ प्रियालबीजं तिंदुक्यास्तरुणानि फलानि च । यथालाभं समाहृत्य तैलेंमोभि र्विपाचयेत् ॥ ८१ ॥ सद्यो व्रणानां सर्वेषामदुष्टानां तु रोपणम् । कषायमधुराः शीताः क्रियाः स्निग्धाश्च योजयेत् । सद्योव्रणानां सप्ताहं पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ८२ ॥

समंगा (लज्जालू) हलदी भारंगी हरडे लीलाथोथा ब्राह्मी पद्माख लोध मुलेठी वायविडंग हरेणुका ॥ ७९ ॥ तालीसपत्र नलद (मांसी) चंदन कमलका केसर मँजीठ उशीर (खस) लाख और दूधवाले वृक्षों (उदुंबर आदि) के पत्ते ॥ ८० ॥ प्रियालबीज (चिरोंजी) तिंदुकी (तेंदूके) पक्के फल इनमेंसे जो जो मिलसकें उन्हे लेकर तैलपकावें ॥ ८१ ॥ यह तैल दोषरहित सद्योव्रणोंको रोपण करता है परंतु पहले ७ दिनतक सद्योव्रणोंमें मधुर शीतल कषाय और स्निग्ध क्रिया करें फिर यह उपरोक्त तैल उपयोग करना चाहिये ॥ ८२ ॥

दुष्टव्रणेषु कर्त्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । विशोषणं तथाहारः शोणितस्य च मोक्षणम् ॥ ८३ ॥ कषायं राजवृक्षादौ सुरसादौ च धावनम् । तयोरेव कषायेण तैलं शोधनमिष्यते ॥ ८४ ॥ क्षारकल्पेन वा तैलं क्षारद्रव्येण साधितम् ॥ ८५ ॥

दुष्टव्रण (दूषित घाव) हो तो ऊपर और नीचेसे (वमन विरेचनादि द्वारा) शोधन करना चाहिये और आहारभी शोषण करनेवाले देवें और (फस्ते आदिसे) रुधिर निकालना चाहिये ॥ ८३ ॥ राजवृक्ष (किरमाला) आदिके क्वाथसे अथवा सुरसा आदिके क्वाथसे धोना और इन्हीं क्वाथोंसे साधन किये तैलसे शोधन करना चाहिये ॥ ८४ ॥ अथवा क्षार कल्पके अनुसार क्षार द्रव्योंसे साधित तैलका उपयोग करें (जैसे क्षारपाक विधिमें कहचुके हैं कि एकप्रस्थ क्षारभस्ममें ६ प्रस्थ जल मिलाक्षार बना उससे चौगुना तैल लेकर सिद्ध करें) ॥ ८५ ॥

द्रवंती चिरबिल्वश्च दंती चित्रकमेव च । पृथ्वीका निंबपत्राणि कासीसं

(श्लो० ८६) अत्रदंती शब्देन उदुंबरपर्णी ग्राह्या,पृथ्वीका स्थूलजीरकः । सुवहा गोपदी, शुकाख्या चर्मकारवटः (इतिडल्हन): ।

तुत्थमेव च ॥ ८६ ॥ त्रिवृत्तेजीवती नीली हरिद्रे सैंधवं तिलाः। भूमीकदंबः सुवहा शुकाख्या लांगलाह्वया ॥ ८७ ॥ नैपाली जालिनी चैव मदयंती मृगादनी। सुधामूर्वार्ककीटारिहरितालकरंजिका ॥ ८८ ॥ यथोपपत्ति कर्त्तव्यं तैलमेभिस्तुशोधनम् ॥ ८९ ॥

द्रवंती करंज दंती चित्रक कलोंजी निंबके पत्ते कसीस लीलाथोथा ॥ ८६ ॥ निशोथ तेजवती नीलनी दोनों हलदी सैंधानमक तिल भूमिकदंब (मुंडनिका) सुवहा (गोपदी) शुकाख्या (चमरुवावट) लांगलाह्वया (गणिकारिका) ॥ ८७ ॥ नैपाली (मनःशिला) जालिनी (कोशातकी) मदयंती (मेजिका) मृगादनी (इन्द्रायण) सुधा (सेहुंड) मूर्वा आककीटारि (विडंग) हरताल करंजिका (नक्तमाल) इनमेंसे जो २ मिलसकें उनमें तैल पकावे यह तैल शोधन करता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

घृतं वा यदिवाप्राप्तं कल्कां संशोधनास्तथा । सैंधवं त्रिवृदेरंडपत्रकल्कस्तु वातिके ॥ ९० ॥ त्रिवृद्धरिद्रामधुककल्कः पैत्ते तिलैर्युतः । कफजे तिलतेजाह्वादंतीस्वर्जिकचित्रकाः ॥ ९१ ॥ दुष्टव्रणविधिः कार्यो मेह कुष्ठव्रणेष्वपि ॥ ९२ ॥

अथवा शोधन घृतका उपयोग करे अथवा शोधन कल्कोंका उपयोग करे जैसे वातदुष्ट व्रणोंमें सैंधानमक निसोथ और अरंडके पत्ते इनका कल्क हित है ॥ ९० ॥ तथा पित्त दुष्ट व्रणोंमें निसोथ हलदी और मुलेटी का कल्क तिल सहित श्रेष्ठ है और कफसे दूषित व्रणोंमें तिल तेजाह्वा (मालकांगनी) दंती सज्जी और अरंडोली इनका कल्क बनाकर उपयोग करे ॥ ९१ ॥ प्रमेहजनित व्रणोंमें और कुष्ठजव्रणोंमें भी दुष्ट व्रणकी ही विधि करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

षड्विधः प्राक् प्रदिष्टो यः सद्योव्रणविनिश्चयः । नातः शक्यं परं वक्तुमपि निश्चितवादिभिः ॥ ९३ ॥ उपसर्गैर्निपातैश्च तं तु पंडितमानिनः । केचित्संयोज्य भाषंते बहुधा मानगर्विताः ॥ ९४ ॥ बहुतद्भाषितं तेषां षट्स्वेष्वेवावतिष्ठते । विशेषा इव सामान्ये षट्त्वं तु परमं मतम् ॥ ९५ ॥

इति चिकित्सास्थाने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

पहले जो छः प्रकारके सद्योव्रण (छिन्न भिन्न आदि) निश्चय किये हैं इनसे अधिक भेद कोई भी विद्वान् नहीं कहसकते ॥ ९३ ॥ और कोई २ पंडिताईका अभिमान रखनेवाले और मनमें गर्वित हुवे लोग उपसर्ग (कुष्ठादिकी छूवा छूतके उपद्रव) जनित अथवा लूतादि जनित) तथा निपात (मपतनादि जनित) इत्यादि को मिलाकर बहुत प्रकारके भेद मान लेते हैं ॥ ९४ ॥ परंतु उनके बहुत भेद मानने युक्त छहही भेदोंके अंतर्गत पाये जाते हैं जैसे सामान्यमें बहुतसे विशेष भेद रहा करते हैं इसी प्रकार इन सद्योव्रणके भी छही भेद मुख्य हैं और अधिक इन्हीं छके अंतर्गत हैं (सामान्य जैसे फल अन्न इसमें फलके कथनसे आम्र जंबू आदि विशेष सभी आगये ऐसे ही अन्नके कथनसे व्रीहीयवादि सब उसीके अंतर्गत हैं) ॥ ९५ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सान्वयभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने
सद्योव्रणचिकित्सितं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो भग्नानां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भग्न (टूटे) हुवेकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

भग्नकी कृच्छ्रसाध्यता ।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जंतोर्वातात्मकस्य च ।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ १ ॥

भग्न (अस्थि अंग आदि टूटे हुवे) के भेदपूर्वक निदान पहले निदानस्थानके पंद्रहवें अध्यायमें वर्णन कर चुके हैं अब यहां उसकी चिकित्सा कहते हैं जिसमें प्रथम साध्यासाध्य वर्णन करते हैं जो अल्प भोजन करताहो–पथ्यसे नहीं रहे अथवा वायुप्रधान हो और उपद्रव युक्त हो उस मनुष्यका टूटा हुवा शरीर कठिनतासे सिद्ध होता है ॥ १ ॥

भग्नरोगीका अपथ्य और पथ्य ।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् । व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ २ ॥ शालिर्मांसरसः क्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः । बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता ॥ ३ ॥

(श्लो० १) अल्पाहारादीनां भग्नः कृच्छ्रेण सिध्यति न सिध्यति वा ॥

जिसका कोई अवयव टूटगया हो उस मनुष्यको लवण कटु (चरपरा) क्षार (खारी) और खट्टे पदार्थ नहीं खाने चाहिये तथा मैथुन और धूप गरमी एवं परिश्रम इन्हेंभी त्याग देना चाहिये और रूक्ष अन्न खानाभी उचित नहीं ॥ २ ॥ वैद्यको चाहिये कि भग्न मनुष्यको शाली (चावल) मांसका रस दूध घृत मुद्गादिका यूष सतीनज मटरका यूष इनके अतिरिक्त बृंहण अन्नपान आहारके लिये देवें ॥ ३॥

भग्नपर बंधन और आलेपन ।

मधूकोदुंबराश्वत्थ पलाशककुभत्वचः। वंशसर्जवटानां वा कुशार्थमुपसंहरेत् ॥ ४ ॥ आलेपनार्थं मंजिष्ठा मधुकं रक्तचंदनम्। शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टंच संहरेत् ॥ ५ ॥

मधूक (महुवा) गूलर पीपल ढाक कुहा इनकी छाल तथा बांस सर्ज (रालका वृक्ष) वड इनकी छाल भग्नस्थानके बांधनेके अर्थ लेना चाहिये ॥ ४ ॥ लेपन के अर्थ ये वस्तु लेनी चाहिये मजीठ मुलेठी लालचंदन सौवारके धोये घृतमें मिला कर चावलों की पिट्ठी ॥ ५ ॥

बंधकी अवधि ।

सप्ताहादथ सप्ताहात् सौम्ये ष्वृतुषु बंधनम् । साधारणेषु कर्तव्यं पंचमे पंचमेहनि ॥ ६ ॥ आग्नेयेषु त्र्यहात्कुर्य्याद्भग्नदोषवशेन वा । तत्रातिशिथिले बद्धे संधिस्थैर्यं न जायते ॥ ७ ॥ गाढेनापि त्वगादीनां शोफो रुक्पाक एव च। तस्मात्साधारणं बंधं भग्ने शंसंति तद्विदः ॥ ८ ॥

यदि शीत ऋतु हो तो बंधको सात सात दिनमें खोल२ के बदलें और साधारण ऋतु हो तो पांच पांच दिनमें खोले ॥६॥ और गरमीकी ऋतुहो तो तीन तीन दिनमें ही बंधको खोलकर बदलते रहें अथवा जैसे मौके पर टूटा हो उसके अनुसार बंध बदलें और अत्यंत ढीला बंध बाँधनेसे संधि (जोड) में स्थिरता नहीं होती ॥ ७ ॥ तथा अत्यंत करडा बंध बांधनेसे त्वचा आदिमें शोथ शूल और पकाव हो जाता है इस लिये भग्नपर जानकारोंने साधारण बंध बांधना ही श्रेष्ठ कहा है ॥ ८ ॥

भग्नपर परिषेकादि ।

न्यग्रोधादिकषायं तु सुशीतं परिषेचने । पंचमूलीविपक्कं तु क्षीरं कुर्यात्सवेदने ॥ सुखोष्णमवचार्यं वा चक्रतैलं विजानता ॥ ९ ॥

(श्लो० ४) कुशार्थं बंधनार्थं-कुश शब्देन भग्न बंधनार्थं वंशादिक इति डल्लनः ।

विभज्य कालं दोषं च दोषघ्नौषधसंयुतम् । परिषेकं प्रदेहं च विदध्याच्छीतमेव च ॥ १० ॥

न्यग्रोधादि गणका क्वाथ शीतल करके भग्नस्थानपर सेचन करें और जो वेदना युक्त हो तौ पंचमूलीसे पका हुवा दूध अथवा चक्रतैल (कच्ची घानीका तैल) निवाया २ सेचनकरे ॥ ९ ॥ समय ऋतु और दोषको विचारकर उसके अनुसार दोषघ्न औषधोंसे संयुक्त परिषेक अथवा शीतल लेप जैसा उचित हो वैसा करें॥ १०॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् । शीतलं लाक्षयायुक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ ११ ॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः । प्रतिसार्य कषायैस्तु शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १२ ॥

मधुर औषधों (काकोली आदि) से साधन किया हुआ प्रथम प्रसूता गौका दुग्ध घृतयुक्त कर लाख मिला शीतल (ठंढे) को भग्न पुरुष प्रभातमें पीया करें ॥ ११॥ और जिसका भग्न व्रणयुक्त हो उसके व्रणको घृत शहद युक्त (न्यग्रोधादि) कषायसे प्रतिसारण (लेपन) करें और शेष सब विधि भग्नहीके समान करें ॥ १२॥

भग्नमें साध्यताका नियम ।

प्रथमे वयसि त्वेवं भग्नं सुकरमादिशेत् । अल्पदोषस्य जंतोर्स्तु कालेचे शिशिरात्मके ॥ १३ ॥ प्रथमे वयसि त्वेवं मासात्संधिः स्थिरो भवेत् । मध्यमे द्विगुणात्कालादुत्तरे त्रिगुणात्स्मृतः ॥ १४ ॥

उपरोक्त वर्ताव करनेपर प्रथम अवस्थामें भग्न सुखसाध्य होता है तथा अल्प दोषवाले मनुष्यका भग्न और सरदीकी ऋतुमें हुआ भग्नभी सुखसाध्य जानो ॥ १३ ॥ उपरोक्त विधान करनेपर प्रथम अवस्थामें १ महीनेमें संधि स्थिर होता है और दूसरी अवस्थामें दो महीनेमें और तीसरी अवस्थामें ३ महीनेमें स्थिर होवे ॥ १४ ॥

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावपीडयेत् । आंछेदतिक्षिप्तमधोगतं चोपरिवर्तयेत् ॥ १५ ॥ आंछनैः पीडनैश्चैव संक्षेपैर्बंधनैस्तथा । संधीन् शरीरे

(श्लो० ११) गृष्टिः प्रथमप्रसूतागौः । मधुराणां काकोल्यादीनां। कर्षमात्रद्रव्यमष्टगुणं क्षीरं चतुर्गुणोदकासिद्धं क्षीरशेषं सर्पिर्लाक्षाकर्षमात्रप्रक्षेपान्वितम् (इति डल्हनः)

(श्लो० १२) सव्रणस्य व्रणं प्रतिसार्य लेपयित्वा कषायोत्रन्यग्रोधादिकल्कः तैः मधुघृतप्रधानैः (नि०सं०)

(श्लो० १३) सुकरं सुखसाध्यम् ।

(श्लो० १५) आंछेत् आयामेत् आयामं कुर्यादित्यर्थः ।

(श्लो० १६) आंछनैः विस्तृतकरणैः संक्षेपैः संकोचनैः सम्यक्प्रेरणैर्वा ।

संवांस्तु चलानप्यचलानपि । एं तैस्तु स्थापनोपायैः स्थापयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १६ ॥

जो अवनामित (नवगया) हो उसे उभारकर सीधा करे और जो ऊंचा होगया हो उसे दबाकर ठीक करें और जो अतिक्षिप्त हो फैले नहीं उस अंगको फैलावे और जो नीचा होगयाहो उसे ऊपर चढाकर ठीक करे ॥ १५ ॥ आंछन (सीधा करना फैलाना सूतना) पीडन (मलना दबाना) संक्षेप (सकोडना अथवा सम्यक् प्रेरण करना) तथा बांधना इन सब क्रियाओंसे शरीरकी चलायमान और निश्चल सब भग्न संधियोंको बुद्धिमान् वैद्य जहांकी तहां स्थापन करें ॥ १६ ॥

उत्पिष्ट और विश्लिष्टसंधिकी चिकित्सा ।

उत्पिष्टमथ विश्लिष्टं संधिं वैद्यो न घट्टयेत् । तस्य शीतान्परीषेकान् प्रदेहांश्चावचारयेत् ॥ १७ ॥ अभिघाते हते संधीः स्वां याति प्रकृतिं पुनः । घृतदिग्धेन पट्टेन वेष्टयित्वा यथाविधि । पट्टोपरि कुशान्दत्वा यथावद्बंधमाचरेत् ॥ १८ ॥

उत्पिष्ट और विश्लिष्ट (इनके लक्षण पहले कहचुकेहैं) संधियोंको वैद्य विघट्टन (अस्तव्यस्त न करें) किंतु उसपर शीतल परिषेक और लेप करतेरहैं ॥ १७॥ चोट आदिसे जो संधिमारी जातीहै वह स्वयं फिर अपनी प्रकृतिपर आजाया करतीहै अर्थात् ठीक हो जाती है केवल उसपर घृतका भिगोया कपडा लपेट कर उसपर कुशा या बांसकी पच्चटें लगाकर यथावत् बंध बांधदेना ठीक है ॥ १८ ॥

प्रत्यंग भग्नकी चिकित्सा ।

प्रत्यंगभग्नस्य विधिरतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यते ॥ १९ ॥ नखसंधिं समुत्पिष्टं रक्तानुगतमारया । अवमथ्य स्रुते रक्ते शालिपिष्टेन लेपयेत् ॥ २० ॥ भग्नां वा संधिमुक्तां वा स्थापयित्वांगुलीसमाम् । अणुना वेष्टय पट्टेन घृतसेकं प्रदापयेत् ॥ २१ ॥

अब यहांसे अगाडी प्रत्यंगोंके भग्नकी चिकित्साविधिका वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥ नखूनकी संधि कुचलीगई हो और रुधिर चमकने लगाहो तो उसे आरानाम शस्त्रसे मथें (वेधें) जब रुधिर निकल जावे तब चावल पीसकर लेपकरदें ॥ २० ॥ यदि कोई अंगुली टूटगई हो या संधिमेंसे उतर गईहो तो उसे जोडकर या चढाकर बराबर अंगुली करके बारीक कपडेसे बांधकर ऊपरसे घृतका सेचनकरे (तरडादें)॥२१॥

पादभग्नकी चिकित्सा।

अभ्यज्यं सर्पिषा पादं तलभग्नं कुशोत्तरम्। वस्त्रपट्टेन बध्नीयान्नं च व्यायाममाचरेत् ॥ २२ ॥ अभ्यंज्यायामये जंघामूरुं च सुसमाहितः। दत्वा वृक्षत्वचः शीता वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ २३ ॥ मतिमांश्चक्रयोगेन आंछे दूर्वास्थि निर्गतम्। स्फुटितं पिच्चितं चापि बध्नीयात्पूर्ववद्भिषक् ॥ २४ ॥

यदि पाँवका तलुवा टूटगया होवे तो उसपर घृत लगाकर ऊपर बांसकी पच्चटें लगाकर कपडेकी पट्टीसे बांधदे और परिश्रम (चलने आदि) से बचारहने दें ॥२२॥ यदि जंघा(पिडली) ऊरु(साथल)ये टूटगईं हो या उतर गईं हों तो चिकनाई लगाकर उसे जोडकर या चढाकर शीतल वृक्षोंकी छाल लपेटकर ऊपरसे कपडेकी पट्टीसे बांध देवें ॥ २३ ॥ जो साथका अस्थि निकल आयाहो तो उस चक्रके योगसे ठीक बिठावे अर्थात् उसके चारों तरफ पच्चट आदिका चक्रसा बनाकर लगावे और जो फूटगईं हो या कुचली गईं हो (ऐसी साथलको) पूर्वोक्त रीतिसे वैद्य बांध देवें॥२४॥

आंछेदूर्ध्वमधो वापि कटिभग्नं तु मानवम्।
ततः स्थानस्थिते संधौ बस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

जिस मनुष्यकी कमर टूटगई हो (अर्थात् कमरकी हड्डी टूटी हो) उसे ऊपरसे नीचेको और नीचेसे ऊपरको करके (जोड मिलादें) और जब स्थान जुडजावे तब स्नेह आदिकी बस्तीसे उपचार करें ॥ २५ ॥

पर्शुकास्वथ भग्नासु घृताभ्यक्तस्य तिष्ठतः ॥ दक्षिणास्वथ वा वामास्वनुमृज्य निबंधनीः ॥ २६ ॥ ततः कवलिकां दत्वा वेष्टयेत्सुसमाहितः। तैलपूर्णे कटाहे वा द्रोण्यां वा शाययेन्नरम् ॥ २७ ॥

पार्श्वका (पीठकी हड्डियां) टूट (नव) जावे तो उस मनुष्यको बिठाकर घृतका मर्दन करावें और दाहनी या बांई निबंधनी (मांसरज्जू) भग्न होजावे तबभी वैसे ही घृतमले ॥ २६ ॥ फिर ऊपर लपरी बांधदें और तैल भरे कडाह या कठडे या नवाडे में सुलाते रहें ॥ २७ ॥

मुशलेनोत्क्षिपेत्कक्षामंससंधौ विसंहते॥ स्थानस्थितं च बध्नीत स्वस्तिकेन विचक्षणः ॥२८॥ कौर्परं तु तथा संधिमंगुष्ठेनानुमार्जयेत्। अनुमृज्य ततः संधिं पीडयेत्कूर्पराच्च्युतम् ॥ २९ ॥ प्रसार्याकुंचयेच्चैनं स्नेहसेकं च दापयेत्। एवं जानुनि गुल्फे च मणिबंधे च कारयेत् ॥ ३०॥

यदि कंधेकी संधि हट जावे तो कांखमें मूसल देकर उसे ऊपरको चढादेवे और जब ठीक बैठ जावे तब स्वस्तिक नाम बंधसे बांधदेवे ॥ २८ ॥ और कोहनीकी संधि हट जावे तो उसे अँगूठेसे दबाकरही चढादें फिर उस कोहनीकी संधिको दबा कर मलें (और फिर उसीभांति स्वस्तिकबंधसे बांधदे) ॥ २९ ॥ और उसे पसार सकोडकरभी देखलेना चाहिये फिर उसपर घृतका सेचन करे और इसी प्रकार जानु (घुटने) गुल्फ (टकने) और मणिबंध (पहुँचे) की संधि हटनेपरभी यत्न करें ॥ ३० ॥

उभे तले समे कृत्वा तलभग्नस्य देहिनः । बध्नीयादामतैलेन परिषेकं च कारयेत् ॥ ३१ ॥ प्राग्गोमयमयं पिंडं धारयेन्मृन्मयं ततः । हस्ते जातबले चापि कुर्यात्पाषाणधारणम् ॥ ३२ ॥

जिसकी हथेली भग्न होजावें उसके दोनों हाथोंकी हथेली बराबर कराकर बांध दे और कच्चे तैलका सेचन करें ॥ ३१ ॥ पहले उसके हाथसे गोबरका गोला उठवावें फिर जब कुछ बल आजावे तब मिट्टीका ढेला उठवावें और जब ज्यादा २ बल आवे तब पत्थर उठवाया करें ॥ ३२ ॥

सन्नमुन्नमयेत्स्विन्नमक्षकं मुशलेन तु । तथोन्नतं पीडयेच्च बध्नीयाद्गाढमेव च । ऊरुवच्चापि कर्तव्यं बाहुभग्नचिकित्सितम् ॥ ३३ ॥

यदि अक्षक नाम स्थानकी संधि भग्न हुई हो तो उसे घृत लगा स्वेद दिलाकर नीची हुईको मूशल लगाकर उठादे और ऊंची हुईको दबादें फिर करडे बंधसे बांधदेवें (अक्षक कोई कंधेसे ऊपरके जोडको कहते हैं और कोई कूलेकी संधिको कहते हैं) तथा जैसे साथल भग्नकी विधिहै उसी प्रकार बाहुभग्नकीभी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ग्रीवायां तु विवृत्तायां प्रविष्टायामथो पि च । अवटावथ हन्वोश्च प्रगृह्योन्नमयेन्नरम् ॥ ३४ ॥ तथा कुशान्समं दत्वा वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् । उत्तानं शाययेच्चैनं सप्तरात्रमतंद्रितः ॥ ३५ ॥

जिसकी ग्रीवाकी संधि हटगई हो या नीचेको प्रविष्ट होगई हो उस मनुष्यकी अवटु (गुद्दी) और ठोडी पकडकर ऊपरको नवादे और ठीक करदे ॥ ३४ ॥ फिर उसमें समान कुशा (बांसकी पच्चटें) लगाकर वस्त्रकी पट्टीसे बांध देवें और सात दिनतक पथ्यपूर्वक औंधा सुलावे ॥ ३५ ॥

हन्वस्थिनी समानीय हनुसंधौ विसंहते । स्वेदयित्वा स्थिते सम्यक् पंचांगीं वितरेद्भिषक् । वातघ्नमधुरैः सर्पिःसिद्धं नस्ये च पूजितम् ॥ ३६ ॥

यदि ठोडीकी संधि हटजावे तब ठोडीकी हड्डियोंको स्वेदन कराके संधि बिठादेनी चाहिये और जब ठीक बैठ जावे तब पंचांगी नाम बंधसे बांध देवें तथा वैद्य वायुनाशक मधुर औषधोंसे सिद्ध कियेहुये घृतकी नस्यदे ॥ ३६ ॥

अभग्नांश्चलितान्दंतान् सरक्तानवपीडयेत् । तरुणस्य मनुष्यस्य शीतैरालेपयेद्बहिः ॥ ३७ ॥ सिक्ताम्बुभिस्ततः शीतैः संधानीयैरुपाचरेत् । उत्पलस्य च नालेन क्षीरपानं विधीयते । जीर्णस्य तु मनुष्यस्य वर्जयेच्चलितान्द्विजान् ॥ ३८ ॥

जिस तरुण मनुष्यके दांत टूटे तो न हो पर चलायमान होगये हों और उनमें रुधिर आता हो उन्हें दबाकर अपनी जगह जमा देना चाहिये और बाहर शीतल लेप कर देना चाहिये ॥ ३७ ॥ और ठंढे जलसे सेचन करे और संधानीय (जोडनेवाले) उपचार करें तथा कमलकी नालीसे उसे दूध पिलावें और वृद्ध मनुष्यके चलायमान दांत असाध्य हैं उन्हें त्याग देवे ॥ ३८ ॥

नासिका और कर्णभग्नकी चिकित्सा ।

नासां सन्नां विवृत्तां वा ऋज्वीं कृत्वा शलाकया । पृथङ्नासिकयोर्नाड्यौ द्विमुख्यौ संप्रवेशयेत् । ततः पट्टेन संवेष्ट्य घृतसेकं प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥ भग्नं कर्णं च बध्नीयात् समं कृत्वा घृतप्लुतम् । सद्यःक्षतविधानं च ततः पश्चात्समाचरेत् ॥ ४० ॥

यदि नासिका बैठ (दब) गई हो या कुचली (चपटी फैलगई) हो तो उसे सलाई डालकर बराबर उठादेवे और दोनों नाकके छिद्रोंमें दो जुदी २ नाली दो मुखवाली प्रवेश करके ऊपर पट्टी बांधदेवे और घृतका सेचन करे ॥ ३९ ॥ यदि किसीका कान भग्न होगया हो तो उसे बराबर करके घृतसे प्लुत करदें और उसके पीछे सद्य क्षतकी विधि करें ॥ ४० ॥

कपालभग्नचिकित्सा ।

मस्तुलुंगाद्विना भिन्ने कपाले मधुसर्पिषी ।
दत्वा ततो निबध्नीयात्सप्ताहंश्च पिबेद्घृतम् ॥ ४१ ॥

(श्लोक ३९) सन्ना निम्नीभूता, द्विमुख्यौ नाड्यौ प्रवेशयेत् द्विमुख्यौ उभयतो मुख्यौ प्रश्वासोच्छ्वाससिंहाणकनिर्गमनार्थम् ।

(श्लोक- ४१) मस्तुलुंगस्रावेतु प्रागभिहितैव बालवर्तिरित्यभिप्रायः (इति डल्हनः)

जिसका कपाल इतना फटे कि उसके भीतरकी मस्तकमज्जा नहीं निकले तो उसपर शहद और घृत लगाकर पट्टी बांधदें और सातदिनतक घृत पीवें (यदि मस्तकमज्जा निकलने लगे तो पूर्वोक्त बालोंकी बत्ती बनाकर भरदेवे) ॥ ४१ ॥

अभिघातशोथचिकित्सा ।

पतनादभिघाताद्वा शूनमंगं यदक्षतम् ।
शीतान्प्रदेहान् सेकांश्च भिषक् तत्रावचारयेत् ॥ ४२ ॥

गिरपड़नेसे अथवा चोट लगने आदिसे किसीका अंग सूज आया हो और घाव नहीं हो तो उसपर शीतल लेप और शीतलही परिषेक वैद्यको कराना चाहिये ४२॥

जंघादिभग्नकी चिकित्सा ।

अथ जंघोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम् । कीलकाबंधनार्थं च पंचकार्या विजानता ॥ ४३ ॥ यथा न चलनं तस्य भग्नस्य क्रियते तथा । संधेरुभयतो द्वौ द्वौ तले चैकश्च कीलकः ॥ ४४ ॥ श्रोण्यां वा पृष्ठवंशे वा वक्षस्यक्षकयोस्तथा । भग्नसंधिविमोक्षेषु विधिमेनं समाचरेत् ॥ ४५ ॥

यदि किसीकी पिंडली या साथल टूटगई हो तो उसे लंबे तखतेपर सुलाना चाहिये और बांधनेको कीलक (चपटी लकडियां या बांसकी मोटी मजबूत पच्चटें) पांच बनवावें ॥ ४३ ॥ फिर टूटे हुयेका जोड मिलाकर उसपर वे लकडियां ऐसे बाधें कि संधिके दोनों तरफ तो दोदो और नीचेको एक जिससे वह जोड हट नजावे ॥ ४४ ॥ कमर पीठका बांस छाती अक्षक (खोदे) इनके टूटनेपर तथा संधि हटजानेपर भी यही विधिकरें ॥ ४५ ॥

संधींश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धान्स्विन्नान्मृदूकृतान् ।
उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च सम्यक् प्रकृतिमानयेत् ॥ ४६ ॥

बहुतदिनकी उखडी हुई संधि होगई हो तो उसे चिकनाईसे तरकरके पसीनादि ला (सेक सेक) कर नरम करें फिर उक्त विधिसे या बुद्धिकी युक्तिसे ठीककरके अपनी जगह बिठावें ॥ ४६ ॥

कांडभग्ने प्रसक्ते तु विषमोल्बणसंहिते । आपोथ्य शमयेद्भग्नं ततोभग्नवदाचरेत् ॥ ४७ ॥ कल्पयेन्निर्गतं शुष्कं व्रणांतेऽस्थि समाहितः । संध्यंते वा क्रियां कुर्यात्सव्रणे व्रणभग्नवत् ॥ ४८ ॥

(श्लोक ४८) कल्पयेत् छिंद्यात् (इतिडल्लनः)

किसीका कांड भग्नहो (हड्डी हाथ पावोंकी टूट) कर टेढी या ऊंची जुडकर उस पर अंकुर आगया हो तो उसे फिर अलग करके ठीक २ जोड मिलावें और फिर भग्नकी तरहसे ही क्रियाकरे ॥ ४७ ॥ यदि व्रणके पास निकली हुई हड्डी सूखगई हो तो थोडी काटदे जिससे ठीक बैठजाय तथा व्रणयुक्त संधिके समीप निकलकर हड्डी सूखजाय तो वहांभी एसेही करे (थोडी काटदें) और व्रणभग्नकी भांति यत्न करें ॥ ४८ ॥

ऊर्द्ध्वकाये तु भग्नानां मस्तिक्यं कर्णपूरणम् ।
घृतपानं हितं नस्यं प्रशाखास्वनुवासनम् ॥ ४९ ॥

ऊपरके शरीर (शिर आदि) भग्न होनेमें मस्तकका हित पुष्ट करनेवाले कर्णपूरण (कानोंमें तेल डालना) घृतपान और नास आदि यत्न करने हित हैं और प्रशाखा (नीचेके अंग पांव आदि) भग्न हों तो अनुवासन बस्ति करें ॥४९॥

गंध तैल ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि तैलं भग्नस्य साधकम् । रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ॥ ५० ॥ दिवा दिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् । तृतीयं सप्तरात्रं वा भावयेन्मधुकाम्बुना ॥ ५१ ॥ ततः क्षीरे पुनः पीतान् सुशुष्कांश्चूर्णयेद्भिषक् । काकोल्यादिसयष्ट्याह्वं मंजिष्ठां सारिवां तथा॥५२॥ कुष्टं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचंदनम् । शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ॥ ५३ ॥ पीडनार्थं च कर्तव्यं सर्वगंधशृतं पयः । चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेद्भिषक् ॥ ५४ ॥

इससे अगाडी अब भग्नका साधन करनेवाला तैल वर्णन करते हैं, काले तिलों को लेकर रात रातको बहते पानीमें रक्खे (पोटली बांध कर बहते पानीमें डाल दे) ॥५०॥ और दिन प्रदिनको सुखावे ऐसे सात दिन करे फिर सात दिन गौके दूधकी भावना दे फिर तीसरे सप्ताह मुलेठीके रसमें भावनादे ॥५१॥ फिर दूधमें भिगोकर सुखाले और पीस लेवे फिर उसमें काकोल्यादि गण और मुलेठी, मजीठ ॥ ५२ ॥ सारिवा, कूट, राल, जटामांसी, देवदारु, चंदन, सौंफ, पीस कर उस तिलचूर्णमें मिलादे ॥ ५३ ॥ और कोल्हूसे पिलवाकर तैल निकलवा ले परंतु काकोल्यादिका चूर्ण और तिलोंका चूर्ण मिलाकर इलायची आदिसे उबाला हुआ दूध डालकर

(श्लो० ४९) मस्तिक्यम् शिरोबस्तिप्रकारः रुच स्नेहाक्त पिचुप्लोतादिभिः
(श्लो० ५२) क्षीरे पुनः पीतान् इति क्षीरेण भाव्य द्रव्यसमेन पुनर्भावितान् (इति नि. सं.)

कोल्हूमें पेलनेके वास्ते पिट्ठीसी बनावे फिर इस पिट्ठीको पेलकर तैल निकलवावे फिर इस तैलमें चौगुना दूध डालकर वैद्य इसे पकावे और नीचे लिखी औषधोंका इसमें संस्कार करे ॥ ५४ ॥

एला मंशुमतीं पत्रं जीवकं तगरंतथा। रोध्रंप्रपौंडरीकंचतथा कालानुसारिण म् ॥ ५५ ॥ सैरेयकं क्षीरशुक्लामनंतां समधूलिकम् । पिष्ट्वाशृंगाटकंचैव पूर्वोक्तान्यौषधानिच ॥ ५६ ॥ एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना। एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ॥ ५७ ॥

इलायची अंशुमती (शालपर्णी) पत्रज जीवक तगर लोध प्रपौंडरीक कालानुसारी (तगरका भेद अथवा शैलेय अर्थात् लोबान) ॥ ५५ ॥ सैरेयंक (कंटशेलूक) क्षीरशुक्ता (क्षीरविदारी) अनंता (अनंतमूल) मधूलिका (मर्कटतृण) तथा सिंघाडा इन पूर्वोक्त औषधोंको पीसकर ॥५६ ॥ इनसे शास्त्रज्ञ वैद्य मंदी अग्निसे उस तैलको पकावे यह तैल भग्नरोगियोंको सब कार्यमें सदा पथ्य है ॥ ५७ ॥

इस गंधतैलके गुण ।

आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते । मन्यास्तंभे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे॥५८॥ बाधिर्ये तिमिरे चैव येच स्त्रीषुक्षयं गताः।पथ्यं पाने तथाभ्यंगे नस्ये बस्तिषु भोजने॥५९॥ग्रीवास्कंधोरसां वृद्धिरमुने वोपजायते । मुखे च पद्मप्रतिभं सुसुगंधिसमीरणम् ॥ ६० ॥ गंधतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् । राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ॥ ६१ ॥

आक्षेपकरोग और पक्षाघात तालुकी शुष्कता तथा अर्दितवायु मन्यास्तंभ (ग्रीवाके पिछले जोते अकडजाने) शिरके रोग, कानके शूल, ठोडीके जकडाव इन रोगोंमें ॥ ५८ ॥ तथा बहरेपनमें तिमिर (आँखोंके अगाडी अँधेरी आना) तथा जो अतिविषयसे क्षीण हो गये हों ऐसे रोगियोंको पीने तथा मलने नास लेने एवं बस्तिकर्म तथा खानेमें श्रेष्ठ है ॥ ५९ ॥ ग्रीवा, कंधे, छाती इनकी वृद्धि इसी तैलसे होती है (मलनेसे) मुख कमलसरीखा होता है और सुगंधयुक्त वायु मालुम होती है ॥६०॥ इस तैलका नाम गंधतैलहै यह समस्त वायुके विकारोंको दूर करता है राजोंके योग्य है जो राजाओंमें चतुर राजा हों उन्हें यह अवश्य तैयार कराके रखना चाहिये॥६१॥

त्रपुसाक्षाप्रियालानां तैलानि मधुरैः सह । वसान्दत्वा यथालाभं क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥६२॥ स्नेहोत्तरमिदं चासु कुर्याद्भग्नप्रसाधनम् । पानाभ्यंजननस्येषु बस्तिकर्मणि सेचने ॥ ६३ ॥

ककडीके बीज बहेडेकी गिरी और चिरोंजी इनका तैल निकलवावे फिर काकोल्यादि मधुर द्रव्योंके साथ मिलाकर मिल सके जितनी वसा (चरबी) डालकर इन्हें दशगुणे दूधमें पकावे ॥ ६२ ॥ यह स्नेह प्रधानतैल है भग्न रोगीको पीने मलने नासलेने बस्ति कर्म और परिषेक करनेसे शीघ्रही टूटे हुवेको जोड देताहै ॥ ६३ ॥

भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
पक्वमांसशिरास्नायु तद्धि कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥ ६४ ॥

जबतक टूटी हुई जगह पक नहीं जावे तबतक यह यत्न करने चाहिये (अथवा वैद्य ऐसा यत्न करे जिससे भग्न पक नहीं जावे) और यदि भग्न स्थानका मांस शिरा स्नायु पक जावे तो फिर वह कठिनतासे सिद्ध होताहै ॥ ६४ ॥

भग्नं संधिमनाविद्धमहीनांगमनुल्बणम् ।
सुखचेष्टाप्रचारं च संहितं सम्यगादिशेत् ॥ ६५ ॥
इति चिकित्सितेतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जिस भग्नके रूढ होने (अच्छे होने) पर संधिमें विकार न रहे और अंग कुछ हीन नहीं हो तथा उभराहुआ विशेष भी न हो और आकुंचन प्रसारण आदि चेष्टा सुखपूर्वक होसके उसे ठीक ठीक जुडा और अच्छा हुआ जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने
भग्नचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे हम वातव्याधिकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

आमाशयगतवायुका यत्न ।

आमाशयगते वाते छर्दयित्वा यथाक्रमम् । देयः षड्धारणो योगः सप्तरात्रं सुखांबुना ॥ १ ॥ चित्रकेन्द्रयवपाठा कटुकातिविषाभया । वातव्याधिप्रशमनो योगः षड्धारणः स्मृतः ॥ २ ॥

यदि आमाशय वायु हो तो (यदि रोगी बलवान् और दोषकी अधिकताहो) विधिपूर्वक वमन कराकर सात दिनतक षट्धारण नामक योग जरा गरम पानीसे देवे ॥ १ ॥ षट् धारण योग यहहै कि चित्रक इंद्रजौ पाठ कुटकी अतीस और हरीतकी इन छहोंको धारण (टंकटंकभर) ले यह षट्धारण योग आमाशयकी वायुको शांत करता है ॥ २ ॥

पक्काशय और बस्तिगतवायुका यत्न।

पक्काशयगते चापि देयं स्नेहविरेचनम् ॥ बस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः ॥ ३ ॥ कार्यो बस्तिगते चापि विधिर्बस्तिविशोधनः ॥ ४ ॥

यदि वायु पक्काशयमें हो तो स्नेह विरेचन (अरंडीके तैल आदिका जुलाब) दे और शोधन वस्तुओंके क्वाथादिसे बस्तिकर्म करे और लवणप्रधान भोजन (विशेषतया) करावे ॥ ३ ॥ और जो बस्ति (मसाने) में वायु स्थितहो तौ बस्तिस्थानके शोधनकी विधिकरे (गोक्षुरकादि द्रव्योंके क्वाथसे बस्तिशोधन करे) ॥ ४ ॥

श्रोत्रादिमें प्राप्त वायुका यत्न।

श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यश्चानिलहा क्रमः। स्नेहाभ्यंगोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च। त्वङ्मांसासृक्शिरां प्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥ ५ ॥

श्रोत्रादिकमें कुपित वायु हो तो वायुनाशक क्रम स्नेहाभ्यंगादि (तैल पूरण आदि) करे तथा त्वचा मांस रुधिर और शिराओंमें कुपित वायु हो तो स्नेह अभ्यंग मर्दन लेपन और सिरामोक्षण इनमें जो जहाँ उचित हो वह करे (त्वग्गतमें स्नेहाभ्यंग मांसगतमें अपनाह मर्दन और रक्तगतमें रक्तमोक्ष इत्यादि करे) ॥ ५ ॥

स्नायु संधि और अस्थिगत वायु का यत्न।

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबंधनोन्मर्दनानि च॥ स्नायुसंध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वायावतंद्रितः ॥ ६ ॥ निरुद्धेऽस्थनि वा वायौ पाणिमन्थेन दारिते। नाडीं दत्वास्थनि भिषक् चूषयेत्पवनं बली ॥ ७ ॥

यदि स्नायु संधि और अस्थि इनमें वायु प्राप्त हो तो स्नेह उपनाह अग्निकर्म और बंधन तथा मर्दन करना चाहिये ॥ ६ ॥ और अस्थिके भीतर वायु रुकगया हो तो पाणिमंथ (आरा) शस्त्रसे छेदन करके उसमें नाली लगाकर बलवान् वैद्य वायुको चूस लेवे ॥ ७ ॥

शुक्रगत वायुका यत्न।

शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥ ८ ॥

यदि वीर्यमें वायु हो तो शुक्रदोषनाशक चिकित्सा करे अर्थात् शुक्रशोधन वाजीकरण तंत्रोक्त विधि अथवा मूत्रदोषहर चिकित्सोक्त विधि करे ॥ ८ ॥

(श्लोक ३) पक्काशय गते इति पक्काशयोनाभेरधः तस्मान्नाभेरधः कुपिते वाते।

(श्लो० ७) अस्थिगते वर्ज्यत्वे चापि कर्मानिर्दिशन्नाह+पाणिमंथेन आराशस्त्रेण (इति नि.सं.)।

सर्वांग और एकांगगत वायुका यत्न ।

अवगाहकुटीकर्षुप्रस्तराभ्यंगबस्तिभिः । जयेत्सर्वांगजं वातं शिरामोक्षैश्च बुद्धिमान् ॥ ९ ॥ एकांगजं च मतिमाञ्छृंगैश्चावस्थितं जयेत् ॥ १० ॥

यदि सर्वांगमें वायु दूषित हो तो अवगाह (वायुनाशक औषधोंके निवाये क्वाथसे भरी हुई द्रोणीमें अवगाहन करे अर्थात् बैठे और मल मलकर न्हावे) अथवा कुटी (अर्थात् एक चौकोन मिट्टीकी कोठरीसी बनाकर उसमें अग्निसे तपाकर वायुनाशक द्रव्योंके क्वाथ छिडककर सुहाता २ पसीना निकाले इसे कुटीप कहते हैं) अथवा कर्षु (पुरुषके प्रमाण लंबा गढा खोद उसे तपा वातहर द्रव्योंसे बुझाकर उसमें सुलाकर उष्मस्वेद करावे इसे कर्षु कहते हैं) अथवा प्रस्तर (गरम किये हुये तृण धान्यादिको पृथ्वीपर बिछाकर उसपर शयन करावे इसे प्रस्तर कहते हैं) इन विधियोंसे तथा अभ्यंग (वायुनाशक तैलादिका मलना) और बस्तिकर्म आदिसे अथवा शिरामोक्ष (हफ्तअंदामफस्त) से बुद्धिमान् वैद्य सर्वांग दूषित वायुको जीते ॥ ९॥ और जो किसी एक अंगमें दूषित वायु स्थित हो तो उसे सींगीद्वारा खिंचवाले १०॥

बलासपित्तरक्तैस्तु संसृष्टमविरोधिभिः ॥ ११ ॥ सुनिर्वातेत्वसृङ्मोक्षं कुर्यात्तु बहुशोभिषक् । दिह्याच्च लवणागारधूमस्तैलसमन्वितैः ॥ १२ ॥

यदि कफ या पित्त या रुधिरमें वायु मिलीहुई हो तो उसे उनके अविरोधी यत्नोंसे जीते ॥ ११ ॥ सुप्तवायुमें बहुतसीवार रक्तमोक्ष (फस्त) करावे और फस्त की जगह व्रणपर लवण धूंवासा तेलमें मिलाकर लगादे ॥ १२ ॥

वातव्याधिमें भोजन और उपनाह ।

पंचमूलीशृतं क्षीरं फलाम्लो रस एवच । सुस्निग्धो धान्ययूषो वा हितो वातविकारिणाम् ॥ १३ ॥ काकोल्यादिः स वातघ्नः सर्वाम्लद्रवसंयुतः । सानूपोदकमांसस्तु सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ १४ ॥ सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः। तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ॥ १५॥

(श्लो. ९) अवगाहइति वातहरक्वाथपूर्णद्रोणयादिषु अवगाहनेन द्रव्यस्वेदोऽवगाहः, कुटी इति चतुर्द्धा भूभावारोपिता अपनीतविधूमांगा वातहरद्रव्यसिक्ताचउष्मस्वेदः, कर्षुः इति पुरुषायाममात्रं निखातदग्धावनिप्रदेशे वातहरद्रव्यासिक्ते शयनं सचोष्मस्वेदविशेषः, प्रस्तर इति खिन्नतुषधान्यादिभिरास्तृताया भूमौ परिशयनं प्रस्तरः सोपिचोष्णस्वेदविशेषः (इति निबंधः)

(श्लो. ११) एतदर्धपद्यं जयेदिति गताद्धोक्तेनान्वेतव्यम् ।

पंचमूलीसे सिद्ध किया हुआ दूध अथवा अम्लफलोंकी अम्लतायुक्त मांसरस अथवा चिकनाई युक्त धान्य यूष वातविकारवालोंको हितहै ॥ १३॥ कंकोल्यादि गण में वायुनाशक औषधोंको मिलाकर अनेक खट्टे रसयुक्त करे और आनूप और जल-चारी जीवोंका मांस घृत तैल चरबी और मज्जा मिलावे इसे थोडा गरम और तेज लवणयुक्त करे इसे साल्वण कहतेहैं इससे उपनाह करना समस्त वातविकारवालोंको हितहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

कुंचमानं रुजार्तं वा गात्रं स्तब्धमथापिवा। गाढं पट्टैर्निबध्नीयात्क्षौमकार्पासकौर्णिकैः ॥ १६ ॥ बिडालनकुलोष्ट्राणां चर्मगोण्यां मृगस्य वा। प्रवेशयेद्वा स्वभ्यक्तं शाल्वणेनोपनाहितम् ॥ १७ ॥

जो कोई अंग कूबडा होगयाहो किसीमें पीडा ठैरगई हो अथवा कोई अंग करडा पडगया या रुक गया हो तो उसे रेशमी टसरी सूती या ऊनी कपडेसे करडा बाँधदें ॥ १६ ॥ और पहले अच्छे तरह तैल मर्दन करके तथा उक्त शाल्वणसे उपनाह स्वेद कराकर (पट्टी बांधकर) बिलाव या नौल या ऊंट या हिरनकी चर्मगोणी (थैली) में प्रवेश करदे (जिससे गरमी पहुँचकर ठीक होजावे) ॥ १७ ॥

स्कंधादि अवयवगत वायुकी चिकित्सा।

स्कंधवक्षस्त्रिकप्राप्तं वायुं मन्यागतं तथा। वमनं हन्ति नस्यं च कुशलेन प्रयोजितम्॥ १८॥ शिरोगतं शिरोबस्तिर्हन्ति वासृग्विमोक्षणम्। स्नेहमात्रासहस्रं तु धारयेत्तत्र योगतः ॥ १९ ॥ सर्वांगगतमेकांगस्थितं वापि समीरणम्। रुणद्धि केवलो बस्तिर्वायुवेगमिवाचलः ॥ २० ॥

कंधे छाती और त्रिकस्थानमें प्राप्त हुई वायुको तथा मन्यागत वायुको चतुर वैद्यकी प्रयुक्त करी हुई वमन तथा नास शांत करदेतीहै ॥ १८ ॥ शिरमें प्राप्त हुई वायुको शिरोबस्तिसे जीते अथवा रक्तमोक्ष (सरेरू फस्त खुलाना) अथवा स्नेह-की हजार मात्रा योगपूर्वक धारण करनेसे उपचारकरें (अर्थात् सहस्रबार लघु अक्षर उच्चारण हो उतने समयतक शिरपर स्नेह धारण करे धारण करनेकी विधि यह है कि, उडदकी पीठीकी चारों तरफ आड करके शिरपर स्नेह धारण करे) ॥ ॥ १९ ॥ सर्वांगमें या किसीएक अंगमें जो वायु स्थित हो उसे केवल बस्तिही इस भांति रोक शांत कर देतीहै जैसे पर्वत वायुके वेगको रोक लेता है ॥ २० ॥

(श्लो० १७) उष्ट्र शब्देनात्र पानीयविडबाल इति बोध्य (इति डल्हनः) चर्मगोणी चर्मनिर्मिता गोणी थैलिकाकारा इति ।

वातव्याधिमें पथ्य ।

स्नेहस्वेदस्तथाभ्यंगो बस्तिः स्नेहविरेचनम् । शिरोबस्तिः शिरःस्नेहो धूमः स्नैहिकं एव च ॥ २१ ॥ सुखोष्णः स्नेहगंडूषो नस्यं स्नैहिकमेव च । रसाः क्षीराणि मांसानि स्नेहाः स्नेहान्वितं च यत् ॥ २२ ॥ भोजनानि फलाम्लानि स्निग्धानि लवणानि च । सुखोष्णश्च परीषेकस्तथा संवाहनानि च ॥ २३ ॥ कुंकुमागुरुपत्राणि कुष्ठैलातगराणि च । कौशेयौर्णिकरोमाणि कार्पासानि गुरूणिच ॥ २४ ॥ निवातातपयुक्तानि तथा गर्भगृहाणि च । मृद्वी शय्याग्निसंतापो ब्रह्मचर्यं तथैव च । समासेनैवमादीनि योज्यान्यनिलरोगिषु ॥ २५ ॥

स्नेहस्वेद (चिकनाई युक्त पसीना) तथा तैलादि मलना बास्तिकर्म चिकना विरेचन शिरकी बस्ति शिरस्नेह और चिकनाईकी धूम ॥ २१ ॥ गरम सुहाते सुहाते तैल घृतादिके कुल्ले चिकनाईकी नास मांसरस दूध मांस घृतादि स्नेह युक्त जो पदार्थ हो ॥ २२ ॥ भोजनके लिये खट्टे फल और चिकने लवण युक्त पदार्थ तथा गरम २ काथादिका परिषेक और पालकी आदि सवारी ॥ २३ ॥ केसर अगर पत्रज कूट बडी इलायची तगर तथा रेशमी ऊनी सूती भारी कपडे पहरना या ओढना ॥ २४ ॥ विना वायुका स्थान धूपका स्थान तथा भीतरके कोठे रहनेको और नरम शय्या अग्निसे तापना और ब्रह्मचर्य रखना इत्यादि वस्तु आहार विहारके लिये वातरोगवालोंको उपयोग करनी चाहिये ॥ २५ ॥

स्नेहविरेचनतैल ।

तृवृद्दंतीसुवर्णक्षीरीसप्तलाशंखिनीत्रिफलाविडंगाना मक्षसमाः कल्काः । बिल्वमात्रकल्कस्तिल्वकमूलकंपिल्लकयोस्त्रिफलारसदधिपात्रे द्वे द्वे घृत पात्रमेकं । तदैकध्यं संसृज्य विपचेत्तिल्वकसर्पिरेतत् । स्नेहविरेचन मुपदिशंति वातरोगेषु । तिल्वकविधि रेवाशोक रम्यकयोर्द्रष्टव्यः॥ २६॥

निसोथ दंती चोक सातला शंखिनी त्रिफला विडंग इनको एक २ अक्ष लेकर पीसकर कल्क करले और तिल्वक (पट्टिका लोध) और कंपिल्लक (कमेला) (इसे डल्लन एला वृक्ष बताते हैं) इनका कल्क बिल्व प्रमाण करे फिर त्रिफलाका

(वाक्य २६) कंपिल्लक एलावृक्ष इति डल्लनः, रम्यकः पर्वतनिंबः ।

रस दो पात्र और दही दो पात्र और घृत एकपात्र मिलावे (पात्र ६४ पलके प्रमाण को कहते हैं) इनको मिलाकर पकावे यह तिल्वक का घृत वायु रोगोंमें स्नेह विरेचन के लिये कहा है और इस तिल्वक ही की विधि अशोक और रम्यक (पहाडी-नींब) के घृत बनानेमें समझनी चाहिये ॥ २६ ॥

अणुतैलकी विधि।

तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठान्याहृत्यानल्पकालं तैलपरिपीतान्यणूनि खंडशः कल्पयित्वावक्षुद्य महति कटाहे पानीये आप्लाव्य क्वाथयेत्ततः स्नेहमंबुपृष्ठाद्यदुदेति तत्सरकपाण्योरन्यतरेणादाय वातघ्नौषधप्रतीवापंच स्नेहपाककल्केन विपचेदेतदणुतैलमुपदिशंति वातरोगेषु अणुभ्यस्तैलद्रव्येभ्यो निष्पाद्यत इत्यणुतैलम् ॥ २७ ॥

तिलपेलनेके (कोल्हूके) काष्ठको जिसने बहुत समयतक तैल पीया हो (या खूब तैलपिलाकर) उसका बुरादा कराकर (या टुकडे कराके और कूटके) बडेकडाह भरे पानीमें भिगोकर औटावें जब जल पर उसका तैल निकलकर तिरने लगे तब सरक(सरके कपडा लपेट अथवा सराईसे) तथा हाथसे इनमेंसे किसीसे उस तैलको उतारले फिर उसमें वायुनाशक औषधें डालकर तैलपाक की विधिसे पकालेवे यह अणुतैल वायुके रोगोंमें (अभ्यंग आदिके लिये) कहा है तैल द्रव्योंके छोटे टुकडों या कणकोंसे यह तैल निकाला जाता है इससे इसे अणुतैल कहते हैं ॥ २७ ॥

सहस्रपाक और शतपाक तैलकी विधि।

अथ महापंचमूलकाष्ठैर्बहुभिरवदह्यावनिप्रदेशमसितमुषितमेकरात्रमुपशांतेग्नावपोह्य भस्मनि वृतां भूमिं विदारिगंधादिसिद्धेन तैलघटशतेन तुल्यपयसाभिषिच्यैकरात्रमवस्थाप्य ततो यावती मृत्तिका स्निग्धा स्यात्तामादायोष्णोदकेन महति कटाहेऽभ्यासिंचेत्तत्र यत्तैलमुत्तिष्ठेत्तत्पाणिभ्यां पर्य्यादाय स्वनुगुप्तं निदध्यात् ॥ २८ ॥

महत् पंचमूलकी लकडियां बहुतसी लेकर काली साफ पृथ्वीपर फैलाकर जलावे और रातभर रहने दे कि, जब अग्नि बुझजावे तब वहांसे उस भस्मको हटाकर उस पृथ्वीमें विदारि गंधादिसे सिद्ध किये हुवे तैलके सौघडे बराबर दूध मिलाकर डालदे और रात भर रहने दे प्रभात जितनी मिट्टी उससे चिकनी हुई हो उसे खुदवाकर बडे बडे

कडाहोंमें गरमपानीमें डालकर गरम करें जब तैल पानीपर उठ आवे उसे हाथोंसे (या पात्रादिसे) लेलेकर सावधानीसे रक्खे ॥ २८ ॥

ततस्तैलं वातहरौषधक्काथमांसरससक्षीराम्लभागसहस्रेण सहस्रपाकं विपचेद्यावता कालेन शक्नोति पक्तुं प्रतिवापश्चात्र हैमवता दक्षिणापथगाश्च गंधा वातघ्नानि च । तस्मिन् सिध्यति शंखानाध्मापयेत् दुंदुभिं घातयेत् छत्रं धारयेद्वालव्यजनं च वीजयेत् ब्राह्मणसहस्रं भोजयेत् तत्साधुसिद्धमवतार्य सौवर्णे राजते मृन्मये वा पात्रे स्वनुगुप्तं निदध्यात्तदेतत्सहस्रपाकमप्रतिवारवीर्यं राजार्हं तैलमेवं भागशतविपक्कं शतपाकम् ॥ २९ ॥

फिर उस उपरोक्त तैलको वायुनाशक औषधों के क्काथ मांसरस दूध और अम्ल (कांजी) के हजार भाग डाल डालकर हजारबार पकावें या जितने समय पका सके उतने वार पकावे और इसमें हिमालयकी सुगंधियां (कस्तूरी केसर जटामांसी आदि) और दक्षिणापथ (मलयाचल) की सुगंधियां (चंदन जायफल लवंगादि) डाले तथा वायुनाशक शतपुष्पा अश्वगंधादि औषधें भी डाले और पकते समय शंख और नगारे बजावे ऊपर छत्रकी छाया रक्खे चँवरसे बालमक्खी आदी उडाते रहे और हजार ब्राह्मणोंको भोजन करावे जब पकजावे तब उतारकर सुवर्ण या चांदीके पात्रमें या मिट्टीके चिकने पात्रमें (या कांचपात्रमें) भरभर कर सावधानीसे रक्खे यह सहस्रपाक नामक तैल अतिप्रभाववाला राजों के योग्य होता है इसी प्रकार वातहर औषध क्काथ मांसरस क्षीर और अम्लके सौ भाग डाल २ कर सौ वार पकावे तौ वह शत पाकनामक तैल होताहै (इसमें भागका अर्थ कई चतुर्थांश करते हैं अर्थात् १००० चतुर्थांश हजार भाग हुवे) ॥ २९ ॥

गंधर्वहस्तकमुष्ककनक्तमालाटरूषकपूतीकारग्वधचित्रकादीनां पत्राण्यार्द्राणि लवणेन सहोदूखलेऽवक्षुद्य स्नेहघटे प्रक्षिप्यावलिप्य गोशकृद्भिर्दाहयेदेतत्पत्रलवणमुपदिशंति वातरोगेषु ॥ ३० ॥

गधर्वहस्त (अरंड) मुष्कक (घंटापारूली) करंज अडूसा पूतिकरंज किरमाला चित्रक इत्यादिके गीलेपत्ते लेकर सेंधानमक मिलाकर ऊखलीमें कूटडाले और चिकने घडेमें भरकर कपड मिट्टी करके गोवरके आरनोंमें फूक दें यह पत्रलवण वायुरोगोंके लिये हित है (लवणका प्रमाण वृद्ध वैद्य पत्रोंके बराबर कहतेहैं परंतु यह लवणका भाग बहुत ही अधिक प्रतीत होता है हां एक वृक्षके पत्रोंके समान ठीक होवे) ॥ ३० ॥

एवं स्नुहीकांडवार्ताकुशिग्रुलवणानि संक्षुद्य घटं पूरयित्वा सर्पिस्तैलवसामज्जभिः प्रक्षिप्यावलिप्य गोशकृद्भिर्दाहयेदेतत्स्नेहलवणमुपदिशंति वातरोगेषु कांडलवणम् ॥ ३१ ॥

इसी भांति थोहरके डंडे जंगली बैंगन (बृहतीफल) सोहचना और सेंधा-। निमक इन्हे कूटकर घडा भरदे ऊपरसे घृत तैल चरबी मज्जाभी डालदे फिर कपड मिट्टीकर गोबरके उपलोंसे फूंकदे यह स्नेहलवण वातरोगोंमें हित कहा है और इसेही कांडलवण भी कहते हैं ॥ ३१ ॥

गंडीरपलाशकुटजबिल्वार्कस्नुह्यपामार्गपाटलापारिभद्रकनादेयीकृष्णगंधानीपनिर्दहन्याटरूषकनक्तमालकपूतिकबृहतीकंटकारिकाभल्लातकेंगुदीवैजयंतीकदलीवर्षाभूहीबेरक्षुरकेंद्रवारुणीश्वेतमोक्षकाशोका इत्येवं वर्गं समूलपत्रशाखमार्द्रमाहृत्य लवणेन सह संसृष्टं पूर्ववद्दग्ध्वा क्षारकल्पेन परिस्राव्य विपचेदेतत्प्रतिवापश्चात्र हिंग्वादिभिः पिप्पल्यादिभिर्वा ॥ ३२ ॥ इत्येतत्कल्याणकलवणं वातरोगेषु गुल्मप्लीहाग्निमांद्याजीर्णार्शोऽरोचकार्तानां कासादिभिरुपद्रुतानां चोपदिशंति पानभोजनेष्विति ॥ ३३ ॥

गंडीर (हरितशाक) ढाक कुडा बिल्व आक थोहर ओंगा पाढल पारिभद्र (निंब या कूट) नादेयी (जलजंबू) कृष्णगंधा (सोहंजना) कदंब निर्दहनी (अग्निमंथ) अडूसा दोनों करंज दोनों कटेली भिलावां इंगुदी (हिंगोट) वैजयंती बडी अरणी केला सांठी हीबेर (सुगंधवाला) क्षुरक (तालमखाना) इंद्रायण सुपेद मोखा और अशोक इन सब औषधोंको मूल पत्र शाखासमेत हरी लाकर लवण मिलाकर पूर्वोक्त रीतिसे भस्मकरके क्षारकल्पकी विधिसे जलमें घोलकर चुवाकर पकाले (लवण बनाले) और इसमें हिंग्वादिक अथवा पिप्पल्यादिक औषधें ऊपरसे मिलादे ॥ ३२ ॥ यह कल्याणक नाम लवण वायुके रोगोंमें पीने और खानेके लिये श्रेष्ठहै तथा गुल्म प्लीहा अग्निमंदता अजीर्ण बवासीर और अरुचिसे पीडित रोगियोंको तथा खांसी आदि रोगोंके उपद्रवयुक्त मनुष्योंके लियेभी यह कल्याण लवण खाने और पीनेमें हितकारक कहाहै ॥ ३३ ॥

भवति चात्र ॥ विष्यंदनादुष्णभावाद्दोषाणां च विपाचनात् ।
संस्कारपाचनाच्चेदं वातरोगेषु शस्यते ॥ ३४ ॥

इति चिकित्सितस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इतपर एक श्लोकहै कि ॥ विष्यंदी (अभिष्यंदिताको दूर करनेवाला) होनेसे और उष्ण होनेसे तथा दोषोंको पकानेवाला होनेसे उथा संस्कारसेभी पाचन होनेसे यह कल्याणक लवण वायुके रोगोंमें श्रेष्ठहै ॥ ३४ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातो महावातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे महावातव्याधियोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

द्विविधं वातशोणितमुत्तानमवगाढं चेत्येके भाषंते तत्तु न सम्यक् । कुष्ठवदुत्तानं भूत्वा कालांतरेणावगाढीभवति तस्मान्न द्विविधम् ॥ १ ॥

कई आचार्य वातरक्तको दो प्रकारका इस भांतिसे कहते हैं कि एक तौ ऊपर शरीरपर उभरा हुवा दूसरा अवगाढ (शरीरके भीतर घुसा हुआ) परंतु यह ठीक नहीं क्योंकि यह भी कुष्ठकी तरहसे शरीर पर उभरकर कालांतरमें शरीरके भीतर घुसजाता है इससे यह दो प्रकारका नहीं होसकता ॥ १ ॥

तत्र[1] बलवद्विग्रहादिभिः[2] प्रकुपितस्य[3] वायोर्गुरूष्णाध्यशनशीलस्य[4][5] प्रदुष्टं[6] शोणितं[7] मार्गमावृत्य[8][9] वातेन[10] सहैकीभूतं[11][12] युगपद्वातरक्तनिमित्तां[13][14] वेदनां[15] जनयतीति[16] वातरक्तं तत्तु पूर्वं हस्तपादयोरवस्थानं कृत्वा पश्चाद्देहं व्याप्नोति ॥ २ ॥

यहां बलवान्के साथ कुश्ती करने अति परिश्रम करने आदिसे कुपित हुआ वायु और भारी गरम भोजन करने बार बार भोजनपर भोजन करनेवाले मनुष्यका रुधिर दूषित होकर मार्ग (धमनियोंके मार्ग) में स्थित होकर वायुके संगमिल जाता है और वायु और रुधिरकी वेदनायें करता है इसे वातरक्त कहते हैं यह पहले हाथ पावोंमें स्थित होकर फिर शरीरमें व्याप्त होजाता है ॥ २ ॥

पूर्वरूपादि ।

तस्य[1] पूर्वरूपाणि[2] तोददाहकंडूशोफस्तंभत्वं पारुष्यं शिरास्नायुधमनिस्पंदनसक्थिदौर्बल्यानि[3] श्यामरक्तमंडलोत्पत्तिश्चाऽकस्मात्[4][5] पाणिपादतलांगुलिगुल्फप्रभृतिष[6] ॥ ३ ॥ तत्राप्रतिकारिणोऽपचारिणश्च रोगो व्यक्तस्तस्य लक्षणमुक्तं तत्राप्रतिकारिणो वैकल्यं भवति ॥ ४ ॥ भवति चात्र ॥

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनां चापि वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ५ ॥

इस वातरक्तका पूर्वरूप यह है कि अंगोंमें दरद दाह खाज सूजन जकडाव खुरदरापन तथा शिरा स्नायु और धमनियोंमें फुरकन होना और साथलोंमें दुर्बलता होना तथा अकस्मात् हाथोंकी हथेली तलवे अंगुली टकने आदिमें काले लाल चकत्ते हो आना ॥ ३ ॥ यदि इस दशामें कोई यत्न न करे तथा कुपथ्यसे रहे तौ उनके यह रोग प्रगटरूपसे शरीर पर होजाताहै जिसके लक्षण पहले कहे जाचुके हैं (देखो निदानस्थान प्रथम अध्याय) और प्रगट वातरक्त रोग होनेपरभी जो प्रयत्न नहींकरे उनके शरीरमें विकलता हो जाती है ॥ ४ ॥ यहां एक श्लोकहै कि प्रायः यह वातरक्तका कोप सुकुमार (नाजुक, कोमल,) मनुष्योंके स्थूल (मोटे) आदमियोंके तथा सुखी (आराममें पडे रहनेवाले) लोगोंके मिथ्या आहार विहार करनेसे होताहै ॥ ५ ॥

साध्यता ।

तत्र प्राणमांसक्षयपिपासाज्वरमूर्च्छाश्वासकासस्तंभारोचकाविपाकविसरणसंकोचनैरनुपद्रुतं बलवंतमात्मवंतमुपकरणवंतं चोपक्रमेत् ॥ ६ ॥

इसमें जो बल और मांसक्षय पिपासा ज्वर मूर्च्छा श्वास खांसी शरीर अकडना अरुचि भोजन न पचना विसरण (फैलाव अथवा अतिसार) अंगोंका सुकड जाना इन उपद्रवों से रहित हो बलवान् हो पथ्यसे रहनेवाला हो ठीक २ उपचार करनेवाला हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६ ॥

तत्रादावेव बहुवातरूक्षम्लानांगाद्दते मार्गावरणाददुष्टशोणितमसंकृदल्पाल्पमवसिंचेद्वातकोपभयात् । ततो वमनादिभिरुपक्रमैरुपपाद्य प्रतिसंसृष्टभक्तम् । वातप्रबले पुराणघृतं पाययेदजाक्षीरं चार्द्धतैलं मधुकाक्षयुक्तं शृगालविन्नासिद्धं वा शर्करामधुमधुरं शुंठीशृंगाटककशेरुसिद्धंवा श्यामारास्नासुषवीशृगालविन्नापीलूशतावरीश्वदंष्ट्राद्विपंचमूलीसिद्धंवा ॥ ७ ॥

इस वातरक्त रोगमें आरंभहीमें बहुत वायुसे रूक्ष और ग्लानि युक्त शरीर हुवे पहलेही तथा दुष्ट रक्तसे मार्गोंका अवरोध होनेसे प्रथम बिगडे रुधिरको कईबार थोडा थोडा निकलाना चाहिये एकवार ज्यादा वायुकोप होनेके भयसे न निकलावे और पेयादिक्रमसे भक्त (तंडुलजलादि) का त्याग कराके वमन विरेचनादिसे उपचार

(गद्य. ७) प्रतिसंसृष्टभक्तमिति प्रतिसंसृष्टं पेयादिक्रमेणत्यक्तं भक्त ओदनं येन तस्य (इतिडल्लनः)

करे (प्रतिसंसृष्ट भक्तका अर्थ यह है कि, चावलोंके पेयादिपदार्थको त्यागदेनेवाले रोगी को) और वायु प्रबल होनेवाले को पुराना घृत पिलावे (अथवा) बकरीके दूधमें आधा तेल मिलाकर शृगाल विन्ना (पृश्निपर्णी) से सिद्धकर कर्षभर मुलेठी युक्त कर शर्करा शहदसे मधुर करके पिलावें (अथवा) सोंठ सिंघाडे और कसेरुसे सिद्ध किया वही बकरीका दूध अर्द्ध तैल युक्त पिलावें अथवा वही बकरीका दूध अर्द्धतैलयुक्त श्यामा (काली निसोथ, रास्ना सुषवी (जलवल्ली) पृश्निपर्णी पीलू शतावरी गोखरू और दोनों पंचमूलसे सिद्धकरके पिलावे ॥ ७ ॥

द्विपंचमूलीकाथाष्टगुणसिद्धेन च पयसा मधुकमेषशृंगीश्वदंष्ट्रासरलभद्रदारुवचासुरभिकल्कप्रतिवापं तैलं पाचयित्वा पानादिषूपयुंजीत ॥ शतावरीमयूरकमधुकक्षीरविदारीबलातिबलातृणपंचमूलीक्काथसिद्धंवा काकोल्यादिप्रतिवापं बलातैलं शतपाकंच ॥ ८ ॥

दोनों पंचमूलका क्काथ करके आठगुण क्काथ और एक भाग दूध डालकर दुग्ध शेष रहनेपर उसमें मुलेठी मेढासींगी गोखरू सरल (रालका वृक्ष) देवदारु वच सुरभि (रास्ना) इनका कल्क युक्त कर तैल मिलाकर सिद्ध करे फिर इस तैलको पिलाने आदिमें उपयोग करे अथवा शतावरी ओंगा मुलेठी क्षीरविदारी खरेंटी अतिबला (कंघी) और तृण पंचमूलके क्काथसे सिद्ध किया हुवा तैल उपयोग करे— अथवा काकोल्यादिगण डाला हुवा बलातैल उपयोग करे तथा पूर्वोक्त शतपाक तैलका उपयोग करे ॥ ८ ॥

वातहरमूलसिद्धेन च पयसा परिसेचनमम्लेन वा कुर्वीत ।
यवमधुकैरंडतिलवर्षाभूभिर्वा प्रदेहः कार्यः ॥ ९ ॥

और वायुनाशक मूलोंसे सिद्ध कियेहुये दूधका सेचन करे या अम्ल रसका परिषेक करे ॥ तथा जौ मुलेठी अरंड (मूल) तिल और सांठी (की जड) इनका लेप करें ॥ ९ ॥

वातप्रबल वातरक्तका उपाय ।

तत्र चूर्णितेषु यवगोधूमतिलमुद्गमाषेषु प्रत्येकंशः काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकबलातिबलाबिसमृणालशृगालविन्नामेषशृंगीपियालशर्कराकसेरुकसुरभिवचाकल्कैर्मिश्रैषूपनाहार्थं सर्पिस्तैलवसामज्जदुग्धसिद्धाः पंच पायसा व्याख्याताः ॥ १० ॥

जौ गेंहू तिल मूंग उडद इनका चूर्ण करके काकोली क्षीरकाकोली जीवक ऋषभक खरेंटी कंघी कमलकी जड और नाली पृश्निपर्णी मेदासींगी चिरोंजी शक्कर कसेरू रास्ना वच ये मिलाकर इनमें घृत तैल चरबी मज्जा और दूध सिद्ध करके निवाये २ से उपनाह स्वेद करे इन्हें पंचपायस कहते हैं ॥ १० ॥

स्नैहिकफलसारोत्कारिका वा । चूर्णितेषु यवगोधूमतिलमुद्गमाषेषु विचित्रमत्स्यपिशितवेशवारो वा । बिल्वपेशिकातगरदेवदारुसरलारास्नाहरेणु कुष्टशतपुष्पासुरादधिमस्तुयुक्त उपनाहः । मातुलुंगाम्लसैंधवघृतमिश्रो मधुशिग्रुमूलमालेपः तिलकल्कश्चेति वातप्रबले ॥ ११ ॥

स्नैहिक फलसार (अरंड आदिकी गिरी) की लूपरी पकाकर उपयोग करे अथवा जौ गेहूं तिल मूंग उडद इनका चूर्ण कर विचित्र (रंग रँगीली) मछलीके मांसको मिलाकर वेशवार बनाकर उपयोग करे तथा बेलकी गिरी तगर देवदारु सरला (निसोथ) रास्ना हरेणु (मटरसम धान्यविशेष) कूठ सौंफ मद्य दही दहीका जल इन्हें मिलाकर उपनाह (स्वेद) करे तथा मातुलुंग (नींबू) सैंधानिमक घृतमें मिलाकर मधुशिग्रु (मीठे सहिंजने) की जडका लेप करे अथवा तिल पीसकर लेप करे ये यत्न वातप्रधान वातरक्तमें करने चाहिये ॥ ११ ॥

पित्त प्रबल वातरक्तका यत्न ।

पित्तप्रबले द्राक्षारेवतकट्फलपयस्यामधुकचंदनकाश्मर्यकषायं शर्करामधुमधुरं पाययेत् शतावरीमधुकपटोल त्रिफला कटुरोहिणी कषायं गुडूची कषायं वा पित्तज्वरहरचंदनादिकषायं शर्करामधुमधुरं तिक्तकषायसिद्धं वा सर्पिः ॥ १२ ॥

पित्तप्रबल वातरक्त हो तो उसमें दाख (मुनक्का) आरेवत (किर्माला) कायफल पयस्या (अर्कपुष्पी) मुलेठी चंदन खंभारी इनका क्वाथ शर्करा तथा शहदसे मीठा करके पिलावे अथवा शतावरी मुलेठी परवल त्रिफला कुटकीका क्वाथ अथवा गिलोयका क्वाथ (शर्करा मधुयुक्त) पिलावें अथवा पित्तज्वरनाशक चंदनादि क्वाथ शर्करा शहदसे मीठा करके पिलावे । अथवा तिक्त (पटोलादि) कषाय (त्रिफलादि) इनसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलावे ॥ १२ ॥

बिसमृणालभद्रश्रियपद्मककषायेणार्द्धक्षीरेण परिषेकः ॥ १३ ॥ क्षीरेक्षुर

(वा० ११) मातुलुंगादिभिः सह तु शोभांजनकमूलं आलेपः ।

(वा. १३) भद्रश्रियंशुक्लचंदनं, परिषेकः सर्वतोधारासेचनम् ।

समधुशर्करातंडुलोदकैर्वा द्राक्षेक्षुकषायमिश्रैर्मस्तुमधुधान्याम्लैर्जीवनीयसिद्धेन वा सर्पिषाऽभ्यंगः ॥ १४ ॥

कमलकी जड और नाली भद्राश्रिय (सपेदचंदन) पद्माख इनके क्काथमें आधा दूध मिलाकर उसका परिषेक करे (तरडादे) ॥ १३ ॥ तथा दूध ईखका रस शहद शर्करा और चावलोंका पानी इनसे अथवा दाख ईखके क्काथसे मिले दहीके जल शहद और धान्याम्ल इनसे अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध किये हुये घृतका अभ्यंग करे (मालिशकरे) ॥ १४ ॥

शतधौतघृतेनवा काकोल्यादिकल्कविपक्वेन वासर्पिषा ॥ १५ ॥ शालिषष्टिकनलवंजुलतालीशशृंगाटकगलोड्यगौरिगैरिकशैवलपद्मकपद्मपत्रप्रभृतिभिर्धान्याम्लपिष्टैः । प्रदेहो घृतमिश्रः ॥ १६ ॥ वातप्रबलेप्येष सुखोष्णः प्रदेहः कार्यः रक्तप्रबलेऽप्येवं बहुशश्च शोणितमवसेचयेत् । शीततमाश्च प्रदेहाः कार्या इति ॥ १७ ॥

अथवा सौवारके धोये घृतका मर्दन करे अथवा काकोल्यादिगणके कल्कसे पकाये हुये घृतका मर्दन करे ॥ १५ ॥ और शाली षष्टिक दोनों भांतिके चावल नल (नरकल) बंजुल (बेंत) तालीश (जिसके पत्र तालीश पत्र होते हैं) सिंघाडा गलोड्य (गिलोड्य एक पहाडी फल होता है इसको डल्हन यवबीज कहते हैं) गौरी (हलदी) और गेरू सिवाल पद्माक और कमलके पत्र इन्हें धान्याम्ल (एकभांतिकी कांजी) से पीसकर घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ १६ ॥ और वातप्रबल वातमें यही लेप थोडा गरम करके करना उचित है और रुधिरप्रधान वातरक्तमें भी यह लेप करे तथा बार बार फस्त खुलाकर खून निकलवावे तथा ठंढा लेपकरे॥१७॥

कफप्रधान वातरक्तमें औषध ।

श्लेष्मप्रबलेत्वामलकहरिद्राकषायं मधुमधुरं पाययेत् त्रिफलाकषायंवा मधुकशृंगवेरहरीतकीतिक्तरोहिणीकल्कं वा सक्षौद्रमूत्रं तोयेन गुडहरीतकींवा भक्षयेत् ॥ १८ ॥ १९ ॥

कफप्रधान वातरक्त हो तो आंवले और हलदी इनका क्काथकर शहदसे मीठा करके पिलावे अथवा त्रिफलाका क्काथ पिलावे अथवा मुलेठी सोंठ हरडे और

(वा. १४) अभ्यंगो मर्दनम् ।

(वा. १६) प्रदेहः आलेपनं, वंजुलः वेतसः स्थलपद्मंच, गलोड्यं (पर्वतीयफलविशेषः गिलोट इतिप्रसिद्धः) डल्हनमतेतु यवबीजम् ।

कुटकी इनका कल्क पिलावे अथवा गोमूत्रमें शहद मिलाकर पिलावे अथवा जलके संग गुड हरीतकी खिलावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

तैलमूत्रक्षारोदकसुराशुक्तकफघ्नौषधनिःक्वाथैःपरिषेकः आरग्वधादिकषायैर्वोष्णैः ॥ २० ॥ मस्तुमूत्रसुराशुक्तमधुकसारिवापद्मकसिद्धं वा घृतमभ्यंगः ॥ २१ ॥ तिलसर्षपातसीयवचूर्णानि श्लेष्मातककपित्थमधुशिग्रुमिश्राणि क्षारमूत्रपिष्टः प्रदेहः ॥ २२ ॥

तैल गोमूत्र क्षारोदक (खारका पानी) मदिरा सिरका और कफनाशक औषधोंका क्वाथ इन्हें मिलाकर कफप्रधान वातरक्तपर परिषेक करे अथवा किरमाला आदि औषधोंके गरम २ क्वाथसे परिषेक करना उचित है ॥ २० ॥ दहीका जल गोमूत्र मदिरा सिरका मुलेठी सारिवा और पद्माख इनसे सिद्ध किया घृत मालिश करे॥२१॥ और तिल सरसों अलसी जौ इनके चूर्णमें ल्हेसुवा कैथ मीठासहिंजना मिलाकर क्षार तथा गोमूत्रमें पीसकर लेप करे ॥ २२ ॥

श्वेतसर्षपकल्कः, तिलाश्वगंधाकल्कः, प्रियालशेलुकपित्थत्वक्कल्कः, मधुशिग्रुपुनर्नवाकल्कः, व्योषतिक्तापृथक्पर्णीबृहतीकल्कः, इत्येते पंच प्रदेहाः सुखोष्णाः क्षारोदकपिष्टाः ॥ २३ ॥

सुपेद सरसोंका कल्क, तिल और असगंधाका कल्क, चिरोंजी ल्हेसुवा और कैथकी छालका कल्क, मीठासहिंजना और सांठीका कल्क तथा त्रिकुटा कुटकी पृश्निपर्णी और बृहतीका कल्क ये पांच कल्क कहे इन्हें क्षारके जलसे पीस थोडा गरम करके लेपकरे ॥ २३ ॥

शालपर्णी पृश्निपर्णीबृहत्यौ वा क्षीरपिष्टास्तर्पणमिश्राः ॥ २४ ॥
संसर्गे सन्निपाते च क्रियापथमुक्तं मिश्रं कुर्य्यात् ॥ २५ ॥

शालपर्णी पृश्निपर्णी और दोनों कटेलियोंको दूधमें पीसकर और संतर्पण औषध (जैसे जौके सत्तू) मिलाकर लेप करे ॥ २४ ॥ तथा द्विदोषप्रबल वातरक्तमें और त्रिदोषप्रबल वातरक्तमें उन्हीं उन दोषोंकी कहीहुई औषधोंको मिलाकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २५ ॥

सर्वेषु गुडहरीतकीं वा सेवेत ॥ २६ ॥ पिप्पलीर्वा क्षीरपिष्टा वारि पिष्टा वा पंचाभिवृद्ध्या दशाभिवृद्ध्या वा पिबेत् क्षीरोदनाहारो दशरात्रं भूय-

(वा० २४) तर्पणमिश्रा यवसक्तु युताः ।

श्चापकर्षयेदेवं यावत्पंच दशचेति तदेतत्पिप्पलीवर्द्धमानकं वातशोणि-तविषमज्वरारोचकपांडुरोगप्लीहोदरार्शःकासश्वासशोफशोषाग्निसादहृद्रो-गोदराण्युपहन्ति ॥ २७ ॥

सब प्रकारके वातरक्तमें सामान्यतासे गुड और हरीतकीका सेवन करना श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ अथवा पिप्पलियोंको दुधमें पीसकर या जलमें पीसकर पांच पांच बढा-कर या दश दश बढाकर (ऋतु और बलके अनुसार) दश दिनतक (यथाक्रम बढा २ कर) पीना और उसपर दूध चावल भोजन करना दशदिन पीछे फिर उसी क्रमसे घटा घटा कर दशदिनमें वही पांच या दश पर आजाना चाहिये (यह बीस दिनका प्रयोग) वर्द्धमानपिप्पली वातरक्त विषमज्वर अरुचि पांडु प्लीहा उदररोग और बवासीर खांसी श्वास शोथ क्षय मंदाग्नि हृदय रोग और वातोदरादि उदरके रोग इन्हें यह नष्ट करता है ॥ २७ ॥

जीवनीयप्रतिवापं सर्पिः पयसा पाचयित्वाऽभ्यंजयेत् ॥ २८ ॥ सहासह देवाचंदनमूर्वामुस्ताप्रियालशतावरीकशेरुपद्मकमधुकशतपुष्पाकुष्टानिक्षीर पिष्टः प्रदेहो घृतमंडयुक्तः ॥ २९ ॥

जिवनीयगणसे मिलाहुआ घृत दूधसे पकाकर उसका मर्दन करें ॥ २८ ॥ सहा (माषपर्णी) सहदेवी, चंदन, मूर्वा, नागरमोथा, चिरोंजी, शतावरी, कशेरू, पद्माख, मुलेठी, सौंफ और कूट इन्हें दूधमें पीसकर घृतकी पपडी मिलाकर लेप करे ॥ २९ ॥

सैरेयकाटरूषकबलातीबलाजीवंतिसुषवीकल्को वा छागक्षीरपिष्टः काश्मर्यमधुकतर्पणकल्को वा ॥ ३० ॥ मधूच्छिष्टमंजिष्ठासर्जरससारि-वाक्षीरसिद्धं पिण्डतैलमभ्यंगः ॥ ३१ ॥

सैरेयक (पियाबासा) अडूसा खरेंटी अतिबला (कंघी) जीवंती सुषवी (कलौंजी) इनका कल्क बकरीके दूधमें पीसकर लेपकरे अथवा खंभारी मुलेठी और जौ इनका कल्क (बकरीके दूधमें) पीसकर लेपकरे ॥ ३० ॥ और मोम मजीठ राल सारिवा इन्हें दूधमें सिद्धकर पिंड तैलपका कर मर्दन करे ॥ ३१ ॥

सर्वेषु च पुराणघृतमामलकरसविपक्वं वा पानार्थे जीवनीयसिद्धं परिषे-कार्थे काकोल्यादिक्काथकल्कसिद्धं वा सुषवीक्काथसिद्धं वा कारवेल्लक-क्काथमात्रसिद्धं वा बलातैलं वा परिषेकावगाहबस्तिभोजनेषु ॥ ३२ ॥

(वा० २९) प्रियालं चारुबिजम् ।

(वा० ३२) सुषवी कालाजाजी कलौंजी इति । बलातैलं मूढगर्भचिकित्सितोक्तम् ।

सब प्रकारके वातरक्तमें पुराना घृत आमलोंके रसमें पक्क किया हुवा पीनेके लिये देना उचित है और जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत परिषेकके लिये उचित है तथा काकोल्यादिगणके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत तथा सुषवी (कलौंजी) के क्वाथसे सिद्ध किया घृत तथा करेलेके काथसे सिद्ध किया घृत परिषेकके लिये हित है ॥ अथवा बलातैल परिषेक अवगाहन (मलना स्नान करना) बस्ति और भोजनमें वातरक्तवालोंको हित है ॥ ३२ ॥

वातरक्तमें भोजन ।

शालिषष्टिकयवगोधूमान्नमनवं भुंजीत पयसा
जांगलरसेन वा मुद्गयूषेण वा नाम्लेन ॥ ३३ ॥

शाली और षष्टिक दोनों प्रकारके चावल जौ गेहूं पुराने भोजन करने चाहिये जिसमें भी पित्त प्रबल हो तो दूधके साथ वायु प्रबल हो तो जांगल जीवोंके मांसके रसके साथ और कफ प्रबल हो तो मूंगके यूषके साथ भोजनकरे और खटाईके साथ नहीं खावे ॥ ३३ ॥

शोणितमोक्षं चाभीक्ष्णं कुर्वीत । उच्छ्रितदोषे च
वमनविरेचनास्थापनानुवासनकर्मकर्तव्यम् ॥ ३४ ॥

वातरक्तमें अच्छे प्रकार रक्तमोक्ष करना (फस्त खोलना) भी चाहिये और यदि दोषोंकी अधिक उल्बणता हो तो वमन विरेचन और आस्थापन अनुवासन (बस्तिकर्म) करानाभी श्रेष्ठहै (रक्तकी प्रधानतामें रक्तमोक्ष कफकी प्रबलतामें वमन पित्तप्रबलवातरक्तमें विरेचन और वातप्रबल वातरक्त हो तो बस्ति करना हितहै)॥ ३४॥

भवंति चात्र ॥ एवमाद्यैः क्रियायोगै रचिरोत्पतितं सुखम् । वातासृक् साध्यते वैद्यैर्याप्यते तु चिरोत्थितम् ॥ ३५॥ उपनाह परीषेक प्रदेहाभ्यं- जनानि च । शरणान्यप्रवातानि मनोज्ञानि महांति च ॥ ३६॥ मृदुगंडो- पधानानि शयनानि सुखानि च । वातरक्ते प्रशस्यंते मृदुसंवाहनानिच ॥ ३७॥

यहांपर श्लोकहै कि, कहेहुवे उपायोंसे थोडे दिनका हुआ वातरक्त वैद्योंसे सुख साध्य होसकताहै और अधिक समयका पुराना याप्य होताहै (याप्यके लक्षण पहले कहेगये हैं)॥ ३५ ॥ वातरक्त रोगमें नीचे लिखे हुवे कार्य (आहारविहारादि) हित

(वा० ३३) पयसापित्तोत्तरे जांगलरसेन वातोत्तरे मुद्गयुषेण कफोत्तरे (इतिडल्हनः) ।

(श्लो० ३६) शरणानि गृहाणि, गंडोपधानानि गंडपदेन मस्तकादीनामपि उपधानानि मृदुसंवाहनानि इति संवाहनानि करमर्दनानि (इति नि. सं.)

होते हैं उपनाह (एक प्रकारका सेकना) परिषेक (तरडे या छींटे देना) लेप करना यथोक्त स्नेहादिका मर्दन करना शरण अर्थात् रहनेके स्थान वायुवर्जित विशाल और मनोज्ञ (सजे साफ) होना ॥ ३६ ॥ कोमल तकिये (और ओढना बिछौना) तथा सुखदायक शय्या और धीरे धीरे हाथ पैर दबाना ये हितहैं ॥ ३७ ॥

वातरक्तमें कुपथ्य ।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णाम्ललवणाशनम् ।
दिवास्वप्नमभिस्यंदि गुरु चान्नं विवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

व्यायाम (परिश्रम) करना मैथुन क्रोध तथा गरम खट्टे खारे पदार्थ खाने दिनमें सोना अभिस्यंदि और गरिष्ठ अन्न इन्हें वातरक्तकारोगी त्याग देवे ॥ ३८ ॥

अपतानक वायुचिकित्सा ।

अपतानकिनमस्रस्ताक्षमवक्रभ्रूवमस्तब्धमेढ्रमस्वेदनमप्रलापिनमखट्वापातितमबहिरायामिनं चोपक्रमेत् ॥ ३९ ॥

अपतानक वायुका रोगी जिसके नेत्र स्तंभित न हुयेहों जिसकी भ्रुकुटी टेढी न हुई हो जिसका लिंगेंद्रिय स्तब्ध (उत्थित) ही नहीं रहताहो जिसके पसीना नहीं आताहो जो प्रलाप नहीं करता हो जिसे खट्वापर गिराया हुवा नहीं हो जिसकी पीठ पीछेको धनुषाकार हो मुड नहीं गई हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये और जिसके ये लक्षण हों उसे असाध्य जान त्यागना चाहिये ॥ ३९ ॥

तत्र[1] प्रागेव[2][3] स्नेहाभ्यक्तं स्विन्नशरीरमवपीडनैर्न[4] तीक्ष्णैनोपक्रमेत[5] शिरः[6] शुद्ध्यर्थम् ॥ ४० ॥ अनंतरं च[7] विदारिगंधादिकाथमांसरसक्षीरदधिपक्वं[8] सर्पिरच्छं[9] पाययेत्[10] तथाहि[11] नातिमात्रं वायुः प्रसरति[12] ॥ ४१ ॥

अपतानक वायुके साध्य रोगीको प्रथम शिरकी शुद्धिके लिये यह यत्न करे कि, स्नेहाभ्यंग कराकर पसीना दिलाकर तीक्ष्ण अवपीडन (मूर्द्धाकी शिरास्नायु आदि का सम्यक् संचालन करनेवाले) द्रव्योंसे उपक्रम करे (शिरोविरेचन करे) ॥४०॥ इसके पीछे विदारिगंधादिके काथ मांसके रस दूध और दही इनसे सिद्ध किये हुये स्वच्छ घृतका पान करावे जिससे वायुका अत्यंत प्रसर (फैलाव) नहो ॥ ४१ ॥

ततो भद्रदार्वादिवातघ्नगणमाहृत्य सयवकोलकुलत्थसानूपौदकमांसंपंचवर्ग मेकतः प्रक्काथ्य तमादाय काषायमम्लक्षीरैः सहोन्मिश्र्य सर्पिस्तैलवसामज्जाभिः सह विपचेन्मधुरकप्रतिवापं तदेतत्त्रैवृतमपतानकिनां

परिषेकावगाहाभ्यंगपानभोजनानुवासननस्येषु विदध्यात् यथोक्तैश्चस्वेद विधानैः स्वेदयेत् ॥ ४२ ॥

फिर भद्रदारु आदि वातनाशक गण लाकर उसमें जौ कोल कुलथी और अनूप और जलजंतुओंका मांस पंच वर्ग इकट्ठा करके क्वाथ करले फिर उस क्वाथको लेकर उसमें अम्लवर्ग और दूध डालकर मिलालेवे फिर उसमें घृत तैल चरबी और मज्जा डालकर पकाले और पकते समय काकोल्यादि मधुर द्रव्य डालदे (जब स्नेहमात्र शेषरहे तब सिद्ध जाने) यह त्रैवृतं घृत अपतानक वायुके रोगियों को परिषेक अवगाहन (उसमें बैठना स्नान करना शरीर भिगोना और मलना और पिलाना तथा खिलाना इन सब कामोंमें बरतना चाहिये तथा यथायोग्य विधानोंसे (स्वेद करावे पसीना दिलानाभी हितहै) ॥ ४२ ॥

बलीयसि वाते सुखोष्णतुषबुसकरीषपूर्णे कूपे निदध्यादामुखात् । तप्तायां वाङ्गारचुल्यां तप्तायां वा शिलायां सुरापरिषिक्तायां पलाशदल-च्छन्नायां शाययेत् । कृशरावेशवारपायसैर्वा स्वेदयेत् ॥ ४३ ॥

यदि वायु अति प्रबल हो तो थोडे गरम तुष बुस (भूसा) तथा करीष (उपलोंकी करसी) (अर्थात् इनकी निवाई राख) से पूर्ण किये हुये गढेमें मुख तलक दबाकर कुछ देर बिठावे अथवा तपाये हुये भाड या लुहारकी भट्टी या शिलापर मदिरा छिड-ककर (मदिरासे भिगोकर) ऊपर ढाकके पत्ते बिछाकर उसपर (सुहाते २) लिटावे अथवा कृशरा (तिल तंडुलकी खिचडी) बेसवार (हलदी युक्त पिष्टधान्य) तथा पायस (खीर या खोआ आदि दुग्धके पदार्थ) इन्हें गरम २ से पसीना दिलावे ॥ ४३ ॥

मूलको रुबकस्फूर्जार्जकार्कसप्तलाशंखिनीस्वरससिद्धं तैलमपतानाकिनां परिषेकादिषूपयोज्यम् ॥ ४४ ॥

पिप्पलीमूल उरुबुक (शुक्ल एरंड) स्फूर्जक (फणि अकार तुलसीभेद) अर्जक (कुठेरक) आक शतला (थोहर) शंखिनी (यवतिक्ता) इनके स्वरसमें सिद्ध किया हुवा तैल अपतानकवाले रोगियोंको परिषेकादिमें उपयोग करना हित है ॥ ४४ ॥

अभुक्तवता पीतमम्लं दधि मरिचवचायुक्तमपतानकं । हंति तैलसर्पिर्वसा क्षौद्राणि च ॥ ४५ ॥ एतच्छुद्धवातापतानकविधान मुक्तं संसृष्टे कर्तव्यम् । वेगांतेषु चावपीडनं दद्यात् ॥ ४६ ॥

बिना भोजन किये खट्टा दही मिरच और वचका चूर्ण मिलाकर पीना अपतानकको नाश करता है तथा तैल घृत चरबी शहद पीनेसेभी अपतानक रोग जाय ॥४५॥ यह शुद्ध वातके अपतानकका विधान कहा है और अन्यदोषसे मिला हुवा अपतानक हो तो उसमें उसके अनुसारमिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये और दोरा होचुकने पश्चात् अवपीडन कराना चाहिये ॥ ४६ ॥

ताम्रचूडकर्कटकृष्णमत्स्यशिशुमारवराहवसाश्च सेवेत क्षीराणि वा वातहरसिद्धानि । यवकोलकुलत्थमूलकदधिघृततैलसिद्धा वा यवागूः ॥ ॥ ४७ ॥ स्नेहविरेचनास्थापनानुवासनैश्चैनं दशरात्राहतवेगमुपक्रमेत् । वातव्याधिचिकित्सितं चावेक्षेत रक्षाकर्म च कुर्यादिति ॥ ४८ ॥

ताम्रचूड (कुक्कुट) कर्कट (ककेडा) कृष्ण मत्स्य शिशुमार (सूसनाम जलजंतु) तथा शूकर इनकी चरबीका सेवन करें अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुये दुग्ध पान करे अथवा जौ कोल (बेर) कुलथीमूलक (पिप्पलीमूल) दही घृत तैल इनसे सिद्ध करी यवागू पीवे ॥ ४७ ॥ तथा स्नेह विरेचन और आस्थापन तथा अनुवासन बस्ति कर्म करके दश रात्रतक उसके वेग शांत होनेकी राह देखे यदि फिर वेग होजाय तौ फिर यत्न करे और वातव्याधिकथित चिकित्साको देखे और रक्षा कर्म भी करे ॥ ४८ ॥

पक्षाघातकीचिकित्सा ।

पक्षाघातोपद्रुतमम्लानगात्रं सरुजमात्मवंतमुपकरणवंतं चोपक्रमेत् । तत्र प्रागेव स्नेहस्वेदोपपन्नं मृदुना शोधनेन संशोध्यानुवास्यास्थाप्य च यथाकालमाक्षेपविधानेनोपचरेत् ॥ वैशेषिकश्चात्र मस्तिष्कशिरोबस्तिश्चाणुतैलमभ्यंगार्थे शाल्वणवपनाहार्थे बलातैलमनुवासनार्थे एवमतंद्रितस्त्रींश्चतुरो वा मासान् क्रियापथमुपसेवेत ॥ ४९ ॥

यदि पक्षाघात रोग हो तो उसके रोगीको जिसका शरीर हीन नहीं हुवाहो (दुबला न पडगयाहो) और जिसके शरीरमें पीडा होती हो और पथ्यसे रहनेवाला हो तथा उपचारकरनेवाला हो तो उसकी चिकित्सा करे (नहीं तो नकरे) इसमें पहले स्नेह और स्वेदका उपचार करके मृदु शोधनसे शोधकर (हलके वमन विरेचनादिसे कोठा शुद्ध करके) अनुवासन और आस्थापन बस्ति करके समयके अनुसार (ऋतुके अनुसार) आक्षेपक वायुके विधानसे उपचार करे (आक्षेपकी

औषधें करे) यहां इतना विशेषहै कि, दिमाग (की शुद्धि) के लिये शिरोबस्तिकरे और मलनेके लिये पूर्वोक्त अणुतैलका वरताव करे और उपनाहके लिये शाल्वाणका उपयोगकरे तथा बलातैलसे अनुवासन करें और तीनचार महीनेतक सावधानीसे चिकित्सा करते रहें ॥ ४९ ॥

मन्यास्तंभकी चिकित्सा ।

मन्यास्तंभेप्येतदेव विधानं विशेषतो
वातश्लेष्महरैर्नस्यै रूक्षस्वेदैश्चोपचरेत् ॥ ५० ॥

मन्यास्तंभरोगमें भी यही विधान (उपरोक्त) करना चाहिये विशेष करके वायु कफ नाशक नस्योंसे तथा रूक्षस्वेद (रूख पसीना दिलानेसे) उपचार करे ॥५०॥

अपतंत्र वायुकी चिकित्सा ।

अपतंत्रकातुरं नापतर्पयेत् वमनानुवासनास्थापनानि न निषेवेत् । वातश्लेष्मोपरुद्धोच्छ्वासं तीक्ष्णैः प्रध्मापनैर्मोक्षयेत् । तुम्बुरुपुष्कराह्वहिंग्वम्लवेतसपथ्यालवणात्रयं यवक्काथेन पातुं प्रयच्छेत् । पथ्याशतार्द्धं सौवर्चलद्विपले चतुर्गुणे पयसि सर्पिः प्रस्थं सिद्धं वातश्लेष्मापनुच्च कर्म कुर्यात् ५१

अपतंत्रक वायुके रोगीको अपतर्पण (लंघनादि) नहीं करावे और वमन अनुवासन और आस्थापन भी नहीं करावे । वायु और कफसे रुके हुवे उच्छ्वासको तीक्ष्ण प्रध्मापन (धमानेवाली श्वास जारी करनेवाली) औषधोंसे (नस्यदेकर या खान पानादिमें उपयोग करके) (श्वासका) मार्ग खोले । धनिया पुष्करमूल हिंगु अम्लवेतस हरीतकी और तीनों लवण (सैंधा काला सांभर) इन सबका चूर्णकर जौके क्वाथके संग पिलानेका उपाय करे । तथा हरीतकी ५० पल सौवर्चल (कालानमक) दोपल इनसे चौगुना दूध लेकर उसमें १ प्रस्थ घृत सिद्ध करके सेवनकरे तथा वायु कफ नाशक अन्य उपायभी करे ॥ ५१ ॥

अर्दित वायु चिकित्सा ।

अर्दितातुरं बलवंतमुपकरणवंतं च वातव्याधिविधानेनोपचरेद्वैशेषिकैश्च मस्तिष्कशिरोबस्तिनस्यधूमोपनाहस्नेहनाडीस्वेदादिभिः ॥ ५२ ॥

ततः सतृणं महापंचमूलं काकोल्यादिविदारिगंधादि मोदकानूपमांसं तथैवौदककंदांश्च संहृत्य द्विगुणोदके क्षीरद्रोणे निःक्काथ्य पादावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य तैलप्रस्थेनोन्मिश्र्य पुनरग्नावधिश्रयेत् ततस्तैलं क्षीरानुगतमव-

तार्थं शीतीभूतमभिमथ्नीयात्तत्र यः स्नेह उत्तिष्ठेत्तमादाय मधुरौषधसहा-क्षीरयुक्तं विपचेदेतत् क्षीरतैलमर्दितातुराणां पानाभ्यंगादिषूपयोज्यं तैलहीनं वा क्षीरसर्पिरक्षितर्पणमिति ॥ ५३ ॥

अर्दित वायुके रोगीको (देखें) जो बलवान् हो और यत्न करनेवाला हो तो उसे वातव्याधिके उपायोंसे चिकित्सा करे विशेषकर मस्तिष्क (मगज) की शिरो बस्ति नस्य धूम उपनाह स्नेहकर्म और नाडी स्वेदआदि करावे॥५२॥और तृणपंचमूल सहित बृहत्पंचमूल और काकोल्यादिगण विदारिगंधादिगण तथा जलजंतु और अनूप-जीवोंका मांस तथा जलके कंद ये सब लेकर द्रोणदूध दो द्रोणजल इन्हें मिलाकर पंचमूलादि औषधोंका इसमें काथ करे जब चतुर्थांश रहे उतारकर छानकर एक प्रस्थ तैल मिलाकर मथकर फिर अग्निपर चढावे फिर जब दूध और तैल खूब मिल जाय तब उसे उतारले (और जमादे) जब ठंढा होजाय तब बिलो ले और जो घृत निकले उसे लेकर काकोली मधुयष्टी आदि मधुर औषध तथा माषपर्णी और (चतुर्गुण) दूध डाल कर फिर पकावे यह क्षीरतैल अर्दित वायुके रोगीको पीने और मालिश आदिमें उपयोग करना चाहिये और तैल विना जो इसी रीतिसे बना हुवा क्षीरसर्पि हो वह नेत्रोंके तर्पण (तृप्ति) करनेवाला होताहै ॥ ५३ ॥

गृध्रसीआदि ।

गृध्रसीविश्वाचीक्रोष्टुकशिरःखंजपंगुलवातकंटकपाददाहपादहर्षावबाहु-कबाधिर्यधमनीगतवातरोगेषु यथोक्तं यथोद्देशं च शिराव्यधं कुर्या-दन्यत्रावबाहुकाद्वातव्याधिचिकित्सितं चावेक्षेत ॥ ५४ ॥

गृध्रसी विश्वाची क्रोष्टुशीर्ष खंज पंगुता वातकंटक पाददाह पादहर्ष अवबाहुक बधिरता और धमनीगत वायुरोग इनमें यथोक्त और यथोद्देश शिरावेध करे (जहां जैसे उचित हो वैसे फस्त खोले) परंतु अवबाहुकमें फस्त नहीं खोले और कई ऐसा अर्थ करतेहैं अवबाहुकके सिवाय उक्त सबमें वातव्याधि वर्णित चिकित्साको (स्नेह स्वेदादिको) भी देखे और करे (अन्यत्रावबाहुकात् इस पदको कई तौ शिरावधके साथ लगाकर उसका निषेध अवबाहुकमें करतेहैं और कई "वात व्याधि चिकित्सितं अवेक्षेत" की साथ लगाकर वहाँ उनका निषेध अवबाहुकमें करतेहैं)॥५४॥

(वा० ५३) सहा माषपर्णी तस्याः क्षीरयुक्तं इति डल्हनः, अन्येतु माषपर्णी दुग्धं च नियोज्य विपचेत, अत्र सर्वद्रव्याणां समभागानामाढकम् ॥

(वा० ५४) अन्यत्राववाहुकात् इति वाक्येन शिराव्यधो निषिध्यते। गयीतु अन्यत्रावबाहुकात् वातव्याधि चिकित्सितमवेक्ष्येत इति संबध्नाति (इतिनि० सं)

कर्णशूलका यत्न ।

कर्णशूले तु शृंगवेररसं तैलमधुसंसृष्टं सैंधवोपहितं सुखोष्णं कर्णे दद्या-दजामूत्रं मधुतैलानि वा मातुलुंगदाडिमतिंतिडीकस्वरसमूत्रसिद्धं तैलं शुक्त-सुरातक्रमूत्रलवणसिद्धं वा नाडीस्वेदैश्च स्वेदयेत्, वातव्याधिचिकित्सां चावेक्षेत भूयश्चोत्तरे वक्ष्यामः ॥ ५५ ॥

कर्णशूलमें अदरखका रस तैल शहद मिलाकर सैंधा नमक डालकर थोडा गरम २ कानमें डाले अथवा बकरीका मूत्र शहद और तैल डाले अथवा नींबू या अनार या अमलीके रस और गोमूत्रसे सिद्ध किये तैलको कानमें डाले अथवा सिरका मद्य छाँछ गोमूत्र और लवण इनसे सिद्ध किया हुआ तैल डाले तथा नाडी स्वेदकी रीतिसे पसीना दिलावे और वातव्याधिकी चिकित्साको देखे और उसके अनुसार करे विशेष उत्तर तंत्रमें कर्णरोगोंकी चिकित्साके विषयमें कहेंगे ॥ ५५ ॥

तूणी प्रतूणी ।

तूणीप्रतूण्योः स्नेहलवणमुदकेन पाययेत्, पिप्पल्यादिचूर्णं वा हिंगुयवक्षारप्रगाढं वा सर्पिर्बस्तिभिश्चैनमुपक्रमेत् ॥ ५६ ॥

तूणी और प्रतूणी संज्ञक वायुमें घृत और लवणको जलके साथ पिलावें अथवा पिप्पल्यादि चूर्णको जलसे पिलावे अथवा हींग जवाखारसे मिलाहुवा घृत सेवे तथा बस्ति कर्म करे ॥ ५६ ॥

आध्मान और प्रत्याध्मानका यत्न ।

आध्माने त्वपतर्पणपाणितापदीपनचूर्णफलवर्तिक्रिया पाचनीयबस्ति-भिरुपचरेत् लंघनानंतरं चाऽन्नकाले धान्यकजीरकादिदीपनसिद्धान्य-न्नानि । प्रत्याध्माने छर्द्दनापतर्पणदीपनानि कुर्यात् ॥ ५७ ॥

आध्मान (अफरा) रोगमें अपतर्पण (लंघन) कराना और हाथोंको तपाना तथा दीपन चूर्ण दें और फलवर्ति क्रिया करे तथा पाचनीय तथा बस्तिसे उपचार करे और लंघनके पीछे भोजनके समय धनिया जीरा लवणादि दीपन द्रव्योंसे सिद्ध किया अन्न खिलावे—और प्रत्याध्मानमें वमन लंघन और दीपन यत्नकरे ॥५७॥

अष्ठीलाप्रत्यष्ठीला ।

अष्ठीलाप्रत्यष्ठीलयोर्गुल्माभ्यंतरविद्रधिवत् क्रियाविभाग इति ॥

हिंगुत्रिकटुवचाजमोदधन्याजगंधादाडिमतिंतिडीकपाठाचि त्रिकयवक्षार-सैंधवबिडसौवर्चलस्वर्जिकापिप्पलीमूलाम्लवेतससठीपुष्करमूल हवुषाच-व्याजाजीपथ्याश्चूर्णयित्वा मातुलुंगाम्लेन बहुशः परिभाव्याक्ष-मात्रां गुटिकां कारयेत् ततः प्रातरेकैकां वातविकारी भक्षयेत् । अथैष योगः कासश्वासगुल्मोदरारोचकहृद्रोगाध्मानपार्श्वोदरबस्तिशूलानाहमूत्र कृच्छ्रप्लीहार्शस्तूणीप्रतूणीरपहंति ॥ ५९ ॥

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीलामें गुल्म तथा अंतरविद्रधिकी चिकित्साकी भांति क्रिया करे ॥ ५८ ॥ हिंगु त्रिकटु वच अजमोद धनिया अजगंधा (ममरी कई अजवायन कहते हैं) खट्टा अनारदाना इमली पाठा चित्रक जौखार सैंधानमक विडनोन काला नोन सज्जी पिप्पलीमूल अम्लवेत्त कचूर पुष्करमूल हाऊबेर चव्य जीरा और हरीतकी इन सबको कूट चूर्ण बना मातुलुंग (बिजौरानींबू) के रसकी कई बार भावना देकर ४ टंक प्रमाण की गोली बांधे फिर नित्य प्रभात एक एक गोली वातविकारवाला मनुष्य खावे यह ऐसा योग है कि इससे खांसी श्वास गुल्म उदर रोग अरुचि हृद्रोग अफरा पासू और उदर तथा बस्तिकी शूल और अनाह मूत्रकृच्छ्र प्लीहवृद्धि (तिल्ली) और बवासीर तूणी तथा प्रतूणी इनके रोग नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

भवंति चात्र ॥ केवलो दोषयुक्तो वा धातुभिर्वा वृतोऽनिलः । विज्ञेयो लक्षणोर्हाभ्यां चिकित्सा वाऽविरोधतः ॥ ६० ॥ रुजावंतं घनंशीतं शोफं मेदो युतो निलः। करोति यस्य तं वैद्यः शोथवत्समुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

यहां श्लोक हैं कि ॥ केवल वायु या और दोषसे मिला हुआ अथवा धातु-ओंसे आवृत हो सो लक्षणोंसे तथा चेष्टासे जान लेवे और कदाचित् ठीक न जानी जावे तो विरोध रहित यत्नकरे ॥ ६० ॥ मेदसे मिली हुई वायु हो तो वेदना (चीस) करे करडापन और शीत तथा शोथ करे उसे शोथकी भांति चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

ऊरुस्तंभ ।

कफमेदोवृतो वायुर्यदोरू प्रतिपद्यते ॥ तदांगमर्दशैथिल्यरोमहर्षरुजा-ज्वरैः ॥ ६२ ॥ निद्रया चार्दितौ स्तब्धौ शीतलावप्रचेतनौ ॥ गुरुका

वस्थिरावूरू न स्वाविव च मन्यते ॥ तमूरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातं मथापरे ॥ ६३ ॥

कफ और मेदसे मिला हुवा वायु जब ऊरू (जंघा) में पहुँचताहै तब अंगमर्द (अंगडाई) शिथिलता रोमखडे होना और दर्द तथा ज्वर इन उपद्रवों सहित॥ ६२॥ दोनों साथल निद्रासे अर्दित (सोये हुयेसे) तथा स्तब्ध (अकडेहुये) और शीतल तथा चैतन्यता रहित भारी और अस्थिर (नरम) होजातेहैं स्पर्श ज्ञानशक्ति नष्ट होजानेसे उन्हें मनुष्य अपने साथलहैं या नहीं हैं ऐसा नहीं जानता इस व्याधिको ऊरुस्तंभ कहते हैं और कई इसको आढ्यवायुभी कहते हैं (साथल नरम होनेका कारण कफ और मेद होताहै) ॥ ६३ ॥

ऊरुस्तंभकी चिकित्सा ।

स्नेहवर्ज्यं पिबेत्तत्र चूर्णं षड्धारणं नरः । हितमुष्णाम्बुना तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम् ॥ ६४ ॥ लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णं क्षौद्रेण कटुकान्वितम् । मूत्रं वा गुग्गुलुं श्रेष्ठं पिबेद्वापि शिलाजितुम् ॥ ६५ ॥ ततो हंति कफाक्रांतं समेदस्कं प्रभंजनम् । हृद्रोगमरुचिं गुल्मं तथाभ्यंतरविद्रधिम् ॥ ६६ ॥ सक्षारमूत्रैस्वेदांश्च रूक्षाण्युत्सादनानि च । कुर्यादिह्यांश्च मूत्राढ्यैः करंजफलसर्षपैः ॥ ६७ ॥

ऊरुस्तंभरोगमें षड्धारण नाम (पहले कहा हुआ) चूर्ण बिना चिकनाईके गरम जलसे पीना चाहिये अथवा पिप्पल्यादि गणका चूर्ण गरम जलसे पीना चाहिये ॥ ५४ ॥अथवा त्रिफलाका चूर्ण कुटकी और शहदके संग चाटे अथवा गोमूत्रके संग गुग्गुलु या शिलाजतु पीवे ॥ ६५ ॥ इन यत्नोंसे कफ और मेदसे मिली हुई वायु शांत होवे तथा हृद्रोग अरुचि गुल्म एवं अंतर्विद्रधिभी अच्छे होजावें ॥ ६६ ॥ तथा गोमूत्रमें क्षार मिलाकर स्वेद करावे तथा उत्सादन (उद्वर्त्तन) भी करे वे रूक्षही होने चाहियें तथा करंजफल और सरसोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ६७ ॥

ऊरुस्तंभमें भोजनादि ।

भोज्याः पुराणश्यामाककोद्रवोद्दालशालयः । शुष्कमूलकयूषेण पटोलस्य रसेन वा । जांगलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्च लवणैर्हितैः ॥६८॥ यदा स्यातां परिक्षीणे भूयिष्ठे कफमेदसी । तदा स्नेहादिकं कर्म पुनरत्रावचारयेत् ॥६९॥

ऊरुस्तंभके रोगीको पुराने श्यामाक कोदों उद्दालक (बनके कोदों) तथा शालि (चावल) सूखे मूलोंके यूषके संग या पटोल (परवल) के रसके संग या घृत रहित (रूखे) जांगल जीवोंके मांस रस (शोरवे) के संग या अलोने हितकारक शाकोंके संग भोजन करावे ॥ ६८ ॥ और जब कफ मेद बहुतही क्षीण हो जावे तब फिर स्नेह आदि कर्म करावे (स्नेह पान करावे तथा स्निग्ध और स्नेहाभ्यंगादि करावे) ॥ ६९ ॥

गुग्गुलु कल्प ।

सुगंधिः सुलघुः सूक्ष्मस्तीक्ष्णोष्णः कटुको रसः । कटुपाकः सरो हृद्यो गुग्गुलुः स्निग्धपिच्छिलः ॥ ७० ॥ स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वति कर्षणः । तैक्ष्ण्योष्ण्यात्कफवातघ्नः सरत्वान्मलपित्तनुत् । सौगंध्यात्पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्म्याच्चानलदीपनः ॥ ७१ ॥

वातव्याधियोंमें गुग्गुलु सेवन उत्तम होता है इससे उसके गुण कहते हैं-गुग्गुलु सुगंधित है हलका है सूक्ष्म है और तीक्ष्ण गरम है कटुरस है और पाकमें भी कटु (चरपरा) है सर (फैलनेवाला और दस्तावर) है हृदयको हित है स्निग्ध है और पिच्छिल (घन) है ॥ ७० ॥ यह गुग्गुलु नया होवे तो बृंहण (शरीरकी धातु आदिको बढानेवाला) होता है और वृष्य (पुरुषार्थदायक) होताहै और पुराना होवे तो अति कर्षण (दुबला करनेवाला शरीरकी धात्वादि सुखानेवाला) होता है यह तीक्ष्ण और गरम होनेसे कफ और वायुको शांत करता है और सर होनेसे मल और पित्तको नाश करता है । तथा सुगंधित होनेसे कोठेकी दुर्गंध नष्ट करता है और सूक्ष्म होनेसे जठराग्निको दीपन करता है (इतने गुण गुग्गुलमें हैं) ॥ ७१ ॥

गुग्गुलुसेवनविधि ।

तं प्रातस्त्रिफलादार्वीपटोलकुशवारिभिः । पिबेदावाप्य वा मूत्रैः क्षारैरुष्णोदकेन वा ॥ ७२ ॥ जीर्णे[१] यूषरसै[२]क्षीरैर्भुं[३]जानो हंति[१०] मासतः । गुल्मं मेह[६]मुदावर्तमुदरं सभगंदरम् ॥ ७३ ॥ कृमिकंडूरुचिश्वित्राण्यर्बुदग्रंथिमेव च । नाड्याढ्यवातश्वयथुकुष्ठदुष्टव्रणांश्च स । कोष्ठसंध्यस्थिगं वायुं वृक्षमिंद्राशनिर्यथा ॥ ७४ ॥

इति चिकित्सितस्थाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस गुग्गुलु (शुद्धगुग्गुलु) को प्रातःकाल त्रिफला दारुहलदी पटोल (परवल) और कुशाके जलके संग (घोलकर) पीवे अथवा गोमूत्रके संग अथवा क्षारके संग अथवा गरम जलसे पीवे ॥ ७२ ॥ जब यह पचजावे तब यूषरस (मांसरस) तथा दूधके संग हितकारक भोजन करे इस प्रकार एक मासतक सेवन करनेसे गुल्म प्रमेह उदावर्त उदरके रोग और भगंदर ॥ ७३ ॥ कृमि खाज अरुचि श्वित्र (सपेद कुष्ठ) अर्बुद (रसौली) गांठें नाडीरोग आढ्य वायु (ऊरुस्तंभ) शोथ कुष्ठ तथा बिगडे हुये घाव और कोष्ठ संधि तथा अस्थि इनमें प्राप्त हुई वायु इतने रोगोंको यह गुग्गुलु नष्ट करताहै जैसे इंद्रका वज्र वृक्षको नष्ट करदेताहै ॥ ७४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिता भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे हम अर्श (बवासीर) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः । तद्यथा भेषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति ॥ १ ॥ तत्राचिरकालजातान्यल्पदोषलिंगोपद्रवाणि भेषजसाध्यानि मृदुप्रसृतावगाढान्युच्छ्रितानि क्षारेण कर्कशस्थिरपृथुकठिनान्यग्निना तनुमूलान्युच्छ्रितानि क्लेदवंति च शस्त्रेण ॥ २ ॥ तत्र भेषजसाध्यानामर्शसामदृश्यानां च भेषजं भवति क्षाराग्निशस्त्रसाध्यानां तु विधानमुच्यमानमुपधारय ॥ ३ ॥

अर्श (बवासीर) के साधनके चार उपायहैं यथा १ औषध २ क्षार (तेज़ाब) ३ अग्नि ४ शस्त्र॥ १ ॥ जिनमेंसे जो थोडे दिनका हुआ और अल्प दोष अल्प चिह्न और अल्प उपद्रववाला अर्श औषधसे साध्य होता है अर्थात् औषध सेवनसे अच्छा हो सकताहै. और जिसके मस्से कोमल फैलेहुये मोटे उभरेहुवे हों वे क्षार (तेजाब) से साध्यहोतेहैं तथा जो खरदरे स्थिर ऊंचे और करडे मस्सेहों उन्हें अग्निके दागनेसे अच्छे होतेहैं और जिनकी जड पतली हो जो ऊंचे उभरे (लटकते) हों क्लेदयुक्त हों वे शस्त्रद्वारा काटनेसे साध्यहोतेहैं॥ २ ॥ इनमेंसे जो भीतर हों नहीं दीखसकें ऐसे बवासीर (मस्सों) को भेषजसाध्य ही होनेसे औषधही होसकती है (जैसे नागकेसर और मिश्री समान भाग पीसकर दोटंक नित्य दूधके संग लेना यह प्रयोग नये रक्तार्शको बहुत हितहै) और क्षार अग्नि तथा शस्त्र साध्योंका विधान सुनो॥ ३॥

अर्शपर क्षार (तेजाब) लगानेकी विधि ।

तत्र बलवंतमातुरमर्शोभिरुपद्रुतमुपस्निग्धं परिस्विन्नमनिलवेदनाभिवृद्धिप्रशमार्थं स्निग्धमुष्णमल्पमन्नं द्रवप्रायं भुक्तवंतमुपवेश्य संभृते शुचौ देशे साधारणे व्यभ्रे काले समे फलके शय्यायां वा प्रत्यादित्यगुदमन्यस्योत्संगे निषण्णपूर्वकायमुत्तानं किंचिदुन्नतकटिकवस्त्रकंबलकोपविष्टं यंत्रशाकटेन परिक्षिप्तग्रीवासक्थं परिकर्मभिः सुपरिगृहीतमस्पंदनशरीरं कृत्वा ततोऽस्मिन् घृताभ्यक्तं यंत्रमृज्वणुमुखं पायौ शनैः शनैः प्रवाहमाणस्य प्रणिधाय प्रविष्टे चार्शो वीक्ष्य शलाकयोत्पीड्य पिचुवस्त्रयोरन्यतरेण प्रमृज्य क्षारं पातयेत् । पातयित्वा च पाणिना यंत्रद्वारं पिधाय वाक्छतमात्रमुपेक्षेत ॥ ४ ॥

तहां बलवान् जो अर्शका रोगी हो उसे स्नेहन स्वेदन कराके वायुकी उपाधियां बढें नहीं इसलिये चिकना गरम थोडा पतला अन्न खिलाकर पवित्र जगह साधारण कालमें जब मेह बादल नहो समान तख्त या खाटपर दूसरे मनुष्यकी गोदमें इस प्रकार औंधा बैठावें कि सूर्यकी तरफ गुदा हो और शिर नीचा और कमर (चूतड) कुछ ऊंचे हों फिर उसे कंबल या और वस्त्र उठाकर (और बिछाकर) वस्त्रकी पट्टी या निवार ग्रीवा और साथलोंमें डालकर ऐसा करदें कि क्षारकर्ममें शरीर हिले नहीं फिर और परिचारक भी उसे पकडे रहै जिससे वह हिलेझुले नहीं फिर सीधा पतले मुखवाला अर्शोयंत्र घृतसे चुपडकर धीरे धीरे गुदामें प्रवेशकरे जब यंत्र भीतर जावे तब मस्सोंको देखकर सलाईसे दबाकर या उकसाकर रुई या कपडेसे साफ करके मस्सोंपर क्षार (तेजाब) जो इसीलिये बनाहो डाले (लगावे) क्षार डालकर यंत्रके द्वारको हाथसे ढकले और सोबार गिननेके समयतक रहने दे ॥ ४ ॥

ततः प्रमृज्य क्षारबलं व्याधिबलं चावेक्ष्य पुनरालेपयेत्, अथार्शः पक्वजांबवप्रतीकाशमभिसमीक्ष्यावसन्नमीषन्नतमुपावर्तयेत् ॥ ५ ॥ क्षारं प्रक्षालयेद्धान्याम्लेन दधिमस्तुशुक्तफलाम्लैर्वा ततो यष्टीमधुकमिश्रेण

(वा० ४) ननु सूत्रस्थाने इत्युक्तं अर्शोव्याधेरभुक्तवतः कर्म कुर्वीत तदत्र कथंस्निग्धद्रवप्रायमन्नं भुक्तवंत॰मित्युक्तं तत्राहुरेकं द्विचतुःपंचदिनानि पूर्वाणि स्निग्धादिभोजनं नतुतद्दिने (इति नि. सं.)

(वा० ६) फलाम्लं बीजपूरादिरसः ॥

सर्पिषा निर्वाप्य यंत्रमपनीयोत्थाप्या[२]तुरमुष्णोदकोपविष्टं शीताभिरद्भिः परिषिंचेदशीता[३]भिरि[३]त्येके ॥ ६ ॥ ततो निर्वातमागारं प्रवेश्याचारिक मादिशेत् सावशेषं पुनर्दहेत् । एवं सप्तरात्रात्सप्तरात्रादेकैकमुपक्रमेत तत्र बहुषु पूर्वं दक्षिणं साधयेद्दक्षिणाद्वामं वामात्पृष्ठजं ततोग्रजमिति॥ ७॥

फिर पोंछकर क्षार (तेजाब) का बल और व्याधिका बल देखकर पुनः लेप करें—फिर जब बवासीरका मस्सा पक्के जामुनके फल जैसा ऊंधा होजावे और कुछ नीचा हो जावे तब छोडदें ॥ ५ ॥ और क्षारको धान्याम्ल-दही-दहीके पानी सिरका या फलोंकी खटाईसे धोडालें फिर मुलेठी मिले हुये घृतसे लेपकर यंत्र निकालें और रोगीको उठ खडा हो जानेदे और गरम जलमें (कमरतक) बिठाकर ठंढेपानीके छिडके शरीरपर दें और कोई कहते हैं, कि छिडकेभी गरम ही पानीके देवें ॥ ६ ॥ फिर वायुरहित स्थानमें रोगीको रखकरके आचारका उपदेश करें और जो बाकी रहें फिर इसी रीतिसे उन्हें क्षारसे दग्ध करदें ऐसे सातसात दिनमें एक एक मस्सेको दग्ध करें यदि बहुतसे मस्से हो तो पहले दाहनी तरफके मस्सेकी उपचार करे फिर बांई तरफके मस्सेका फिर पिछाडीकी तरफके मस्सेका और सबसे पीछे अगली तरफके मस्सेका उपचार करे ॥ ७ ॥

तत्र वातश्लेष्मनिमित्तान्याग्निक्षाराभ्यां साधयेत् ।
क्षा[३]रेणै[४]व मृदु[२]ना पित्त[१]रक्तनिमित्तानि ॥ ८ ॥

इनमेंसे वायु और कफकी बवासीरके मस्सोंको अग्नि और क्षारसे साधन करना चाहिये और पित्त और रुधिरकी बवासीरके मस्सोंको हलके क्षारसे साधनकरें ॥ ८ ॥

तत्र वातानुलोम्यऽन्नरुचिराग्निदीप्तिर्लाघवं बलवर्णोत्पत्तिर्मनस्तुष्टिरिति सम्यग्दग्धलिंगानि ॥ ९ ॥ अतिदग्धे तु गुदावदरणं दहो मूर्च्छा ज्वरः पिपासा शोणितातिप्रवृत्तिस्तन्निमित्ताश्चोपद्रवा भवंति ॥ १० ॥ श्यामाल्पव्रणता कण्डुरनिलवैगुण्यमिंद्रियाणामप्रसादो विकारस्य चाऽशांतिर्हीनदग्धे ॥ ११ ॥

जिसमें वायुका अनुलोम ठीक हो अन्नपर रुचिहो जठराग्नि दीपन हो शरीर हलका हो जावे बल और रूप बढने लगे तथा मन प्रसन्न हो तो सम्यक् दग्ध (ठीक

(.वा० ७) एकाइं सर्वाणि दहतो अतियोगोक्तो दोष इति (वृ. वा.)

(वा० ८) शुष्काण्यग्निना क्षारेण वा साधयेत् । क्षारेणैव मृदुनाऽऽर्द्राणि (वृ. वा.) अतिदहनेल्पदहने च ये विकारा उत्पद्यंते तेषां प्रतीकारा यथोक्तेन कर्तव्याः ॥

ठीक तेजःबसे जलकर आरामकी सूरत है) ऐसा जानना ॥ ९ ॥ और जो प्रमाणसे ज्यादा दग्ध हो जावे तो गुदामें चिरमिराट अनल मूर्च्छा ताप तृषा और अधिक रक्त बहना और इसके अन्य उपद्रव हो जाते हैं ॥ १० ॥ तथा अल्प दग्ध होनेसे व्रण कालासा पडजावे थोडा व्रण बाकी रह जावे खाज चले वायुकी विगुणताहो जावे इंद्रिय प्रसन्न नहीं हो और विकारकी शांतिभी नहीं हो ॥ ११ ॥

महांति च प्राणवतश्छित्वा दहेत् । निर्गतानि चात्यर्थं दोषपूर्णानि यंत्रादिना स्वेदाभ्यंगस्नेहावगाहोपनाहविस्रावणालेपनक्षाराग्निशस्त्रैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥ प्रवृत्तरक्तानि च रक्तपित्तविधानेन । भिन्नपुरीषाणि चाऽतीसारविधानेन बद्धवर्चांसि स्नेहविधानेनोदावर्तविधानेन वा एवं सर्वस्थानगतानामर्शसां दहनकल्पः ॥ १३ ॥ आसाद्य च दर्वीकूर्च शलाकानामन्यतमेन क्षारं पातयेत् । भ्रष्टगुदस्य तु विनायंत्रेण क्षारादिकर्म प्रयुंजीत ॥ १४ ॥

बडे मस्से यदि बलवान् मनुष्यके हो तो उन्हें पहले शस्त्रसे काट दे फिर क्षारादिसे जलादें और जो बाहरही मस्से हों और दोषोंसे परिपूर्ण हों तो उनपर बिनाही यंत्र लगाये स्वेद अभ्यंग स्नेह अवगाहन उपनाहन विस्रावण लेपन क्षार अग्नि और शस्त्र आदिसे यथायोग्य उपचार करे ॥ १२ ॥ और जिनमेंसे अधिक रुधिर निकलता हो उनकी चिकित्सा रक्तपित्तके विधानसे करे । और जिस बवासीरमें दस्त अधिक लगते हों उसका उपचार अतिसारके विधानसे करना चाहिये तथा जिस बवासीरमें कबजीयत हो उसका उपचार विधानसे (स्नेहपानादिसे मलको अनुलोम करे) और उदावर्त्तकी विधिसे उपचार करे । इसी प्रकार सब स्थानोंके मस्सोंके दग्ध करनेकी क्रिया समझे ॥ १३ ॥ क्षार लगाना हो तो दर्वी (लकडी आदिकी चपटे सिरेवाली) तथा कूची अथवा सलाई इनमेंसे किसीपर लगाकर मस्से आदिपर लगावें । जिसकी गुदा बाहर निकली हो उसके विनाही यंत्रके क्षार आदि कर्मोंका प्रयोग करना उचित है ॥ १४ ॥

सर्वेषु च शालिषष्टिकयवगोधूमान्नं सर्पिःस्निग्धमुपसेवेत पयसा निंबयूषेण पटोलयूषेण वा यथादोषं शाकैर्वास्तुकतंडुलीयकजीवंत्युपोदकीश्वबलावालमूलकपालंक्यसनचिल्लीचुच्चूकलायवल्लीभिरन्यैर्वा । यच्चान्यदपि स्निग्धमग्निदीपनमर्शोघ्नं सृष्टमूत्रपुरीषं च तदुपसेवेत ॥ १५ ॥

(वा० १५) चिल्ली क्षेत्रवास्तुकः ।

सब प्रकारके बवासीरमें शाली षष्टिक यव गेहूं इनको घृतसे स्निग्ध भोजन करे और दूधके संग अथवा नींबके यूषके संग अथवा परवलके यूषके संग भोजन करे शाकोंमेंसे दोषोंके अनुकूल देखकर वथुवा तंडुलीय (चौंलाई) जीवंती और पोईका शाक अश्वबला (घुडवेल) च्ची मूली पालक विजयसार चिल्ली चुच्चूका- शाक और मटर तथा वल्लीशाक इनमें जो योग्य हो उसके साथ खावें इनके सिवाय और भी जो स्निग्ध अग्निदीपन अर्शनाशक और मल मूत्र प्रवर्त करनेवाले पदार्थ हों उन्हें भोजन करे (जैसे शूरण और पलांडु आदि) ॥ १५ ॥

दग्धेषु चार्शस्स्वभ्यक्तोनलसंधुक्षणार्थमनिलप्रकोपसंरक्षणार्थं च स्नेहा- दीनां सामान्यतो विशेषतस्तु क्रियापथमुपसेवेत ॥ १६ ॥ सर्पींषि[2] च दीपनीय[1]वातहरसिद्धानि हिंग्वा[3]दिभि[4]श्चूर्णैः प्रतिसंसृज्य पिबेत् ॥ १७ ॥

जब क्षारादिसे मस्से दग्ध होजावे तब अभ्यंग करके अग्निके बढानेके निमित्त तथा वायुकोप होनेकी रक्षाके लिये स्नेहादिकी सामान्यता और विशेषताका ध्यान रक्खे और यथोचित सेवन करे ॥ १६ ॥ और दीपनीयगण तथा वातहर द्रव्योंसे सिद्ध किये घृतमें हिंग्वादि चूर्ण मिलाकर पान करावें (यह वातार्शमें उचित है) ॥ १७ ॥

पित्तार्शस्सु पृथक्पर्ण्यादीनां कषायेण दीपनीयप्रतीवापं भद्रदार्वादि पिप्प- ल्यादिसर्पिः, शोणितार्शस्सु मंजिष्ठामुरुंग्यादीनां कषाये श्लेष्मार्शस्सु सुरसादीनां कषाये सर्पिः उपद्रवांश्च यथास्वमुपचरेत् ॥ १८ ॥

पित्तकी बवासीरमें पृथक्पर्णी आदिके क्वाथसे दीपनीयगणकी प्रतिवाप युक्त देवदारु आदि तथा पिप्पल्यादि घृत पीवे । रक्तकी बवासीरमें मजीठ और मुरंगी आदिके क्वाथसिद्ध घृत पीवें तथा कफकी बवासीरमें सुरसादिके क्वाथमें सिद्ध किया घृत पीवे । और जो जो उपद्रव हो उन्हें यथोचित उपचारसे शांत करे॥ १८॥

यंत्र लगाकर क्षार अग्नि तथा शस्त्रकर्म करना ।

परं च[2] यंत्र[3]मास्थाय[4] गुदे[5] क्षाराग्निशस्त्रा[6]ण्यवचार[7]येत्तद्विभ्रमाद्धि[8] षाण्ढ्य[10]- शोफदाहमदमूर्च्छाटोपानाहातीसारप्रवाहणानि भवंति[11] मरणं[12] वा[13] ॥ १९॥

यंत्र गुदामें देकर क्षार अग्नि तथा शस्त्रका अवचार करना उचित है इसके विभ्रम (भूलचूक न्यूनाधिक) से नपुंसकता शोथ दाह मद मूर्च्छा पेट फूलना और अफारा अतीसार तथा प्रवाहिका होजातेहैं अथवा मृत्युभी होजातीहै ॥ १९ ॥

यंत्रका प्रमाण ।

अत ऊर्ध्वं यंत्रप्रमाणमुपदेक्ष्यामः ॥ तत्र यंत्रं लौहं दांतं शार्ङ्गं वार्क्षं वा गोस्तनाकारं चतुरंगुलायतं पंचांगुलपरिणाहं पुंसां षडंगुलपरिणाहं नारीणां तलायतं तद्द्विच्छिद्रं दर्शनार्थमेकं छिद्रमेकं तु कर्मणि । एकद्वारे हि शस्त्रक्षाराग्नीनामतिक्रमो न भवति ॥ २० ॥ छिद्रप्रमाणं तु अंगुलायतमंगुष्ठोदरपरिणाहं यदंगुलमवशिष्टं तस्यार्द्धांगुलमधस्तादर्द्धांगुलोच्छ्रितोपरिवृत्तकर्णिकमेष यंत्राकृतिसमासः ॥ २१ ॥

यहांसे अगाडी अब हम यंत्रके प्रमाणका उपदेश करतेहैं यह अर्शोयंत्र लोह (सुवर्ण चांदी लोह आदि धातुका) तथा दांत (हाथीदांत) या सींग या लकडीका गौके थनके आकारका होना चाहिये जिसकी लंबाई चार अंगुल और गोलाई पांच अंगुल ऐसा पुरुषोंके लिये और स्त्रियोंके लिये गोलाई (ऊपरसे) छः अंगुल और हथेली जैसा लंबा होना चाहिये उसमें दो छेद हों एक तौ ऊपर बाहरको चौडा छेद दिखाई देनेकेलिये दूसरा बराबरको बीचमेंसे क्षारादिका उपयोग करनेको क्योंकि उस एक छिद्रमेंसे शस्त्र क्षार तथा अग्निकर्म किया जावे तो उसका ठीक आतिक्रम नहीं होताहै ॥२०॥छिद्रका प्रमाण जिस छिद्रमेंसे मस्सा निकालकर उसपर क्षारादिकर्म किया जाताहै उसका प्रमाण यहहै कि, उसकी लंबाई अनुमान तीन अंगुलके गोलहो जो अँगूठेके बराबर छेद होजाय (कई इस छेदको तीन अंगुल लंबा और अँगूठे जितना चौडा ऐसा कहते हैं और कई अँगुल अंगुलके अंतरसे तीन तरफ अँगूठेकी मुटाई जैसे तीन छेद करना ऐसा ठीक समझते हैं) और ऊपरको जो एक अंगुल बचा इससे आधा अंगुल नीचे और आधा अंगुल ऊपर किनारा (कंगूर) होने चाहिये (कई आचार्य पुरुषों और स्त्रियोंके लिये एकसाही यंत्रका प्रमाण कहतेहैं) ॥ २१ ॥

मस्सोंपर लेपकी औषधें ।

अत ऊर्द्ध्वमर्शसामालेपान् वक्ष्यामः ।

इससे अगाडी हम बवासीरके लिये लेप वर्णन करते हैं ।

स्नुहीक्षीरयुक्तं हरिद्राचूर्णमालेपः प्रथमः ॥ २२ ॥ कुक्कुटपुरीषगुंजाहरिद्रापिप्पलीचूर्णमिति गोमूत्रपित्तपिष्टो द्वितीयः ॥ २३ ॥

(वा०२०) केचिदत्र स्त्रियाः पृथग्यंत्राभिधानग्रंथमपठित्वा स्त्रीपुंसयोस्तुल्यमेव यंत्रमाहुरिति (निबंधसंग्रहः) तलायतमित्यत्र तदायतमिति पाठांतरम् ॥

हलदीके चूर्णको थोहरके दुग्धमें पीसकर मस्सेपर लेप करना यह प्रथम लेप है ॥ २२ ॥ दूसरा लेप मुरगेकी वीट सपेद चिरमटी हलदी और पीपल इनके चूर्णको गोमूत्र और पित्तेमें पीसकर लेपकरे ॥ २३ ॥

दन्तीचित्रकसुवर्चिकालांगलीकल्को वा गोपित्तपिष्टस्तृतीयः ॥ २४ ॥ पिप्पलीसैंधवकुष्ठशिरीषफलकल्कैः स्नुहीक्षीरपिष्टोऽर्कक्षीरपिष्टो वा चतुर्थः ॥ २५ ॥ कासीसहरितालसैंधवाश्वमारकविडंगपूतीककृतवेधनजंब्वर्कोत्तमारणीदंतीचित्रकालर्कस्नुहीपयःसु तैलं विपक्वमभ्यंजनेनार्शः शातयति ॥ २६ ॥

तीसरा लेप । दंती, चित्रक, ब्राह्मी, कलहारी इनका कल्क गोमूत्र और पित्तमें पीसकर लेप करना (गोपित्तके स्थानमें गोरोचन उपयोग करना ऐसा कई शिष्टोंका मत है) ॥ २४ ॥ चौथा लेप पिप्पल सैंधालवण कूट शिरसके बीज इनका कल्क थोहरके दूधमें पीसकर अथवा आकके दूधमें पीसकर लेप करना ॥ २५ ॥ अथवा कसीस, हरताल, सैंधालवण, कनेर, विडंग, पूतिकरंज, कडुतोरी, जामुन, आक, उत्तम अरणी (भुई आंवला) दंती चित्रक अलर्क (सुपेद आक) तथा थोहरका दूध इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल लगानेसे मस्सेको गिरादेताहै ॥ २६ ॥

अर्शनाशक योग ।

अंत ऊर्द्ध्वमदृश्येष्वर्शस्सु योगान् पातनार्थं वक्ष्यामः ॥

यहांसे अगाडी अदृश्य मस्सोंके गिरानेके अर्थ योग वर्णन करते हैं ॥

प्रातःप्रातर्गुडहरीतकीमासेवेत । ब्रह्मचारी गोमूत्रद्रोण सिद्धं वा हरीतकी शतं प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुंजीत । क्षौद्रेण अपामार्गमूलं वा तंडुलोदकेन सक्षौद्रमहरहः शतावरीमूलकल्कं वा क्षीरेण । चित्रकचूर्णयुक्तं वा सीधुं पराध्यम् ॥ २७ ॥

नित्य सबेरे २ गुड हरीतकी मिलाकर सेवन करना (प्रमाणका अनुमान एक २ कर्ष भर समझिये) अथवा द्रोणभर गोमूत्रमें १०० हरीतकी सिद्ध करके शहदके संग नित्य सबेरे २ बलके अनुसार चाटे और ब्रह्मचारी रहे । अथवा अपामार्ग (चिरचटे) की जडको चावलोंके जलसे पीस शहद मिलाकर नित्य सेवन करे

(वा० २७) सीधुमद्यं पराध्यं श्रेष्ठं, अपामार्गमूलं पित्तरक्तार्शःसि, शतावरीमूलकल्कं वातपित्तानुबद्धरक्तजेषु, चित्रकचूर्णं कफवातार्शांसि, चूर्णं कर्षप्रमाणं (इति डल्हनः)

(यह योग पित्तार्शको हित होताहै) अथवा शतावरीकी जड दूधके संग पीसकर पीवे (यहभी रक्तार्श पित्तार्शमें हित है) अथवा तेज मदिरामें चित्रक का चूर्ण मिलाकर पीवे (यह कफ वायुके अर्शको हित है) ॥ २७ ॥

भल्लातकचूर्णयुक्तं वा सक्तुमंथमलवणं तक्रेण। कलशे वान्तश्चित्रकमूलकल्कावलिप्ते निषिक्तं तक्रमम्लमनम्लं वा पानभोजनेषूपयुंजीत एष एव भार्ग्यास्फोतायवान्यामलकगुडूचीषु तक्रकल्पः ॥ २८ ॥

अथवा भिलावेका चूर्ण १ कर्ष सत्तु १६ लेकर छांछमें घोलकर लवण रहित पीना–अथवा घडेके भीतर चित्रककी जड पीसकर लेप करदे उसमें छांछ डालकर रक्खे उस छांछको खट्टी होनेपर या विना खट्टी ही पीने और खानेके काममें लावे । और जैसे यह चित्रकके संग छांछकी विधि लिखी इसी भांति भारंगी, आस्फोता, अजवायन, आंवले और गिलोयके संग भी छांछकी विधि है (जो अन्य रोगोंपर उचित उपचारार्थ काममें आती है) ॥ २८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकविडंगशुंठीहरीतकीषु च पूर्ववदेव निरन्नो वा तक्रमहरहर्मासमुपसेवेत । शृंगवेरपुनर्नवाचित्रककषायसिद्धं वा पयः, कुटजमूलत्वक्फाणितं वा पिप्पल्यादिप्रतीवापं क्षौद्रेण, वातव्याध्युक्तं हिंग्वादिचूर्णमुपसेवेत । तक्राहारः क्षीराहारो वा क्षारलवणांश्चित्रकमूलक्षारोदकसिद्धान्वा कुल्माषान्भक्षयेत् । चित्रकमूलक्षारोदकसिद्धं वा पयः, पलाशतरुक्षारसिद्धान्वा कुल्माषान् ॥ २९ ॥

पीपल पिप्पलीमूल चव्य चित्रक विडंग सोंठ हरीतकी इनसे पूर्वोक्त विधिसे निरन्न नित्यप्रति एकमासतक छांछका सेवन करे । अथवा सोंठ, सांठी, चित्रक इनके क्वाथसे सिद्ध किया दूध पान करे। अथवा कुडेकी जडकी छालका फाणित पिप्पलीका चूर्ण डालकर शहदके संग देवे । अथवा वातव्याधिमें कहेहुये हिंग्वादि चूर्णको तक्राहारी या क्षीणहारी सेवन करे अथवा खारीनमक और चित्रककी जडके क्षारोदकसे सिजाई हुई कुल्माष (वाकली) सेवन करे । अथवा चित्रककी जडके क्षारके जलसे सिद्ध कियाहुवा दुग्ध पान करावे। अथवा पलाश (ढाक) के वृक्षके क्षारसे सिद्ध करी हुई कुल्माष (वाकली) सेवन करे ॥ २९ ॥

पाटलापामार्गबृहतीपलाशक्षारं वा परिस्रुतमहरहर्घृतसंसृष्टम् । कुटजवंदाकीमूलकल्कं वा तक्रेण ॥ चित्रकपूतीकनागरकल्कं वा पूतीकक्षा-

रेण । क्षारोदकसिद्धं वा सर्पिः पिप्पल्यादिप्रतीवापम् । कृष्णतिलप्रसृतं प्रकुंचं वा प्रातःप्रातरनुसेवेत शीतोदकानुपानम् । एभिरभिवर्द्धतेग्निरर्शांसि चोपशाम्यंति ॥ ३० ॥

पाटला, अपामार्ग (ओंगा) बृहती और पलाश इनके क्षारको चबाकर घृत-मिलाकर नित्य सेवनकरे । या कुडा वंदाकीकी जडका कल्क छांछके संग लेवे । अथवा चित्रक पूतिकरंज और सोंठ इनका कल्क पूतिकरंजके क्षारके संगले । अथवा इस क्षारके जलसे सिद्ध किये घृतमें पिप्पल्यादिका चूर्ण मिलाकर सेवन करे । अथवा दोपल या एकपल काले तिल नित्य सबेरे चबाकर ठंढापानी पीवे । इन प्रयोगोंसे जठराग्नि बढती है और बवासीर शांत होतीहै ॥ ३० ॥

द्विपंचमूलीदंतीचित्रकपथ्यानां तुलामाहृत्य जलचतुर्द्रोणे विपाचयेत् । ततः पादावशिष्टं कषायमादाय सुशीतं गुडतुलया सहोन्मिश्र्य घृत-भाजने निक्षिप्य मासमुपेक्षेत यवपल्ले । ततः प्रातःप्रातर्मात्रां पाय-येत । तेनार्शोग्रहणीदोषपांडुरोगोदावर्तारोचका न भवंति । दीप्ता-ग्निश्च भवति ॥ ३१ ॥

दोनों पंचमूल (दशमूल) दंती चित्रक और बडीहरड इन्हें एक एक तुला लेकर चार द्रोण जलमें पकावे चतुर्थांश उतारकर ठंढा करले फिर उसमें सौपल (एक तुला) गुड डालकर मिलाले और घृतके चिकने बासन हांडी (आदि) में भरकर मुख मूंदकर जौके ढेरमें दबादे और १ महीना दबा रहने दे फिर इसमेंसे प्रभात नित्य बलके अनुसार मात्रा पिलावे इससे बवासीर नहीं होती और हो तो नष्ट होजातीहैं तथा संग्रहणी पांडुरोग उदावर्त और अरुचिभी नहा होती और हों तो नष्ट होजाती हैं तथा जठराग्नि दीप्त होजातीहै ॥ ३१ ॥

पिप्पलीमरिचविडंगैलवालुकलोध्राणां द्वे द्वे पले इन्द्रवारुण्याः पंचप-लानि कपित्थमध्यस्य दश पथ्याफलानामर्द्धप्रस्थः प्रस्थो धात्रीफलानामे-तदैकध्यं जलचतुर्द्रोणे विपाच्य पादावशेषं परिस्राव्य सुशीतं गुडतुलाद्व-येनोन्मिश्र्य घृतभाजने निक्षिप्य पक्षमुपेक्षेत यवपल्ले । ततः प्रातःप्रात-र्यथाबलमपयुंजीत । एष खल्वरिष्टः प्लीहाग्निषङ्गार्शोग्रहणीहृत्पांडुरोग-शोफकुष्ठगुल्मोदरक्रिमिहरो बलवर्णकरश्चेति ॥ ३२ ॥

पीपल मिरच विडंग एलवालुक (कई इसे एलवा बताते हैं पर एलवा तो गुवार पाठेके रससे बनता है और यह उससे पृथक् कट्फल (कायफल) जैसे छाल होती है) और लोध ये दो दो पल और इंद्रायण ५ पल कैथका मध्य १० पल और हरडेकी छाल आधा प्रस्थ और आंवले एक प्रस्थले इन्हें ४ द्रोण पानीमें पकावे चतुर्थांश रहे उतारकर छान ले और ठंढा करले फिर उसमें २ तुला गुड मिलाकर घृतके चिकने बासनमें भर मुँह मूंद १५ दिनतक जौके ढेरमें रहने दे फिर उसमेंसे बलके अनुसार नित्य प्रभात पीवे यह अरिष्ट प्लीह मंदाग्नि बवासीर ग्रहणी हृद्रोग पांडु-रोग शोथ कुष्ठ गुल्म उदररोग कृमि इन्हें नष्ट करता है और बल और रूप करताहै॥ ३२॥

वातपित्तकफके अर्शोंके यत्न ।

तत्र वातप्रायेषु स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनमप्रतिषिद्धम् । पित्तजेषु विरेचनम् । एवं रक्तजेषु संशमनम् । कफजेषु शृंगवेरकुलत्थो-पयोगः । सर्वदोषहरं यथोक्तं सर्वजेषु यथा स्वौषधसिद्धं वा पयः सर्वे-ष्विति ॥ ३३ ॥

वातप्रधान अर्शमें स्नेहन स्वेदन वमन विरेचन आस्थापन और अनुवासन निषिद्ध नहीं है (अर्थात् करने चाहिये) और पित्तज अर्शमें विरेचन देना योग्य है एवं रुधिरकी बवासीरमें संशमन करे और कफज अर्शमें शृंगबेर (अदरख या सोंठ) और कुलत्थ इनका उपयोग करे तथा सब दोषके अर्शमें यथोक्त सब दोषहारी क्रिया करे अथवा सबमें उनके नाशक औषधोंका सिद्ध किया दूध उपयोग करे॥ ३३॥

भिलाँवासेवनकी विधि ।

अत ऊर्द्ध्वं भल्लातकविधानमुपदेक्ष्यामः ।

इससे आगाडी हम भिलांवेका विधान वर्णन करतेहैं ।

भल्लातकानि परिपक्कान्युपहतान्याहृत्यैकमादाय द्विधा त्रिधा चतुर्धा वा छेदयित्वा कषायकल्पेन विपाच्य कषायस्य शुक्तिमनुष्णां घृताभ्यक्त-तालुजिह्वौष्ठः प्रातःप्रातरुपसेवेत ततोऽपराह्णे क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहारः । एवमेकैकं वर्द्धयेत्तावद्यावत्पंचेति ततः पंचपंचाभिवर्द्धयेद्यावत्सप्ततिरिति । प्राप्य च सप्ततिमपकर्षयेद्भूयः पंचपंचयावत्पंचेति । पंचभ्यश्चैकैकं यावदेकमिति । एवं भल्लातकसहस्रमुपयुज्य सर्वकुष्ठार्शोभिर्विमुक्तो बल-वानरोगः शतायुर्भवति ॥ ३४ ॥

अच्छे पके भिलावे मँगाकर एकके दो तीन चार टुकडे करे और क्वाथके विधानसे पहलेदिन एक भिलांवेका क्वाथ करके ठंढा होनेपर एक शुक्ति (दोकर्ष) पीवे परंतु पहले मुँह जिह्वा और तालुवेको घृतसे चिकना करलेना चाहिये (नहीं तो सारा मुँह सूज जाताहै और इसीप्रकार टुकडे करते समय हाथोंमें घृत लगाले और भिलांवे का तेल न लगनेदे तथा क्वाथ करते समय भी उसके धुवांसे बचे रहे) तीजेपहर दूध घृत चावल खावे फिर नित्य सबेरे इसीप्रकार एक एक बढाकर सेवन करे जबतक ५ हों तबतक एक २ बढावे फिर पांच पांच नित्य बढावे जबतक ७० हो जब ७० होजावें तब इसी भांति नित्य पांच २ घटावे जबतक ५ रहें फिर एक २ नित्य घटावे जब एकरहे तब छोडदे इसप्रकार १००० हजार भिलावे उपयोग करनेसे सबकुष्ठ और बवासीर नष्ट होकर बलवान् रोग रहित होकर १०० वर्षकी आयु होजाती है ॥ ३४ ॥

दूसरीविधि ।

द्विव्रणीयोक्तेन विधानेन भल्लातकनिश्चुतितं स्नेहमादाय प्रातःप्रातः शुक्तिमात्रमुपयुंजीत जीर्णे पूर्ववदाहारः फलप्रकर्षश्च ॥ ३५ ॥

द्विव्रणीयोक्तविधानसे भिलांवेका निकला हुआ तैल लेकर नित्य सबेरे दोकर्ष मात्र पीवे (इसमें भी पहले मुखमें घृत लगाले) फिर जब पचजावे तब तीजेपहर वही दूध घृत भात खावे तो अतिफलदायकहो ॥ ३५ ॥

तीसरी विधि ।

भल्लातकमज्जभ्यो वा स्नेहमादायापकृष्टदोषः प्रतिसंसृष्टभक्तो निवातमागारं प्रविश्य यथाबलं प्रसृतिं प्रकुंचं चोपयुंजीत । तस्मिन् जीर्णे क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहारः । एवं मासमुपयुज्य मासत्रयमादिष्टाहारो रक्षेदात्मानम् ॥ ततः सर्वोपतापानपहत्य वर्णवान् बलवान् श्रवणग्रहणधारणशक्तिसंपन्नो वर्षशतायुर्भवति । मासे मासे च प्रयोगे वर्षशतं वर्षशतमायुषोभिवृद्धिर्भवति एवं दशमासानुपयुज्य वर्षसहस्रायुर्भवति ॥ ३६ ॥

अथवा भिलांवेकी गिरीका तेल निकलवावे और वमन विरेचनादिसे पहले दोषोंको अपकर्ष करके और यथोक्त आहारादि करके वात वर्जित स्थानमें प्रविष्ट होकर बलके अनुसार प्रसृति (दो पल) या प्रकुंच (एक पल) भिलांवेकी गिरीका तैल पीवे और जब पच जावे तीजे पहर दूध घृत भातका आहार करे इसप्रकार एक महीना सेवन करे और तीन महीने पथ्यसे रहे और (क्रोध अग्नि ताप श्रमादिसे)

आत्माकी रक्षा करे इससे सब प्रकारके उपतापसे मुक्त होकर रूपवान् बलवान् हो श्रवण हो (सुनने) ग्रहण (पकडने) और धारण करनेके शक्तिसे संपन्न होकर सौ वर्षकी आयु होजाती है और एक २ महीना यह प्रयोग करनेसे सौ सौ वर्षकी अवस्था बढती है ऐसे दश महीना प्रयोग करनेसे हजार वर्षकी आयु होजातीहै॥ ३६॥

(वक्तव्य) इनमें यह है कि, पहलेके मनुष्य बलवान् अधिक होतेथे तथा जठराग्नि और सहनशक्तिभी विशेष होतीथी तब इतने भिलांवे उपयोग किये जासकते होंगे परंतु अबके मनुष्यकी शक्ति बहुत हीनहै इससे समय विचारकर उपयोग करे पुस्तकमें बांचकर कभी कोई ऐसे उग्र उपचार न करे पहले जिन वस्तुओंकी अधिक मात्रा लिखी है अब उससे बहुतही स्वल्प करनी चाहिये ॥

भवंति चात्र । यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ । तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करौ हतः ॥ ३७ ॥ असाध्या नातिवर्तते प्रमेहा रजनीं यथा । क्षाराग्निन्नातिवर्तन्ते तथा दृश्या गुदोद्भवाः ॥ ३८ ॥ घृतानि दीपनीयानि लेहायस्कृतयः सुरा । आसवाश्च प्रयोक्तव्या वीक्ष्य दोषसमुच्छ्रितिम् ॥ ३९ ॥

यहांपर श्लोक है कि ॥ जैसे सब प्रकारके कुष्ठोंको खादिर और बीजक नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार सब प्रकारके बवासीरको वृक्षक (कुडा) और अरुष्कर (भिलांवा) नष्ट करनेमें उत्कृष्ट है ॥ ३७ ॥ जैसे असाध्य भी प्रमेह हलदीसे अच्छे होजाते हैं वैसेही बाहरके दृष्ट मस्से क्षार (तेजाब) तथा अग्निसे (जलानेसे) निर्मूल अच्छे होजाते हैं ॥ ३८ ॥ वैद्यको चाहिये कि दोषकी उल्बणता देखकर उसके अनुसार दीपन घृत तथा अवलेह तथा अयस्कृति (लोह साधन) और मदिरा और आसव अरिष्टादिका उपयोग करे ॥ ३९ ॥

वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटुकासनम् ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शस्सु परिवर्जयेत् ॥ ४० ॥

इति चिकित्सितस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्शके रोगीको इतने विहाराहार त्याग देने चाहिये कि वेगोंका रोकना स्त्रीसंग पीठयान (ऊँट घोडे आदिकी सवारी) और उत्कट आसन (ऊकडू तथा विषम आसन बैठे रहना) और जिस दोषकी उत्कृष्टता हो उस दोषके करनेवाले अन्नपानादि करना ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहिता भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतोऽश्मरीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम अश्मरी (पथरी रोग) की चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं॥

अश्मरी दारुणो व्याधिरंतकप्रतिमोमतः ।
औषधैस्तरुणस्साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ॥ १ ॥

पथरी दारुण रोग है यह अंतक (काल) के समान समझिये नवीन (छोटी) हो तो औषधोंसे भी साध्य होजाती है परंतु पुरानी होने (बडी होने) पर छेद (शस्त्रसे चीर कर निकालने) से ही शांत होसकती है ॥ १ ॥

तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम ईष्यते ।
तेनास्यापचयं याति व्याधेर्मूलान्यशेषतः ॥ २ ॥

इसके पूर्वरूपमें (जब कि यह होनेवाली हो तब) स्नेहादि कर्म किये जाने उचित हैं इससे इस व्याधिके मूल निःशेष नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

वाताश्मरी चिकित्सा ।

पाषाणभेदो वसुको वशिराश्मन्तकौ तथा । शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कंटकारिका ॥ ३ ॥ कपोतवंकार्तगलः ककुभोशीरकुब्जकाः । वृक्षादनी भल्लकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ४ ॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च । उषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथैः कृतं घृतम् । भिनत्ति वातसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ ५ ॥ क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनानि च कुर्वीत वर्गऽस्मिन्वातनाशने ॥ ६ ॥

पाषाणभेद वसुक (वकपुष्प) वशिर (सूर्यावर्त्त) अश्मन्तक (अम्लोटक) शतावरी गोखरू बडीकटेली छोटीकटेली ॥ ३ ॥ कपोतवंका (ब्राह्मी) आर्त्तगल(कवहा)अर्जुन खस कुब्जक (गुंजा) वृक्षादनी (वंदा) भल्लुक (शोनाक) वरना शाकफल ॥ ४ ॥ जौ कुलथी कोल (बेर) कैथके फल (निर्मली) इन्हें इकट्ठाकर इसमें उषकादिगणका प्रतीवाप करके (डालके) तैल सिद्ध करे यह तैल वातकी पथरीको शीघ्रही भेदन करताहै ॥ ५ ॥ तथा वायुकी पथरीमें खार यवागू यूष क्वाथ दूध और भोजन सब वातनाशक वर्गमेंसे करने चाहिये ॥ ६ ॥

(श्लोक ३।४) वसुकः बकपुष्पं, वशिरः सूर्यावर्तः, अश्मन्तकः अम्ललोटः, कुब्जः गुंजा, (इतिडल्लनः) आर्तगलः ककुनकः सुगन्धिमूलः कबहा इति ॥

पित्ताश्मरी चिकित्सा।

कुशः काशः शरो गुंद्रा उत्कटो मोरटोश्मभित् ॥ वरी विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकंटकम्॥ ७॥भल्लूकः पाटला पाठा धत्तूरोऽथ कुरंटिका ॥ पुनर्नवा शिरीषश्च कथितास्तेषु सोधितम् ॥ ८ ॥ घृतं शिलाजं मधुकं बीजैरिंदीवरस्य च ॥ त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम् ॥ भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ ९ ॥ क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशने ॥ १० ॥

कुशा कास सर गुंद्रा (गोंदी) उत्कट (बडी खगोली या गहला) मोरटा (ईख की जड) पषाणभेद शतावरी या खरेंटी विदारीकंद वाराहीकंद शालिकी जड गोखरू ॥ ७ ॥ अरलू पाटला पाढ धत्तूर (शरवालिका पतंग) पियावासा साँठी सिरस इन्होंका क्राथकरे और इसमें घृत सिद्ध करे और शिलाजीत मुलेठी कमलके बीज (कमलगट्टे) और खीरे ककडीके बीज उस घृतमें डाले यह घृत पीना पित्तकी पथरीको शीघ्र नाशकर देताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ और पित्तकी पथरीमें खार यवागू यूष तथा क्राथ और दूध एवं भोजन सब पित्तनाशक वर्गमेंसे करने चाहिये (अर्थात् क्षारादिक जो उपयोग किये जावें वे सब पित्तनाशक होने चाहिये और भोजनभी पित्तनाशकही करना उचित है) ॥ १० ॥

कफाश्मरीकी चिकित्सा।

गणो वरुणकादिस्तु गुग्गुल्वेलाहरेणवः।कुष्टभद्रादिमरिचचित्रकैः सुरसाह्वयैः ॥ ११ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन च ॥ भिनत्ति कफसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १२ ॥ क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेस्मिन्कफनाशने ॥ १३ ॥

वरुणादिगण गुग्गुलु इलायची हरेणु (लघु मटर समधान्यविशेष) कूट भद्रदारु आदिगण मिरच चित्रक सुरसा (तुलसी) ॥११॥ इनसे सिद्ध कियाहुवा बकरीका

(श्लो० ७ । ८) उत्कटो महती खगाली, मोरट इक्षुमूलं, कुरंटिका शरबालीभेद (इति डल्लनः) अन्येतु कुरंटिका सहचरी पियावासा इतिलोके ।

(श्लो० ११ । १२ । १३) भद्रादि भद्रदारु हरिद्रेत्यादि, कफाश्मरी चिकित्सितेनैव शुक्राश्मरी चिकित्सितं युक्तं मन्तव्यं तुल्यगुणत्वात् । कफशुक्रयोरिति (नि० सं०)

घृत ऊषकादि गणके प्रतिवाप करके युक्त कफकी पथरीको शीघ्रही नाश करता है ॥ १२ ॥ कफकी पथरीमें क्षार यवागू यूष क्वाथ दूध और भोजन सब कफनाशक वर्गहीमेंसे करने चाहिये ॥ १३ ॥

(वक्तव्य) जिस प्रकार कफाश्मरीकी चिकित्सा है इसी प्रकार शुक्राश्मरीकी भी जानना जाहिये क्योंकि कफ और शुक्रके समान गुण हैं देखो टिप्पणीमें निबंध-संग्रहका वाक्य ॥

शर्करानाशक यत्न ।

पिचुकंकोलकतकशाकेंदीवरजैः फलैः । चूर्णितैः सगुडं तोयं शर्कराशमनं पिबेत् ॥ १४ ॥ क्रौंचोष्ट्ररासभास्थीनिश्वदंष्ट्रा तालमूलिका । अजमोदा कदंबस्य मूलं नागरमेव च ॥ पीतानि शर्करां भिद्युः सुरयोष्णोदकेन वा ॥ १५॥ त्रिकंटकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं पिबेत् ॥ १६ ॥

पिचु (नींब अथवा कपास) कंकोल (शीतलमिरच) कपित्थफल शाक और नीलकमलके कमलगट्टे इन्हें चूर्ण करके गुडके शरबतके संग पीनेसे शर्कराके टुकडे२ बहकर निकल जाते हैं॥१४॥ क्रौंच पक्षी, ऊंट, गधा, इनकी हड्डी, गोखरू, मूशली, अजमोद, कदंबकी जड, सोंठ इन्हें मद्य या गरम जलसे पींवे तो ये शर्कराका नाश करती हैं ॥ १५ ॥ गोखरूका चूर्ण शहतमें मिलाकर बकरीके दूध संग सातदिन सेवन करनेसे पथरीका नाश होता है ॥ १६ ॥

द्रव्याणां तु घृतोक्तानां क्षारोवीमूत्रगालितः । ग्राम्यसत्वशकृत्क्षारैः संयुक्तः साधितः शनैः ॥ १७ ॥ तत्रोषकादिरावापः कार्यस्त्रिकटुकान्वितः । एष क्षारोश्मरीं गुल्मं शर्करां च भिनत्यपि ॥ १८ ॥

जिन द्रव्योंका घृत पथरीरोगमें लिखा है उनका क्षार बनाकर भेडीके मूत्रमें घोलकर ग्राम्यपशु गोमहिषादि के गोबरका क्षार मिलाकर उसका क्षार साधन करे और उसमें ऊषकादिगणकी प्रतिवापदेकर त्रिकटु मिलाकर तैयार करे यह क्षार पथरी गुल्म और शर्करा (मूत्रगतरेत) का नाश करताहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

(श्लो० १४) पिचुकः करीरस्तस्यफलं कपसि इत्येके, कंकोलः कंकोलमरिचं । डल्लनस्तु कंकोलस्थाने अंकोल इतिपठति पिचुकांकोल इतिपाठं पठति, कतकः कपित्थफलं । डल्लनस्तु कतकः प्रागुक्तः फटकरी इति भाषा एवं पठति ।

(श्लो० १७) ग्राम्यसत्वशकृत्क्षारैरिति ग्राम्यजंतुशकृत्क्षारैः ग्राम्यजंतवो ग्राम्यपशवः सत्वः जंतुरिति शब्दस्तोमः ।

तिलापामार्गकदलीपलाशयतवल्कजः । क्षारः पेयोविमूत्रेण शर्करानाशनः परः ॥ १९ ॥ पाटलाकरवीराणां क्षारमेवं समाचरेत् । श्वदंष्ट्रायष्टिका-ब्राह्मीकल्कं वाक्षसमं पिबेत् ॥ २० ॥ सहैडकाख्यौ पेयौ वा शोभांजन-कमार्कवौ । कपोतवंकामूलं वा पिबेदम्लसुरादिभिः ॥ २१ ॥ तत्सिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः । हरीतक्यादिसिद्धं वा वर्षाभूसिद्धमेव वा ॥ २२ ॥ सर्वथैवोपयोज्यः स्याद्गणो वीरतरादिकः । घृतैः क्षारैः कषायैश्च क्षीरैः सोत्तरबस्तिभिः ॥ २३ ॥

तिल चिरचटा केला पलाश (ढाक) और जौ इनका क्षार भेडके मूत्रके संग पीवे तो यह परमशर्करा नाशक है ॥ १९ ॥ तथा पाटला और कनेरभी इसी भांति सेवन करे अथवा गोखरू मुलेठी ब्राह्मी इनका कल्क अक्षप्रमाण करके उसे पीवे अर्था कर्षमात्र इन औषधोंका कल्क कर पीवे (तौ शर्करा पथरी नाश हो) ॥ २० ॥ सहा (क्षुद्रसहा महासहा) एडकाख्य (मेंढासींगी) इनका कल्क पीवे अथवा सहिंजना और भृंगराजका कल्क अथवा ब्राह्मीकी जडका कल्क अम्ल (धान्याम्लादि) तथा मद्यके संग पीवे ॥ २१ ॥ अथवा इनसे सिद्ध किया दूध पथरी और शर्कराकी पीडासे पीडित मनुष्य पीवे अथवा हरडेसे सिद्ध किया दुग्ध पीवे अथवा सांठीका सिद्ध किया दुग्ध पीवे ॥२२॥ अथवा घृतके सिद्ध करनेमें क्षार बनानेमें क्काथ करनेमें दुग्धमें सर्वथा वीरतरु आदि गणका उपयोग करे अथवा वीरतरु आदिहीका उपयोग उत्तर बस्तिमें करे ॥ २३ ॥

यदि नोपशमं गच्छेच्छेदस्तत्रोत्तरो विधिः । कुशलस्यापि वैद्यस्य यतः सिद्धिरिहाऽध्रुवा ॥ २४ ॥ उपक्रमो जघन्योयमतः स परिकीर्तितः ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ तस्मादापृच्छ्य कर्त्त-व्यमीश्वरं साधुकारिणा ॥ २५ ॥

यदि पथरी औषधोंसे शांत न हो तो उसकी पिछली विधि चीरकर निकालना है पर इसमें चतुर वैद्यकोभी यश स्थिर नहीं रहता अर्थात् चीरकर निकालनेपर प्रायः थोडेही दिनमें फिर होजानेकी पूरी शंकाहै ॥ २४ ॥ पथरीको चीरकर निकालना निंद्य उपाय है क्योंकि चीरनेमें अस्तव्यस्त होजावे तो शीघ्रही मृत्यु होजावे और

(श्लो० १९) पलाशयववल्कजः इत्यत्र तिलपलाशयवादीनो खंडजः क्षारः । कल्कः त्वचि खंडेच इति (वाचस्पतिः) ।

ठीक चीरकर निकालने पीछे फिर होनेका भय है इससे अति आवश्यकतामें चीरकर निकालेभी तौ ईश्वर (परमेश्वर या राजासे) प्रार्थना अभ्यासमें चतुर वैद्य चीरनेका साहस करे (अन्यथा कभी न चीरे) ॥ २५ ॥

छेदकर पथरी निकालनेकी विधि ।

अथ रोगान्वितमुपस्निग्धमपकृष्टदोषमीषत्कर्शितमभ्यक्तस्विन्नशरीरं भुक्तवंतं कृतबलिमंगलस्वस्तिवाचनमग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेनोपकल्पितसंभारमाश्वास्य, ततो बलवंतमविक्लवमाजानुसमे फलके प्रागुपवेश्य पुरुषं च तस्योत्संगे निषण्णपूर्वकायमुत्तानमुन्नतकटिकं वस्त्रधारकोपविष्टं संकुचितजानुकूर्परमितरेण सहावबद्धं सूत्रेण शाकैर्वा, ततः स्वभ्यक्तनाभिप्रदेशस्य वामपार्श्वं विमृद्य मुष्टिनाऽवपीडयेदधोनाभेर्यावदश्मर्य्यधः प्रपन्नेति ॥ ततः स्नेहाभ्यक्ते क्लिप्तनखे वामहस्तप्रदेशिनी मध्यमे पायौ प्रणिधायानुसेवनीमासाद्य प्रयत्नबलाभ्यां पायुमेढ्रांतरमानीय निर्व्यलीकमनायतमविषमं च बस्तिं सन्निवेश्य भृशमुत्पीडयेदंगुलीभ्यां यथा ग्रंथिरिवोन्नतं शल्यं भवति ॥ २६ ॥

जिसकी पथरी निकालनी आवश्यक हो उसको कुछ स्नेहन कराके दोषोंके विरेचनादिसे कर्षण करके थोडा कृश होनेपर उसके शरीरपर तैलाभ्यंग करके पसीना दिलाये हुये पीछे (जिस दिन पथरी निकाले उस दिन) कुछ थोडा भोजन कराके बलिदान मंगल पाठ स्वस्तिवाचन आदि कराके अग्रोपहरणीय अध्यायकी विधिसे सब यंत्र शस्त्र शलाका पट्टी आदि सामान पास रखकर रोगीको आश्वास (तसल्ली) देवे और एक अन्य बलवान् सावधान् पुरुषको घुटने बराबर ऊंचे तख्ते पर बिठाले और उसकी गोदमें रोगीको स्थापन करे रोगीके पूर्व काय शिर आदिको नीचा करदे और कमरको ऊंची करके उभारदे उसके नीचे वस्त्र बिछादे और उसके घुटने तथा कोहनी सिमटादे और इन्हें अन्यवस्तुसे या सूतके सांकडेसे बांधदे (जिससे छेद समय हाथ पांव न फैलावे) फिर नाभिसे कुछ बांयें तरफ नीचेसे चिकनाई लगाकर मलें और मुट्ठीसे दबावे जिससे पथरी नीचेको आजावें फिर वैद्य अंगुलियोंके नख कटाकर बाँये हाथकी तर्जनी और मध्यमा दो अंगुलियोंको चिकनाई लगाकर रोगीकी गुदामें प्रवेश करे और सीवनकी तरफ करके यत्न और बलसे गुदा और लिंगके बीचमें लेआवे और फिर सलवट रहित सुकडी हुई सीधी बस्तिमें लेजाकर दोनों अंगुलियोंसे पथरीको उकसावे जिससे वह पथरीरूप शल्यग्रंथीकी भांति ऊपरको उकस आवे ॥ २६ ॥

स चेद्गृहीतशल्ये तु विवृताक्षो विचेतनः । हतवल्लंबशीर्षश्च निर्विहारो मृतोपमः ॥ २७ ॥ न तस्य निर्हरेच्छल्यं निर्हरे तु म्रियेत सः । विना त्वेतेषु रूपेषु निर्हं तु समुपाचरेत् ॥ २८ ॥

यदि शल्य (पथरी) के अंगुलियोंसे (गुदामें प्रवेशकर) पकडने उकसानेमें आंखे निकालदे चेतना रहित (बेहोश) होजाय मृतके समान शिर लंबा करदे अंग न हिलावे मृतके तुल्य होजाय तो उसकी पथरी (छेदकर) नहीं निकालें यदि (चीरालगाके) निकालें तो मृत्यु होजावे और यदि ऊपर लिखे मृतकेसे रूप नहीं हों तो बेशक चीरा लगाकर निकालें ॥ २७ ॥ २८ ॥

सव्ये पार्श्वे सेवनीं यवमात्रेण मुक्त्वावचारयेत् । शस्त्रमश्मरीप्रमाणं दक्षिणतो वा क्रियासौकर्य्यहेतो रित्येके ॥ २९ ॥ यथा च न भिद्यते चूर्ण्यते वा तथा प्रयतेत चूर्णमल्पमप्यवस्थितं हि पुनः परिवृद्धिमेति तस्मात्समस्तामग्रवक्रेणाददीत ॥ ३० ॥ स्त्रीणां तु बस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः संनिकृष्टस्तस्मात्तासामुत्संगवच्छस्त्रं पातयेदतोऽन्यथा खल्वासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ॥ ३१ ॥ पुरुषस्य वा मूत्रप्रसेकक्षतान्मूत्रक्षरणम् ॥ ३२ ॥ अश्मरीव्रणादृते भिन्नो बस्तिरेकधा न भवति । द्विधाभिन्न-बस्तिराश्मरिको न सिध्यति । अश्मरीव्रणनिमित्तमेकधा भिन्नबस्ति-र्जीवति क्रियाभ्यासात् । शास्त्रविहितच्छेदान्निःस्यंदपरिवृद्धत्वाच्च शल्यस्येति ॥ ३३ ॥ उद्धृतशल्यं तूष्णोदकद्रोण्यामवतार्य स्वेदयेत्तथा हि बस्तिरसृजा न पूर्यते पूर्णे वा क्षीरवृक्षकषायं पुष्पनेत्रेण विदध्यात् ॥ ३४ ॥

बाँई तरफकी सीवनसे जो बराबर छोड़कर पथरीके समान चीरा लगावे और कईयोंका यह भी मत है कि, पथरीके प्रमाण दाहिनी तरफको चीरे इससे क्रियामें सहलता होती है ॥ २९ ॥ वैद्यको ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे भीतर पथरी

(श्लो० २९) सेवनीं युक्त्वा विहाय शस्त्रं अवचारयेत् ।

(वा० ३०) अग्रवक्त्रेण आहरणयंत्रेण ।

(वा० ३२) मूत्रप्रसेको नाम मूत्रक्षरणमार्गः ।

(वा० ३३) क्रियाभ्यासात् योजनाधिक्रियाभ्यसनात्, निस्यंदपरिवृद्धत्वाच्छल्यस्येति निःस्यंदो मूत्रं तेनपरि-वृद्धं अश्मरीशल्यं तस्य शल्यापहरणेपि निःशेषापरिस्रुतत्वात् भिन्नबस्तिर्जीवति गयीतु शल्यस्येति पदं परित्यज्य निःस्यंदपरिवृद्धत्वादित्येवपठति (इति नि. सं.)

टूट न जावे या कट न जावे क्योंकि जो किंचित् मात्रभी टुकडा चूरा पथरीका शेष रह जावे तो फिर बढजाती है इससे अग्रवक्र नामक शस्त्रसे पकडकर सारीको खेंच लेना चाहिये ॥ ३० ॥ स्त्रियोंके बस्तिके पास मिला हुवाही गर्भाशय होता है इससे स्त्रियोंके उभरा हुवा शस्त्र न चलावें इससे इनसे मूत्र झिरनेवाला जखम हो जाता है ॥ ३१ ॥ और परुषोंके भी मूत्रवाहिस्थानके कटनेसे मूत्र झरने लग जाताहै ॥ ३२॥ पथरीके जखमको सिवाय कटा हुवा बस्तिस्थान एकसा नहीं रहता और दो जगह जिसका बस्तिस्थान कट जावे वह अच्छा होताही नहीं है (इससेही पुष्ट करते हैं कि) पथरी निकालनेके लिये एक ठौर चीरा बस्ति जिसका वह मनुष्य जी सकता है क्योंकि उसमें क्रियाओंकी साध्यता होती है इससे तथा शास्त्रविहित छेद होनेसे तथा मूत्रादिसे शल्यकी वृद्धि होती है तो एक ठौर भिन्न होनेसे वह अति वृद्ध न हो इससेभी एक ठौरही छेदयुक्त है ॥ ३३ ॥ जब पथरी निकल जावे तब रोगीको गरम जलसे भरी द्रोणीमें उतारके स्वेद करावे जिससे बस्ति खूनसे न भर जाय जो भर जावे तो क्षीरवृक्षका क्वाथ पुष्पनेत्र नाम यंत्रसे उपयोग करे ॥ ३४ ॥

भवति चात्र । क्षीरवृक्षकषायं तु पुष्पनेत्रेण योजितम् ।
निर्हरेदश्मरीं तूर्णं रक्तं बस्तिगतं च यत् ॥ ३५ ॥

यहांपर श्लोकहै कि ॥ क्षीरवृक्षका क्वाथ पुष्पनेत्र नामक यंत्रसे योजना किया-हुवा शीघ्रही पथरीको (या पथरीके चूर्णको) तथा बस्तिमें प्राप्त हुए रुधिरको निकाल देताहै ॥ ३५ ॥

मूत्रमार्गविशोधनार्थं चास्मै गुडसौहित्यं वितरेत् । उद्धृत्य चैनां मधुघृताभ्यक्तव्रणां मूत्रविशोधनद्रव्यसिद्धामुष्णां सघृतां यवागूं पाययेदुभयंकालं त्रिरात्रम् । त्रिरात्रादूर्ध्वं गुडप्रगाढेन पयसा मृद्वोदनमल्पं भोजयेद्दशरात्रं मूत्रासृग्विशुद्ध्यर्थं व्रणक्लेदनार्थं च दशरात्रादूर्ध्वं फलाम्लैर्जांगलरसैरुपाचरेत् ॥ ३६ ॥

मूत्रमार्ग की शुद्धिके अर्थ रोगीको गुडसे वासित भात (गुडमें पका हुवा पतला भात) देवें और पथरी निकल गये पीछे रोगीके व्रणपर शहत और घृत लगाकर

(श्लो० ३५) पुष्पनेत्रेण उत्तरबस्तिना ।

(वा० ३६) गुडसौहित्यं गुडवासितं भक्तं दद्यादित्यर्थः, उद्धृत्य उष्णोदकद्रोणादितिशेषः, मूत्रशोधनद्रव्याणि तृणपंचमूलगोक्षुरककूष्मांड पाषाणभेदादीनि ।

मूत्र शोधन करनेवाले (गोखरू आदि) द्रव्योंसे सिद्ध करी हुई यवागू घृतयुक्त गरम २ दोनों वखत तीन दिनतक पिलावे तीन दिन पीछे गुडसे गाढे किये हुये दूधके संग मुलायम (मंडभार) चावल थोडे २ दशदिनतक खिलावे मूत्र और रुधिरकी शुद्धिके लिये तथा व्रणमें मुलायमपन रहे करडा न पडजाय इसलिये तथा दश दिन पीछे फलोंकी खटाई युक्त जंगली जीवोंका मांसरस उपयोग करे (थोडा २ खिलावें) ॥ ३६ ॥

ततो दशरात्रं चैनमप्रमत्तः स्वेदयेत् स्नेहेन द्रव्यस्वेदेन वा क्षीरवृक्षकषायेण वास्य व्रणं प्रक्षालयेत्, लोध्रमधुकमंजिष्ठाप्रपौंडरीककल्कैर्व्रणं प्रतिग्राहयेत्, एतेष्वेव हरिद्रायुतेषु तैलं घृतं वा विपक्कं व्रणाभ्यंजनमिति ॥ ३७ ॥

इसके पीछे दशदिन सावधान होकर स्नेहन द्रव्योंके स्वेदसे पसीना दिलावे अथवा क्षीरवृक्षों (गूलर आदि) के क्वाथसे रोगीके व्रणको धोवे और लोध मुलहटी मँजीठ कमल इनको पीसकर व्रणपर लेप करे अथवा लोध्रादिमें हलदी मिलाकर तैल या घृत पकाकर व्रणपर लगावें ॥ ३७ ॥

स्त्यानशोणितं चोत्तरबास्तिभिरुपाचरेत्, सप्तरात्राच्चै स्वमार्गमप्रतिपद्यमाने मूत्रे व्रणं यथोक्तेन विधिना दहेदग्निना, स्वमार्गप्रतिपन्ने चोत्तरबस्त्यास्थापनानुवासनैरुपाचरेन्मधुरकषायैरिति ॥ ३८ ॥

यदि रुधिर जमगया हो तो उत्तरबस्तिद्वारा उपचार करे और जो सात दिनमें मूत्र अपने मार्ग होकर प्रवर्त नहो (व्रणसे निकले) तो व्रणको विधिपूर्वक अग्निसे दागदे और जो मूत्र अपने मार्गमें प्रवर्त हो तो उत्तर बस्ति अस्थापन बस्ति तथा अनुवासन मधुर द्रव्योंके क्वाथसे करना चाहिये ॥ ३८ ॥

यदृच्छया वा मूत्रमार्गप्रतिपन्नामंतरासक्तां शुक्राश्मरीं शर्करां वा स्रोततसापहरेत्, एवं चाशक्ये विदार्य वा नाडीं शस्त्रेण बडिशेनोद्धरेत्, रूढव्रणश्चांगनाश्वनगनागरथद्रुमान्नारोहेत् वर्षं नाप्सु प्लवेत भुंजीत वाऽगुरु ३९

यदि भीतरकी पथरी शुक्राश्मरी या शर्करा आपही मूत्रमार्गमें होकर निकले तो उसे मूत्रमार्गहीसे निकाले और जो बडी होनेके कारण वहां आई हुई उस छिद्रसे

(वा० ३७) अप्रमत्तः सावधानः, क्षीरवृक्षाः वटोदुंबराश्वत्थप्लक्षादयः । प्रति ग्राहयेत् लेपनं कुर्यात् । (इति नि. सं.)

नहीं निकल सके तो नाडी (मूत्रनाडी) की जगह शस्त्रसे चीरकर बडिश (आकडे-दार कांटे) से खेंचकर निकाल ले और जब पथरी निकलनेका जखम भर भी जाय (अच्छा होजावे तब भी) वर्ष दिनतक स्त्रीसंग न करे घोडेपर न चढे पहाडपर न चढे हाथी और रथकी सवारी न करे वृक्षपर न चढे जलमें न तैरे और गरिष्ठ भोजन भी नहीं करे ॥ ३९ ॥

मूत्रवहशुक्रवहमुष्कस्रोतोमूत्रप्रसेकसेवनीयोनिगुदबस्तीन् परिहरेत्, तत्र मूत्रवहच्छेदान्मरणं मूत्रपूर्णबस्तेः, शुक्रवहच्छेदान्मरणं क्लैब्यं वा, मुष्क-स्रोतउपघाताद्ध्वजभंगः, मूत्रप्रसेकक्षणनान्मूत्रप्रक्षरणं, सेवनीयोनिच्छेदा-द्रुजः प्रादुर्भावः, बस्तिगुदविद्धलक्षणं प्रागुक्तमिति ॥ ४० ॥

चीरा लगानेमें मूत्रवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाडियोंको तथा अंडकोशको स्रोतोंको मूत्रप्रसेक मार्गको सेवनी स्त्रियोंके योनिको गुदाको और बस्तिस्थानको बचाकर चीरा लगाना उचित है क्योंकि मूत्रवाहिनी नाडीके छेदनसे बस्ति मूत्रसे भरकर मृत्यु होजा-ताहै और वीर्यवाहिनी शिरा कटजानेसे मृत्यु होजाती है या नपुंसकता होजाती है, तथा अंडके स्रोत कटजानेसे ध्वजभंग होजाताहै और मूत्रप्रसेक कटजानेसे मूत्र झिरताही रहता है तथा सेवनी और योनि कटजानेसे व्याधियां (नासूर आदि) होजाती है और बस्तिगुदाके वेधनसे जो हानि होजातीहै वह पहले शारीरकमें मर्म-विद्धके वर्णनमें कहही चुकेहैं ॥ ४० ॥

भवतश्चात्र ॥ मर्माण्यष्टावसंबुध्य स्रोतोजानि शरीरिणाम् ॥ व्यापादयेद्बहू-न्मर्त्याञ्छस्त्रकर्मापटुर्भिषक् ॥ ४१ ॥ सेवनी शुक्रहरणी स्रोतसी फलयो गुदम् ॥ मूत्रसेकं मूत्रवहं मूत्रबस्तिस्तथाष्टमः ॥ ४२ ॥

इति चिकित्सितस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

यहां दो श्लोकहैं कि ॥ जो मनुष्योंके स्रोतोंके आठों मर्मोंको नहीं जानता है ऐसा शस्त्र कर्ममें मूर्ख वैद्य बहुत मनुष्योंको मारडालता है ॥ ४१ ॥ आठ मर्म-स्थान यहां येहैं १ सेवनी २ शुक्रवाहिनी शिरा ३–४ दोनों अंडोंके स्रोत ५ गुदा ६ मूत्र-प्रसेक ७ मूत्रवाहिनी शिरा और ८ बस्ति (मूत्रबस्ति) इन्हे जानने बिना कभी चीर-कर पथरी निकालनेका साहस नहीं करना ॥ ४२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो भगंदराणां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भगंदरोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

पंच भगंदरा व्याख्यातास्तेष्वसाध्यः शम्बूकावर्तः शल्यनिमित्तश्चेति शेषाः कृच्छ्रसाध्याः ॥ १ ॥

पहले निदानस्थानमें जो पांचप्रकारके भगंदर कहे गये हैं उनमेंसे शंबूकावर्त (सन्निपातज) और शल्यनिमित्त (उन्मार्गी) ये दो भांतिके भगंदर असाध्य होतेहैं और शेष तीन भाँतिके भगंदर (शतपोनक उष्ट्रग्रीव और परिस्रावी) ये कष्टसाध्य होतेहैं देखो निदानस्थानका ४ अध्याय ॥ १ ॥

भगंदरकी फुन्सीका आद्यप्रयत्न ।

तत्र भगंदरपिडिकोपद्रुतमातुरमपतर्पणादि विरेचनांतेनैकादशविधेनोपक्रमेणोपक्रमेतापक्वपिडिकम् ॥ २ ॥

जब भगंदरकी फुन्सी होवे और जबतक वह पके नहीं तबतक अपतर्पण(लंघन) को आदिले विरेचन पर्यंत ग्यारह विधान (देखो द्विव्रणीय चिकित्सित अर्थात् चिकित्सास्थानकी प्रथम अध्यायमें व्रणके ६० उपक्रमोंमें) करके उपक्रम करना चाहिये ॥ २ ॥

पकीफुन्सीका यत्न ।

पक्केषु चोपस्निग्धमवगाहस्विन्नं शय्यायां सन्निवेश्यार्शसमिव यंत्रयित्वा भगंदरं समीक्ष्य पराचीनमवाचीनं वा बहिर्मुखमंतर्मुखं वा ततः प्रणिधायैषणीमुन्नम्य साशयमुद्धरेच्छस्त्रेण ॥ ३ ॥ अंतर्मुखे चैवं सम्यग्यंत्रं प्रणिधाय प्रवाहमाणस्य भगंदरमुखमासाद्यैषणीं दत्वा शस्त्रं पातयेत् । आसाद्य वाग्निक्षारं चेत्येतत्सामान्यं सर्वेषु ॥ ४ ॥

जब फुन्सी पक जावे तब स्नेहन अवगाहन स्वेदन करा खाटपर स्थापनकर बवांसीरकी तरह यंत्रित करके भगंदरको देखे कि यह पराचीन बहिर्मुख है या अवाचीन अंतर्मुख है (अथवा पुराना नया तथा बाहरमुखवाला भीतरमुखवाला) तब सलाई डालकर उभारे और जडसहित छेदनकरे ॥ ३ ॥ ऊपर कही क्रिंया बाहर मुखवाले-

(वा० ३) अंतमुखमर्वाचीनम् बहिर्मुखं पराचीनम् । इति डल्लनः। तत्रांतर्मुखस्य गुदमध्यमुखस्य प्रवहमाणे मुखंबहिर्गतं आसाद्य क्रियां कुर्यात् ।

की है और जो अंतर्मुखहो तो भीतर भंगदर यंत्र देकर मुखको बाहर निकाले और रोगीसे प्रवाहण करने (किनछने) को कहे और गुदाके भीतरका मुख बाहर आजानेपर सलाई डालकर चीरा लगावे अथवा भगंदरके मुखको देख विचारकर अग्नि या क्षारसे दग्ध करे यह सब भगंदरोंकी सामान्य क्रिया है ॥ ४ ॥

शतपोनककी चिकित्सा।

विशेषतस्तु ॥ नाड्यंतरे व्रणान् कुर्य्याद्भिषक् तु शतपोनके । ततस्तेषूपरूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत् ॥ ५ ॥ गतयोन्योन्यसंबद्धा बाह्यच्छेद्यास्त्वनेकधा ॥ नाडीरनभिसंबद्धा यश्छिनत्त्येकधा भिषक् ॥ ६ ॥ स कुर्य्याद्विवृतं जंतोर्व्रणं गुदविदारणम् । तस्य तद्विवृतं मार्गं विण्मूत्रमनुगच्छति ॥ ७॥ आटोपं गुदशूलं च करोति पवनो भृशम् । अत्राधिगततंत्रोपि भिषक् मुह्येदसंशयम् ॥ ८ ॥

विशेष यह है कि ॥ यदि शतपोनक भगंदर होतो वैद्य नाडियोंके बीचमें व्रणकरे और जब वे शस्त्रकृत व्रण भरजावे तब शेष नाडियोंमें भी व्रणकर करके उपचार करे ॥ ५ ॥ परस्पर मिली हुई जो नाडियां हैं उन्हें बाहरसे अनेक जगह छेदे और और जो परस्पर वे मिली नाडीकोही एक जगहसे जादे चीर देवे तो वह व्रण चौडा होजाता है जिससे गुदा विदीर्ण होजाती है और उस व्रणके चौडे मार्गसे विष्ठा मूत्र निकलने लगते हैं ॥६॥७ ॥ और जब अधोवायु जोर करके अफारा गुदामें शूल करदेता है इस विषयमें शस्त्रवैद्य भी कभी कभी निःसंदेह मोहको प्राप्त होजाता (घबराकर चूक जाता) है ॥ ८ ॥

तस्मान्न विवृतः कार्यो व्रणस्तु शतपोनके । व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा वै विजानता ॥ ९ ॥ अर्द्धलांगलकश्छेदः कार्यो लांगलकोऽपि वा । सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोपि वा ॥ १० ॥

इस कारणसे शतपोनकमें चौडा लंबा व्रण न करना चाहिये जानकार वैद्यको इस बहुत छिद्रवाली व्याधि (शतपोनक) में " अर्द्धलांगल " छेद करना या " लांगलक " छेद करना या " सर्वतो भद्र " छिद्र करना या " गोतीर्थक " छेद करना उचित है ॥ ९ ॥ १० ॥

(श्लो० ५) नाड्यंतरे इति नाडीनां पूर्यमाणानां निकटस्थानां त्रिचतुराणामंतरं मध्यं नाड्यंतरं तस्मिन् व्रणान्कुर्यात् (इति डल्हनः) ।

(श्लो० ६) अन्योन्य संबद्धा निकटस्था, अनभिसंबद्धाः अनाश्रितानिकटाः (इति नि.सं.) ।

इन छेदोंके लक्षण।

द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लांगलको मतः। ह्रस्वमेकतरं यच्च सोर्द्धलांगलकः स्मृतः ॥ ११ ॥ सीवनीं वर्जयित्वा च चतुर्द्धा दारिते गुदे। सर्वतोभद्रकं छेदमाहुश्छेदविदो जनाः ॥ १२ ॥ पार्श्वागतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थको भवेत् ॥ १३ ॥

जो दोनों पार्श्वोंमें समान छेद किया जावे उसे "लांगलक" छेद कहते हैं, और जो एक तर्फ छोटा हो वह "अर्द्धलांगलक" कहाता है ॥ ११ ॥ जो सीवनको छोडकर गुदाके चारों तरफ छेद किया जावे उसे छेदविद्याविशारद वैद्य (जर्राह) "सर्वतोभद्र" कहते हैं ॥ १२ ॥ और जो पँसवाडेकी तरफ झुकाकर छेद किया जावे उसे "गोतीर्थ" छेद कहते हैं ॥ १३ ॥

सर्वतः स्रावमार्गांस्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना ॥ १४ ॥

सब तरफसे स्रावके मार्गोंको वैद्य अग्निसे दग्ध कर देवे (जिससे उनका अतिस्राव बंद हो जावे) ॥ १४ ॥

सुकुमारस्य भीरोर्हि दुष्करः शतपोनकः ॥ रुजास्रावापहं तत्र स्वेदमाशु प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥ स्वेदद्रव्यैर्यथोद्दिष्टैः कृशरापायसादिभिः। ग्राम्यानूपौदकैर्मांसैर्लावाद्यैर्वापि विष्किरैः ॥ १६ ॥ वृक्षादनीमथैरंडं बिल्वादिं च गणं तथा। कषायं सुकृतं कृत्वा स्नेहकुंभे निषेचयेत् ॥ नाडीस्वेदेन तेनास्य तं व्रणं स्वेदयेद्भिषक् ॥ १७ ॥ तिलैरण्डातसीमाषयवगोधूमसर्षपान् ॥ लवणान्यम्लवर्गं च स्थाल्यामेवोपसाधयेत् ॥ आतुरं स्वेदयेत्तेन तथा सिध्यति कुर्वतः ॥ १८ ॥

बालक अथवा नाजुक मनुष्य और डरपोक आदमी इनका शतपोनक भगंदर दुःसाध्य होताहै तहां पीडा और स्रावके वास्ते शांतिके स्वेद (पसीने दिलाने) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १५ ॥ यथोक्त स्वेदनद्रव्योंसे या कृशरा (खिचडी) पायस (खीर) आदिसे या ग्राम्य अनूप और जलचर जीवोंके मांससे तथा लवा आदि विष्किर जीवोंके मांससे (गरम करके) स्वेद करावे ॥ १६ ॥ बंदा अरंड

(श्लो० ११ । १२ । १३) लांगलं हलमुच्यते। तदाकारको लांगलकः, अर्द्धलांगल इव अर्द्धलांगलकः, सर्वतोभद्रस्त्वासनविशेषः पर्यंकिकाकारो मंडलाकारोवा, गोतीर्थकः गच्छद्गोमूत्रगतिसदृशः अथवा गोतीर्थं गोयोनिरुच्यते तदाकारो गोतीर्थकः अथवा गोतीर्थं निपानं येन गावः पिबंति तत्खुरांकितवच्छेदविशेषः (इति नि. सं.)

बिल्वादिगण इनका क्वाथ करके चिकने घडेमें भरदे उसके मुखपर ढकना ढांक छेद-कर उसमें नलिका लगाकर उससे व्रणको स्वेदन करावे अर्थात् बफारा देवे ॥ १७ ॥ अथवा तिल, अरंड, अतसी, उडद, जौ, गेहूं, सरसों, पांचों नमक, अम्लवर्ग इन्हें मटकेमें क्वाथकर उसका बफारा देवे ऐसा करनेसे व्याधि शांत होजाती है ॥ १८ ॥

स्विन्नं च पाययेदेनं कुष्ठं च लवणानि च ॥ वचाहिंग्वजमोदं च सम-भागानि सर्पिषा ॥ मार्द्वीकेनाथ वाम्लेन सुरासौवीरकेण वा ॥ १९ ॥

स्वेदन करनेके पीछे कूट पांचों नोन वच हींग अजमोद इन्हें समान भागले सबको घृतयुक्त कर द्राक्षासव अथवा कांजी अथवा सुरा (मद्य) अथवा सौवीर (एक प्रकार खट्टा संधान) इनके संग पिलावे ॥ १९ ॥

ततो मधुकतैलेन तस्य सिंचेद्भिषग्व्रणम् । परिषिंचेद्गुदं चास्य तैलैर्वा-तरुजापहैः ॥ २० ॥ विधिनानेन विण्मूत्रं स्वमार्गमधिगच्छति । अन्ये-चोपद्रवास्तीव्राः सिद्ध्यंत्यत्र न संशयः ॥ २१ ॥

इसके अनंतर उसके व्रणको मुलहटीसे सिद्ध किये तैलसे तर करे (कई महुवेके तैलसे तर करे ऐसाभी अर्थ करते हैं) और वात नाशक तैलोंसे उसकी गुदाको तर करते रहें ॥ २० ॥ इस विधिसे रोगीके विष्ठा और मूत्र ठीक २ अपने मार्गोंसे प्रवर्त होने लगतेहैं तथा अन्य आध्मानादि उपद्रव भी निःसंदेह शांत होजाते हैं॥२१॥

उष्ट्रग्रीवचिकित्सा ।

शतपोनक आख्यात उष्ट्रग्रीवे क्रियां शृणु । अथोष्ट्रग्रीवमेषित्वा छित्वा क्षारं निपातयेत् ॥२२॥ पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र न पूजितः । अथैनं घृतसंसृष्टैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ २३ ॥ बंधं ततोऽनुकुर्वीत परिषेकं तु सर्पिषा ॥ तृतीये दिवसे मुक्त्वा यथास्वं शोधयेद्भिषक् । ततः शुद्धं विदित्वा च रोपयेत्तु यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

शतपोनककी चिकित्साका व्याख्यान कर चुके हैं। अब उष्ट्रग्रीवकी क्रिया श्रवण करो। उष्ट्रग्रीवमें सलाई डालकर उसे छेदन करे और छेदकर क्षार (तेजाब) लगा दे ॥२२॥ सडे हुवे मांसके नष्ट करनेको इसमें अग्नि कर्म करना उचित नहीं (क्योंकि यह पित्तजनित होता है) किंतु इसपर घृत मिश्रित तिलोंको पीसकर लेप करना चाहिये ॥ २३ ॥ फिर उसपर यथायोग्य बंध बांधकर ऊपरसे घृतका

(श्लो० १९) मार्द्वीकेन द्राक्षामद्येन अम्लेन, धान्याम्लेन ।

परिषेक करते रहे और तीसरे दिन बंध खोलकर यथायोग्य शोधन करना वैद्यको चाहिये और जब शुद्ध हुवा जान ले तब यथाक्रम उस व्रणको रोपण करे ॥ २४ ॥

परिस्रावीकी चिकित्सा ।

उत्कृत्यास्रावमार्गं तु परिस्राविणि बुद्धिमान् ॥ क्षारेण वा स्रावगतिं दहेद्धुतवहेन वा ॥ २५ ॥ सुखोष्णेनाणुतैलेन सेचयेद्गुदमंडलम् ॥ उपनाहाः प्रदेहाश्च मूत्रक्षारसमन्विताः ॥ २६ ॥ वामनीयौषधैः कार्याः परिषेकाश्च मात्रया ॥ मृदुभूतं विदित्वैनमल्पस्रावरुगन्वितम् ॥ २७ ॥ गतिमन्वेष्य शस्त्रेण छिंद्यात् खर्जूरपत्रकम् ॥ चन्द्रार्द्धं चंद्रचक्रं च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ॥ २८ ॥ छित्वाग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ ततः संशोधनैरेवं मृदुपूर्वैर्विशोधयेत् ॥ २९ ॥

परिस्रावी भगंदरमें बुद्धिमान् वैद्य स्रावके मार्गको शस्त्रसे उखडकर (चीरकर) स्रावकी गतिको क्षार (तेजाब)से जला दे अथवा अग्निसे दग्ध करदे ॥ २५ ॥ और गुदमंडलको निवाये २ अणु तैलसे सेचन करे तथा उपनाह और प्रदेह मूत्र (गोमूत्र) और क्षार (तेजाब) युक्त करने चाहिये ॥ २६ ॥ तथा वमन करानेवाली औषधोंसे मात्रायुक्त परिषेकभी करे और जब जानले कि मुलायम होगया और स्राव और पीडा स्वल्प होगई ॥ २७ ॥ तब सलाई डालकर उसकी गति देखे और सूचीमुख तथा अवाङ्मुख जैसा भगंदरहो उसे शस्त्रसे खर्जूरके पत्रके आकार चीरदे अथवा अर्द्धचंद्रके आकार चीरे या चंद्रचक्रके आकार चीरें ॥ २८ ॥ फिर चीरकर अग्निसे सम्यग्दग्ध करे अथवा क्षारसे समस्त जलादे फिर पहले मृदु द्रव्योंसे और फिर तीक्ष्ण शोधन द्रव्योंसे शोधन करें (फिर रोपण करें) ॥ २९ ॥

बालकके भगंदरका यत्न ।

बहिरंतर्मुखश्चापि शिशोर्यस्य भगंदरः ॥ तस्याहितं विरेकाग्निशस्त्रक्षारावचारणम् ॥ ३० ॥ यद्यन्मृदु च तीक्ष्णं च तत्तत्तस्यावचारयेत् ॥ आरग्वधनिशाकालाचूर्णं मधुघृताप्लुतम् ॥ ३१ ॥ अग्रवर्तिप्रणिहितं व्रणानां शोधनं हितम् ॥ योगोयं नाशयत्याशु गतिं मेघमिवानिलः ॥ ३२ ॥

यदि बालकके बहिर्मुख या अंतर्मुख कैसाही भगंदर हो उसे विरेचन अग्नि शस्त्रकर्म और क्षार इनका योग उचित नहीं ॥ ३० ॥ इसमें मृदु या तीक्ष्ण यथोक्त औषधोंकाही योग करना हितहै—अमलतास हलदीकाला (अहिंस्रा) इनका चूर्ण

शहत घृत युक्तकर बत्ती सान व्रणमें रखना यह शोधनमें हितहै यह प्रयोग गति (नासूर) को शीघ नष्ट करता है जैसे मेघको पवन शीघ्र नष्ट करताहै ॥ ३१॥ ३२॥

शल्यनिमित्त उन्मार्गीकी चिकित्सा ।

आगंतुजे भिषङ् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः। जाम्बोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया ॥ ३३ ॥ दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः । कृमिघ्नं च विधिं कुर्याच्छल्यानयनमेव च ॥ ३४ ॥ प्रत्याख्यायैवं चारेभ्यो वर्ज्यश्चापि त्रिदोषजः । एतत्कर्म समाख्यातं सर्वेषामनुपूर्वशः ॥ ३५ ॥

आगंतुक शल्यनिमित्त उन्मार्गी भगंदरमें वैद्य नाडीको शस्त्रसे छेदकर जाम्बोष्ठ नामक शस्त्रको या सलाईको अग्निमें लाल करके उस व्रणको बहुत सावधानीसे जलादेवे और ऐसा यत्न करे जिससे कीडे नष्ट हो जावे और शल्य निकल जावे ॥ ॥३३॥ ३४ ॥ इस भगंदरको और सान्निपातके शंबूकावर्तको पहले असाध्य कहकर फिर यत्न करे (क्योंकि इनमें सिद्धि होवे भी और नहीं भी होवे) यह क्रिया सब भगंदरोंकी क्रमपूर्वक वर्णन करी है ॥ ३५ ॥

शस्त्रवेदनाकी शांति ।

एषां तु शस्त्रपतनाद्वेदना यत्र जायते ।
तत्राणुतैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ॥ ३६ ॥

यदि शस्त्रके लगनेसे जो वेदना होती है उसके शांतिके लिये गरम २ अणु तैलसे परिषेक करे (तो शीघ्र वेदना शांत होवे) ॥ ३६ ॥

स्वेदविधि ।

वातघ्नौषधसंपूर्णां स्थालीं छिद्रशराविकाम्। स्नेहाभ्यक्तगुदस्तप्तामध्यासीत सबाष्पकाम्॥ ३७॥ नाड्या वास्याहरेत्स्वेदं शयानस्य रुजापहः। उष्णोदकेऽवगाह्यो वा तथा शाम्यति वेदना ॥ ३८ ॥

वातनाशक द्रव्यों (अरंड आदि) को मटकेमें भर अग्निपर रख ऊपर मलसा-ढके मलसेमें १ छेद करे फिर रोगीकी गुदापर तेल चुपडकर उस छिद्रकी वाफ लगावे ॥ ३७ ॥ अथवा उस मलसेके छिद्रपर नली लगाकर सोये हुये रोगीके गुद-स्थानको स्वेद करावे अथवा उसे गरम जलकी भरी हुई नांदमें बिठाकर स्नान करावे इनसे वेदना शांत होजाती है ॥ ३८ ॥

(श्लो० ३३।३४) अनयोः श्लोकयोरन्वयः अग्रिमतृतीयश्लोकस्याद्यपदेन सह कर्तव्यं इति ।

कदलीमृगलोपाकप्रियकाजिनसंभृतान् । कारयेदुपनाहांश्च शाल्वणादीन् विचक्षणः ॥ ३९ ॥ कटुत्रिकं वचाहिंगुलवणान्यथ दीप्यकम् । पाययेच्चाम्लकौलत्थसुरासौवीरकादिभिः ॥ ४० ॥

कदलीमृग (एक भांतिका मृग) लोपाक (लोमडी) प्रियक (विचित्र मृग) (डल्लन अजगर लिखते हैं) इनके चर्मसे उपनाह स्वेद करे अथवा शाल्वण (सालन) से चतुर वैद्य उपनाह करे ॥ ३९ ॥ और त्रिकटु वच हींग पांचों लवण और अजमोद इन्हे धान्याम्ल कुलथीके मद्य सुरा तथा सौवीरके पिलावे ॥ ४० ॥

भगंदरशोधनवर्ग ।

ज्योतिष्मती लांगलकी श्यामादंती त्रिवृत्तिलाः । कुष्टं शताह्वा गोलोमी तिल्वको गिरिकर्णिका।कासीसकांचनक्षीर्य्यौवर्गः शोधन इष्यते ॥ ४१ ॥

मालकांगनी कलहारी श्यामा निसोथ दंती (जमालगोटेकी जड) सपेद निसोथ तिल कूट शताह्वा (शतपुष्पा या शतावरी) गोलोमी दूर्वा तिल्वक (लोध) गिरिकर्णिका (अपराजिता) कसीस और सुवर्णक्षीरी (चोक) यह वर्ग कषायादिसे उपयोग किया हुवा भगंदरका शोधन करनेवाला है ॥ ४१ ॥

उत्सादन ।

त्रिवृत्तिलौ नागदंती मंजिष्ठा पयसा सह ।
उत्सादनं भवेदेतत्सैंधवक्षौद्रसंयुतम् ॥ ४२ ॥

निसोथ तिल नागदंती मजीठ इन्हे दुग्धमें पीस सैंधानमक और शहत मिलाकर लेप करनेसे (भगंदरका) नीचा व्रण उभरकर समान हो जाताहै ॥ ४२ ॥

रसांजनं हरिद्रे द्वे मंजिष्ठानिम्बपल्लवाः ।
त्रिवृत्तेजोवती दंती कल्को नाडीव्रणापहः ॥ ४३ ॥

रसवंती दोनों हलदी मँजीठ निंबके पत्ते निसोथ तेजोवती दंती इनका कल्क नाडीव्रण (नासूर) को नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

कुष्टं त्रिवृत्तिलादंतीमागध्यः सैंधवं मधु ।
रजनीत्रिफला तुत्थं हितं स्याद्व्रणशोधनम् ॥ ४४ ॥

(श्लो० ३९) कदलीमृगः पूर्वदेशे प्रायशः शबलो दृष्टः सतु बृहत्तमबिडालसमो व्याघ्राकारो बिलेशयः, लोपाकः लांगलकः शृगालभेदः लोमडी इति प्रसिद्धः (नि. सं.), प्रियकः डल्लनमतेतु अजगरप्रायः, वाचस्पत्येतु विचित्रमृगः सएवात्र युक्तः ॥

कूठ निसोथ तिल दंती पीपल सैंधानमक शहत हलदी त्रिफला नीलाथोथा ये व्रणके शोधनमें हित हैं ॥ ४४ ॥

भगंदरनाशक तैल ।

मागध्यो मधुकं लोध्रं कुष्टमेला हरेणवः । समंगा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम् ॥ ४५ ॥ प्रियंगवः सर्जरसः पद्मकं पद्मकेसरम् । सुधां वचां लांगलकीं मधूच्छिष्टंससैंधवम् ॥ ४६ ॥ एतत्संभृत्य संभारान् तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्धि गंडमालासु मंडलेष्वथ मेहिषु । रोपणार्थं हितं तैलं भगंदरविनाशनम् ॥ ४७ ॥

पीपल मुलेठी लोध कूट इलायची हरेणु (मटरके समान होती है) मजीठ धायके फूल सारिवा दोनों हलदी ॥ ४५ ॥ प्रियंगु राल पद्माख कमलकेसर थोहर वच कलहारी मोम सैंधानौन ॥ ४६ ॥ इन सबको लेकर धीर वैद्य तैल साधन करे यह तैल गंडमाला और मंडल और मेहपिटिका इनके रोपणके लिये हित है तथा भगंदरको नाश करता है ॥ ४७ ॥

(वक्तव्य) इसमें राल मोम सेंधानमक इनके सिवाय सबका काथ कर उसमें तैल पकावे और राल मोम निमक ऊपरसे डाले ॥

न्यग्रोधादिगणश्चैव हितः शोधनरोपणे । तैलं घृतं वा तत्पक्कं भगंदरविनाशनम् ॥ ४८ ॥ त्रिवृद्दंतीहरिद्रार्कमूलं लोहाश्वमारकौ । विडंगसारं त्रिफला स्नुह्यर्कपयसी मधु ॥ ४९ ॥ मधूच्छिष्टसमायुक्तैस्तैलमेतै विंपाचयेत् । भगंदरविनाशार्थमेतद्योज्यं विशेषतः ॥ ५० ॥

न्यग्रोधादि गणभी भगंदरके शोधन और रोपणमें हित है और इस गणमें पकाया हुवा तैल अथवा घृतभी भगंदरनाशक है ॥ ४८ ॥ निसोथ दंती हलदी आकडेकी जड लोह (अगर) कनेर विडंग त्रिफला थोहर और आकडेका दूध शहत ॥ ४९ ॥ इनमें मोम मिलाकर इनसे तैल साधन करे यह तैल भगंदरके नष्ट करनेमें विशेष कर योजना करे ॥ ५० ॥

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयू हयमारकम् । सुधां वचां लांगलकीं सप्तपर्णं सुवर्चिकाम् ॥ ५१ ॥ ज्योतिष्मतीं च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥

(श्लो० ४७) मेहिषु मेहपिडिकासु इत्यभिप्रायः ।

(श्लो० ४९) लोहं अगुरु (नि० से०) ।

एतद्धि स्यंदनं तैलं भृशं दद्याद्भगंदरे ॥ ५२ ॥ शोधनं रोपणं चैव सवर्ण-करणं तथा । द्विव्रणीयमवेक्षेत व्रणावस्थासु बुद्धिमान् ॥ ५३ ॥

चित्रक, आक, निसोथ, पाठा, कठ, गूलर, कनेर, थोहर, वच, कलहारी, सातला, साजी ॥ ५१ ॥ मालकांगनी इन्हें इकट्ठा करके इनमें तैल पकावे यह स्यंदन (चुवानेवाला) तैल है इसे भगंदरोंमें अवश्य लगाना चाहिये ॥ ५२ ॥ यह तैल शोधन रोपण और सवर्ण करनेवाला है तथा व्रणोंकी अवस्थामें बुद्धिमान् वैद्यको द्विव्रणीय चिकित्सित अध्याय देखकर उसके विधानसे क्रिया करनी चाहिये ॥५३॥

भगंदरयंत्र ।

छिद्राद्दूर्ध्वं हरेदोष्ठमर्शोयंत्रस्य बुद्धिमान् ।
ततो भगंदरे दद्यादेतदर्द्धेन्दुसंनिभम् ॥ ५४ ॥

अर्शयंत्रका विधान पहले कहचुके हैं उसके छिद्रके ऊपरसे उसका ओष्ठ दूर-कर देनेसे भगंदर यंत्र आधे चंद्रमाके आकारका होजाताहै उसेही भगंदरमें लगाना चाहिये ॥ ५४ ॥

भगंदरमें कुपथ्य ।

व्यायामं मैथुनं कोपं पृष्ठयानं गुरूणि च ।
संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ५५ ॥

इति चिकित्सितस्थाने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

भगंदरका व्रण अच्छा हो जानेपर भी एक वर्षपर्यंत व्यायाम (परिश्रम दौडना आदि) मैथुन क्रोध घोडे, ऊंट आदि पशुओंकी पीठकी सवारी और गरिष्ठ भोजन इन्हें भगंदरका रोगी त्याग देवे ॥ ५५ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने अष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाडी हम कुष्ठकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

कुष्ठरोगका हेतु ।

विरुद्धाध्यशनासात्म्यवेगविघातैः स्नेहादीनां चायथारम्भैः
पापक्रियया पुरा कृतकर्मयोगाच्च त्वग्दोषो भवति ॥ १ ॥

विरुद्ध भोजन अध्यशन (पहले भोजन विनापचे भोजन करने) जो प्रकृति देशकालके अनुकूल न हो ऐसा भोजन करनेसे वेगोंके रोकनेसे अयथोचित स्नेहपानादि करनेसे पापक्रियासे और पूर्वजन्मार्जित कर्मयोगसे त्वचा दोष हो जाता (उसे कुष्ठ कहते हैं) ॥ १ ॥

कुष्ठपर अपथ्य ।

तत्र त्वग्दोषी मांसवसादुग्धदधितैलकुलत्थमाषनिष्पावेक्षुविकाराम्लविरुद्धाध्यशनाजीर्णविदाह्यभिष्यंदीनि दिवास्वप्नं व्यवायं च परिहरेत् ॥ २ ॥

त्वचारोगका रोगी मांस चरबी दूध दही तैल कुलथी उडद निष्पाव (राजमाष) इक्षुके विकार (गुडादि) खटाई विरुद्धभोजन अध्यशन अजीर्ण विदाही अभिष्यंदी पदार्थ त्याग देवे तथा दिनका सोना और मैथुन इन्हे भी छोड दे ॥ २ ॥

पथ्य ।

ततः शालिषष्टिकयवगोधूमकोरदूषश्यामाकोद्दालकादीननवान् भुंजीत मुद्गाढकयोरन्यतरस्य यूषेण सूपेन वा निंबपत्रारुष्करव्यामिश्रेण मंडूकपर्ण्यवल्गुजाटरूषकरुषिकापुष्पैः सर्पिःसिद्धैः सर्षपतैलसिद्धैर्वा तिक्तवर्गेण वाभिर्हितेन ॥ ३ ॥ मांससात्म्याय वा जांगलमांसममेदस्कं वितरेत् तैलं वज्रकमभ्यंगार्थे आरग्वधादिकषायमुत्सादनार्थे पानपरिषेकावगाहादिषु च खदिरकषायमित्येष आहाराचारविभागः ॥ ४ ॥

शाली षष्टिक (ये दोनों चावल होते हैं) जौ गेहूं कोरदूषक (कोदों) शामक उद्दालक (वनकोदों) ये पुराने भोजन करना मूंग या अरहडमेंसे किसीके यूषसे या सूप(दालसे)मिलाकर भोजन करना और निंबके पत्र और शुद्ध भिलावे मिलाकर भोजन करना मंडूकपर्णी (ब्राह्मीभेद) बावची, अडूसा तथा रुषीका पुष्प (आकके फूल) इन्हें घृतमें सिद्ध करके अथवा सरसोंके तैलमें सिद्ध करके अथवा तिक्तवर्ग (निंबादि) के संग भोजन करना चाहिये ॥ ३ ॥ और मांस खानेवालोंको जंगली जीवोंका चरबीरहित मांस खानेको देव तथा मालिशके लिये वज्रतैल देवे और उत्सादनके लिये आरग्वध आदिका क्वाथ देवे तथा पीने परिषेक करने और न्हाने आदिके लिये खदिरका क्वाथ देवे कुष्ठके रोगियोंके लिये यह आहार और आचारका विभाग कहा गया ॥ ४ ॥

(वा० ४) कुष्ठे मांसनिषेधेपि मांससात्म्याय मेदोरहितं जांगलमांसं स्वभावतो वितरेत्। वज्रकं सप्तपर्णकरंजकेत्यादिकं इति डल्हनः । अथवा वज्रकनामकं तैलं यदग्रे वक्ष्यते तत् ।

कुष्ठकी चिकित्साका क्रम ।

तत्र पूर्वरूपेषूभयतः संशोधनमासेवेत । तत्र त्वक्प्राप्ते शोधनालेपनानि । शोणितप्राप्ते संशोधनालेपनकषायपानशोणितावसेचनानि । मांसप्राप्ते शोधनालेपनकषायपानशोणितावसेचनारिष्टमन्थप्राशाः । चतुर्थं कर्मगुणप्राप्तं याप्यमात्मवतः संविधानवतश्च, तत्र संशोधनाच्छोणितावसेचनाच्चोर्ध्वं भल्लातशिलाजतुगुग्गुल्वगुरुतुरवकखदिरासनायस्कृतिविधानमासेवेत । पंचमं नैव चोपक्रमेत् ॥ ५ ॥

कुष्ठके पूर्वरूपमें दोनों तरफसे शोधन (वमन विरेचन) करावे और जब त्वचामें प्राप्त हो तब शोधन और लेपन करावे । रुधिरमें पहुँच जाने पर शोधन लेपन क्वाथपान तथा शिरामोक्ष करावें मांसगत होनेपर शोधन लेपन क्वाथपान शिरामोक्ष अरिष्ट और मन्थसेवन करना चतुर्थ अर्थात् मेदोगत कुष्ठ जो कर्मके गुणसे प्राप्त होताहै याप्यहै और आत्मवान् (परहेजगार) और संविधानवान् (धनपात्र तथा आदमियोंवाले) को याप्य है (नहीं तो असाध्य समझिये) इसमें शोधन शिरामोक्षके अतिरिक्त भिलावे शिलाजीत गुग्गुलु अगुरु तुरबक (देखो प्रमेहपिडिका) खदिर विजयसार और अयस्कृति (लोहसेवन) आदिका उपयोग करना चाहिये । और पांचवे (अस्थिगत) कुष्ठको (असाध्य जानकर उसकी) चिकित्सा न करें (इससे यहभी प्रयोजन है कि मज्जागत होनेसे परम असाध्य मृत्युकारक होताहै) ॥ ५ ॥

वातकुष्ठादिककी चिकित्सा ।

तत्र प्रथममेव कुष्ठिनं स्नेहपानविधानेनोपपादयेत् । मेषशृंगीश्वदंष्ट्राशार्ङ्गेष्टागुडूचीद्विपंचमूलीसिद्धं तैलं घृतं वा वातकुष्ठिनां पानाभ्यंगयोर्विदध्यात् ॥ ६ ॥

पहले कुष्ठरोगीको स्नेहपान करावें फिर मेढासींगी गोखरू शार्ङ्गेष्टा (काकतिक्ता) गिलोय दशमूल इनसे सिद्ध किये तैल अथवा घृत वातजकुष्ट रोगवालेको पीने और मलनेको देवे ॥ ६ ॥

धवाश्वकर्णककुभपलाशपिचुमर्दपर्पटकमधुकरोध्रसमंगासिद्धं सर्पिः पित्त-

---

(वा० ५) चतुर्थं चतुर्थधातुगतं मेदोगतमित्यर्थः, कर्मगुणप्राप्तं प्राक्कृतकर्मणो गुणात् प्राप्तं इति, अथवा कुष्ठस्य कर्माणि अंगुलीपातनादीनि गुणाश्च दुर्गंधादयः तैः प्राप्तं इति, तत्तु आत्मवतः संविधानवते याप्यं अन्यथा त्वसाध्यमिति भावः ।

कुष्ठिनाम् ॥ ७ ॥ पियालशालारग्वधनिंबसप्तपर्णचित्रकमरिचवचाकुष्ठ-सिद्धं श्लेष्मकुष्ठिनाम् ॥ ८ ॥

पित्तकुष्ठवालेको धव अश्वकर्ण अर्जुन ढाक नींब पित्तपापडा मुलेठी लोध समंगा लजालू या मँजीठ इनसे सिद्ध किया घृत पीने और मलनेको देवे ॥ ७ ॥ कफकुष्ठवाले को चिरोंजी शाल किरमाला नींब सप्तपर्ण चित्रक मिरच वच कूट इनसे सिद्ध किया हुवा घृत देवें ॥ ८ ॥

भल्लातकाभयाविडंगसिद्धं वा सर्वेषां ।
तुरबकतैलं भल्लातकतैलं वेति ॥ ९ ॥

भिलावे हरीतकी विडंग इनसे सिद्ध किया घृत अथवा तैल तथा तुरबक (पश्चिम समुद्रके किनारे प्रसिद्धहै) का तैल या भिलावेका तैल सब प्रकारके कुष्ठोंमें प्रायः हितहै ॥ ९ ॥

महातिक्तकघृत ।

सप्तपर्णारग्वधातिविषापाठाकटुरोहिण्यमृतात्रिफलापटोलपिचुमर्दपर्पटक-दुरालभात्रायमाणमुस्ताचंदनपद्मकहरिद्रोपकुल्याविशालामूर्वाशतावरीसा-रिवेंद्रयवाटरूषकषड्ग्रंथामधुकभूनिम्बगृष्टिका इति समभागः कल्कः स्यात्, कल्काच्चतुर्गुणं सर्पिः प्रक्षिप्य तद्द्विगुणो धात्रीफलरसस्तच्चतुर्गुणा आपस्तदैकध्यं समालोड्य विपचेदेतन्महातिक्तकं नाम सर्पिः । कुष्ठवि-षमज्वररक्तपित्तहृद्रोगोन्मादापस्मारगुल्मपिडिकाऽसृग्दरगलगंडगंडमाला-श्लीपदपांडुरोगविसर्पषाण्ड्यकंडूपामादींश्च शमयेदिति ॥ १० ॥

सप्तपर्ण, किरमाला, अतीस, पाठा, कुटकी, गिलोय, त्रिफला, पटोलपत्र, नींब, पित्तपापडा, जवासा, त्रायंती, नागरमोथा, चंदन, पद्माख, हलदी, पीपल, इंद्रायण, मूर्वा, शतावरी, सारिवा, इंद्रजव, अडूसा, वच, मुलेठी, चिरायत, गृष्टिका (वाराही-कंद या काश्मरी) इन सबको समान भाग लेकर कल्कसे चौगुना घृत डालें घृतसे दुगुना आंवलेका रस और इससे चौगुना जल इन सबको इकठाकर मथन करके पकालेवे (घृत शेष रहे उतार लें) यह महातिक्त नामक घृत कुष्ठ विषमज्वर रक्तपित्त हृदयरोग उन्माद मृगी गुल्म फुन्सी प्रदर गलगंड गंडमाला श्लीपद पांडु-रोग विसर्प नपुंसकता सूखी और गीली खूजली इतने रोगोंको नष्ट करता है ॥१०॥

तिक्तक घृत ।

त्रिफलापटोलपिचुमंदाटरूषककटुरोहिणीदुरालभात्रायमाणापर्पटकाश्चैतेषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे प्रक्षिप्य पादावशेषं कषायमादाय कल्कपेष्याणीमानि भेषज्यान्यर्द्धपलिकानि त्रायमाणामुस्तेंद्रयवचंदन-किराततिक्तानि पिप्पल्यश्चैतानि घृतप्रस्थे समवाप्य विपचेदेतत्तिक्तकं नाम सर्पिः कुष्ठविषमज्वरगुल्मार्शग्रहणीदोषशोफपांडुरोगविसर्पषांढ्यशमनं चेति ॥ ११ ॥

त्रिफला, पटोलपत्र, निंब, अडूसा, कुटकी, जवासा, त्रायमाण, पित्तपापडा इन सबको दो दो पल ले द्रोणभर जलमें डाल क्वाथ करे चतुर्थ भाग रहे उतार ले और नीचे लिखी औषध आधे आधे पल लेकर पीसके कल्क बनावे त्रायमाण, नागर-मोथा, इंद्रजौ, चंदन, चिरायता, पिप्पली इस कल्क और पूर्वोक्त क्वाथको एकप्रस्थ घृतमें मिलाकर पकावे पक जानेपर यह तिक्तक नाम घृत होवे यह कुष्ठ विषम ज्वर गुल्म बवासीर ग्रहणी शोथ पांडुरोग विसर्प नपुंसकता इन्हें नष्ट करताहै ॥ ११ ॥

कुष्ठनाशक प्रलेप ।

अतोन्यतमेन घृतेन स्निग्धस्विन्नस्यैकां द्वे तिस्रश्चतस्रः पंच वा शिरा विध्येन्मंडलानि[2] चोत्सन्नान्यवलिखेदभीक्ष्णं प्रच्छयेद्वा ॥ १२ ॥ समुद्रफेनशाकगोजीकाकोदुंबरिकापत्रैर्वावघृष्यालेपयेल्लाक्षासर्जरसरसांज-नप्रपुन्नाडावल्गुजतेजोत्यश्वमारकार्ककुटजारेवतमूलकल्कैर्मूत्रपिष्टैःपित्तपि-ष्टैर्वा ॥ १३ ॥ स्वर्जिकातुत्थकासीसविडंगागारधूमचित्रककटुकसु-धाहरिद्रासैंधवकल्कैर्वा ॥ १४ ॥ एतान्येवावाप्यक्षारकल्पेननिस्रुते पलाशक्षारे ततो विपाच्य फाणितमिव संजातमवतार्य लेपयेत् ॥ १५॥

उपरोक्त घृतोंमेंसे किसी एकसे स्निग्धकर स्वेददिलाके एक दो तीन चार या पाँच (जितनी उचित हो) सिरा वेधन करावें तथा जो चकत्ते ऊपरको उभरे हुवे हों उन्हें खुरच देवे या वहां पछने लगा दे ॥ १२ ॥ या समुद्रफेन सागोनके पत्र गोजिह्वा तथा कटगूलर (अंजीर) के पत्तेसे घिसकर (मंडलको घिसकर) लाख राल रसोत चकरोद बावची तेजोवती कनेर आक कुडा आरेवतमूल (किरमा-लाकी जड) इनका कल्क गोमूत्रमें पीसकर या पित्तमें पीसकर लेप करे ॥ १३ ॥

(वा० १३) शाकः महाखरपत्रः, गोजी गोजिह्वा, खरपत्रत्वं मंडलघर्षणार्थं । आरेवतको राजवृक्षः ।

अथवा सज्जीखार नीलाथोथा, कसीस, विडंग, धमासा, चित्रक, कटुकी, थोहर, हलदी, सैंधानिमक इनके कल्कका लेप करे ॥ १४ ॥ अथवा इन्ही द्रव्योंको ढाकके क्षारमें साधन करते समय डालकर पकावे और फाणित होनेपर उतार ले और लेप करे ॥ १५ ॥

ज्योतिष्कफललाक्षामरिचपिप्पलीसुमनःपत्रैर्वा। हरितालमनश्शिलार्कक्षीर-तिलशिग्रुमरिचकल्कैर्वा। स्वर्जिकाकुष्टतुत्थकुटजचित्रकविडंगमरिचमनः शिलाकल्कैर्वा । हरीतकीकरंजिकाविडंगसिद्धार्थकलवणरोचनावल्गुज-हरिद्राकल्कैर्वा ॥ १६ ॥

ज्योतिष्कफल (मेथीदाने या काकमर्दनिकाफल) लाख मिरच पीपल सुमन (चमेली) के पत्ते इनका लेप करे-या हरिताल मैनसिल आकका दूध तिल सोहँजना स्याहमिरच इनके कल्कका लेप करे या सज्जीखार कूट नीलाथोथा कुडा चित्रक विडंग मिरच मैनसिल इन्हें पीस लेपकरे अथवा हरड करंज विडंग सपेद सरसों सैंधानिमक गोरोचन बावची हलदी इन्हें पीस लेप करे ॥ १६ ॥

श्वित्र व दद्रुकी चिकित्सा ।

सर्वे कुष्ठापहाः सिद्धा लेपाः सप्त प्रकीर्तिताः । वैशेषिकानतस्तूर्द्ध्वं दद्रुश्वि-त्रेषु मे शृणु ॥ १७ ॥ लाक्षा कुष्ठं सर्षपाः श्रीनिकेतं रात्रिर्व्योषं चक्र-मर्दस्य बीजम्। कृत्वैकस्थं तक्रपिष्टैः प्रलेपो दद्रूषूक्तो मूलकाद्वीजयुक्तः॥ ॥ १८॥ सिंधूद्भूतं चक्रमर्दस्य बीजं इक्षूद्भूतं केशरं तार्क्ष्यशैलम् । पिष्टो लेपोऽयं कपित्थाद्रसेन दद्रूस्तूर्णं नाशयत्येष योगः ॥ १९ ॥ हेमक्षीरी व्याधिघातः शिरीषो निंबः सर्जो वत्सकः साजकर्णः।शीघ्रं तीव्रां नाशयं तीहदद्रूः स्नानालेपोद्धर्षणेषु प्रयुक्ताः ॥ २० ॥

कुष्ठके नाश करनेवाले सब सात सिद्ध लेप वर्णन किये जाचुके हैं इसके अगाडी विशेषकर दद्रु (दाद) और श्वित्र (सुपेद कुष्ठ) के लेपादि सुनो ॥ १७ ॥ लाख कूठ सरसों श्रीनिकेत (श्रीवास सरल वृक्ष) हलदी त्रिकटु पवाडके बीज इन्हें इकट्ठाकर

(श्लो० १८) श्रीनिकेतनं श्रीवासः सरलवृक्षः इति शब्दस्तोमः । डल्लनस्तु श्रीनिकेतनं नवनीतामित्याह, परंतु तदप्रयुक्तं प्रतीयते ।

(श्लो० १९) तार्क्ष्यशैलं रसांजनम् ।

(श्लो० २०) हेमक्षीरीत्यादीनां स्नाने तु कषायो गृह्यते लेपने कल्कः घर्षणे चूर्णम्।हेमक्षीरी चोक इति, डल्लनस्तु कंकुष्ठमाह ।

मट्ठेमें पीसे और मूलीके बीजभी पीसकर मिलादे इनका लेप करनेसे दद्रु (दाद) नष्ट होजाते हैं ॥ १८ ॥ सेंधानिमक पवांडके बीज गुड केसर रसौत इन्हें कैथके रसमें घोट लेपकरे यह योग शीघ्र दादको नष्ट कर देवे ॥ १९ ॥ अथवा चोक, किरमाला, सिरस, नीब राल कुडा अजकर्ण (शाल) इन्हें तक्र वा कैथके रसमें पीस लेप करनेसे या इनके क्वाथसे स्नान करने (दद्रुधोने) से या इन्हें करडा पीसकर दादपर रगड देनेसे दाद नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥

भद्रासंज्ञोदुंबरीमूलतुल्यं दत्वा मूलं क्षोदयित्वा मलय्वाः । सिद्धं तोयं पीतमुष्णे सुखोष्णं स्फोटान् श्वित्रे पुंडरीके च कुर्यात् ॥ २१ ॥ द्वैपं दग्धं चर्म मातंगजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः । पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन क्षारेणाक्तः श्वित्रमेको निहंति ॥ २२ ॥

भद्रा संज्ञक उदुंबरी (बडी कठगूलर) की जडके समान मलयू (अंजीर) की जड खोदकर कुचललें और इनका क्वाथ कर लेवे इसे उष्णकाल (गरमी) में निवाया २ पीवें तो श्वित्र (सुपेददाग) तथा पुंडरीक कुष्ठमें फोडे पैदा हो जायंगे ॥ २१ ॥ जब फोडे हो जाय और फूट जाय तब यह क्रिया करे कि द्वीपी (चीते) की चर्म या हाथीकी चर्म जलाकर उसकी काली भस्म तैलमें मिलाकर लेप कर दे इससे सुपेद दाग नष्ट हो जाते हैं अथवा पूति कीट (कातरा एक भांतिका रोमदार कीडा खेती खानेवाला होता है) उसे किरमालेकी राखमें मिलाकर लगावे यह एक ही प्रयोग श्वित्रको नष्ट कर देता है ॥ २२ ॥

कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा बैभीतिकं तैलमथ द्वितीयम् ॥ एतत्समस्तं मृदितं प्रलेपात् श्वित्राणि सर्वाण्यपहंति शीघ्रम् ॥ २३ ॥ अध्यर्धतोये सुमतिस्रुतस्य क्षारस्य कल्पेन तु सप्तकृत्वः ॥ तैलं शृतं तेन चतुर्गुणेन श्वित्रापहं म्रक्षणमेतदग्र्यम् ॥ २४ ॥

काले सर्पको जलाकर उसकी काली राख और दूसरा बहेडेका तैल इन दोनोंको खूब मिलाकर इसका लेप करनेसे सब प्रकारके श्वित्र (सुपेद कुष्ठ) शीघ्र नाश हो जातेहैं ॥ २३ ॥ अथवा पूर्वोक्त काले सर्पकी राखमें आधा जल डाल २ कर क्षारकी रीतिसे ७ वार बुद्धिमान् वैद्य चुवा लेवे फिर उस जल चुवे हुवेसे चतुर्थांश तैल मिलाकर सिद्ध करलें तैलमात्र रहे हुवेको श्वित्रपर लगावे यह लेप सबमें अग्र्य अर्थात् प्रधान है ॥ २४ ॥

(श्लो० २२) द्वैपं व्याघ्रचर्म पूतिःकीटः सस्यादः वर्षाकाले कर्बुरकः ॥

(श्लो० २४) म्रक्षणं लेपनम् ॥

घृतेन युक्तं प्रपुनाडबीजं कुष्ठं च यष्टीं मधुकं च पिष्ट्वा। श्वेताय दद्याद्गृहकुक्कुटाय चतुर्थभक्ताय बुभुक्षिताय ॥ २५ ॥ तस्योपसंगृह्य च तत्पुरीषमुत्पाचितं सर्वत एवं लिंपेत् । अभ्यन्तरं मासमिमं प्रयोगं प्रयोजयेच्छ्वित्रमथो नि हंति ॥ २६ ॥

पवाडके बीज कूट मुलेठी इन्हें घृतमें पीस (गोलियां बना कर) पाले हुवे सुपेद मुरगेको जो चार समयका भूंखा हो अथवा जिसे भूंखसे चौथाई खिलायाहुवा भूंखा हो उसे भरपेट बे गोलियां खिलावे ॥२५॥ फिर उसकी वह वीट ले लेवे उसे पकायेहुवे फोडे डाले हुवे श्वित्रपर लगावे इससे १ महीनेभीतर अंतर्गत श्वित्र नष्ट होजाता है ॥ २६ ॥

क्षारे सुदग्धे गजलेण्डजे तु गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च । द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं दत्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ॥ २७ ॥ एतद्यदा चिक्कणतामुपैति तदा समस्तां गुटिकां विदध्यात्। श्वित्रं प्रलिंपेदथ संप्रघृष्य तथा व्रजेदाशु सवर्णभावम् ॥ २८ ॥

गजलेंडज (गजपीपली अथवा जलपीपली) को जलाकर उसके क्षारको हाथीके मूत्रमें घोलकर टपकाले फिर इस एक द्रोण गजमूत्रमें दशवां भाग बावचीके बीज पीसके डाल दे और पकावे ॥ २७ ॥ जब यह पकके गाढ और चिकना होजावे तब इसकी गोलियां बना ले फिर इन्हें श्वित्रपर घसकर लेप करे इससे त्वचाका रंग एकसा हो जाता है ॥ २८ ॥

कषायकल्पेन सुभावितां तु दलत्वचं चूतहरीतकीनाम् । तां ताम्रदीपे प्रणिधाय धीमान् वर्त्तिं वटक्षीरसुभावितां तु ॥ २९ ॥ आदीप्य तज्ज्योतमसीं गृहीत्वा तां चापि पथ्यांभसि भावयित्वा । संम्रक्षितं तद्बहुशः किलासं तैलेन सिक्तं कटुना प्रयाति ॥ ३० ॥

आम्र तथा हरडेके पत्ते और छालका क्काथ कर उसमें बत्तीको भिगो २ कर सुखाले फिर बडके दूधमें भिगोकर सुखा ले उस बत्तीको तांबेके दीपकमें रखके जलावे ॥ २९ ॥ इससे हुवा काजल (स्याही) लेकर उसमें हरडेके जल (स्वरस) के भावना देवे फिर किलास कुष्ठपर कडवा तेल चुपडकर ऊपरसे यह स्याही लगावे इससे किलास नष्ट होजाता है ॥ ३० ॥

(श्लो० २५) चतुर्थभक्ताय एकाहमुपोषिताय द्वितीयेहनि सायं। इतिडल्हनः अन्येचतुर्थभक्ताय चतुर्थांशभक्ताय इति व्याख्यानयंति, अस्मिन् पद्ये प्रपुन्नाडस्थानेप्रपुनाड इत्यार्षः।

आवल्गुजं बीजमग्र्यं नदीजं काकाह्वानोदुंबरी या च लाक्षा। लौहं चूर्णं मागधी तार्क्ष्यशैलं तुल्याः कार्याः कृष्णवर्णास्तिलाश्च ॥ ३१ ॥ वर्तिं कृत्वा तां गवां पित्तपिष्टां लेपः कार्यः श्वित्रिणां श्वित्रहारी। लेपात्पित्तं शैखिनं श्वित्रहारि ह्रीबेरं वा दग्धमेतेन युक्तम् ॥ ३२ ॥

बावचीके बीज और तापीनदीकी सुवर्णमाखी काकोदुंबर (अंजीर) लाख लोह-चून पीपल रसौत सबको समभाग ले सबके समान काले तिल इनको गौके पित्तमें पीसकर बत्ती बना ले इसका लेप करनेसे श्वित्रवालोंका श्वित्र (सुपेद कुष्ठ) नष्ट होता है अथवा मोरके पित्तमें हीबेरकी राख मिलाकर लगानेसे भी श्वित्र नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

तुत्थालकटुकाव्योषसिंहार्कहयमारकाः। कुष्टावल्गुजभल्लातक्षीरिणीसर्षपा स्नुही। तिल्वकारिष्टपीलूनां पत्राण्यारग्वधस्य वा ॥ ३३ ॥ बीजं विडंगाश्वहंत्रोर्हरिद्रे बृहतीद्वयम्। आभ्यां श्वित्राणि योगाभ्यां लेपान्नश्यंत्यशेषतः ॥ ३४ ॥

लीलाथोथा, हरताल, कुटकी, त्रिकुटा, रक्तसोहँजना, आक कनेर, कूट, बावची, भिलावे, क्षीरिणी (अर्कपुष्पी), सरसों, थोहर, तिल्वक (लोध) नीप और पीलू, अमलतासके पत्ते ॥ ३३ ॥ अथवा विडंगके बीज, कनेर, दोनों हलदी, दोनों कटेली, इन दोनों लेपोंसे श्वित्र अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ३४ ॥

नीलघृत।

वायसीफल्गुतिक्तानां शतं दत्वा पृथक् पृथक्। द्वि लोहरजसः प्रस्थे त्रिफलाया्याढकं तथा ॥ ३५ ॥ त्रिद्रोणेपां पचेयावद्भागौ द्वावसनादपि। शिष्टं च विपचेद्भूय एतैः श्लक्ष्णप्रपेषितैः ॥ ३६ ॥ कल्कैरिंद्रयवव्योषत्वग्दारुचतुरंगुलैः। पारावतपदीदंतीबाकुचीकेशराह्वयैः ॥ ३७ ॥ कंटकार्या च तत्पक्वं घृतं कुष्ठिषु योजयेत्। दोषधात्वाश्रितं पानादभ्यंगात्त्वग्गतं तथा। अप्यसाध्यं नृणां कुष्ठं नाम्ना नीलं नियच्छति ॥ ३८ ॥

काकमाची, कटुवर, कुटकी, इनको सौ सौ प्रस्थ ले लोहचूर्ण दो प्रस्थ, त्रिफला तीन आढक ले ॥ ३५ ॥ इन्हें तीन द्रोण जलमें पकावे पकतेमें दो भाग विजयसार डाले फिर क्वाथ लेकर उसमें ये वस्तु गाढी पीसकर डाले ॥ ३६ ॥ इंद्रजौ, त्रिकुटा,

दालचीनी, देवदारु, किरमाला, पारावतपदी, दंती, बावची, केसर ॥ ३७ ॥ कटेली और चतुर्थ भाग (क्वाथसे) घृत डाले फिर पकावे सिद्ध होनेपर कुष्ठियोंको पीने तथा लगानेको यह घृत देवे इससे दोष धातुवोंमें प्राप्त हुआ असाध्य कुष्ठ भी मनुष्योंका नाश होजाता है यह नील नामक घृत है ॥ ३८ ॥

महानील घृत ।

त्रिफलात्वक्त्रिकटुकासुरसामदयंतिका ॥ वायस्यारग्वधानां च तुलां कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥ ३९ ॥ काकमाच्यर्कवरुणदंतीकुटजचित्रकान् । दार्वीनिदग्धिकाभ्यां तु पृथक् दशपलं तथा ॥ ४० ॥ त्रिद्रोणेपां पचेद्यावत् षट्प्रस्थं परिशेषितम् ॥ शकृद्रसदधिक्षीरं मूत्राणां पृथगाढकम् ॥ ४१ ॥ तद्वद्घृतस्य तत्साध्यं भूनिंबव्योषचित्रकैः ॥ करंजफलनीली च श्यामावल्गुजपीलुभिः ॥ ४२ ॥ नीलिनीनिंबकुसुमैः सिद्धं कुष्ठापहं घृतम् । म्रक्षणादंगसावर्ण्यं श्वित्राणां जनयेन्नृणाम् । भगंदरं कृमीनर्शो महानीलं नियच्छति ॥ ४३ ॥

त्रिफला (हरडे, बहेडा, आमला,), दालचीनी, सोंठ, मिरच, पीपल, तुलसी, मदयंतिका (मेंदी या मल्लिका), काकोदुम्बरी, किरमाला इन सबको एक एक तुला लेवे ॥ ३९ ॥ काक, माची, आकवरुणा, दंती,कुडा,चित्रक, दारुहलदी, दोनों कटेली इन सबको दश दश पल लेवे ॥ ४० ॥ इनको तीन द्रोण पानीमें पकावे छः प्रस्थ जल रहे तब उतारले फिर इसमें गोबरका रस दही दूध एक एक आढक डाले और गोमूत्र भी आढक भर डाले ॥४१॥ तथा इतना इतनाही घृत डालदे और सिद्ध करते समय चिरायता,त्रिकुटा, चित्रक, करंजफल, नीली (नीलिका), काली नीसोथ, बावची, पीलू ॥ ४२ ॥ गीलनी (कालादाना), नींबके फूल (पीसके) डालदे सिद्ध होनेपर यह महानील घृत चित्र कुष्ठवालेको मलनेसे त्वचाका रंग एकसा करदेताहै तथा भगंदर कृमि और बवासीरको नष्ट कर देताहै ॥ ४३ ॥

(वक्तव्य) ये नील घृत और महानील घृत सुश्रुतसंहिताके सनातनीय नहीं है देखो टिप्पणी ।

(श्लो० ३९) मदयंतिका नखादिरागजननी मेंदीति प्रसिद्धा (इति डल्लनः) । शब्दस्तोमस्तु मदयंतिका बनमल्लिका इत्याह, वायसी काकोदुंबरी ।

(श्लो० ३५ से ४३) अनार्षे नीलमहानीलघृते एते महावैद्याभ्यां जैज्जटगयदासाभ्यां व्याख्याते (इति निबंधसंग्रहः)

मूत्रं गव्यं चित्रकव्योषयुक्तं सर्पिः कुंभे क्षौद्रयुक्तं स्थितं हि । पक्षादूर्द्ध्वं श्वि त्रिभिः पेयमेतत्कुर्य्याच्चास्मिन्कुष्ठे दिष्टं विधानम् ॥ ४४ ॥ पूतीकार्क-स्नुग्नरेंद्रद्रुमाणां मूत्रैः पिष्टा पल्लवाः सौमनाश्च । लेपः श्वित्रं हंति दद्रूव्र-णांश्चदुष्टान्यर्शांस्येवं नाडीव्रणांश्च ॥ ४५ ॥

गोमूत्र चित्रक त्रिकुटा और शहत इनको घृतके चिकने पात्र (घड़े) में रखकर (मुँह बंद करदे) पंदरह दिन पीछे निकालकर श्वित्रकुष्ठवाला (एकपल नित्य पीवे और कुष्ठोक्त पथ्यापथ्य विधानसे रहे ॥ ४४ ॥ अथवा पूतिकरंज आक थोहर किरमाला इनके पत्ते तथा चमेलीके पत्ते सब मिला गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र दाद व्रण और दुष्ट बवासीर तथा नाडीव्रण (नासूर) नष्ट होवे ॥ ४५ ॥

अस्मादूर्द्ध्वं निःस्नुते दुष्टरक्ते जातप्राणं सर्पिषा स्नेहयित्वा । तीक्ष्णैर्योगैश्छ-र्दयित्वा प्रगाढं पश्चाद्दोषं निर्हरेच्चाप्रमत्तः॥ ४६ ॥ दुर्वांतो वा दुर्विरि-क्तोथवा स्यात्कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्तदेहः । निःसंदिग्धं यात्यसाध्यत्वमाशु-तस्मात्कृत्स्नान्निर्हरेत्तस्य दोषान् ॥ ४७ ॥ पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपे-यान्मासान्मासात्स्रंसनं चापि देयम्। स्राव्यं रक्तं वत्सरे हि द्विरल्पं नस्यं दद्याच्च त्रिरात्रात्त्रिरात्रात् ॥ ४८ ॥

इन साधारण क्रियाओंसे आराम नहो तब रोगीकी शिरा वेधन करावे और दुष्ट रुधिर निकलजानेपर जब कुछ ताकत आजावे तब घृतसे स्निग्ध करके तीक्ष्ण प्रयोगोंसे खूब वमन करावे फिर सावधानीसे शेष दोषोंकोभी (विरेचनादिद्वारा) निकाले ॥४६॥ यदि वमन और विरेचनमें अयोग्यता होजावे (मल न गिरे) तो दोष ऊर्ध्वगत होकर देहमें व्याप्त होजाते हैं जिससे निस्संदेह कुष्ठी असाध्य होजाता है इसलिये उसके दोषोंको निर्मूल नष्टकर देना चाहिये ॥ ४७ ॥ और फिरभी पक्ष पक्षके अंतरसे वमन कराते रहें और महीने महीनेके अंतरसे स्रंसन (रेचन)भी करावे तथा वर्षदिनमें दोवार शिरामोक्ष (फस्त) कराकर थोड़ा रुधिर निकलवादे और तीन तीन दिनके अंतरसे नास देते रहे जिससे ऊर्ध्वगामी मल छटता रहे ॥ ४८ ॥

पथ्यां व्योषं सेक्षुजातं सतैलं लीढ्वा शीघ्रं मुच्यते कुष्ठरोगात्। धात्रीपथ्या-क्षोपकुल्याविडंगान् क्षौद्राज्याभ्यामेकतो वावलिह्यात् ॥ ४९ ॥ पीत्वा मासं वा पलांशां हरिद्रां मूत्रेणांतं पापरोगस्य गच्छेत् । एवं पेयश्वित्रकः

(श्लो० ५०) पापरोगस्य कुष्ठस्य अंतंगच्छेत् ।

श्लक्ष्णपिष्टः पिप्पल्यो वा पूर्ववन्मूत्रयुक्ताः ॥ ५० ॥ तद्वत्तार्क्ष्यं मासमात्रं च पेयं तेनाजस्रं देहमालेपयेच्च । आरिष्टत्वक् सप्तपर्णी च तुल्या लाक्षा-मुस्तं पंचमूल्यो हरिद्रा ॥ ५१ ॥ मंजिष्ठाक्षौ वासको देवदारुः पथ्यावह्नी व्योषधात्रीविडंगम् । सामान्यांशं योजयित्वा विडंगैश्चूर्णं कृत्वा तत्पलोन्मानमश्नन् ॥ ५२ ॥

हरडे त्रिकुटा गुड इन्हें तेल युक्तकर चाटनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होजाताहै तथा आंवले हरड बहेडा विडंग पीपल इन्हें शहत और घृत मिलाकर या कोई एक मिलाकर चाटे तौ भी कुष्ठसे शीघ्र निवृत्ति होजाती है ॥ ४९ ॥ अथवा एक महीनेतक पलभर हलदीको गोमूत्रके संग नित्य पीनेसे पाप रोग (कुष्ठ) का अंत होजाता है अथवा चित्रकको गाढा पीसकर गोमूत्रसे पीवे अथवा पीपलोंको गोमूत्रके संग पीवे तो कुष्ठ नष्ट होवे ॥५० ॥ इसी भांति रसौतको एक महीने पीवें और उसीको निरंतर देहपर लेपन करें अथवा नींबकी छाल सातला लाख मोथा दोनों पंचमूल हलदी मजीठ, बहेडा, अडूसा, देवदारु, हरडे, चित्रक, त्रिकुटा, आंवला इन सबको समान भागले सबके समान विडंगले कर चूर्ण करले इसे पलभर नित्य सेवन करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

कुष्ठाज्जन्तुर्मुच्यते त्रैफलं वा सर्पिर्द्रोणं व्योषयुक्तं च युंजन्।गोमूत्रांबुद्रोण-सिद्धेऽक्षपीडे सिद्धं सर्पिर्नाशयेच्चापि कुष्ठम् ॥ ५३ ॥ आरग्वधे सप्तपर्णे पटोले सवृक्षके नक्तमाले सनिंबे । जीर्णं पक्वं तद्धरिद्राद्वयेन हन्यात्कुष्ठं मुष्कके चापि सर्पिः ॥ ५४ ॥

त्रिफलाके घृतको त्रिकुटा युक्त करके द्रोणभर सेवन करनेसे मनुष्य कुष्ठव्याधिसे छूट जाता है अथवा गोमूत्रमें सिद्ध करी हुई (अक्ष पीड) यवतिक्तासे सिद्ध किया हुआ घृत भी कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥ अमलतास सातला पटोल कुडा करंज और नींब इससे सिद्ध किया पुराना घृत कुष्ठनाशक है अथवा दोनों हलदीसे साधित तथा मुष्कक (घंटापारुली) से सिद्ध किया घृत भी कुष्ठनाशक है ॥ ५४ ॥

कुष्ठनाशक योग ।

रोध्रारिष्टं पद्मकं रक्तसारः सप्ताह्वाक्षौ वृक्षको बीजकश्च ॥ योज्या

(श्लो० ५३) गोमूत्रांबु गोमूत्रकषायः, अक्षपीडे यवतिक्तायाम् ।

(श्लो०५४) आरग्वधे इत्यत्र तृतीयाक्षरे लघुत्वं शालिनीछंदसि आर्षत्वं एवमेवद्वितीय पदेपिचाद्येत्रयाणा-मक्षराणां लघुत्वं चार्षं, जीर्णं पुराणं ।

स्नाने दह्यमानस्य जंतोः पेया वा स्यात्क्षौद्रयुक्ता त्रिभंडी ॥ ५५ ॥ खादेत्कुष्ठी मांसपाते पुराणान्मुद्गान्सिद्धान्निम्बतोये सतैलान् ॥ निम्ब-काथं जातसत्वः पिबेद्वा क्वाथं वार्कालर्कसप्तच्छदानाम् ॥ ५६ ॥ जग्धेष्वंगेष्वश्वमारस्य मूलं लेपो युक्तः स्याद्विडंगैः समूत्रैः ॥ मूत्रे-श्चैनं सेचयेद्भोजयेच्च सर्वाहारान्संप्रयुक्तान् विडंगैः ॥५७॥ कारंजं वा सार्षपं वाक्षतेषु क्षेप्यं तैलं शिग्रुकोशाम्रयोर्वा । पक्वं सर्वं वा कटूष्णै-स्सतिक्तैः शेषं च स्याद्दुष्टवत्संविधानम् ॥ ५८ ॥

लोध, नींब, पद्माख, रक्तसार (रक्तचंदन), सातला, बहेडा, कुडा, विजैसार इनका क्वाथ ठंढा करके कुष्ठजनित दाहवालेको स्नान करावे तथा त्रिभंडी (निसोथ) के क्वाथको मधुयुक्त पिलावे ॥ ५५ ॥ जिस कुष्ठीका मांस गलकर गिरने लग गया हो वह पुराने मूगोंको निंबके क्वाथमें सिद्धकर तैलके संग खावे अथवा जिसके क्रिमी पडगये हों वह निंबका क्वाथ पीवे अथवा आक सुपेद आक और सातला इनका क्वाथ पीवे ॥ ५६ ॥ जिसका अंग कीडोंने खालिया है वह कनेरकी जड पीसकर उसपर लगावे अथवा विडंगको गोमूत्रमें पीसकर लगावे और ऊपर गोमूत्रका सेचन करे और सब आहार विडंग युक्त करे ॥ ५७ ॥ कुष्ठके घावपर करंजका तेल अथवा सरसोंका तेल लगावे अथवा सोहँजना और कोशाम्रका तेल लगावे अथवा समस्त कटु उष्ण और तिक्त द्रव्यों (मिरच विडंग निंबादि) से सिद्ध किया तैल लगावे और शेष सब विधान दुष्ट व्रणके समान करे ॥ ५८ ॥

वज्रतैल ।

सप्तपर्णकरंजार्कमालतीकरवीरजम् । स्नुहीशिरीषयोर्मूलं चित्रकास्फोतयो-रपि॥५९॥विषलांगलवज्राख्यकासीसालमनःशिलाः । करंजबीजंत्रिकटु स्त्रिफला रजनीद्वयम् ॥ ६० ॥ सिद्धार्थकान् विडंगानि प्रपुन्नाडं च संह-रेत् । मूत्रपिष्टैः पचेदेतैस्तैलं कुष्ठविनाशनम् । एतद्वज्रकमभ्यंगान्नाडीदु-ष्टव्रणापहम् ॥ ६१ ॥

सातला, करंज, आक, मालती, कनेर, थोहर और सिरसकी जड, चित्रक, आस्फोत (सारिवा) ॥५९॥ विष (सींगिया), कलहारी, वज्राख्य (अभ्रक), कसीस,

(श्लो० ५६) जातसत्वः संजातकृमिः ।

(श्लो० ५७) जग्धेष्वंगेषु क्रिमिभिरितिशेषः ।

(श्लो० ५८) दुष्टवत् दुष्टव्रणवत् ।

हरताल, मैनसिल करंजके बीज, त्रिकुटा, त्रिफला, दोनों हलदी, ॥ ६० ॥ सुपेद सरसों, विडंग, चकरोंद इन्हें गोमूत्रसे पीसकर इनसे तैल पकावे यह वज्र तैल मलनेसे कुष्ठका नाश करता है और दुष्टव्रण और नाडीव्रण (नासूर) को भी अच्छा करता है ॥ ६१ ॥

महावज्र तैल ।

सिद्धार्थकं करंजौ द्वौ द्वे हरिद्रे रसांजनम् । कुटजश्च प्रपुन्नाडसप्तपर्णौ मृगादनी ॥ ६२ ॥ लाक्षा सर्जरसोर्कश्च सास्फोतारग्वधौ स्नुही । शिरीषस्तुवराख्यस्तु कुटजारुष्करौ वचा ॥ ६३ ॥ कुष्टं कृमिघ्नं मंजिष्ठा लांगली चित्रकं तथा। मालती कटुतुम्बी च गंधाह्वा मूलकं तथा॥६४॥ सैंधवं करवीरं च गृहधूमं विषं तथा। कंपिल्लकं ससिंदूरं तेजोह्वातुत्थकाह्वये ॥ ६५ ॥ समभागानि सर्वाणि कल्कपेष्याणि कारयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं दद्यात्तिलतैलं चतुर्गुणम् ॥ ६६ ॥ कारंजं वा महावीर्यं सार्षपं वा महागुणम् । अभ्यंगात्सर्वकुष्ठानि गंडमालाभगंदरान् ॥ ६७ ॥ नाडीदुष्टव्रणान्घोरान्नाशयेन्नात्र संशयः । महावज्रकमित्येतन्नाम्ना तैलं महागुणम् ॥ ६८ ॥

सुपेद सरसों दोनों करंज दोनों हलदी रसौत कुडा चकरोंद (पँवाड) सातला, इंद्रायण ॥ ६२ ॥ लाख, राल, आक, सारिवा, किरमाला, थोहर, सिरस, तुवरी इंद्रजौ, भिलावे, वच ॥ ६३ ॥ कूट, विडंग, मँजीठ, कलहारी, चित्रक, मालती, कडवी तूंबी, गंधक, मूली ॥ ६४ ॥ सेंधानमक, कनेर धवासा विष (सींगिया मोहरा) कमेला, सिंदूर, तेजवती, लीलाथोथा ॥ ६५ ॥ इन सबको सम भाग लेकर कल्ककी भांति पीस ले और सबसे दूना गोमूत्र ले और चौगुना तिलका तेल लेवे ॥ ६६ ॥ अथवा अतिपराक्रमवाला करंज तैल लेवे अथवा महागुणवाला सरसोंका तैल लेवे इसे सिद्ध करके मर्दन करे इससे सब प्रकारके कुष्ट और गंडमाला तथा भगंदर ॥ ६७ ॥ तथा नाडीव्रण (नासूर) और दुष्टव्रण अवश्य नाश हो जाते हैं यह महावज्रक नाम तैल महागुणकारक है ॥ ६८ ॥

अंत्र प्रयोग ।

पित्तावापैर्मूत्रपिष्टैस्तैलं लाक्षादिकैः कृतम् । सप्ताहं कटुकालाब्वां निर्द-

(श्लो० ६९) पित्तावापैः गोपित्तावापैः, मूत्रं गोमूत्रं इति डल्हनः ।

धीत चिकित्सकः ॥ ६९ ॥ पीतवंतं ततो मात्रां तेनाऽभ्यक्तं च मानवम् । शोषयेदातपे तस्य दोषा गच्छंति सर्वशः ॥ ७० ॥

लाक्षादि औषधोंको गोपित्तमें और गोमूत्रमें पीसकर उनसे तैल साधन करे फिर उस तैलको सात दिनतक कडुवीतूंबी (गीली) में भरके रहने दे ॥ ६९ ॥ फिर कुष्ठीको अग्निबलके अनुसार उसकी मात्रा पिलावे तथा कुष्ठीके शरीरपर इसकी मालिश कराके धूपमें सुखावे तो उसके सम्पूर्ण दोष (विकार) नष्ट हो जावें॥७०॥

स्रुतदोषं समुत्थाप्य स्नातं खदिरवारिणा । यवागूं पाययेदेनं साधितां खदिरांबुना ॥ ७१ ॥ एवं संशोधने वर्गे कुष्ठघ्नेष्वौषधेषु च । कुर्य्यात्तैलानि सर्पींषि प्रदेहोद्धर्षणानि च ॥ ७२ ॥ प्रातः प्रातश्च सेवेत योगान्वैरेचनान् शुभान् । पंच षट् सप्त चाष्टौ वा यैरुत्थानं न गच्छति ॥ ७३ ॥ कारभं वा पिबेन्मूत्रं जीर्णे तत्क्षीरभोजनम् । जातसत्वानि कुष्ठानि मासै षड्भिरपोहति ॥ ७४ ॥

जब कुष्ठीका दोष निवर्त होजावे तब उसे उठाकर खदिरके जलसे स्नान करावे और खदिरके क्काथमें पकाई हुई यवागू पिलावे ॥ ७१ ॥ इसी तरह संशोधनवर्ग और कुष्ठनाशक जो जो औषध हैं उनमें तैल या घृत साधन करके उसका लेपन तथा मर्द्दन करे ॥ ७२ ॥ और नित्य सबेरे दस्तावर औषध खायाकरे जिससे पांच छः या सात आठ दस्त होजाया करें (अथवा पांच छः या सात आठ दिनके अंतरसे दस्तावर (विरेचनी) औषध लेवे) जिससे दोष फिर न बढने पावे (इसमें डल्हनने कुछ भी नहीं लिखा जो गूढ बातें हैं उन्हें वे भी न ठीक करसके ऐसा जाना जाता है) ॥ ७३ ॥ अथवा ऊंटका मूत्र नित्य पीवे तथा ऊंटनीके दूधमें पका (खीर आदि) भोजन करे इसके छःमहीने करनेसे कीडे पडाहुआ कुष्ठभी नष्ट होजाता है ॥ ७३ ॥

खदिरकी प्रधानता ।

दिहक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठपीडितः । सर्वथैव प्रयुंजीत स्नानपानाशनादिषु ॥ ७५ ॥ यथा हंति प्रवृद्धत्वात्कुष्ठमातुरमोजसा ॥ तथा हंत्युपर्युक्तस्तु खदिरः कुष्ठमोजसा ॥ ७६ ॥

कुष्ठका नाश चाहनेवाले कुष्ठी खदिरसारको सर्वत्र स्नानपान और भोजनमें

(श्लो० १) मेदुरेषु अतिस्निग्धेषु मेदेयुतेषुच मिहृस्नेहने इत्यस्यधातोः घुरच् ।

प्रयुक्त करे ॥ ७५ ॥ जैसे कुष्ठ बढकर रोगीका ओज (बल और प्राण) नाश कर देताहै वैसेही सेवन कियाहुआ खैरसार कुष्ठको जड मूलसे नष्ट करदेता है ॥ ७६ ॥

नीचरोमनखोऽश्रांतो हिताश्यौषधतत्परः ।
योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठमपोहति ॥ ७७ ॥
इति चिकित्सितस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो केश और नख बढने दे श्रम न करे तथा कुष्ठघ्न भोजन और औषधमें तत्पर रहे तथा स्त्रीसंग मांसभोजन और मद्यपानका त्याग रक्खे तो कुष्ठसे छूट सकताहै॥७७॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो महाकुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाडी हम महाकुष्ठोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

कुष्ठेषु मेहेषु कफामयेषु सर्वांगशोफेषु च दारुणेषु ।
कृशत्वमिच्छत्सु च मेदुरेषु योगानिमानग्र्यमतिर्विदध्यात् ॥ १ ॥

कुष्ठोंमें प्रमेहोंमें कफके रोगोंमें दारुण सर्वांग शोथमें और जो स्थूल मनुष्यदुबलाहोनेकी इच्छा करे उन्हें तथा मेदोरोगोंमें ये प्रयोग (जो अब अगाडी कहे जाते हैं) बुद्धिमान् वैद्य उपयोग करै ॥ १ ॥

क्षुण्णान्यवान्निःपूतान् रात्रौ गोमूत्रपर्युषितान्महति कलिंजे शोषयेदेवं सप्तरात्रं भावयेत् शोषयेच्च ततस्तान् कपालभृष्टान् सक्तून् कारयित्वा प्रातः प्रातरेव कुष्ठिनं प्रमेहिणं वा सालसारादिकषायेण कंटकिवृक्षकषायेण वा पाययेत् भल्लातकप्रपुन्नाडावल्गुजार्कचित्रकविडंगमुस्तचूर्णचतुर्भागयुक्तान् ॥ २ ॥

जवोंको ओखलीमें डाल (थोडा जल डाल) कूटे जिससे उनका छिलका उत्तर जावे उन्हें रात्रिको गोमूत्रमें भिगोकर बांसकी टोकरीमें डाले और सुखाले इसी प्रकार सात दिनतक नित्य रातको गोमूत्रमें भिगोवे और सुखालियाकरे फिर उन्हें भांडमें भुनवाके सत्तू बनवाले इन सत्तुओंको नित्य सबेरे शुद्ध भिलावे पँवाड बावची आक चित्रक विडंग मोथा इनका चूर्ण चतुर्थांश मिलाकर साल सारादिके क्राथसे अथवा कंटकीवृक्ष (काटोंके वृक्ष खदिर बबूल आदि) के क्राथसे कुष्ठ रोगीको तथा प्रमेहरोगीको पिलावे ॥ २ ॥

एवमेव सालसारादिकषायपरिपीतानामारग्वधादिकषायपरिपीतानां वा गोशकृद्भूतानां वा यवानां सक्तून् कारयित्वा भल्लातकादीनां चूर्णान्यावाप्य खदिरासननिंबराजवृक्षरोहितकगुडूचीनामन्यतमस्य कषायेण शर्करामधुमधुरेण द्राक्षायुक्तेन दाडिमवेतसाऽम्लेन सैंधवलवणान्वितेन पाययेदेष सर्वमन्नकल्पः ॥ ३ ॥

इसीप्रकार सालसारादिके क्राथकी सात भावना दियेहुवे अथवा आरग्वधादिके क्राथकी सात भावना दियेहु और सुखाये हुवे जवोंके सत्तू बनावे अथवा गौको सावत जो खिलावै उसके गोबरमेंसे निकले हुये जवोंके सत्तू बनाकर पूर्वोक्त भल्लातकादिके चूर्णको मिलाके खदिर विजैसार नींब किरमाला रुहेडा गिलोय इनमेंसे किसीके क्राथमें घोलकर खांड और शहतसे मीठा करके या अनारदाने और अम्लवेतसे खट्टा करके सैंधानमक डालकर (नमकीन) पिलावे यह सब अन्न कल्प है॥ ३॥

यावेकांश्च भक्ष्यान् धानालुंचककुल्माषापूपपूर्णकोशोत्कारिकाशष्कुलिकाकुणावीकोनालिप्रभृतीन्सेवेत यवविधानेन गोधूमवेणुयवानुपर्युंजीत ॥ ४ ॥

जौके भोजनके पदार्थ जैसे धाणी लुंचक (मुरमुरे) कुल्माष (वाकली) पूर्णकोश (कचौरी) उत्कारिका (लपसी) शष्कुली (पूरी) कुणावी (पापडी) और कोनाली (त्रिकूट जिसे समौसाभी कहते हैं) इत्यादि भोजन करे और जैसे जौके पदार्थ कहे उसी प्रकार गेहूंके तथा वंशबीज (बांसके चावलों) के पदार्थ बनाकर सेवन कर सकते हैं ॥ ४ ॥

कुष्ठनाशक अरिष्ट।

अरिष्टानतो वक्ष्यामः पूतीकचव्यचित्रकसुरदारुसारिवादंतीत्रिकटुकानां प्रत्येकं षट्पलिका भागा बदरकुडवस्त्रिफलाकुडव इत्येतेषां चूर्णानि ततः पिप्पलीमधुघृतैरंतःप्रलिप्ते घृतभाजने प्राकृतसंस्कारे सप्तोदककुडवानयोरजोऽर्द्धकुडवमर्द्धतुलां च गुडस्याभिहितानि चूर्णान्यावाप्य स्वनुगुप्तं कृत्वा यवपल्ले सप्तरात्रं वासयेत्ततो यथाबलमुपयुंजीतैषोरिष्टः कुष्ठमेहमेदःपांडुरोगश्वयथूनपहंति एवं शालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ वारिष्टान् कुर्वीत ॥ ५ ॥

यहांसे अगाडी अरिष्टसाधन कहते हैं पूतिकरंज चव्य चित्रक देवदारु सारिवा दंती त्रिकुट इनको छः छः पललेवे-बेरकी छाल त्रिफला इन्हें एक २ कुडवले इनका चूर्ण करले फिर घृतके चिकने घडेके भीतर पीपल, शहत घृत लेपकर सात कुडवजल आधा कुडव लोह चूर्ण और आधातुला गुड, ये सब और पूर्वोक्त पूतिकरंजादिका चूर्ण डालके मुँह बंध करदे फिर जौकी राशिमें सात दिन गाडदे फिर निकालके यथा बल पीवे यह अरिष्ट कुष्ठ प्रमेह मेद रोग पांडु शोथ इन्हें दूरकरे-तथा ऐसेही शाल सारादिका तथा न्यग्रोधादिका या आरग्वधादिका भी अरिष्ट बनावे उनके भी यही गुण हैं ॥ ५ ॥

कुष्ठनाशक आसव ।

आसवानतो वक्ष्यामः । पलाशभस्मपरि स्रुतस्योष्णोदकस्य शीतीभूतस्य त्रयो भागा द्वौ फाणितस्यैकध्यमरिष्टकल्पेन विदध्यात् । एवं तिलादीनां क्षारेषु शालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ मूत्रेषु चासवान्विदध्यात् ६ ॥

अब आसवोंका वर्णन करते हैं । ढाककी राख गरम जलमें घोलकर चुवालें फिर ठंढा होनेपर तीन भाग यह जल और दो भाग फाणित (गुडकी राब) इन्हें एकत्र मिलाकर अरिष्टके विधानकी तरह संधान करे इसी प्रकार तिलादिकी क्षारमें साल सारादिका अथवा वट आदिका या आरग्वधादिका गोमूत्रमें आसव बनाले (ये भी कुष्ठमें हित है) ॥ ६ ॥

कुष्ठघ्न सुरा मद्य ।

अथ सुरा वक्ष्यामः । शिंशपाखदिरयोः सारमादायोत्पाद्य चोत्तमारणी ब्राह्मीकोशातकीस्तत्सर्वमेकतः कषायकल्पेन विपाच्योदकमाददीत मंडोदकार्थं किण्वपिष्टमभिषुणुयाच्च यथोक्तमेवं सुरां शालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ च विदध्यात् ॥ ७ ॥

अब सुराका वर्णन करते हैं । शीशम और खदिरका सार (अंतरछाल) या (सार) लेकर बडी अरणी ब्राह्मी कडवी तोरी इन सबका क्वाथ कर छान ले इसे मंडोदकके लिये रक्खे इसमें किरावपिष्ट (सुराबीज) (खमीर) डालकर उफाण आने दे (खमीर उठालें) यही सुरा होती है इसी प्रकार शालसारादि न्यग्रोधादि और आरग्वधादिकी सुरा (मद्य) बनाले (ये मद्य भी कुष्ठनाशक है) ॥ ७ ॥

कुष्ठघ्न अवलेह ।

अतोवलेहान् वक्ष्यामः । खदिरासननिंबराजवृक्षशालसारक्वाथे तत्सार-

पिंडान् श्लक्ष्णपिष्टान् प्रक्षिप्य विपचेत् ततो नातिद्रवं नातिसांद्रमवतार्य तस्य पाणितलपूर्णमप्रातराशो मधुमिश्रं लिह्यादेवं शालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौच लेहान् कारयेत् ॥ ८ ॥

अब अवलेह कहते हैं। खदिर विजैसार नींब किरमाला शालसार इनका क्वाथ करके उसमें इन्हींके सारको पीसकर पिंडे बाँधकर इन्हींके क्वाथमें डालके पकावे जब बहुत पतला न बहुत करडा हो तब उतारले फिर नित्य सबेरे इसमेंसे एक पाणितल (एककर्ष) शहदमें मिलाकर चाटे इसी भांति शालसारादि न्यग्रोधादि आरग्वधादिके अवलेह बनावे (ये कुष्ठघ्न हैं) ॥ ८ ॥

कुष्ठपर चूर्णप्रयोग।

अतश्चूर्णक्रियां वक्ष्यामः ॥ शालसारादीनां सारचूर्णप्रस्थमाहृत्यारग्वधादिकषायेपरिपीतमनेकशः शालसारादिकषायेणैव पाययेत्। एवं न्यग्रोधादीनां फलेषु पुष्पेष्वारग्वधादीनां चूर्णक्रियां कारयेत् ॥ ९ ॥

अब चूर्णक्रिया कहते हैं ॥ शालसारादिकका सार एक प्रस्थ लेकर उसमें आरग्वधादिगणकी कई भावना देवे फिर इसकी फंकी शालसारादिकके क्वाथहीके संग देवे। इसी भांति न्यग्रोध (वड) इत्यादिक फलोंका तथा आरग्वधादिके पुष्पोंकी (भावना दे दे कर) चूर्ण बनावे ये चूर्ण कुष्ठनाशक है ॥ ९ ॥

लोहका विधान।

अत ऊर्ध्वमयस्कृतीर्वक्ष्यामः। तीक्ष्णलोहपत्राणि तनूनि लवणवर्गप्रदिग्धानि गोमयाग्निप्रतप्तानि त्रिफलाशालसारादिकषायेण निर्वापयेत् षोडशवारांस्ततः खदिरांगारतप्तान्युपशांततापानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् गाढतांतवपरिस्रावितानि ततो यथाबलं मात्रां सर्पिर्मधुभ्यां संसृज्योपयुंजीत। जीर्णे यथाव्याध्यनम्लमलवणमाहारं कुर्वीत, एवं तुलामुपयुज्य कुष्ठमेहमेदःश्वयथुपांडुरोगोन्मादापस्मारानपहृत्य वर्षशतं जीवति। तुलायां तुलायां वर्षशतगुणोत्कर्षः। एतेन सर्वलोहेष्वयस्कृतयो व्याख्याताः ॥ १० ॥

इससे अगाडी हम अयस्कृति (लोहविधान) का वर्णन करते हैं तीक्ष्ण लोह (पौलाद) के पतले पत्र बनवाकर सब भांतिके लवण पीसके उनपर लेपन करे और

गोवरकी अग्निमें तपाकर त्रिफला शालसारादिके काथसे बुझावे ऐसे १६ वार करे फिर खदिरके कोयलोंमें लाल करके ठंढे होनेपर बारीक कूट ले और गाढे (विनके) वस्त्रमें छान ले उसमेंसे बलके अनुसार मात्रा (पांच रत्तीसे चार मासेतक) घृत और शहदमें खूब मिलाकर भोजन करे जब पच जावे तब व्याधिके अनुसार बिना खटाई बिना नमकका आहार करे ऐसे तुलाभर सेवन करनेसे कुष्ठ प्रमेह मेदरोग शोथ पांडु उन्माद मृगी ये सब रोग नष्ट होजाते हैं और सौ वर्षकी अवस्था होजाती है तथा जितने तुला इसे खावे उतनेही सौवर्ष जीवे (तुला सौपलका होता है कई तुलाका अर्थ एक तोला ऐसा लिखते हैं) इसी प्रकार सब लोहों (सुवर्ण आदि सब धातुओं) का विधान समझना चाहिये ॥ १० ॥

(वक्तव्य) पहलेके मनुष्य सौपल लोह खा सकते होंगे पर अबके मनुष्य इतना नहीं खा सकते इससे अब समयानुसार तुलाका अर्थ तोलाभरही ठीक समझिये ॥

त्रिवृच्छ्यामाग्निमंथसप्तलाकेबुकशंखिनीतिल्वकत्रिफलापलाशशिंशपानां स्वरसमादाय पालाश्यां द्रोण्यामासिच्य खदिरांगारतप्तमयःपिंडं त्रिःसप्तकृत्वो निर्वाप्य तमादाय पुनरासिच्य स्थाल्यां गोमयाग्निना विपचेत् सिध्यति चास्मिन् पिप्पल्यादिचूर्णभागौ द्वौ मधुनस्तावद्घृतस्येति दद्यात् । ततश्चतुर्थभागावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य भूयोऽग्नितप्तान्ययःपत्राणि प्रक्षिपेत् ततः प्रशांतमायसे पात्रे स्वनुगुप्तं निदध्यात् ततो यथा योगं शुक्तिं प्रकुंचं चोपयुंजीत जीर्णे यथाव्याध्याहारमुपसेवेत ॥ ११ ॥

निसोथ श्यामा अरनी सातला केवुक (केंद्र) शंखिनी, लोध, त्रिफला, पलाश (ढाक) शीशम इनका स्वरस ढाकके कठडेमें भर ले और लोहेका पिंडा खैरकी लकड़ीके अंगारोंमें तपातपाकर इक्कीसबार बुझावे फिर इन्हें मटकेमें डालकर उपलोंकी आँचसे पकावे पकते समय पिप्पल्यादिका चूर्ण दो भाग और शहदके भी दोभाग और इतनाही घृत डाले चतुर्थ भाग रहनेपर उतारलेवे फिर छानकर फिर लोहेके पत्रे अग्निमें तपातपाकर उसमें बुझावे फिर ठंढा होनेपर उसे लोहेके घडेमें भरकर मुँह बंध करके रहने दे फिर उसमेंसे शुक्ति (आधापल) या प्रकुंच (पलभर) नित्य पीवे पच जानेपर व्याधिके अनुसार भोजन करे ॥ ११ ॥

एषौषधासंस्कृतिरसाध्यं कुष्ठं प्रमेहं वा साधयति स्थूलमपकर्षति शोफमुपहंति सन्नमग्निमुद्धरति विशेषेण चोपदिश्यते राजयक्ष्मिणां वर्षशतायुश्चानया पुरुषो भवति ॥ १२ ॥

यह औषधोंके योगकी अयस्कृतिरसाध्य भी कुष्ठों तथा प्रमेहोंको साधन करती है (नष्ट करती है) स्थूलको दुबला करती है शोथको नाश करती है नष्ट हुये जठराग्निको उभारती है विशेष कर राजयक्ष्मा रोगमें उपयोगी कही है और इसके सेवनसे मनुष्य सौ वर्षकी अवस्था प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

शालसारादिक्वाथमासिच्य पालाश्यां द्रोण्यामयोधनं तप्तं निर्वाप्य कृतसंस्कारे कलशेऽभ्यासिच्य पिप्पल्यादिचूर्णभागं क्षौद्रं गुडमिति च दत्वा स्वनुगुप्तं निदध्यादेतां महौषधायस्कृतिं मासमर्द्धं मासं वा स्थितां यथाबलमुपयुंजीत एवं न्यग्रोधादावारेवतादिषु च विदध्यात् ॥ १३ ॥

शाल सारादिक द्रव्योंका क्वाथ करके ढाकके कठडेमें भरे फिर लोहेको गरम करके उसमें पूर्वोक्त प्रकारसे २१ बार बुझावे फिर पूर्वोक्त रीतिसे संस्कार किये हुये घडेमें डालकर उसमें पिप्पल्यादिकका चूर्ण एक भाग और उतनाही उतना शहद और गुड डालकर मुख बंध करदे फिर एक महीना अथवा पंदरा दिनमें निकाल कर उसमेंसे बलके अनुसार सेवन करे यह महौषधायस्कृति है इसी भांति न्यग्रोधादिक तथा आरग्वधादिकसे भी बनाई जासकती है ॥ १३ ॥

अतः खदिरविधानमुपदेक्ष्यामः । प्रशस्तदेशजातमनुपहतमध्यमवयसं खदिरं परितः खानयित्वा मध्यममूलं छित्वायोमयं कुंभं तस्मिन्नंतरे निदध्याद्यथा रसग्रहणसमर्थो भवति ततस्तं गोमयमृदावलिप्तमवकीर्येन्धनैर्गोमयमिश्रैरादीपयेत् । यथास्य दह्यमानस्य रसः स्रवत्यधस्ताद्यदा जानीयात्पूर्णं भाजनमित्यथैव समुद्धृत्य परिस्राव्य रसमन्यस्मिन्पात्रे निधायानुगुप्तं निदध्यात् ततो यथायोगं मात्रामामलकरसमधुसर्पिर्भिः संसृज्योपयुंजीत जीर्णे भल्लातकविधानवदाहारः परिहारश्च प्रस्थे चोपयुक्ते शतं वर्षाणामायुषोऽभिवृद्धिर्भवति ॥ १४ ॥

यहांसे अगाडी हम खदिरका विधान करते हैं । अच्छी भूमिमें उत्पन्न हुये न बहुत पुराने न नये और जिसे कीडे आदि जीवोंने न खालिया हो ऐसे खैरके वृक्षके मूलमें चारों तरफसे खोदकर बीचकी मुख्य जडमेंसे काटकर (छेदकर) नीचे लोहेका घडा इस रीतिसे धरे कि उसमें रस टपककर आवे फिर उसके चारों तरफ गोबर मिट्टी लगा दे और गोबर लकडियोंसे गरम करे जब जल जलकर रस नीचे टपके और पात्र भरजावे तब उसे निकाल ले और रसको छानकर दूसरे

पात्रमें भरले और मुँह बंद करके रहने देवे फिर इसमें से यथायोग्य मात्रा लेकर आंवलोंका रस और शहद और घृतमें मिलाकर चाटले जब यह पचजावे तब भिलावेके विधानोक्त आहार विहार करें इसे प्रस्थ भर सेवन करनेसे सौ वर्षकी अवस्था होजाती है तथा जितने प्रस्थ सेवे उतने सौ वर्षकी अवस्थामें वृद्धि होजाती (और कुष्ठ प्रमेह नष्ट होजाते हैं) ॥ १४ ॥

खदिरसारतुलामुदकद्रोणे विपाच्य षोडशांशावशिष्टमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात् । तमामलकरसमधुसर्पिर्भिः संसृज्योपयुंजीत एष एव सर्ववृक्षसारेषु कल्पः ॥ १५ ॥ खदिरसारचूर्णतुलां खदिरसारक्काथमात्रां वा प्रातः प्रातरुपसेवेत। खदिरसारक्काथसिद्धभाविकं वा सर्पिः ॥ १६ ॥ अमृतवल्लीस्वरसं क्काथं वा प्रातः प्रातरुपसेवेत तत्सिद्धं वा सर्पिः ॥ १७ ॥ अपराह्ने ससर्पिष्कमोदनमामलकयूषेण भुंजीतैवं मासमुपयुज्य सर्वकुष्ठैर्विमुच्यतइति ॥ १८ ॥

खदिरसार एक तुला द्रोणभर जलमें पकावे जब षोडशांश रहे उतार ले (छानकर)मुँह बंध करके रहने दे उसे आंवलों के रस शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे यही विधि सब वृक्षों के सारकल्पकी है ॥१५॥ खैरसारका चूर्ण तुलाभर अथवा खैरसारका क्काथ अथवा खैरसारके क्काथमें सिद्ध किया हुआ अवि (भेड) का घृत सबेरे नित्य सेवन करे ॥ १६ ॥ अथवा गिलोयका रस या क्काथ या इसमें सिद्ध किया घृत नित्य सबेरे २ (यथाबल) सेवन करे ॥ १७ ॥ ओर अपराह्न (तीसरे पहर) घृतयुक्त भातको आंवलों के यूषके संग भोजन करे ऐसे एक महीनेतक करनेसे सब प्रकारके कुष्ठोंसे मनुष्य छूट जाता है ॥ १८ ॥

कृष्णतिलभल्लातकतैलामलकरससर्पिषां द्रोणं शालसारादिकषायस्य च त्रिफलात्रिकटुकपरूषकफलमज्जाविडंगफलसारचित्रार्कावल्गुजहरिद्राद्वयत्रिवृद्दन्तींद्रयवयष्टीमधुकातिविषारसांजनप्रियंगूनां पालिकान्भागांस्तानैकध्यं स्नेहपाकविधानेन पचेत् तत्साधुसिद्धमवतार्य परिस्राव्यानुगुप्तं निदध्यात् तत उपसंस्कृतशरीरः प्रातः प्रातरुत्थाय पाणिशुक्तिमात्रं क्षौद्रेण प्रतिसंसृज्योपयुंजीत जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन सर्पिष्मंतं खदिरोदकसिद्धं मृद्वादेनमश्नीयात् खदिरोदकसेवीत्येकं द्रोणमुपयुज्य सर्वकुष्ठैर्विमुक्तः शुद्धतनुःस्मृतिमान्वर्षशतायुररोगो भवति॥ १९॥

काले तिल, भिलावेका तेल, आंवलेका रस और घृत, इन्हें द्रोण २ लेवे और शालसारादिका क्वाथ भी द्रोण भर लेवे और हरडे, बहेडा, आंवले, सोंठ, मिरच, पीपल, फालसेकी गिरी, विडंगका सार, चित्रक, आक, बावची, दोनों हलदी, निसोथ, दंती, इंद्रजौ, मुलेटी, अतीस, रसौत, प्रियंगू इन्हें पल पल भर लेवे इन सबको इकट्ठा करके स्नेहपाककी विधिसे पका लेवे जब ठीक पक जावे तब उतार कर छान ले और ढाककर रखदें फिर रोगीको वमन रेचनादिसे शरीर संस्कार करके नित्य सबेरे एक पल इसमें से शहदमें मिलाकर खिलावे पचजानेपर अलोने मूंग आंवलोंके यूषके संग खैरके क्वाथमें पके हुये घृत युक्त कोमल भातको खिलावे तथा खदिरका सिद्ध जलही पीवे ऐसे यह औषध द्रोण भर खानेसे सब कुष्ठोंसे छुटकर शुद्ध शरीर होकर निरोगी सौ वर्षकी अवस्था होती है ॥ १९ ॥

भवति चात्र ॥ सुरामंथासवारिष्टाँल्लेहांश्चूर्णान्ययस्कृतीः ।
सहस्रशोपि कुर्वीत बीजेनानेन बुद्धिमान् ॥ २० ॥

इति चिकित्सितस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यहां पर श्लोक है कि सुरा (मद्य), मंथ, आसव, अरिष्ट, अवलेह, चूर्ण और अयस्कृतियां इसी रीतिसे बुद्धिमान् वैद्य हजारों बना सकता है और बना लेवे ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहिता भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम प्रमेहकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

द्वौ प्रमेहौ सहजोऽपथ्यनिमित्तश्च भवतः तत्र सहजो मातृपितृबीजदोषकृतः अहिताहारजोऽपथ्यनिमित्तः ॥ १ ॥ तत्र पूर्वेणोपद्रुतः कृशो रूक्षोल्पाशी पिपासुर्भृशं परिसरणशीलश्च भवति उत्तरेण स्थूलो बह्वाशी स्निग्धः शय्यासनस्वप्नशीलः प्रायेणेति ॥ २ ॥ तत्र कृशमन्नपानप्रतिसंस्कृताभिः क्रियाभिश्चिकित्सेत् स्थूलमपकर्षणयुक्ताभिः ॥ ३ ॥

(वा० १) सहजो मातृपितृबीजदोषकृतः वीजे प्रमेहदोषस्तेनैव कृतइति ननुस्त्रीणां प्रमेहा न भवंतीति केचित् तथाहि "रजः प्रसेकात् नारीणां मासिमासि विशुध्यति । सर्वं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहंत्यतःस्त्रियः" । इति एतत्तु न युक्तं सर्वतंत्राप्रसिद्धेः श्वेतरक्तप्रदरादेः प्रत्यक्षभावाच्च ।

(वा० ३) कृशं असहजप्रमेहिणं दुर्बलम् ।

प्रमेह दो प्रकारका होता है १ सहज (जन्मका) २ अपथ्यसे इनमेंसे जन्मका प्रमेह माता पिताके रज वीर्यके दोष (नैर्बल्यादिक) से होताहै और अपथ्यकृत अयोग्य आहार (विहार) करनेसे होजाता है॥१॥(इनके लक्षण ये हैं कि) पहले जन्मके प्रमेहका रोगी दुबला रूखा थोडा भोजन करनेवाला और अति तृषावाला तथा फिरनेवाला होता है और दूसरे अपथ्यज प्रमेहका रोगी स्थूल बहुत खानेवाला स्निग्ध (चिकना) और सोने पडे रहने बैठे रहनेकी वांछावाला विशेषकर होताहै ॥ २ ॥ इनका मुख्य उपाय यह है कि दुबलेको स्निग्ध (चिकने) खान पानसे संस्कार कीहुई क्रियाओंसे चिकित्सा करे और दूसरे स्थूल को अपकर्षण (लंघन) रूक्ष क्रियायुक्त विधियोंसे यत्न करे ॥ ३ ॥

(वक्तव्य) इनके अन्य लक्षण निदानस्थानमें देखो ॥

प्रमेहमें कुपथ्य ।

सर्वे एव च परिहरेयुः सौवीरकतुषोदकशुक्तमैरेयसुरासवतोयपयस्तैलघृतेक्षुविकारदधिपिष्टान्नाम्लपानकानि ग्राम्यानूपौदकमांसानि चेति ॥ ४ ॥

सब प्रमेहवाले इन वस्तुओंको त्यागदें सौवीर और तुषोदक (ये एक प्रकारकी कांजी है) शुक्त (सिरका) मैरेय (एक प्रकारकी मद्य) सुरा (मद्य) आसव (नशेका आसव) अति जल पीना दूध, तैल, घृत, ईखके पदार्थ (गुडआदि) दही पिट्ठीके पदार्थ खट्टे, पन्ने वगैरह तथा ग्राम्य पशु और जलके किनारेके पशु तथा जलजंतु इनका मांस ये सब कुपथ्य हैं ॥ ४ ॥

पथ्य ।

ततः शालिषष्टिकयवगोधूमकोद्रवोद्दालकाननेवान् भुंजीत चणकाढकीकुलत्थमुद्गविकल्पेन तिक्तकषायाभ्यां शाकगणाभ्यां निकुंभेंगुदीसर्षपातसीतैलसिद्धाभ्यां बद्धमूत्रैर्वा जाङ्गलैर्मांसैरप्रहतमेदोभिरनम्लैर्घृतैश्चेति ॥ ५ ॥

प्रमेहका रोगी शालि और षष्टिक (चावल) जौ गेहूं कोदों उद्दालक(वनकोदों) इन्हे पुराने खावे और चने, तूवर, कुलथी तथा मूंग इनकी दालके संग अथवा चरफरे कसेले शाकोंके संग जो निकुंभ (दतूणीके वृक्ष) तथा इंगुदी और सरसों, अलसी इनके तैलमें बघारे हुये हों अथवा बद्धमूत्र, (कम मूतनेवाले)

(वा० ४) तोयं बहु न दद्यादित्यभिप्रायः । पयोघृतं च रूक्षाणां कृशानामल्पं दद्यात् ।

(वा० ५) विकल्पेन द्विदलीभूतेन, निकुंभो दंतीवृक्षः (इतिशब्दस्तोमः)

जंगली जीवों (हिरणआदि) के मांसके संग भोजन करे पर मांसमेंसे मेद निकाल देवे और उसमें खटाई और घृत नहीं डाले ॥ ५ ॥

प्रमेहचिकित्सारम्भः ।

तत्रोदित एव प्रमेहिणं स्निग्धमन्यतमेन तैलेन प्रियंग्वादिसिद्धेन वा घृतेन वामयेत्प्रगाढं विरेचयेच्च । विरेचनादनंतरं सुरसादिकषायेणास्थापयेन्महौषधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुसैंधवयुक्तेन दह्यमानं च न्यग्रोधादिकषायेण निःस्नेहेन ॥ ६ ॥

प्रमेहवालेको प्रथम किसी तैलसे अथवा प्रियंग्वादिसे सिद्ध किये घृतसे स्निग्ध करके खूब वमन करावे और विरेचन भी करावे–विरेचनके (७ दिन) पीछे सुरसादिके क्काथमें सोंठ देवदारु मोथाका प्रतिवाप (बुरकी) देकर शहत सेंधानमक मिलाके आस्थापनबस्ति करावे और दाहयुक्त हो तो अल्पस्नेह युक्त न्यग्रोधादिके क्काथसे आस्थापन करावे ॥ ६ ॥

प्रमेहनाशक साधारणयोग ।

ततः शुद्धदेहमामलकरसेन हरिद्रां मधुसंयुक्तां पाययेत् । त्रिफलाविशालादेवदारुमुस्तकषायं वा । शालकं पिल्लकमुष्ककल्कमक्षमात्रं वा मधुमधुरमामलकरसेन हरिद्रायुतम् ।कुटजकपित्थरोहितबिभीतकसप्तपर्णपुष्पकल्कं वा । निंबारग्वधसप्तपर्णमूर्वाकुटजसोमवृक्षपलाशानां वा त्वक्पत्रमूलफलपुष्पकषायाणि । एते पंच प्रयोगाः सर्वमेहानामपहंतारो व्याख्याताः ॥ ७ ॥

जब वमन विरेचनादिकसे शरीर शुद्ध होजावे तब आंवलेके रसमें हलदीका चूर्ण और शहत मिलाकर पिलावे । अथवा त्रिफला इंद्रायण देवदारु मोथा इनका क्काथ पिलावे । अथवा शाल कमेला मोखा इनका कल्क अक्षमात्र करके आंवलेका रस हलदी और शहत मिलाकर इसके संग सेवन करे । अथवा कुडा कैथ रुहेडा बहेडा और सातला इनके पुष्पोंका कल्क पूर्वोक्त आंवलेके रस हलदी और शहतके संग लेवे । अथवा नींब, किरमाला, सातला, मूर्वा, कुडा, सोमवृक्ष (खदिर) और

(वा० ६) प्रियंग्वादिसिद्धेन घृतेनोपस्निग्धं वामयेदिति (नि० सं०) ।

(वाक्य ७) आमलकरसस्य चत्वारि पलानि हरिद्रा कर्षप्रमाणा मधुचापि कर्षप्रमाणं एवं विमथ्य पिबेत् ।

ढाक इनकी छाल पत्ते जड फल और फूल इनका क्वाथ पीवे ये पांच प्रयोग सब प्रकारके प्रमेहोंको नाश करनेवाले कहे हैं ॥ ७ ॥

कफके प्रमेहोंके यत्न ।

विशेषतश्चात ऊर्द्धम् । तत्रोदकमेहिनं पारिजातकषायं पाययेत् । इक्षुमेहिनं वैजयंतीकषायं,सुरामेहिनं निम्बकषायं,सिकतामेहिनं चित्रककषायं, शनैर्मेहिनं खदिरकषायं, लवणमेहिनं पाठागुरुकषायं, पिष्टमेहिनं हरिद्रादारुहरिद्राकषायं, सांद्रमेहिनं सप्तपर्णकषायं,शुक्रमेहिनं दूर्वाशैवलप्लवहठकरंजकसेरुककषायं ककुभचंदनकषायं वा, फेनमेहिनं त्रिफलारग्वधमृद्वीकाकषायं मधुरं, कफजे तु मधुमधुरमिति ॥ ८ ॥

इसके अगाडी विशेषतासे प्रमेहोंके यत्न लिखते हैं । इनमेंसे उदकप्रमेहवालेको पारिजात (देवदारु) का क्वाथ (शहत डालकर) पिलावे । इक्षुप्रमेहवालेको वैजयंती (अरणी) का क्वाथ पिलावे । सुराप्रमेहवालेको नींबका क्वाथ । और सिकताप्रमेहवालेको चित्रकका क्वाथ । शनैःप्रमेहवालेको खैरका क्वाथ । लवणप्रमेह वालेको पाठ और अगरका क्वाथ । पिष्टप्रमेहवालेको हलदी और दारुहलदी का क्वाथ सांद्रप्रमेहवालेको सातलाका क्वाथ । शुक्रप्रमेह वालेको दूब सिवाल प्लव (गोपाल दमनक) और हठ (जलकुंभी) करंजकसेरु इनका क्वाथदे अथवा कुहा और चंदनका क्वाथ देवे । फेणप्रमेहवालेको त्रिफला किरमाला और मुनक्काका मीठा क्वाथ देवे । इन कफके प्रमेहोंमें शहतसे मधुर करके क्वाथ पिलावे ॥ ८ ॥

पैत्तिकप्रमेहोंकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेषु नीलमेहिनं शालसारादिकषायमश्वत्थकषायं वा पाययेत्, हारिद्रमेहिनं राजवृक्षकषायं, अम्लमेहिनं न्यग्रोधादिकषायं मधुमिश्रं, क्षारमेहिनं त्रिफलाकषायं, मंजिष्ठामेहिनं मंजिष्ठाचंदनकषायं, शोणितमेहिनं गुडूचीतिंदुकास्थिकाश्मर्यखर्जूरकषायं मधुमिश्रम् ॥ ९ ॥

पित्तप्रमेहोंमेंसे नील प्रमेहवालेको शालसारादिका क्वाथ या पीपलका क्वाथ पिलावे, । हरिद्राप्रमेहवालेको किरमालेका क्वाथ, अम्लप्रमेहवालेको न्यग्रोधादिके क्वाथको शहद युक्तकर पिलावे, क्षारप्रमेहवालेको त्रिफलाका क्वाथ और मंजिष्ठ प्रमेहवालेको मँजीठ और चंदनका क्वाथ, शोणितप्रमेहवालेको गिलोय तेंदूकी गिरी खंभारी और खजूरियाका क्वाथ शहदयुक्त पिलावे, ॥ ९ ॥

वातिक प्रमेहोंकी चिकित्सा।

अत ऊर्ध्वमसाध्येष्वपि योगान् यापनार्थं वक्ष्यामः। तद्यथा सर्पिर्मेहिनं कुष्टकुटजपाठाहिंगुकटुरोहिणीकल्कं गुडूचीचित्रककषायेण पाययेत्, वसामेहिनमग्निमंथकषायं शिंशपाकषायं वा,क्षौद्रमेहिनं खदिरक्रमुककषायं, हस्तिमेहिनं तिंदुककपित्थशिरीषपलाशपाठामूर्वादुस्पर्शाकषायं मधुमिश्रं, हस्त्यश्वशूकरखरोष्ट्रास्थिक्षारं चेति, दह्यमानमौदककंदक्काथसिद्धां यवागूं क्षीरेक्षुरसमधुरां पाययेत् ॥ १० ॥

इसके अगाडी अब हम असाध्य प्रमेहों के लियेभी यापनार्थ (दबे रहनेके अर्थ) कुछ योग वर्णन करते हैं ॥ जैसे सर्पिः प्रमेह (घृतप्रमेह) वालेको कूट कुडा पाठा हींग और कुटकीका कल्क गिलोय और चित्रकके काथसे पिलावे। वसाप्रमेहवालेको अरणीका क्वाथ अथवा शीशमका क्वाथ पिलावे। क्षौद्रप्रमेहवालेको खदिर और सुपारीका क्वाथ, और हस्तिप्रमेहवालेको तेंदू कैथ सिरस ढाक पाठा मूर्वा और जवासा इनका क्वाथकर शहतयुक्त करके पिलावे तथा हाथी घोडे शूकर गधे ऊंट इनके अस्थियोंका क्षार देवे (फासफोरिस जिसे डाक्टर उपयोग करते हैं उसमें यही माद्दा विशेष होता है) और (प्रमेह वालेके शरीरसे सौम्य धातु ओज आदि क्षय होजानेसे प्रायः दाहभी होताहै) यदि दाह हो तो उसकी शांतिके लिये जलके कंदों के क्वाथमें सिद्ध करीहुई यवागू दूध और ईखके रससे मीठी करके पिलावे ॥ १० ॥

प्रमेहपर अरिष्टादि साधन।

ततः प्रियंग्वनंतायूथिकापद्मात्रायंतिकालोहितिकाम्बष्ठादाडिमत्वक्शालपर्णीपद्मतुंगकेशरधातकी बकुलशाल्मलीश्रीवेष्टकमोचरसेष्वरिष्टानयस्कृतीर्लेहानासवान् कुर्वीत ॥ ११ ॥

प्रियंगु, अनंता, जुही, भारंगी, त्रायमाण, मँजीठ, अंबष्ठा (माचिका), अनारका छिलका, शालपर्णी, पदमाख, तुंग (पुन्नाग) नागकेसर, धायकेफूल, मौलसरी

(वा०१०) दह्यमानं इति अत्र प्रमेहजनितदाहस्य ग्रहणं प्रमेहे सौम्यधातवात्मस्यौजसः क्षीणे सति दाहः संजायते तेन दह्यमानमित्यर्थः।

(वा० ११) पद्मा भार्गी,अंबष्टा माचिका,शालपर्णीत्यत्र तालपर्णीतिवा पाठः तालपर्णी मूशली, तुंगः पुन्नागः,केशरं नागकेशरं, श्रीवेष्टकः नवनीतधूप इतिडल्हनः, श्रीवेष्टकः सरलवृक्षः इति शब्दस्तोमः, गिलोड्यः वर्षाभवः कंदः गिलोटइति, कटुंगोऽरलू,चर्मिवृक्षः चर्मलोइलकुचाकारो महाद्रुम इतिडल्हनः, शब्दस्तोमेतु भूर्जपत्रवृक्षः कदलीवृक्षश्च हरिवृक्षः इंद्रवृक्ष अथवा हरिवृक्षः हरिद्रावृक्षः कुटजः (इति नि०सं०)।

(की छाल), शाल्मली (संभलकी मूसली), श्रीवेष्टक (सरलका वृक्ष तारपीन) और मोचरस इन सब औषधोंसे अरिष्ट या अयस्कृति या अवलेह या आसव बनावे यह प्रमेहमें हित हैं ॥ ११ ॥

शृंगाटकगिलोड्यबिसमृणालकसेरुकमधुकाम्रजम्ब्वसनतिनिशककुभकट्वंगरोध्रभल्लातकचर्मिवृक्षगिरिकर्णिकाशीतशिवनिचुलदाडिमाजकर्णहरिवृक्षराजादनगोपघोण्टाविकंकतेषु वा ॥ १२ ॥

सिंघाडे गिलोट कमलकी जड कमलनाल, कसेरू, मुलेठी, आंब, जामुन (की छाल), विजैसार, तिनिश, कुहा, कट्वंग (अरलू),लोध, भिलावा, चर्मिवृक्ष (भोजपत्रका वृक्ष), गिरिकर्णी, शीतशिव (शतपुष्पाभेद), निचुल (जलवेतस),अनार संर्ज, हरिवृक्ष (इंद्रवृक्ष, कुडा), खिरनी गोपघोंटा विकंकत इनके अरिष्टादि बनावे ॥१२॥

यवान्नविकारांश्च सेवेत, यथोक्तकषायसिद्धां चास्मै ।
यवागूं प्रयच्छेत् कषायाणि वा पातुम् ॥ १३ ॥

यवान्न जौके पदार्थ भोजन करे और उपरोक्त कषायोंमें पकाई हुई यवागू मिलावे और पीनेके लिये क्वाथोंका सेवन रक्खे ॥ १३ ॥

महाधनमहिताहारमौषधद्वेषिणमीश्वरं वा पाठाभयाचित्रकप्रगाढमनल्पमाक्षिकमन्यतममासवं पाययेदंगारशूल्यावदंशं वा माध्वीकमभीक्ष्णम् ॥ ॥ १४॥ मधुकपित्थमरिचानुविद्धानि चास्मै पानान्युपहरेत्, उष्ट्राश्वतरखरपुरीषचूर्णानि चास्मै दद्यादशनेषु, हिंगुसैंधवयुक्तैर्यूषैः सार्षपैश्च रागैर्भोजयेत्, अविरुद्धानि चास्मै पानभोजनान्युपहरेद्रसवंति ॥ १५ ॥ प्रवृद्धमेहास्तु व्यायामनियुद्धक्रीडागजतुरगरथपदातिचर्यापदिक्रमणान्यस्त्रोपास्त्रे वा सेवेरन् ॥ १६ ॥

अति धनाढ्य जो प्रायः अहित आहार विहार करते रहते हैं और औषध खानेसे द्वेष रखते हैं (ठीक १ औषध नहीं खाते) तथा राजा लोग इनको यह रोग होते पाठा हरीतकी चित्रक इनका गाढा २ आसव बनाकर खूब शहत डालकर पिलावे और ऊपरसे अंगार पक्कमांस (कबाब) खिलावे अथवा माध्वीक (महुयेका मद्य) खूब पिलावे ॥ १४ ॥ और शहत कैथ स्याहमिरच इनके संस्कार युक्त पीनेके

(वा० १४) अंगारशूल्यावदंशं अंगारशूल्यं अंगारोपरि शूलेन पक्कं मांसं अवदंशं मद्योपरि चर्वणद्रव्यं अंगारशूल्यावदंशं यथा भवति तथा आसवं माध्वीकं वा पाययेत् अवदंशं मद्योपरिचर्वणद्रव्यमिति शब्दस्तोमः ।

पदार्थ (पत्ते वगैरह) बनाकर पिलावे और ऊंट खच्चर गधा इनकी लीदको प्रायः भोजन पकानेमें उपयुक्त करे (बहुत लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि लीदका चूर्ण भोजनमें मिला देवे परंतु यह सर्वथा अयोग्य है विशेष करके अमीरोंको इस लिये ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये कि उष्ट्रादिकी लीदकी अग्निसे भोजन पकावे) और हींग सेंधानमक युक्त करके राईका संस्कार देकर यूष बनावे और खिलावे इनके सिवाय जो विरुद्ध नहीं हो ऐसे उमदा उमदा रसीले भोजन और पीनेके पदार्थ बनाकर देवे ॥ १५ ॥ जिनका (मुटापेसे) प्रमेह बढगया हो उन्हें व्यायाम (कसरत परिश्रम) करावे कुश्ती करावे (भागने दौडनेका) खेल खिलावे हाथी घोडे रथकी सवारी करावे पैदल भी फिरावे अस्त्रादि (मुद्गरादि) फिराने-का अभ्यास करावे ॥ १६ ॥

अधनस्त्वबांधवो वा पादत्राणातपत्रविरहितो भैक्ष्याशी ग्रामैकरात्रानु-वासी मुनिरिव संयतात्मा योजनशतमधिकं वा गच्छेत् ॥ १७ ॥ महा-धनो वा श्यामाकनीवारवृत्तिरामलककपित्थतिन्दुकाश्मन्तकफलाहारो मृगैः सह वसेत्तन्मूत्रशकृद्भक्षी सततमनुव्रजेद्गां, ब्राह्मणो वा शिलों-च्छवृत्तिर्भूत्वा ब्रह्मरथमुपधारयेत् पठेत् सततमितरः खनेद्वा कूपं कृशं तु सततं रक्षेत् ॥ १८ ॥

जो निर्धन हो और भाई बंधु कुटुंब भी न हो तो वह नंगे पैरों विना छतरी भीख मांगकर खाता हुवा गांव गांव एक एक रात ठैरता हुवा मुनियोंकी तरह संयम रखता हुवा सौ योजन या इससे भी अधिक गमन करे (इससे प्रमेह नष्ट हो जाता है) ॥ १७ ॥ अथवा धनाढ्य हो तौ भी श्यामाक नीवार खा खाकर अथवा आंवले कैथ तेंदू अश्मंतकफल इनका आहार करता हुवा मृगोंके साथ घूमें और उनका मूत्र और मेगनीका भी सेवन करता रहे अथवा निरंतर गौके संग वनमें फिरे, और ब्राह्मण रोगी हो तो शिला और उंच्छ वृत्ति करके ब्रह्मरथ (ब्राह्म-णोंके गाडेको खींचे अथवा ब्रह्मरथ वेदका अध्ययन करे) और निरंतर पाठ करे इतर (शूद्र) के रोग हो तो कूवा खोदे परंतु जो रोगी कृश होवे तो उसकी रक्षा करे (उससे परिश्रम न करावै) ॥ १८ ॥

भवति चात्र । अधनो वैद्यसंदेशादेवं कुर्वन्नतंद्रितः ।
संवत्सरादंतराद्वा प्रमेहात्प्रतिमुच्यते ॥ १९ ॥

इति चिकित्सितस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(वा०१८) महाधनः क्षत्रियः मृगैः सह वसेत्, वैश्यः सततं गामनुव्रजेत्, ब्राह्मणो ब्रह्मरथं वेदं उपधारयेत् सततं पठेद्वा, इतरः शूद्रः कूपं खनेत् ।

यहां पर श्लोक है कि । निर्धन मनुष्य भी जो वैद्यकी आज्ञानुसार सावधान होकर ऐसे आचरण करेगा वह वर्ष दिनमें या इससे पहले प्रमेहके रोगसे छूट जावेगा ॥ १९ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहपिडिकाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब प्रेमहपिडिका (प्रेमहजनित फुन्सी) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

सराविकाद्या नव पिडिकाः प्रागुक्तास्ताः प्राणवतोऽल्पास्त्वङ्मांसप्राप्ता मृद्व्योऽल्परुजः क्षिप्रपाकभेदिन्यश्च साध्याः ॥ १ ॥

सराविकाको आदि ले नव ९ पिडका पहले निदानस्थानमें कही गई हैं ये बलवान्के छोटी हों और त्वचा तथा मांसहीमें हों कोमल हों जिनमें स्वल्प पीडा हो शीघ्रपककर फूट जावें ऐसी पिडिका साध्य होती हैं (ये कभी विना प्रमेह तथा प्रमेहके आद्य अंतमें दुष्ट मेदसे भी हो जाती हैं) ॥ १ ॥

प्रमेहपिडिकाकी उत्पत्ति और चिकित्साक्रम ।

ताभिरुपद्रुतं प्रमेहिणमुपचरेत्तत्र पूर्वरूपेष्वपतर्पणं कषायं बस्तमूत्रं चोपदिशेत् ॥ २ ॥ एवमकुर्वतस्तस्य मधुराहारस्य मूत्रं स्वेदः श्लेष्मा च मधुरीभवति प्रमेहश्चाभिव्यक्तो भवति तत्रोभयतः संशोधनमासेवेत ॥ ३ ॥ एवमकुर्वतस्तस्य दोषा प्रवृद्धा मांसशोणितं प्रदूष्य शोफं जनयंत्युपद्रवांन्वाँ कांश्चित्तत्रोक्तः प्रतीकारः शिरामोक्षश्च ॥ ४ ॥ एवमकुर्वतस्तस्य शोफो वृद्धोऽतिमात्ररुजो विदाहमापद्यते तत्र शस्त्रप्रणिधानमुक्तं व्रणक्रियोपसेवा च ॥ ५ ॥ एवमकुर्वतस्तस्य पूयोऽभ्यंतरमवदार्योत्संगं महांतमवकाशं कृत्वा प्रवृद्धो भवत्यसाध्यः । तस्मादादित एव प्रमेहिणमुपक्रमेत् ॥ ६ ॥

(वा० १) एताः सराविकाद्या नव पिडिकाः प्रमेहं विनापि भवंति। उक्तंच 'विना प्रमेहमप्येता जायते दुष्टमेदसः (इति डल्हनः)

(वा०४) तत्रोक्तः शोफोक्तः प्रतीकारः ।

प्रमेहपिडकावाले रोगीकी चिकित्साका यह क्रम है (इस भांति चिकित्सा करे कि) पहले प्रमेहके पूर्वरूपमें लंघन प्रमेहनाशक क्काथ तथा बकरेका मूत्र सेवन करावे ॥२॥ जो ऐसा न करते (पूर्वरूपमें यत्न नहीं करते) उनके मीठे खाते रहनेसे मूत्र पसीना और कफ मीठा होजाता है और प्रमेह प्रगट हो जाता है इस अवस्थामें (वमन रेचन द्वारा) दोनों तरफ शोधन करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो ऐसा नहीं करते उनके दोष बढकर मांस रुधिरको दूषित करके (किसी अंगमें) सोजा उत्पन्न करते हैं और दाह वेदनादि उपद्रव पैदा कर देते हैं इस अवस्थामें शोथमें कहे हुवे यत्न करे और सिरामोक्ष (फस्त) करावे ॥ ४ ॥ और अब भी जो ऐसा नहीं करते उसके सोजा बढकर (पककर) बहुत पीडा और जलन पैदा करता है इस अवस्थामें शस्त्रसे चीरा लगाना और व्रणकी क्रियाओंका उपयोग करे ॥ ५ ॥ अब भी जो ऐसा यत्न नहीं करते उनके पीब भीतरको प्रविष्ट होकर भीतरको विदीर्ण करता जाता है और अंदर खूब गहरा घावकर लेता है और बढकर असाध्य होजाता है इस कारण प्रमेहरोगकी आरंभसेही चिकित्सा करनी चाहिये॥ ६॥

धान्वंतरघृत ।

भल्लातकबिल्वाम्बुपिप्पलीमूलोदकीर्यावर्षाभूपुनर्नवाचित्रकशठीस्नुहीवरुणकपुष्करदंतीपथ्यादशपलोन्मितान् यवकोलकुलित्थांश्च प्रास्थिकान् सलिलद्रोणे निःक्काथ्य चतुर्भागावशिष्टेऽवतार्य वचात्रिवृत्कंपिल्लकभार्गीनिचुलशुंठीगजपिप्पलीविडंगशिरीषाणां भागैरर्द्धपलैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् मेहश्वयथुकुष्ठगुल्मोदरार्शप्लीहविद्रधिपिडिकानां नाशनं नाम्ना धान्वंतरम् ॥ ७ ॥

भिलावे, वेलगिरी, जलपीपल, पीपलीमूल, उदकीर्या (एक भांतिका करंज) वर्षाभू (विसखपरा) साटी, चित्रक, कचूर, थोहर, वरण, पुष्करमूल, दंती, हरीतकी इन्हें दशदश पल लेवें और जौ, बेर, कुलथी इन्हे प्रस्थ प्रस्थ लेवे द्रोणभर जलमें क्काथ करे चतुर्थांश रहे उतार ले (छान ले) फिर इस क्काथमें वच, निसोथ, कमेला, भारंगी, निचुल (जलवेतस), सोंठ, गजपीपल, विडंग, सिरस इन्हें आधे आधे पल उस क्काथमें डाले (कई वचकी जगह चव्य और सिरसकी जगह रोहिष ऐसा कहते हैं) और एक प्रस्थभर घृत इसी क्काथमें डाले और पकावे यह धान्वंतर नामक घृत प्रमेह शोथ कुष्ठ गुल्म उदररोग बवासीर प्लीहावृद्धि विद्रधि और प्रमेहपिडिका इनका नाश करता है ॥ ७ ॥

दुर्विरेच्या हि मधुमेहिना भवंति मेदोऽभिव्याप्तशरीरत्वात्तस्मात्तीक्ष्ण-मेतेषां शोधनं कुर्वीत ॥ ८॥ पिडिकापीडिताः सोपद्रवाः सर्व एव प्रमेहा मूत्रादिमाधुर्ये मधुगंधसामान्यात्पारिभाषिकीं मधुमेहतां लभंते ॥ ९ ॥ नचैतान् कथंचिदपि स्वेदयेत् मेदोबहुत्वादेषां विशीर्यते देहः स्वेदनं रसायनीनां च दौर्बल्यान्नोर्द्धतुमुत्तिष्ठंति प्रमेहिणां दोषाः ततो मधुमेहिना-मधःकाये पिडिकाः प्रादुर्भवंति ॥ १० ॥

मधुप्रमेहवालोंको विरेचन ठीक २ नहीं होता क्योंकि उनका शरीर मेदसे व्याप्त होता है इस लिये इनका तीक्ष्ण शोधन कराना चाहि ये ॥८ ॥ जिनके उपद्रव-युक्त प्रमेहपिडिका होती हैं वे सब ही प्रमेहवाले मूत्रादिके मीठेपनसे तथा मधुके-सी गंध आनेसे परिभाषा (बोल चाल) में मधुमेहताको प्राप्त होते हैं (अर्थात् परिभाषामें मधुप्रमेही ऐसे कहे जाते हैं) ॥ ९ ॥ इन्हें कभी स्वेद दिलाना नहीं चाहिये क्यों कि इनके शरीरमें मेदा विशेष होनेसे शरीर जीर्ण होजाता है स्वेदनसे रसरक्तादिके वहनेवाली नाडियाँ दुर्बल होजाती हैं इस कारणसे प्रमेहवालेके दोष ऊपर उठने नहीं पाते इसीवास्ते मधुमेहवालोंके नीचेके अंगोंमें प्रायः पिडिक उत्पन्न होती हैं ॥ १० ॥

अपक्कानां पिडिकानां शोफवत्प्रतीकारः, पक्कानां व्रणवदिति तैलं तु व्रण-रोपणादौ कुर्वीत । आरग्वधादिकषायमुत्सादनार्थे शालसारादिकषायं परिषेचने पिप्पल्यादिकषायं पानभोजनेषु पाठाचित्रकशार्ङ्गेष्टाक्षु-द्रबृहतीसारिवासोमवल्कसप्तपर्णारग्वधकुटजमूलचूर्णानि मधुमिश्राणि प्रा-श्नीयात् ॥ ११ ॥

कच्ची प्रमेह पिडिकाका प्रतीकार शोथकी तरह करना और पक फूटने पर व्रणकी तरहसे करना चाहिये । व्रणके भरनेवास्ते तैल बनाना चाहिये । और उत्सा-दन (उभारने) के लिये आरग्वधादिकका क्वाथ उपयोग करे परे सेचनके लिये शालसारादिका क्वाथ चाहिये पीने और भोजनमें डालनेको पिप्पल्यादिकका क्वाथ चाहिये । तथा पाठा चित्रक शार्ङ्गेष्ठा (काकतिक्ता) छोटी कटेली सारिवा सोमवल्क (श्वेत खदिर) सातला किरमाला कुडाकी जड इनका चूर्ण शहतके संग चाटे ॥ ११ ॥

शालसारादिवर्गकषायं चतुर्भागावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य पुनरुपनीय सा-

धयेत् सिध्यति चामलकलोध्रप्रियंगुदंतीकृष्णायस्ताम्रचूर्णान्यावपेदेतदनु-पदग्धलेहीभूतमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात्ततो यथायोगमुपयुंजीत एष लेहः सर्वमेहानां हंता ॥ १२ ॥

शालसारादि गणका क्वाथ करे चतुर्थांश रहे उतारकर छान ले फिर उसे अग्निपर चढाके पकावे पकते समय आंवले लोध प्रियंगू दंती कृष्णायः (पोलाद) और ताम्र इन सबका चूर्ण डाले (कई कृष्णापिप्पली और अय लोह तथा ताम्र ऐसा अर्थ करते हैं और कई पोलाद तथा ताम्रकी भस्म लेना ऐसा कहते हैं) और जब पककर अवलेह (चाटने योग्य) होजावे तब उतारकर मुँह बांधकर रक्खे और यथाबल उपयोग करे यह अवलेह सब प्रमेहोंका नाश करनेवाला है ॥ १२ ॥

नवायस लोह ।

त्रिफलाचित्रकत्रिकटुविडंगमुस्तानां नवभागास्तावंत एव कृष्णायश्चूर्णस्य तत्सर्वमैकध्यं कृत्वा यथायोगं मात्रां सर्पिर्मधुभ्यां संसृज्योपयुंजीत । एतन्नवायसमेतेन जाठर्यं न भवति सन्नोऽग्निराप्यायते दुर्नामशोफपांडुकुष्ठ-रोगाविपाककासश्वासप्रमेहाश्च न भवंति ॥ १३ ॥

हरडेकी छाल बहेडेकी छाल आंवले चित्रक विडंग सोंठ मिरच पीपल नागर-मोथा इन सबको समान भाग ले अर्थात् एक २ भाग सब ना भाग लेवे और सबके समान ९ भाग कृष्णलोह (पोलाद) का चूर्ण ले सबको मिलालेवे फिर उस में से यथाबल मात्रा लेकर घृत और शहदमें मिलाकर उपयोग करें यह नवायस लोह है इसके सेवनसे जरठरोग नहीं होते जठराग्नि मंद हो तो ठीक होजावे और बवासीर शोथ पांडुरोग कुष्ठ भोजन न पचना खांसी श्वास और प्रमेह नहीं होते और-हो तो अच्छे हो जाते हैं ॥ १३ ॥

लोह आसवकी विधि ।

शालसारादिनिर्यूहे चतुर्थांशावशेषिते । परिस्रुते ततः शीते मधुमाक्षिक-मावपेत् ॥ १४ ॥ फाणितीभावमापन्नं गुडं शोधितमेव च । श्लक्ष्णपि-ष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादिगणस्य च ॥ १५॥ ऐकध्यमावपेत्कुंभे संस्कृते घृतभाविते । पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्तेऽन्तः शुचौ दृढे ॥ १६ ॥ श्लक्ष्णा-

नि तीक्ष्णलोहस्य तत्र पत्राणि बुद्धिमान् ॥ खदिरांगारतप्तानि बहुशः संनिपातयेत् ॥ १७ ॥ सुपिधानं तु तं कृत्वा यवपल्ले निधापयेत् ॥ मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावदालोहसंक्षयात् ॥ १८ ॥ ततो जातरसं तं तु प्रातःप्रातर्यथाबलम् ॥ निषेवेत यथायोगमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ १९ ॥ कार्श्यकृद्बलिनामेष सन्नस्याग्नेः प्रसाधकः ॥ शोफनुद्गुल्महृत्कुष्ठमेहपाण्ड्वामयापहः ॥ २० ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः ॥ अभिष्यंदापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ॥ २१ ॥

शालसारादि गणका क्वाथ बनावे चतुर्थांश रहे उतारकर छानले जब ठंढा होजावे तब उसमें माक्षिक शहत डालदे ॥१४॥ और शुद्धगुडकी राबडाले और पिप्पल्यादि गणका चूर्ण भी डाले॥ १५॥इन सबको इकट्ठा मिलाकर घृतके चिकने घडेमें पीपल शहत भीतर लेपन करके उसमें डालदे ॥१६॥ और पोलादके पतलेपत्र कराकर बुद्धिमान् वैद्य उन्हें खदिरके अंगारोंमें तप्त कर कर बहुतसे डालदे ॥१७॥ फिर मुख बंधकरके तीन या चार महीनेतक जौकी राशिमें (या जौके कोठेमें) दबाया रक्खे जबतक वे लोहके पत्र गलकर मिलेजावें तबतक रहनेदे ॥१८॥फिर रस उत्पन्न हुवे इस लोह आसवको बलके अनुसार नित्य प्रातःकाल (१ पल) पीवे और इस पर उचित आहार कल्पना करे॥१९॥यह मोटेको ठीक पतला करताहै और मंद जठराग्निको तेज करता है शोथनाशक और गुल्मके हरनेवाला है तथा कुष्ठ प्रमेह पांडुरोग इन्हेंभी नष्ट करता है ॥ २० ॥ प्लीह उदररोग और विषमज्वरको शीघ्र नाश करता है और अभिष्यंद (गुरुता) को भी हरता है यह लोहासव अति गुणकारक है ॥ २१ ॥

प्रमेहमुक्तके लक्षण ।

प्रमेहिणो यदा मूत्रमपिच्छिलमनाविलम् ।
विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ २२ ॥

इति चिकित्सितस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

प्रमेह रोगवालेका मूत्र जब पतला तंतु (तार) रहित साफ हो और चरफरा कडुवा हो तब आरोग्य (आराम) हुआ जानना चाहिये ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो मधुमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम मधुप्रमेहकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

मधुमेहकी चिकित्सा और शिलाजीतकी प्रधानता ।

मधुमेहित्वमापन्नं भिषग्भिः परिवर्जितम् । योगेनानेन मतिमान् प्रमेहिण-मुपाचरेत् ॥ १ ॥ मासे शुक्रे शुचौ चैव शैलाः सूर्यांशुतापिताः । जतु-प्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवंति हि ॥ २ ॥ शिलाजत्विति विख्यातं सर्वव्याधिविनाशनम् । त्रप्वादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमान्वयम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयं स्वगंधतश्चापि षडयोनिप्रथितं क्षितौ । लोहाद्भवति तयस्माच्छि-लाजतु जतुप्रभम् ॥ ४ ॥ तस्य लोहस्य यद्वीर्यं रसं चापि बिभर्ति तत् । त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् । तथा तथा प्रयोगेऽपि श्रेष्ठश्रेष्ठगुणाः स्मृताः ॥ ५ ॥

जिसको मधुप्रमेह हो और वैद्योंने जिसे त्याग दिया हो उसे मधुप्रमेहवालेकी इस (नीचे लिखे शिलाजीतके) प्रयोगसे चिकित्सा करनी बुद्धिमानको चाहिये ॥१॥ जेठ आषाढके महीनेमें पर्वत सूर्यकी प्रचंड किरणोंसे तपायमान होते हैं तब उनमें पत्थरोंमेंसे लाख जैसा रस चुवता है ॥२॥ वही शिलाजतु (शिलाजीत) इस नामसे विख्यात है और सब रोगोंका नाश करनेवाली है और रांगसे लेके लोह-पर्यंत छहों धातुओंमेंसे किसी न किसीके अंशांश इसमें होतेहैं॥ ३॥ यह छहों धातुओं (सीसा, रांग, तांबा, चांदी, सुवर्ण और लोह) से उत्पन्न होती है इससे जिस २ धातुकी यह होती है उसीकी सुगंधसे जानी जाती है और लाखके सदृश होती है॥४॥ और जिस धातुका जैसा वीर्य और रस होता है इसमें भी उसीकासा वीर्य (पराक्रम) और रस होता है और जैसे रांग सीसेको आदि लेकर धातुवें लोहपर्यंत उत्तरोत्तर प्रधानहैं तैसेही तैसे प्रयोगमें ये शिलाजतुभी जिस २ धातुकी हो उसीके अनुसार गुणमें श्रेष्ठ श्रेष्ठ होतीहै ॥ ५ ॥

(श्लो० २) शुक्रो ज्येष्ठमासः, शुचिः आषाढः ग्रीष्मर्तुश्च, जतुप्रकाशं लाक्षासदृशं ।

(श्लो० ३) त्रप्वादीनां त्रपुसीसताम्ररूप्यस्वर्णलोहानां षण्णामिति (नि० सं०) ।

(श्लो० ५) लोहः कृष्णलोहः तथाच सर्वे धातवो लोहनाम्ना बोध्यंते–चतुर्थश्लोकस्योत्तरार्द्धः अग्रिमश्लोक-स्यार्द्धेनान्वेतव्यः ।

उत्तम शिलाजीतके लक्षण ।

यत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् । कटुपाक्युष्णवीर्यं च शोषणं छेदनं तथा ॥६॥ तेषु यत्कृष्णमलघु स्निग्धं निःशर्करं च यत् । गोमूत्र-गंधि यच्चापि तत्प्रधानं प्रचक्षते ॥ ७ ॥

ये समस्त ही तिक्त (कडवी) और कटु (चरपरी) हो और कुछ २ कसेलापन भी हो विपाकमें चरकी होती है तथा वीर्यमें गरम शोषण करनेवाली और छेदन (दोषोंको उच्छेदन) करनेवाली होती है ॥ ६ ॥ इसमें जो काली और भारी हो चिकनी और जिसमें छिन (पथरियां) न हों तथा गोमूत्रकेसी गंध आवे वह प्रधान है ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) इन उपरोक्त लक्षणोंके सिवाय जिसको अग्निपर रखनेसे लिंगाकृति ऊपरको द्रव होकर उठे तथा निर्धूम हो वह शिलाजीत जानो कि श्रेष्ठ और उत्तम है ॥

सेवनविधि ।

तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषो दिनोदये । पिबेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम् ॥ ८ ॥ जांगलेन रसेनान्नं तस्मिन् जीर्णे तु भोजयेत् । उपयुज्य तुलामेवं गिरिजादमृतोपमात् ॥ ९ ॥ आयुर्वर्णबलोपेतो मधुमेहविवर्जितः । जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽमरसन्निभः ॥ १० ॥ शतं शतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलिके । भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

उस शिलाजीतको (शुद्ध करके) शालसारादि गणके क्काथकी भावना देकर वमन रेचनादिसे शुद्ध हुवा रोगी नित्य प्रभात उसे शालसारादिके जलसे पीसकर (घोलकर) बलके अनुसार पीवे॥८॥ (और जब वह पच जावे तब जांगल जीवोंके मांसरसके संग उचित अन्न भोजन करे इसप्रकार पर्वतसे उपजी अमृतके समान शिलाजीतको तुलाभर (सौपल) सेवन करनेसे मनुष्य शरीर रूप और बलयुक्त होजाता है और मधुप्रमेहसे छूट जाता है तथा वृद्धपनकी झांई शरीरमें नहीं पडती देवताओंकी भांति पूर्ण सौ वर्षकी अवस्था होती है ॥ ९ ॥ १० ॥ इसी भांति एक २ तुला सेवन करनेसे सौ सौ वर्षकी और आयु बढजातीहै दश तुलाके सेवनसे हजार वर्षकी अवस्था होजाती है और भिलावेके विधानके अनुसारही इसमें आहार विहारकी विधि समझिये ॥ ११ ॥

शिलाजीतके गुण।

मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं गरम्। शोषं शोफार्शसी गुल्मं पांडुतां विषमज्वरम् ॥ १२ ॥ अपोहत्यचिरात्कालाच्छिलाजतु निषेवितम्। न सोऽस्ति रोगो यं चापि निर्हन्यान्न शिलाजतु॥ १३॥ शर्करां चिरसंभूतां भिनत्ति च तथाश्मरीम्। भावनालोडने चास्य कर्तव्यं भेषजैर्हितैः ॥ १४ ॥

यह शिलाजीत प्रमेहको कुष्ठको मृगीको उन्मादको श्लीपदको विषको क्षयीको शोथको बवासीरको गुल्मको पांडुको और विषमज्वरको थोडेही समयमें सेवन करनेसे नष्ट करती है ऐसा कोई भी रोग नहीं है जिसे शिलाजीत नष्ट नहीं कर सके ॥ १२ ॥ १३ ॥ बहुत समयकी हुई शर्कराको तथा पथरीको भेदन करके नष्ट कर देती है जिस रोगपर इसे देवे उसी रोगके नाश करनेवाली औषधोंकी इसमें भावना देनी चाहिये और उन्हींके संग घोटकर या घोलकर सेवन करना चाहिये॥१४॥

ऐवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम्। मधुरं कांचनाभासमम्लं वा रंजितप्रभम् ॥ १५ ॥ पिबन्हंति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान्। तद्भावितः कपोतांश्च कुलत्थांश्च विवर्जयेत् ॥ १६ ॥

शिलाजीतकी विधिके अनुसार माक्षिक धातु जो तापी नदीमें उत्पन्न हो और अमृतके समान होती है उसका सेवन करे कंचनके सदृश मधुर (सुवर्ण माक्षिक) अथवा रजितकीसी कांतिवाली सुपेद अम्लरसवाली (रूप्य माक्षिक) होती है इन्हें पीनेसे बुढापेके रोग कुष्ठ प्रमेह पांडुरोग और क्षय नष्ट होजाते हैं तथा शिलाजीत और माक्षिकके खानेवाला मनुष्य (जीवनपर्यंत) कपोत और कुलथी न खावे ॥ १५ ॥ १६ ॥

तुवरककल्प।

पंचकर्मगुणातीतं श्रद्धावंतं जिजीविषुम्। योगेनानेन मतिमान्साधयेत्कुष्ठिनं नरम् ॥१७॥ वृक्षास्तुवरका ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु। वीचीतरंगविक्षेपमारुतोद्धूतपल्लवाः ॥ १८ ॥ तेषां फलानि गृह्णीयात्सुपक्वान्यंबु-

(श्लो० १४) भावनालोडने इत्यत्र व्याधिहितैर्भेषजैःकर्तव्ये।

(श्लो० १६) तद्भावितः शिलाजतुमाक्षिकधातुभ्यां भावितो व्याप्तदेहः कुलत्थकपोतौ यावज्जीवं विवर्जयेदिति निबंधसंग्रहः।

(श्लो० १७) पंचकर्मगुणातीतं वमनादीनां पंचकर्मणां गुणा नष्टीभूताः यस्मिन् तम्। डल्लनस्तु अत्रेदमाह पंचमधात्वस्थिगतं कुष्ठं तत्र पूर्वरूपेण सह रसादिधातूनां चतुर्णां क्रियासमूहो अतीतनष्टीभूतः प्रमेहस्य तु पंच कर्म गुणाः गताध्याये कथिताः जिजीविषुं प्रमेहिणम् (इति नि. सं.)

दागमे। मज्जस्तेभ्योऽपि संहृत्य शोषयित्वा विचूर्ण्य च ॥ १९ ॥ तिलवत्पीडयेद्द्रोण्यां स्रावयेद्वा कुसुंभवत् । तत्तैलं संहृतं भूयः पचेदातोयसंक्षयात् ॥ २० ॥ अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत् । स्निग्धः स्विन्नो हृतमलः पक्षादूर्ध्वं प्रयत्नवान् ॥ २१ ॥ चतुर्थभक्तान्तरितः शुक्लादौ दिवसे शुभे । मंत्रपूतस्य तैलस्य पिबेन्मात्रां यथाबलम् ॥ ॥ २२ ॥ तत्र मंत्रं प्रवक्ष्यामि येनेदमभिमंत्र्यते ॥ २३ ॥

जिस रोगीके पंच कर्म वमनादिके गुण जाते रहे हों अथवा जिस कुष्ठीके पंचकर्म गुण १ नष्ट होगये हों पूर्वरूपकृत उपायके गुण २ त्वग्गत कर्मके गुण ३ रक्तगत कर्मके गुण ४ मांसगतकी क्रियाके गुण ५ मेदगत कुष्ठके उपाय करने पर भी कुछ गुण नही हुवा हो एसा पंचकर्म गुणातीत जो अस्थिगत कुष्ठका रोगी श्रद्धायुक्त जीनेकी इच्छा करता हो तथा प्रमेहवाला हो उन्हे इस योगसे साधन करें ॥ १७ ॥ पश्चिम समुद्रके किनारेकी पृथ्वीमें जो तुवरकके वृक्ष हैं जिनके पत्र समुद्रकी लहरीके पवनसे कंपित रहते हैं ॥ १८ ॥ उनके फल पके हुये प्रावृट् ऋतुमें (आषाढके महीनेमें) ग्रहण करें और उनकी गिरी निकालकर सुखा ले और टुकडे टुकडे कर ले ॥ १९ ॥ फिर उसे तिलोंकी तरह द्रोणीमें पेल डालें या पिट्ठीकी तरह पीसकर कसूमकी रैनाकी तरह चुवा ले और तेल जो उसमेंसे निकले आगपर पकावें जबतक उसमेंका जल नहीं जल जावे ॥ २० ॥ फिर उसे उतारकर मुँह बंध करके खातमें पंदरा दिनतक दबाया रक्खें और रोगीको स्नेहन स्वेदन वमन रेचनादिसे मल रहित करके एक पक्ष १५ दिन पीछे यत्न पूर्वक ॥ २१ ॥ चतुर्थभक्त (रेचनादिसे १५ दिनबाद सोलहवें दिन तौ दोनों समय प्रकृति मूजब भोजन किया हो दूसरे दिन एकवार भोजन किया हो फिर तीसरे दिन लघुकोष्ठ वाले) को बलके अनुसार मंत्रसे पवित्र किये हुये उस तैलकी मात्रा देवें और शुक्लपक्ष और शुभ दिन भी देख ले ॥ २२ ॥ जिस मंत्रसे इस तैलको अभिमंत्रित करे उस मंत्रको अब वर्णन करते हैं ॥ २३ ॥

मंत्र।

मज्जसार महावीर्य सर्वान्धातून् विशोधय ।
शंखचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥ २४ ॥

(श्लो० २२) चतुर्थभक्तांतरितः इति पक्षादूर्ध्वं प्रथमेऽह्नि सायंप्रातः प्रकृतिभोजनद्वयं, द्वितीयेह्नि प्रातर्भुक्त्वा सायं भोजनं न कार्यं, ततस्तृतीयेऽहनि लघुकोष्ठाय प्रातःस्नेहं दद्यात, एवंचतुर्थभक्तांतरितो भवतीत्यर्थः (इति निबंधसं०) । तैलमात्रां पाणितलप्रमाणां कर्षप्रमाणामित्यर्थः ।

हे मज्जसार महावीर्य तुवरकतैल तुम सब धातुवों रसरक्तादिको शुद्ध करो शंख चक्र गदाको हाथोंमें धारण करनेवाले विष्णु भगवान् अच्युतरूप तुमको आज्ञा देते हैं ॥ २४ ॥

तेनास्योर्द्ध्वमधश्चापि दोषा यांत्यसकृत्ततः । अस्नेहलवणां सायं यवागूं शीतलां पिबेत् ॥ २५ ॥ पंचाहं प्रपिबेत्तैलमनेन विधिना नरः । पक्षे परिहरेच्चापि मुद्गयूषौदनाशनः ॥ २६ ॥ पंचभिर्दिवसैरेवं सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते । तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधुसाधितम् ॥ २७॥ निहंति पूर्ववत्पक्वं पिबेन्मासमतंद्रितः । तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वीताहारमीरितम् ॥ २८ ॥ भिन्नस्वरं रक्तनेत्रं विशीर्णं क्रिमिभक्षितम् । अनेनांशुप्रयोगेण साधयेत्कुष्ठिनं नरम् ॥ २९ ॥

इस तुवरक तैलसे रोगीके दोष दोनों तरफसे वारंवार निकलकर शांत हो जाते हैं फिर सायंकाल बिना चिकनाई बिना लवणके ठंढा यवागू पिलावे ॥ २५ ॥ इसी विधिसे इस तैलको पांच दिनतक निरंतर पिलावे और एक पक्षतक पथ्यसे रहे क्रोधादि सब त्याग दे मूंगका यूष और भात पंदरा दिन पीछेतक खाता रहे ॥ २६ ॥ इस विधिसे पांचही दिनमें सब प्रकारके कुष्ठोंसे मनुष्य छूट जाता है । तथा इसी तैलको तिगुने खदिरके क्काथसे सिद्ध कर ले और पूर्वोक्त विधिसे पकाले और सावधान होकर एक महीनेतक नित्य पीवे और शरीरपर भी इसीका मर्दन करे और पूर्वोक्त आहार करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ इससे भिन्नस्वरवाले (जिसका गला घेघा पडगया हो) नेत्र लाल होगये हों शरीर फूट गया हो कीडोंने खालिया हो वह कुष्ठी भी इस प्रयोगसे कुष्ठरोगसे छूट जातेहैं ॥ २९ ॥

सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिराम्बुना । पक्षिमांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम्॥ ३० ॥ तदेव नस्ये पंचाशद्दिवसाननुप्रयोजितम् । वपुष्मंतं श्रुतिधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥ ३१ ॥

वही पूर्वोक्त तुवरकका तैल शहत घृत और खदिरके क्काथके संग (एकमास) पीवे और पक्षियोंके मांसका रस भोजन करे तो दोसौ वर्षकी अवस्था होजाती है ॥ ३० ॥ और इसी तैलकी नस्य पचास दिनतक लेवे तो पुष्ठ शरीरवाला और पूर्ण धारणा शक्तिवाला होकर तीनसौ वर्षकी अवस्थातक जीनेवाला होजाता है ॥ ३१॥

शोधयंति नरं पीता मज्जानस्तस्य मात्रया । महावीर्यस्तुवरकः कुष्ठमेहा-

(श्लो० २७ । २८) निहंति कुष्ठं प्रमेहं वा इति शेषेणान्वयः, ईरीतं भल्लातकविधानोक्तम् ।

पहः परः ॥ ३२ ॥ सांतर्धूमस्तस्य मज्जा तु दग्धः क्षिप्तस्तैले सैंधवं चांजनं च । ऐर्म्यं हन्यादर्मनक्तांध्यकाचान्नीलीरोगांस्तैमिरं चांजनेन ॥ ३३ ॥

इति चिकित्सितस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इसकी गिरीको मात्रा प्रमाणसे मनुष्य पीवे तौ देहको शुद्ध करदेता है यह महापराक्रमवाला तुबरक कुष्ठ और प्रमेहको नाश करनेमें परम उत्कृष्ट है ॥ ३२ ॥ और इसकी गिरीको इस विधिसे भस्मकरे कि धुवां बाहर नहीं निकले फिर उस भस्मको तैलमें मिलावे और सैंधानमक तथा सुरमाभी मिलावे और आँखोंमें इसका अंजन करे तौ ऐर्म्य (शुक्लगत नेत्ररोग) और रतोंधी तथा काचके रोग और नीली रोग (कृष्णगत रोग) तथा तिमिरको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहिताटीकायां चिकित्सितस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथात उदराणां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाडी हम उदर रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

अष्टावुदराणि पूर्वमुद्दिष्टानि तेष्वसाध्यं बद्धगुदं परिस्रावि चावशिष्टानि कृच्छ्रसाध्यानि सर्वाण्येव च प्रत्याख्यायोपक्रमेत । तेष्वाद्यश्चतुर्वर्गो भेषजसाध्यः कालप्रकर्षात्सर्वाण्येव शस्त्रसाध्यानि वर्जयितव्यानि वा ॥ १ ॥

पहले निदानस्थानमें आठ प्रकारके उदर रोगोंके लक्षणादि कहगये हैं उनमेंसे बद्धगुदोदर और परिस्रावि असाध्य हैं शेष छः कृच्छ्र साध्य हैं सबही उदररोगोंको प्रत्याख्याय (कष्ट साध्य हैं आराम हो भी और न भी हों एसा कहकर) चिकित्सा करे इनमेंसे आदिके चार प्रकारके उदररोग (वातोदर पित्तोदर कफोदर और दूष्योदर) औषधसे साध्य होसकते हैं और पुराने पडकर तौ सभी शस्त्रसाध्य होजाते हैं या असाध्य होकर त्यागने योग्य होजाते हैं ॥ १ ॥

उदर रोगमें पथ्यापथ्य ।

उदरी तु गुर्वभिष्यन्दिरूक्षविदाहिस्निग्धपिशितपरिषेकावगाहान् परिहरेच्छालिषष्टिकयवगोधूमनीवारान्नित्यमश्नीयात् ॥ २ ॥

उदररोगवाला मनुष्य भारी अभिष्यंदि रूखा विदाही (जलन पैदा करनेवाला) स्निग्ध (अति चिकना) पदार्थ और मांस इन्हें भोजन न करे तथा परिषेक और स्नानको (जो जलमें गोते मारकर किया जावे) त्यागदे तथा

(वा० १) उदरशब्देन चोदररोगाणां ग्रहणम् ।

शालि चावल और षष्टिक (चावल) जौ गेहूं और नीवार (तृण धान्य) इन्हें नित्य भोजन किया करे ॥ २ ॥

वातोदरकी चिकित्सा ।

तत्र वातोदरिणं विदारिगंधादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहयित्वा तिल्वकविपक्केनानुलोम्य चित्राफलतैलप्रगाढेन विदारिगंधाकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च शाल्वणेन[1] चोपनाहयेदुदरं[3] भोजयेच्चैनं[6,4,5] विदारिगंधादिसिद्धेन[1] क्षीरेण[2] जांगलरसेन[3] चाभीक्ष्णं स्वेदयेत् ॥ ३ ॥

वातोदर रोगवालेको विदारिगंधादि गणसे सिद्ध किये हुये घृतसे स्नेहन करावे और तिल्वक (लोध) से पके हुये घृतसे अनुलोमन करे और चित्राफल (दंतीके फल) तैलयुक्त विदारिगंधा (शालपर्णी) के क्वाथसे आस्थापन और अनुवासन बस्ति करे तथा शाल्वणसे उदरको उपनाहनस्वेद करावे और विदारिगंधादि गणसे सिद्ध कियेहुये दुग्धसे अथवा जंगली जीवोंके मांसरससे भोजन करावे और बारबार खूब स्वेद करावे ॥ ३ ॥

पित्तोदरकी चिकित्सा ।

पित्तोदरिणं तु मधुरगणविपक्केन सर्पिषा स्नेहयित्वा श्यामात्रिफलात्रिवृद्विपक्केनानुलोम्य शर्करामधुघृतप्रगाढेन न्यग्रोधादिकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च पायसेनोपनाहयेदुदरं[3,2] भोजयेच्चैनं[6,1,2] विदारिगंधादिसिद्धेन[3] पयसा[4] ॥ ४ ॥

पित्तोदरवालेको काकोल्यादिक मधुर द्रव्योंसे पकेहुये घृतसे स्नेह न करावे और काली निसोथ त्रिफला सुपेद निसोथ इनसे पकेहुये घृतसे अनुलोमन करावे तथा न्यग्रोधादि गणके क्वाथमें शक्कर शहत घृत मिलाकर आस्थापन और अनुवासन करे और उदरको खीरसे पसीना दिलावे तथा विदारिगंधादि गणसे सिद्ध कियेहुये दूधसे भोजन करावे ॥ ४ ॥

कफोदरका यत्न ।

श्लेष्मोदरिणं पिप्पल्यादिकषायसिद्धेन सर्पिषोपस्नेह्य स्नुहीक्षीरविपक्केनानुलोम्य त्रिकटुकमूत्रक्षारतैलप्रगाढेन मुष्कादिकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च शणातसीधातकीकिण्वसर्षपमूलकबीजकल्कैश्चोपनाहयेदुदरं[1,3,2] भोजयेच्चैनं[5,1,2] त्रिकटुकप्रगाढेन[3] कुलत्थयूषेण[6] पायसेन वा[4] स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम् ॥ ५ ॥

(वा० ३) तिल्वकविपक्केनानुलोम्य इत्यत्र सर्पिषा इति पूर्वोक्तेनान्वयः, तिल्वक घृतेन बहुशोनुलोमयेदिति वाग्भट्टोक्तेः ।

कफोदरीको पिप्पल्यादिके क्वाथसे सिद्ध कियेहुये घृतसे स्नेहन करावे और थोहरके दुग्धसे सिद्ध किये घृतसे अनुलोमन करावे और मुष्कक आदिके कषायमें त्रिकटु गोमूत्र यवक्षार और तैल मिलाकर इससे आस्थापन और अनुवासनबस्ति करावे तथा शण (बीज) अलसी धायके फूल किण्व (सुराबीज) सरसों और मूलीके बीज इन्हें पीस गरम करके उदरपर पसीना दिलावे (बांधदे) और कुलथीका यूष बनाकर उसमें त्रिकटु मिलाकर भोजन करावे अथवा खीरमें त्रिकटु मिलाकर खिलावे और बारबार खूब पसीना दिलावे ॥ ५ ॥

दूष्योदरका यत्न ।

दूष्योदरिणं तु प्रत्याख्याय सप्तलाशंखिनीस्वरससिद्धेन सर्पिषा विरेचयेन्मासमर्द्धमासं वा महावृक्षक्षीरसुरागोमूत्रसिद्धेन वा शुद्धकोष्ठं तु मद्येनाश्वमारकगुंजाकाकादनीमूलकल्कं पाययेत् । इक्षुकांडानि वा कृष्णसर्पेण दंशयित्वा भक्षयेत् वल्लीफलानि वा मूलजं कंदं वा विषमासेवयेत् तेनागदो भवत्यन्यं वा भावमापद्यते ॥ ६ ॥

दूष्योदर (संनिपातोदर) वालेको पहिले ऐसा कहकर कि आराम हो या न हो फिर चिकित्सा करे । इसे सातला शंखिनी (एकप्रकारकी थोहर) के स्वरससे सिद्ध कियेहुये घृतसे एक महीना या पंदरह दिनतक विरेचन करावे अथवा सेहुँड थोहर) के दूध सुरागोमूत्र इनसे सिद्ध कियेहुये घृतसे विरेचन करावे और जब कोठा शुद्ध होजावे तब कनेर चिरमिठी और काकादनीकी जड मद्यमें पीसकर पिलावे तथा ईखके गन्नेको काले सर्पसे कटाकर वह चुसावे और वल्लीफल तथा जडके कंद खिलावे अथवा विषसेवन करावे इन उपायोंसे अच्छे होजावें या अन्यभाव (मृत्यु) को प्राप्त होजावे ॥ ६ ॥

वक्तव्य–यह दूष्योदर विषादिक भोजनसे होताहै और "विषस्य विषमौषधम्" यह प्रसिद्धहै इसवास्ते इसमें उपरोक्त तीक्ष्ण प्रयोग लिखे इनसे अच्छा होजावे या मरजावे परंतु ऐसे तीक्ष्ण प्रयोग करने उचित नहीं ॥

भवति चात्र । कुपितानिलमूलत्वात्संचयित्वान्मलस्य च ।
सर्वोदरेषु शंसंति बहुशस्त्वनुलोमनम् ॥ ७ ॥

(वा० ६) यथामदात्यये मद्यपानं छर्द्यां वमनं सर्पविषे विषभक्षणं तद्वत् विषाद्युत्पन्नोदरे कृष्णसर्पदष्टेक्षुभक्षणं विषभक्षणं वा तेन नीरुजत्वमापद्यतेऽन्यभावं मरणंवा कर्मेदं दारुणम्, (इति डल्लनः) चरकेतु संनिपातोदरचिकित्सितं वातोदरविधिना कार्यं वर्णितम् 'सन्निपातोदरे सर्वास्तथोक्ताः कारयेत्क्रियाः' इतिचरकोक्तिः । वृद्ध वाग्भटेतु एवमेव विषभक्षणं लिखितम् ।

यहां श्लोक है कि । सब प्रकारके उदर रोगोंमें मूल कारण वायुका कोप है तथा सबमें मलका संचय होता है इस हेतुसे सब उदर रोगोंमें बहुत करके अनुलोमन करानेका (रेचन करानेका) ही उपदेश करते हैं और इसेही अच्छा जानते हैं॥७॥

उदर रोगोंके सामान्य प्रयोग ।

अत ऊर्द्ध्वं सामान्ययोगान् वक्ष्यामः । तद्यथा एरंडतैलमहरहर्मासं द्वौ वा केवलमूत्रयुक्तं क्षीरयुक्तं वा सेवेतोदकवर्जी माहिषं वा मूत्रं क्षीरेण निराहारः सप्तरात्रम् ॥ ८ ॥ उष्ट्रीक्षीराहारो वान्नवारिवर्जी, पिप्पलीं वा मासं पूर्वोक्तेन विधानेनासेवत, सैंधवाजमोदायुक्तं वा निकुंभतैलम् ॥ ९ ॥ आर्द्रकशृंगवेररसपात्रशतासिद्धं वा वातशूलेऽपचार्यं शृंगवेररसविपक्वं क्षीरमासेवेत चव्यशृंगवेरकल्कं वा पयसा सरलदेवदारु चित्रकमेव वा मुरंगीशालपर्णीश्यामापुनर्नवाकल्कं वा ॥ १० ॥

यहांसे अगाडी हम उदर रोगोंके लिये सामान्य प्रयोग कहते हैं ॥ वे इस प्रकारके हैं कि । अरंडका तेल केवल गोमूत्र युक्त या दुग्ध युक्त कर एक महीने दो महीनेतक नित्य पिलावे और जल न पिलावे (अर्थात् बहुतही अल्प पिलावे) अथवा सात दिनतक निराहार रहकर भैंसका मूत्र दुग्धके संग पिलावे ॥ ८ ॥ अथवा सात दिनतक अन्न जल छोडकर केवल ऊँटनीका दूध पिलावे अथवा पूर्वोक्त (वातरक्तोक्त) विधानसे एक महीनेतक पिप्पली सेवन करावे अथवा सैंधानमक अजमोद मिलाकर दंती तेल देवे ॥ ९ ॥ वायु शूल युक्त उदर रोगमें अदरख सोंठके सौ आढकमें (एक आढक) सिद्ध किया हुवा यह तैल योजन करे अथवा अदरखके रसमें पकायाहुवा दुग्ध सेवन करे अथवा चव्य और अदरखका कल्क सेवन करे अथवा दूधके साथ सरल देवदारु और चित्रक सेवन करे अथवा मुरंगी (सोहँजना) शालपर्णी श्यामा निसोथ और साठी इनका कल्क सेवन करे ॥१०॥

ज्योतिष्कतैलं वा क्षीरेण स्वर्जिकाहिंगुमिश्रं पिबेत्, गुडद्वितीयां वा

(वा० ८) उदकवर्जी इति बहूदकवर्जी, डल्लनेन माहिषमूत्रप्रयोगे उदकवर्जी संयोजितः ।

(वा० ९) पूर्वोक्तेन वातरक्तोक्तेन (इति नि. सं.) निकुंभो दंतिवृक्षः, वृद्धवाग्भटे सैंधवाजमोदयुक्तं निंबतैलं पठितम् ॥

(वा० १०) पात्रशतासिद्धं तदेवतैलं आर्द्रक शृंगवेररसाढकशतपक्वमिति (डल्लनः) ॥

(वा० ११) ज्योतिष्कः काकमर्दनिका इति डल्लनः । शब्दस्तोमेतु ज्योतिष्मतीलतायां चित्रकवृक्षे गणकारीवृक्षे मेथिकायांच प्रवृत्तिः ।

हरीतकीं भक्षयेत् ॥ ११ ॥ स्नुहीक्षीरभावितानां वा पिप्पलीनां सहस्रं, कालेन पथ्याकृष्णाचूर्णं वा, स्नुहीभावितामुत्कारिकां पक्वां दापयेत् ॥ १२ ॥

मालकाँगनीका तैल अथवा दुग्धके संग सज्जी और हींग मिलाके पीवे अथवा गुड हरीतकी मिलाकर खावे ॥ ११ ॥ अथवा एक हजार पीपलोंको थोहरके दूधकी भावना देकर सेवन करे अथवा बहुत दिनतक हरीतकी और पिप्पलीका चूर्ण खावे अथवा थोहरके दूधसे भावनादी हुई लपसी खिलावे ॥ १२ ॥

हरीतकीचूर्णप्रस्थमाढके घृतस्याङ्गारेष्वभिविलाप्य खजेनाभिमथ्यानुगुप्तं कृत्वार्द्धमासं यवपल्ले वासयेत् ततश्चोद्धृत्य परिस्राव्य हरीतकी क्वाथाम्लदधीन्यावाप्य विपचेत् तद्यथायोगं मासमर्द्धमासं वा पाययेत् ॥ १३ ॥ गव्ये पयसि महावृक्षक्षीरमावाप्य विपचेद्विपक्वं चावतार्य शीतीभूतं मंथानेनाभिमथ्य नवनीतमादाय भूयो महावृक्षक्षीरेणैव विपचेत्तद्यथायोगं मासं मासार्द्धं वा पाययेत् ॥ १४ ॥

हरीतकी (बडी हरड) का चूर्ण एक प्रस्थ लेकर एक आढक घृत अंगारोंपर तायकर मिलाले और रईसे मथे फिर मुँह बंद करके आधे महीनेतक जौके ढेर (या खत्ते) में दबा दे फिर निकालकर छान ले और हरीतकीका क्वाथ खट्टा दही उसमें और मिलाकर पका लेवे फिर इसी यथायोगसे एक महीना या पंदरा दिनतक पिलावे ॥ १३ ॥ अथवा गौके दुग्धमें थोहरका दुग्ध (चतुर्थांश) मिलाकर पकावे पक जानेपर उतारकर ठंढाकरले और रईसे मथकर घृत निकाल लेवे फिर उस घृतको थोहरके दूधमें (चतुर्थांशमें) मिलाकर पका ले फिर उसे यथायोगसे एक महीना या पंदरहदिनतक पिलावे इससे सब प्रकारके उदररोग अच्छे होजातेहैं १४॥

चव्यचित्रकदंत्यतिविषाकुष्टसारिवात्रिफलाजमोदहरिद्राशंखिनीत्रिवृत्त्रिकटुकानामर्द्धकार्षिका भागा राजवृक्षफलमज्जानामष्टौ कर्षा महावृक्षक्षीरपले द्वे गवां क्षीरमूत्रयोरष्टावष्टौ पलानि एतत्सर्वं घृतप्रस्थे समावाप्य विपचेत् तद्यथायोगं मासमर्द्धमासं वा पाययेत् ॥ १५ ॥ एतानि तिल्वकघृतचतुर्थानि सर्पींष्युदरगुल्मविद्रध्यष्ठीलानाह कुष्ठोन्मादापस्मारेषूपयोज्यानि विरेचनार्थम् ॥ १६ ॥

(वा० १३) खजः मंथानं रई इति लोके ।

(वा० १६) तिल्वकघृतं वातव्याध्युक्तम्, त्रीणिचोपरोक्तानि इति ।

चव्य चित्रक दंती अतीस कूट सारिवा त्रिफला अजमोद हलदी शंखिनी (यवतिक्ता) निसोथ सोंठ मिरच पीपल इन सबको आधे २ कर्ष लेवे और किरमालेकी फल्लीके गूदेको आठ कर्ष (दोपल) ले और थोहरका दूध भी दोपल ले और गौका दूध आठ पल और गोमूत्र भी आठ पल लेवे इन सबको एक प्रस्थ भर घृतमें पकावे इसे यथायोगसे एक महीना या पंदरा दिनतक पिलावे ॥ १५ ॥ ये ऊपर कहेहुवे तीनों घृत और चौथा तिल्वक घृत (वातव्याधिवर्णित) ये चारों उदररोग गुल्म विद्रधि अष्ठीला अनाह (अफरा) कुष्ठ उन्माद मृगी इतने रोगोंपर योजना करने चाहियें विरेचनके लिये ॥ १६ ॥

मूत्रासवारिष्टसुराश्चाभीक्ष्णं महावृक्षक्षीरसंभृताः सेवेत,
विरेचनद्रव्यकषायं वा शृंगवेरदेवदारुं प्रगाढम् ॥ १७ ॥

अथवा गौ आदिके मूत्र आसव अरिष्ट सुरा इनमें थोहरका दूध मिलाकर सेवन किया करे अथवा विरेचन द्रव्योंके क्वाथमें अदरख और देवदारु मिलाकर सेवन करे ॥ १७ ॥

आनाहवर्त्तिः ।

वमनविरेचनद्रव्याणां पालिका भागाः पिप्पल्यादिवचादिहरिद्रादिपरिपठितानां च द्रव्याणां श्लक्ष्णपिष्टानां यथोक्तानां च लवणानां तत्सर्वं मूत्रगणे प्रक्षिप्य महावृक्षक्षीरप्रस्थं च मृद्वग्निना घट्टयन् विपचेदप्रदग्धकल्कं तत्साधुसिद्धमवतार्य शीतीभूतमक्षमात्रां गुटिकां वर्त्तयेत्तासामेकां द्वे तिस्रो वा गुटिका बलापेक्षया मासांस्त्रींश्चतुरो वा सेवेत ॥ १८ ॥ एषा आनाहवर्त्तिक्रिया विशेषेण महाव्याधिषूपयुज्यते कोष्ठजांश्च कृमीनपहंति कासश्वासकृमिकुष्ठप्रतिश्यायारोचकाविपाकोदावर्तांश्च नाशयति ॥ १९ ॥

वमन विरेचनके द्रव्योंका एक एक पल भाग लेवे और पिप्पल्यादिक वचादिक और हरिद्रादिक गणोंके द्रव्योंको महीन पीस ले और सब नमक पल २ लेवे इन सबको गोमूत्रआदिक मूत्रगणमें डालकर थोहरका दूध एक प्रस्थ लेवे सबको मिलाकर मंदी अग्निसे पकावे और पकते समय घोटता जावे जब वह कल्क जले नहीं और ठीक २ पकजावे तब उसे उतारकर ठंढा करलेवे और अक्ष प्रमा-

---

(वा० १८) पिप्पल्यादिद्रव्याणामपि पालिका भागाः बलापेक्षया भक्षयितव्याः गवादिमूत्रानुपानं (इति डल्हनः)

(वा० १९) महाव्याधिषु उदरादिषु, कृमिशब्दे वारद्वयपठिते बाह्याभ्यंतरकृमिग्रहणम् ।

णकी गोलियां बनालेवे इनमेंसे बलके अनुसार एक या दो या तीन गोली नित्य सेवन करे ऐसे तीन या चार महीनेतक सेवन करे ॥ १८ ॥ यह आनाहवर्तीकी क्रिया है विशेष करके ये महाव्याधियोंमें उपयोग कीजाती हैं यह कोठेके कृमियोंको नष्ट करती है तथा खांसी श्वास कृमि (बाह्यकृमि) कुष्ठ प्रतिश्याय अरुचि और भोजन न पचना तथा उदावर्त इतने रोगोंको नाश करती है ॥ १९ ॥

फलवर्तिः ।

मदनफलमज्जकुटजजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवत्रिवृत्रिकटुसर्षपलवणानि महावृक्षक्षीरमूत्रयोरन्यतरेण पिष्ट्वांगुष्ठमात्रां वर्तिं कृत्वोदरिणे आनाहे तैललवणाभ्यक्तगुदस्यैकां द्वे वा पायौ निदध्यादेषानाहवर्तिक्रिया वातमूत्रपुरीषोदावर्त्ताध्मानाहेषु विधेया ॥ २० ॥

मैनफलकी गिरी, इंद्रजौ, देवदाली, कटुतुंबी, कटुतुरई, निसोथ, सोंठ, मिरच, पीपल, सरसों और लवण इन्हें थोहरके दूधमें या गोमूत्रमें पीसकर एक अंगुष्ठ बराबर बत्तीसी लंबी गुटी बनावे और उदररोगवालेका पेटफूल जावे (अफरा हो जावे) तब उसकी गुदामें तैल और लवण लगाकर उसमें एक या दो वे लंबी गुटी रखदे यह आनाहवर्तिक्रिया है वायु, मूत्र और मलके रुकजानेमें उदावर्तमें आध्मान (अफरे) में और पेटफूल जानेमें उपयोग करनी चाहिये ॥ २० ॥

प्लीहोदरिणः स्निग्धस्विन्नस्य दध्ना भुक्तवतो वामबाहौ कूर्पराभ्यंतरतः शिरां विध्येद्विमर्दयेत्पाणिना प्लीहानं रुधिरस्यंदनार्थम् ॥ २१ ॥

प्लीहोदरवालेको (जिसके पेटमें तिल्ली बहुत ही बढगई हो उसे) स्नेहन कराकर स्वेद दिलाकर दहीका भोजन कराकर बाँये हाथकी कोहनीके बीचकी नस (रगें शलाकासे) वेधें (फस्त खोलें) और रक्त निकलनेके लिये तिल्लीको हाथसे मलते जावें ॥ २१ ॥

ततः संशुद्धदेहं समुद्रशुक्तिकाक्षारं पयसा पाययेत् हिंगुसौवर्चिकाक्षारेण स्रुतेन पलाशक्षारेण वा यवक्षारं, पारिजातकेक्षुरकापामार्गक्षारं वा तैलसंसृष्टं सौभांजनकषायं वा पिप्पलीसैंधवचित्रकयुक्तं, पूतिकरंजक्षारं वाम्लस्रुतं विडलवणपिप्पलीप्रगाढम् ॥ २२ ॥

(वा० २०) अभ्यंतरवर्तिप्रसंगेन फलवर्तिं निदर्शयन्नाह मदनफलेति (निबंध संग्रहः) जीमूतकः देवदाली, इक्ष्वाकुः कटुतुंबी, धामार्गवः महाकोशातकी ।

(वा० २१) दधिभोजनेन रक्तक्लेशनाशकरणं यथा कफव्याधिप्रयुक्तवमनकर्मादौ कफकारकभोजनं तद्वत् ।

फिर शुद्ध शरीर होजानेपर समुद्रकी सीपकी भस्म दुग्धके संग पिलावे अथवा हींग और सज्जीखारको टपकाकर या ढाकके खारको टपकाकर उसके संग जवाखार खावे अथवा नींब तालमखाने और ओंगा इनका क्षार तैलमें मिलाकर चाटे अथवा सोहँजनेका क्वाथ करके उसे पीपल सेंधानमक चित्रकके संग पीवे अथवा पूतिकरंजका क्षार खटाईसे टपकाकर विडलवण और पीपल मिलाकर पीवे ॥ २२ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकशृंगवेरयवक्षारसैंधवानां पालिकाभागा घृतप्रस्थं तत्तुल्यं क्षीरं तदैकध्यं विपाचयेदेतत्षट्पलकं नाम सर्पिः प्लीहाग्निषंगगुल्मोदरोदावर्तश्वयथुपांडुरोगकासश्वासप्रतिश्यायोर्द्ध्ववातविषमज्वरानपहंति २३॥ मंदाग्निर्वा हिंग्वादिकं चूर्णमुपयुंजीत ॥ २४ ॥

षट्पलकघृत।

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक, सोंठ, जवाखार, सेंधानमक इन छः वस्तुओंको पल पल भर लेवे और घृत एक प्रस्थ लेवे और घृतके समान दूध लेवे इन सबको इकट्ठाकरके पका लेवे यह षट्पल नामक घृत है यह प्लीहा अग्निसाद (मंदाग्नि) गुल्म उदावर्त शोथ पांडुरोग खांसी श्वास प्रतिश्याय उर्ध्ववात विषमज्वर इतने रोगोंको नाश करता है ॥ २३ ॥ और जो रोगी मंदाग्निवाला हो तो उसे हिंग्वादि चूर्ण खिलावे ॥ २४ ॥

यकृद्वृद्धिका यत्न।

यकृद्दाल्येप्येष एव क्रियाविभागः
विशेषतस्तु दक्षिणबाहौ शिराव्यधः ॥ २५ ॥

यकृदुदरी (जिसके पेटमें जिगर अति बढ गया हो) उसको भी यही प्लीहोक्त औषधोंका उपयोग करें इतनी बात विशेष है कि यकृत् वृद्धिवालेके दाहने हाथकी फस्त खोले ॥ २५ ॥

मणि[३]बंधं[४] संकुञ्चाम्य[६] वामांगुष्ठसमीरिताम् ।
दहे[११]च्छि[७]रां शरे[९]णाशु[५] प्लीह्नो[१] वै[१०]द्यः[२] प्रशांतये ॥ २६ ॥

बाँये मणिबंध (पहुंचे) को थोडा नवाकर बायें अंगूठेको दबानेसे जो सिरा (ऊपरको उठती) है उसको शर (बाण) की नोक गरम लाल करके उससे दाग देवे ऐसा करनेसे प्लीहावृद्धि नष्ट होजातीहै ॥ २६ ॥

बद्धगुदोदर और परिस्राव्युदरकी चिकित्सा।

बद्धगुदे परिस्राविणि च स्निग्धस्विन्नस्याभ्यक्तस्याऽधो नाभेर्वामतश्चतु-रंगुलमपहाय रोमराज्या उदरं पाटयित्वा चतुरंगुलप्रमाणान्यन्त्राणि निष्कृष्य निरीक्ष्य बद्धगुदस्यांत्रप्रतिरोधकरमश्मानं वालं वापोह्य मलजातं वा ततो मधुसर्पिर्भ्यामभ्यज्यांत्राणि यथास्थानं स्थापयित्वा बाह्यं व्रण-मुदरस्य सीव्येत् ॥ २७ ॥ परिस्राविणि चाप्येवमेव शल्यमुद्धृत्यान्त्र-स्रावान् संशोध्य तच्छिद्रमन्त्रं समाधाय कालपिपीलिकाभिर्दंशयेत्, दष्टे च तासां कायानपहरेन्न शिरांसि ततः पूर्ववत्सीव्येत्, संधानं च यथोक्तं कारयेत् ॥ २८ ॥ यष्टीमधुकमिश्रया च कृष्णमृदावलिप्य बंधनोपचरेत्ततो निवातमगारं प्रवेश्याचारिकमुपदिशेद्वासयेच्चैनं तैलद्रो-ण्यां सर्पिर्द्रोण्यां वा पयोवृत्तिमिति ॥ २९ ॥

बद्धगुदोदर और परिस्राव्युदर वालोंको स्नेहन स्वेदन कराके ऊपर तैलाभ्यंग करके नाभिसे नीचे वांये तरफ चार अंगुल पेटकी रोमावलीसे छोडकर पेटमें चीरा लगावे और चार अंगुल प्रमाण आंतोंको बाहर निकालकर देखे जो बद्धगुद हो तो उसकी आंतडीके रोकनेवाले पत्थर वाल या मलकी गांठको निकालकर फिर आंतोंके शहत और घृत चुपडकर अपनी जगहपर स्थापन करदे और पेटका बाहरी जखम सीम देवे ॥ २७ ॥ और इसी भांति परिस्राव्युदरवालेकी आंत बाहर निकालकर उनमें जहां शल्य हो उसे निकालकर आंत जहांसे झिरती हो वहांसे शुद्ध करके आंतके छिद्रको ठीक करके उसपर काली चेंटियोंसे कटावे जब वे कांटे तब उनका धड चोंट चोंटकर फेंकदे शिर वहांही रहनेदे फिर पहलेकी भांति सीम दे और जखम-का मुँह मिलादे ॥ २८ ॥ फिर मुलेटी काली मिट्टी मिलाकर व्रणपर लेप दे और बांध दे और निर्वातस्थानमें प्रवेश करके परिचारकको सबविधि समझा दे या तैल या घृतकी द्रोणीमें रक्खें और केवल दूध पिलावे ॥ २९ ॥

उदकोदरिणस्तु वातहरतैलाभ्यक्तस्योष्णोदकस्विन्नस्य स्थितस्याप्तः सुप-रिगृहीतस्याकक्षात्परिवेष्टितस्याधो नाभेर्वामतश्चतुरंगुलमपहाय रोमराज्या व्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येत् । तत्र त्रप्वादीनामन्यतमस्य नाडीं द्विद्वारां पक्षनाडीं वा संयोज्य दोषोदकमवसिंचेत्ततो नाडीमपहृत्य

तैलवणेनाभ्यज्य व्रणबंधनोपचरेत् ॥ ३० ॥ नचैकस्मिन्नेव दिवसे सर्वं दोषोदकमपहरेत् । सहसा ह्यपहृते तृष्णाज्वरांगमर्दातीसारश्वासपाददाहा उत्पद्येरन्नापूर्यते वा भृशतरमुदरमसंजातप्राणस्य । तस्मात्तृतीयचतुर्थपंचमषष्ठाष्टमदशमद्वादशषोडशरात्राणामन्यतरमंतरीकृत्य दोषोदकमल्पाल्पमवसिंचेत् ॥ ३१ ॥ निःस्रुते निःस्रुते च दोषे गाढतरमाविककौशेयचर्मणामन्यतमेन परिवेष्टयेदुदरं यथा नोध्मायति वायुः । षण्मासांश्च पयसा भोजयेज्जांगलरसेन वा तत्र त्रीन्मासानर्द्धोदकेन पयसा फलाम्लेन जांगलरसेन वावशिष्टं मासत्रयमन्नं लघु हितं वा सेवेतैवं संवत्सरेणागदी भवति ॥ ३२ ॥

जलोदरवालेको जिसे अन्य उपायोंसे आराम न हो तो वायुनाशक तैल लगाकर गरम जलसे स्वेदन कराके बिठावे और प्रामाणिक मनुष्य उसे पकडे रहे और काखतक पेटपर कपडा बंधवा दे और नाभिके नीचे चार अंगुलपर रोमावली छोडकर वांयेतरफको व्रीहिमुख शस्त्रसे अंगूठेकी मुटाईके समान गहरा वेध कर दे और उस छिद्रमें रांग आदिकी अथवा थोथी पांखकी दोनों तरफसे खुली नली लगाकर दूषित जलको पेटसे निकाले फिर नली निकालकर छिद्रके मुखपर तैल और सैंधानिमक मल दे और बांध दे ॥ ३० ॥ एकही दिनमें सब दूषित जल नहीं निकाले एकवार निकाल देनेसे तृषा ज्वर अंगडाई अतिसार श्वास पैरोंमें जलन आदि रोग पैदा होजाती हैं और उस निर्बल रोगीका पेट फूल जाता है इसलिये तीसरे चौथे पांचवे छठे आठवें दसवें बारहवें तथा सोलहवें दिन अंतर दे दे कर दूषित जल थोडा थोडा निकालते रहें ॥ ३१ ॥ ज्यों ज्यों दूषित जल निकले तभी ऊनका तथा रेशमी गाढा कपडा या चर्म पेटपर खूब बांध देवे जिससे वायु पेटको फुला न देवे और छः महीने दूध अथवा जांगली जीवोंके मांसके रसका आहार करे फिर तीन महीने अर्द्धोदक दूध और फलोंकी खटाई सहित जंगली जीवोंका मांसरस तथा शेष तीन महीने हितकारक हलका अन्न भोजन करे इसप्रकार एक वर्षमें रोगरहित होसकता है ॥ ३२ ॥

भवति चात्र । आस्थापने चैव विरेचने च पाने तथाहारविधिक्रियासु ।
सर्वोदरिभ्यः कुशलैः प्रयोज्यं क्षीरं श्रृतं जांगलजो रसो वा ॥ ३३ ॥

इति चिकित्सितस्थानेचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यहां पर श्लोक है कि ॥ सब उदर रोगवालोंको आस्थापनमें विरेचनमें पिलानेमें आहारमें कुशल वैद्योंको चाहिये कि औटाया हुआ दूध अथवा जंगली जीवोंके मांसका रस उपयोग करे ॥ ३३ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः।

अथातो मूढगर्भचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी अब हम मूढगर्भकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

मूढ गर्भकी कठिनता।

नातः कष्टतममस्ति यथा मूढगर्भशल्योद्धरणमंत्र हि योनियकृत्प्लीहान्त्रविवरगर्भाशयानां मध्ये कर्म कर्तव्यं स्पर्शेन उत्कर्षणाऽपकर्षणस्थानाऽपवर्तनोत्कर्तनभेदनच्छेदनपीडनर्ज्वकरणदारणानि चैकहस्तेन। गर्भं गर्भिणीं वा हिंसता तस्मादधिपतिमापृच्छच परं च यत्नमास्थायोपक्रमेत ॥ १ ॥

जैसा मूढ गर्भके शल्य निकालनेका कठिन काम है ऐसा और नहीं है क्यों कि इसमें योनि यकृत् प्लीहा आंतोंके विवर और गर्भाशय इन स्थानोंमें स्पर्श करके (टोहर करके जाचकर) काम करना पडता है और काम भी कैसाकि भीतर ही गर्भके ऊपरको उकसाना नीचे सरकाना एक जगहसे दूसरी जगह करना उखाडना भेदन करना काटना दबाना सीधा करना और विदारण करना सब एकही हाथसे करना होता है इसमें गर्भगत बालककी तथा गर्भिणीकी मृत्यु होजावे तो हिंसा होती है इससे राजा अथवा उसके स्वामीसे पूँछकर बहुत धीरतासे यत्न करना आरंभ करे ॥ १ ॥

तत्र समासेनाष्टविधा मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा स्वभावगता अपि त्रयः संगा भवंति शिरसो वैगुण्यादंसयोर्जघनस्य वा ॥ २ ॥

इस मूढ गर्भमें इसकी आठ प्रकारकी गति पहले निदान स्थानमें वर्णन करी गई है इनमें तीन स्वभावहीसे होनेवाले भी रुकजाते हैं १ शिरकी विगुणतासे २ हाथों कंधोंकी विगुणतासे ३ जंघाकी विगुणतासे ॥ २ ॥

(वाक्य० १) उत्कर्षणं अधोगतस्योर्ध्वीकरणं, उत्कर्तनं इत्यत्र उद्वर्तनमिति वा पाठांतरं, उद्वर्त्तनं अवाङ्मुखस्योत्तानीकरणमिति।

जीवति तु गर्भे सूतिकागर्भनिर्हरणे प्रयतेत निर्हर्तुमशक्ये च्यवनान्मंत्रानुपश्रृणुयात्तान्वक्ष्यामः ॥ ३ ॥

गर्भगतबालक जीवता हो तो उसे (जीताही) निकालनेका यत्न करना चाहिये और जब नही निकल सके तौ गर्भमोक्षणके मंत्रोंको सुनो हम कहते हैं (इनसे रुका गर्भ निकल आता है) ॥ ३ ॥

मंत्र।

इहामृतंच सोमंचचित्रभानुश्चभामिनि । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मंदिरे निवसंतुते ॥ ४ ॥ इदममृतभयं समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं प्रमुंचतु स्त्री । तदनल पवनार्कवासवास्ते सहलवणाम्बुधरैर्दिशंतु शांतिम् ॥५॥ मुक्ताः पशोर्वि पाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहिविरमावितः॥ ६ ॥

इनके अर्थकी कोई जरूरत नहीं ये इसी भांति याद करने चाहिये और समयपर इनसे जलको अभिमंत्रित करके एक घूंट स्त्रीको पिलादे और जरासा छींटा उदर और कमरपर लगादे इनका अर्थ यह है कि हे भामिनि तेरे स्थानमें अमृत और चद्रमा या सोम औषध तथा चित्रभानु और उच्चैः श्रवा घोडा निवास करो ॥ ४ ॥ जलसे निकाला हुआ अमृत इस तेरे हलकेस गर्भको छुडावे और हे स्त्रि ! अग्नि वायु सूर्य इंद्र लवणके समुद्र सहित तरेको शांति प्रदान करो ॥ ५ ॥ पशु बंधसे छुटे सूर्यने किरणों छोडदीं गर्भ भी सब भयोंसे छूटा हे गर्भ तू आ आ विलंब मतकर ॥ ६ ॥

गर्भसेधमें औषध ।

औषधानि च विदध्याद्यथोक्तानि ॥ ७ ॥

और औषधें भी जैसे शारीरकस्थानमें वर्णन हुई हैं समायानुसार उन्हें करें देखो शारीरकस्थानकी १० अध्याय ॥ ७ ॥

जीवित व मृतबालक निकालनेकी विधि ।

मृते चोत्तानाया आभुग्नसक्थ्या वस्त्राधारकोन्नमितकट्या धन्वननगवृत्ति-काशाल्मलीमृत्स्नाघृताभ्यां प्रक्षयित्वा हस्तं योनौ प्रवेश्य गर्भमुप-हरेत ॥ ८ ॥ तत्र सक्थिभ्यामागतमनुलोममवाच्छेत् । एक-सक्थिप्रपन्नस्येतरसक्थि प्रसार्यापहरेत् । स्फिग्देशेनागतस्य स्फिग्देशं प्रपीड्योर्द्धमुत्क्षिप्य सक्थिनी प्रसार्यापहरेत् । तिर्यगागतस्य परिघस्यैव

तिरश्चीनस्य पश्चादर्द्धमुत्क्षिप्य पूर्वार्द्धमपत्यपथं प्रत्यार्जवमानीयापहरेत् । पार्श्वापवृत्तशिरसमंसं प्रपीड्योर्द्धमुत्क्षिप्य शिरोपत्यपथमानीयापहरेत् । बाहुद्वयप्रतिपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांसौ शिरोनुलोममानीयापहरेत्। द्वावन्त्यौ-वसाध्यौ मूढगर्भौ एवमशक्ये शस्त्रमवचारयेत् ॥ ९ ॥

यदि गर्भमें बालक मर गया हो तथा चकारशब्दसे जीवता हो और रुक गया हो तो स्त्रीको सीधा लिटाकर दोनों साथलें चौडी कर कर कमरके नीचे कुछ वस्त्र रखकर कमर ऊंची कराकर (चतुर वैद्य या दाई) हाथके धन्वन नग वृत्तिका और संभल इनकी मिट्टी और घृत भले भांति चुपडकर योनिमें हाथ डालकर गर्भको निकाल लेवे ॥ ८ ॥ और यदि दोनों साथलें निकली हों तो उसे सीधाही खेंचले। यदि एक पांव बाहर आया हो तो दूसरे भी पांवको सीधा बाहर लाकर खेंचलें । यदि चूँतड बाहर दीखतें हों तो चूतडोंको ऊपरसे हटा दे और दोनों पाँव सीधे निकालकर खेंचले । और जो तिरछा वज्रकी भांति हो तो उसके पिछले धडको ऊपरको उकसादे और फिर पूर्वार्द्धको योनिकी तरफ लाकर खेंचले और यदि पसवाडेकी तरफसे आयाहुवा हो तो उसके कंधे ऊपरको उकसाकर योनिद्वारपर शिर लाके खेंचले। और जो दोनों हाथ बाहर आगये होंतो दोनों हाथोंको ऊपरको धकेलकर शिरको द्वारपर लाकर खेंचले । इनके सिवाय पिछले दो मूढ गर्भ असाध्य हैं लाचार इनमें कोई यत्न न चलसके तब शस्त्रकर्म करे ॥ ९ ॥

जीवितगर्भमें शस्त्रका निषेध ।

सचेतनं च शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ।
दार्यमाणो हि जननीमात्मानं चैव घातयेत् ॥ १० ॥

यदि जीवता बालक गर्भमें रुकाहुवा हो तो उसे कदाचित् भी शस्त्रसे नहीं छेदन करना चाहिये क्योंकि उसके छेदन करनेसे गर्भवती और बालक दोनों मरजाते हैं ॥ १० ॥

मृतगर्भका छेदन प्रकार ।

तत्रस्त्रियमाश्वास्य मंडलाग्रेणांगुलीशस्त्रेण वा शिरो विदार्य शिरःकपालान्यपहृत्य शंकुना गृहीत्वोरसि कक्षायां वापहरेदभिन्ने शिरसि चाक्षिकूटे गंडे वा । अंससंसक्तस्यांसदेशे बाहुं छित्वा दृतिमिवाततं वातपूर्णो-

(वा० ११) दृतिः चर्मनिर्मितोदकपात्रम् । मशक इति प्रसिद्धम् (इति श० स्तो०)

दरं वा विदार्य निरस्यांत्राणि शिथिलीभूतमाहरेत् । जघनसक्तस्य वा जघनकपालानीति ॥ ११ ॥

गर्भमें बालक मर गया हो तो स्त्रीको खूब हितकारक वचनोंसे समझाकर मंडलाग्र शस्त्रसे अथवा अंगुली शस्त्रसे बालकका शिर विदारण करके शिरके कपालों (खोपरी) को शंकुसे पकडकर अथवा पेटको पकडकर या काखमेंसे पकडकर बाहर खेंच लेवे । और जो शिर छेदनकी आवश्यकता नहो (मृत गर्भका शिर योनि द्वारपरही हो तो उसकी कनपटी या गंडस्थलमेंसे पकडकरही खेंच ले । और जो कंधे रुके तो कंधोंके पाससे हाथोंको काटकर निकाल देवे । जो मशककी तरह आडा हो या पेट हवासे फूला होतो पेटको चीरकर आंतें निकालकर शिथिलीभूत गर्भको बाहर खेंच ले । और जो कूले साथल अटकते हों तो कूलोंको काट ले॥ ११॥

स्त्रीकी रक्षा ।

यद्यदंगं हि गर्भस्य तस्याखर्जति सद्भिषक् ।
सम्यग्विनिर्हरेच्छित्वा रक्षेन्नारीं च यत्नतः ॥ १२ ॥

गर्भवतीके मृत गर्भको जिस जिस अंगको वैद्य मथन करे भेदन करे उसे अच्छे प्रकार काट काट कर बाहर निकाल लेवे (कुछभी अंश भीतर नहीं रहने देवे)और (काटते और निकालते समय तथा पीछे भी) यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करे ॥ १२ ॥

गर्भस्य गतयश्चित्रा जायंतेऽनिलकोपतः ।
तत्रानल्पमतिर्वैद्यो वर्तेत विधिपूर्वकम् ॥ १३ ॥

वायुके कोपसे गर्भकी विचित्र अनेक गति होजाती हैं इसमें अतिबुद्धिमान् वैद्य मौकेके अनुसार विधिवत् वर्ताव करे ॥ १३ ॥

मृतगर्भमें विलंबका दोष ।

नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पंडितः । स ह्याशु जननीं हंति निरुच्छ्वासं पशुं यथा ॥ १४ ॥ मंडलाग्रेण कर्तव्यं छेदमंतर्विजानता । वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात्कदाचन ॥ १५ ॥

यदि बालक गर्भमें मरजावे तो उसे बहुत ही शीघ्र जैसे होसके सावत या काटकर निकालही डाले विद्वान् वैद्यको इसमें दो घडी भी विलंब करना उचित नहीं क्योंकि गर्भमें मरा हुआ बालक शीघ्रही माताको मृत्युकारक होताहै जैसे श्वास रुकनेपर पशु भी शीघ्र मरजाताहै ॥१४॥भीतरी शारीरक अंत्र आदिका जान

(श्लो० १२) खजाति खजविलोडने इत्यस्यधातोः। सद्भिषक् इत्यत्र तद्भिषक् इति वा पाठांतरम् ।

नेवाला वैद्य मंडलाग्र नाम शस्त्रसे मृत गर्भका छेदन करे क्यों कि वृद्धिपत्र (छुरी) की नोक तीक्ष्ण होती है इससे गर्भवतीकी आंतें आदि कटकर मरजानेकी शंका है (मंडलाग्रकी नोक अगाडीसे तीक्ष्ण नहीं होती है) ॥ १५ ॥

अपरानिकालना ।

अथापतंतीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक् । हस्तेनापहरेद्वापि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा ॥ १६ ॥ धुनुर्याच्च मुहुर्नारीं पीडयेद्वासपिंडिकाम् । तैलाक्ते योनेरेवं तां पातयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १७ ॥

यदि अपरा (जरायु ओल नाल) नहीं निकली हो तो उसे पूर्वोक्त (शारीरक स्थानकी १० अध्यायोक्त) विधिसे निकाले । अथवा हाथको तैल लगाकर हाथसे निकाल ले, या पसवाडोंको मले ॥ १६ ॥ और स्त्रीको हिलावे अथवा कंधोंको और पिंडलियोंको मले तथा योनिके तैल लगा देवे इन क्रियाओंसे वैद्य जरायु निकाल ले ॥ १७ ॥

गर्भ निकालनेके उत्तर क्रिया ।

एवं निर्हृतशल्यां तु सिंचेदुष्णेन वारिणा । ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् । एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ १८ ॥

इस प्रकार जब मृत गर्भ और अपरा निकल जावे तब गरम जलका सेचन करना और शरीरपर तैल मर्दन करना और योनिको भी तैलसे चुपडना चाहिये ऐसा करनेसे योनि कोमल (नरम) हो जाती है ओर शूल भी शांत हो जाती है ॥ १८ ॥

कृष्णतन्मूलशुंठ्येला हिंगुभार्गीसदीप्यका । वचामतिविषां रास्नां चव्यं संचूर्ण्य पाययेत् ॥ १९ ॥ स्नेहेन दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च । क्वाथं चैषां तथा कल्कं चूर्णं वा स्नेहवर्जितम् ॥ २० ॥ शाकत्वग्घिग्वतिविषापाठाकटुकरोहिणी॥ तथा तेजोवतीं चापि पाययेत्पूर्ववद्भिषक्॥ ॥ २१ ॥ त्रिरात्रं पंचसप्ताहं ततः स्नेहं पुनः पिबेत् । पाययेद्वासवं नक्तेमरिष्टं वा सुसंस्कृतम्॥ २२॥ शिरीषककुभाभ्यां च तोयमाचमने हितम्। उपद्रवाश्च येन्ये स्युस्तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ २३॥ सर्वतः परिशुद्धा च स्निग्धपथ्याल्पभोजना। स्नेहाभ्यंगपरा नित्यं भवेत्क्रोधविवर्जिता॥ २४॥

(श्लो० २१) अग्रिमश्लोकस्याद्यपदेन सहास्यान्वयः ।

पयो वातहरैः सिद्धं दशाहे भोजने हितम् । रसं दशाहं शेषे तु यथायोगमुपाचरेत् ॥ २५ ॥

पीपल पीपलामूल सोंठ बडी इलायची हींग भारंगी और अजमोद वच अतीस रास्ना और चव्य इन्हें चूर्ण करके (उष्णोदकमें) पिलावे ॥ १९ ॥ तथा दोषोंके निकलनेके लिये और पीडा दूर होनेको इन्हीं (उपरोक्त द्रव्यों) का काथ स्नेह युक्त पिलावे तथा इन्हींका कल्क करके देवे अथवा इन्हीका चूर्ण बिना स्नेहके देवे ॥ ॥ २० ॥ अथवा सागोनकी छाल हिंगु अतीस पाठा कुटकी और तेजबल इन्हें पूर्वोक्त रीतिसे पिलावे ॥ २१ ॥ उपरोक्त औषधें तीन दिन या पांच दिन या सात दिनतक पीवे फिर स्नेह (घृत) पान करे अथवा रात्रिको उचित आसव अथवा संस्कार किया अरिष्ट पिलावे ॥ २२ ॥ और शिरस और कुहाका काथ भी पीना हित है । तथा कोई प्रकारका उपद्रव (अतिसार शूल ज्वर आदि) हो तो उसकी यथायोग्य चिकित्सा करे ॥ २३ ॥ जब सब भांति शुद्ध होजावे तब स्निग्ध पथ्य और अल्प अन्न भोजन करे और नित्य शरीरपर तैल मर्दन करे तथा क्रोधसे रहित रहे ॥२४॥ तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुवा दुग्ध दशदिनतक भोजन करना उचित है और फिर दशदिन यथोचित मांसरसका उपयोग करे ॥ २५ ॥

शुद्धहोनेपरयथेष्ट आहारादिकी आज्ञा ।

व्युपद्रवां विशुद्धां च ज्ञात्वा च बलवर्णिनीम् ।
ऊर्द्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः विसृजेत् परिहारतः ॥ २६ ॥

जब उपद्रव रहित शुद्ध हुई जानी जावे और स्वस्थकासा बल और रूप हो और गर्भ निकालेको चार माससे ऊपर होजावें तब यथेष्ट आहार विहार करने देवे॥२६॥

बलातैल ।

योनिसंतर्पणेभ्यंगे पाने बस्तिषु भोजने । बलातैलमिदं वास्यै दद्यादनिलवारणम् ॥ २७ ॥ बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा ॥ २८ ॥ अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः । पचेदावाप्य मधुरं गणं सैंधवसंयुतम् ॥ २९ ॥ तथागुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च । मंजिष्ठां चंदनं कुष्टमेलां कालानुसारि

(श्लो० ३०) कालानुसारिवा इत्यत्र केचिदाचार्याः अस्मिन् तैले "क्षीरशुल्ककं" इति पठंति क्षीरशुल्ककं क्षीरविदारी (इति निबंधसंग्रहः) ।

वा॥ ३०॥ मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् । शतावरीमश्वगंधां शतपुष्पां पुनर्नवाम्॥ ३१॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मये पि वा । प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ ३२ ॥ बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् । यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ३३

योनिके संतर्पण और शरीरपर मलने पान करने तथा बस्ति कर्म और भोजनमें यह नीचे लिखा हुआ वायुनाशक बलातैल उक्त प्रसूता स्त्रीको उपयोग कराना चाहिये ॥ २७ ॥ इसे इस भांति बनावे कि बला (खरेंटी) की जडका क्काथ और दशमूलका क्काथ तथा जौ वेर और कुलथीका क्काथ तथा दूध ॥ २८ ॥ इन सबके आठ आठ भाग ले और एक भाग तिलका तेल लेवे और अग्निपर चढाकर पकावे इसमें मधुर गण (काकोल्यादिको) और सैंधा निमक मिलावे ॥ २९॥ तथा अगर, राल, सरलनिर्यास, देवदारु, मंजीठ, चंदन, कूट, इलायची, तगरभेद ॥ ३० ॥ जटामांसी शैलेय (शिलारस) पत्रज, तगर, सारिवा, वच, शतावरी असगंध, शतपुष्प (सोवा) और साँठी ॥ ३१ ॥ इन सबको तैलसे चतुर्थांश लेकर पीसकर पकते समय डाल दे जब ठीक पकके तैल मात्र रह जावे तब उसे सुवर्ण या चांदीके पात्रमें या चिकने मिट्टीके घडेमें भर कर अच्छे प्रकार मुह बांधकर रहने दे ॥ ३२ ॥ यह सब वातव्याधियोंका नाश करनेवाला तैल है इसे बलके अनुसार प्रसूता स्त्रीको देवे इससे सब प्रसूतकी उपाधियां दूर होवें ॥ ३३ ॥

बलातैलके गुण ।

या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् । वातक्षीणे मर्महते मथितेऽभिहते तथा ॥ ३४ ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते । एतदाक्षेपकादीन्वै वातव्याधीनपोहति ॥ ३५ ॥ हिक्कां कासमधीमंथं गुल्मं श्वासञ्च दुस्तरम्।षण्मासानुपयुज्यैतदंत्रवृद्धिमपोहति ॥ ३६॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः । राज्ञामेतद्धि कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः । सुखिनः सुकुमाराश्च धनिनश्चापि ये नराः ॥ ३७ ॥

जो स्त्री गर्भ धारण करनेकी इच्छा करे तथा जो क्षीणवीर्य पुरुषहो जो वायुसे क्षीण होगया हो जिसका मर्म घातित या मथित होगया हो या अन्यत्र चोट लगी हो इन सबको यह हितकारक है ॥ ३४ ॥ तथा भग्न श्रमसे थके हुयेको भी यह हितकारक है तथा आक्षेपकादिक वात व्याधियोंको भी यह नाश करता है ॥ ३५ ॥ हिक्का खांसी अधिमंथ गुल्म श्वासकी दुस्तर व्याधिको नष्ट करता है और छः महीने इसका

उपयोग करनेसे अंत्रवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ इसके सेवनसे पुरुष धातु पुष्ट और स्थिर यौवनवाला होजाता है यह राजोंको करना चाहिये तथा जो राजमात्र (दीवानवगैरह हैं उन्हें) सुखिया मनुष्योंको तथा सुकुमार (कोमल नाजुक) आदमियोंको और धनवालोंको भी करने योग्य है ॥ ३७ ॥

बलाकषायैःपीतेभ्यस्तिलेभ्यो वाप्यनेकशः। तैलमुत्पाद्य तत्काथशतपाककृतं शुभम् ॥ ३८॥ निर्वाते निभृतागारे प्रयुंजीत यथाबलम् । जीर्णेऽस्मिन् पयसा स्निग्धमश्नीयात् पिष्टकौदनम् ॥ ३९ ॥ अनेन विधिना द्रोणमुपयुज्यान्नमीरितम् । भुंजीत द्विगुणं कालं बलवर्णान्वितस्ततः ४० सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्तः शतायुः पुरुषो भवेत् । शतं शतं तथोत्कर्षो द्रोणे द्रोणे प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥

तिलोंको खरेंटीके क्काथकी कई (सात) भावना देकर तैल निकलवा ले फिर उस तैलको खरेंटीके क्काथमें सौवार पकावे ॥ ३८ ॥ इस तैलको निर्वात स्थानमें बलके अनुसार नित्य पान करे और तैल पक जावे जब स्निग्ध भातको दूधके संग खावे ॥ ३९ ॥ इस विधिसे द्रोणभर तैल पीवे और यथोक्त भोजन करता रहे इससे द्विगुण काल एक वर्ष सेवन करे तो यथाबल और रूप होजावे ॥ ४० ॥ सब दोष दूर होकर मनुष्य सौ वर्षकी अवस्थावाला हो जाता है और एक एक द्रोण बढ़नेसे एक एक सौ वर्षकी आयु बढ जाती है ॥ ४१ ॥

बलाकल्पेनातिबलागुडूच्यादित्यपर्णिषु । सैरेयके वीरतरौ शतावर्या त्रिकंटके ॥ ४२ ॥ तैलानि मधुके कुर्यात्प्रसारिण्यां च बुद्धिमान् । नीलोत्पलं वरीमूलं गव्ये क्षीरे विपाचयेत् ॥ ४३ ॥ शतपाकं ततस्तेन तिलतैलं पचेद्भिषक्। बलातैलस्य कल्कांस्तु सुपिष्टांस्तत्र दापयेत् ॥ ४४ ॥ सर्वेषामेव जानीयादुपयोगं चिकित्सकः । बलातैलवदेतेषां गुणांश्चैव विशेषतः ॥ ४५ ॥

इति चिकित्सितस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उपरोक्त बलातैलकीही विधिसे अतिबला गिलोय आदित्यपर्णी सैरेयक (कुरंट) वीरतरु (वेल्लतर) शतावरी और त्रिकंटक (गोखरू) ॥ ४२ ॥ मुलेठी और प्रसारणी इनके तैलभी बुद्धिमान् वैद्य बनावे (इनके गुण बलातैलके समानहीहैं)

(श्लो० ४०) द्विगुणं कालं षण्मासतो द्विगुणं कालं इति पूर्वोक्तषण्मासकालापेक्षया द्विगुणं इतिभावः ।

तथा नीलकमल और शतावरीको गौके दूधमें पकालेवे फिर इस दुग्धमें शतवार तिलतैल सिद्ध करे और बलातैलमें जो पीसकर डालनेकी औषधें कहीं उन्हें पीस-कर पकते समय डालदे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सबके उपयोगों तथा गुणोंकोभी विशेष करके वैद्य बलातैलके समान जाने ॥ ४५ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातो विद्रधीनां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाड़ी हम विद्रधियोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

वातविद्रधिमें आरंभिक यत्न ।

उक्ता विद्रधयः षड्ये तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः । शेषेष्वामेषु कर्तव्या त्वरितं शोफवत् क्रिया ॥ १ ॥ मुरंगीमूलकल्कैस्तु घृततैलवसायुतैः । सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥ सानूपौदकमांसस्तु काकोल्यादिः सतर्पणः । स्नेहाम्लसिद्धो लवणः प्रयोज्यश्चोपनाहने । ॥ ३ ॥ वेसवारैः सकृसरैः पयोभिः पायसैस्तथा । स्वेदयेत्सततं चापि निर्हरेच्चापि शोणितम् ॥ ४ ॥

जो छः प्रकारकी विद्रधि (फोडा या फुन्सी) पहले (निदानस्थानकी नवम अध्यायमें लक्षण सहित) वर्णन किये गये हैं उनमेंसे सर्व दोषजनित विद्रधि असाध्य होता है शेष जितने हैं उनमें उठतेही कच्ची अवस्थामें शोथकी भांति क्रिया करे ॥ १ ॥ मुरंगी (सोहँजने) की जडको पीस उसमें घृत तैल चरबी मिलाकर गरम करके वातविद्रधिके आरंभमें गाढा लेप करे ॥ २ ॥ जलके किनारे तथा जलके जीवोंके मांस और काकोल्यादि गणमें तर्पण द्रव्य मिलाकर तथा चिकनाई और अम्लसे सिद्ध किया हुआ लवण उपनाहन करना (बांध देना) ॥ ३ ॥ तथा वेसवार और खिचडीसे तथा दूध और खीरसे (गरम २ सेक कर) पसीना दिलावे (अर्थात् सेंके) तथा जलौका शृंगादिसे यथोचित रुधिर भी निकलवावे॥४॥

स चेदेवमुपक्रांतः पाकायाभिमुखो यदि । तं पाचयित्वा शस्त्रेण भिंद्या-द्भिन्नं च शोधयेत् ॥ ५ ॥ पंचमूलकषायेण प्रक्षाल्य लवणोत्तरैः ।

(श्लो० २) मुरंगी शोभांजनः बहुलो लेपः गाढः प्रलेपः ।
(श्लो० ३) सतर्पणः तर्पणद्रव्ययुतः ।

तैलैर्भद्रादिमधुकसंयुक्तैः प्रतिपूरयेत् ॥ ६ ॥ वैरेचनिकयुक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च । पृथक्पर्ण्यादिसिद्धेन त्रैवृतेन च रोपयेत् ॥ ७ ॥

उपरोक्त सब यत्न करने पर शांत न हो और पकाव पर आजावे तो फिर उसे पकाकर ही शस्त्रसे चीर दे (और यदि आपही फूट जावे तो शस्त्रकी आवश्यकता ही क्या) फूटे हुये तो शोधन करने चाहियें ॥ ५ ॥ पंचमूलके क्वाथसे धोकर भद्रदारु आदिसे मिश्रित लवणप्रधान ऐसे सिद्ध किये तैलसे व्रणको पूरण करना चाहिये ॥ ६ ॥ विरेचन द्रव्योंसे युक्त ऐसे त्रिवृता निशोथके तैलसे शोधन करके पृथक्पर्णी आदिकसे सिद्ध किये हुये त्रैवृत (घृत तैल वसा मज्जा इनसे मिश्रित) तैलसे रोपण करना चाहिये (त्रैवृत शब्दका अर्थ देखो पहले टिप्पणीमें वर्णन हो चुका है) ॥ ७ ॥

पित्तविद्रधिका यत्न ।

पैत्तिकं शर्करा लाजामधुकैः सारिवायुतैः । प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचंदनैः ॥ ८ ॥ पाक्यैः शीतकषायैर्वा क्षीरैरिक्षुरसैस्तथा । जीवनीयैर्घृतैर्वापि सेचयेच्छर्करायुतैः ॥ ९ ॥

पित्तविद्रधि हो तो शर्करा, मुलेटी, धानकी खील और सारिवा इन्हें दूधमें पीस कर लेप करे अथवा क्षीर काकोली खस और चंदन इनको दूधमें पीस लेप करे ॥ ॥ ८ ॥ पाक्य (क्वाथों) से या शीत कषायोंसे अथवा दूधसे ईखके रससे अथवा जीवनीय द्रव्योंके सिद्ध घृतसे शर्करा मिला मिलाकर पित्त विद्रधिके शोथको सेचन करे ॥ ९ ॥

त्रिवृद्धरीतकीनां च चूर्णं लिह्यान्मधुद्रवम् । जलौकोभिर्हरेच्चासृक् पंकं चापोह्य बुद्धिमान् ॥ १० ॥ क्षीरवृक्षकषायेण प्रक्षाल्योदकजेन वा । तिलैः सयष्टिमधुकैः सक्षौद्रैः सर्पिषा युतैः । उपदिह्य प्रतनुना वाससा वेष्टयेद्व्रणम् ॥ ११ ॥ प्रपौंडरीकमंजिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः । सहरिद्रैः कृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ॥ १२ ॥ क्षीरशुक्ला–पृथक्पर्णीसमंगालोध्रचंदनैः । न्यग्रोधादिप्रवालेषु तेषां त्वक्ष्वथ वा कृतम् ॥ १३ ॥

(श्लो० ९) पाक्यैरिति पाक्यं विडलवणं पांशुलवणं यवक्षारश्चेति शब्दस्तोमः, अन्येतु पाक्यः क्वाथः इत्याहुः ॥

(श्लो०१०) अस्य श्लोकस्य चतुर्थपदं अग्रिमेण मेलयित्वान्वयः कार्यः ॥

निसोथ और हरीतकी इनका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे तथा जलौंकें लगाकर रुधिर निकलवा देवे और इतना करनेपरभी जो पकजावे तो उसे फोडकर ॥ १० ॥ क्षीर वृक्षोंके काथसे अथवा कमलके काथसे धोकर तिल मुलेठी शहत और घृत सबको पीसकर लेप करदे (या लगादे) और बारीक कपडेसे व्रणको बांधदेवे ॥ ११॥ प्रपौंडरीक मंजीठ मुलेठी खस पद्माख और हरिद्रा इनसे सिद्ध किये हुवे घृतमें सिद्ध होते समय दुग्ध युक्त करें फिर इससे व्रणका रोपणकरें ॥ १२ ॥ अथवा क्षीरविदारी पृथक्पर्णी लज्जालू लोध और चंदन इन्हें लेकर वट आदिके पत्र तथा इन्हींकी त्वचासे सिद्ध किये घृतका उपयोग करें ॥ १३ ॥

करंजाद्यघृत ।

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च । सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ॥ १४ ॥ द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी । प्रियंगुः कुशमूलं च निचुलस्य त्वगेव च ॥ १५ ॥ मंजिष्ठा चंदनोशीरमुत्पलं सारिवा त्रिवृत् । एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १६ ॥

करंजके पत्ते और कच्चेफल तथा चमेलीके पत्ते और परवल और नींबके पत्ते ॥ ॥ १४ ॥ दोनों हलदी मोम मुलेठी कुटकी प्रियंगु कुशाकी जड जलवेतसकी छाल ॥ १५ ॥ मँजीठ चंदन खस कमल सारिवा निसोथ इन सबको एक एक कर्ष लेवे और एकप्रस्थ घृत सिद्धकर लेवे ॥ १६ ॥

इसके गुण ।

दुष्टव्रणप्रशमनं नाडीव्रणविशोधनम् । सद्यश्छिन्नव्रणानां च करंजाद्यमिदं शुभम् ॥ १७ ॥ दुष्टव्रणाश्च ये केचिद्ये चोत्सृष्टक्रिया व्रणाः । नाड्यो गंभीरिकायाश्च सद्यश्छिन्नास्तथैव च ॥ १८ ॥ अग्निक्षारकृताश्चैव ये व्रणा दारुणा अपि । करंजाद्येन हविषा प्रशाम्यंति न संशयः ॥ १९ ॥

यह उपरोक्त करंजादिक घृत दुष्टव्रणको शांत करता है नाडीव्रण (नासूर) को शुद्ध करता है और ताजा कटे हुवे घावोंको भी ठीक करता है (पकने नहीं देता) ॥ १७ ॥ जो कोई बिगडे हुवे व्रण हो जिन्हें (जर्राहोंने) क्रिया कर २ के त्याग दिया हो जो गंभीर नाडी (नासूर पडे) हो तथा ताजा कटे घाव हो॥१८॥ अग्निसे जलकर या तेजाबसे घाव पडगये हों और प्रकारके दारुण व्रण हो ये सब इस करंजाद्य घृतसे निःसंदेह अच्छे होजाते हैं ॥ १९ ॥

कफविद्रधिका यत्न।

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः। मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेत्कफविद्रधिम् ॥ २० ॥ कषायपानैर्वमनैरालेपैरुपनाहनैः। हरेद्दोषानभीक्ष्णं चाप्यलाब्वासृक् तथैव च ॥ २१ ॥ आरग्वधकषायेण पक्वं चोपाद्य धावयेत्। हरिद्रात्रिवृतासक्तुतिलैर्मधुसमायुतैः। पूरयित्वा व्रणं सम्यग्बध्नीयात् कीर्तितं यथा ॥ २२ ॥ ततः कुलत्थिकादंतीत्रिवृच्छ्यामार्कतिल्वकैः। कुर्यात्तैलं सगोमूत्रं हितं तत्र ससैंधवम् ॥ २३ ॥

यदि कफका विद्राधि हो तो उसे आरंभमें ईंट वालूरेता लोहा गोवर तुष और धूल तथा गोमूत्र इन्हें गरमकर करके स्वेद करावे ॥ २० ॥ तथा कफनाशक क्वाथ पीवे वमन करे कफघ्न लेप करे उपनाहन करे (गरम २ बांधे) इत्यादिसे शांत करे तथा तोमडीसे रुधिर भी निकलवावे ॥ २१ ॥ यदि इन यत्नोंसे शांत न हो और पके तो पकाकर फोड देना या छेदन करना चाहिये फिर उसे आरग्वध (किरमाले) के क्वाथसे धोना चाहिये फिर हलदी निसोथ सत्तू तिल और सहत इन्हें मिला इनसे व्रणपूरण करके पूर्वोक्त रीतिसे व्रणपर पट्टी बांध दे ॥ २२ ॥ फिर कुलथी दंती (एरंड) निसोथ श्यामा निसोथ आक लोध गोमूत्र और सैंधानमक इनसे तैल सिद्ध करे यह कफविद्रधियोंमें हित है ॥ २३ ॥

रक्तविद्रधि और आगंतुक विद्रधि।

पित्तविद्रधिवत्सर्वाः क्रिया निरवशेषतः।
विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागंतुनिमित्तयोः ॥ २४ ॥

रुधिरकी विद्राधि तथा आगंतुक (क्षतकी विद्रधि) में संपूर्ण क्रिया कुशल वैद्यको पित्तकी विद्रधिके समान करनी चाहिये ॥ २४ ॥

अंतर्विद्रधिका यत्न।

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यंतरोत्थिते। ऊषकादिप्रतीवापं पिबेद्विद्रधिशांतये ॥२५॥ अनयोर्वर्गयोः सिद्धं सर्पिर्वै रेचनेन च। अचिराद्विद्रधिं हंति प्रातःप्रातर्निषेवितम् ॥ २६ ॥ एभिरेव गणैश्चापि संसिद्धं स्नेहसंयुतम्। कार्यमास्थापनं क्षिप्रं तथैवाप्यनुवासनम् ॥ २७ ॥ पानालेप-

नैभोज्येषु मधुशिग्रुद्रुमोऽपि वा। दत्तावापो यथादोषमपक्कं हंति विद्रधिम् ॥ २८॥ तोयधान्याम्लमूत्रैस्तु पेयो वापि सुरादिभिः । यथा दोषगणं-क्वाथैः पिबेद्वापि शिलाजतु ॥ २९ ॥ प्रधानं गुग्गुलुं चापि शुंठी च सुरदारु च । स्नेहोपनाहौ कुर्याच्च सदा चाप्यनुलोमनम् ॥ ३० ॥

यदि अंतर्विद्रधि अपक्क हो तब वरुणादि गणके क्वाथमें ऊषकादिकका प्रतीवाप देकर पीवे इससे विद्रधि शांत होजावे ॥ २५ ॥ अथवा इन्हीं दोनों गणोंसे तथा विरेचन द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत प्रभात नित्य सेवन करनेसे शीघ्रही विद्रधिको नाश करदेता है ॥ २६ ॥ इन्ही गणोंसे स्नेह युक्त करके आस्थापन और अनुवासन बस्ति करना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा पीने लेपन और भोजनमें मीठा सुहँजना भी दोषोंके अनुसार औषधें मिलाकर सेवन करना अपक्क विद्रधिको शांत करदेता है ॥ ॥ २८ ॥ अथवा इसी मीठे सोहँजनेको जल धान्याम्ल गोमूत्र तथा मद्य आदिके संग पीना चाहिये । अथवा दोषके अनुसार औषधोंके क्वाथके संग शिलाजीत पीना चाहिये ॥ २९ ॥ अथवा प्रधान गुग्गुलु (भैंसा गूगल) सोंठ देवदारु इन्हें सेवन करे तथा स्नेह और उपनाह करे और सदा अनुलोमन करते रहैं ॥ ३० ॥

यथोद्दिष्टां शिरां विध्येत्कफजे विद्रधौ भिषक् । रक्तपित्तानिलोत्थेषु केचिद्बाहौ वदंति तु ॥ ३१ ॥ पक्कं वा बहिरुन्नद्धं भित्त्वा व्रणवदाचरेत् । स्रुतेषूर्द्ध्वं मधश्चापि मैरेयाम्लसुरासवैः ॥३२॥ पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुद्रुमोपि वा । शिग्रुमूलजले सिद्धं ससिद्धार्थकमोदनम् ॥ ३३ ॥ यवकोलकुलित्थानां यूषैर्भुञ्जीत मानवः । प्रातः प्रातश्च सेवेत मात्रया तैल्वकं घृतम् ॥ ३४ ॥ त्रिवृतादिगणक्वाथसिद्धं वाप्युपशांतये ॥ ३५ ॥ नोपगच्छेद्यथापाकं प्रयतेत तथा भिषक् । पर्य्यागते विद्रधौ तु सिद्धिनै कांतिकी स्मृता ॥ ३६ ॥

यदि कफकृत (अंतर्विद्रधि हो या बहिर्विद्रधि) हो तो यथोक्त शिरा वेधन करनी चाहिये और रक्त पित्त और वायुके विद्रधिमें भी हाथमें फस्त खोलना चाहिये

(श्लो० २९) अस्य पूर्वार्द्धम् "तोयधान्याम्लमूत्रैस्तुपेयोवापि सुरादिभिः" पूर्वोक्तेन सहान्वतव्यम्।पूर्वोक्त-मधुशिग्रुद्रुमः तोयादिभिः पेय इत्यर्थः इति (नि० सं०)।

(श्लो० ३०) प्रधानं गुग्गुलुं महिषाख्य इति ।

(श्लो० ३२) स्रुतेषूर्द्धमधश्चापीति निदाने "स्रुतेषूर्द्ध्वं न जीवतीति" कथनेपि चिकित्सामाह–मैरेयाम्ल सुरासवैः इत्यादिना ।

ऐसा कईयोंका मत है ॥ ३१ ॥ जो अंतर विद्रधि पकगया हो या बाहरको उभर आया हो तो उसे भेदन करके (भीतर हो तो औषधादिसे भेदन करना तथा बाहर उभरे हुएको शस्त्रसे भी भेदन कर सकते हैं) फिर व्रणका सा उपचार करे और ऊपरको मुखकी राह तथा नीचीको गुदालिंगकी राह रक्त पीव निकलता हो तो(यद्यपि ऊर्ध्व मार्गोंसे स्रवनेवाला अंतर विद्रधि असाध्य होता है तोभी) मैरेय नामक मद्य और धान्याम्ल तथा सुरा और आसवोंके संग ॥ ३२ ॥ वरुणादि गणका चूर्ण पीना चाहिये अथवा मीठे सोहँजनेका सेवन ऊपरोक्त मैरेयादिकोंके संग करना चाहिये अथवा सोहँजनेकी जडके जलमें पकाये हुवे भातमें सुपेद सरसों मिलाकर ॥३३॥ इन्हें जौ बेर तथा कुलथीके यूषके संग भोजन करे । अथवा नित्य सबेरे मात्राके अनुसार तिल्वक घृत (जो वातव्याधिमें कहा गया है) सेवन करे ॥ ३४ ॥ अथवा त्रिवृतादि गणके क्वाथसे सिद्ध किया घृत विद्रधि शांत होनेके लिये सेवन करे॥ ३५॥ वैद्यको जहांतक बने ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे अंतर विद्रधि पके नहीं और जो अंतर विद्रधि पक जावे तो उसके अच्छे होनेमें संशय होताहै ॥ ३६ ॥

मज्जाके विद्रधिका यत्न ।

प्रत्याख्याय तु कुर्वीत मज्जाजातं तु विद्रधिम् । स्नेहस्वेदोपपन्नानां कुर्याद्रक्तावसेचनम् ॥ ३७ ॥ विद्रध्युक्तां क्रियां कुर्यात्पक्के वास्थि तु भेदयेत् । निःशल्यमथ विज्ञाय कर्तव्यं व्रणशोधनम् ॥ ३८ ॥ धावेत्तिक्तकषायेण तिक्तं सर्पिस्तथा हितम् ॥ ३९॥ यदि मज्जापरिस्रावो न निवर्तेत देहिनः । कुर्यात्संशोधनीयानि कषायादीनि बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ प्रियंगुधातकीलोध्रं कट्फलं तिनिसैंधवम् । एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधिव्रणरोपणम् ॥ ४१ ॥

इति चिकित्सितस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यदि मज्जासे उत्पन्न हुवा विद्रधि होवे तो ऐसा कहकर (कि आराम हो भी और न भी हो) चिकित्सा करे उसे स्नेहन कराकर स्वेद दिलाकर रुधिर निकलवादे ॥३७॥ फिर विद्रधिमें जो क्रिया कही है वही क्रिया करे और पक्क हो जावे तब अस्थिको भी वेधन कर देना चाहिये जब जाने कि अस्थिके भीतरतकको दोष निकल गया तब उस व्रणका शोधन करे ॥ ३८ ॥ तिक्त (निंबादिक) द्रव्योंके क्वाथसे धोते रहे और तिक्तही घृतका उपयोग करना हित जाने ॥ ३९ ॥ और यदि मनुष्यके मज्जाका स्राव बंध न हो तो शोधन करनेवाले क्वाथ आदि बुद्धिमान्

वैद्यको बनाकर उपयोग करने चाहियें ॥ ४० ॥ प्रियंगु, धायके फूल, लोध, कायफल, तिनिश और सैंधानमक इनसे तैल पकावे यह तैल विद्रधिके व्रणके रोपण (घावभरने) के लिये (अच्छा है) ॥ ४१ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातोविसर्पनाडीस्तनरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी विसर्प नाडी (नासूर) और स्तनके रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

साध्या विसर्पास्त्रय आदितो ये न सन्निपातक्षतजौ हि साध्यौ ।
साध्येषु तत्पथ्यगणैर्विदध्याद्घृतानि सेकांश्च तथोपदेहान् ॥ १ ॥

विसर्प रोगके लक्षण भेद आदि सब पहले निदानस्थानमें वर्णन होचुके हैं उनमेंसे आदिके तीन वातविसर्प कफविसर्प ये साध्य हैं और सन्निपातका विसर्प तथा क्षतका विसर्प ये दो असाध्य हैं जिसमें साध्य विसर्पोंमें उनही दोषोंके अनुसार पथ्यगणोंसे घृत बनावे तथा सेचन करे और उपदेह (लेप) करे ॥ १ ॥

वातविसर्पका यत्न ।

मुस्ताशताह्वासुरदारुकुष्टं वाराहिकुस्तुंबुरुकृष्णगन्धा । वातात्मके चोष्णगणाः प्रयोज्याः सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥ २ ॥ यत्पंचमूलं खलु कंटकार्यमल्पं महच्चाप्यथ वल्लिजञ्च । तच्चोपयोज्यं भिषजा प्रदेहे सेके घृते चापि तथैव तैले ॥ ३ ॥

नागरमोथा, सोवा, देवदारु, कूट, वाराहीकंद, धनियाँ कृष्णगंधा (सोहँजना) तथा उष्णगण (भद्रदार्व्वादिक तथा पिप्पल्यादि) ये वातविसर्पमें सेचन करने लेप करने तथा घृत साधन करनेमें उपयुक्त करने चाहियें ॥ २ ॥ अथवा कंटक पंचमूल लघु पंचमूल बृहत्पंचमूल तथा वल्लिपंचमूल इन्हें वैद्य वातविसर्पीके प्रदेह (लेप) सेचन (धोने) तथा घृत या तैल बनानेमें उपयुक्त करे ॥ ३ ॥

(वक्तव्य) ये चारों पंचमूल सूत्र स्थानकी ३८ वीं अध्यायमें देखो ।

पित्तविसर्पका यत्न ।

कशेरुशृंगाटकपद्मगुन्द्राः सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च । वस्त्रांतराः पित्तकृते

(श्लो० ४) गुंद्रा इति गुंद्रा गुंद्रफला श्यामा इत्युक्ता गोंदीति प्रसिद्धा, डल्लनस्तु भद्रमुस्ता इत्याह ।

विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ४ ॥ ह्रीबेरलामज्जकचंदनानि स्रोतोजमुक्तामणिगैरिकाश्च । क्षीरेण पिष्टाः सघृताः सुशीता लेपाः प्रयोज्यास्तनवः सुखाय ॥ ५॥ प्रपौंडरीकं मधुकं पयस्या मंजिष्ठिका पद्मकचंदने च । सुगंधिका चेति सुखाय लेपाः पैत्ते विसर्पे भिषजा प्रयोज्याः ॥ ६ ॥ न्यग्रोधवर्गैः परिषेचनं च घृतं च कुर्यात्स्वरसेन तस्य । शीतैः पयोभिश्च मधूदकैश्च सशर्करैरिक्षुरसैश्च सेकान् ॥ ७ ॥

कसेरू सिंघाडे कमलगट्टा सिवाल और कमलके जडकी कीचडको पित्तके विसर्पपर पहले महीन कपडा रखकर ऊपरसे ये उपरोक्त औषधें घृतमें मिलाकर ठंढा २ लेप करे ॥ ४ ॥ अथवा नेत्रवाला खस और चंदन तथा स्रोतोज (स्रोतोंजन) मोती और मणि तथा गेरू इनको दूधमें पीस घृत मिलाकर ठंढा पतला लेप करे तो पित्त विसर्पमें सुख होवे ॥ ५ ॥ अथवा प्रपौंडरीक मुलेटी क्षीरविदारी मंजीठ पद्माख और चंदन सुगंधिका (उत्पलसारिवा) इनका लेप पित्तविसर्पमें सुखके लिये वैद्यको करना चाहिये ॥ ६ ॥ पित्त विसर्पमें न्यग्रोधादि गणसे परिसेचन करे और उसीके स्वरससे घृत सिद्ध करे और शीतल जलसे या मधुयुक्त जलसे या ईखके रसमें शर्करा मिलाकर परिषेक करे (कई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि ठंढे दुग्धमें शर्करा मिलाकर या मधूदकमें शर्करा मिलाके परिषेक करे) ॥ ७ ॥

गौर्यादिघृत ।

घृतस्य गौरीमधुकारविंदलोध्राम्बुराजादनगैरिकेषु । तथार्षभे पद्मकसारिवासु काकोलिमेदाकुमुदोत्पलेषु ॥ ८ ॥ सचंदनायां मधुशर्करायां द्राक्षा स्थिरापृश्निशताह्वयासु । कल्कीकृतासूदकमत्र दत्वा न्यग्रोधवर्गस्य तथा स्थिरादेः ॥९॥ गणस्य बिल्वादिकपंचमूल्याश्चतुर्गुणा क्षीरमथापि तद्वत् । प्रस्थं विपक्वं परिषेचनेन पैत्तीर्निहन्यात्तु विसर्पनाडीः ॥ १० ॥

गौरी (हलदी या गोरोचन) मुलेठी कमल लोध अंबु (नेत्रवाला) राजादन (खिरनी) गेरू ऋषभक कमलसारिवा काकोली मेदा कमोदनी कमल गट्टे ॥ ८ ॥

(श्लो० ५) लामज्जकं उशीरमूलमिति डल्हनः।स्रोतोजं सौवीरांजनं, तनवः सुखायेति तनुधान्योष्माणमंतः-प्रविशति इत्यर्थः । तथाचोक्तं श्रीवाग्भटेन । "श्लक्ष्णमुष्मधनोलेपश्चंदनस्यापि दाहकृत्" इति ।

(श्लो० ६) पयस्या क्षीरविदारी, जैज्जटाचार्यस्तु अर्कपुष्पीमाह ॥

(श्लो० ८) अंबु रास्ना इत्याह डल्लनः, तत्तुन युक्तं, अंबु नेत्रवाला तस्याः पित्तघ्नत्वात् ।

(श्लो० १०) प्रस्थंविपक्वमिति प्रस्थं घृतस्य योज्यमिति (नि० सं०) ।

चंदन मधुशर्करा दाख शालपर्णी पृश्निपर्णी सितावर इन सबको कल्क बनाकर और न्यग्रोधादि गणका क्राथ तथा सालपर्णी आदिकका क्राथ तथा बिल्वादिक पंचमूलका क्राथ चौगुना डालकर और चौगुना दूध डालकर प्रस्थभर घृत सिद्ध करे इसके परिषेचनसे पित्तका विसर्प तथा नाडी (नासूर) नष्ट होजाते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

इसके गुण ।

विसर्पदुष्टव्रणशीर्षरोगान्पाकं तथास्यस्य निहंति पानात् । ग्रहार्दिते शोषिणि चापि बाले घृतं हि गौर्यादिकमेतदिष्टम् ॥ ११ ॥

विसर्प दुष्ट व्रण शिरके रोग (गंजआदि तथा) मुखपाक तथा बालग्रहोंसे पीडित शुष्कबालकके रोग इनमें गौर्य्यादिक घृत पीना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

कफजविसर्पका यत्न ।

अजाश्वगंधा सरला सकाला सकेशिका चाप्यथ वाजशृंगी । गोमूत्रपिष्टो विहितः प्रदेहो हन्याद्विसर्पं कफजं च शीघ्रम् ॥ १२ ॥ कालानुसार्या-गुरुचोचगुंजारास्नावचाशीतशिवेन्द्रपर्ण्यः । पालिंदिमुंजातमही कदम्बा हिता विसर्पेषु कफात्मकेषु ॥ १३ ॥

अजगंधा अश्वगंधा निशोथ काला (पवाँड) केशिका (सतावर अजशृंगी (काकडासिंगी) इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरनेसे कफका विसर्प शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥ तगर अगर तज चिरमठी रास्ना वच शीतशिव (सोवा) इंद्रपर्णी (इंद्रायण) पालिंदि (कालवल्ली अथवा कुंदुरू) मुंजात (उत्तराद्रुम) और भूमिकदंब इनका उपयोग कफके विसर्पमें करना चाहिये ॥ १३ ॥

विसर्पकी सामान्य क्रिया ।

गणस्तु योज्यो वरुणप्रवृत्तः क्रियासु सर्वासु विचक्षणेन । संशो-

---

(श्लो० ११) गौर्यादिकं घृतं इत्यत्र गौरीशब्देन हरिद्रा बोध्या, तथाच गोरोचनापि । निबंधसंग्रेहेपि गौरी हरिद्रा गोरोचनेत्यन्ये इति व्याख्यातम् ।

(श्लो० १२) अजा अजगंधा, काला कासमर्दः,केशिका केशिका वा शतावरी।केशी जटावान् केशिन इव कायति प्रकाशते इति केशिका शतावरी इति शब्दस्तोमः। केषुचित्पुस्तकेषु मूर्द्धन्यषकारेण केषिका इति लिखितं तदयोग्यम् ।

(श्लो० १३) कालानुसार्या तगरं, चोचः त्वक्, शीतशिवं शतपुष्पाभेदः, इन्द्रपर्णी इंद्रवारुणी । गयदासेन इंद्रपुष्मी पठिता, इंद्रपुष्पी लांगलकी, पालिंदी कालवल्ली इति डल्लनः, शब्दस्तोमेतु पालिंदि कुंदुरुवृक्ष इति । मुञ्जात उत्तराद्रुमः स्वल्पकंटकः (इति नि० सं०)

धनं शोणितमोक्षणं च श्रेष्ठं विसर्पेषु चिकित्सितं हि । सर्वांश्च पक्वान् परिशोध्य धीमान् व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ १४ ॥

विसर्प रोगमें बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि आरंभमें सब क्रियाओंमें वरुणादिक गणकी योजना करे और शोधन द्रव्यों से शोधन (वमन विरेचनादिक) करे और शिरामोक्ष आदिसे रुधिर निकलवादे सामान्यतासे सब विसर्पोंमें यह चिकित्सा श्रेष्ठ है और पकजानेपर बुद्धिमान् व्रणोंको शोधन करे और व्रणके क्रमसे ही यथोक्त उपचार करे ॥ १४ ॥

अथ नाडीव्रण (नासूर) की चिकित्सा ।

वातनाडीव्रण ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः प्रतियत्नसाध्याः ॥ १५ ॥ तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्वमशेषतः पूयगतिं विदार्य । तिलैरपामार्गफलैश्च पिष्ट्वा ससैंधवैर्बंधनमत्र कुर्यात् ॥ १६ ॥ प्रक्षालने चापि सदा व्रणस्य योज्यं महद्यत्खलु पंचमूलम् । हिंस्रां हरिद्रां कटुकां बलां च गोजिह्विकां चापि सबिल्वमूलाम् । संहृत्य तैलं विपचेद्व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणं च ॥ १७ ॥

नाडीव्रण (नासूर) जो त्रिदोषसे उत्पन्न हो वह असाध्य है बाकी चार प्रकार-का नाडीव्रण यत्न करनेसे सिद्ध होसकता है ॥ १५ ॥ इनमें वातज नाडी (नाडी व्रण) को प्रथम उपनाहन कराकर पीव आनेके मार्ग चीरकर तिल चिरचिटेके बीज और किंचित् सैंधा निमक इन्हें पीसकर (ऊपर लगाकर) पट्टी बांध देनी चाहिये ॥ १६ ॥ और व्रणके धोनेके लिये बृहत्पंचमूलका क्वाथ उपयोग करना चाहिये और बालछड हलदी कुटकी खरेटी गोजिह्वा (गोभी, गाजुवा) तथा बिल्वकी जड इन सबको इकट्ठा करके इनसे तैल सिद्ध करे यह तैल नाडी व्रणके शोधन करने और पूरण करने (भरने) तथा रोपण (अंकुर लाने) में उपकारक है ॥ १७ ॥

पैत्तिक नाडीव्रण ।

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः । निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्तीयष्टयाह्वकल्कैः परिपूरयेत्ताम् ॥ १८ ॥ प्रक्षालने चापि ससोमनिम्बां निशां प्रयोज्यां कुशलेन नित्यम् ॥ १९ ॥ श्या-

मात्रिभंडीत्रिफलासु सिद्धं हरिद्रयो रोध्रकवृक्षयोश्च । घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि या स्यात् ॥ २० ॥

पित्त जनित नाडी व्रणको प्रथम बुद्धिमान् वैद्य दूध और घृतसे मिली हुई उत्कारिका (पुलटस) बांध बांधके उपनाहन करे फिर शस्त्रसे चीरकर तिल नागदंती और मुलेठी इनका कल्क बनाकर उससे परिपूरण करे ॥ १८ ॥ तथा नित्य सोमलता निंब और हलदीके क्वाथसे धोते रहे ॥ १९ ॥ और काली निसोथ सपेद निसोथ त्रिफला और दोनों हलदी लोध और कुडा इनसे घृत सिद्ध करे तथा सिद्ध होते समय दुग्ध भी मिलावे यह घृत व्रणको तृप्त करके गति (नासूरकी पीब) को नष्ट कर देता है यहांतक कि कोष्ठगत नासूरको भी अच्छा कर देता है ॥ २० ॥

श्लैष्मिक नाडीव्रण ।

नाडीं कफोत्थामुपनाह्य सम्यक् कुलत्थसिद्धार्थकसक्तुकिण्वैः । मृदूकृतामेष्य गतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारी ॥ २१ ॥ दद्याद्व्रणे निंबतिलान्सुपिष्टान्सुराष्ट्रजासैंधवसंप्रयुक्तान् । प्रक्षालने चापि करंज निंबजात्यक्षपीलूस्वरसाः प्रयोज्याः ॥ २२ ॥ सुवर्चिका सैंधव चित्रकेषु निकुंभतालीतलरूपिकासु । फलेष्वपामार्गभवेषु चैव कुर्यात्समूत्रेषु हितार्थं तैलम् ॥ २३ ॥

कफज नाडीमें कुलथी सुपेद सरसों सत्तू और नींबसे उपनाहन करके नरम करके गतिको देखकर सब जगह शस्त्रसे चीर दे ॥ २१ ॥ फिर व्रणपर निंब और तिल पीसकर फटकडी थोडा सैंधानमक मिलाकर लगा दे और करंज निंब और चमेली, बहेडा और पीलू इनके स्वरस (या क्वाथ) से धोते रहे ॥ २२ ॥ और सज्जी सैंधानिमक चित्रक और दंती तालीतल भूआवलकी जड सुपेद आक और चिरचिटेके बीज इनमें गोमूत्र मिलाकर तैल सिद्ध करे यह तैल कफज नाडीव्रणमें हित है ॥ २३ ॥

शल्यदूषित नाडीव्रण ।

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निर्हृत्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् । संशोधयेत्क्षौ-

---

(श्लो० २१) अशेषकारी निःशेषकार्यकर्ता वैद्यः ।

(श्लो० २३) तालीतलं भूम्यामलकमूलम् (इति डल्लनः) तालीनल इतिवापाठांतरम् । तत्र ताली भूम्यामलकी नलः स्वनामा नरसल इति, रूपिका श्वेतार्कः ।

द्रवृतप्रगाढैस्तिलैस्ततो रोपणमस्य कुर्यात् ॥ २४ ॥ कुंभीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शैलाटुवर्गे । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमवाप्य मुस्तासरलाप्रियंगूः ॥ २५ ॥ सुगंधिकामोचरसाहिपुष्पं रोध्रं विदध्यादपि धातकीं च । एतेन शल्यप्रभवा च नाडी रोहेद्व्रणो वा सुखमाशु चैव ॥ २६ ॥

यदि शल्यदोषसे नाडीव्रण होतो उसे चीरकर शल्य जहां हो वहांसे निकालकर मार्गको शुद्ध करके और शहत वृतसे मिले हुवे तिल पीसकर उसपर लगावे जिससे व्रणभी शुद्ध होजावे फिर उसे रोपण करे ॥ २४ ॥ कुंभीक (पुन्नाग) खजूर कैथ बिल्व तथा वनस्पति (पिप्पलादि) इनके कच्चे फलोंका क्वाथ करके तैल पकावे और उसमें नागर मोथा, निसोथ, प्रियंगु, तथा सुगंधिका (उत्पल सारिवा) मोचरस नागकेसर लोध पीसकर डालदे और धायके फूलभी डालदे इस तैलसे शल्यकृत नाडीव्रण शीघ्रही अंकुरित होजाते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रिता च या । क्षारसूत्रेण तां छिंद्यान्नतु शस्त्रेण बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् । सूचीं निदध्याद्गत्यंते तथोन्नम्याशु निर्हरेत् ॥ २८ ॥ सूत्रस्यांतं समानीय गाढं बंधं समाचरेत् । ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ॥ २९ ॥ क्षाराक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः । भगंदरेप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३० ॥

कृश दुर्बल और डरपोक मनुष्योंके नाडीव्रण हो तथा मर्मस्थानमें नाडीव्रण हो तो उसे डोरेके तेजाब लगाकर उससे छेदन करे बुद्धिमान् वैद्य शस्त्रसे नहीं चीरे॥ ॥ २७ ॥ सलाईसे उसकी गति देखकर तेजाब लगा डोरा सूईमें पिरोकर उस-गतिके अनुसार सूई प्रवेश करे फिर गतिके अंतमेंसे सूईको उभारकर निकाल ले ॥ ॥ २८ ॥ और डोरेके दोनों सिरे बांध दे यदि एकबार दिये डोरेसे चीरा न लगे तो दूसरा डोरा क्षार (तेजाब) में भिगोकर उसे फिर प्रवेश करे जबतक गतिका जितना चीर न जावे तबतक क्षारका डोरा प्रविष्ट करते रहे और भगंदरमें भी जानकर वैद्यको ऐसाही करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

(श्लो० २५) वनस्पतीनामिति वनस्पतयः पुष्पेन विना जायमानफला अश्वत्थादयः (इति श०रतो०)

अर्बुदादिमें क्षारसूत्रबंधन ।

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् । सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समंततः । मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३१ ॥

यदि अर्बुदादिक (रसोली मस इत्यादिक) हों तो उन्हें ऊपरको उठाकर उनकी जड उसी क्षार (तेजाब) के सूत्रसे बांधदेवें अथवा जौ केसे मुखवाली सूईसे चारों तरफ जरा२ गोदकर जडमें क्षार सूत्र बांधदे और जब वह इस सूत्रसे कट जावे तब व्रणकासा उपचार करे ॥ ३१ ॥

(वक्तव्य) क्षारसे कई यवक्षार अर्थ लेते हैं और डल्लनमिश्रने भी यवक्षार ही लिखा है पर क्षारपाकविधि (सूत्रस्थानकी ११ वीं अध्यायमें) देखो क्षार विधान लिखा है ॥

वर्तिविधान ।

यो द्विव्रणीयेऽभिहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् । घोंटाफलत्वग्लवणानि लाक्षा पूगीफलं चालवणं च पत्रम् ॥ ३२ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धेन तु कल्क एषे वर्तीकृतो हंत्यचिरेण नाडीः । बिभीतकाम्रास्थिवटप्रवाला हरेणुकाशंखिनिबीजमिश्रा । वाराहिकंदश्च तथा प्रदेयो नाडीषु तैलेन च मिश्रयित्वा ॥ ३३ ॥

जो जो द्विव्रणीय चिकित्साध्यायमें वर्ति (वत्ती) लिखी हैं उन सबको वैद्य नाडीव्रणके काममें भी ला सकता है तथा घोंटाफल (वेरी) की छाल और नमक और लाख सुपारी अलवण (काकमर्दनिका) तथा पत्रज ॥ ३२ ॥ इन सबको थोहर और आकके दूधमें पीसकर वत्ती बनावे यह बत्ती शीघ्रही नाडी व्रणको नष्टकर देती है अथवा बहेडा आम्रकी गुठली बडके नये पत्र हरेणु शंखिनी(यवतिक्ता) के बीज मिला तथा वाराहीकंद इन्हें जलाकर तैल मिलाकर नाडीव्रणमें उपयोग करे (कई वराहबिट् जलाके ऐसा पाठ और अर्थ कहते हैं) ॥ ३३ ॥

(श्लो० ३२) अलवणा काकमर्दनिका तस्याः पत्रं अलवणं इति (नि.सं.) ।

(श्लो० ३३) वाराहकंद इत्यत्र 'वाराहविट्सूक्ष्ममसी प्रदेया' इति पाठांतरं वाग्भट्टेन । भावमिश्रेणापिचांगी.कृतम् । तदुक्तं भावप्रकाशे "बिभीतकाम्रास्थिवटप्रवालहरेणुकाशंखिनिबीजमिश्रा । वाराहविट्सूक्ष्ममसी प्रदेया नाडीषु तैलेन विमिश्रयित्वा" इति ।

नाडीव्रणके अन्ययत्न ।

धत्तूरजं मदनकोद्रवजं च बीजं कोशातकी शुकनसा मृगभोजनी च । अंकोटबीजकुसुमं गतिषु प्रयोज्यं लाक्षोदकाहृतमलासु विकृत्य चूर्णम् ॥ ३४ ॥ चूर्णीकृतैरथ विमिश्रितमेभिरेव तैलंप्रयुक्तमचिरेण गतिं निर्हन्ति । एष्वेव मूत्रसहितेषु विधाय तैलं तत्साधितं गतिमपोहति सप्तरात्रात् ॥ ३५ ॥

धतूरेके बीज मैनफल कोदोंके बीज कटु तोरई अरलू इंद्रायण अंकोटके बीज तथा कुसुम इन सबका चूर्ण करके इनमें तैल मिलाकर गति (नासूर) में लगावे पर पहले लाखके जलसे व्रणकी गतिको शुद्ध कर ले इससे शीघ्रही गति (नासूर) नष्ट होजाता है ॥ तथा इन्हीं उपरोक्त धतूर बीजादिकको गोमूत्र युक्त करके इनसे तैल सिद्धकर ले यह तैल साधन किया हुवा सातही दिनमें नासूरको अच्छाकर देता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

पिंडीतकस्य तु वराहविभावितस्य मूलेषु कंदशकलेषु च सौवहेषु । तैलं कृतं गतिमपोहति शीघ्रमेतद् कंदेषु चामरवरायुधसाह्वयेषु ॥ ३६ ॥ भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडंगरजनीद्वयचित्रकेन । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहंति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ ३७॥

वराह विभावित पिंडीतक (कालेमैन फल) की जड़ तथा सौवह (गंधना) कंदके टुकडे तथा अमरवर इंद्र उसका आयुध वज्र वही है नाम जिसका अर्थात् वज्रकंद इनसे सिद्ध किया हुवा तैल शीघ्रही नासूरकी गतिको अच्छाकर देता है ॥ ३६॥ भिलावे आक स्याह मिरच सैंधानिमक विडंग दोनों हलदी चित्रक इन्हें भृंगराजके रस युक्तके उसमें तैल सिद्ध करे यह तैल नाडीव्रण तथा कफ और वायुकी अपची तथा व्रणोंको नष्टकर देताहै ॥ ३७ ॥

(श्लो० ३४ । ३५) धत्तूरजं धत्तूरबीजं, चूर्णं विकृत्य चूर्णीकृतैः एभिः प्रयुक्तं तैलं गतिं निहंतीत्यर्थः । तथाच एष्वेव मूत्रसहितेषु तैलं विधाय तत् साधितं तैलं गतिमपि हंतीति, ।

(श्लो० ३६ । ३७) वराहविभावितस्य पिंडीतकस्य कृष्णमदनकस्य वाराहविभावितस्य इत्यत्र वराह विभापितस्य इति वापाठांतरं मन्यंते,तदपि समीचीनं,वराहनाम्ना भाषितः पिंडीतकः कृष्णपिंडीतकः तस्य मूलेषु, सौवहेषु कंदशकलेषु इति, सुवहा गंधना इतिडल्हनः।अन्येतु रास्नामाहुः। तस्याः कंदखंडेषु अमरवरायुधसाह्वयेषु कंदेषु इति अमरवरः इंद्रः तस्य आयुधं वज्रः तस्य साह्वयः वज्रकंदः, मार्कवः भृंगराजः ।

स्तनरोगचिकित्सा ।

स्तन्ये गते विकृतिमाशु भिषक् तु धात्रीं पीतां घृतं परिणतेहनि वामयेत्तु। निंबोदकेन मधुमागधिकायुतेन वांतागतेहनि च मुद्गरसाशना स्यात् ॥ ॥ ३८ ॥ एवं त्र्यहं चतुरहं षडहं वमेद्वा सर्पिः पिबेत्त्रिफलया सह संयुतं वा । भार्गीं वचामतिविषां सुरदारुपाठां मुस्तादिकं मधुरसां कटुरोहिणीं च ॥ ३९ ॥ धात्रीं पिबेत्तु पयसः परिशोधनार्थमारग्वधादिषु वरं मधुना कषायम् । सामान्यमेतदुपदिष्टमतो विशेषाद्दोषान्पयोनिपतितांश्छमयेद्यथार्स्वम् ॥ ४० ॥

यदि स्त्रीके दूधमें विकार हो तो वैद्य उस धात्री (स्त्री) को घृत पिलाकर दिन समाप्त होनेपर नींबके क्वाथमें शहत और पीपल मिलाकर इससे वमन करावे और वमनके पीछे दिन केवल मूंगका रस खानेको दे ॥ ३८ ॥ इस भांति तीन दिन चार दिन या छः दिन वमन करावे फिर त्रिफला संयुक्त घृतका पान करावे अथवा भारंगी वच अतीस देवदारु पाट और मुस्तादिक गणके द्रव तथा मधुरसा (मूर्वा) और कुटकी इन्हें पीवे ॥ ३९ ॥ अथवा दूधकी शुद्धिके लिये आरग्वधादि गणका क्वाथ शहद मिलाकर धात्री पीवे तो श्रेष्ठ है यह सामान्यतासे दूषित दुग्धकी शुद्धिके लिये कहा है विशेषतासे दूधमें जो विकार हो या स्तनमें कोई रोग हो तो उनका यथायोग्य प्रतीकार करे ॥ ३९ ॥

रोगं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्विद्रधावभिहितं बहुशो विधानम् । संपच्यमानमपि तं तु विनोपनाहैः संभोजनेन खलु पाचयितुं यतेत।शीघ्रं स्तनो हि मृदुमांसतयोपनद्धः सर्वं प्रकोप मुपयात्यवदीर्यते च ॥ ४१ ॥

यदि स्तन (कुचों) में कोई रोग फोडा आदि हो तो उसके उठतेही वैद्य विचार कर जो विद्रधिके विधानमें बहुतसे यत्न लिखे हैं उनमेंसे जो जो उचित हों सो करे और जो पकावपर आते देखे तो उसे उपनाहन नहीं करे (गरम तीक्ष्ण वस्तु बांधकर पसीना नहीं दिलावे) केवल खानेके साधारण योगोंहीसे पकावे क्योंकि स्तनोंका मांस कोमल होता है वह उपनाहन करनेसे सबका सब उबलकर पक जाता है और फट जाता है ॥ ४१ ॥

(श्लो० ३८) परिणतेहनि इत्यत्र डल्लनमतेतु सायंकाले तद्दिने एव परंतु, तन्नेच्छति गयी, स्निग्धाय वमननिषेधात् तस्मात्, परिणतेहनि घृतपानस्य परिपाकांतेहनि इति तात्पर्यार्थः, वांतागतेहनि वमनदिवसे।

(श्लो० ४१) प्रकोपमुपयातीत्यत्र प्रकोथमुपयातीति वा पाटांतरम् । प्रकोथं कुथितभावम् ।

पक्के च दुग्धहारिणीः परिहृत्य नाडीः कृष्णं च चूचुकयुगं विदधीत शस्त्रम्। आमे विदाहिनि तथैव गते च पाकं धात्र्याः स्तनौ सततमेव च निर्दहीत ॥ ४२ ॥

इति चिकित्सितस्थानेसप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥

जब स्तनका विद्रधि आदि पकजावे तब दुग्धवाहिनी नाडियों तथा कृष्ण मंडलोंको छोडकर शस्त्रपात करना चाहिये और कच्चे पनमें यदि दाह हो तथा पकगयेहों तो धात्रीकेस्तनों को (दुग्ध निकालकर आवश्यकता पडे तो) अग्निसे दाग लगादे अथवा निर्दिहीत ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ करे कि लेप करदे सोई युक्त है ॥ ४२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने सप्तदशोध्यायः ॥ १७ ॥

परिशिष्ट ।

भावमिश्रने स्तनरोग (शोथ फोडा आदि) में इसप्रकार लिखाहै ।

पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत् । जलौकाभिर्हरेद्रक्तं नस्तनावुपनाहयेत् ॥ १ ॥ लेपो विशालामूलेन हंति पीडां स्तनोत्थिताम् । निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ २॥ लेपो निहंति मूलं वंध्याकर्कोटिकाभवं शीघ्रम् । निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र॥ ३॥

स्तनोंमें फोडा आदि उठे तो उसपर पित्तनाशक शीतल द्रव्योंका उपयोग करे और रुधिर निकालनेकी आवश्यकता हो तो जलौका लगाकर रक्त निकलवावे परंतु स्तनोंके उपनाहन स्वेद नहीं करे ॥ १ ॥ और इंद्रायणकी जड पीसकर लेप करनेसे स्तनकी पीडा शांत होजाती है अथवा हलदी धतूरेके पत्ते इन्हें पीसकर लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा नष्ट होजाती है ॥ २ ॥ अथवा वंध्यककोडीकी जडका लेपभी स्तन पीडाको नाश करताहै और लोहेको गरम लालकरके जलमें बुझाकर उसे पीवे यहभी स्तनरोगमें हितकारक है ॥ ३ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रंथ्यपच्यर्बुदगलगंडचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी ग्रंथी अपची अर्बुद और गलगंडकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

(श्लो० ४२) निर्दहीत इत्यत्र निर्दिहीत इति वा पाठांतरम् निर्दिहीत लेपनं कुर्यादित्यर्थः । तत्तु युक्तमेव दिह लेपने इत्यस्य धातोः ।

ग्रन्थि रोगमें आरंभिक यत्न ।

ग्रंथिष्ववथामेषु भिषक् विदध्याच्छोफक्रियायां विहितं विधिज्ञः । रक्षेद्बलं चापि नरस्य नित्यं तद्रक्षितं व्याधिबलं निहंति ॥ १ ॥ तैलं पिबेत्सर्पिरथो द्वयं वा दत्वा वसां वा त्रिवृतं विदध्यात् । अपेहिवाता-दशमूलसिद्धं वैद्येश्चतुःस्नेहमथो द्वयं वा ॥ २ ॥

ग्रंथी रोग जबतक पकाव पर नहीं आवे तबतक वैद्यको उसपर शोथकी क्रिय करनी चाहिये तथा रोगीके बलकी भी नित्य रक्षा रखनी चाहिये ऐसा न हो कि रोगी निर्बल हो जावे क्योंकि रोगीके बलकी रक्षा रहनेसे व्याधिका बल नष्ट होता है ॥ १ ॥ ग्रंथियां उत्पन्न होने लगें तब दोषके अनुसार तैल या घृत पान करना चाहिये अथवा दोनों पीने चाहियें अथवा चरबी मिलाकर त्रिवृत बना ले अथवा अपेहिवाता (प्रसारणी) और दशमूलसे सिद्ध किये हुये चतुः स्नेह तैल घृत वसा मज्जा इन चारोंको मिलाकर पीवे अथवा कोईसे दो सिद्ध करके पीवे ॥ २ ॥

वातग्रंथिकी चिकित्सा ।

हिंस्राथ रोहिण्यमृताथ भार्ङ्गी श्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगंधा । गोजी च पिष्ट्वा सह तालपत्र्या ग्रंथौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ३ ॥ स्वेदोपनाहान्विविधांश्च कुर्यात्तथा प्रसिद्धानपरांश्च लेपान् । विदार्य वा पक्वमपोह्य पूयं प्रक्षाल्य बिल्वार्कनरेन्द्रतोयैः ॥ ४ ॥ तिलैः सपंचांगुलपत्रमिश्रैः संशोधयेत्सैंधवसंप्रयुक्तैः । शुद्धं व्रणं वाप्युपरोपयेयुस्तैलेर्न रास्नासरलान्वितेन । विडंगयष्टीमधुकामृताभिः सिद्धेन वा क्षीरसमन्वितेन ॥ ५ ॥

बालछड हरीतकी गिलोय भारंगी अरलू बिल्व अगर कृष्णगंधा (सोहँजना) गोजी (गोजिह्वा अर्थात् गाजुवां) इनमें तालपत्री मिलाकर पीस ले और वायुजनित ग्रंथिपर लेपकरे ॥ ३ ॥ तथा स्वेद और उपनाह जो प्रसिद्ध हैं वे भी करें और दूसरेभी करे इसी भांति लेपभी करे यदि वह ग्रंथि पकजावे तो उसे चीरकर उसका पीव निकालकर बिल्व आक और किरमालाके क्वाथसे धोवे ॥ ४ ॥ फिर तिल

(श्लो० २) त्रिवृतं त्रिभिस्तैलसर्पिर्वसाभिर्वृतः व्याप्तः त्रिवृतः तंत्रिवृतम् (इति नि. सं.) अपेहिवाता प्रसरिणी (इति डल्लनः) घृततैलवसामज्जायुतश्चतुः स्नेहः इति ॥

(श्लो० ३) हिंस्रा जटामांसी बालछड इतिलोके, कृष्णगंधा सोभांजनः, (निघं. रत्नाकरः)

और अरंडको पीस नमक मिला व्रणपर बांध दे इससे व्रणशुद्ध होजाताहै फिर शुद्ध होजानेपर रास्ना और निसोथके सिद्ध तैलसे व्रणका रोपण करे । अथवा विडंग मुलेठी गिलोय और दूध इनमें सिद्ध किये हुवे तैलसे रोपण करे ॥ ५ ॥

पित्तजग्रंथिकायत्न ।

जलौकसः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च । काकोलिवर्गस्य च शीतलानि पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥ ६ ॥ द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि चूर्णं पिबेच्चापि हरीतकीनाम् । मधूकजंब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेत ॥ ७ ॥ सशर्करैर्वा तृणशून्यकंदैर्दिह्यादभीक्ष्णं मुचुकुंदजैर्वा । विदार्य वा पक्वमपोह्य पूयं धावेत्कषायेण वनस्पतीनाम् ॥ ८ ॥ तिलैः सयष्टीमधुकैर्विशोध्य सर्पिः प्रयोज्यं मधुरैर्विपक्वम् ॥ ९ ॥

पित्तकी ग्रंथिमें जलौका लगाकर रुधिर निकलवाना हितहै तथा दूध और पानी मिलाकर (लहस्सीसे) परिसेचन करना और काकोल्यादिगणका शीतल क्वाथ शर्करा युक्त करके पीना ॥ ६ ॥ अथवा बडी हरडेका चूर्ण दाखके रस या ईखके रसके संग पीवे तथा महुवा जामुन कुहा और जलबेतस इनकी अंतर छाल पीसकर लेप करे ॥ ७ ॥ अथवा तृणशून्य (केतकी) का कंद और शर्करा मिलाकर लेप करे या मुचकुंदके फूल पीसकर लेप करे और जो पकजावे तो चीरा लगाकर पीव निकालदे और वनस्पति (वडपीपलगूलर इन) के क्वाथसे धोवे ॥ ८ ॥ और तिल मुलेठी पीसकर व्रणपर लगाकर शुद्धकरे फिर मधुर गण (काकोल्यादि) से सिद्ध किया हुवा घृत उपयोग करे इस घृतसे पित्त ग्रंथिका व्रण भरकर अंकुरित होजाताहै ॥ ९ ॥

कफग्रंथिका यत्न ।

हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रंथौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते तु । स्विन्नस्य विम्लापनमेव कुर्यादंगुष्ठलोहोपलवेणुदंडैः ॥ १० ॥ विकंकतारग्वधकाकणंतीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः । आलेपयेत्पिंडफलार्कभार्गीकरंजकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ११ ॥

(श्लो० ८) तृणशून्यकन्दैः केतकीमूलैः इतिडल्लनः । वनस्पतीनां वटप्लक्षपिप्पलोदुंबराणाम्, वनस्पतयः पुष्पंविना जायमानफलाः अश्वत्थादयइति शब्दस्तोमः ।

(श्लो० ९) मधुरैर्विपक्वं मधुरैः काकोल्यादिभिः ।

(श्लो० ११) विकंकतः डल्लनमतेतु कंटकारिका । वाचस्पत्ये तु विकंकतः बइंचीवृक्षः अतिबला च इति । पिंडफला तिक्तालाबु ।

यदि कफकी ग्रंथि हो तो यथायोग्य वमनादिकसे दोष हरण करके स्वेद दिलाके (ग्रंथिको) चतुर वैद्य अंगूठेसे या लोहकी वस्तुसे या पत्थरसे या बांसकी पोरीसे दबा दबा मसल मसल कर विम्लापन करदें (जिससे ग्रंथी बैठजावे) ॥ १० ॥ विकंकट (बइंची) किरमाला काकनंती (चिरमठी) काकादनी (काकशिंबी) तापस (हिंगोट) की जड पिंडफला (कडवीघीया आक भारंगी करंज काला (कृष्ण त्रिवृता) और मैनफल इनका लेप करे ॥ ११ ॥

अमर्मजातं शमेमप्रयातमपक्कमेवापहरेद्विदार्य । दहेत्स्थिते वासृजि सिद्धकर्मा सद्यः क्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥ १२ ॥ ये मांसकंदाः कठिना बृहंतस्तेष्वेव योज्यश्च विधिर्विधिज्ञैः । शस्त्रेण वापाद्य सुपक्कमाशु प्रक्षालयेत् पथ्यतमैः कषायैः ॥ १३ ॥ संशोधनैस्तं च विशोधयेयुः क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः । शुद्धं च तैलं त्ववचारणीयं विडंगपाठारजनीविपक्कम् ॥ १४ ॥

जो ग्रंथि मर्मस्थानोंके सिवाय अन्यत्र हो और शांत नहो अर्थात् ठैरगई हो पकती नहो तो उसे विना पकीहीको चीरकर साफ करदे और जो रुधिरमें स्थित हो तो उसे अग्निसे सिद्धकर्मा वैद्य जला देवे और सद्योव्रणके विधानोक्त क्रिया करे॥१२॥ जो मांसके बडे गठूले हों तौभी उनमें विधिज्ञ वैद्य यही क्रिया करे अर्थात् अग्निसे जलादे अथवा उसे पकाकर शस्त्रसे चीरदे और पथ्य द्रव्योंके क्वाथसे धोवे॥१३॥ और शोधनद्रव्योंसे जिनमें क्षार मिला हो और शहत और घृत युक्त हो उनसे शोधन करे और जब शुद्ध होजावे तब विडंग पाठा और हलदीसे पकायाहुवा तैल उपयुक्त करे (इस तैलसे व्रण रोपण होता है) ॥ १४ ॥

मेदोज ग्रंथिका यत्न ।

मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धं दत्वोपरिष्टाद्द्विगुणं पटांतम् । हुताशतप्तेन मुहुः प्रमृज्याल्लोहेन धीमान् दहनं हिताय ॥ १५ ॥ प्रलिप्य दार्वीमथ लाक्षया वा प्रतप्तया स्वेदनमस्य कार्यम् । निपात्य वा शस्त्रमपोह्य मेदो दहेत्सुपक्वं त्वथवा विदार्यम् ॥ १६ ॥ प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः सुवर्चिकाद्यैर्हरितालमिश्रैः । ससैंधवैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः क्षारो-

(श्लो० १५।१६) अत्र वृद्धवाग्भटोप्याह मेदोग्रंथितिलकल्क दिग्धं द्विगुणपटांतारितं तप्तेन फालेन दार्व्यावा जतुप्रलिप्तया बहुशः प्रमृष्यते इति ।

त्तरेनमभिप्रशोध्यं ॥ १७ ॥ तैलं विदध्याद्धिकरंजगुजावंशावलेखंगुद-
मूत्रसिद्धम् ॥ १८ ॥

मेदकी ग्रंथि होतो उसपर तिल पीसकर लेप कर दे और ऊपरसे दोहरा कपडे-
की पट्टी बांध दे फिर लोहा गरम करके बुद्धिमान् वैद्य उसपर फेरे और दग्ध कर दे
॥ १५ ॥ अथवा लकडीको गरम लाख लगाकर उससे सेके (दग्धकरे) अथवा
शस्त्रसे चीरा लगाकर भेदको निकालकर दग्ध करदे अथवा पकाकर पाक जाने
पर शस्त्रसे चीरदे ॥ १६ ॥ और व्रणको गोमूत्रसे धोवे फिर तिलोंको पीसकर
उनमें सज्जीखार हरताल सैंधानमक शहत और घृत मिलावे और जवाखार कुछ
अधिक मिलावे और इनसे शोधन करे ॥ १७ ॥ और जब शुद्ध होजावे तब दोनों
करंज चिरमटी वासकी छाल और हिंगोट और गोमूत्र इनमें सिद्ध किये हुये तैलका
उपयोग (रोपणार्थ) करे ॥ १८ ॥

अथ अपची चिकित्सा ।

जीमूतकैः कोशवतीफलैश्च दन्तीद्रवन्तीत्रिवृतासु चैव । सर्पिः कृतं
हन्त्यपचीं प्रवृद्धां द्विधाप्रवृत्तं तदुदारवीर्यम् ॥ १९ ॥ निर्गुंडिजातीब-
रिहिष्ठयुक्तं जीमूतकं माक्षिकसैंधवाढ्यम् । अभिप्रतप्तं वमनं प्रगाढं दुष्टा-
पचीषून्तसमादिशन्ति ॥ २० ॥

जीमूतक (वंदाल) कोशातकी (कडवी तोरई) दंती और द्रवंती तथा निसोथ
इनमें पकाया हुआ घृत बढी हुई अपचीको नष्ट कर देता है यह उदार पराक्रमवाला
घृत वमन और विरेचन दोनों खूब कराता है ॥ १९ ॥ तथा निर्गुंडी (संभालु)
चमेली बरिहिष्ठ (नेत्रवाला) वंदाल इन्हें गरमकर शहत और सैंधानमक मिलाके
पीनेसे खूब वमन होके दुष्ट अपची शांत होजाती है ॥ २० ॥

नस्य विधि ।

कैटर्यबिम्बीकरवीरसिद्धं तैलं हितं मूर्द्धविरेचनं च । शाखोटकस्य
स्वरसेन सिद्धं तैलं हितं नस्यविरेचनेषु । मधूकसारश्च हितोवपीडे
फलानि शिग्रोः खरमंजरेर्वा ॥ २१ ॥

(श्लो० १८) वंशावलेखः वंशत्वक् ।

(श्लो० १९) जीमूतकः देवदाली, कोशवती कोशातकी कटुकोशतकी,द्विधाप्रवृत्तं वमनरेचनकारकम् ।

(श्लो० २०) वर्हिष्ठं बालकम् (इति नि० सं०)

(श्लो० २१) कैटर्यः पर्वतानिंबः (इति डल्लनः) शब्दस्तोमेतु कैटर्यः निम्बे भूनिम्बे कट्फले पूति
करंजे मदनवृक्षेच । वस्तुतोऽत्र कट्फल एव ग्राह्यः । शाखोटकस्य खरमंजरेरर्थः डल्लनाचार्येण नलिखितः ।
शब्दस्तोमेतु शाखोटः शौआड इति वृक्षः, खरमंजरिः अपामार्गः इति ।

कैटर्य (पहाडीनीम) कटूरी कनेर इनसे सिद्ध किया हुवा तैल नास लेनेसे मूर्द्धाको मल रेचन करता है तथा शाखोटक (शाँखोड) के स्वरससे सिद्ध किया हुवा तैल भी शिरोविरेचनमें हित है तथा मधूकसार और सोहँजनेके फल और ओंगेके फल (ये अवपीडन) तीक्ष्णनस्य कर्ममें हित हैं ॥ २१ ॥

ग्रंथीनमर्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं निर्दधीत पश्चात् । क्षारेण वापि प्रतिसारयेत्तु संलिख्य शस्त्रेण यथोपदेशम् ॥ २२ ॥ पार्ष्णिं प्रति द्वादश चांगुलानि भित्त्वेन्द्रबस्तिं परिवर्ज्य धीमान् । विदार्य मत्स्यांडनिभानि वैद्यो निःकृष्य जालान्यनलं निदध्यात् ॥ २३ ॥ आगुल्फकर्णात्सुमितस्य जंतोस्तस्याष्टभागं खुलकाद्विभज्य । घोणार्जुवेधः सुरराजबस्तेर्हित्वाक्षिमात्रं त्वपरे वदंति ॥ २४ ॥

जो ग्रंथि मर्म स्थानपर नहीं हो और वह पके नहीं तो उसे छेदन करके (निकालके) फिर अग्निसे दग्धकर देना चाहिये अथवा उसे शस्त्रसे छीलकर फिर क्षारसे (तेजाबसे) उपदेशके अनुसार जला दे॥२२॥पार्ष्णि (पिंडलीके रखने) से बाहर अंगुलपर इंद्रबस्ति स्थानको छोडके चीरा लगावे और वहांपर जो मच्छीके अंडों सरीखा जलसा होवे उसे निकालकर अग्निसे दग्धकर देना चाहिये॥२३॥गुल्फसे लेकर कानतक जो प्रमाण है उसके आठवें भागपर खुलक स्थानसे विभाग करके उस स्थानपर विदारण करे और नासिका ऋजुवेधान करे (और कई ऐसा कहते हैं कि) इंद्रबस्तिको छोडकर नेत्रके बराबर चीरा लगावे (और जाल निकाल डाले) २४॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि यदि दाहनी तरफ अपची हो सो बाँये पावमें चीरा लगावे और बाँई तरफ हो तो दाहनी तरफ और जो दोनों तरफ हो तो दोनों पावोंमें इसमें प्रति शब्दसे कई यह अर्थ निकालते हैं देखो टिप्पणी । और वृद्धवाग्भट्टका मत ॥

मणिबंधोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अंगुल्यंतरितं सम्यगपचीनां निवृत्तये ॥ २५ ॥

मणिबंध (पहुँचे) से ऊपर एक एक अंगुलके अंतरसे तीन रेखा (सलाई अग्निमें गरम करके) करे अपचीकी निवृत्तिके लिये वैद्य यह यत्न करे (कई ऐसा कहते

(श्लो० २२) अन्येतु प्रति इति प्रतिशब्दं विपरीतार्थकमाहुः । पार्ष्णेः विपरीतमित्यर्थ इति (नि.संग्रहे) तथा चोक्तं वृद्धवाग्भटे एव मनुपशमे वामपार्श्वजायां दक्षिणजंघापृष्ठमध्यादिंद्रबस्तेरधस्तादूर्ध्वं वा शस्त्रेणाक्षिमात्रं व्रणं कृत्वा मत्स्यांडजालनिभं मेदोपनीयाग्निनादहेत् । अनेनेतरपार्श्वजा व्याख्याता एवमुभयपार्श्वजायामुभयत इति ।

हैं कि शस्त्रसे तीन रेखा करें परंतु नहीं अग्निसे करना ठीक है पश्चिमीयमालवमें प्रायः ऐसा करते भी हैं अर्थात् अग्निहीसे करते हैं और लाभ होताहै) ॥ २५ ॥

चूर्णस्य काले प्रचलाककाकगोधाहिकूर्मप्रभवां मसीं तु । दद्याच्च तैलेन सहेंगुदीनां यद्वक्ष्यते श्लीपदिनां च तैलम् । विरेचनं धूममुपाददीत भवेच्च नित्यं यवमुद्गभोजी ॥ २६ ॥

प्रचलाक (मोर), काक, गोह, सर्प, कछवा इन्हें जलाकर कालीराख बना लेवे फिर उसका चूर्ण करके हिंगोटके तैलमें मिलाकर अपची गंडमाला पर लगावे अथवा जो श्लीपद रोगमें तैल कहा जावेगा उसे लगावे तथा विरेचनीय धूमपान करावे और रोगी नित्य जौ और मूंगही भोजन करे ॥ २६ ॥

अथ अर्बुदरोग (रसोली) की चिकित्सा ।

वातार्बुद ।

कर्करुकैर्वारुकनालिकेरप्रियालपंचांगुलबीजचूर्णैः । वातार्बुदं क्षीरघृतांबुसिद्धैरुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्तु ॥ २७ ॥ कुर्याच्च मुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः । स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्यां शृंगेन रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ २८॥ वातघ्ननिर्यूहपयोम्लभागैः सिद्धं शताख्यं त्रिवृतं पिबेद्वा ॥ २९ ॥

ककडी और खीरा नारियल चिरोंजी और अरंडके बीज इन सबको दूध, घृत पानी और तेलमें पकाकर गरम गरमसे वातार्बुदको उपनाहन करे (सेके) ॥ २७ ॥ इसके सिवाय मुख्य २ उपनाहन करे मांसको पकाकर उससे तथा वेसवारसे चतुर वैद्य स्वेद करावे और नाडी अथवा सींगी लगाकर बहुतवार रुधिर निकलवावे ॥ २८ ॥ और वायुनाशक क्वाथ तथा दुग्ध और अम्ल द्रव्योंसे सिद्ध किया शतपाक स्नेहका पान करे अथवा त्रिवृत (तैल, वसा, मज्जा इन तीनोंसे मिला) घृत पीवे ॥ २९ ॥

पित्तार्बुद ।

स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्या पित्तार्बुदे कायविरेचनं च । विघृष्य चोदुंबरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिंपेत् ॥ ३० ॥ श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियंगुपतंगरोध्रांजनयष्टिकाह्वैः । विस्राव्य चारग्वधगोजिसोमाः श्यामां

(श्लो०२६) प्रचलाकः मयूरः प्रचलाक इत्यत्र कृकलास इति वा पाठांतरं तच्चवृद्धवाग्भटेप्यंगीकृतमिति ।

च योज्याः कुशलेन लेपे ॥ ३१ ॥ श्यामागिरिह्वांजनकीरसेषु द्राक्षारसे सप्तलिकारसे च । घृतं पिबेत्कीर्तकसंप्रसिद्धं पित्तार्बुदी तज्जठरी च जन्तुः ॥ ३२ ॥

पित्तके अर्बुद (रसोली) में स्वेद उपनाह और मृदु वस्तुओंका पथ्य करावे तथा विरेचन करावे और अर्बुदको गूलर शाक (सागोन) गोजिह्वा इनके पत्तोंसे घिसकर ऊपरसे राल प्रियंगु (गोंदी) पतंग, लोध, रसोत, मुलेठी, इन्हें पीस शहत मिलाकर लेप करे तथा कुछ स्राव हो तो उसे निकालकर किरमाला गोजिह्वा सोमलता श्यामा निसोथ इनका लेप कुशल वैद्यको करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अथवा श्यामा निसोथ शिलारस और रसवंती के रसमें पका हुवा घृत तथा द्राक्षाके रस और सातलाके रसमें पका घृत तथा मुलेठीसे सिद्ध किया घृत पित्तार्बुदवाला तथा पित्तोदरवाला रोगी पीवे ॥ ३२ ॥

कफार्बुद ।

शुद्धस्य जंतोः कफजेर्बुदे तु रक्तेऽवसिक्ते तु ततोऽर्बुदं तत् । द्रव्याणि यान्यूर्द्ध्वमधश्च दोषान् हरंति तैः कल्ककृतैः प्रदिह्यात् ॥ ३३ ॥ कपोतपारावतविड्विमिश्रैः सकांस्यनीलैः शुकलांगलाख्यैः । मूत्रैस्तु काकादनिमूलमिश्रैः क्षारप्रदिग्धैरथवा प्रदिह्यात् ॥ ३४ ॥

कफका अर्बुद रोग होवे तो प्रथम रोगीको वमन रेचनसे शुद्ध करे फिर रुधिर निकलवावे फिर उस अर्बुदपर वमन विरेचन द्रव्योंको पीसकर लेप करे ॥ ३३ ॥ अथवा कपोत (कमेडी) और कबूतरकी वीठ नीलाथोथा शुक (ग्रंथिपर्णी) और कलहारी इनका लेप करे तथा चिरमठीकी जड जवाखार इन्हें गोमूत्रमें पीसकर लेप करे ॥ ३४ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैः मांसप्रगाढैर्दधिमस्तुयुक्तैः । लेपं विदध्यात्कृमयो यथात्र मूर्च्छंति मूर्च्छंत्यथ मक्षिकाश्च ॥ ३५ ॥ अल्पावशिष्टे कृमिभिः कृते च लिखेत्ततोग्निं विदधीत पश्चात् ॥ ३६ ॥

निष्पाव (मोठ) खल कुलथी इन्हें पीसकर मांस दधि और दधिका जल मिलाकर लेप करनेसे कीडे पडते हैं और मक्खियां भी पडती हैं ॥ ३५ ॥ जब कीडोंसे बचा हुवा शेष रहे उसे खुरच कर अग्निसे दग्धकर देना चाहिये ॥ ३६ ॥

(श्लो० ३३) कफार्बुदे ऊर्ध्वमधश्च हृतदोषस्य स्रुतरक्तस्य च वमनविरेचनद्रव्यैः प्रलेपः (इति वृ.वा.)

(श्लो० ३५) लेपास्वादलोभेनच निलीयमाना मक्षिकाः समुपेक्षेत तद्विमुक्तैः कृमिभिरितरैर्वा भक्ष्यमाणं च ततः । कृमिभिर्भक्षितावशेषं शाकादिपत्रैर्विलिख्याग्निना दहेत् इति (वृद्धवाग्भटः) ॥

(वक्तव्य) यह लेप कीडे पैदा करनेके लिये है कि कीडे उसे खा लेवें कीडे दूरकरनेको नहीं है ॥

यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसपट्टैः समावेष्ट्य तदायसैर्वा । क्षाराग्निशस्त्राण्यसकृद्विदध्यात्प्राणानहिंसन् भिषगप्रमत्तः ॥ ३७ ॥ आस्फोतजातीकरवीरपत्रैः कषायमिष्टं व्रणशोधनार्थम् । शुद्धे च तैलं विदधीत भार्गीविडंगपाठात्रिफलाविपक्कम् ॥ ३८ ॥ यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः ॥ ३९ ॥

जिस अर्बुदकी जड पतली हो उसकी जडमें रांग तांबा या सीसे या लोहेके पत्रसे आच्छादन करके सावधान वैद्य कईवार उसपर थोडा थोडा क्षार कर्म या अग्निकर्म करे या शस्त्रसे खुरचे परंतु ऐसा करनेमें रोगीके प्राण (और बल) का नाश न होने पावे ॥ ३७ ॥ फिर व्रणके शोधन करनेको आस्फोता चमेली कनेर इनके पत्तोंका यथोचित क्काथ बनावे और जब शुद्ध होजावे तब भारंगी विडंग पाढ और त्रिफला इनमें पकाया हुवा तैल (रोपणार्थ) उपयोग करे ॥ ३८ ॥ और यदि कफका अर्बुद आपहीसे पकजावे तो फिर पाकके क्रमसे (विद्रधिके अनुसार) उसका उपचार करे ॥ ३९ ॥

मेदोर्बुद ।

मेदोर्बुदं स्विन्नमदो विदार्य विशोध्य सीव्येद्गतरक्तमाशु । ततो हरिद्रागृहधूमरोध्रपतंगचूर्णैः समनःशिलालैः । व्रणं प्रतिग्राह्य मधुप्रगाढैः करंजतैलं विदधीत शुद्धे ॥ ४० ॥ सशेषदोषाणि हि यो ऽर्बुदानि करोति तान्याशु पुनर्भवंति । तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्यात्सशेषाणि तथा हि वह्निः ॥ ४१ ॥

मेदका अर्बुद होतो उसे स्वेदित करके चीर देवे और भीतरसे मेद निकालकर साफ करके शीघ्रही सीम देना चाहिये फिर हलदी धवांसा लोध पतंग और मैनशिल इनके चूर्णमें शहत मिलाकर व्रणपर लगादेवे और जब शुद्ध होजावे तब करंजसे सिद्ध किया तैल लगाकर व्रण रोपण करे ॥ ४० ॥ और जो अर्बुदको इसप्रकार शुद्धकरे कि उसमें कुछ दोष शेष रहजावे तो फिर बढकर अर्बुद होजाताहै इस

(श्लो० ४१) यः वैद्यः सशेषदोषाणि अर्बुदानि करोति तान्यर्बुदानि शीघ्रमेव पुनर्भवंति यदि सशेषाणि समुद्धृतानि अर्बुदानि तानि वह्निः हन्यात् इत्यर्थः ।

कारणसे जड़मूलसे उखाडकर साफ करना चाहिये और जो शेष रहाहुवा होवे तौ उसे फिर अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

गलगंड चिकित्सा ।

संस्वेद्य गंडं पवनोत्थमादौ नाड्यानिलघ्नौषधपत्रभंगैः। अम्लैः समूत्रैर्विविधैः पयोभिरुष्णैः सतैलैः पिशितैश्च विद्वान् ॥ ४२ ॥ विस्रावयेत्स्विन्नमतंद्रितश्च शुद्धं व्रणं नाप्युपनाहयेत्तु । शणातसीमूलकशिग्रुकिण्वप्रियालमज्जानुयुतैस्तिलैस्तु ॥ ४३ ॥ कालामृताशिग्रुपुनर्नवार्कगजाह्विनाभाकरहाटकुष्ठैः । एकैशिकावृक्षकतिल्वकैश्च सुराम्लपिष्टैरसकृद्विदिह्यात् ॥ ॥ ४४ ॥ तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहंसाह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगंडरोगे ॥ ४५ ॥

वायुका गलगंड रोग होतो पहले उसे स्वेदन करावे अर्थात् नाडीस्वेद करावे वायुनाशक औषधों (अरंड आदि) के पत्र खंडोंमें अम्लरस और गोमूत्र आदि तथा दुग्ध मिलाकर गरम करे और उसपर नाडी (नलका) लगाकर उसका मुख गलगंडके पास लगकर स्वेद (पसीना दिलावे अथवा गरम तैलसे या गरम मांससे स्वेदन करावे ॥ ४२ ॥ फिर उसको स्वेदित करके जलौकादिसे रुधिर निकलवावे सावधान वैद्य शुद्ध व्रणको फिर उपनाहन नहीं करे उसपर शण अलसी मूल सोहँजना सुराका बीज चिरोंजीकी गिरी और तिल इन्हें ॥ ४३ ॥ काला (वरिहिष्टा) गिलोय सोहँजना साठी आक गजादिनामा (गजपीपल) मैनफल कूट इन्हें तथा एकैशिका (शतावरी) कुडा लोध इन्हें मदिरा और कांजीमें पीस कर वारंवार लेप करे ॥ ४४ ॥ और गिलोय नींब हंसपदी कुडा पिप्पली इनसे सिद्ध किया हुआ तैल पान करे दोनों खरेंटी और देवदारु भी युक्त करे इस तैलको नित्य पीना गलगंड रोगमें हित है ॥ ६५ ॥

(वक्तव्य) गलगंड रोग पित्तजनित नहीं होता इसीसे वातज गलगंडकी चिकित्साके पीछे कफजकी चिकित्सा लिखते हैं देखो निदानस्थान अध्याय ११ गलगंड रोगका निदान ॥

(श्लो० ४३) अस्य पूर्वार्द्धं पूर्वेण परार्द्धंच परेण श्लोकेन सहान्वेतव्यम् ॥

(श्लो० ४४) काला वरिहिष्टा, गजादिनामा गजपिप्पली, करहाटको मदनः, एकैशिका शतावरी (इति नि० सं०)

कफके गलगंडका यत्न।

स्वेदोपनाहैः कफसंभवं तु संस्वेद्य विस्रावणमेव कुर्यात्। ततोऽजगंधातिविषाविशल्याविषाणिकाकुष्टशुकाह्वयाभिः॥ ४६॥ पलाशभस्मोदकपोषिताभिर्दिह्यात्सगुंजाभिरशीतलाभिः। दशार्द्धसंख्यैर्लवणैश्च युक्तं तैलं पिबेन्मागधिकादिसिद्धम्॥ ४७॥ प्रच्छर्दनं मूर्द्धविरेचनं च धूमश्च वैरेचनिको हितस्तु। पाकक्रमो वापि सदा विधेयो वैद्येन पाकंगतयोः कथंचित्॥ ४८॥ कटुत्रिकक्षौद्रयुताः समूत्रा भक्ष्या यवान्नानि रसाश्च मौद्गाः। सशृंगवेराः सपटोलनिंबा हिताय देया गलगंडरोगे॥ ४९॥

कफका गलगंड रोग हो तो प्रथम स्वेदन और उपनाहनोंसे स्वेदित करके रुधिर निकलवाना चाहिये फिर अजगंधा (वनयवानी या ववरी) अतीस विशल्या (अग्निशिखा) विषाणिका (शृंगी काकडासींगी) कूट शुकाह्वा (चमरु वा वट या श्योनाक)॥ ४६॥ इन्हें पलाशकी भस्मके जलसे पीसकर और चिरमिठी पिसी हुई मिलाकर गरम करके लेप करे और पिप्पल्यादि गणमें पांचों लवण मिला इनसे सिद्ध किया तैल पीवे॥ ४७॥ वमन करावे और शिरोविरेचन करावे तथा विरेचनकारक धूम पानभी हितहै अथवा और जो ये वात कफके अर्बुद पकजावें तो वैद्यको पाक क्रमसे उपचार करना चाहिये॥ ४८॥ और इस रोगमें त्रिकटु शहत युक्त गोमूत्र सहित जौके पदार्थ तथा मूंगके रस जिनमें अदरख पटोल(परवल) और निंबका संस्कार हो भोजनार्थ देने उचित हैं॥ ४९॥

मेदोजगलगंडका यत्न।

मेदःसमुत्थे तु यथोपदिष्टां विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य। श्यामासुधालोहपुरीषदंतीरसांजनैश्चापिहितप्रदेहैः॥ ५०॥ मूत्रेण वालोऽद्य हिताय सारं प्रातः पिबेच्छालमहीरुहाणाम्। शस्त्रेण वापाद्य विदार्य चैवं मेदः समुद्धृत्य हिताय सीव्येत्॥ ५१॥ मज्जाज्यमेदोमधुभिर्देहेद्वा दग्धे च सर्पिर्मधु चावचार्यम्। कासीसतुत्थे च ततोऽत्र देये चूर्णीकृते रोच-

---

(श्लो० ४६) अजगंधा वनयावानीति (नि० सं०) शब्दस्तोमेतु अजगंधा वयनवान्यां वर्वरिकायांच। विशल्या अग्निशिखा लांगलीत्यर्थः। विषाणिका आमलकीति डल्लनः। वाचस्पत्येतु विषाणिका शृंग्यां कर्कटशृंग्यां आमलक्यांच।

(श्लो० ४७) दशार्द्धसंख्यैर्लवणैः पंचलवणैरित्यर्थः।

नैर्या समेते ॥ ५२ ॥ तैलेनं चाभ्यज्य हिताय दद्यात्साारोद्भवं गोमयजं च भस्म । हितश्च नित्यं त्रिफलाकषायो गाढश्च बंधो यवभोजनं च ॥ ५३ ॥

इति चिकित्सितस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मेदोज गलगंड रोगमें उपदेशके अनुसार मनुष्य का शरीर स्निग्ध कराकर सिरा वेधन करे और श्यामा निसोथ सुधा (थोहर) लोहकिट्ट और दंती तथा रसोत इनका लेप करे ॥ ५० ॥ और शालसारादि वृक्षोंकी अंतर छाल (सार) को गोमूत्रमें घोलकर नित्य प्रभात पीना हित है अथवा शस्त्रसे चीरकर मेदको निकाल कर सीम देना चाहिये ॥ ५१ ॥ और मज्जा घृत मेद (चर्बी) तथा शहत गरम करके दग्ध करदेवे तथा दग्ध करके शहत और घृत लगा देवे तथा कसीस नीलाथोथा पीसकर गोरोचन मिलाकर उपयोग करे (इससे व्रण शुद्ध होजाता है ॥ ॥ ५२ ॥ फिर तैल लगावे (जो हित हो वह तैल लगावे) और उक्त वृक्षोंकी छालकी भस्म या गोवरकी भस्म लगावे तथा नित्य धोने (या पान करने) में त्रिफलाका क्वाथ हित है और पट्टी दृढ बांधना तथा जौ भोजन करना हित है ॥५३॥

इति सुश्रुतसंहितायां सान्वयभाषाटीकायां चिकित्सितस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

परिशिष्ट ।

गंडमाला का यत्न ।

कांचनारत्वचः क्वाथः शुंठीचूर्णेन संयुतः । माक्षिकाढ्यःसकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥ १ ॥ गंडमालां हरत्याशु चिरकालानुबंधिनीम् । पलमर्द्धपलं चापि पिष्टं तंडुलवारिणा । कांचनारत्वचः पीत्वा गंडमालां व्यपोहति ॥ २ ॥

कचनालकी छालका क्वाथ शुंठी युक्त शहत मिलाकर एक समय नित्य पीनेसे गंडमाला नष्ट होजाती है अथवा वरुण (वरने) का क्वाथ बहुत दिनकी भी गंडमालाको नाश करता है अथवा एक पल या आधेपल कचनालेकी छालको चावलोंके जलमें पीसकर पीवे तो गंडमाला नष्ट होजावे ॥ १ ॥ २ ॥ (भा० प्र०)

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो वृद्ध्युपदंशश्लीपदानां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम वृद्धि उपदंश और श्लीपद रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

अंडवृद्धिमें वर्जित आहार विहार ।

अंत्रवृद्ध्यां विना षड्यां वृद्धेयस्तासु वर्जयेत् । अश्वादियानं व्यायामं मैथुनं वेगनिग्रहम् । अत्यासनं चंक्रमणमुपवासं गुरूणि च ॥ १ ॥

वृद्धि (अंडवृद्धि) रोग सात प्रकारका लक्षणों सहित पहले निदानस्थान १२ अध्यायमें वर्णन हो चुका है जिसमें अंत्रवृद्धिके विना शेष जो छः प्रकारका अंडवृद्धि रोग है उन्होंमें इतनी बातें त्यागदेनी चाहियें कि घोडे आदि पीठकी सवारी व्यायाम (डंड कसरत तथा परिश्रम) मैथुन वेगोंका रोंकना बहुत बैठे रहना बहुतसा फिरना अति लंघन या व्रतादि करना तथा गरिष्ठ भोजन ॥ १ ॥

वातज अंडवृद्धिका यत्न ।

तत्रादितो वातवृद्धौ त्रैवृतस्निग्धमातुरम् । स्विन्नं च नं यथान्यायं पाययेत विरेचनम् ॥ २॥ कोशाम्रतिल्वकैरंडफलतैलानि वा नरम्।सक्षीरं वा पिबे न्मासं तैलमेरंडसंभवम् ॥ ३ ॥ ततः कालेनिलघ्नानां क्वाथैः कल्कैश्च बुद्धिमान् । निरूहयेन्निरूढं च भुक्तवंतं रसोदनम् ॥४॥ यष्टीमधुकसिद्धेन ततस्तैलेन योजयेत् । स्नेहोपनाहौ कुर्य्याच्च प्रदेहांश्चानिलापहान् ॥५॥ विदग्धां पाचयित्वा वा सेवनीं परिवर्जयेत् । भिंद्यात्ततः प्रभिन्नायां यथोक्तं क्रममाचरेत् ॥ ६ ॥

वातज वृद्धिमें आदिमें त्रैवृत (घृत तैल वसाके) स्नेहसे स्निग्ध करे (अथवा त्रिवृताके स्नेहसे) रोगीको स्निग्ध करे फिर यथायोग्य स्वेद कराकर विरेचनी औषध पिलावे ॥ २ ॥ तथा कोशाम्र लोध अरंडके बीजोंका तैल पिलावे । अथवा एक महीनेतक अरंडके तैलमें दूध मिलाकर नित्य पीवे ॥ ३ ॥ फिर वायुनाशक द्रव्यों

(श्लो० ३) तृतीयश्लोकस्य पूर्वार्द्धं पूर्वेणसहान्वेतव्यम् । नरं तैलानिपाययेदिति योजनीयम् ।

(श्लो० ४ । ५) अनिलघ्नानां क्वाथैः कल्कैर्निरूहयेत् ततः निरूढं रसौदनं भुक्तवंतं यष्टीमधुकसिद्धेन तैलेन योजयेत्, अनुवासयेदित्यर्थः ।तदुक्तं वृद्धवाग्भटेन । 'ततोऽनिलघ्नक्वाथकल्कैर्निरूहयेत् । निरूढंच मांसरसेनाशितं यष्टीमधुकतैलेनानुवासयेत्' इति ।

के काथोंसे और कल्कोंसे निरूहण बस्ति करावे और मांसरस सहित आवलोंका भात खुलावे ॥ ४ ॥ तथा मुलेठीके सिद्ध किये तैलसे अनुवासन बस्ति करावे और स्निग्ध उपनाहन करे और वायुनाशक लेप करे ॥ ५ ॥ पकाव पर आजावे तो उसे पकाकर सेवनीको छोडके शस्त्रसे चीरा लगावे और फिर यथोक्त व्रणके क्रमसे उपचार करे ॥ ६ ॥

पित्तज अंडवृद्धि ।

पित्तजायामपक्कायां पित्तग्रंथिक्रमो हितः । पक्कां वा भेदयेद्भिन्नां शोधयेत्क्षौद्रसर्पिषा । शुद्धायां च भिषग्दद्यात्तैलं कल्कं च रोपणम् ॥ ७ ॥

पित्तज वृद्धिमें जबतक पके नहीं तबतक पित्तज ग्रंथिके क्रमानुसार यत्न करना हित है और जब पक जावे तब भेदन करे और फूट जावे तब शोधन शहत और घृतसे करे और जब शुद्ध हो जावे तब रोपण करनेवाले तैलों अथवा कल्कोंका उपयोग करे ॥ ७ ॥

रक्तज अंडवृद्धि ।

रक्तजायां जलौकोभिः शोणितं निर्हरेद्भिषक् । पिबेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् । पित्तग्रंथिक्रमं कुर्यादामे पक्के च सर्वदा ॥ ९ ॥

रक्तज वृद्धिमें वैद्य जलौका लगाकर रुधिर निकाल देवे और शर्करा शहतसे मिला हुवा विरेचन पीवे ॥ ८ ॥ रक्तकी अंडवृद्धिमें कच्ची अवस्थामें तथा पकनेकी अवस्थामें सदा पित्तज ग्रंथिका यत्न करे ॥ ९ ॥

श्लेष्मज अंडवृद्धि ।

वृद्धिं कफात्मिकामुष्णैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् । पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ १० ॥ विम्लायनादृते वापि श्लेष्मग्रंथि क्रमो हितः । पक्कायां च विभिन्नायां तैलं शोधनमिष्यते । सुमनारुष्करांकोटसप्तपर्णेषु साधितम् ॥ ११ ॥

श्लेष्मजअंडवृद्धिमें उष्णद्रव्यों (वचादि पिप्पलादिगणों) को गोमूत्रमें पीसकर लेप करे और दारुहलदीके काथको गोमूत्र युक्त करके पीवे ॥ १० ॥ कफकृत अंडवृद्धिमें कफ ग्रंथिके समान यत्न करे परंतु एक विम्लापनकर्म नहीं करना चाहिये और जब पक जावे और फूट जावे तब शोधन तैल चमेली भिलावा अंकोट और सातलासे सिद्ध करके बनावे और उपयुक्त करे ॥ ११ ॥

मेदोजअंडवृद्धि ।

मेदःसमुत्थां संस्वेद्य लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः॥ १२॥स्विन्नां चावेष्ट्य पट्टेन समाश्वास्य तु मानवम्।रक्षंत्फलं सेवनीं च वृद्धिपत्रेण दारयेत् ॥ १३ ॥ मेदस्ततः समुद्धृत्य दद्यात्कासीससैंधवे। बध्नीयाच्च यथोद्दिष्टं शुद्धे तैलं च दापयेत्॥ १४॥मनःशिलालवणैः सिद्धमारुष्करेषु च ॥ १५ ॥

मेदोज वृद्धिमें प्रथम स्वेद कराके सुरसादिगणसे या शिरोविरेचन (पिप्पली, विडंगादि) द्रव्योंको गोमूत्रमें पीस थोडा गरमकर लेपकरे ॥ १२ ॥ जब स्वेदित हो जावे तब वस्त्रसे आच्छादनकर मनुष्यरोगीको तसल्लीसे धैर्य देकर उसके अंड गोलक और सेवनी बचाकर वृद्धिपत्रसे चीरलगावे ॥ १३ ॥ और मेदको निकालकर कसीस और सेंधानमक लगावे और (गोफण बंधसे) पट्टी बांध दे इससे शुद्ध हो जावे तब मैनसिल हरताल लवण और भिलावेसे सिद्ध किया हुवा तैल व्रणपर उपयुक्त करे ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूत्रजअंडवृद्धि ।

मूत्रजां स्वेदयित्वा तु पट्टवस्त्रेण वेष्टयेत् । सेवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन तु ॥ १६ ॥ अथात्र द्विमुखां नाडीं दत्वा विस्रावयेद्भिषक्। मूत्रनाडीमथोद्धृत्य स्थगिकाबंधमाचरेत्। शुद्धायां रोपणं दद्याद्वर्जये दंत्रहेतुकीम् ॥ १७ ॥

मूत्रज अंडवृद्धिमें प्रथम स्वेद करावे और वस्त्रसे बांधदे और सेवनीसे नीचे बांये तरफ व्रीहिमुख शस्त्रसे वींध देवे ॥ १६ ॥ फिर छेदमें दो मुखवाली नली लगाकर मूत्रको निकालदे (तथा कुछ अन्यमलहो तो उसेभी निकालदे) फिर उस मूत्र नाडीको निकाल ले और स्थगिका नाम बंधसे बांधदे जब भीतरसे शुद्ध होजावे तब रोपण कर्मकरे ॥ और जो अंत्रज अंडवृद्धि हो (अर्थात् आंतें उतर आई होतो) उसे वर्ज दे (त्यागदे यद्यपि यह त्याज्य है तोभी इसका यत्न नीचे लिखते हैं)॥१७॥

अंत्रजअंडवृद्धि ।

अप्राप्तफलकोशायां वातवृद्धिक्रमो हितः । तत्र या वंक्षणस्था तां दहेदर्द्धेन्दुवक्रया॥ १८॥सम्यङ्मार्गावरोधार्थं कोशप्राप्तां च वर्जयेत्। त्वचं भित्वांगुष्ठमध्ये दहेच्चांगविपर्ययात् ॥ १९ ॥ अनेनैव विधानेन वृद्धी वा-

तंकफात्मिके । प्रदहेत्प्रयतः किं तु स्नायुच्छेदोधिकस्तयोः ॥ २० ॥ शंखोपरि च कर्णांते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम् । व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदंत्रवृद्धिनिवृत्तये ॥ २१ ॥

जो अंत्रवृद्धि अंडकोशमें नहीं पहुंची हो उसमें वातवृद्धिकासा क्रम करना हित है और जो वंक्षण (नलों) में प्राप्त हुई अंत्रवृद्धिको आधे चंद्रमाकेसे मुखवाली शलाकासे दग्ध करे ॥ १८ ॥ सब मार्गको रोकनेके लिये जो अंडकोशमें उतरी हुई आंतें हैं वह तो वर्जने (त्यागने) ही के योग्य है परंतु इसमें अंग विपर्ययसे अंगूठेके मध्यमें भेदन करके दग्ध करना उचित है (अर्थात् वांयीं ओरकी अंत्र बढी हो तो दाहने अंगूठे के मध्य और दाहनी तरफ आंतें बढी हों तो वांयें अंगूठेकी त्वचा भेदन कर दग्ध करना चाहिये)॥ १९॥ इसी विधिसे वात और कफकी वृद्धिमें भी यत्नसे दग्ध करना चाहिये परंतु इसमें इतना अधिक है कि इनमें जरा नस छेदन करी जाती हैं ॥ २० ॥ शंख (कनपटी) के ऊपर कानके अंतमें सीवन(जोड) को छोडकर अंगके व्यत्ययसे नसको वींधनेसे अंत्रबृद्धि निवृत्त हो जाती है (यहां भी यही है कि दाहनी तरफ वृद्धि हो तो वांये कानकी और वाँयी तरफकी अंडवृद्धि हो तो दहने कानकी नस वींधे) ॥ २१ ॥

उपदंशकी चिकित्सा ।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः । शिरां विध्येन्मेढ्रमध्ये पातयेद्वा जलौकसः ॥ २२ ॥ हरेदुभयतश्चापि दोषानत्यर्थमुच्छ्रितान् । सद्योपहृतदोषस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः ॥ २३ ॥ यदि वा दुर्बलो जंतुर्न वा प्राप्तं विरेचनम् । निरूहेण हरेत्तस्य दोषमत्यर्थमुच्छ्रितम् ॥ २४ ॥

उपदंश रोग जब साध्य हो तब पहले स्नेहन स्वेदन कराके मेढ्रकी सिरा वेधन कराके रुधिर निकलवावे अथवा जलौका लगाकर रक्त निकलवावे ॥ २२ ॥ यदि दोष बहुतही बढे हुवे हो तो वमन विरेचन कराकर उन्हें शांत करे जब दोष शांत हो जाते हैं तो उस रोगीको पीडा और शोथ दोनों शांत हो जाते हैं ॥ २३ ॥ यदि रोगी दुर्बल हो और विरेचन उसे दिया नहीं जा सके तो उसके बढे हुए दोषको निरूहण बस्ति द्वारा हरण करना चाहिये ॥ २४ ॥

वातोपदंशचिकित्सा ।

प्रपौंडरीकयष्ट्याह्वैःवर्षाभूकुष्टदारुभिः । सरलागुरुरास्नाभिर्वातजं संप्र-

---

(श्लो० २१) व्यत्यासात् विपर्ययात् ।

(श्लो० २३) उभयतः वमनविरेचनाभ्याम् ।

लेपयेत् ॥ २५ ॥ निचुलैरंडबीजानि यवगोधूमसक्तवः । एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णैः संप्रलेपयेत् ॥ २६ ॥ प्रपौंडरीकपूर्वैश्च द्रव्यैः सेकः प्रशस्यते ॥ २७ ॥

वातज उपदंशमें प्रपौंडरीक (एक वृक्ष होता है जिसका शालकासा पत्र होता है) मुलेठी साठी कूट देवदारु सरला (एला) अगर रास्ना इनका लेप करे ॥ २५ ॥ तथा निचुल (वेतस) अरंडके बीज जौ और गेहूंके सत्तू इन्हें स्नेह युक्तकर थोडा २ गरम करके वातोपदंशपर लेप करे ॥ २६ ॥ और प्रपौंडरीक आदि द्रव्योंहीसे सेचन करना श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

पित्तोपदंश ।

गैरिकांजनयष्टयाह्वसारिवोशीरपद्मकैः । सचंदनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ २८ ॥ पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्ज्जार्जुनवेतसैः । सर्पिः- स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं च प्रलेपयेत् ॥ २९ ॥ सेचयेच्च घृतक्षीरश- र्करेक्षुमधूदकैः । अथवापि सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ ३० ॥

पित्तके उपदंशको गेरू रसोत मुलेठी सारिवा खस पद्माख चंदन और कमल इनमें घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ २८ ॥ अथवा कमल नीलकमल कमलकी नाली राल अर्जुन (कुहा) जलवेतस और मुलेठी इन्हें घृत मिलाकर लेप करे ॥ २९ ॥ और घृत दूध शर्करा ईखका रस और शहत इन्हें जलमें मिलाकर सेचन करे अथवा वटादि वृक्षोंका क्वाथ ठंढाकर उससे सेचन करे ॥ ३० ॥

कफोपदंश ।

शालाश्वकर्णाजकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् । सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ ३१ ॥ रजन्यतिविषामुस्तासरलासुरदारुभिः । सपत्रपाठापत्तूरैरथवा संप्रलेपयेत् ॥ ३२ ॥ सुरसारग्वधाद्याश्च क्वाथाभ्यां परिषेचयेत् । एवं संशोधनालेपसेकशोणितमोक्षणैः।प्रतिकुर्यात्क्रियायोगैः प्राक्स्थानोक्तैर्हितैरपि ॥ ३३ ॥

कफके उपदंशमें शाल अश्वकर्ण अजकर्ण (पियासाल) और धाय इनको मद्यसे पीस गरम कर तैल मिला लेप करे ॥ ३१ ॥ अथवा हलदी, अतीस, नागरमोथा, सरल, देवदारु, पत्रज, पाठा और पतूर (सरवाली) इनका लेप करे ॥ ३२ ॥ और सुरसादि गण तथा आरग्वधादि गणके क्वाथोंसे सेचन करे (धोवे) इस प्रकार

संशोधन लेपन तथा सेचन और रक्तमोक्षणादिकसे प्रतीकार करे तथा पूर्व स्थानोक्त (सूत्रस्थानोक्त मिश्रकोंके) हितकारक क्रिया करे ॥ ३३ ॥

नायाति च यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् । विदग्धैस्तु शिरास्नायुत्वङ्मांसैः क्षीयते ध्वजः ॥ ३४ ॥ शस्त्रेणापचरेच्चापि पाकमागतमाशु च । तदापोह्य तिलैः सर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ ३५ ॥ करवीरस्य पत्राणि जात्यारग्वधयोस्तथा । प्रक्षालने प्रयोज्यानि वैजयंत्यर्कयोरपि ॥ ३६ ॥

जिस तरह लिंग पके नहीं वैद्यको ऐसा यत्न करना चाहिये यदि लिंगेंद्रियके सिरा, स्नायु, त्वचा और मांस पक जावे तो लिंग गलके गिर जावे ॥ ३४ ॥ और जो पकाव पर आही जावे तो शीघ्रही शस्त्रसे चीरा लगाके पीब आदि निकालदें और तिल घृत और शहत (पीसकर) मिलाकर लेप कर दे ॥ ३५ ॥ तथा कनेरके पत्ते चमेलीके पत्ते और किरमालाके पत्ते इनका क्वाथ करके इससे धोवे तथा अरनी और आकके पत्तोंके क्वाथसे धोवे ॥ ३६ ॥

सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैंधवम् । रोध्रं रसांजनं दार्वी हरितालं मनःशिलाम् ॥ ३७ ॥ हरेणुकैले च तथा सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् ॥ ३८ ॥

फटकडी, गेरू, नीलाथोथा, पुष्पांजन, कसीस, सैंधानमक, लोध, रसोत, दारुहलदी, हरताल और मैनसिल ॥ ३७ ॥ हरेणु, इलायची इनका चूर्ण कर इसमें शहत मिलाकर उपदंशपर लगाना श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

जंब्वाम्रसुमनानिम्बश्वेतकांबोजिपल्लवाः । शल्लकीबदरीबिल्वपलाशतिनिशत्वचः ॥ ३९ ॥ क्षीरिणां च त्वचो योज्याः क्वाथे त्रिफलया सह- तेन क्वाथेन नियतं व्रणं प्रक्षालयेद्भिषक् ॥ ४० ॥ अस्मिन्नेव कषाये तु तैलं धीरो विपाचयेत्।गोजीविडंगयष्टीभिः सर्वगंधैश्च संयुतम् ॥ ४१ ॥ एतत्सर्वोपदंशेषु श्रेष्ठं रोपणमिष्यते ॥ ४२ ॥

जामुन और आम चमेली निंब तथा श्वेतकंद और कांबोजिका (कूविका गयीके मतसे माषपर्णी) इनके पत्ते शल्लकी (शाल) बेरी बिल्व ढाक तिनिश इनकी

(श्लो० ३७) पुष्पं पुष्पांजनं इति डल्लनः ।

(श्लो० ३९) श्वेता श्वेतकन्दः । कांबोजिका कुविका, गयीतु माषपर्णीमाह । तिनिशः स्यंदनः ! (इति नि. सं.)

(श्लो० ४१) गोजी गोजिह्वा, सर्वगंधैः एलादिपरिपठितैः ।

छाल ॥ ३९ ॥ और दूधवाले वृक्षोंकी छाल और त्रिफला सब मिलाके काथ करे इस काथसे नियत व्रणको वैद्य धुलावे ॥ ४० ॥ और इसी काथमें धीर वैद्य तैल पकावे और उसमें गोजिह्वा विडंग और मुलेठी तथा सब प्रकारकी सुगंध (वालछड आदि) डाले ॥ ४१ ॥ यह तैल सब प्रकारकी उपदंशोंके लिये श्रेष्ठ रोपण है ॥ ४२ ॥

सर्जिकातुत्थकासीसं शैलेयं च रसांजनम् । मनःशिलासमैश्चूर्णं व्रणवीसर्पनाशनम् ॥ ४३ ॥ गुन्द्रान्दग्ध्वा कृतं भस्म हरितालं मनःशिला । उपदंशविसर्पाणामेतच्छांतिकरं परम् ॥ ४४ ॥ मार्कवस्त्रिफला दंती ताम्रचूर्णमयोरजः । उपदंशं निहंत्येष वृक्षमिंद्राशनिर्यथा ॥ ४५ ॥

सज्जी नीलाथोथा कसीस शिलारस रसौत मैनसिल इन सबको समान भाग ले चूर्ण करे यह व्रण और विसर्प नाशक है ॥ ४३ ॥ गुंदा (गोंदी) जलाकर भस्म करले और उसमें हरताल तथा मैनसिल मिलाले यह उपदंश और विसर्पमें परम शांति करनेवाला है (लगाना चाहिये) ॥ ४४ ॥ भंगरा त्रिफला दंती ताम्रचूर्ण (तांबेका बुरादा) लोहेका बुरादा इनको लगानेसे यह उपदंशको नष्ट करता है जैसे वृक्षको इन्द्रका वज्र नष्ट करदेताहै ॥ ४५ ॥

उपदंशद्वयेप्येतां प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् । तयोरेव च यां योग्यां वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ ४६ ॥ उपदंशे विशेषेण शृणु भूयस्त्रिदोषजे । दुष्टव्रणविधिं कुर्यात्कुथितं मेहनं त्यजेत् ॥ ४७ ॥ जाम्बोष्ठेनाग्निवर्णेन पश्चाच्छेषं दहेद्भिषक् । सम्यग्दग्धं च विज्ञाय मधुसर्पिः प्रयोजयेत् । शुद्धे च रोपणं दद्यात्कल्कं तैलं हितं च यत् ॥ ४८ ॥

द्विदोषजनित उपदंशमें पहले कहकर (कि अच्छी हो या न हो) चिकित्सा करे और दोनों दोषोंकी मिली चिकित्सा करे इनमें जो योग्य हो जिस दोषकी प्रधानता हो उसीका बलाबल देखकर यत्न करे ॥ ४६ ॥ और त्रिदोषज उपदंशकी अब विशेष कर चिकित्सा श्रवण करे इसमें दुष्ट व्रणकी विधि करनी चाहिये और जिसका लिंग सडगया हो उसे त्याग दे (अथवा उसे दूर करदे)॥४७॥ फिर जंबूरको गरम करके जो शेषहो उसे दाग दे वैद्य सम्यक् दग्ध हुवा ऐसा जानकर शहत और घृत उसमें उपयुक्त करे और जब घाव शुद्ध होजावे तब रोपण करनेवाले कल्क तैल जो उचित हों उनका उपयोग करे ॥ ४८ ॥

परिशिष्ट ।

फिरंग आतशककी चिकित्सा ।

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः। अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकाः ॥ १ ॥ लिख्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः।अनेन विधिना खादेन्मुखशोथं न विंदति ॥ २ ॥ गोधूमचूर्णं संनीय विदध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम् । तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं चतुर्गुंजामितं भिषक् ॥ ३ ॥ ततस्तु गुटिकां कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः । सूक्ष्मचूर्णं लवंगस्य तां वटीमवधूलयेत् ॥ ॥ ४ ॥ दंतस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामंभसा गिलेत् । तांबूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ललवणांस्त्यजेत् ॥ ५ ॥ श्रममातपमध्वानं विशेषात्स्त्रीनिषेवणम् ॥ ६ ॥ भा० प्र०॥

फिरंगरोग (आतशक) को रसकपूर अवश्य नाश करता है पूर्व वैद्योंने ऐसा कहा है ॥ १ ॥ अब हम रसकर्पूर खानेकी उत्तम विधि लिखते हैं इस विधिसे खावे तो मुह नहीं आता ॥ २ ॥ गेहूं के आटेको गोंदकर उसमें गड्ढासा करके उसमें शुद्ध रसकर्पूर (पहले इस कर्पूरको सुपारीकी राख और पीली कौडीकी राख समान मिला नींबूके रसमें तीन दिन खरल करे फिर मटर सम गोली बांध ले वह गोली) रक्खे और उसे कचौडीकी भांति बंध करदे इसमें चार रत्ती लिखा है पर दो रत्ती ही बहुत ॥ ३ ॥ उसे ऐसे बंध करे जो बाहर नहीं दिखाई दे उस गोली आटेकी पर लवंगका चूरा बुरकादे ॥ ४ ॥ और फिर उसे ऐसे खावे कि जाड दांतके नहीं लगने पावे किंतु पानीसे निगल जावे (परंतु नहीं नींबूके आधे भागको पहले चूस ले और आधे भागके रससे गोलीको निगल जावे) ऊपरसे जी चाहे तो पान खावे शाक खटाई और नमक न खावे ॥ ५ ॥ श्रम धूप मार्ग चलना और विशेष कर स्त्री सेवन त्याग दे ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) सुपारी कपर्दिका भस्म युक्त रसकर्पूर नींबूमें घोट गोली बना गेहूंके आटेमें लपेट लवंग बुरका नींबूके रससे निगलना अवश्यमेव फिरंग रोगको नष्ट करता है यह हमारा सैकडों वारका अनुभव किया प्रयोग है १ गोली रोज सात दिन या १४ दिन खाई जाती है पथ्य विशेष गुडका है ।

श्लीपदरोग चिकित्सा ।

वातश्लीपद ।

स्नेहस्वेदोपपन्ने तु श्लीपदेऽनिलजे भिषक्।कृत्वा गुल्फोपरि शिरां वि^१०^ध्येत्तु

(श्लो० ४९) गुल्फोपरि चतुरंगुले इत्यत्र वाग्भट इत्याह गुल्फस्योपरिष्टाद्व्यंगुले शिरां विध्येत् इति ।

चतुरंगुले ॥ ४९ ॥ समाप्यायितदेहं च बस्तिभिः समुपाचरेत् । मासमेरंडजं तैलं पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ ५० ॥ पयसौदनमश्नीयान्नागरक्कथितेन च । त्रैवृतं चोपयुंजीत शस्तो दाहस्तथाग्निना ॥ ५१ ॥

वातश्लीपदमें वैद्यको चाहिये कि पहले स्नेह स्वेद कराकर गुल्फ स्थानके चार अंगुल ऊपर पैरकी सिरा वेधन करे ॥ ४९ ॥ और तर्पणपदार्थोंसे तृप्त हुई देहवाले रोगीके बस्तिकर्म भी करे और एक महीनेतक अरंडके तैलमें गोमूत्र मिलाकर पीवे ॥ ५० ॥ सोंठसे दूध क्वथित करके उसके संग भात खावे तथा त्रैवृत स्नेहका पान करे तथा अग्निसे दाग देनाभी श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

पित्तश्लीपद ।

गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसंभवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ५२ ॥

पित्तके श्लीपदमें गुल्फ (टकने) के नीचे सिरा वेधन करना चाहिये और पित्तके अर्बुद तथा विसर्पके अनुसार पित्तघ्नी क्रिया करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

कफश्लीपद ।

शिरां सुविदितां विध्येदंगुष्ठे श्लैष्मिके भिषक् । मधुयुक्तानि वाभीक्ष्णं कषायाणि पिबेन्नरः ॥ ५३ ॥ पिबेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन च । कटुकाममृतां शुंठीं विडंगं दारु चित्रकम् ॥ ५४ ॥ हितं वा लेपने नित्यं भद्रदारु सचित्रकम् । विडंगमारिचार्केषु नागरे चित्रकेथवा ॥ ५५ ॥ भद्रदार्व्येलुकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च । तैलं पक्कं पिबेद्वापि यवान्नं च हितं सदा ॥ ५६ ॥

कफके श्लीपदमें अँगूठेकी सिराको खूब जानकर वेधन करे तथा कफनाशक द्रव्योंके क्वाथ शहत युक्त पीवे ॥ ५३ ॥ अथवा हरीतकीके कल्कमें गोमूत्र मिलाकर पीवे तथा कुटकी गिलोय सोंठ, विडंग, देवदारु चित्रक इन्हें गोमूत्रमें पीस लेपकरे अथवा देवदारु और चित्रकका लेपकरे और विडंग, मिरच, आक, सोंठ और चित्रक देवदारु एलावालुक और सब लवण इनमें तैल पकाकर पीवे और जवके पदार्थ भोजन करने इसमें सदा हित है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

(श्लो०५३) कषायाणि कफघ्नानि पिबेदिति तात्पर्यम् ।

(श्लो० ५४) अभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन पिबेत् । अत्रमूत्रेण इति देहलीदीपकन्यायेन अग्रिमेस्थेपनलेपिप्रयोज्यम् । तदुक्तं वृद्धवाग्भटे ' आलेपयेच्च नागरा मृताविडंग कटुकाभद्रदारुभिर्मूत्रपिष्टैः' इति ।

श्लीपदके अन्ययत्न ।

पिबेत्सर्षपतैलं वा श्लीपदानां निवृत्तये। पूतीकरंजपत्राणां रसं वापि यथा-बलम् ॥ ५७ ॥ दग्ध्वा मूत्रेण तद्भस्म स्रावयेत्क्षारकल्पवित् । तत्र दद्यात्प्रतीवापं काकोदुंबरिकारसम् ॥ ५८ ॥ प्रयुंजीत भिषक् प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित् । केचुकाकंदनिर्यासं लवणं त्वथ पाकिमम् । रसं दत्वाथ पूर्वोक्तं पेयमेतद्भिषग्जितम् ॥ ५९ ॥

अथवा सरसोंका तैल सब प्रकारके श्लीपदोंकी निवृत्तिके लिये पीवे अथवा पूती-करंजके पत्तोंका रस यथाबल पीवे ॥ ५७ ॥ और इसीको जलाकर इसकी भस्म गोमूत्रमें घोलकर चुवाकर क्षारविधानसे बना ले और उसमें काकोदुंबरी (अंजीर) का रस भी मिलावे ॥ ५८ ॥ इसे बुद्धिमान् वैद्य ऋतु और सात्म्य (माफकत) विचारकर उपयोग करे (पूर्व श्लोकमें जो पूतीकरंजपत्राणां है इस जगे पुत्रजीवक-पत्राणां ऐसा पाठ मानते हैं और उसीके रसका उपयोग करे ऐसा अर्थ करते हैं) तथा केचुके कंदका निर्यास और पाकिम लवण तथा उसी पूर्वोक्त पूतीकरंज या पुत्रजीवका रस मिलाकर पान करे ॥ ५९ ॥

काकादनीं काकजंघां बृहतीं कंटकारिकाम्। कदंबपुष्पीं मंदारीं लंबां शुक-नसां तथा ॥ ६० ॥ मदनाच्च फलात्क्वाथं शुकाख्यास्वरसं तथा । एष क्षारस्तु पानीयः श्लीपदं हंति सेवितः ॥ ६१ ॥ अपचीं गलगंडं च ग्रहणीदोषमेव च । भक्तस्यानशनं चैव हन्यात्सर्वविषाणि च ॥ ६२ ॥ एष्वेव तैलं संसिद्धं नस्याभ्यंगेषु पूजितम्। एतानेवामयान्हंति ये च दुष्ट-व्रणा नृणाम् ॥ ६३ ॥

काकादनी (काकतोरी) काकजंघा बृहती कटेली कदंबपुष्पी (अलंबुषा) मंदारी (भिल) लंबा (कडवी तुंबी) श्योनाक इन्हें भस्म करे ॥ ६० ॥ और क्षारविधानसे पकावे उसमें मैनफलका क्काथ और श्योनाकका रस मिलावे यह

(श्लो० ५७) पूतीकरंजपत्राणां इत्यत्र पुत्रजीवकपत्राणां इति वापाठातरं मन्यंतेऽन्ये ॥

(श्लो० ५९) केचुकाकंदः अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धः, पाकिमलवणं बिडलवणं, भिषग्जितं औषधं (इति डल्हनः) ।

(श्लो० ६०) शुकनसा इत्यार्षः शुकनासा श्योनाकः ।

(श्लो० ६१) शुकाख्यापि श्योनाकः ।

(श्लो० ६२) अपच्यादीनि हन्यात् भक्तस्य अनशनं कुर्यादित्यभिप्रायः ।

क्षार पान करने योग्य होता है इसके सेवनसे श्लीपद नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥ और अपची गलगंड ग्रहणी दोष मिट जाते हैं और भोजन किया अनशनके बराबर होजाता है (पच जाता है) और यह सब विषोंको हरता है ॥ ६२ ॥ इन्हींमें सिद्ध किया हुवा तैल नस्य और मलनेमें भी श्रेष्ठ है उपरोक्त सब रोगोंको नाश करता है और बिगडे हुये घावको भी अच्छा करता है ॥ ६३ ॥

द्रवंतीं त्रिवृतां दंतीं नीलीं श्यामां तथैव च । सप्तलां शंखिनीं चैव दग्ध्वा मूत्रेण गालयेत् ॥ ६४ ॥ दद्याच्च त्रिफलाकाथमेष क्षारस्तु साधितः। अधो गच्छन्ति पीतस्तु पूर्वैश्चाप्याशिषः समाः ॥ ६५ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

द्रवंती (दंतीका भेद) निसोथ, दंती, नीलनी, श्यामा निसोथ, तथा सप्तला (सातला), शंखिनी (यवतिक्ता) इन्हें भस्म कर गोमूत्रमें घोल ले ॥ ६४ ॥ और त्रिफलाका क्काथ मिलाकर क्षार साधन करे यह पीनेसे नीचेको गमन करता है(अर्थात् नीचेके अंगोंमें प्रभाव करता है अथवा रेचन करता है) यहां पूर्वोक्त क्षारोंके समान ही अन्य शिक्षामें समझना । अथवा इस श्लीपद रोगमें भी पूर्वोक्त रक्षाविधानोंसे आशीर्वाद करना (हित प्रार्थना) करना चाहिये ॥ ६५ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः क्षुद्ररोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम क्षुद्ररोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

अजगल्लिकाकी चिकित्सा ।

अत्राजगल्लिकामामां जलौकोभिरुपाचरेत् । शुक्तिशुग्रीयवक्षारकल्कैश्चा लेपयेद्भिषक् ॥ १ ॥ श्यामालांगलकीपाठाकल्कैर्वापि विचक्षणः । पक्कां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २ ॥

अजगल्लिकाकी कच्ची अवस्थामें जलौका लगाना उचित है तथा सीप सज्जी और जौका खार पीसकर लेप कर दे ॥ १ ॥ तथा श्यामा लांगली पाठ इन्हें पीस कर लेप करे और पक जाने पर यथोक्त व्रणके विधानसे साधन करे (सब क्षुद्ररोगोंके लक्षण निदान स्थानमें वर्णन होचुके हैं देखिये) ॥ २ ॥

(श्लो० १) शुग्री इति शुग्रोः देशविशेषस्तज्जाता शुग्री स्वर्जिका इति वाचस्पतिः । क्षारशब्दोत्र प्रत्येकं संवध्यते ।

(वक्तव्य) यह है कि जहां कल्क आदि द्रवताका कथन होवे और कोई द्रव पदार्थ वर्णन नहीं किया हो वहां सर्वत्र जल समझना चाहिये अर्थात् उपरोक्त दोनों लेप जलमें पीसकर करने चाहिये ऐसेही अन्यत्र भी जानियें ॥

अंधालजी आदिकी चिकित्सा ।

अंधालजीं यवप्रख्यां पनसीं कच्छपीं तथा। पाषाणगर्दभं चैव पूर्वं स्वेदेन योजयेत् ॥ ३ ॥ मनःशिलातालकुष्टदारुकल्कैः प्रलेपयेत् । परिपाकगताभित्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ ४ ॥

अंधालजी यवप्रख्या पनसिका कच्छपी और पाषाणगर्दभ इन्हें पहले स्वेद करावे ॥ ३ ॥ फिर मैनसिल हरताल कूट और देवदारु इनको पीसकर लेप करे और जो पकजावे तो भेदन करके व्रणके अनुसार उपचार करे ॥ ४ ॥

विवृतादिकी चिकित्सा ।

विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्धभम् । इरिविल्लीं गंधनाम्नीं कक्षांवि स्फोटकांस्तथा ॥ ५ ॥ पित्तजस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक् । रोपयेत्सार्पिषा पक्कान् सिद्धेन मधुरौषधैः ॥ ६ ॥

विवृता इंद्रवृद्धा गर्दभिका जालगर्दभ इरिवेल्लिका गंधनामका कक्षा तथा विस्फोटक ॥ ५ ॥ इन्हें पित्तविसर्पोक्त क्रियासे वैद्य साधन करे और जो पक फूट जावे उसे मधुर द्रव्यों (काकोल्यादि) से सिद्ध किये घृतसे रोपण करे ॥ ६ ॥

चिप्य और कुनखका यत्न ।

चिप्यमुष्णांबुना सिक्तमुत्कृत्य स्रावयेद्भिषक् । चक्रतैलेन चाभ्यज्य सर्जचूर्णेन चूर्णयेत् ॥ ७ ॥ बंधेनोपचरेच्चैनमशक्यं चाऽग्निना दहेत् । मधुरौषधसिद्धेन ततस्तैलेन रोपयेत् ॥ ८ ॥ कुनखे विधिरप्येषं कार्यो हि भिषजा भवेत् ॥ ९ ॥

चिप्य रोगको पहले गरम जलसे सेचन (धो) करके फिर उसे शस्त्रसे चीरकर या छीलकर उसका दुष्टमल निकाल दे फिर चक्रतैल (कच्ची घानीका तैल) लगाकर ऊपरसे राल पीसकर बुरका दे ॥ ७ ॥ फिर उसपर बंध बांध दे और जो ऐसे आराम न होतो उसे अग्निसे दाग दे और मधुर औषध (काकोल्यादि) से सिद्ध किये हुये घृतसे रोपण करे ॥ ८ ॥ और कुनख रोगमें भी वैद्यको यही विधि करनी योग्य है ॥ ९ ॥

विदारिकाका यत्न ।

विदारिकां समभ्यज्य स्विन्नां विम्लाप्य लेपयेत्। नगवृत्तिकवर्षाभूबिल्वमूलैः सुपेषितैः ॥ १० ॥ व्रणभावतायां वा कृत्वा संशोधनक्रियाम् । रोपणार्थं हितं तैलं कषायमधुरैः कृतम् ॥ ११ ॥ प्रच्छानैर्वा जलौकाभिः स्राव्याऽपक्वा विदारिका । अजकर्णैः सपालाशैर्मूलकल्कैः प्रलेपयेत् ॥ ॥ १२ ॥ पक्वां विदार्य शस्त्रेण पटोलपिचुमर्दयोः । कल्केन तिलयुक्तेन सर्पिर्मिश्रेण लेपयेत् ॥ १३ ॥ बद्ध्वा च क्षीरवृक्षस्य कषायैः खदिरस्य च । व्रणं प्रक्षालयेच्छुद्धास्ततस्तां रोपयेत्पुनः ॥ १४ ॥

विदारिका को यथा योग्य अभ्यंग करके स्वेद कराकर विम्लापन करे फिर नगवृत्ति वर्षाभू (साठी) और बिल्वकी जड इन्हें पीसकर लेप करे ॥ १० ॥ और जब व्रणभावको प्राप्त होजावे (पककर फूट जावे) तब शोधन क्रिया करे और कषाय द्रव्यों और मधुर द्रव्योंसे पकाया हुवा तैल हित जाने ॥ ११ ॥ कच्ची विदारिकामें पछनोंसे या जलौकोंसे रुधिर निकलवावे तथा अजकर्ण पलाशकी जड पीसकर लेप करे ॥ १२ ॥ पकजावे तब शस्त्रसे चीरकर परवल और निंब पीसकर तिल मिलाके पीसे और घृत युक्त कर लेप करे ॥ १३ ॥ ऊपरसे पट्टी बांध देवे तथा दूधके वृक्ष (वटादि) के क्काथसे तथा खदिरके क्काथसे व्रणको धोवे और जब शुद्ध होजावे तब रोपण करे ॥ १४ ॥

शर्करार्बुद कच्छू विचर्चिका पामा यत्न ।

मेदोर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥ १५ ॥ कच्छूं विचर्चिकां पामां कुष्ठवत्समुपाचरेत् । लेपश्च शस्यते सिक्थशताह्वागौरसर्षपैः ॥ ॥ १६ ॥ वचादार्वीसर्षपैर्वा तैलं वा नक्तमालजम् । सारतैलमथाभ्यंगे कुर्वीत कटुकैः शृतम् ॥ १७ ॥

“ शर्करार्बुद ” की चिकित्सा मेदोर्बुदकी भांति करनी चाहिये देखो इसी स्थानकी अठारवीं अध्याय ॥ १५ ॥ “ कच्छु ” (कच्छदादं) विचर्चिका (व्योंची) और पामा (पांव) इनका उपचार कुष्ठके अनुसार करना चाहिये तथा मोम शतावरी और सुपेद सरसों इनका लेप करे ॥ १६ ॥ अथवा वच दारुहलदी और सरसों इनका लेप करे अथवा करंजुवेका तैल लगावे अथवा सार तैल (सरल तैल तार-

(श्लो० १०) नगवृत्तिः जिंगाणं गुडगंनिकेतिलोके वृश्चिकालीत्यन्ये (इति नि० सं०) ।

पीनका तैल) लगावे अथवा कटुक द्रव्यों निंबादिसे पकाया हुवा तैल लगावे॥ १७ ॥

पाददारी आदिका यत्न ।

पाददार्यां शिरां विद्ध्वा स्वेदाभ्यंगौ प्रयोजयेत् । मधूच्छिष्टवसामज्जासर्ज चूर्णघृतैः कृतैः ॥ १८॥ यवाह्वगैरिकोन्मिश्रैः पादलेपः प्रशस्यते । पादौ सिक्त्वारनालेन लेपनं ह्यलसे हितम् । कल्कीकृतैर्निबतिलकासीसालैः ससैंधवैः ॥ १९ ॥ लाक्षारसोभया वापि कार्यं स्याद्रक्तमोक्षणम्॥ २०॥ सिद्धं रसे कंटकार्यास्तैलं वा सार्षपं हितम् । कासीसरोचनशिलाचूर्णैर्वा प्रतिसारणम् ॥ २१ ॥ उद्धृत्य दग्ध्वा स्नेहेन जयेत्कदरसंज्ञकम्॥ २२ ॥

" पाददारी " रोगमें (जिसके यह बहुत बढ जावे उसके) फस्द खोलनी चाहिये और शरीर पर स्वेदन मर्दन (तैलादि मलना) चाहिये तथा मोम चरबी मज्जा राल और घृत ये मिलाकर तथा इनमें जवाखार और गेरू भी मिलाके परोंके लगावे ॥ १८ ॥ और " अलस " नाम रोग हो तो पहले पावोंको आरनाल (एक भांतिकी कांजी) से सेचन करे (धोवे) फिर निंब, तिल, कसीस, हरताल, सैंधव इन्हें पीसकर लेप करे अथवा लाखका रस और हरडेका लेप करे और रुधिर निकलवावे ॥ १९ ॥ २० ॥ तथा कटेलीके रसमें सरसोंका तैल सिद्ध करके लगावे और कसीस, गोरोचन, मैनसिलका चूर्ण बुरका देवे ॥ २१ ॥ यदि " कदर " नाम (डील) हो तो उसे छीलकर गरम स्नेहसे दग्ध कर देना चाहिये ॥ २२ ॥

इंद्रलुप्तरोगका यत्न ।

इंद्रलुप्ते शिरां मूर्ध्नि स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् । कल्कैः समरिचैर्दिह्यान्मनःशि-लाकासीसतुत्थकैः ॥ २३ ॥ कुटंनटादारुकल्कैर्लेपनं वा प्रशस्यते । प्रच्छयित्वावगाढं वा गुंजाकल्कैर्मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ लेपयेदुपशांत्यर्थं कुर्याद्वापि रसांजनम् । मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् । तैल-मभ्यंजने शस्तमिंद्रलुप्तापहं परम् ॥ २५ ॥

"इंद्रलुप्त रोगमें" स्नेहन स्वेदन कराकर शिरकी (यासेरू) फस्द खोले और मैनसिल कसीस नीलाथोथा और काली मिरच इनका लेप करे ॥ २३ ॥ अथवा कुट-न्नट (श्योनाक) दारु (देवदारु) इनका लेप करे जो इसकी जड नीचे जादा होगई हो तो पछने लगाकर वारंवार चिरमठीका कल्क लेपकरे ॥ २४ ॥ अथवा इसकी

(श्लो० २४) कुटंनटा श्योनाकः अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धस्य अग्रिमेणार्द्धेनान्वयः ।

शांतिके लिये रसायन क्रिया करे और मालती कनेर चित्रक करंज इनसे पकाया हुवा तैलभी मर्दन करनेमें इंद्रलुप्तरोगका परम नाश करनेवाला है ॥ २५ ॥

अरुंषिका, दारुणक और पलित ।

अरुंषिकां हृते रक्ते सेचयेन्निंबवारिणा। दिग्ध्यात्सैंधवयुक्तेन वाजिविष्ठारसेन तु ॥ २६ ॥ हरितालनिशानिंबकल्कैर्वा सपटोलजैः । यष्टीनीलोत्पलैरंडमार्कवैर्वा प्रलेपयेत् ॥ २७॥ शिरां दारुणके विद्ध्वा स्निग्धस्विन्नस्य मूर्द्धनि । अवपीडं शिरोबस्तिमभ्यंगं च प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥ क्षालने कोद्रवतृणक्षारतोयं प्रशस्यते । उपरिष्टात्प्रवक्ष्यामि विधिं पलितनाशनम् ॥ २९ ॥

"अरुंषिकामें" रक्त निकलवाकर नींबके क्काथसे सेचन करे और घोडेकी लीदके रसमें सैंधानमक मिलाकर लेप करे ॥ २६ ॥ अथवा हरताल, हलदी, निंब और पटोल (परवल) इन्हें पीसकर लेप करे अथवा मुलेठी नीलकमल, अरंड और भंगरा इनका लेप करे ॥ २७ ॥ "दारुणक" रोगमें (शिरोकंडूमें) शिरको स्नेहन स्वेदन करना और शिरकी फस्त खोलना तथा तेज नस्य देना शिरोबस्ति करना और तैलाभ्यंगका उपयोग करना चाहिये ॥ २८ ॥ और धोनेके लिये कोदोंके तृणकी क्षार जलमें घोलकर लेना चाहिये तथा "पलित" (बाल सुपेद होने) के रोगकी विधि अगाडी वर्णन करेंगे ॥ २९ ॥

मसूरिका और जतुमणि (लहसन) मशक (मसे) तिल इनका यत्न।

मसूरिकायां कुष्टघ्नलेपनादिक्रिया हिता। पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया वा संप्रशस्यते ॥ ३० ॥ जतुमणिं समुत्कृत्य मशकं तिलकालकम् । क्षारेण प्रदहेद्युक्त्या वह्निना वा शनैः शनैः ॥ ३१ ॥

"मसूरिकामें" कुष्ठनाशक लेपनादि क्रिया करनी हित है अथवा पित्त कफ जनित विसर्पोक्ता क्रिया करनी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ "जतुमणि" (लहसन) मशक (मसे) तिल इन्हें छीलकर या खुरचकर क्षारसे युक्तिपूर्वक जलादे अथवा धीरे धीरे अग्निसे दाग दे (इनके यत्न करनेकी कई आवश्यकता नहीं यदि कोई बहुत ही वे मोके हो तो यत्न करना) ॥ ३१ ॥

न्यच्छ और व्यंगका यत्न ।

न्यच्छे व्यंगे सिरामोक्षो नीलिकायां च शस्यते । यथान्यायं यथाभ्यासं

ललाट्यादिशिराव्यधः ॥ ३२॥ घृष्ट्वा दिह्यात्त्वचं पिष्ट्वा क्षीरिणां क्षीरसं-
युताम्। बलातिबलयष्ट्याह्वरजनीर्वा प्रलेपनम् ॥३३ ॥ पयस्यागुरुका-
लीयलेपनं वा सगैरिकम्। क्षौद्राज्ययुक्तया लिंपेद्दंष्ट्रया शूकरस्य च ।
कपित्थराजादनयोः कल्कं वा हितमुच्यते ॥ ३४ ॥

"न्यच्छ" (चकहे) "व्यंग" (झांइ) तथा नीलिका (नीली झाईं) इनके होनेमें यथोचित और अभ्यासके अनुसार ललाट आदिकी सिरा मोक्ष करावे (कई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि सिरा मोक्षभी करावे और ललाट आदिकी नसको वेधेंभी) ॥ ३२ ॥ अथवा उसे घिस कर दूधवाले वृक्षोंकी दुग्धयुत छाल पीसकर लेप करे अथवा खिरेंटी कंघी मुलेटी और हलदी इनका लेप करे ॥ ३३ ॥ अथवा अर्कपुष्पी अगर काला अगर और गेरू इनका लेप करे अथवा सूकरकी डाढ घिसकर शहत और घृत मिलाकर लेप करे अथवा कैथ और खिरनीका कल्क लेप करना हित होता है ॥ ३४ ॥

यौवन पिडका और पद्मिनीकंटकका यत्न ।

यौवने पिडिकाख्येषु विशेषाच्छर्दनं हितम्। लेपनं च वचारोध्रसैंधवैः
सर्षपान्वितैः ॥ ३५ ॥ कुस्तुंबुरुवचालोध्रकुष्ठैर्वा लेपनं हितम्। पद्मि-
नीकंटके रोगे छर्दयेन्निबवारिणा ॥३६ ॥ तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः-
पानं प्रदापयेत्। निंबारग्वधयोः क्वाथो हितं उत्सादने भवेत् ॥ ३७ ॥

"यौवन पिडिका" (मुहासे) (अधिक) हो ता विशेष कर वमन हित होताहै तथा वच लोध सैंधानमक और सरसोंका लेप करना ॥ ३५ ॥ अथवा धनियाँ वच लोध और कूट इनका लेप करना हितकारक होता है और "पद्मिनी कंटक" रोगमें निंबके क्वाथसे वमन करावे ॥ ३६ ॥ और निंबके क्वाथसेही सिद्ध किया हुवा घृत शहत मिलाकर पिलावे तथा उत्सादनके लिये निंब और किरमालाका क्वाथ हित होता है ॥ ३७ ॥

परिवर्त्तिका अवपाटिकाका यत्न ।

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा वातघ्नैः
शाल्वणादिभिः ॥ ३८ ॥ ततोभ्यज्य शनैश्चर्म चानयेत्पीडयेन्मणिम् ।
प्रविष्टे च मणौ चर्म स्वेदयेदुपनाहनैः ॥३९॥ दद्याद्वातहरान्बस्तीन्स्नि-
ग्धान्यन्नानि भोजयेत् । अवपाटिकां जयदेवं यथादोषं चिकित्सकः ४०॥

" परिवर्तिका " रोग होवे तो उसे (लिंगाग्रभागको) तीन दिन या पांच दिनतक घृत चुपड चुपडकर स्वेदन कराकर वायुनाशक शाल्वणादिकसे उपनाहन करावे ॥ ॥ ३८ ॥ फिर तैलाभ्यंगकर (तैल चुपडकर धीरे धीरे चर्मको ऊपरको चढा दे और मणि सुपारी) को जरा दबा दे और जब मणि उघड जावे तब ऊपरके चर्मको उपनाहन करे ॥ ३९ ॥ और वायुनाशक बस्तिका उपयोग करे और स्निग्ध अन्न भोजन करावे ॥ और यदि "अवपाटिका" होवे तो उसे वैद्य दोषोंके अनुसार (स्नेहन स्वेदनादि करके) आराम करे ॥ ४० ॥

निरुद्धप्रकाश रोगका यत्न ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दार्वीं वा जतुकृतां घृताभ्यक्तां प्रवेशयेत् ॥ ४१ ॥ परिषेके वसामज्जाशिशुमारवराहयोः। चक्रतैलं यथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ ४२ ॥ त्र्यहात्त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यङ्नाडीं प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ॥ ॥ ४३ ॥ भित्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यःक्षतवदाचरेत् ॥ ४४ ॥

निरुद्धप्रकाश रोगमें लोहकी पोली नली जो दोनों तरफसे खुली हो उसे लिंगेंद्रियके मूत्रमार्गमें घृत चुपडकर प्रवेश करे और यह नली लोहेकी नहो तो लकडी (नरसल आदि) की हो या लाखकी (या काचकी) बनी हो ॥ ४१ ॥ परिषेकके लिये शिशुमार (सूस जलजंतु) या वाराहकी चरबी और मज्जा हित है तथा यथोचित वायुनाशक द्रव्यों युक्त चक्र तैल योजना करना चाहिये ॥ ४२ ॥ फिर तीन २ दिन पीछे वह नली जरा २ मोठी प्रवेश करते रहें इस प्रकारसे छिद्र बढावें और चिकना अन्न भोजन करावे ॥ ४३ ॥ अथवा सेवनी छोडकर जरा चीर दे और सद्यो व्रणकी भांति उपचार करे ॥ ४४ ॥

संनिरुद्धगुद वल्मीक और अग्निरोहिणी ।

संनिरुद्धगुदं रोगं वल्मीकं वह्निरोहिणीम् । प्रत्याख्याय यथायोगं चिकित्सितमथाचरेत् ॥ ४५ ॥ विसर्पोक्तेन विधिना साधयेदग्निरोहिणीम् । संनिरुद्धगुदे योज्या निरुद्धप्रकशक्रिया ॥ ४६ ॥ शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् । विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ ४७ ॥

(श्लो० ४१) निरुद्धप्रकाशस्थाने निरुद्धप्रकश इत्यार्षः ।

" संनिरुद्धगुदरोग तथा वल्मीक " और " अग्निरोहिणी " इन्हें पहले कहकर (कि आराम हो या न हो) फिर चिकित्सा करे ॥ ४५ ॥ अग्निरोहिणी नामक फुन्सीको विसर्पोक्त विधानसे शोधन करे और संनिरुद्धगुदरोगमें निरुद्ध प्रकाशके अनुसार गुदस्थानमें नलिका प्रविष्ट करे ॥ ४६ ॥ और वल्मीक रोगको शस्त्रसे उखाडकर (खुरचकर) क्षार या अग्निसे दग्धकरे और अर्बुदके विधानके अनुसार शोधन और रोपण करे ॥ ४७ ॥

वल्मीककी विशेष चिकित्सा ।

वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मजम् । तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ ४८ ॥ कुलत्थिकाया मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च । आरेवतस्य मूलैश्च दंतीमूलैस्तथैव च ॥ ४९ ॥ श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् । सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक् तमपनाहयेत् ॥ ५० ॥

जिस मनुष्यके वल्मीक रोग बहुत न बढा हो (कच्चा हो)और मर्मस्थानमें न हो तहां शोधन करके (वमन विरेचन द्वारा रोगीके दोषोंको शुद्ध करके) वैद्यको रुधिर निकलवा देना चाहिये (फस्त खुला देनी चाहिये) ॥४८॥ और वल्मीकपर कुलथीकी जड गिलोय निमक किरमालाकी जड दंतीकी जड ॥ ४९ ॥ निसोथकी जड इनमें पलल (पिसे हुवे तिल) और सत्तू मिलाकर लेप करे तथा स्निग्ध और थोडे गरमकर इन्हींसे उपनाह करे ॥ ५० ॥

पक्कं वा तद्विजानीयाद्गतीः सर्वा यथाक्रमम् । अभिज्ञाय ततश्छित्वा प्रदहेन्मतिमान्भिषक् ॥ ५१ ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् । व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक् ॥ ५२ ॥ सुमना ग्रंथयश्चैव भल्लातकमनःशिले । कालानुसारी सूक्ष्मैला चंदनागुरुणी तथा एतैः सिद्धं निम्बतैलं वल्मीके रोपणं हितम् ॥ ५३ ॥ पाणिपादोपरिश्रोतं तु च्छिद्रैर्बहुभिरावृतम् । वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तत्तु विजानता ॥ ५४ ॥

जब जानेकि वल्मीक पक गया तब उसकी सब तरफ यथाक्रम गति (मार्ग) जानकर चीरा लगावे फिर बुद्धिमान् वैद्य उसे जलाभी दे ॥ ५१॥ और दुष्टमांसको शुद्ध करके उसपर क्षारसे घिस दे (क्षार लगा दे) जब व्रण शुद्ध जाना जाय तब

(श्लो० ५०) पललं तिलपिष्टमिति डल्लनः शब्दस्तोमश्च ।

उसे बुद्धिमान् वैद्य रोपण करे ॥ ५२ ॥ चमेली, पीपला मूल, भिलावे मैनसिल कालानुसारी (तगर) छोटी इलायची, चंदन और अगर इनसे सिद्ध किया हुवा निंबका तैल वल्मीक रोगके व्रण रोपणमें हित है (कालानुसारीको डल्लनाचार्य कृष्ण सारिवा बताते हैं)॥५३॥हाथ पावों पर जो वल्मीक बहुत छिद्रवाली हो और शोथ भी हो तो वह वल्मीक जानकार वैद्योंको त्याग देना चाहिये ॥ ५४ ॥

अहिपूतनकाचिकित्सा वृषणकच्छु ।

धात्र्याः स्तन्यं शोधयित्वा बाले साध्याहि पूतना । पटोलपत्रत्रिफलारसां जनविपाचितम् ॥ ५५ ॥ पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् । त्रिफलाकोलखदिरकषायं व्रणरोपणम् ॥ ५६ ॥ कासीसरोचनातुत्थहरिता-लरसांजनैः । लेपोम्लपिष्टो बदरीत्वग्वा सैंधवसंयुता ॥ ५७ ॥ कपालतुत्थ-जं चूर्णं चूर्णकाले प्रयोजयेत् । चिकित्सेन्मुष्ककच्छूं चाप्याहिपूतन-पानवत् ॥ ५८ ॥

बालकके अहि पूतना रोगमें प्रथम धाय (दूध पिलानेवाली) के दूधकी शुद्धि करके पटोलपत्र, त्रिफला, रसोत इनमें पकाया हुवा ॥ ५५ ॥ घृत पीना कष्टसाध्य अहि पूतनाको नष्ट करता है तथा त्रिफला वेरीकी छाल और खैरकी छालका क्वाथ अहिपूतन रोगके व्रणको रोपण करता है ॥ ५६ ॥ तथा कसीस गोरोचन नीला थोथा हरताल और रसोत इन्हें कांजीमें पीसकर लेप करना अथवा बेरकी छाल सैंधानमक मिलाकर लेप करना ॥ ५७ ॥ ठेकरी नीलाथोथा इन्हें चूर्ण करके बुरकावे और "वृषणकच्छु" रोगको भी अहिपूतनाकी भांति पान करानेको उपरोक्त घृत देवे और क्वाथ चूर्ण आदि भी वेही उपयोग करे ॥ ५८ ॥

गुदभ्रंशका यत्न ।

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहाभ्यक्तं प्रवेशयेत् । कारयेद्गोफणाबंधं मध्यच्छि-द्रेण चर्मणा ॥ ५९ ॥ विनिर्गमार्थं वायोश्च स्वेदयेच्च मुहुर्मुहुः । क्षीरं महापंचमूलं मूषिकां चांत्रवर्जिताम् ॥ ६० ॥ ततस्तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् । गुदभ्रंशमिदं कृच्छ्रं पानाभ्यंगात्प्रसाधयेत् ॥ ६१ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

(श्लो० ५६) अस्य श्लोकस्य पूर्वार्द्धं पूर्वस्योस्योत्तरार्द्धेन सहान्वेतव्यम् ।

(श्लो० ५७) अम्लपिष्टः कांजिकेन पिष्टः ।

(श्लो० ५८) कपालं मृत्खर्परम् ।

गुदभ्रंश (कांच निकलनेके) रोगमें गुदा (निकली हुई कांच) को घृतसे चुपड़कर भीतर प्रवेशकर देना चाहिये फिर चमडेके बीचमें छेदकरके उसको गोफणाबंधकी रीतिसे बांध दे ॥ ५९ ॥ और वायुके निःसरण होनेके लिये बार २ स्वेदन करते रहे और दूध महत् पंचमूल आंतें निकालीं हुई चूही ॥ ६० ॥ इनमें तैल पकावे और वायुनाशक औषधें भी उसमें संयुक्त करे यह तैल पिलाने तथा लगानेसे कष्ट साध्य गुदभ्रंश रोगको साधनकर देता है अर्थात् अच्छाकर देता है॥ ६१॥

इस रोगमें (कांच निकलनेमें) कांचको भीतर चढाकर अनारके छिलकेके पानीसे चूतड़ धोना और वही पीसकर लगाना बहुत लाभ दायक है यह हमारा कई वारका परीक्षित है ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सान्वयभाषाटीकायां चिकित्सित-
स्थाने विंशतितमोध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शूकरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम शूकरोगकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं।

सर्षपिका अष्ठीलिका और ग्रंथितकी चिकित्सा ।

संलिख्यं सर्षपीं सम्यक् कषायैरवचूर्णयेत् । कषायेष्वेवं तैलं च कुर्वीत व्रणरोपणम् ॥ १ ॥ अष्ठीलिकां जलौकोभिर्ग्राहयेत्कुशलो भिषक् । तथा चानुपशाम्यंति कफग्रंथिवदुद्धरेत् ॥ २ ॥ स्वेदयेद्ग्रंथितं शश्वन्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् । सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ ३ ॥

शूक रोगोंके लक्षण पहले निदान स्थानमें लिख चुके हैं उनमें से यदि सर्षपिका हो तो उसे खुरचकर अच्छी तरहसे कषाय द्रव्योंके चूर्णसे अवचूर्णित करे (बुरकावे) और उन्हीं कषायद्रव्योंसे तैल सिद्ध करके रोपण करनेमें उपयोग करे (कषायद्रव्य पहले सूत्र स्थानमें देखिये) ॥ १ ॥ " अष्ठीलिका " को वैद्य जलौका लगाकर ठीक करे और जो इससे शांत न हो तो कफकी ग्रंथिकी भांति शस्त्रसे उखाड़ ले (और व्रणोपचार करे) ॥ २ ॥ " ग्रंथित " रोग हो तो उसे बुद्धिमान् नाडी स्वेदसे स्वेदित करे तथा स्निग्ध और सुखोष्ण उपनाहन द्रव्योंसे उपनाहन करे (सेके) ॥ ३ ॥

(श्लो० १) कषायैः कषायद्रव्यैः कषायवृक्षचूर्णैः कषायवृक्षैर्मिश्रकोक्तशोधनद्रव्यैः (इति नि. सं)
(श्लो० २) कफग्रंथिरिव शस्त्रेणोद्धरणं (इति डल्हनः)

कुंभीका और अलजीका यत्न ।

कुंभीकां पाकमापन्नां भिंद्याच्छुद्धां तु रोपयेत् । तैलेन त्रिफलालोध्र-तिंदुकाम्रातकेन तु ॥ ४ ॥ ग्राहयित्वा जलौकोभिरलजीं सेचयेत्ततः । कषायैस्तेषु सिद्धं च तैलं रोपणमिष्यते ॥ ५ ॥ बलातैलेन कोष्णेन मृदितं परिषेचयेत् । मधुरैः सर्पिषा स्निग्धैः सुखोष्णैरुपनाहयेत् ॥ ६ ॥

" कुंभीका " यदि पक गई हो तो उसे भेदन करके शोधन करे जब शुद्ध हो जावे तब त्रिफला लोध तिंदुक और आम्रातक (आमडे) इनके तैलसे रोपण करे ॥ ४ ॥ " अलजी " पर पहले जलौक लगावे फिर कषाय द्रव्यों (प्लक्षादि) के क्वाथसे धोवे और इन्हीं कषाय द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तैल रोपणके लिये काममें लावे ॥ ५ ॥ " मृदित " को गरम २ बलातैल मर्दन करके सेचन करे और मधुर (काकोल्यादि) द्रव्योंको घृत मिला थोडा गरम कर उपनाहन करे ॥ ६ ॥

संमूढपिडिका अवमंथ पुष्करिकाका यत्न ।

संमूढपिडिकां क्षिप्रं जलौकोभिरुपाचरेत् । भित्त्वा पर्यागतां चापि लेपये-त्क्षौद्रसर्पिषा ॥ ७ ॥ अवमंथे गते पाकं भिन्ने तैलं विधीयते । धवाश्व-कर्णपत्तंगशल्लकीतिंदुकीकृतम् ॥ ८ ॥ क्रियां पुष्करिकायां तु शीतां सर्वां प्रयोजयेत् । जलौकोभिर्हरेच्चासृक्सर्पिषा चावसेचयेत् ॥ ९ ॥

" संमूढपिडिका " हो तो शीघ्रही जलौक लगाके उपचार करे (रुधिर निकलवावे) और जो पक जावे तो भेदन करके शहत घृत लेपन करे ॥ ७ ॥ "अवमंथ" पक जावे तो भेदन करके धव, अश्वकर्ण, पतंग, शल्लकी, तिंदुकी इनसे साधन किय हुवा तैल उपयुक्त करे ॥ ८ ॥ " पुष्करिका " हो तो उसपर सब शीतल क्रिया करे और जलौकोंसे रुधिर निकलवावें तथा घृतका सेचन करे ॥ ९ ॥

स्पर्शहानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक और शोणितार्बुद ।

स्पर्शहान्यां हरेद्रक्तं प्रदिह्यान्मधुरैरपि । क्षीरेक्षुरससर्पिर्भिः सेचयेच्च सुशी-तलैः ॥ १० ॥ पिडिकामुत्तमाख्यां च बडिशेनोद्धरेद्भिषक् । उद्धृत्य मधुसंयुक्तैः कषायैरवचूर्णयेत् ॥ ११ ॥ रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके । पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं च देयं तैलमनंतरम् ॥ १२ ॥

(श्लो० ७) पर्यागतां पाकप्राप्ताम् ।

क्रियां कुर्याद्भिषक्प्राज्ञस्त्वक्पाकस्य विसर्पवत् । रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियां शोणितजेर्बुदे ॥ १३ ॥

यदि शूकदोषसे " स्पर्शहानि " होवे तो रुधिर निकलवावे और मधुर द्रव्यों का लेप करे और दूध ईखका रस घृत इनको शीतलही सेचन करे (अर्थात् तरडे दे या धोवे) ॥ १० ॥ " उत्तमा" नामक पिडिका हो तो उसे बडिश नामक शस्त्रसे उखाड ले उखाडकर कषाय द्रव्योंसे चूर्ण शहत लगाकर बुरका दे ॥ ११ ॥ " शतपोनक " हो तो उसे खुरचकर रस क्रिया करे और पृथक्पर्णी आदि द्रव्योंसे सिद्ध किया हुवा तैल निरंतर लगावे ॥ १२ ॥ यदि " त्वक्पाक " रोग हो तो बुद्धिमान् वैद्य विसर्पके अनुसार क्रिया करे " शोणितार्बुद " हो तो उसपर रक्त विद्रधिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये ॥ १३ ॥

शूकरोगोंमें कर्तव्य ।

कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रिया । शोधनं रोपणं चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ १४ ॥ यथास्वं सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् । हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥ १५ ॥ अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक्सम्यक्प्रतिक्रियाम् ॥ १६ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

वैद्यको चाहिये कि शूकरोगमें देख देख विचार २ कर जहां जैसो २ उचित हो वैसेही कषाय कल्क घृत तैल रस क्रिया शोधन और रोपण कर्म करे ॥ १४ ॥ यथोचित घृत पीना पथ्य करना विरेचन रुधिर निकलवाना और हलका भोजन ये शुकरोगमें हित हैं ॥ १५ ॥ अर्बुद (मांसार्बुद) और मांसपाक विद्रधि तथा तिलकालक इनको (असाध्य हैं) ऐसा कहकर फिर वैद्य जैसे बने उसकी प्रतिक्रिया करे ॥ १६ ॥

(वक्तव्य) शतपोनक भगंदर भी होता है तथा अर्बुद रोग इससे पृथक् भी होता है तथा तिलकालक क्षुद्र रोग भी है परंतु इनके और अन्यत्र वर्णितके लक्षणोंसे अंतर देखना इत्यादि ॥

(वक्तव्य २) शूकोंके उपयोगका अब प्रचार नहीं है इससे अबके समयमें शूक दोषज उपाधियां नहीं होती परंतु तीक्ष्ण सविष औषधों तथा तेल पट्टी आदिका अब भी प्रायः मूर्खोंमें प्रचार है उससे अभी भी दारु व्याधियाँ कइयोंको होजाती हैं ॥

इति सुश्रुते भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगाणां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम मुखके रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

वायुके होठरोगका यत्न ।

चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च । वातजेऽभ्यंजनं कुर्यान्नाडीस्वेदं च बुद्धिमान् ॥ १ ॥ मतिमानोष्ठकोपे तु शाल्वणं चोपनाहने । मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरं हितम् ॥ २ ॥ श्रीवेष्टकं सर्जरसं सुरदारु सगुग्गुलु । यष्टीमधुकचूर्णं तु विदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ ३ ॥

(मुखके ओष्ठ आदि सात स्थानोंके सब पैंसठ रोग और उनके लक्षण निदानस्थानके सोलहवे अध्यायमें पहले वर्णन कर चुके हैं) उनमेंसे वायुके ओष्ठकोप (होठके रोग) में चारों प्रकारके स्नेह (घृत तैल वसा मज्जा) से (या केवल घृतसे) मोम मिलाकर अभ्यंजन (मालिश) करना चाहिये और नलिकासे स्वेदभी करावे ॥ १ ॥ बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि उपनाहके लिये शाल्वण उपयोग करे और मस्तिष्क तथा नस्यसे वायु नाशक तैल उपयुक्त करे (मस्तिष्क शिरोबस्तिको कहते हैं तथा मूर्द्धा हितकारक मर्दनादिकोभी) ॥ २ ॥ और श्रीवेष्टक (सरल निर्यास) तथा राल, देवदारु, गूगल और मुलेठी ये पीसकर बुरकाना या लगाना चाहिये ॥ ३ ॥

पित्तजहोठ कोप ।

रक्तपित्ताभिघातोत्थं जलौकोभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्य्यादशेषतः ॥ ४ ॥

रुधिरके पित्तके और अभिघात (चोट आदि लगने) के ओष्ठकोपमें जलौक लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये और सब क्रिया पित्तजविद्रधिके समान करनी उचित हैं ॥ ४ ॥

कफके ओष्ठकोपका यत्न ।

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च । हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे

(श्लो० १) चतुर्विधेन स्नेहेन चतुःस्नेहेन वातजे ओष्ठकोपे इति श्लोकद्वयपठितपदयोर्मेलयित्वान्वयः कार्यः ।

(श्लो० ३) प्रतिसारणं घर्षणं लेपनं च ।

कफात्मके ॥५॥ त्र्यूषणं स्वर्जिकाक्षारो यवक्षारो विडं तथा । क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ६ ॥

कफके ओष्ठकोप रोगमें प्रथम रुधिर निकलवावे और शिरोविरेचन दे तथा धूम पान करावे (या धूनीदे) और स्वेद करावे (सेके) तथा कफनाशक द्रव्योंका कवल (ग्रास) मुखमें रहने दे ॥ ५ ॥ और त्रिकटु सज्जीखार जवाखार और बिड-लवण इन्हें शहतमें मिलाकर लगावे ॥ ६ ॥

मेदाज ओष्ठकोप ।

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः । प्रियंगुत्रिफलारोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ ७ ॥ एतदोष्ठप्रकोपानां साध्यानां कर्म कीर्तितम् । दंत-मूलगतानां तु रोगाणां कर्म वक्ष्यते ॥ ८ ॥

मेदोज ओष्ठकोपमें प्रथम स्वेदित करके चीर दे और फिर शोधन करके अग्निसे दग्ध कर देना हित है और प्रियंगु त्रिफला लोध इन्हें शहत मिलाकर लगावे ॥ ७॥ यह साध्य ओष्ठप्रकोप रोगोंका यत्न वर्णन किया गया अब अगाडी दंतमूल (मसूढों) के रोगोंका यत्न वर्णन किया जाता है ॥ ८ ॥

दंतमूल (मसूढों) के रोग ।

शीतादका यत्न ।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् । निःक्वाथ्य त्रिफला मुस्तं गंडूषः सरसांजनः ॥ ९ ॥ प्रियंगवश्च मुस्तं च त्रिफला च प्रलेपनम् । तस्य च त्रिफलासिद्धं मधुकोत्पलपद्मकैः ॥ १० ॥

"शीताद" नामक दंत रोगमें रुधिर निकलवाकर सोंठ सरसों त्रिफला नागर-मोथा और रसोत इन्हें क्राथ करके कुल्ले करे ॥ ९ ॥ और प्रियंगु नागरमोथा और त्रिफला इनका लेप करे तथा त्रिफला मुलेटी कमल और पद्माख इनसे सिद्ध किये घृतकी नस्य (नास) देवे ॥ १० ॥

दंतपुप्पुट और दंतवेष्टकका यत्न ।

दंतपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् । सपंचलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् । हितः शिरोविरेकश्च नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ॥ ११ ॥

(श्लो० १०) त्रिफलासिद्धं घृतमिति (नि० सं०)

विस्राविते दंतवेष्टे व्रणांश्च प्रतिसारयेत् । रोध्रपतंगयष्ट्याह्वलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥ १२ ॥ गंडूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः । काकोल्यादौ दशक्षीरसिद्धं सर्पिश्च नस्यतः ॥ १३ ॥

" दंतपुप्पुट " रोगके आरंभमें रुधिर काढना चाहिये और पांचों नमक यवक्षार शहत मिलाकर लगाना उचित है और शिरोविरेचन देना नस्य देना और स्निग्धभोजन ये भी हित है ॥ ११ ॥ और " दंतवेष्ट " रोगमें रक्तादि स्रावित करनेके पीछे लोध, पतंग, मुलेठी और लाख इनका चूर्ण शहत मिलाकर व्रणोंपर लगावे ॥ १२ ॥ और दूधवाले (गूलर आदि) वृक्षोंके क्वाथमें शहत घृत और शर्करा मिलाकर कुल्ले करे और काकोल्यादि गण और दश गुणा दूध डालकर घृत सिद्ध करे इसकी नस्य दे ॥ १३ ॥

शोषिरयत्न ।

शौषिरे हृतरक्ते तु रोध्रमुस्तरसांजनैः । सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गंडूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १४ ॥ सारिवोत्पलयष्ट्याह्वशावरागुरुचंदनैः । क्षीरे दशगुणे सिद्धं सर्पिर्नस्ये च पूजितम् ॥ १५ ॥

" शोषिर " रोगमें रुधिर निकलवाकर लोध, नागरमोथा, रसोत इन्हें शहतमें मिलाकर लेप करना श्रेष्ठ है और कुल्ले करनेमें दूधके वृक्ष गूलर आदि हितकारक है ॥ १४ ॥ और सारिवा, कमल, मुलेठी,सावरलोन, अगर और चंदन इन्हें लेकर दश गुण दूध ले घृत सिद्ध करे और इस घृतकी नस्य दे (सारिवादिका क्वाथ लेना॥१५॥

परिदर और उपकुशका यत्न ।

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ १६ ॥ संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे तथा । काकोदुंबरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेदसृक् ॥ १७ ॥ क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् । पिप्पलीसर्षपांश्चैव नागरं नैचुलं फलम् ॥ १८ ॥ सुखोदकेन संसृष्टं कवलं चापि धारयेत् । घृतं मधुरकैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ १९ ॥

" परिदर " रोगमें विचक्षण वैद्य शीतादोक्त क्रिया ओंको करे ॥ १६ ॥ और

(श्लो० १३) काकोल्यादौ दशक्षीरसिद्धं सर्पिरित्यत्र दशक्षीरसिद्धं दशगुणेन क्षीरेण सिद्धं सर्पिरिति डल्लनः।

(श्लो० १५) शावरः शावराख्यलोध्रः ॥

(श्लो० १७) संशोध्योभयत इति वमनविरेचनाभ्यां ऊर्ध्वमधश्च कायं शोधयित्वा शिरोविरेचनेन शिरश्चशोधयेदित्यर्थः (इति नि. सं.)

" उपकुश " नामक रोगमें वमन विरेचन द्वारा शरीरकी शुद्धि करके शिरोविरेचनसे शिर भी शोधन करना चाहिये और काकोदुंबरी (अंजीर) के पत्तेसे अथवा गोजिह्वाके पत्तेसे (रगडकर) रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ १७ ॥ और त्रिकटु लवण शहत मिलाकर लगावे तथा पीपल सरसों सोंठ और जलवेतसका फल इन्हें गरम जलसे पीसकर ग्रास बनाकर मुखमें रक्खे अथवा मधुर द्रव्यों काकोली आदिसे सिद्ध किया हुवा घृत भी कवल (ग्रास) और नस्यके लिये हित है॥१८॥१९॥

दंतवैदर्भ और अधिदंतका यत्न ।

शस्त्रेण दंतवैदर्भे दंतमूलानि शोधयेत् । ततः क्षारं प्रयुंजीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ २० ॥ उद्धृत्याधिकदंतं तु ततोऽग्निमवचारयेत् । कृमिदंतकवच्चापि विधिः कार्यो विजानता ॥ २१ ॥

दंतवैदर्भरोगमें दाँतोंकी जडको शस्त्रसे (खुरचके या चीरके) शुद्ध करे फिर उसपर कोईसा क्षार लगा ले और सब क्रिया शीतल करे ॥२०॥ और जो अधिक दंत हो तो उसे उखाडकर अग्निसे दाग लगा दे अथवा कृमि दंतके अनुसार जानकार वैद्य यत्न करे ॥ २१ ॥

अधिमांसका यत्न ।

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेभिश्चूर्णैरुपाचरेत् । वचातेजोवतीपाठासर्जिकायावशूकजैः ॥ २२ ॥ क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः । पटोलत्रिफलानिम्बकषायश्चात्र धावने ॥ २३ ॥ हितः शिरोविरेकश्च धूमो वैरेचनश्च यः । सामान्यं कर्म नाडीनां विशेषं चात्र मे शृणु ॥ २४ ॥

" अधिमांस " रोग हो तो उसे शस्त्रसे छेदन करके नीचे लिखी औषधोंके चूर्णमें शहत मिलाकर लगावे वच तेजवती पाठ सज्जी और जवाखार ॥ २२ ॥ अथवा पीपल और शहत इनका ग्रास धारण करे और धोनेके लिये परवल त्रिफला और निंबका क्काथ चाहिये ॥ २३ ॥ यहां शिरोविरेचन और विरेचनिक धूम भी हित है नाडी रोगका सामान्य उपाय नाडीव्रणके विधानमें वर्णन हो चुका है और उससे विशेष यहांपर अगाडी हमसे श्रवण करो ॥ २४ ॥

दंतनाडीका विशेष यत्न ।

यद्दंतमधिजायेत नाडी तं दंतमुद्धरेत् । छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि

(श्लो० २४) नाडीनां दंतनाडीनां कर्म सामान्यं वातादिनाडी व्रणतुल्यं कर्म चोक्तं, तदेव अत्रच दंतनाडीनां विशेषमपि मे शृणु इति ।

नो परिजो भवेत् ॥ २५ ॥ शोधयित्वा दहेद्वापि क्षारेण ज्वलनेन वा । भिनत्त्युपेक्षिते दंते हनुकास्थिगतिर्ध्रुवम् ॥ २६ ॥ समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च । उद्धृते तूत्तरे दंते सशूले स्थिरबंधने ॥ ॥ २७ ॥ रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता रोगा घोरा भवंति हि । काणः संजायते जंतुरर्दितं चास्य जायते ॥ २८ ॥ चलमप्युत्तरं दंतं मंतो नापहरेद्भिषक् । धावने जातिमदनस्वादुकंटकखादिरम् ॥ २९ ॥ कषायं जातिमदनकटुकस्वादुकंटकैः । यष्ट्याह्वरोध्रमंजिष्ठाखदिरैश्चापि यत्कृतम् । ॥ ३० ॥ तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दंतगतां गतिम् । कीर्तिता दंतमूलेतु क्रिया दंतेषु वक्ष्यते ॥ ३१ ॥

दंतनाडी (दांत की जडका नासूर जिसे भाषामें जाडिया कहते हैं) जिस दांतके पास (जडमें) हो उसे दांतको उखाड देना चाहिये और दूषित मांसको शस्त्रसे छेदन कर देना चाहिये परंतु जो ऊपरका दांत हो तो उसे कदाचित् नहीं उखाडना चाहिये ॥ २५ ॥ फिर उसे शोधन करके क्षारसे या अग्निसे जला देवे यदि वह दांत जिसकी जडमें नाडी है नहीं उखडा जावे तो वह गति (नासूर) ठोडीके हाडको भेदन करदेवे ॥ २६ ॥ इस कारण उस दांतको जडसे उखाड लेना चाहिये और जो टूटा हुआ अस्थिका टुकडा वहां हो तो उसे भी अलग कर देवे परंच ऊपरका दांत नहीं उखाडे यदि वह शूलयुक्त और ढीले बंधवालाभी (हिलताभी) हो ॥ २७ ॥ क्योंकि ऊपरके दांत उखाडनेसे रुधिर अधिक निकलता है जिससे पूर्वोक्त भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा मनुष्य काणा होजाता है अथवा उसे अर्दित नाम वातव्याधि होजाती है ॥ २८ ॥ इस वास्ते ऊपरके दांत और जाडको हिलते हुवेकोभी नहीं उखडना चाहिये । दंतनाडीके व्रणको धोनेके लिये चमेली, मैनफल, गोखरू और खैर इनका क्वाथ श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ और चमेली, मैनफल, कुटकी, गोखरू, मुलेटी, लोध, मँजीठ और खदिर इनसे साधन किया हुआ ॥ ३० ॥ तैल शोधन करनेवाला है तथा दंतगत गति (दांतोंकी जडके नासूर) को अच्छा कर देता है (यह दंतनाडी मुखके भीतरको भी होती है और कइयां के बाहरको ठोडीके ऊपर होती है) दंतमूल दाँतोंकी जडके रोगोंकी क्रिया वर्णन करी जा चुकी अगाडी दंत रोगोंकी क्रिया कही जाती है ॥ ३१ ॥

(श्लो० २८) एषः श्लोकः पूर्वेणार्द्धेन अग्रिमेणार्द्धेन सह मिलित्वान्वेतव्यः ।

(श्लो०३० । ३१) जातिमदनादिकैः खदिरांतैःयत्कृतंशोधनं तैलं तद्धि दंतगतां गतिं हन्यादित्यर्थः ।

दंतरोगोंकी चिकित्सा ।

दंतहर्ष-शर्करा-और कापालिका ।

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा । निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दंतहर्षप्रमर्दना ॥ ३२॥ स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्निग्धं च भोजनम् । रसो रसयवाग्वश्च क्षीरं संतानिका घृतम् ॥ ३३॥ शिरोबस्तिहितश्चापि क्रमोयश्चानिलापहः ॥ ३४ ॥ अहिंसन्दंतमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् । लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्ताः प्रतिसारयेत् । दंतहर्षक्रिया वापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ ३५॥ कपालिका कृच्छ्रतमा तथाप्येषा क्रिया हिता॥ ३६॥

"दंतहर्ष रोग" हो तो स्नेहके (चिकनी वस्तुओंके) गरम गरम ग्रास मुखमें रक्खे तथा त्रैवृत घृतके कवल रक्खे और वायुनाशक औषधोंके क्काथ सेवन करे ये सब दंतहर्षके नाशक हैं ॥ ३२ ॥ तथा स्नेहका धूवाँ और स्निग्ध नस्य तथा चिकना भोजन मांसका रस मांसरसके बनाये यवागू दूध और मलाई ये सब हित हैं ॥ ३३ ॥ और शिरका बस्ति कर्म तथा जो वायुनाशक क्रम है वह सबही हित है ॥ ३४ ॥ "दंतशर्करा" रोग हो तो दांतोंकी जडको बचाकर वहांकी शर्कराको अलग कर देना चाहिये फिर वैद्य उसपर लाखके चूर्णमें शहत मिलाकर रगड दे अथवा सब क्रिया दंत हर्षकेसी करे ॥ ३५ ॥ "कपालिका" नामक रोग कष्टसाध्य होता है परंतु वहां भी यही उपरोक्त क्रिया करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

कृमिदंत और हनुमोक्ष ।

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदंतकम् । तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगंडूषधारणैः ॥ ३७ ॥ भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः । चलमुद्धृत्य च स्थानं विदहेच्छुषिरस्य च ॥ ३८ ॥ ततो विदारीयष्टयाह्वशृंगाटककशेरुकैः । तैलं दशगुणे क्षीरे सिद्धं नस्ये हितं भवेत् ॥ ३९ ॥ हनुमोक्षे समुद्दिष्टां कुर्याच्चार्दितवत्क्रियाम् ॥ ४० ॥

यदि "कृमिदंत रोग" हो और दांत हिलता न हो तो उसे स्वेदित करे अर्थात् बफारा ले विस्रावण करे और अवपीडन करे (नस्य ले) तथा वायुनाशक स्नेहसे कुल्ले करे ॥ ३७ ॥ तदा भद्रदार्व्यादि द्रव्यों और सांठीका लेप करे स्निग्ध भोजन करे यदि वह दांत (कीडेवाला) हिलता हो (नीचेका हो) तो उसे उखाडले और

(श्लो० ३८) शुषिरस्यापि स्थानं दहेदित्यर्थः ।

उसकी जगहको जरा जलादे तथा "शुषिरके स्थानको भी जलादे ॥ ३८ ॥ और विदारी मुलेटी सिंघाडे कसेरु दशगुणा दूध डाल तैल सिद्ध करे तथा इसकी नस्य दें ॥ ३९ ॥ और हनुमोक्षरोगमें अर्दित वातोक्त सब क्रिया करे ॥ ४० ॥

दंतरोगमें पथ्य ।

फलान्यम्लानि शीतांबु रूक्षान्नं दंतधावनम् । तथातिकठिनान्भक्ष्यान्दंतरोगी विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥ साध्यानां दंतरोगाणां चिकित्सितमुदीरितम् । जिह्वागतानां साध्यानां कर्म वक्ष्यामि सिद्धये ॥ ४२ ॥

दंतरोगवाला इतनी वस्तु त्याग देवे खट्टेफल बहुत ठंढापानी रूखा भोजन दँतून करना और करडे पदार्थ (और फलोंका गरम भुरता भी) न खावे ॥ ४१ ॥ साध्य दंतरोगोंकी चिकित्सा वर्णन की गई है (असाध्य जो दंतरोग हैं उनकी चिकित्सा नहीं कही गई जैसे श्यावदंत दालन और अवभंजक ये असाध्य जानने चाहिये) इससे अगाडी अब जिह्वाके साध्य रोगोंकी सिद्धिके लिये यत्न कहते हैं ॥ ४२ ॥

जिह्वाके वातज और पित्तज कंटक रोगका यत्न ।

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् । कंटकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा भवेत् ॥ ४३ ॥ पित्तजेषु विघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डूषं नस्यं च मधुरं हितम् ॥ ४४ ॥

जिह्वाका "वातज कंटक" रोग हो तो वायुके ओष्ठकोपमें जो प्रथम चिकित्सा वर्णन होचुकी है वही वैद्यको करनी चाहिये ॥ ४३ ॥ और जिह्वाके "पितज कंटक" रोगमें प्रथम उसे घिसें जिससे दुष्ट रुधिर निकल जावे फिर मधुर द्रव्योंहीके प्रतिसारण और कुल्ले तथा नस्य उपयुक्त करने चाहिये ॥ ४४ ॥

कफकंटक ।

कंटकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये । पिप्पल्यादि मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे ॥ ४५ ॥ गृह्णीयात्कवलांश्चापि गौरसर्षपसैंधवैः । पटोलनिंब वार्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ४६ ॥

जिह्वाके "कफकृत कंटक" में प्रथम जिह्वाको खुरचे जब दुष्ट रक्त निकल जावे तब पिप्पल्यादि द्रव्योंमें शहत मिलाकर उसपर रगडदे ॥ ४५ ॥ और सुपेद सरसों और सैंधानिमक इनका ग्रास रक्खें तथा परवल निंब एवं वृंताक और जवाखारके यूषके संग भोजन करे ॥ ४६ ॥

(श्लो० ४६) वार्ताकु बृहतीफलं वृंताकं वा ।

उपजिह्वाका यत्न ।

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगंडूषधूमैश्चैन-मुपाचरेत् ॥ ४७ ॥ जिह्वागतानां कर्मोक्तं तालव्यानां प्रवक्ष्यते ॥ ४८ ॥

"उपजिह्वा" को खुरचकर उसपर क्षार लगा देवे और शिरोविरेचन कुल्ले तथा धूम आदिसे उपचार करे (जिह्वाका अलास नाम रोग असाध्य है इससे उसका यत्न नहीं कहा) ॥ ४७ ॥ जिह्वाके रोगोंके यत्न कहे गये अब अगाडी तालूके रोगोंकी चिकित्सा कहते हैं ॥ ४८ ॥

तालु रोगोंकी चिकित्सा ।

गलशुंडी ।

अंगुष्ठांगुलिसंदंशेनाकृष्य गलशुंडिकाम् । छेदयेन्मंडलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् ॥ ४९ ॥ नोत्कृष्टं चैव हीनं च त्रिभागं छेदयेद्भिषक् । अत्यादानात्स्रवेद्रक्तं तन्निमित्तं म्रियेत च ॥ ५० ॥ हीनच्छेदाद्भवेच्छोफो लाला निद्रा भ्रमस्ततः । तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः । गलशुंडीं तु संछिद्य कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् ॥ ५१ ॥ मरिचातिविषापाठावचाकुष्टकुटन्नटैः । क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ५२ ॥ वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् । निःक्वाथ्य पिचुमंदं च कवलं तत्र योजयेत् ॥ ५३ ॥ इंगुदीकिंणिहीदंतीसरलासुरदारुभिः । पंचांगीं कारयेत्पिष्टैर्वर्तिं गंधोत्तरां शुभाम् । ततो धूमं पिबेज्जंतुर्द्विरन्हः कफनाशनम् ॥ ५४ ॥ क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः ॥ ५५ ॥

यदि "गलशुंडी" बढ जावे तो अँगूठे और अंगुलीके संदंश (चिमटे) से पकड कर जरा खेंचकर मंडलाग्र शस्त्रसे जितनी जीभपर लटक पडी हो उसे काटले ॥ ४९ ॥ ज्यादा और कम नहीं काटे तृतीय भागकाटना चाहिये ज्यादा कट जानेसे रुधिर वहने लगता है जिससे मनुष्य मर जाता है ॥ ५० ॥ और कम कटे तो शोथ होजाता है राल बहने लगती है निद्रा भ्रम और तम (अंधेरी आ जाती है) इस कारण दृष्टकर्मा विशारद वैद्य (जिसने कई बार इसे काटते देखा हो वह यत्नसे गलशुंडी (बढा हुआ फूला हुआ काक) को काटे और फिर यह

(श्लो० ५४) पंचांगीमिति पंचभिरंगभूतैर्द्रव्यैः कृता पंचांगी इति डल्हनः ।

क्रिया करे ॥ ५१ ॥ मिरच अतीस पाठा वच कूट श्योनाक इनमें जवाखार और लवण मिलाकर उसे रगडदे (मलदे) ॥ ५२ ॥ और वच अतीस पाठा रास्ना कुटकी और निंब इन्हें क्वथित करके इनका ग्रास धारण करे ॥ ५३ ॥ और हिंगोट किणही (कटभी) दंती सरला (निसोथ) और देवदारु इन पांचोंको पीसकर इसमें सुगंधित वस्तु चन्दन वालछड आदि डालकर इसकी बत्ती (चुरटके आकार) बनावे और इसका धूम दिन में दो बार पान करे यह कफ-नाशक है ॥ ५४ ॥ तथा जवाखारसे सिद्ध मूंगका यूष भोजन करनेमें हित-कारक है ॥ ५५ ॥

तुंडिकेरी आदिका यत्न।

तुंडिकेर्यध्रुषे कूर्मे संघाते तालुपुप्पुटे ।
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ॥ ५६ ॥

तुंडिकेरी अध्रुषमांस कच्छपमांस संघात और तालुपुप्पुट इन सब रोगों में प्रतिसारण कवल आदिमें यही उपरोक्त विधि करनी चाहिये पर शस्त्रकर्ममें हरेक ठौर विशेषता अर्थात् भेद है वह सर्वत्र एकसा नहीं कहीं छेद्य कहीं भेद्य कहीं लेख्य ऐसे यथायोग्य होता है ॥ ५६ ॥

तालुपाक।

तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् । स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधि-श्चानिलनाशनः । कीर्तितं तालुजानां तु कंठ्यानां कर्म वक्ष्यते ॥ ५७॥

तालुपाकमें पित्तनाशक (शीतल) विधान करना उचित है । और तालुशोषमें स्नेहन (चिकनाईसे तरकरना) तथा स्वेद न करना चाहिये और वायुनाशक विधि करनी चाहिये। तालुके (साध्य) रोगोंकी विधि वर्णन करी गई (रक्तार्बुदकी क्रिया नहीं कही इससे वह असाध्य जानो) अब यहांसे अगाडी कंठके रोगोंकी क्रिया वर्णन करी जाती है ॥ ५७ ॥

कंठरोगोंकी चिकित्सा।

रोहिणी।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम्। छर्दनं धूमपानं च गंडूषो नस्यकर्म च ॥ ५८ ॥ वातकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् । सुखो-

(श्लो० ५६) एषएवविधिः समानएवकार्यः । विशेषः शस्त्रकर्मणि तत्रतुंडकेरी भेद्यातालुपुप्पुटके अध्रुषे संघातेऽपिच्छेद्यः, मांसोच्छेद्यात् लेख्यःकूर्मोपि लेख्यश्छेद्योवाऽवस्थया (इति नि० सं०)

ष्णान्स्नेहगंडूषान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ ५९ ॥ पतंगशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् । द्राक्षापरूषकक्काथौ हितौ च कवलग्रहे ॥ ६० ॥ अगारधूमकटुकैः श्लैष्मिकीं प्रतिसारयेत् । श्वेताविडंगदंतीषु तैलं सिद्धं ससैंधवम् ॥ ६१ ॥ नस्यकर्मणि योक्तव्यं तथा कवलधारणे । पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसंभवाम् ॥ ६२ ॥

कंठरोहिणी जो साध्य है उसमें रक्तमोक्षण वमन धूमपान गंडूष (कुल्ले करना) और नस्य ये हित है ॥ ५८ ॥ वायुकी रोहिणीमें रक्तमोक्षके पीछे उसे लवणसे प्रतिसारण करना और वारंवार सुखोष्ण (निवाये) स्नेहके कुल्ले धारण करना उचित है ॥ ५९ ॥ पित्तकी रोहिणीमें (रक्त निकलवाकर) पतंग शक्कर और शहतसे प्रतिसारण करे और दाख और फालसोंका क्वाथ मुखमें रखनेको हित है ॥ ॥ ६० ॥ कफकी रोहिणीमें घरका धूम (घमासा) और कटुक द्रव्यों (त्रिकटु आदि) का प्रतिसारण करे (रगडे) और श्वेता (किरमानी वच) विडंग दंती इनका सिद्ध किया सैंधव युक्त तैल ॥ ६१ ॥ नस्य कर्म तथा कवल धारण करनेमें उपयोग करना चाहिये । और रक्तकी रोहिणीको वैद्य पित्तरोहिणीके अनुसार साधन करे ॥ ६२ ॥ सन्निपातकी रोहिणी असाध्य है इससे उसकी चिकित्सा नहीं लिखी ॥

कंठशालूकयत्न ।

विस्राव्य कंठशालूकं साधयेत्तुंडकेरिवत् ।
एककालं यवान्नं च भुंजीत स्निग्धमल्पशः ॥ ६३ ॥

" कंठशालूक " रोगको विस्रावित करके तुंडीकेरीके अनुसार साधन करना चाहिये और एकबार जवका भोजन थोडा चिकना करे ॥ ६३ ॥

अधिजिह्वा और वृंद ।

उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम् ।
एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ ६४ ॥

" अधिजिह्वा रोग " को उपजिह्वाके अनुसार साधन करे और एक वृंदको विस्रावण करके शोधन करे ॥ ६४ ॥

(श्लो० ६१) श्वेता पारसीवचा किरमानीवच इति लोके । तदुक्तं निघंटौ 'पारसीकवचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीतिसा' । शुक्लावचा शुक्लत्वात् श्वेता अपि तन्नाम इति, श्वेताविडंगदंतीषु सिद्धं तैलं नस्यकर्मणि कवलधारणेच योक्तव्यमित्यन्वयः ।

(श्लो० ६३) तुंडकेरिरित्यार्षः ।

गिलायु और गलविद्रधि ।

गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ।
अमर्मस्थं सुपक्कं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ६५ ॥

" गिलायु " नामक व्याधिको शस्त्रसे साधन करे और " गलविद्रधि " जो मर्मस्थानसे बचा हुवा हो और ठीक पक गया हो उसे शस्त्रसे भेदन करे ॥ ६५ ॥

सर्वगत मुखरोग ।

वातज ।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ६६ ॥ ततोऽस्मै स्नैहिकं धूममिमं दद्याद्विचक्षणः।शालराजादनैरंडसारेंगुदिमधूकजाः ॥ ६७ ॥ मज्जानो गुग्गुलुध्याममांसीकालानुसारिवाः । श्रीसर्जरसशैलेयमधूच्छिष्टानि वा हरेत् ॥ ६८ ॥ तत्सर्वं सुकृतं चूर्णं स्नेहेनालोड्य युक्तितः । टुंटूकवृंतं सक्षौद्रं मतिमांस्तेन लेपयेत्६९॥ एष सर्वसरे धूमः प्रशस्तः स्नैहिको मतः । कफघ्नो मारुतघ्नश्च मुखरोगविनाशनः ॥ ७० ॥

वायुके समस्त मुख रोगमें लवणोंके चूर्णोंसे प्रतिसारण करे और वायुनाशक देवदारु आदिसे सिद्ध तैल नस्य और कवल धारणमें हित है ॥ ६६ ॥ और इसमें स्नेहका धूवाँ दे तथा शाल खिरनी अरंड इनकी छाल हिंगोट और महुआ इनकी गिरी गूगुल ध्याम (गंधतृण) जटामांसी कालवल्ली लवंगराज शिलारस मोम इनको ले ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ चूर्णकर स्नेह (घृत) मिला श्योनाकके डँठलपर शहद लगाकर इसे लगावे ॥६९॥ इसका धूम पानकरे यह स्नेहिक धूम कफ वायुका नाश करनेवाला समस्त मुखके रोग नाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥

पित्तज सर्वमुखरोग ।

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ७१ ॥

(श्लो० ६६) चूर्णैर्लवणैः पंचलवणचूर्णैरिति डल्लनः । वातहरैः भद्रदार्व्यादिकैः ।

(श्लो० ६७) इंगुदी मधूकजा मज्जानः ।

(श्लो० ६८।६९) ध्यामं गंधतृणं कालानुसारिवा कालवल्ली श्रीलवंगं टुंटूकः श्योनाकः (इतिनि० सं०)

पित्तज सर्व मुखरोगमें प्रथम वमन विरेचनसे शरीर शुद्ध करके फिर सब क्रिया पित्तनाश करनेवाली मधुर और शीतल करनी चाहिये ॥ ७१ ॥

कफज सर्व मुखरोग।

प्रतिसारणगंडूषधूमसंशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे विधिं कुर्यात्कफापहम् ॥ ७२ ॥ पिबेदतिविषां पाठां मुस्तं च सुरदारु च । रोहिणीं कटुकाख्यां च कुटजस्य फलानि च ॥ ७३ ॥ गवां मूत्रेण मनुजो भागैर्धरणिसंमितैः । एष सर्वान्किष्टकृतान्रोगान्यो गोपकर्षति ॥ ७४ ॥

कफज सर्व मुखरोगमें प्रतिसारण (रगडनेकी औषध) गंडूष (कुल्ले) धूम (धूमपान या धूनी) और संशोधन ये सब कफनाशक विधिपूर्वक करने चाहिये ॥ ७२ ॥ तथा अतीस पाठा नागरमोथा देवदारु कटुकाख्या रोहिणी अर्थात् कुटकी कुटज फल (इंद्रजौ) ॥ ७३ ॥ इन सबको कूट चूर्ण करे इसमेंसे एक धरण (टंक) प्रमाण गोमूत्रके संग पीवे यह योग सब कष्ट साध्य मुखरोगोंको नष्ट करता हैं ॥ ७४ ॥

मुखरोगोंमें साधारण यत्न।

क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकांजिकैः ।
विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥ ७५ ॥

दूध ईखका रस गोमूत्र दही दहीका जल अम्लरस काँजी तथा तैल और घृत इनमें से यथा योग्य दोषको देखकर केवल धारण करावे (तथा और यत्न जहां जैसा उचित हो वैसा करे) ॥ ७५ ॥

असाध्य मुखरोगोंकी संख्या।

रोगाणां मुखजातानां साध्यानां कर्म कीर्तितम् । असाध्या अपि वक्ष्यंते रोगा ये यत्र कीर्तिताः॥ ७६ ॥ ओष्ठप्रकोपा वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः । दंतमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिंगगतिशौषिरौ ॥ ७७ ॥ दंतेषु च न सिध्यंति श्यावदालनभंजनाः । जिह्वागतेष्वलासस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ७८ ॥ स्वरघ्नो बलयो वृंदो बलासश्च विदारिका । गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ७९ ॥ असाध्या कीर्तिता ह्येते रोगा नवदशैव च । तेषां चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ८० ॥

इति चिकित्सिते द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मुखके रोग जो साध्य थे उनकी चिकित्साका वर्णन किया गया और जो असाध्य जिन जिन स्थानोंमें हैं उनका भी वर्णन करदेते हैं ॥ ७६ ॥ ओष्ठकोपमें मांसका रुधिरका और त्रिदोषका ओष्ठकोप असाध्य त्यागने योग्य है और दंत-मूल रोगोंमें एक त्रिदोषकी नाड़ी और दूसरा शौषिर अर्थात् महाशौषिर ये दो असाध्य हैं ॥ ७७ ॥ दंतरोगोंमें श्यावदंत (दांत नीला हो) और दालन अवभंजन ये असाध्य हैं जिह्वाके रोगोंमें अलास असाध्य है और तालुके रोगोंमें अर्बुद असाध्य होता है ॥ ७८ ॥ कंठ रोगोंमें स्वरघ्न वलय वृंद बलास, विदारिका गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और त्रिदोषकी रोहिणी असाध्य होते हैं ॥ ७८ ॥ मुखके रोगोंमेंसे ये १९ रोग असाध्य होते हैं परंतु ईश्वरकी गतिसे असाध्यभी कभी साध्य हो जाते हैं जैसे लिखा है कि "असाध्यः साध्यतां याति" इस लिये वैद्यको इनकी भी चिकित्सा बुद्धिबलके अनुसार करनी चाहिये परंतु पहले ऐसा कहकर कि ये असाध्य हैं फिर क्रिया करनी चाहिये ॥ ८० ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥२२॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शोफानां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शोफ अर्थात् सोजेकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

सर्वांगशोथ ।

षड्विधोवयऽवसमुत्थः शोफोऽभिहितो लक्षणतः प्रतिकारश्च सर्वसरस्तु पंचविधः तद्यथा वातपित्तश्लेष्मसन्निपातविषनिमित्तः ॥ १ ॥

किसी एक अंगमें उठा हुआ विद्रधि आदिका पूर्वज शोथ छः प्रकारका होता है उसके लक्षण प्रतिकार सूत्रस्थानकी १७ अध्यायमें वर्णन होचुके हैं परंतु सब शरीर-में होनेवाला (जो विद्रध्यादिका पूर्वज नहीं होता वह) शोथ पांच प्रकारका होता है जैसे १ वायुका २ पित्तका ३ कफका ४ संनिपातका ५ विषका ॥ १ ॥

शोथका हेतु ।

तत्रापि तर्पितस्याऽध्वगमनादतिमात्रमभ्यवहरतो वा पिष्टान्नहरितकशाक-लवणानि, क्षीणस्य वातिमात्रमम्लमुपसेवमानस्य मृत्पक्वलोष्टकटशर्करा-नूपोदकमांससेवनादजीर्णिनो वा ग्राम्यधर्मसेवनाद्विरुद्धाहारसेवनाद्धस्त्य-

---

(वाक्य १) सर्वसरः सर्वांगगतः ।

श्वोष्ट्ररथपदातिसंक्षोभणाद्दोषा धातून् प्रदुष्य श्वयथुमापादयंत्यखिले शरीरे ॥ २ ॥

तहां अतिभोजन करके मार्ग चलनेसे (और बहुत भोजन करनेसे) तथा मिट्टीके पदार्थ हरेशाक लवण विशेष खानेसे क्षीण मनुष्य (जो ज्वर अतिसार आदिरोगसे दुबला होगया हो उस) को जादा खटाई खा लेनेसे मिट्टीका पका हुआ लोष्ट अर्थात् ठेकरा खानेसे कट (तृण) और शर्करा (धूलरेत) खा जानेसे तथा जल किनारेके और जलके जीवोंका मांस खाने तथा अजीर्ण में मैथुन करनेसे विरुद्ध पदार्थ खानेसे हाथी घोड़े ऊंट रथकी सवारी या पैदल विशेष चलनेसे क्षुभित हुये दोष धातुवोंको दूषित करके सब शरीरमें (वा हाथ पांव मुह आदिमें) सोथ उत्पन्न कर देतेहैं ॥ २ ॥

वातादिजनितशोथके लक्षण ।

तत्र वातश्वयथुररुणः कृष्णो वा मृदुरनवस्थितस्तोदादयश्चात्र वेदनाविशेषाः ॥ ३ ॥ पित्तश्वयथुः पीतो रक्तो वा शीघ्रानुसार्योषचोषादयश्चात्र वेदनाविशेषाः ॥ ४ ॥ श्लेष्मश्वयथुः पाण्डुः शुक्लो वा स्निग्धः कठिनः शीतो मंदानुसारी कंड्वादयश्चात्र वेदनाविशेषाः ॥ ५ ॥ सन्निपातश्वयथुः सर्ववर्णवेदनः ॥ ६ ॥

इनमें वायुका शोथ कुछ लाल अथवा काला होता है नरम और चलायमान होताहै और शूल (चमक) आदिकी वेदना विशेष होती है ॥ ३ ॥ पित्तका शोथ पीला लाल शीघ्र फैलनेवाला होता है गरमी (दाह) और चोष (चूसनेकी सी व्यथा) इत्यादि वेदना विशेष उसमें होती है ॥४॥ कफका शोथ कुछ पीला सुपेद चिकना करड़ा शीतल मंद फैलनेवाला होता है और खाज आदि उसमें वेदना विशेष होती हैं ॥५॥ सान्निपातका शोथ सब रंगका और सबके सी वेदनावाला होता है॥६॥

विषज शोथ ।

विषनिमित्तस्तु गरोपयोगाद्दुष्टतोयसेवनात्प्रकोथोदकावगाहनात् सविषसत्वदिग्धचूर्णनावचूर्णनाद्वा सविषमूत्रपुरीषशुक्रस्पृष्टानां तृणकाष्ठादीनां संस्पर्शनात् स तु मृदुः क्षिप्रोत्थानोऽवलंबी चलो वा दाहपाकप्रायश्च भवति ॥ ७ ॥

(वा० २) मृत्पक्कलोष्टमिति मृत्तिकाजनितपक्कघठशकलं टेकरीति । कटः तृणमिति शब्दस्तोमे ।

(वा० ७) अवलंबी अवलंबनशीलः आश्रयीभूतः । प्रकोथः पूतिभावः सविषकीटादिकोथप्रकुपितोदकस्नानात् हस्तपादप्रक्षालनाद्वा ।

विषजनित शोथ विषके उपयोगसे दूषित जलके सेवनसे सडे हुवे जलमें स्नान करनेसे विषके सत्वयुक्त चूर्ण शरीर पर लगनेसे विषैल जंतुके विषयुक्त मूत्र, विष्ठा वीर्य आदिसे सने हुए तृण, काष्ठ आदिके स्पर्शसे (भल्लातक भिलावेका तैल धूँवा आदि लगजानेसे) शोथ उत्पन्न होजाता है यह कोमल और शीघ्रही उठनेवाला और अवलंबी अवलंबन करनेवाला अर्थात् जबतक उस विषका प्रभाव रहे तबतक रहनेवाला और चलायमान होता है तथा इसमें दाह (जलन) और पकाव भी हो जाया करता है ॥ ७ ॥

स्थानभेदसे शोथकारक दोष।

भवंति चात्र ॥ दोषाः श्वयथुमूर्द्ध्वं हि कुर्वंत्यामाशयस्थिताः । पक्वाशयस्था मध्ये च वर्चःस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नं देहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ ८ ॥

यदि आमाशयमें इसके कारणरूप दोष हो तो ऊपरके शरीर मुख आदिमें सोथ करतेहैं और पक्वाशयमें हो तो मध्यमें (धडमें) सोजा करतेहैं और मलाशयमें हो तो नीचेके शरीर (पावों) में सोथ पैदा करतेहैं तथा सब शरीर में व्याप्त हो ते समस्त शरीरमें सोजा उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥

शोथकी कष्टसाध्यता और असाध्यता।

श्वयथुर्मध्यदेशे यः स कष्टः सर्वगश्च यः । अर्द्धांगेरिष्टभूतश्च यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पति ॥ ९ ॥ श्वासः पिपासा दौर्बल्यं ज्वरश्छर्दिररोचकः । हिक्कातीसारकासश्च शूनं संक्षपयंति हि ॥ १० ॥ सामान्यतो विशेषाच्च तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ ११ ॥

जो सोजा मध्य देश (हृदय गुदा आदि) में हो अथवा सब शरीरमें हो वह कष्टसाध्य है तथा जो आधे अंगमें (दाहनेहीमें या बाँये हीमें) हो अथवा नीचेसे ऊपरको गमन करनेवाला हो वह अरिष्ट अर्थात् असाध्य होता है ॥ ९ ॥ जिस शोथ रोगवालेके श्वास हो तृषा हो दुबलापन हो ज्वर हो वमन होता हो अरुचि हो हिचकी हो अतीसार हो तथा खांसी हो तो वह शोथ रोगी मृत्युको प्राप्त होवे ॥ १० ॥ अब अगाडी सामान्यतासे और विशेषतासे इन सबकी औषधि वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥

(वा०९) यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पति सतुपुरुषं क्षपयति नारींतु यश्चाधः परिसर्पतीति । तदुक्तं भावप्रकाशे निंबंधसंग्रहेच "ऊर्द्ध्वगामीनरं पद्भ्यामधोगामी तथास्त्रियम् " इति ।

शोथ रोगमें पथ्य ।

शोफिनः सर्व एवं परिहरेयुरम्ललवणदधिगुडवसापयस्तैलघृतपिष्टमयगुरूणि ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण शोथरोगवाले इतनी वस्तु त्याग देवे अम्ल (खटाई) लवण (खारी लवण) दही गुड (नया गुड) वसा (चरबी) दूध तैल घृत पिष्टिके पदार्थ और गरिष्ठ पदार्थ (जैसे अरवी आदि) ॥ १२ ॥

वातादि शोथका यत्न ।

तत्र वातश्वयथौ त्रैवृतमैरंडतैलं वा मासमर्द्धमासं वा पाययेत् । न्यग्रोधादिकषायसिद्धं सर्पिः पित्तश्वयथौ । आरग्वधादिसिद्धं श्लेष्मश्वयथौ । सन्निपातश्वयथौ स्नुहीक्षीरपात्रं द्वादशभिरम्लपात्रैः प्रतिसंसृष्टं दंतीप्रतीवापं सर्पिः पाचयित्वा पाययेत्। विषनिमित्ते शोफे कल्पेषु प्रतीकारः॥ १३ ॥

तहाँ वायुके शोथमें त्रिवृत तैल अथवा अरंडका तैल महीने भरतक या पंदरह दिनतक पिलावे । पित्तके शोथमें न्यग्रोधादिकके क्वाथसे सिद्ध किया घृत पिलावे । कफके शोथमें और आरग्वधादिसे सिद्ध किया हुवा घृत पान करावे और सन्निपातके शोथमें थोहरका दूध एक पात्र और कांजी बारह पात्र इसमें दंती डालकर घृत पकावे इसे पान करावे और विषके शोथका यत्न अगाडी कल्पस्थानमें वर्णन किया जावेगा ॥ १३ ॥

शोथकी सामान्य चिकित्सा ।

अथातः सामान्यचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १४ ॥ तिल्वकघृतचतुर्थानि यान्युक्तान्युदरेषु तु ततोन्यतममुपयुज्यमानं श्वयथुमुपहंति, मूत्रवर्तिक्रियां वा सेवयेत्, नवायसं वाहरहर्मधुना, विडंगातिविषाकुटजफलभद्रदारुनागरमरिचचूर्णं वा धरणमुष्णांबुना, त्रिकटुक्षारायश्चूर्णानि वा त्रिफलाकषायेण, मूत्रं वा तुल्यक्षीरं, हरीतकीं वा तुल्यगुडामुपयुंजीत॥ १५॥

अब यहांसे अगाडी हम शोथ रोगकी सामान्य औषधें वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥ उदर रोगोंमें जो तीन घृत वर्णन किये (१ हरीतकी चूर्ण आदि २ गव्ये पयसिमहावृक्षक्षीरादि ३ चव्य चित्रकादि) और चौथा तिल्वक घृत (वातव्याधि कथित)

(गद्य १५) तिल्वकघृतचतुर्थानीति हरीतकी चूर्णप्रस्थेत्यादिना एकं, गव्येपयसिमहावृक्षक्षीरेत्यादि द्वितीयं, चव्यचित्रकेत्यादि तृतीयं एतान्युदरोगोक्तानि त्रीणि चतुर्थं तिल्वकघृतं वातव्याध्युक्तं इत्यर्थः। मूत्रवर्तिरपिचोदररोगोक्ता, नवायसं प्रमेहापिडकाचिकित्सिते पठितमिति (निबंधसंग्रहः)

इनमेंसे कोईसा उपयोग करनेसे शोथको हरता है, अथवा मूत्रवर्तिकी क्रिया (जो उदर रोगोंमें कही है) सेवन करे अथवा नवायस लोह (जो प्रमेह पिडिकामें कहा है) शहतके साथ नित्य ले, अथवा विडंग अतीस इंद्रजौ देवदारु सोंठ मिरच इन सबको समान भाग ले चूर्णकर धरण (टंक) प्रमाण गरम जलसे लेवे, अथवा सोंठ मिरच पीपल यवक्षार लोहचूर्ण इन्हें त्रिफलाके क्राथसे लेवे, अथवा गोमूत्रमें बराबर दूध मिलाकर पीवे, अथवा बडी हरडेकी छालका चूर्णकर समान पुराना गुड मिलाकर नित्य उपयोग करे ॥ १५ ॥

देवदारुं शुंठीं वा, गुग्गुलुं वा मूत्रेण, वर्षाभूकषायानुपानं वा तुल्यगुडं श्रृंगबेरं, वा वर्षाभूकषायं मूलकल्कं वा, श्रृंगबेरं वा पयोनुपानमहरहर्मासं, व्योषवर्षाभूकषायसिद्धेन वा सर्पिषा मुद्गोलुंबान् भक्षयेत् ॥ १६ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकमयूरवर्षाभूसिद्धं वा क्षीरं पिबेत्, महौषधमुरंगीमूलसिद्धं वा, त्रिकटुकैरंडमूलश्यामामूलसिद्धं वा, वर्षाभूश्रृंगबेरसहादेवदारुसिद्धं वा, तथालाबूबिभीतकफलकल्कं वा तंडुलाम्बुना॥ १७॥

देवदारु, और सोंठ, (सुखोष्ण जलसे) ले अथवा गुग्गुलको गोमूत्रके संग पीवे, अथवा सोंठ या अदरखमें पुराना गुड समान मिलाकर उसे सांठीके क्राथसे लेवे, अथवा सांठीका क्राथही पीवे, अथवा पिप्पली मूलका कल्क बनाकर पीवे अथवा नित्य सोंठ (या अदरख) खाकर (या चूर्ण पाकके) दूध पीवे एक मासतक अथवा त्रिकटु और सांठी इनके क्राथसे सिद्ध किये हुये घृतके साथ मूंगकी उलुंबी (वाकली) खावे ॥१६॥ अथवा पीपल पीपलामूल चव्य चित्रक मयूर(अपामार्ग)सांठी इनसे सिद्ध किया दूध पीवे अथवा सोंठ मुरंगी (सहँजना) की जड इनसे पकाया हुआ दूध पीवे अथवा त्रिकटु अरंडकी जड निसोथ मूल इनसे पकाया हुवा दूध पीवे अथवा सांठी अदरख सहा (पृश्निपर्णी) देवदारु इनसे सिद्ध किया दूध पीवे तथा घी या और बहेडे फलका कल्क चावलोंके जलसे पीवे ॥१७ ॥

(वक्तव्य) इनमें विचार लेना चाहिये कि, किस दोषका शोथ हो उसीके नाशक योगका उपयोग करें जैसे अंतका योग जो चावलोंके जलसे लेनाहै यह पित्त शोथका है इत्यादि विचार लेवे ॥

क्षारपिप्पलीमरिचश्रृंगबेरानुसिद्धेन च मुद्गयूषेणालवणेनाल्पस्नेहेन भोजं-

---

(ग० १६) मुद्गोलुंबान् मृष्टान् मुद्गानिति डल्लनः । अन्येतु मुद्गकृतकुल्माषान् इत्याहुः ।

(ग० १७) मयूरो अपामार्गः । क्षीरं सर्वत्र गव्यं योज्यम् ।

येयवान्नं गोधूमान्नं वा, वृक्षकार्कनक्तमालनिंबवर्षाभूत्काथैश्च परिषेकः, सर्षपसौवर्चलसैंधवशार्ङ्गेष्टाभिश्च प्रदेहः कार्यः ॥ १८॥ यथादोषं च विरेचनास्थापनानि तीक्ष्णान्यजस्रमुपसेवेत् । स्नेहस्वेदोपनाहांश्च, शिराभिश्चाभीक्ष्णं शोणितमवसेचयेदन्यत्रोपद्रवशोफादिति ॥ १९ ॥

जवाखार पिप्पली मिरच अदरख ये डालकर बनाये हुवे अलोने मूंगके यूष जिसमें थोडीसी चिकनाई हो उसके संग जव अथवा गेंहू भोजन करावे, कुडा आक करंज निंब सांठी इनके क्वाथसे परिषेक करे (तरडेदे), सरसों सौवर्चल (सूर्यावर्त या सौंचर नौन) सैंधा नमक शार्ङ्गेष्टा (काकजंघा) इनका प्रदेह (लेप करे)॥ १८ ॥ और दोषोंके अनुसार वारंवार तीक्ष्ण विरेचन और आस्थापन करावे तथा स्नेहन स्वेदन और उपनाहन भी करावे तथा शिरावेध कराके वारंवार रुधिर (थोडा थोडा) निकलवावे परंतु औपद्रविक शोथ न हो तो (और यदि औपद्रविक शोथ हो तो उसका यथोक्त यत्न करे) ॥ १९ ॥

भवति चात्र॥ पिष्टान्नमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजांगलं च ।
स्त्रियो घृतं तैलपयोगुरूणि शोफं जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ २० ॥

इति चिकित्सितस्थाने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

यहां श्लोक है कि ॥ पिट्ठीके पदार्थ खटाई नमक (सब प्रकारके) मदिरा मिट्टी दिनमें सोना जंगली जीवोंसे अन्य मांस स्त्री सेवन घृत तैल दूध भारी गरिष्ठ पदार्थ इतनी वस्तुओंको शोथ नष्ट करनेकी इच्छावाला मनुष्य अवश्य त्याग देवे ॥ २० ॥

(वक्तव्य) यही पथ्य पहले वर्णन होचुके फिर क्यों कहे इसका कारण यह है कि दृढता द्योतनार्थ फिर वर्णन किये हैं कि अवश्यमेव त्याग करे ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातोऽनागतबाधाप्रतिषेधनीयं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम अनागत बाधा (विना आये हुवे रोग) के प्रतिषेध (रोकने) की विधिरूपक चिकित्सा (बरताव) का व्याख्यान करते हैं अर्थात् इस प्रकारके नियमों और वरतावेका उपदेश करते हैं जिनके करते रहनेसे कोई व्याधि होवेही नहीं ॥

दिनचर्य्या ।

उत्थायोत्थाय सततं स्वस्थेनाऽऽरोग्यमिच्छता ।
धीमता यदनुष्ठेयं तत्सर्वं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

उत्थाय उत्थाय अर्थात् नित्य प्रभात उठतेही स्वस्थ मनुष्य जो आरोग्यताकी इच्छा रक्खें उस बुद्धिमान् को जो जो वरताव करने चाहिये उन सबका वर्णन करते हैं ॥

परिशिष्ट ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धयेत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
तत्र सर्वाघशांत्यर्थं स्मरेच्च मधुसूदनम् ॥ १ ॥

अर्थ–ब्राह्ममुहूर्त (चार घडीके सबेरे अनुमान) पर स्वस्थ मनुष्यको अपनी आयुकी रक्षाके लिये जाग उठना चाहिये उस समय समस्तपापोंकी शांतिके लिये ईश्वरका स्मरण करना उचित है ॥१॥

मलोत्सर्गविधि ।

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।
तदंत्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥ २ ॥

अर्थ–सबेरेही मलादिक (मलमूत्र) का त्याग करना आयुः (और स्वस्थता) बढाने वाला है और आंतोंकी गुडबडाट तथा पेट फूलने और उदररोग तथा भारीपना इनको दूर करता है ॥ २ ॥

गुदादिमलमार्गाणां शौचं कांतिबलप्रदम् । पवित्रकरमायुष्यमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥ ३ ॥ प्रक्षालनं मतं पाण्योः पादयोः शुद्धिकारकम् । मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं तापनाशनम् ॥ ४ ॥

मलत्याग करके गुदा आदि मलमार्गोंको खूब साफकरके धोना चाहिये इससे कांति (उज्ज्वलता) होती है और बल होता है तथा पवित्र कारक और आयुबढाता है दरिद्र, क्लेश और पापका नाश होता है ॥ ३ ॥ इसके पीछे (गुदलिंग आदि प्रक्षालन पीछे) हाथों और पावोंको भी खूब मलकर धोना (साफ करना) चाहिये यह हाथपावोंका धोना शुद्धि कारक है मल (मैल) श्रम (थकान) इनका

(श्लो० १) उत्थायोत्थायइतिवीप्सायांमत्यहमितिकर्तव्यताख्यापनायेत्येके अन्येतु उत्थायेति अभियोज्यार्थः अभितोयोगमभिसंयोगंकृत्वा अभियोगउद्यमः । सततं निरंतरम् । अहरहरित्यर्थ इति (नि० सं०)

नाशक है और वृष्य (पुरुषार्थ देनेवाला) है नेत्रोंको हित है और ताप (संताप गरमी) का नाशक है ॥ ४ ॥

मलादिवेग रोकनेके दोष ।

आटोपशूलौ परिकर्तिता च संगः पुरीषस्य तथोर्द्ध्ववातः । पुरीषमार्गादथ वा निरेति पुरीषवेगे निहिते नरस्य ॥ ५ ॥ वातमूत्रपुरीषाणां संगोऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ ६ ॥ बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे ॥ ७ ॥

पुरीष (दस्त) के रोकनेमें इतने अवगुण होते हैं आटोप (पेट अफरना) शूल परिकर्तिका (कसरनीकिसी पीडा) तथा मलका रुकजाना उर्द्धवात (वायु प्रतिलोम होकर ऊपरको चढना) तथा मलमार्गसे मलका साफ न निकलना इत्यादि ॥ ५ ॥ अधोवायुके रोकनेसे इतने अवगुण होते हैं वायुका रुकजाना मूत्र रुकना मल रुकजाना पेट फूलजाना क्लम (ग्लानि) होना दरद होना तथा पेटमें और भी वायुके विकार होजाना ॥ ६ ॥ मूत्रके रोकनेसे इतने अवगुण होते हैं बस्ति और लिंगमें पीडा मूत्रकृच्छ्र शिरमें दरद नलोंका नवना वंक्षणमें अफारा (इससे इनके वेगोंको कभी न रोके) ॥ ७ ॥

दंतकाष्ठविधिः ।

तत्रादौ दंतपवनं द्वादशांगुलमायतम् । कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रथितमव्रणम् ॥ २ ॥ अयुग्मग्रंथियच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम् । अवेक्ष्य र्तुं च दोषं च रसं वीर्यं च योजयेत् । कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः ॥ ३ ॥

तत्रादौ (अर्थात् प्रभात उठकर मल त्यागादि आवश्यक कार्य करके) सबसे पहले दंत धावन करना चाहिये (दतौन करना चाहिये) (दतौन) बारह अंगुलके अनुमान लंबी और कनिष्ठिका अंगुली जैसी मोटी कोमल गांठोंसे रहित और व्रण (कखोडर) से भी रहित (साफ चाहिये) ॥ २ ॥ तथा अगाडीसे दुशाखी और गठुलेवाली न हो तथा श्रेष्ठभूमिमें उत्पन्न हुये वृक्षकी होवे ऐसी दतौनको ऋतु और दोष तथा रस और वीर्य विचारकर या तो कसेले वृक्षकी हो या मीठे वृक्षकी या कडवे वृक्षकी या चरपरे वृक्षकी हो उससे प्रभात उठकर दंत धावन करे ॥ ३ ॥

(श्लो० २) दंतपवनं दंतधावनं कुर्यादितिशेषेणान्वयः ।

निंबश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ।
मधूको मधुरे श्रेष्ठः करंजः कटुके तथा ॥ ४ ॥

तिक्त अर्थात् कडवे वृक्षोंमें निंब श्रेष्ठ है और कसेले वृक्षोंमें खदिर मीठे वृक्षोंमें महुवा और चरपरोंमें करंज दंतधावनके लिये श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

क्षौद्रव्योषत्रिवर्गाक्तं सतैलं सैंधवेन च ।
चूर्णेन तेजोवत्याश्च दंतान्नित्यं विशोधयेत् ॥ ५ ॥

तेजोवतीके चूर्णमें शहत त्रिकटु त्रिसुगंधि मिलाकर उसमें तैल और सैंधा लवण युक्तकर इससे नित्य दाँतोंका शोधन करे ॥ ५ ॥

एकैकं[४] घर्ष[६]ये[५] द्दंतं मृ[१]दुना कूर्चके[२]न च[३] ।
दंतशो[७]धनचूर्णे[८]नदंतमांसान्यबा[९]धयन् ॥ ६ ॥

दतौनकी मृदु कूचीसे एक एक दांतको रगडना (साफ करना) चाहिये और उपरोक्त दंतशोधन चूर्णसे दंतमांस (मसूढों) को धोना चाहिये परंतु मसूढोंको बाधा न पहुँचनी चाहिये ॥ ६ ॥

दतौनके गुण ।

तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति ।
वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यं करोति च ॥ ७ ॥

दतौन करना मुखकी दुर्गंधि और दाँतोंका उपदेह अर्थात् मैल तथा कफ इनको नष्ट करता है तथा उज्ज्वलता और अन्नपर रुचि और सौमनस्यता उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥

दंतधावनका निषेध ।

न[२१] खादे[२२]द्गलताल्वो[१]ष्ठजिह्वारोगसमुद्भवे । त[२]थास्य[३]पाके श्वा[४]से च कासहिक्का-व[६]मीषु च ॥ ८ ॥ दुर्ब[७]लो जीर्णभक्त[८]श्च[९] मूर्च्छा[१०]र्तो मद[११]पीडितः । शिरो-रु[१२]गार्तस्तृषित[१३]ः श्रान्त[१४]ः पान[१५]क्लमान्वितः । अ[१६]र्दितः क[१७]र्णशूली च[१८] दंत-रो[१९]गी च मानव[२०]ः ॥ ९ ॥

(श्लो० ६) कूर्चकेन इति तृणगुच्छरूपेण दंतधावनाग्रेण ।

(श्लो० ८) न खादेत् दंतधावनं कुर्यादित्यर्थः । अत्रचोभयोः श्लोकयोःसहान्वयः ।

गलरोगी तालु और ओष्ठ तथा जिह्वाके रोग होनेमें और मुखपाकमें श्वास रोगमें खांसीमें हिचकीकी व्याधिमें वमनमें दतौन नहीं करना चाहिये॥८॥तथा दुर्बल मनुष्य अजीर्णमें भोजन कियेपर मूर्च्छासे पीडित मदसे पीडित शिर रोगवाला तृषायुक्त थकाहुआ मद्यपानादिसे जिसे क्लम हो अर्दित वायुका रोगी जिसके कानमें दरद हो तथा दाँतों के रोगवाला इतने मनुष्य दंतधावन न करे ॥ ९ ॥

जिह्वामलहरण।

जिह्वानिर्लेखनं रौप्यं सौवर्णं वार्क्षमेव च ।
तन्मलापहरं शस्तं मृदु श्लक्ष्णं दशांगुलम् ॥ १० ॥

जिह्वा खुरचनेकी सीख चांदीकी या सुवर्ण की या वृक्षकी कोमल साफ दस अंगुल लंबी चाहिये यह जिह्वाके मैल दूर करनेमें श्रेष्ठ होती है (इससे जीभको रगडकर साफ करना चाहिये ॥ १० ॥

मुखवैरस्यदौर्गंध्यशोषजाड्यहरं सुखम् ।
दंतदार्ढ्यकरं रुच्यं स्नेहगंडूषधारणम् ॥ ११ ॥

तैल घृतादिकको मुखमें धारण करके कुल्ले करदेना मुखकी विरसता दुर्गंधि शोष (खुश्की) और जडता (करडेपन) इनको दूर करता है और सुखकारक है तथा दांतोंको दृढताकारक है तथा रुचिकारक है ॥ ११ ॥

(वक्तव्य) दतौनके पीछे पानीसे कुल्ले करना सुश्रुतजीने नहीं लिखा उसका समाधान यह है कि जब उन्होंने दंतपवन तथा दंतघर्षण और दाँतोंको धोना लिखा है तो स्वयं जान लेना चाहिये कि जल मुँहमें लिये विना धोना कैसे होसकता है बस इसीसे कुल्ले समझ लेना चाहिये हां पीछेके मनुष्योंकी मंदबुद्धिता समझकर भावमिश्रने जलसे कुल्ले करना पृथक् भी लिखा है यथा "श्लोक—गंडूष मपि कुर्वीत शीतेन पयसा मुहुः । कफतृष्णामलहरं मुखातः शुद्धिकारकम्" ॥१॥ अर्थात् ठंढे जलसे कुल्ले भी करे और कईबार कुल्ले करे इससे कफ तृषा मल नष्ट होते हैं तथा मुखके भीतरकी शुद्धि होती है ॥

मुँह धोना।

क्षीरवृक्षकषायैर्वा क्षीरेण च विमिश्रितैः । भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्य च । प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा ॥ १२ ॥

(श्लो० १२) भिल्लोदकं पर्वते केदारभूमौ प्रसिद्धं गयीतु भिल्लोदकं कषायमंतर्मुखप्रक्षालन माह (इति नि० सं)।

नीलिकां मुखशोषं च पिडिकां व्यंगमेव च । रक्तपित्तकृतान्रोगान्सद्य एव विनाशयेत् । मुखं लघु निरीक्षेत दृढं पश्यति चक्षुषा ॥ १३ ॥

दूधके वृक्षोंके काथोंसे अथवा इनमें दूध मिलाकर मुख धोवे अथवा भिल्लोदक कषाय (पर्वतोंमें केदारके जल) से मुख धोवे (भिल्लोदक कषायका अर्थ कई ऐसा करतेहैं कि भिल्लोदक कषाय अंतर्मुख प्रक्षालनको कहते हैं देखो टिप्पणी) (और कई भिल्लोदक कषायका अर्थ करते हैं कि धूपसे गरम किया हुवा जल ठंढा होने-पर भिल्लोदक कषाय होता है) इससे मुँह धोवे और आँवलोंके काथसे दोनों नेत्रोंको (छींटा दे देकर) धोवे अथवा स्वस्थ मनुष्य ठंढे जलसे मुँह और नेत्रोंको धोवे ॥ ॥ १२ ॥ इससे (मुख धोनेसे) काले २ धव्वे मुँहकी खुश्की छोटी फुनसियां (मुहासे) और झाँई तथा रक्तपित्तके रोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं और मुँह हलका (साफ) दीखने लगता है तथा नेत्र धोनेसे दृष्टि दृढ होती है ॥ १३ ॥

(वक्तव्य) ('क्षीर वृक्षकषायैर्वा क्षीरेणच विमिश्रितैः' इन पदोंको कई पूर्वोक्त गंडूष धारणके संग लगाते हैं अर्थात् क्षीरवृक्षोंके काथसे तथा उसमें दूध मिलाकर कुल्ले करना) ॥

नेत्रांजन ।

मतं स्रोतोंजनं श्रेष्ठं विशुद्धं सिंधुसंभवम् । दाहकंडूमलघ्नं च दृष्टिक्लेद-रुजापहम् ॥ १४ ॥ अक्ष्णो रूपावहं चैव सहेते मारुतातपौ । न नेत्र-रोगा जायंते तस्मादंजनमाचरेत् ॥ १५ ॥

मुँह धोकर पीछे नेत्रोंमें अंजन लगाना चाहिये इसके लिये सिंधु नदीका उत्पन्न हुवा निर्मल स्रोतांजन अर्थात् सुरमा श्रेष्ठ है यह दाह खाज और नेत्रोंके मैलको नष्ट करता है तथा दृष्टिके क्लेद और रोगोंको भी नष्ट करता है ॥ १४ ॥ तथा नेत्रोंको सुरूप सुंदर करता है तथा वायु और धूपकी सहनशक्ति नेत्रोंमें होजाती है और नेत्रमें रोग पैदा नहीं होते इससे नित्य अंजन लगाना चाहिये ॥ १५ ॥

अंजनका निषेध ।

भुक्तवान् शिरसा स्नातः श्रांतश्छर्दनवाहनैः ।
रात्रौ जागरितश्चापि नांज्यांज्ज्वरितं एव च ॥ १६ ॥

भोजन करके शिरसे स्नान करते ही वमन और वाहनसे थके हुएको रातके जागे हुएको और ज्वरवालेको अंजन लगाना (सुरमा) डालना उचित नहीं ॥ १६ ॥

(श्लो० १५) तदंजनं अक्ष्णोः रूपावहं तथा मारुतातपौ सहते अंजनप्रभावात् नेत्रयोर्मारुतातपसहन-शक्तिरुत्पद्यते इत्यर्थः ।

(श्लो० १६) अजि दीप्तौ इत्यस्य अकर्मकाद्धातोः, भुक्तवान् स्नातः श्रांतश्च न अंज्यात् इति प्रयुज्यते ।

तांबूल भक्षण।

कर्पूरजातिकंकोललवंगखदिराह्वयैः। सचूर्णपूगैः सहितं पत्रं तांबूलजं शुभम् ॥ १७ ॥ मुखवैशद्यसौगंध्यकांतिसौष्ठवकारकम्। हनुदंतस्वरमलजिह्वेंद्रियविशोधनम् ॥ १८ ॥ प्रसेकशमनं हृद्यं गलामयविनाशनम्। पथ्यं सुप्तोत्थिते भुक्ते स्नाते वांते च मानवे ॥ १९ ॥

अंजन लगाकर तांबूल (पान) खाना चाहिये कपूर (भीमसेनी कपूर) जायफल सीतल चीनी लवंग और खदिर (कत्था) चूना सुपारी इन सबको पानमें लगाकर पान खाना श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ पान खाना मुखमें विशदता (सफाई) सुगंध और कांति तथा सुंदरता करता है तथा हनु (जाबडे) दांत और स्वर (कंठस्वर) तथा मुखके मैल और जिह्वा इंद्रिय इनको शुद्ध करताहै ॥ १८ ॥ मुखसे राल बहनेकी शांत करता है हृदयको हितहै गलके रोगोंको नाश करता है पान खाना इतने समय पथ्य है प्रथम सोते उठके भोजन करके स्नान करके वमनके पीछे (खदिराह्वयैः) की जगह कई (कटुकाह्वयैः) पाठ मानते हैं ॥ १९ ॥

परिशिष्ट।

भावमिश्रेण तांबूलविधावित्युक्तम्।प्रभातेपूगमधिकं मध्याह्नेखदिरं तथा। निशासु चूर्णमधिकं तांबूलंभक्षयेत्सदा ॥ १ ॥ आयुरग्रे यशोमूले लक्ष्मीमध्येव्यवस्थिता। तस्मादग्रंतथामूलं मध्यंपर्णस्यवर्जयेत् ॥ २ ॥ पर्णमूलेभवेद्व्याधिः पर्णाग्रेपापसंभवः। चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी॥ ३ ॥आद्यंविषोपमंपीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम्। तृतीयादितु पातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥ ४ ॥

प्रभात पान खानेमें सुपारी ज्यादा रखनी और मध्याह्नमें कत्था ज्यादा लगाना रातके समय चूना ज्यादा लगाना इस भांति सदा पान खाना चाहिये ॥१॥ पानके अग्र (नोक) में आयुः और मूल डंठलकी जडमें यश और बीच डंठलमें लक्ष्मी रहती है इसलिये नोक जड और डंठल निकाल देने चाहिये ॥ २ ॥ पानके मूलमें व्याधि है और नोकमें पाप तथा पानका चूरा आयु घटाता है और शिरा नसे बुद्धिको नष्ट करती है इससे इन्हें त्यागे ॥ ३ ॥ और प्रथमकी पीक विषके समान होती है (तीक्ष्ण गरम होती है) दूसरी भेदन करनेवाली तथा दुर्जर है इसके पीछे तीसरीकी आदि लेकर सब पीक निगलनी चाहिये वे अमृतके तुल्य रसायन है ॥४॥

तांबूलकानिषेध ।

रक्तपीतक्षतक्षीणतृष्णामूर्च्छापरीतिनाम् ।
रूक्षदुर्बलमर्त्यानां न हितं चास्यशोषिणाम् ॥ २० ॥

रक्तपित्तके रोगवाले क्षतक्षीण मनुष्य तृषायुक्त मूर्च्छावाले रूक्ष दुर्बल और जिनके मुँहमें खुश्की है ऐसे मनुष्योंको पान खाना हित नहीं ॥ २० ॥

शिरमें तैल लगाना ।

शिरोगतांस्तथा रोगान् शिरोऽभ्यंगोऽपकर्षति । केशानां मार्दवं दैर्घ्यं बहुत्वं स्निग्धकृष्णता ॥ २१ ॥ करोति शिरसस्तृप्तिं सुत्वक्त्वमपि चालनम् । संतर्पणं चेंद्रियाणां शिरसः प्रतिपूरणम् ॥ २२ ॥ मधुकं क्षीरशुक्ला च सरलं देवदारुच । क्षुद्रकं पंचनामानं समभागानि संहरेत् ॥ ॥ २३ ॥ तेषां कल्ककषायाभ्यां चक्रतैलं विपाचयेत् । सदैव शीतलं जंतोर्मूर्ध्नि तैलं प्रदापयेत् ॥ २४ ॥

शिरमें तैल लगाना शिरके रोगोंको दूर करता है तथा बालोंको नरम करता है और बढाता है तथा बाल अधिक पैदा करके घिनके करता है और चिकने और काले करता है ॥ २१ ॥ शिर (दिमाग) की तृप्ति करता है तथा शिरकी त्वचा को सुंदर करता है और (रक्तादिका) संचार करता है समस्त इंद्रियों (नाक कान नेत्र आदि) को भी तृप्त करता है तथा शिरको पूरण करता है ॥ २२ ॥ " शिरमें लगानेका तैल इस भांति बनावे " मुलेठी क्षीरविदारी सरल देवदारु तथा लघु पंच-मूल इन सबको समभाग लेवे ॥ २३ ॥ इनके क्वाथ और कल्कमें चक्रतैल (कोल्हका पिला हुआ सपेद तिलका तैल) पकावे फिर उसे ठंढा करके रख छोडे इसीमेंसे सदा शिरमें लगावे ॥ २४ ॥

कंघी करना और कर्णपूरण ।

केशप्रसाधनी केश्या रजोजंतुमलापहा ॥ २५ ॥
हनुमन्याशिरःकर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम् ॥ २६ ॥

केशप्रसाधनी (कंघी करना) केशोंको हित है धूल जंतु (जूम) और मैल दूर करती है ॥ २५ ॥ कानोंमें तैलके टपके डालना टोडी मन्या शिर और कानके दर्दको नाश करता है ॥ २६ ॥

स्नेहाभ्यंग और सेक तथा स्नेहावगाहन ।

अभ्यंगो मार्दवकरः कफवातनिरोधनः । धातूनां पुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रदः ॥ २७ ॥ सेकः श्रमघ्नोऽनिलहृद्भग्नसंधिप्रसाधकः । क्षताग्निदग्धाभिहतविघृष्टानां रुजापहः ॥ २८ ॥ जलसिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेङ्कुरास्तरोः । तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ २९ ॥ शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयन् । शरीरबलमाधत्ते युक्तः स्नेहावगाहने ॥ ३० ॥ तत्र प्रकृतिसात्म्यर्तुदेशदोषविकारवित् । तैलं घृतं वा मतिमान्युंज्यादभ्यंगसेकयोः ॥ ३१ ॥

शरीर पर स्नेहका मर्द्दन करना शरीरको मुलायम करता है तथा कफ और वायुको रोकता है धातुओंको पुष्ट करता है शुद्धि रूप और बलका देनेवाला है ॥ २७ ॥ चिकनाई के तरडे देने श्रम और वायुको नाश करते हैं टूटी हुई संधिको जोडते हैं क्षत (जखम) और अग्नि दग्धको हित है तथा चोट शरीर घिस गया हो (रगडा लगा हो) उसकी पीडाको शांत करता है ॥ २८ ॥ जैसे वृक्षकी जडमें जल सींचनेसे उसके डाली पतोंके अंकुर बढते हैं इसी प्रकार स्नेहके सींचे हुये मनुष्यकी धातु बढती है ॥ २९ ॥ और स्नेहकी द्रोणी (बालटी) भरकर उसमें बैठकर उसीसे न्हाना (स्नान करना) शिराओंके मुखद्वारा रोम कूपोंके द्वारा धमनियोंके द्वारा तृप्ति करके शरीरमें बल करता है ॥ ३० ॥ इसमें प्रकृति सात्म्य अर्थात् माफकता ऋतु देश और दोष तथा विकार (रोग) इन सबको जानकर बुद्धिमान् वैद्य मर्द्दन करने तथा सेचन करनेमें तैल अथवा घृत जहाँ जैसा उचित हो उपयोग करे ॥ ३१ ॥

स्नेहाभ्यंग का निषेध ।

केवलं सामदोषेषु न कथंचन योजयेत् । तरुणज्वर्यजीर्णी च नाभ्यक्तव्यौ कथंचन ॥ ३२ ॥ तथा विरिक्तो वांतश्च निरूढो यश्च मानवः । पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेरसाध्यत्वमथापि वा ॥ ३३ ॥ शेषाणां तदहः प्रोक्ता अग्निमांद्यादयो गदाः । संतर्पणसमुत्थानां रोगाणां नैव का[illegible]त् ॥ ३४ ॥

(श्लो० २७) मृजा शुद्धिः ।

(श्लो० २८) सेकः सेचनं धारादिभिः, अभिहतः लकुटादिभिर्हतः ।

(श्लो० ३३ । ३४) पूर्वयोः तरुणज्वराजीर्णिनोः, शेषाणां विरिक्तादीनां इति (नि० सं०)

आम सहित दोषोंमें केवल स्नेहका उपयोग करना उचित नहीं तथा तरुणज्वर-वाले और अजीर्णवालेको भी तैलाभ्यंग नहीं करना ॥३२॥ विरेचनके पीछे वमनके पीछे और निरूहण बस्तिके पीछे भी तैलमर्दन उचित नहीं क्योंकि ऐसा करनेसे पूर्वोक्त तरुण ज्वर और अजीर्णवालेकी व्याधि कष्टसाध्य होजाती है अथवा असाध्य व्याधि होजाती है ॥ ३३ ॥ शेष अर्थात् (विरेचन किया वांत और निरूढ) इनको उसीदिन मंदाग्नि आदिरोग होजाते हैं तथा संतर्पणसे पैदा हुये रोगोंमें भी स्नेहाभ्यंगादि अनुचित हैं और कराने नहीं चाहिये ॥ ३४ ॥

व्यायाम (दंडकसरत) करना ।

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम् । तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात्समंततः ॥ ३५ ॥ शरीरोपचयः कांतिर्गात्राणां सुविभक्तता । दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥ ३६ ॥ श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता । आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ३७॥ न चास्ति सदृशं तेन किंचित्स्थौल्यापकर्षणम् । न च व्यायामिनं मर्त्यः मर्दयंत्यरयो भयात् ॥ ३८ ॥ न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति । स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥ ३९ ॥

शरीरको श्रम पैदा करनेवाले कर्मको व्यायाम कहते हैं सो व्यायाम अर्थात् दंड कसरत करनेसे सुखपूर्वक शरीर सब तरफसे सुडौल हो जाता है ॥ ३५ ॥ शरीरकी वृद्धि और कांति होती है सब अंगोंका सुंदर विभाग होता है जठराग्नि दीप्त होती है और आलस्य नष्ट होता है स्थिरता हलकापन और शुद्धि (शरीरके दोषोंकी शुद्धि) होती है ॥ ३६॥ परिश्रम थकाव प्यास तथा गरमी सरदी आदिके सहनेकी शक्ति होती है तथा व्यायामसे परम आरोग्यता होती है ॥ ३७ ॥ स्थूलता (मुटापा) कम करनेसे इस व्यायामके तुल्य कोई यत्न नहीं है व्यायामी (कसरती) बलवान् मनुष्यको भयसे शत्रु आक्रमण नही कर सकते (दुःख नहीं दे सकते) ॥ ३८ ॥ और एकाएक बुढापाभी व्यायामी पर जोर नहीं करता है और व्यायाम वालेका मांसभी स्थिर करडा (मजबूत) होजाता है ॥ ३९ ॥

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।व्याधयो नोपसर्पंति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥ ४० ॥ वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् ॥ ४१ ॥

(श्लो० ३६) उपचयः सम्यक्पुष्टिः ।

(श्लो० ४०) पद्भ्यां उद्वर्तितस्येति. उद्वर्तनकृतस्येत्यर्थः, अन्येतु पद्भ्यां उद्वर्तितस्य इति पद्भ्यां चंक्रमणकृतस्येति वदंति ।

व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् । विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ॥ ४२ ॥ व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम् । स च शीते वसंते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः॥ ४३ ॥ सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुम्भिरात्महितैषिभिः । बलस्यार्द्धेन कर्तव्यो व्यायामो हंत्यतोऽन्यथा ॥ ४४ ॥

व्यायामसे शरीर थकजावे तब पैरोंमें उबटन लगावे (या पैरोंको मालिश करे) ऐसा करनेवालेके पास रोग नहीं आते जैसे सिंहके पास छोटे २ मृग नहीं आसकते ॥ ४० ॥ जो मनुष्य अवस्थारूप और गुणोंसे हीन भी है उनको व्यायाम सुंदर बना देता है ॥ ४१ ॥ नित्य व्यायाम करनेवालेके विरुद्ध भोजन किया हुवा विदग्ध (जलाभुना) अविदग्ध (कच्चा रहा) सब निर्दोषता पूर्वक पच जाता है ॥ ४२ ॥ बलवान् और स्निग्ध भोजन करने (मालखाने) वाले (तथा श्रम न करनेवाले बैठे या लेटे रहनेवाले अमीरों) को व्यायाम करना सदाही पथ्य है विशेष करके शीत ऋतु और वसंत ऋतुमें तो उन्हें व्यायाम अवश्य ही करना परम पथ्य और उचित है ॥ ४३ ॥ सब ऋतुवोंमें अपना हित चाहनेवाले पुरुषोंको आधेबलके अनुसार व्यायाम करना चाहिये अन्यथा जादा व्यायाम हानि करता है (मनुष्यको नष्ट कर देता है) ॥ ४४ ॥

बलार्द्धका लक्षण और अन्य विचार ।

हृदिस्थानेस्थितो वायुर्यदा वक्रं प्रपद्यते । व्यायामं कुर्वतो जंतोस्तद्बलार्द्धस्य लक्षणम्॥ ४५॥ वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च । समीक्ष्य कुर्य्याद्व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

व्यायाम करते २ जब हृदयका वायु मुहसे निकलने लगे अर्थात् दम चढजावे यही बलार्द्धका लक्षण है अर्थात् जबतक दम भर जावे तभीतक व्यायाम करना चाहिये जादा नहीं ॥ ४५ ॥ और अवस्था बल शरीर देश समय और भोजन इन सब बातोंको विचार कर व्यायाम भी उसके अनुसार करना चाहिये अन्यथा बीमारी पैदा कर देता है ॥ ४६ ॥

अतिव्यायामके दोष ।

क्षयस्तृष्णारुचिच्छर्दिरक्तपित्तभ्रमक्लमाः ।

कासशोषज्वरश्वासा अतिव्यायामसंभवाः ॥ ४७ ॥

अति व्यायाम करनेसे क्षय तृषा अरुचि वमन रक्त पित्त भ्रम और क्लम (थकाव) खांसी शोष (शरीर सूख जाना या खुश्की) ज्वर तथा श्वास इतने रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥

व्यायामका निषेध ।

रक्तपित्ती कृशः शोषी श्वासकासक्षतातुरः ।
भुक्तवान्स्त्रीषु च क्षीणो भ्रमार्तश्च विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥

रक्तपित्तवाला शोषका रोगी श्वास खाँसी और उरक्षत रोगवाला भोजनके पीछे तथा जो स्त्रीसंगसे क्षीण होगया हो तथा भ्रमसे जो व्याधित हो इन्हें व्यायाम करना उचित नहीं ॥ ४८ ॥

उबटन लगाना ।

उद्वर्तनं वातहरं कफमेदोविलापनम् । स्थिरीकरणमंगानां त्वक्प्रसादकरं परम् । शिरामुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्च तेजनम् ॥ ४९ ॥

उद्वर्तन (उबटन) करना वायुके हरनेवाला है कफ और मेदको विलानेवाला है और अंगोंको स्थिर करनेवाला तथा त्वचाको परम प्रसन्न करनेवाला है। शिराके मुखोंमें प्रविष्ट होकर विविक्तता करता है और त्वचाकी अग्निको उत्तेजित करनेवाला है ॥ ४९ ॥

शरीर पर मलना ।

उद्धर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम् ॥ ५० ॥ उत्सादनाद्भवेत्स्त्रीणां विशेषात्कांतिमद्वपुः । प्रहर्षसौभाग्यमृजालाघवादिगुणान्वितम् ॥ ५१ ॥ उद्धर्षणं तु विज्ञेयं कंडूकोठानिलापहम् ॥ ५२ ॥

उद्धर्षण अर्थात् मर्दन करना और उत्सादन स्निग्ध चूर्णादि मलना इनसे निम्न लिखित लाभ होते हैं निःसंदेह ॥ ५० ॥ उत्सादनसे विशेषकर स्त्रियोंका शरीर कांतियुक्त प्रहर्ष सुभगता और शुद्ध प्रभात तथा लघुतायुक्त होता है ॥ ५१ ॥ उद्धर्ष करना खाज कोढ (चकद्दे) और वायुको नाश करता है ॥ ५२ ॥

(वक्तव्य) उद्धर्षण रुमाल या इस्पंज आदिसे शरीर रगडनेको कहतेहैं और कोई मसाला मैल दूर करनेको उपयोग करने (साबुन आदि मलनेको) उत्सादन कहते हैं ॥

(श्लो० ५०) उद्धर्षणं फेनेकेष्टिकादिनाघर्षणम्, उत्सादनं सस्नेहकल्कादिनोद्धर्षणम् (इति डल्हनः)

इस्पंज और ईटसे रगड़नेके गुण।

ऊर्वोः संजनयेत्याशु फेनकः स्थैर्यलाघवे। कण्डूकोठानिलस्तंभमलरोगापहश्च सः ॥ ५३ ॥ तेजनं त्वग्गतस्याग्नेः शिरामुखविरेचनम्। उद्धर्षणं त्विष्टिकया कंडूकोठविनाशनम् ॥ ५४ ॥

फेनक (समंदर झाग अथवा इस्पंज) से उद्धर्षण करना साथलोंमें स्थिरता और लघुता उत्पन्न करता है और खाज कोढ तथा वायुको और स्तंभ मल और रोगोंका नाशक है ॥ ५३ ॥ ईट या झामेंसे उद्धर्षण करना (रगडना) त्वचाकी अग्निको उत्तेजन करता है तथा सिराओं (रगों) का मुख खोलकर (स्वेदका) विरेचन करता है और कंडू और कोढको नाश करता है ॥ ५४ ॥

स्नान।

निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकंडूतृषापहम्। हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ ५५ ॥ तंद्रापापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्द्धनम्। रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम् ॥ ५६ ॥

अभ्यंग उद्धर्षणादिके पीछे नित्य स्नान करना चाहिये स्नान करना निद्रा दाह श्रम (थकाव) को नाश करता है तथा पसीना खाज और तृषाको नष्ट करता है हृदयको हित है मल (मैल) को दूर करनेवाला श्रेष्ठ है समस्त इंद्रियोंका शोधन करता है ॥ ५५ ॥ तंद्रा पाप इनका नाशक तुष्टिका देनेवाला पुरुषार्थ बढानेवाला रुधिरको प्रसन्न स्वच्छ करनेवाला तथा जठराग्निका दीपन करनेवाला है ॥ ५६ ॥

उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा। शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशेत् ॥ ५७ ॥ श्लेष्ममारुतकोपे तु ज्ञात्वा व्याधिबलाबलम्। काममुष्णं शिरःस्नानं भैषज्यार्थं समाचरेत् ॥ ५८॥ अतिशीतांबु शीते च श्लेष्ममारुतकोपनम्। अत्युष्णमुष्णकाले च पित्तशोणितवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥

गरम जलसे शिरका स्नान करना सदा नेत्रोंको हानिकारक है और शीतल जलसे शिरका स्नान करना नेत्रोंको अत्यंत लाभ दायक है ॥ ५७ ॥ कफ वायुके कोपमें व्याधिके बलाबलको विचारकर आवश्यकतापर औषधीरूपक भेषजके लिये गरम जलसे भी शिरका स्नान कर सकते हैं ॥ ५८ ॥ अति ठंढापानी शीत ऋतुमें कफ वायुका कोप करता है तथा अति गरम जल गरमीसे पित्त और रुधिरको बढाता है ॥ ५९ ॥

स्नानका निषेध ।

तच्चातिसारज्वरितकर्णशूलानिलार्तिषु ।
आध्मानारोचकाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ ६० ॥

स्नान करना अतिसारके रोगी ज्वरवाले कर्णशूल और वातव्याधिवाले आध्मानवाले अरुचिवाले अजीर्ण रोगवालेको तथा भोजन किये हुयेको उचित नहीं ॥ ६० ॥

अनुलेप ।

सौभाग्यदं वर्णकरं प्रीत्योजोबलवर्द्धनम्। स्वेददौर्गंध्यवैवर्ण्यश्रमघ्नमनुलेपनम् ॥ ६१ ॥ स्नानं येषां निषिद्धं तु तेषामप्यनुलेपनम् ॥ ६२ ॥

अनुलेपन (चंदनादि) लगाना सौभाग्य (सुभगता) देताहै वर्णको सुंदर करताहै प्रीति ओज और बल बढाता है पसीना दुर्गंध विवर्णता थकाव इन सबको दूर करता है ॥ ६१ ॥ जिन अवस्थाओंमें स्नान करना निषिद्ध है उन अवस्थाओंमें अनुलेप भी निषिद्ध है ॥ ६२ ॥

परिशिष्ट ।

कुंकुमं चंदनं चापि कृष्णागुरुविमिश्रितम्।उष्णं वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते॥ १ ॥ चंदनं घनसारेण वालकेन च मिश्रितम्।सुगंधि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते॥ २॥ चंदनं घुसृणोपेतंमृगनाभिसमन्वितम्।नचोष्णं न च वा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ ३ ॥ (भा० प्र०)

केशर चंदन कृष्ण अगुरुसे मिला हुवा गरम है वायु और कफको नाश करता है इससे यह शीत ऋतुमें लगाना चाहिये ॥ १॥ चंदन कपूर और वालछड़ मिलाहुआ परम सुगंधित और शीतल है यह उष्ण काल (गरमी) में लगाना चाहिये ॥ २ ॥ चंदन, कपूर, और कस्तूरी मिला हुआ न गरम है न ठंढा यह वर्षाकालमें लगाना चाहिये ॥ ३ ॥

रक्षोघ्नमर्थ्यं चौजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ।
सुमनोंबररत्नानां धारणं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६३ ॥

सुमन (पुष्पोंका) और वस्त्रोंका तथा रत्नादिका धारण करना राक्षसों (दुर्जनों) का नाश करनेवाला है (अर्थात् अच्छे वस्त्रादि धारण किये मनुष्यसे दुर्जन दबजाते

(श्लो० २) येषां स्नानं निषिद्धं तेषामेवानुलेपनं च निषिद्धमित्यर्थः । एतदर्थंपद्यमेव ।

हैं) तथा ओज बढता है और सुभगता (सुंदरताई) करता है तथा उत्तम है और प्रीतिको बढाता है अच्छे वस्त्रादि धारण किये मनुष्यसे हरेक प्रीति करता है ॥ ६३ ॥

परिशिष्ट ।

कौशेयं चित्रवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च । वातश्लेष्महरं तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ १ ॥ मेध्यं सुशीतं पितघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते । तद्धारये-दुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते ॥ २ ॥ शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतताप निवारणम् । न चोष्णं न च वा शीतं तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥ ३ ॥ कदाचिन्न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमंबरम् । तत्तु कंडूकृमिकरं ग्लान्य-लक्ष्मीकरं परम् ॥ ४ ॥ (भा० प्र०)

कौशेय (रेशमी वस्त्र) चित्र वस्त्र (चित्र व्याघ्रादि चर्म निर्मित जैसे पोस्तीन संजाब संमूर अथवा चित्रविचित्र रंगका वस्त्र) तथा रक्त वस्त्र ये वायु कफके नाशक हैं इन्हें शीतकाल (सरदीकी ऋतु) में धारण करना चाहिये ॥ १ ॥ कषाय (भगवां तथा शरवती संदली आदि रंगके) वस्त्र पवित्र शीतल पित्तनाशक है इन्हें गरमीकी ऋतुमें धारण करना चाहिये और ये भी हलके बारीक होवें ॥ २ ॥ सुपेद वस्त्र शुभ और शीत धूपको निवृत्त करते हैं न गरम हैं न शीतल इन्हें वर्षा ऋतुमें धारण करे ॥ ३ ॥ सज्जन और शिष्ट पुरुषोंको कभी मैले कपडे पहरने उ-चित नहीं क्योंकि मैले कपडे खाज कृमि अर्थात् जूँ पैदा करते हैं तथा ग्लानि कारक हैं और दरिद्री करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मुखालेपाद्दृढं चक्षुः पीनगंडं तथाननम् । अव्यंगपिटकं कांतं भवत्यंबु-जसन्निभम् ॥ ६४ ॥ पक्ष्मलं विशदं कांतममलोज्वलमंडलम् । नेत्र-मंजनसंयोगाद्भवे च्चामलतारकम् ॥ ६५ ॥ यशस्यं स्वर्ग्यमायुष्यं धन-धान्यविवर्द्धनम् । देवतातिथिविप्राणां पूजनं गोत्रवर्द्धनम् ॥ ६६ ॥

मुखको आलेपन करनेसे (रुमाल आदिसे मलनेसे) नेत्र दृढ होते हैं कपोल और मुँह पुष्ट होते हैं व्यंग और पिडका नहीं होते तथा सुंदर कमलके समान मुख होजाता है ॥ ६४ ॥ अंजनका नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे पक्ष्म (पलकें) सुंदर होती हैं नेत्रमंडल उज्ज्वल सुभग निर्मल और स्वच्छ तारेके समान दृष्टि होती है (अथवा नेत्रोंका तिल स्वच्छ होता है) ॥ ६५ ॥ देवता अभ्यागत और ब्राह्मणोंका

(श्लो० ६५) नेत्रांजनस्यायमप्यवसरस्तस्मादत्र पुनरुक्तिरदूषणीया ।

पूजन करना यशका देनेवाला स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला आयु बढानेवाला और धन धान्यकी वृद्धि करनेवाला और कुलकी वृद्धि कारक होता है ॥ ६६ ॥

भोजन करना ।

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः ।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोग्निविवर्द्धनः ॥ ६७ ॥

इसके पीछे भोजन करना चाहिये भोजन (आहार) तृप्ति कारक तात्काल बल करनेवाला और देहको धारण करनेवाला है आयुः तेज उत्साह स्मृति ओज और जठराग्निको बढाता है ॥ ६७ ॥

(वक्तव्य) आहार अर्थात् भोजनकी समस्त विधि और नियम सब विस्तार पूर्वक पहले सूत्र स्थानके छियालीसके अध्यायमें " आहारविधि " के वर्णनमें लिख चुके हैं वहां देखिये ॥

पाँव धोना और पादाभ्यंग ।

पादप्रक्षालनं पादमलरोगश्रमापहम् । चक्षुःप्रसादनं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ६८ ॥ निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः श्रमसुप्तिनुत् । पादत्वङ्मृदुकारी च पादाभ्यंगः सदा हितः ॥ ६९ ॥

भोजन करनेके पीछे पुनः पाँव धोने चाहिये यह पैरोंके मल तथा पैरोंके रोग और श्रमको दूर करता है तथा नेत्रोंको प्रसन्न करता है वृष्य है राक्षसोंको नाश करता है (धुले साफ पाँव और शरीरवालोंसे राक्षस दूर रहते हैं) और प्रीतिको बढाता है ॥ ६८ ॥ पाँवोंपर तैलाभ्यंग करना निद्राजनक देहको सुखदायक चक्षुवोंको लाभदायक श्रम और सुप्ति (पाँव सोना) इन्हें नाश करता है पैरोंकी त्वचाको नरम करता है इससे सदा पादाभ्यंग करना हित है॥ ६९ ॥

पादत्र धारण (जूता पहरना) ।

पादरोगहरं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् । सुखप्रचारमौजस्यं सदा पादत्रधारणम् ॥ ७०॥ अनारोग्यमनायुष्यं चक्षुषोरुपघातकृत् । पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ ७१ ॥

फिरनेके समय पादत्र धारण करना (जूता पहरना) सदैव चाहिये पादत्र धारण करना पावोंके रोगोंको दूर करता है (पैरोंमें रोग नहीं होने देता) वृष्य है रक्षोघ्न है प्रीतिका बढानेवाला है चलनेमें सुख देता है ॥ ७० ॥ और विना जूता पहने

नंगे पावोंसे फिरना आरोग्यता (तंदुरस्ती) को नष्ट करता है आयुमें हानि करता है नेत्रोंको विकार कारक है (इससे मनुष्यको अवश्य जूता पहनकर फिरना चाहिये) ॥ ७१ ॥

क्षौरादि ।

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम् ।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम् ॥ ७२ ॥

वाल नख तथा अन्य स्थूल रोमादिका दूर करना पापको दूर करता है हर्ष लघुता और सुंदरता करनेवाला है और उत्साह बढाता है ॥ ७२ ॥

पगडी बांधना ।

बाणवारं मृजावर्णतेजोबलविवर्द्धनम् ।
पवित्रं केश्यमुष्णीषं वातातपरजोपहम् ॥ ७३ ॥

उष्णीष (पगडी बांधना) बाण (तीर) की चोटसे (शिरको) बचाता है शिरको शुद्ध रखता है (मैल नहीं भरने देता) वर्ण तेज और बलको बढाता है पवित्र केशोंको हित है और वायु धूप और धूलसे मूर्द्धाको बचाता है ॥ ७३ ॥

छत्री लगाना ।

वर्षानिलरजोधर्महिमादीनां निवारणम् ।
वर्ण्यं चक्षुष्यमोजस्यं शंकरं छत्रधारणम् ॥ ७४ ॥

राजोंको छत्र धारण करना और लोगोंको छत्री लगाना वर्षा वायु धूल और धूप तथा सरदी बरफ आदिको निवारण करता है रूप सुंदर करनेवाला नेत्रोंको हित ओज बढानेवाला और सुखदायक है ॥ ७४ ॥

छडी हातमें रखना ।

शुनः सरीसृपव्यालविषाणिभ्यो भयापहम् । श्रमस्खलनदोषघ्नं स्थविरे च प्रशस्यते ॥ ७५ ॥ सत्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यवीर्यविवर्द्धनम् । अवष्टंभकरं चापि भयघ्नं दंडधारणम् ॥ ७६ ॥

लट्ठी अथवा छडी हाथमें रखना कुत्ते सर्प वृकादि तथा सींगवाले पशुओंसे बचाता है श्रम (थकाव) स्खलन (कापना गिरना लडखडाना) आदि दोष

(श्लो० ७५।७६) स्खलनं पतनं तद्दोषघ्नमितिच, स्थविरः प्रौढः वृद्धश्च, अवष्टंभकरं प्लुतगतेरवरोधकरं गतेः सौष्ठवकारकमित्यर्थः ।

इन्हें नष्ट करता है विशेष करके वृद्ध मनुष्यको अवश्य लट्ठी रखनी श्रेष्ठ है (और किशोर अवस्थावाले तथा जवान मनुष्य लकड़ी पतली या सुरूप रक्खे) ॥ ७५ ॥ लकडी रखना सत्व उत्साह बल और स्थिरता धीरता पराक्रमको बढाता है और धीरे चलना उत्पन्न करता है और भयको दूर करता है ॥ ७६ ॥

स्थिति और पर्यटन ।

आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यकरी सुखा । अध्वा वर्णकफस्थौल्य-सौकुमार्य्यविनाशनः । अत्यध्वा विपरीतोस्माज्जरादौर्बल्यकृच्चसः ॥ ७७ ॥ यत्तु चंक्रमणं नातिदेहपीडाकरं भवेत् । तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिंद्रिय-बोधनम् ॥ ७८ ॥ श्रमानिलहरं वृष्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् । सुखं शय्या-सनं दुःखं विपरीतगुणं मतम् ॥ ७९ ॥

आस्य (स्थिति अर्थात् बैठे रहना) वर्ण (रूप) कफ स्थूलता और सुकुमारता (नाजुकपना) उत्पन्न करता है और मार्ग चलना वर्ण (रूप) कफ स्थूलता और सुकुमारताको नष्ट करता है और विशेष मार्ग चलना इसके विपरीत बुढापा और दुर्बलता करता है ॥ ७७ ॥ और चंक्रमण (अर्थात् चहल कदमी) करना जो शरीरको अधिक पीडा न दे वह आयु बल बुद्धि देनेवाला है तथा जठराग्नि वर्द्धन करता है और सब इंद्रियोंका बोधन करता है ॥ ७८ ॥ सुखदायक शय्या (अच्छा पलंग (और उसपर लेटना श्रम वायुका नाशक है तथा वृष्य है पुष्टि निद्रा और धृति (धारणशक्ति) देता है और दुःखदायक खाटोली इससे विपरीत अवगुण देती है ॥ ७९ ॥

चँवर और पंखा ।

वालव्यजनमोजस्यं मक्षिकादीनपोहति ।
शोषदाहश्रमस्वेदमूर्च्छाघ्नो व्यजनानिलः ॥ ८० ॥

वालव्यजन (चँवर करना) ओजको बढाता है और मक्खी मच्छर आदिको दूर करता है पंखेका पवन शुष्कता दाह परिश्रम पसीना और मूर्च्छा को नाश करता है ॥ ८० ॥

हाथ पैर दबाना ।

प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम् ।
संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं सुखम् ॥ ८१ ॥

(श्लो० ८१) संवाहनं सुखकरं स्पर्शनं गाढप्रमर्दनं इति डल्लनः ।

संवाहन (हाथ पाँव कमर दबवाना) प्रीति (आनंद) निद्राकारक और वृष्यहै कफ वायु और परिश्रमको दूर करता है तथा मांस रक्त और त्वचाको प्रसन्न करता है सुखकारक होता है ॥ ८१ ॥

प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तंभकृद्दाहपक्तिनुत् । स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतो न्यथा॥८२॥ सुखं वातं प्रसेवेत ग्रीष्मे शरदि मानवः । निर्वातं ह्यायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा ॥ ८३ ॥

प्रवात (अर्थात् वायु) रूक्षता विवर्णता और स्तंभ कारक है तथा दाह और पक्ति (पकाव) का नाशक है स्वेद (पसीना) मूर्च्छा और प्यासको दूर करताहै और निवात (विना हवाकी जगह रहना) इनसे विपरीत गुण कारक है ॥ ८२ ॥ ग्रीष्म और शरदऋतुमें सुखसे यथारुचि वायुका सेवन करना चाहिये और इनके सिवाय सब ऋतुओंमें मनुष्यको आयु और आरोग्यताके लिये विना प्रचंड वायुकी जगह रहना चाहिये ॥ ८३ ॥

धूप, छाया और अग्निताप ।

आतपः पित्ततृष्णाग्निस्वेदमूर्च्छाभ्रमास्रकृत् । दाहवैवर्ण्यकारी च छाया चैतानपोहति ॥ ८४ ॥ अग्निर्वातकफस्तंभशीतवेपथुनाशनः । आमाभिष्यंदजरणो रक्तपित्तप्रदूषणः ॥ ८५ ॥

आतप (धूप) में रहना पित्त तृषा अग्नि स्वेद मूर्च्छा भ्रम और रुधिरकोप कारक है तथा दाह और विवर्णता करे है और छायामें रहना उपरोक्त सबको दूर करे है ॥ ८४ ॥ अग्निसे तापना वायु कफस्तम्भ अर्थात् अकडाव शीत और वेपथु (कंप) इन्हें नष्ट करता है और आम तथा अभिष्यंदताको जराता है तथा रक्तपित्तको दूषित करता है ॥ ८५ ॥

पुष्टिवर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतंद्रिताम् ।
करोति साधुसाम्यं च निद्रा काले निषेविता ॥ ८६ ॥

समय पर निद्रा सेवन करना (सोना) पुष्टि रूप बल उत्साह और जठराग्निकी दीप्ति तथा निरालस्यता करती है और सब दोषोंको स्वच्छ और समान करती है ॥ ८६ ॥

(श्लो० ८३) ग्रीष्मे शरदि च मानवः सुखं वातं सेवेत सुखं वातं अनुष्णं प्रियंचेत्यर्थः ।

परिशिष्ट (सवारियोंके गुणागुण)।

ऊर्द्ध्वाच्छादनसंयुक्ता शिबिका सर्ववल्लभा। तस्यामारोहणंनृणां त्रिदोष शमनं मतम् ॥ १ ॥ वातश्लेष्मगदार्तानामहिताभ्रमकृत्तरिः। पित्तानिलकरोहस्तीलक्ष्म्यायुः पुष्टिवर्द्धनः ॥ २ ॥ घोटकारोहणं वातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम्। मेदोवर्णकफघ्नं च हितंतद्बलिनां परम् ॥ ३॥ (भा० प्र०)

अर्थ-जिसके ऊपर ढकना (वस्त्रादि) हो ऐसी पीनसकी सवारी सबको हित है उसमें बैठना त्रिदोष (तीनों दोषोंको) शांत करता है ॥ १ ॥ नाव या बोटमें बैठना वायु कफके रोगवालोंको अहित कारक है और भ्रम करता है (उससे चक्कर आने लगता है) हाथीकी सवारी पित्त और वायु कारकहै तथा लक्ष्मी आयु और पुष्टिको बढाती है ॥ २ ॥ घोडे पर चढना वायु पित्त अग्नि (जठराग्नि) श्रम कारक है मेदवर्ण और कफ इन्हें नष्ट करता है और बलवान् मनुष्यों के लिये यह परमहितकारक श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

शिष्टाचार कर्तव्य।

तत्रादित एव नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा लघूष्णीषछत्रोपानत्केन दंडपाणिना काले हितमितमधुरपूर्वाभिभाषिणा बंधुभूतेन भूतानां तु गुरुवृद्धानुमतेन सुसहायेनानन्यमनसा खलूपचरितव्यम् । तदपि न-रात्रौ न केशास्थिकंटकाश्मतुषभस्मोत्करकपालांगारामेध्यस्थानबलिभूमिषु न विषमेन्द्रकीलचतुष्पथश्वभ्राणामुपरिष्टात् ॥ ८७ ॥

मनुष्यको आदिहीसे ऐसा करना चाहिये कि क्षौर बनवाये हुये शुद्ध होकर सुपेद (साफ) वस्त्र पहनकर हलकी पगडी बांधकर छत्री लगाकर जूता पहन कर छडी हाथमें लेकर (इस प्रकारसे आना जाना रक्खे कि) समय पर हरेकसे पहलेवाले हितके वचन कहे कम बोले और मधुर भाषण करे और सब प्राणीमात्रसे भ्रातृभाव रक्खे अपनेसे जाति विद्या और प्रताप तथा नातेमें बडोंसे और वृद्धोंसे नम्र होकर वरताव करे और साथमें अच्छा सहकारी रक्खे और एकाग्र चित्त होकर चर्या करे (पर्यटन किया करे) परंतु रात्रिमें न फिरे बाल हड्डी कांटे पत्थर तृण भस्म खेत और ठेकरे अंगारे तथा अपवित्र स्थान जहां हो वहां न जावे तथा बहुत ऊंची नीची

(वा० ८७) नीचनखरोम्णा नखरहितेन कृतक्षौरेणेत्यर्थः, उत्करः धान्यादीनां राशीकरणे प्रसारणेच। इंद्रकीलः इंद्रस्यकील इवपाषाणादयोयत्र, श्वभ्रं छिद्रंगर्तः, (इति शब्दस्तोमः)।

पृथ्वीमें न फिरे और इंद्रकील(पर्वतों और नोकवाले स्थानों) पर न फिरे चतुष्पथमें न जावे तथा श्वभ्र (जहां बिल) हो वहां न जावे अर्थात् इनपर फिरना उचित नहीं॥८७॥

न राजद्विष्टपरुषपैशून्यानृतानि वदेत् । न देवब्राह्मणपितृपरिवारांश्च न नरेन्द्रद्विष्टोन्मत्तपतितक्षुद्रनीचाचारानुपासीत ॥ ८८ ॥

राजविद्रोहकी बातें कभी न कहे कठोर वचन कमीने वाक्य और झूंठे वाक्यभी न कहे और देवता ब्राह्मण पितर और परिवारसे विवाद न करे और राजविद्रोही उन्मत्त पतित और क्षुद्र (ओछा) तथा नीच आचरणवाला इतने मनुष्योंके पास न बैठे (इनसे मेल न करे) ॥ ८८ ॥

वृक्षपर्वतप्रपा[1]तविषमवल्मीकदुष्टवाजिकुंजराद्यधिरोहणानि परिहरेत् पूर्णनदीस[2]मुद्राविदितपल्वलश्वभ्रकूपावतरणानि भिन्नशून्यागारश्मशानविजनारण्यवासाग्निसंभ्रमव्यालभुजंगकीटसेवाग्रामाघातकै[3]लहशस्त्रसंनिपाताग्निसंभ्रमव्यालसरीसृपशृंगिसन्निकर्षांश्च ॥ ८९ ॥

वृक्षपर चढना पर्वतपर चढना प्रपात (जहां जल ऊपरसे गिरता हो) वहां जाना विषम स्थानोंमें बँबईके पास जाना भी त्याग दे और दुष्ट घोडे हाथीकी सवारी भी नहीं करे चढी हुई नदी और समुद्र तथा विना जाने हुवे तलाव तथा गढे और कूपमें कभी नहीं उतरे । फूटे और सूने मकानमें श्मशानमें निर्जन वनमें वास न करे और अग्निसे जलते हुवे मकानमें न जावे हिंस्रक जीव सर्प विच्छु आदि कीडोंके पास न जावे (इनसे दूर रहे) और ग्रामघात (जिन ग्रामोंमें महामारी हो) जहां लडाई होती हो जहां हथियार चलते हो जहां आग लगी हों तहां न जावे। हिंस्रक जीवों सर्प विच्छु आदि तथा सींगवाले पशुवोंका संनिकर्ष नजीकी होवे वहां भी न जावे ॥ ८९ ॥

नोऽग्निगोगुरुब्राह्मणप्रेंखां[1]दंपत्यंतरेणाभिया[3]यात् । न शवमनुयायात्, । देवगोब्राह्मणचैत्यध्वजरोगिपतितपापकारिणां च छायां नाक्रामेत्, । नास्तंगच्छंतमुद्यंतं वाऽऽदित्यं वीक्षेत, गां धयंतीं परसस्यं वा चरंतीं परस्मै न कस्मैचिदाचक्षीतनचोल्कापातेंद्रधनूंषि, नाग्निं मुखेनोपधमेत् । नापो भूमिं वा पाणिपादेनाभिहन्यात् ॥ ९० ॥

(वा० ८९) प्रपातः निर्झरः, सन्निकर्षः निकटत्वं ।

(वा० ९०) प्रेंखा स्त्रीनृत्ये दोलायां इति शब्दस्तोमः, गांधयंतीमिति वत्सं पाययंतींगाम् । धेट्पाने इत्यस्य धातोः (इति डल्हनः)

अग्नि गौ गुरु ब्राह्मण प्रेंखा (हिंडोला या नृत्य) और स्त्री पुरुष इनके बीचमेंसे नहीं निकले, (हीन नीच जातिके) मुरदेके संग न जावे, देवता गौ ब्राह्मण चिता ध्वजा रोगी पतित पापी इनकी छायाको उल्लंघन न करे, छिपते और उदय होते सूर्यको न देखे, बच्छेको दूध पीलाती तथा पराये खेतमें चरती हुई गौको किसे नहीं बतावे, उल्कापात और इंद्र धनुष भी किसीको न बतावे, अग्निमें मुहसे फूँक न दे जल और पृथ्वीको हाथों या पैरोंसे न कूटे ॥ ९० ॥

न वेगान् धारयेत्, न बहिर्वेगान् ग्रामनगरदेवतायतनश्मशानचतुष्पथ सलिलाशयपथि संनिकृष्टानुत्सृजेन्न प्रकाशं न वाय्वग्निसलिलसोमार्कगोगु रुप्रतिमुखम् ॥ ९१ ॥

मलमूत्र (दस्त पेशाब) आदिके वेगोंको न रोंके, और बहिर्वेग अर्थात् मलमूत्र त्यागते समय ग्राम नगर देवस्थान श्मशान चतुष्पथ (चौराहा) जलाशय (कूवा तालाव आदि) और मार्ग इनके निकट नहीं बैठे (इनके समीप मल मूत्रादि न त्यागे) और प्रकाश रूपसे जहां दीखता हो वहां भी न त्यागे और वायु, अग्नि, जल, चंद्रमा, सूर्य, गौ, गुरु इनके सन्मुख बैठकर मल नहीं त्यागे ॥ ९१ ॥

न भूमिं विलिखेत्, नासंवृतमुखः सदसि जृंभोद्गारश्वासक्षवथूनुत्सृजेत् । न पर्यस्तिकावष्टंभपादः प्रसारणानि गुरुसंनिधौ कुर्यात् ॥ ९२ ॥

पृथिवीको न कुरे दे सभामें बैठके विना मुख ढके जँभाई ढकार लंबा श्वास छींक नहीं लेवे और गुरु (बडे आदमी) के समीप तकियेके सहारे नहीं बैठे और पाँव पसारकरभी न बैठे ॥ ९२ ॥

न वालकर्णनासास्रोतोदशनविवराण्यभिकुष्णीयात्, न वीजयेत् केश मुखनखवस्त्रगात्राणि, न गात्रनखवक्त्रवादित्रं कुर्यात् नकाष्ठलोष्टतृणादीन भिहन्याद्भिन्याद्वा ॥ ९३ ॥

वाल, कान, नाक, स्रोत (अन्यद्वार) तथा दांत इनके छिद्रोंको न कुरे दे (न खुरचे,) वाल, मुख, नख और वस्त्र शरीर इन्हें न हिलावे और शरीर नख मुख इन्हें नहीं बजावे तथा काठ, लोह, तृण इत्यादिको तोडे नहीं और मरोडे भी नहीं ९३

(वा० ९१) बहिर्वेगाः मूत्रपुरीषादीनां बहिःकरणानि । न प्रकाशमिति प्रकाशो यथा भवति तथा नोत्सृ-जेत् । (इति नि० सं०) ।

(वा० ९२) पर्यस्तिकावष्टंभमिति । पर्यस्तिका पलस्तिका पर्यस्तिपतनं यस्याधारे इति पर्यस्तिका तकिया इति लोक । तस्य अवष्टंभं अवलंबनं इति तात्पर्यार्थः ।

(वा० ९३) स्रोतांसि मूत्रपुरीषादीनां विवराणि न कुष्णीयात् विमर्दनं विलेखनं वा न कुर्यात् ॥

न प्रतिवातातपंसेवेत, न भुक्तमात्रोऽग्निमुपासीत, नोत्कटकस्तिष्ठेत्,नाल्प-काष्ठासनमध्यासीत, न ग्रीवां विषमां धारयेत्, न विषमकायः क्रियां भजेत् भुंजीत वा, न प्रततमीक्षेत विशेषाज्ज्योतिर्भास्करसूक्ष्मचलभ्रांतानि, न भारं शिरसा वहेत्, । न स्वप्नजागरणशयनासनचंक्रमण यानवाहनप्रधावनलंघनप्लवनप्रतरणहास्यभाष्यव्यवायव्यायामादीनुचितान्प्यति सेवेत ॥ ९४ ॥

विशेषकर वायु और सूर्यके सन्मुख न रहे, भोजन करतेही अग्निसे न तापे, विशेष उत्कट (ऊकडू) न बैठे, छोटी काष्ठादिकी वस्तु पर न बैठे, गरदनको टेढी न रक्खे, और शरीरको टेढा करके कोई काम विशेष न करे और न टेढा बैठकर भोजन करे खूब टक टकी बांधकर न देखे विशेषकर चमकीली वस्तु सूर्य (बारीक) वस्तु चलती वस्तु और चक्कर खाते हुए पदार्थोंको निगाह बांधकर न देखे, शिरपर बोझा रखकर न चले, और सोना जागना लेटना बैठना फिरना घोडे आदि तथा रथादिकी सवारी करना दौडना लंघन करना कूदना तैरना हँसना बोलना मैथुन करना और परिश्रम (दंड कसरत) आदिको उचितके सिवाय अधिक नहीं करना चाहिये ॥ ९४ ॥

उचितादप्यहितात् क्रमशो विरमेत् हितमनुचित-
मप्यासेवेत क्रमशो न चैकांततः पादहीनात् ॥ ९५ ॥

जो उचित है परहित कारक नहीं उनको क्रमसे छोड देना चाहिये और जो अनुचित है परंतु हितकारक है अर्थात् फायदा करते हैं उन्हें क्रमसे ग्रहण करना चाहिये एका एक त्यागना और ग्रहण करना योग्य नहीं किंतु पादहीनके क्रमसे छोडना या ग्रहण करना चाहिये पादका अर्थ कई षोडशांश करते हैं और कई चतुर्थांश करते हैं ॥ ९५ ॥

नावाक्शिराः शयीत नभिन्नपात्रे नांजलिपुटेनापः पिबेत् । काले हित-मितस्निग्धमधुरप्रायमाहारं वैद्यप्रत्यवेक्षितमश्नीयात् ॥ ९६ ॥ ग्रामगण-गणिकापणिकशत्रुशठपतितभोजनानि परिहरेत् । शेषाण्यपि चानिष्टरू-

---

(श्लो० ९४) शयनासनमित्यत्र शयनाशनमिति वा पाठः । अशनं भोजनं तदप्यति न सेवेत यानं रथादिकम् । वाहनं अश्वादिकम् ।

(वा० ९५) उचितात् अभ्यस्तात् अपि, अहितात् मद्यादेः, पादहीनत् चतुर्थांशात् षोडशांशाद्वा ।

(ग०९६) अवाक् शिराः अधः शिरा इत्यर्थः ।

(श्लो० ९७) ग्रामभोजनं गणभोजनं च परिहरेत् । पणिकः क्षुद्रवाणक् गणारथकारचारणादय इति डल्लनः। शब्दस्तोमतु गण समूह एव संभूयदत्तानीति मिलित्वा दत्तानि अथवा असंभय दतानि अश्रद्धया दत्तानि ।

परसगंधस्पर्शशब्दमानसान्यन्यान्येवंगुणान्यपि वा संभूय दत्तानि तान्यपि मक्षिकाबालोपहतानि ॥ ९७ ॥ नाप्रक्षालितपाणिपादो भुंजीत मूत्रोच्चारपीडितो न संध्ययोर्नापाश्रितो नातीतकालं हीनमतिमात्रं चेति न भुंजीतोद्धृतस्नेहम् ॥ ९८ ॥

नीचा शिर करके न सोवे फूटे पात्रमें और अंजलिसे जल नहीं पीवे । समयपर हितकारक कुछ कम चिकना और मीठा वैद्यको दिखाकर भोजन करे ॥ ९६ ॥ ग्राम साझला और समूहका (जैसे मेघ न बरसनेपर ग्रामके लोग सब मिलकर भोजन कराया करतेहैं) वेश्याका वणजी करनेवालेका शत्रुका मूर्खका पतितका भोजन नहीं करे और भी बुरेरूप बुरीगंध अयोग्य रस कुत्सित स्पर्श और खराब शब्द जिस भोजनमें हों उसे भी नहीं खावे और जिससे मनको ग्लानि हो तथा ऐसेही और अवगुण हो तो उस भोजनको भी न खावे और जो मिलाकर कइयोंने दियाहो (अथवा असंभूय दत्तानि जो विना प्रीतिके दिये हो) और जिनमें मक्खी वाल आदि पडे हों ऐसे भोजन भी न खावे ॥ ९७ ॥ विना हाथपाव धोये भोजन नहीं करे तथा मूत्र और मलकी शंकासे पीडित भी भोजन न करे तथा संध्याओंमें न जीमे और अकेला विना पासवालेको भोजन कराये भी भोजन न करे क्षुधा मारकर समय व्यतीत होनेपर न जीमे अर्थात् देर करके न जीमें बहुत कम और बहुत अधिक भोजन न करे और जिसमें घृत न हो वह भोजन नहीं करे (अथवा जिसमेंसे घृत निकाल लिया हो वह वस्तु न खावे ॥ ९८ ॥

नोदके पश्येदात्मानं न नग्नः प्रविशेज्जलम् । न नक्तं दधि भुंजीत न वाप्यघृतशर्करम् । नामुद्गयूषं नाक्षौद्रं नोष्णैर्नामलकैर्विना । अन्यथा कुष्ठविसर्पादीञ्जनयेत् ॥ ९९ ॥

अपनी छाया जलमें न देखे नग्न होकर जलमें प्रविष्ट न हो । रात्रिमें दही नहीं खावे और घृत खांडके विना भी नहीं खावे तथा बिना मूंगके यूषके भी नहीं खावे तथा शहत मिलाये विना नहीं खावे तथा गरम पदार्थके संग न खावे और आवलेके बिना नहीं खावे (अर्थात् खावे तो उपरोक्त विधिसे खावे और अन्यथा दही खानेसे कुष्ठविसर्पादि रोग होतेहैं ॥ ९९ ॥

द्यूतमद्यातिसेवा प्रतिभूसाक्षित्वसमाह्वानगोष्ठीवादित्राणि न सेवेत । स्रजं

(श्लो० ९८) अपाश्रितः न भुंजीत । अपगतो आश्रित यस्मात् निराश्रितः आश्रितं दूरीकृत्य न भुंजीत इत्यर्थः । अथवा नोपाश्रित इति वा पाठे उपाश्रित आश्रयीभूतः सन्न भुंजीत इति ।

छत्रोपानहौ कनकमतीतवासांसि न चान्यैर्धृतानि धारयेत् । ब्राह्मणमग्निं गां च नोच्छिष्टः स्पृशेत् ॥ १०० ॥

जूवा खेलने मद्य पीने (अति मद्य पीने) प्रतिभू (किसीका जामिन बनने) गवाही देने समूहकी गोष्ठी और मृदंग तंबूरा आदि बजानेसे अलग रहे । माला छत्री जूता सोनेके भूषण पुराने वस्त्र औरोंके धारण किये हुवे धारण न करे (आवश्यकता हो तो धोकर धारण करे । ब्राह्मण अग्नि और गौको झूंठे (भोजन करते) न छूवे ॥ १०० ॥

भवंति चात्र ॥ सुखमात्रं समासेन सद्वृत्तस्यैतदीरितम् ।
आरोग्यमायुरर्थो वा नासद्भिः प्राप्यते नृभिः ॥ १०१ ॥

शिष्ट मनुष्योंको जिस भांति सुख आरोग्यता और द्रव्यादिकी प्राप्ति हो वह आचरण यहां संक्षेपसे वर्णन किये गये और जो असत् पुरुष इसके विपरीत वरताव करेंगे उन्हें सुख आरोग्यता और लक्ष्मी आदिकी प्राप्ति नहीं होवे ॥ १०१ ॥

यस्मिन्यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यंति देहिनाम् । तेषु
तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥ १०२ ॥

जिस जिस ऋतुमें जो जो दोष मनुष्योंके शरीरमें कुपित होते हैं उन ऋतुवोंमें दोषोंके शांत करनेवाले वही रस जानकार वैद्यको चाहिये कि (खानेमें विशेष) देवे (जैसे प्रावृट्में वायुका कोप होता है तो वायुनाशक मधुर अम्ल और लवण रस विशेष भोजनमें देवे और शरद ऋतुमें पित्तका कोप होता है वहां मधुर तिक्त और कषाय रस देवे तथा वसंतमें कफ कोपके समय कटु तिक्त और कषाय रस देवे) ॥ १०२ ॥

वर्षासु न पिबेत्तोयं पिबेच्छरदि मात्रया । वर्षासु चतुरो मासान् मात्रावदुदकं पिबेत् ॥ १०३ ॥ उष्णां हेमे वसंते च कामं ग्रीष्मे तु शीतलम् । हेमंते च वसंते च सीध्वरिष्टौ पिबेन्नरः ॥ १०४ ॥ शृतं शीतं पिबेद्ग्रीष्मे प्रावृट्काले रसं पिबेत् । यूषं वर्षति तस्यां ते प्रपिबेच्छीतलं जलम् ॥ १०५ ॥

(वा० १००) छत्रोपनहौ कनकमतीतवासांसि चान्यैर्धृतानि न धारयेत् धारयेत्तदा प्रक्षाल्य धारयेदिति । (नि० सं०)

(श्लो० १०३) वर्षासु न पिबेत्तोयमित्यत्र नञ् ईषदर्थे ईषज्जलं पिबेदित्यर्थः (इति नि० सं)

वर्षामें जहांतक हो जल न पीवे, (खेंचकर कम पीवे) और शरद् ऋतुमें मात्रासे जितनी आवश्यकता हो उतना पीवे, वर्षा के चारों महीनोंमें ही मात्रा(प्रमाण) का जल पीवे (अधिक नहीं) ॥ १०३ ॥ शीतकी अधिकतामें निवाया जल पीवे और वसंतमें जैसेको जी चाहे वैसा पीवे, ग्रीष्म गरमीमें शीतल जल पीवे और हेमंत तथा वसंतमें थोडा सीधु और अरिष्ट (मद्य) भी पीना उचित है ॥ १०४ ॥ ग्रीष्म (गरमी) में औटाया हुवा जल ठंढा करके पीवे और प्रावृट् ऋतुमें मांसके रसका पान करे वर्षा में यूष बना २ कर पीवे और वर्षा के अंत शरद् ऋतुमें ठंढा जल पीवे ॥ १०५ ॥

स्वस्थे एवम तोन्येस्तु दोषाहारमतानुगः । स्ने हं सैंधवचूर्णेन पिप्पली-भिश्च संयुतम् ॥ १०६ ॥ पिबेदग्निविवृद्धयर्थं न च वेगान् विधारयेत् । अग्निदीप्तिकरं नृणां रोगाणां शमनं प्रति ॥ १०७ ॥ प्रावृट्शरद्वसंतेषु सम्यक् स्नेहादिमाचरेत् । कफे प्रच्छर्दनं पित्ते विरेको बस्तिरीरि णे ॥ १०८ ॥

उपरोक्त वरताव स्वस्थ मनुष्यको करने चाहिये और जो रोगी हो उसे दोष और आहारके अनुसार करने उचित है । स्नेहमें सैंधानमक और पीपल मिलाकर पीवे इससे जठराग्नि बढती है और वेगोंको न रोके और अग्नि दीप्त करने और मनुष्योंके रोग शांति करनेको प्रावृट् शरद् और वसंतमें युक्तिपूर्वक स्नेह आदि (स्नेहन स्वेदन वमन रेचन आदि) करे कफमें वमन पित्तमें विरेचन और वायुमें बस्ति कर्म हित है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

शस्यते त्रिष्वपि सदा व्यायामो दोषनाशनः । भुक्तं विरुद्धमप्यन्नं व्याया-मान्न प्रकुप्यति ॥ १०९ ॥ उत्सर्गमैथुनाहारशोधने स्यात्तु तन्मनाः । नेच्छेद्रोगभयात्प्राज्ञः पीडां वा कायमानसीम् ॥ ११० ॥

तीनों कालमें सदा व्यायाम करना दोषोंको नाश करता है भोजन किया हुवा विरुद्ध अन्नभी व्यायामसे कुपित नहीं होता (पच जाता है) ॥ १०९ ॥ उत्सर्ग (मलमूत्रादिके त्यागने) मैथुन करने भोजन करने और शोधन करनेमें उसी तरफ मन लगाये रखना चाहिये और बुद्धिमान् मनुष्य रोगके भयसे शारीरिक और मानसिक पीडाको भी इच्छा न करे शारीरिक और मानसिक पीडा जिसमें विशेष हो वह काम नहीं करे ॥ ११० ॥

(श्लो० १०६) स्वस्थः रोगरहितः अतोऽन्यव्याधिपीडितः ।

(श्लो० १०९) त्रिषु कालेषु प्रावृट्शरद्वसंतेषु तथा च सदापदेन षट्सु ऋतुषु सर्वदैव व्यायामः शस्यते इत्यभिप्रायः ।

अति मैथुनका निषेध ।

अतिस्त्रीसंप्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान् । शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपांड्वामयक्षयाः । अतिव्यवायाज्जायंते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ १११ ॥

सावधान मनुष्यको चाहिये कि, अत्यंत स्त्रीप्रसंगसे अपनेको बचाय रक्खे क्योंकि अति मैथुन करनेसे शूल खांसी ज्वर, श्वास, कृशता, पांडुरोग, क्षय और आक्षेपक आदि वात रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १११ ॥

युक्तिसे स्त्री संगके गुण और प्रमाण ।

आयुष्मंतो मंदजरा वपुर्वर्णबलान्विताः । स्थिरोपचितमांसाश्च भवंति स्त्रीषु संयुताः ॥ ११२ ॥ त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समीयात्प्रमदां नरः । सर्वेष्वृतुषु धर्मेषु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ॥ ११३ ॥

जो युक्ति पूर्वक स्त्रीसंग करते हैं वे दीर्घायु जरारहित होते हैं शरीर रूप और बलसे युक्त होते हैं और उनका मांस शरीर पर स्थिर गँठा हुआ रहता है (झुरियां नहीं पडती) ॥ ११२ ॥ बुद्धिमान् को चाहिये कि और सब ऋतुओंम तीन तीन दिनमें एक बार स्त्री संग करे और गरमीमें पंद्रह२ दिनसे गमन करे ॥ ११३ ॥

रजस्वलामकामां च मलिनामप्रियां तथा । वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ ११४ ॥ हीनांगीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषप्रपीडिताम् । सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि । संध्यापर्वस्वगम्यां च नोपेयात्प्रमदां नरः ॥ ११५ ॥

रजस्वला जिसे कामकी इच्छा नहो मलीन जो प्रेम न करे तथा वर्ण (जाति) मे बडी और अवस्थामें बडी एवं रोगसे पीडित ॥ ११४ ॥ जिसका कोई अंगभंगहो जो गर्भवती हो जो द्वेष रखती जिसकी योनिमें कोई दोष हो सगोत्रा हो गुरुकी स्त्री हो या बडे आदमी की स्त्रीहो) वे वारसी ऐसीही फिरती हों उन स्त्रियोंसे कदाचित मैथुन नहीं करे और संध्याके समय तथा पर्वके दिनोंमें तथा अगम्यास्त्रियोंसे भी संगम करना उचित नहीं ॥ ११५ ॥

(श्लो० १११) आत्मवान् बुद्धिमान् (इति डल्हनः) आक्षेपको वातव्याधिः ।

(श्लो० ११२) स्थिरोपचितमांसाः स्थिरकठिनमांसाः इति ।

(श्लो० ११५) योनिदोषप्रपीडितामित्यत्र योनिदोषसमन्वितामिति वा पाठः । प्रव्रजितां गृहीतव्रतामिति डल्हनः अपरे त्यक्तगृहामाहुः ।

गोसर्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्यदिनेषु च । लज्जासमावहे देशेविवृतेऽशुद्ध एव च ॥ ११६ ॥ क्षुधितो व्याधितश्चैव क्षुब्धचित्तश्च मानवः । वातविण्मूत्रवेगी च पिपासुरति दुर्बलः ॥ ११७ ॥ तिर्यग्योनावयोनौच प्राप्तशुक्रविधारणम् । दुष्टयोनौ विसर्गन्तु बलवानपि वर्जयेत् ॥ ११८॥ रेतसश्चातिमात्रं तु मूर्द्धावरणमेव च । स्थिताउत्तानशयने विशेषेणैव गर्हितम् । क्रीडायामपि मेधावी हितार्थी परिवर्जयेत् ॥ ११९ ॥

गोसर्ग (प्रभात) में अर्द्ध रात्र और मध्याह्नमें तथा लज्जाके स्थानमें चौडे चपाटमें तथा अशुद्धस्थानमें (मैथुन करना उचित नहीं) ॥ ११६ ॥ भूखके समय रोगीको और चित्तमें क्षोभ होनेके समय (क्रोधमें) तथा अधोवायु विष्ठा और मूत्रकी शंका होनेपर प्यासा मनुष्य और अति दुर्बल भी मैथुन न करे ॥ ११७ ॥ तिर्यक्योनि (गधी घोडी बकरी आदि) तथा अयोनि (गुद मैथुनादि) में भी मैथुन करना उचित नहीं और गिरते हुये शुक्रको रोकनाभी योग्य नहीं तथा दुष्टयोनि (खडा आदि) इनमें बलवान्भी मैथुन न करे ॥ ११८ ॥ अतिवीर्य पात करना शिरबाँधना (या शिर हिलाना या शिरका कंपन करना) खडे होना ऊपरको पाव करना भी मैथुनके समय विशेष वर्जित है और क्रीडामें भी हितार्थी बुद्धिमान् अतिवीर्यपातादि नहीं करे ॥ ११९ ॥

रजस्वलां प्रार्तवतो नरस्यानियतात्मनः । दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ॥ १२० ॥ लिंगिनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु । वृद्धां च संध्ययोश्चापि गच्छतो जीवितक्षयः ॥ १२१ ॥

रजस्वला गमन करनेवाले अजितेंद्रिय मनुष्यके दृष्टि आयु और तेजकी हानि होती है और अधर्म (पाप) भी होता है ॥ १२० ॥ लिंगिनी प्रव्रजिता (साधनी) गुरुपत्नी सगोत्रा इनसे संग करनेमें तथा पर्वमें मैथुन करनेसे वृद्धा स्त्रीसे संग करनेमें तथा संध्या समय मैथुन करनेसे जीवका क्षय होता है (आयु और बल घट जाता है ॥ १२१ ॥

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्व्याधितायां बलक्षयः । हीनांगीं मलिनां द्वेष्यां कामं वंध्यामसंवृते । देशेऽशुद्धे च शुक्रस्य मनसश्च क्षयो भवेत् ॥१२२॥

(श्लो० ११६) गोसर्गे प्रभाते । अविवृते अनाच्छादिते देशे ।

(श्लो० ११८) प्राप्तशुक्रविधारणं परिवर्जयेदित्यन्वयः ।

(श्लो० ११९) मूर्द्धावरणमित्यत्र मूर्द्धाहरणमिति पाठः । तथा चोक्तम् । वृद्धवाग्भटे मूर्द्धाभिघातं परिहरेत् ।

गर्भिणीका संगम करनेसे गर्भको पीडा होती है व्याधिवालीका संग करनेसे बलक्षय होता है हीनांगी मलीन और द्वेषयुक्त स्त्री संगसे तथा वंध्या-के संगसे चौडेमें और अशुद्ध स्थानमें मैथुन करनेसे वीर्य और मनका क्षय होता है ॥ १२२ ॥

(वक्तव्य) "कामं या कामां" यह पद अलग रहता है इससे कई तौ ऐसा पाठ मानतेहैं कि " द्वेष्याकामां " अर्थात् द्वेषयुक्त और अकाम स्त्री संग और कई काम "वंध्यां" इधर समस्तपद मानकर काम वंध्याका अर्थ अकामा ऐसा मानतेहैं क्योंकि पहले श्लोकोंमें वंध्या नहीं कही तब अब दूषण कहनेमें वंध्या क्यों लिखी ऐसा मानकर काम वंध्यां ऐसा एक पद मानते हैं कई इसे आर्ष ऐसा कहकर समाधान करते हैं) ॥

क्षुधितः क्षुब्धचितश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः । स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विंदति ॥ १२३ ॥ अतिप्रसंगाद्भवति शोषः शुक्रक्षया-द्वेहः । व्याधितस्य रुजा प्लीहा मृत्युर्मूर्च्छा च जायते ॥ १२४ ॥ प्रत्यू-षस्यर्द्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः । तिर्यग्योनावयोनौ च दुष्टयोनौ तथै-व च । उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रस्य च क्षयः ॥ १२५ ॥

क्षुधाके समय मैथुन करनेसे चित्तके क्षोभके समय मध्याह्नमें तृषा के समय निर्बल और खडे हुये मैथुन करनेसे शुक्रकी हानि और वायु का कोप होता है ॥ १२३ ॥ अति मैथुनसे (स्त्रियोंके पासही रहनेसे) शुक्रक्षय जनित शोषरोग होता है व्याधि युक्त संगम करे तो प्लीहावृद्धि मूर्च्छा तथा मृत्यु होजाती है ॥ १२४ ॥ प्रभात और अर्द्धरात्रके समय मैथुन करनेसे वायु और पित्त दोनों कुपित होते हैं तिर्यग्योनि और अयोनि तथा दुष्ट योनियोंमें विषय करनेसे उपदंश रोग होता है वायुका कोप और शुक्रका क्षय होता है ॥ १२५ ॥

उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे । उत्ताने च भवेच्छीघ्रं शुक्रा-श्मर्यास्तु संभवः ॥ १२६ ॥ सेवं परिहरेत्तस्मादेतल्लोकद्वये हितम् । शुक्रं चोपस्थितं मोहान्न संधार्यं कथंचन ॥ १२७ ॥

उच्चारिते (मलके वेगमें या दस्त जाते जाते) मूत्रिते (मूत्रके वेग होनेपर या पेशाब करते करते) मैथुन करनेमें तथा वीर्य गिरते हुये को रोकनेसे और ऊपरको पैरकर संग करनेसे शीघ्रही शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी तथा शुक्रावरोधज कृच्छ्र (सुजाक रोग) होजाते हैं इससे इन सब बातोंको त्यागना ही चाहिये यह इस

लोकमें सुखके कारण है तथा परलोकके वास्ते धर्मका हेतु है और गिरते हुये शुक्र को तो मोहके वश हो (आनंदकी अभिलाषासे) कभी भी रोकना नहीं चाहिये ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

वयोरूपगुणोपेतां तुल्यशीलां गुणान्विताम् । अभिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामलंकृताम् ॥ १२८ ॥ सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरण बृंहितः ॥ १२९ ॥ भक्ष्याः सशर्कराक्षीरं समित्तं रस एव च । स्नानं सव्यजनं स्वप्नो व्यवायांते हितानि तु ॥ १३० ॥

इति सुश्रुतेचिकित्सिते चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

युवा अवस्थावाली रूपवती जिसमें जवानी और रूपका गुण हो अपने जैसी जिसकी प्रकृति हो और गुणवाली हो (अर्थात् वेहूदी नहो) और उसे कामदेवभी व्याप्त हो रहा हो तथा प्रसन्न हो और खूब वस्त्र भूषण काजल बिंदी आदि शृंगारोंसे बनी ठनी हो ऐसी कामिनीसे प्रसन्न चित्तवाला और कामदेवसे व्याप्त युवा पुरुष मैथुन करे ॥ १२८ ॥ और वाजीकरण पदार्थोंसे शरीर पुष्ट किये हुवे पुरुष युक्तिपूर्वक स्त्री संगम करे ॥ १२९ ॥ मैथुन कर चुकनेके पीछे मीठे (स्निग्ध) भोजन करने और मिश्री युक्त दूध पीना तथा मांस रस पीना स्नान करना पंखेसे पवन करना और सोजाना ये हितकारक है (स्नान करना मैथुनसे पीछे केवल ग्रीष्मऋतुके लिये है अन्यऋतुओंमें नहीं और ग्रीष्ममें भी मैथुनांतमें तात्काल स्नान ठीक नहीं किंतु मुहूर्त मात्र ठैरकर करना चाहिये ॥ १३० ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो मिश्रकचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम मिश्रकचिकित्सा (मिली जुली) चिकित्साकी व्याख्या करते हैं ।

कर्णपालीके रोग ।

पाल्यामयास्तु विस्राव्या इत्युक्तं प्राङ्निबोध तान् । परिपोटस्तथोत्पात उन्मंथो दुःखवर्द्धनः । पंचमः परिलेही च कर्णपाल्यागदाः स्मृताः ॥ १ ॥

पहले सूत्र स्थानमें यह कह चुके हैं कि कर्णपालीके रोग विस्रावण करने योग्य होते हैं उन्हें अब सुनो कि पालीगत रोग पांच प्रकारके होते हैं, १ परिपोट, २ उत्पात, ३ उन्मंथ, ४ दुःखवर्द्धन, ५ परिलेही ॥ १ ॥

परिपोट ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसाभिप्रवर्द्धिते । कर्णे शोफो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥ २ ॥ कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः । गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनोद्धर्षणादपि ॥ ३ ॥

सुकुमारताके कारण बहुत दिन तक छोडे जावे और फिर एकाएक छिद्र बढाये जाय जिससे कानकी पाली में सूजन और पीडा परिपोट युक्त होवे ॥ २ ॥ यह वायुसे होता है रंग काला लाली लिये हो करडाहो यह भारी भूषण (कर्ण फूल झूमके आदि) के संयोगसे तथा ताडन (मलने या चोट लगने) से और घिसा जाने से भी हो जाता है ॥ ३ ॥

उत्पात ।

शोफः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुगन्वितः ।
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ ४ ॥

कर्णपालीमें सोजा, काला, दाह पाक और पीडा युक्त हो अथवा लालरंगका हो तो रक्त पित्तसे उपजा उत्पातनाम रोग समझिये ॥ ४ ॥

उन्मंथक और दुःखवर्द्धन ।

बलाद्वर्द्धयतः कर्णं पाल्यां वायुः प्रकुप्यति । गृहीत्वा स कफं कुर्याच्छोफं तद्वर्णवेदनम् । उन्मंथकः सकंडूको विकारः कफवातजः ॥ ५ ॥ वर्द्धमाने यदा कर्णे कण्डूदाहरुगन्विते । शोफो भवति पाकश्च त्वक्स्थोसौ दुःखवर्द्धनः ॥ ६ ॥

बलपूर्वक कान बँधानेसे कर्णपालीमें वायु कुपित होता है फिर वह कुपित वायु कफको ग्रहण करके कफ वायुके वर्ण और वेदनावाला सोथ पैदा करता है और उसमें खाज भी आया करती है यह उन्मंथक नाम विकार कफ वायु जनित होता है ॥ ५ ॥ यदि कानके बढानेमें खाज दाह पीडा युक्त सोथ होवे और पक भी जावे तो त्वचामें स्थित हुवा यह दुःखवर्द्धन नाम रोग है ॥ ६ ॥

परिलेही ।

कफासृक्कृमयः कुर्य्युः सर्षपाभा विकारिणी । स्राविणी पिडिका पाल्यां कंडूदाहरुगन्विताः ॥ ७ ॥ कफासृक्कृमिसंभूतः सविसर्पान्वितस्ततः । लिह्यात्सशष्कुलीं पालीं परिलेहीति स स्मृतः ॥ ८ ॥

यादि कर्णपालीमें सरसोंके समान विकार युक्त झिरनेवाली फुन्सियोंको कफ रुधिर और कृमि उत्पन्न करे उनमें खाज दाह और पीडा हो ॥७॥ और कफ रुधिर और कृमिसे पैदा हुवा विसर्प युक्त (फैलनेवाला) जो शष्कुली (कानकी ऊपर ली पापडी) सहित पालीको लेहीभूत (लापसीसा) कर देवे वह परिलेही नामक रोग होता है ॥ ८ ॥

पाल्यामयां ह्यमी घोरा नरस्याप्रतिकारिणः । मिथ्याहारविहारस्य पालीं- हिंस्युरुपेक्षिताः ॥ ९ ॥ तस्मादाशु भिषक्तेषु स्नेहादिक्रममाचरेत् । तथाभ्यंगपरीषेकप्रदेहासृग्विमोक्षणम् ॥ १० ॥

ये कर्णपालीके रोग घोर होते हैं प्रतिकार न करनेवाले और अयोग्य आहार विहार करनेवाले मनुष्यके कानकी पाली वे चिकित्सा यूंही छोडदी जावे तो वे रोग उस पालीको गलाकर सडाकर नष्टकर देते हैं ॥९॥ इसलिये इनमें वैद्य स्नेहादिकसे उपचार करे तथा अभ्यंग और परिषेक तथा प्रदेह और रुधिर निकालना आदि यत्न करे ॥ १० ॥

इनके यत्न ।

सामान्यतो विशेषाच्च वक्ष्याम्यभ्यंजनं प्रति । खरमंजरियष्ट्याह्वसैंधवा- मरदारुभिः ॥ ११ ॥ सुपिष्टैः साश्वगंधैश्च मूलकावल्गुजैःफलैः । सर्पिस्तैलव- सामज्जामधूच्छिष्टानि पाचयेत् ॥ १२ ॥ सक्षीराण्यथ तैः पालीं प्रदिह्या- त्परिपोटके ॥ १३ ॥

सामान्यतासे उपचार वर्णन हो चुके अब विशेष अभ्यंजन वर्णन करते हैं खर मंजरी (ओंगा) मुलेटी, सैंधानमक, देवदारु ॥ ११ ॥ इन्हें सुंदर पीसकर असगंध और सहँजना, बावची मिला घृत, तैल, चरबी और मज्जा तथा मोम इन सबको पकालेवे ॥ १२ ॥ पकते समय दूधभी डाले और इसे परिपोटक रोगमें लगावे॥१३॥

मंजिष्ठातिलयष्टयाह्वसारिवोत्पलपद्मकैः ॥ सरोध्रैः सकदंबैश्च बलाजंब्वा- म्रपल्लवैः । सिद्धं धान्याम्लसंयुक्तं तैलमुत्पातनाशनम् ॥ १४ ॥

मंजीठ, तिल, मुलेटी, सारिवा, कमल,पद्माख, लोध, कदंब, खिरेंटी, जामुन और आमके पत्ते धान्याम्ल संयुक्त इनसे सिद्ध किया हुवा तैल उत्पात नाम कर्णपालीके रोगका नाशक है ॥ १४ ॥

तालपत्र्यश्वगंधार्कवाकुचीफलसैंधवैः । तैलं कुलीरगोधाभ्यां वसया सह पाचितम् ॥ १५॥ सरलालांगलीभ्यां च हितमुन्मंथनाशनम् । तथाश्मंत-

कजंब्वाम्रपत्रक्वाथेन सेचनम् । प्रपौंडरीकमधुकमंजिष्ठारजनीद्वयैः । चूर्णे-रुद्वर्त्तनैः पालीं तैलाक्तामवचूर्णयेत् ॥ १७ ॥

तालपत्री, असगंध, आक, बावची, सैंधव इन सब औषधों से तैल पकावे और सरला, कलहारी तथा केकडे और गोहकी चरबी भी पकते समय मिलावे यह तैल उन्मंथ रोग नाश करनेमें हित है । तथा अश्मंतक, जामन और आँबके पत्तों के क्वाथसे सेचन करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ प्रपौंडरीक, मुलेटी, मंजीठ दोनों हलदी इनका चूर्ण कर उबटनसे पालीपर तैल लगाकर यह चूर्ण बुरका देवे यह भी उन्मंथ-में हित है ॥ १७ ॥

लाक्षाविडंगकल्केन तैलं पक्त्वावचारयेत् । स्विन्नां गोमयपिंडेन प्रदिह्या-त्परिलेहिके ॥ १८ ॥ पिष्टैर्विडंगैरथवा त्रिवृच्छ्यामार्कसंयुतैः । करं-जेंगुदिबीजैर्वा कुटजारग्वधायुतैः ॥ १९ ॥ सर्वैर्वा सार्षपं तैलं सिद्धं मरिचसंयुतम् । सनिंबपत्रैरभ्यंगे मधूच्छिष्टान्वितं हितम् ॥ २० ॥

लाख और विडंगके कल्कसे तैल पकाकर परिलेही नाम रोगको पहले गोबरके पिंडसे स्वेदन करके उसपर तैल लगावे ॥ १७ ॥ अथवा विडंग निसोथ श्यामा (प्रियंगु) आक इनमें तैल पकाकर लगावे अथवा करंज वा हिंगोटके बीज कुडा और अमलतास इनमें तैल पकाकर लगावे ॥ १९ ॥ अथवा इन सबमें सरसोंका तैल पकावे और उसमें मिरच स्याह नींबके पत्ते और मोम पकते समय मिलावे और अभ्यंग करे (लगावे) ॥ २० ॥

पालीषु व्याधियुक्तासु तन्वीषु कठिनासु च । पुष्टयर्थमार्दवार्थं च कुर्या-दभ्यंजनं हि तं ॥ २१ ॥ लोपाकानूपमज्जानं वसा तैलं नवं घृतम् । पचेद्दशगुणं क्षीरमावाप्य मधुरं गणम् ॥ २२ ॥ अपामार्गाश्वगंधे च तथा लाक्षारसं शुभम् । सुसिद्धं परिपूतं च स्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ २३ ॥ तेनाभ्यंज्यात्सदा पालीं सुस्विन्नामतिमर्दिताम् ॥ २४ ॥ एतेन पाल्यो वर्द्धंते निरुजो निरुपद्रवाः । मृद्व्यः पुष्टाः समाः स्निग्धा जायंते भूष-णक्षमाः ॥ २५ ॥

(श्लो० १७) उद्वर्तनैस्तैलाक्तांपालीं चूर्णैरवचूर्णयेदित्यन्वयः ।

(श्लो० १८) परिलेहिके गोमयपिंडेन स्विन्नां पिष्टैर्विडंगैःप्रादिह्यादिति वा संयुज्यते ।

(श्लो० २२।२३) अनयोर्मिलित्वान्वयः ।

यदि कर्णपालीमें थोडी या बहुत किसी भांतिकी व्याधि हो उसमें पुष्टि और मृदुता (मुलायमी) होनेके लिये तैलादिका मलना हित है ॥ २१ ॥ लोमडी और जल किनारेके जीवोंकी मज्जा और चरबी तैल और नया घृत इनमें दशगुण दूध और मधुर (काकोल्यादि) डाले ॥ २२ ॥ (और पकते समय) ओंगा असगंध तथा लाखका रसभी डाले और पकाले जब पकजावे छान कर (शीशीमें भर) मुँह बंद करके रक्खे ॥ २३ ॥ यदि पालीरोग हो तो उसे स्वेदित और मर्दित करके यह तैल लगावे॥२४॥इससे कानके छिद्र निरोगे निरुपद्रव कोमल पुष्ट सम और स्निग्ध होते हैं और बढते हैं और भूषण (कर्णफूल झूमके आदि) सहारनेकी शक्ति होजाती है॥ २५ ॥

पलितपर तैल।

नीलीदलं भृंगरजोर्जुनत्वक् पिंडीतकं कृष्णमयोरजश्च। बीजोद्भवं साहचरं च पुष्पं पथ्याक्षधात्रीसहितं विचूर्ण्य ॥ २६॥ एकीकृतं सर्वमिदं प्रमाय पंकेन तुल्यं नलिनीभवेन। संयोज्य पक्षं कलशे निधाय लौहे घटे सद्मनि सापिधाने ॥ २७ ॥ अनेन तैलं विपचेद्विमिश्रं रसेन भृंगेत्रिफलाभवेन। आसन्नपाके च परीक्षणार्थं पत्रं बलाकाभवमाक्षिपेच्च ॥ २८ ॥ भवेद्यदा तेद्भ्रमरांगनीलं तदा विपक्कं विनिधाय पात्रे कृष्णायसे मांसमवस्थितं तदभ्यंगयोगात्पलितानि हन्यात् ॥ २९ ॥

नीलके पत्ते, भृंगराज, कुहेकी छाल, काले फूलका मैनफल, लोहचून, आंबकी गुठली और फूल हरडे, बहेडा, आँवले इन सबको चूर्ण करके ॥ २६ ॥ इकट्ठा करके कमोदनीके रसमें सानकर कीचड सा गाढा करके लोहेके घडेमें भर पंद्रह दिनतक ढके हुये मकानमें रक्खे ॥ २७ ॥ फिर इससे तैल पकावे और पकतेबार भाँगरा और त्रिफलाका रसभी डाले जब पकावपर आवे तब परीक्षाके लिये बगलेकी पंख उसमें डुबोकर देखे ॥ २८ ॥ जो काली भँवरे जैसी होजावे तो पक गया जाने (नहीं तो भंगरे और त्रिफलेका रस कम हो तो और डालकर पकावे) जब पक जावे तब लोहेके घडेमें रखकर एक महीना रहने दे फिर इसे सपेद बालोंपर लगावे इससे पलित नष्ट होवे (सपेद बाल स्याह होजावे ॥ २९ ॥

(वक्तव्य) श्लोक (२७) में कई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि, सब औषधोंके तुल्य कमलनीके जडकी कीचड मिलाकर लोह कलशमें भरे और श्लोक (२६) में " बीजोद्भवं " का अर्थ कई विजैसार कई बीजपूर करते हैं ॥

(श्लो० २८) अनेन इतिपूर्वसंपादितनीलीदलादियोगेन।

सैरीयजम्ब्वर्जुनकाश्मरीजं पुष्पं तिलान्मार्कवचूतबीजे । पुनर्नवाकर्दमकंटकार्यौ कासीसपिंडीतकबीजसारम् ॥ ३० ॥ फलत्रयं लोहरजोऽजनं च यष्टयाह्वयं नीरजसारिवे च । पिष्ट्वाऽथ सर्वं सह मोदयंत्याः सारांभसा बीजकसंभवेन ॥ ३१ ॥ सारांभसः सप्तभिरेवं पश्चात् प्रस्थैः समालोड्य दशाहगुप्तम् । लोहे सुपात्रे विनिधाय तैलमक्षोद्भवं तत्र पचेत्प्रयत्नात् ॥ ३२ ॥ पंकं च लोहेऽभिनवे निधार्य नस्यं विदध्यात्परिशुद्धकायः । अभ्यंगयोगैश्च नियुज्यमानं भुंजीत माषान् कृशरामथो वा ॥ ३३ ॥ मासोपरिष्टाद्घनकुंचिताग्रा केशा भवंति भ्रमरांजनाभाः । केशास्तथान्ये खलतौ भवेयुर्जरा न चैनं सहसाभ्युपैति ॥ ३४ ॥ बलं परं संभवतींद्रियाणां भवेच्च वक्रं वलिभिर्विमुक्तम् । नाकामिने नार्थिनि नाकृताय नैवारये तैलमिदं प्रदेयम् ॥ ३५ ॥

सैरीय (कुरंट) जामुन कुहा और खंभारी तिलके फूल भांगरा आमकी गुठली सांटी (काली कीचड समुद्रतटकी उत्तम होती है) दोनों कटेली कसीस मैनफल बीजकसार ॥ ३० ॥ त्रिफला लोहचून अंजन मुलेटी कमल सारिवा इन सबको पीसकर मोदयंती (मल्लिका) मिलाकर बीजक (पीतसार) के सार जलसे घोले ॥ ३१ ॥ पीतसारका जल सात प्रस्थ लेकर सबको मिला मथकर लोहेके घडेमें डाल मुँह बंदकर दशदिन रख दे फिर उसमें बहेडेकी मींगीका तेल यत्नसे पकावे ॥ ३२ ॥ फिर इसेभी लोहेके घडेमें भरकर रक्खे फिर वमन रेचनादिसे शुद्ध होकर इसकी नास लेवे और बालोंपर मले. इसका उपयोग करते समय उडद तथा कृशरा (तिल तंडुलकी खिचडी) खावे ॥ ३३ ॥ इसके एक महीना करनेसे बाल गहरे घुँघराले भोरे जैसे काले होजाते हैं और खलति (गंज) में लगानेसे बाल पैदा होजाते हैं और शीघ्रही बुढापा नहीं आता ॥ ३४ ॥ इंद्रियोंमें परम बल होजाता है और चेहरेकी झुरी पडगई होतो मिट जाती है यह तैल जो कामी न हो उसे न देवे अर्थ रहित (कंगाल या अनर्थी) को भी न देवे तथा अकृत (अकृतज्ञ) को भी नहीं देवे एवं शत्रूको भी नहीं देवे ॥ ३५ ॥

व्यंगादि नाशक घृत ।

लाक्षारोध्रं द्वे हरिद्रे शिलाले कुष्टं नागं गैरिका वर्णकाश्च । मंजिष्ठोग्रा स्यात्सुराष्ट्रोद्भवा च पत्तंगो वै रोचनां चांजनं च ॥ ३६ ॥ हेमांगत्वक्

पांडुपत्रं वेटस्य कालीयं स्यात्पद्मकं पद्ममध्यम् । रक्तं श्वेतं चंदनं पारदं च काकोल्यादिः क्षीरपिष्टश्च वर्गः ॥ ३७ ॥ मेदोमज्जासिक्थकं गोघृतं च दुग्धं क्वाथः क्षीरिणां च द्रुमोणाम् । एतत्सर्वं पक्वमेकध्यतस्तु वक्त्राभ्यंगे सर्पिरुक्तं प्रधानम् ॥ ३८ ॥ हन्याद्व्यंगं नीलिकां चातिवृद्धां वक्त्रे जाताः स्फोटिकांश्चापि केश्चित् । पद्माकारं निर्व्यलीकं च वक्त्रं कुर्याद्देतत्पीनगंडं मनोज्ञम् ॥ ३९ ॥ राज्ञामेतद्योषितां चापि नित्यं कुर्याद्वैद्यस्तत्समानां नृणाञ्च । कुष्ठघ्नं वै सर्पिरेतत्प्रधानं येषां पादे संति वै पादिकाश्च ॥ ४० ॥

लाख, लोध, दोनों हलदी, मैनेसिल, हरताल, कूठ, नागकेसर, गेरु, वरना, मंजीठ, वच, फटकडी, पतंग, गोरोचन, अंजन, (सुरमा और कई रसांजन लेते हैं) ३६ ॥ चोक, दालचीनी, बडके पीले पत्ते, अगुरु, पद्माख और कमलके बीचका जीरा, लाल चंदन, सपेद चंदन, पारा, तथा काकोल्यादिक गण इन सबको दूधमें पीस ले ॥ ३७ ॥ चरबी, मज्जा मोम और गोका घृत तथा दूध और दूधवाले वृक्षों (वट गूलर आदि) का क्वाथ इन सबको इकट्ठा करके पका लेवे यह घृत मुखपर मलनेमें प्रधान है ॥ ३८ ॥ यह व्यंग (झांई) नीलिका (काले धब्बे) जो बहुत बढे हैं तथा मुँहके ऊपर जो छोटी २ फुन्सियाँ (मुहांसे आदि) हो सबको साफ कर देता है मुखको कमल समान सलवट रहित कर देता है और कपोलोंको पुष्ट और मनोहर बना देता है ॥ ३९ ॥ वैद्य इसे राजों और स्त्रियोंको तथा इनके समान अन्य मनुष्यों (धनाढ्य रूपाभिलाषियों) को नित्य (मुखपर) अभ्यंग करावे यह घृत कुष्ठका भी प्रधान नाशक है तथा जिनके पावोंमें वैपादिका (बिवाई) अधिक हो उनको भी हित है ॥ ४० ॥

हरीतकीचूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचं दाडिमपुष्पवृंतम् ।
पत्रं च दद्यान्मदयंतिकाया लेपोंगरागो नरदेवयोग्यः ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थानेपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हरीतकीका चूर्ण नींबके पत्ते आँबकी छाल अनारके पुष्पका नीचेका भाग (अनारकी कली) और मदयंतिका (मल्लिका) के पत्ते इन सबको पीसकर मुँहपर (चेहरे पर) लेप करनेसे रंग गोरा और साफ (सुंदर चमकीला) होजाता है यह लेप नरदेव (राजा) लोगोंके योग्य है ॥ ४१ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीकभाषाटीकायां
चिकित्सितस्थाने पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः क्षीणबलीयं वाजीकरणचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम क्षीणबलीय वाजीकरणचिकित्साका व्याख्यान करते हैं अर्थात् क्षीण निर्बल नपुंसक मनुष्योंके बलवान् होनेके उपाय वर्णन करते हैं ॥

कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहः व्यवायो न निवारितः ॥ १ ॥

पहले अध्यायमें यह कह चुके हैं कि, सब ऋतुओंमें तीन तीन दिनमें और गरमीमें पंदरा पंदरा दिनमें स्त्री संगकरना चाहिये इसपर यहां इतना विशेष कहते हैं कि कल्प (निरोग) पुरुष उदग्रवय चढती जवानीवाले (वीससे तीस वर्षकी अवस्थातक) तथा वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करनेवाले पुरुषोंको सब ऋतुओंमें नित्य मैथुन करना वर्जित (और हानिकारक) नहीं ॥ १ ॥

स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् । योषित्प्रसंगात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ॥ २ ॥ विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् । नृणां च बहुभार्याणां योगा वाजीकरा हिताः ॥ ३ ॥

स्थविर (जिनकी जवानी ढल गई हो चालीस वर्षसे ऊपरकी अवस्थावाले) रिरंसु (जिनकी रमण क्रीडाकी इच्छा अधिक हो) जो स्त्रियोंके प्यारे होनेकी इच्छा रक्खे जो स्त्रीप्रसंगसे क्षीण हो गये हो जो क्लीब (नपुंसक) हो गये हो अर्थात् जिनमें पुरुषार्थ नहीं रहा हो चैतन्यता न होती हो तथा जिनकी वीर्य अल्प हो (जिससे कम चैतन्यता होती हो या ध्वजभंग हो) ॥ २ ॥ विलासी (भोग विलास करनेवाले) द्रव्यवान् सुंदररूप और यौवनवाले जिनके घरमें बहुत स्त्री हो ऐसे मनुष्योंको वाजीकरण योग हितकारण होते हैं ॥ ३ ॥

वाजीकरण किसे कहते हैं ।

सेवमानो यदौचित्याद्वाजीवात्यर्थवेगवान् ।
नारीस्तर्पयते तेन वाजीकरणमुच्यते ॥ ४ ॥

(श्लो० १) कल्पस्य रोगरहितस्य, उदग्रवयसः उन्नतिशीलस्य तरुणवयसः, अहरहः इति नित्यं रात्रौ रात्रावेवेत्यभिप्रायः ।

(श्लो० २) क्लीबानामिति सहजातिरिक्तानाम् ।

(श्लो०३) वाजीकरा योगाः त्रिविधाः वीर्यजनकाः प्रवर्तका उभयगुणाश्च। तत्र स्थविराणां क्षीणानां अल्परेतसांच वीर्यजनका योगाहिताः, रिरंसूनां विलासिनां रूपयौवनशालिनां च प्रवर्तका उभयगुणाश्च हिताः ।

जिस पदार्थके उचित प्रकारसे सेवन करनेसे मनुष्य घोडेकी तरह अत्यंत वेग और पराक्रमवाला होकर स्त्रियोंको (मैथुनसे) तृप्त करे उसे वाजीकरण कहते हैं ॥ ४ ॥

वाजीकरण पदार्थ ।

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च। वाचः श्रोत्रानुगामिन्यस्त्वचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ ५ ॥ यामिनी सेंदुतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोहारि तांबूलं मदिराः स्रजः । मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ ६ ॥

विचित्र भोजन नाना प्रकारके पान (पीनेके पदार्थ) कानोंको प्रिय वाणी स्पर्शमें आनंद देनेवाली नरम शरीरकी त्वचा ॥ ५ ॥ शिखर चांदकी चांदनी रात नयी तरुण स्त्री सुननेमें मनोहर गीत पान खाना मद्य पीना पुष्पोंकी माला और मनका अप्रतिघात (उत्साह) ये सब समान मनुष्यको वाजीकरण हैं ॥ ६ ॥

नपुंसकताके लक्षण ।

१ मानसक्लैब्य ।

**तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ।
द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ७ ॥**

रमणकी इच्छावाले पुरुषके उस समय हृदयको अहित कारक पदार्थ या वरताव होके मनमें खिन्नता होनेसे तथा द्वेषयुक्त खोटी (मुँह फट पाठाढी जबरदस्त) स्त्रीके संग समय मनके वेग नष्ट होनेसे जो चैतन्यता नहीं होवे या होकर नष्ट होजावे तो इसे मानसक्लैब्य कहते हैं ॥ ७ ॥

दूसरे प्रकारकी क्लीबता ।

**कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ।
सौम्यधातुक्षयो दिष्टं क्लैब्यं तदपरं स्मृतम् ॥ ८ ॥**

अति चरपरे पदार्थ (लाल मिरच आदि) अति खटाई अति गरम पदार्थ अति लवण (क्षार आदि) खानेसे (तथा कच्ची पक्की धातु विषादिक जो बल बढानेको

(श्लो० ७) तैस्तैर्भावैरिति योगविस्रंभदोषदर्शनादिभिरिति डल्लनः । अन्येतु शब्दस्पर्शरूपरसगंधाद्यैरिति, द्वेष्यस्त्री इत्यत्र बलवतीऐश्वर्यवतीप्रभृतीनामपि ग्रहणं, मनसि क्षते मनोजस्यापि क्षतिरिति कार्यकारणसंबंधः ।

अयोग्य रीतिसे खाजाते हैं उससे) सौम्य धातु (ओज) (जो वीर्य और बलका कारण है) के क्षीण होजानेसे (वीर्य क्षीण होकर) नपुंसकता हो जाती यह दूसरी प्रकारका क्लैब्य है ॥ ८ ॥

(वक्तव्य) अति तीक्ष्ण वस्तुओंके सेवनसे वीर्य पतला और दूषित तथा दग्ध होजानेसे यह क्लीबता होती है इसका हेतु पित्त है ॥

तीसरे प्रकारकी क्लीबता ।

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ।
ध्वजभंगमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ९ ॥

जो पुरुष अत्यंत मैथुन करते हैं और वाजीकरण क्रिया करते नहीं ये वीर्यके क्षय होजानेसे ध्वज भंगताको प्राप्त होते हैं (अर्थात् या तो उन्हें चैतन्यता होती ही नहीं या होकर शिथिलता हो जाती है) यह तीसरी प्रकारकी क्लीबता है इसका हेतु वीर्यकी अल्पता होती है ॥ ९ ॥

चौथे प्रकारकी नपुंसकता ।

महता मेढ्ररोगेण मर्मच्छेदेन वा पुनः ।
क्लैब्यमेतच्चतुर्थं स्यान्नृणां पुंस्त्वोपघातजम् ॥ १० ॥

मेढ्र इंद्रियमें महा रोग होनेसे (कोई नस टूटने या शूक रोग उग्र उपदंश रोग आदि होनेसे) अथवा मर्मच्छेदसे मर्मस्थानमें चोट लगने कटजाने आदिसे जो मनुष्योंके पुरुषत्वका नाशक क्लैब्य हो जाता यह चोथे प्रकारकी नपुंसकता है ॥ १० ॥

पांचवे प्रकारकी नपुंसकता ।

जन्मप्रभृति यः क्लीबः क्लैब्यं तत्सहजं स्मृतम् ॥ ११ ॥

जो (माता पिताके वीर्यके विकार या स्वल्पता अथवा अनुचित आहार विहार या गर्भवती माताके अयोग्य आहार विहार या ईश्वरेच्छासे) जन्मसेही नपुंसक हो (हीजडा हो) वह सहज क्लीबता कहाती है यह पांचवे प्रकारकी नपुंसकता है (कुंभीक आसेक्य आदि जो शारीरकस्थानमें कहे हैं वे सब इसीके भेद हैं) ॥ ११ ॥

बलिनः क्षुब्धमनसो विरोधाद्ब्रह्मचर्यतः ।
षष्ठं क्लैब्यं मतं तत्तु स्थिरशुक्रनिमित्तजम् ॥ १२ ॥

बलवान् पुरुषके भी मनके क्षोभसे (मनके रोकनेसे) मैथुन संबंधी सामग्री और बातों आदिके विरोध रखनेसे तथा ब्रह्मचर्य (विशेष) रखनेसे शुक्र स्थिर

(श्लो० १०) मर्मच्छेदात् शुक्रवहानाडीछेदादिति (नि० सं०)

होजाता है (शरीरमेंसे संचालन होकर शुक्र धरा कलामें नहीं आता और ऊर्ध्वगामी ही रहता है जिससे मनुष्यको चैतन्यता नहीं होती) यह छठं प्रकारकी नपुंसकता है ॥ १२ ॥

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ।
साध्यानामितरेषां तु कार्यो हेतुविपर्ययः ॥ १३ ॥

जन्मकी नपुंसकता और मर्मच्छेदसे जो होवे ये दोनों असाध्य हैं (और शेषचार-साध्य है) इन साध्योंकी मुख्य चिकित्सा यही है कि इनके हेतुके विपरीत क्रिया करे (जैसे शुक्रकी अल्पतासे हो तो वीर्यवर्द्धन उपयोग करे वीर्यके विकारसे हो तो उसकी शुद्धि करे मानस क्लैब्य हो तो मनकी शंकाको निकाल दे स्थिर शुक्रसे हो तो स्त्रियोंको हावभाव और ऐसीही बातोंका विशेष संपर्क रक्खे जिससे शुक्र द्रवीभूत होकर अधोगामी हो) इत्यादि ॥ १३ ॥

इन बातोंकी विशेष विवेचना और हरेक प्रकारकी क्लीबता आदिका यत्न और पौष्टिक योग अधिक देखने हो तो हमारे यहांकी शरीरपुष्टि विधान पुस्तक देखिये ॥

वाजीकरणप्रयोग ।

विधिर्वाजीकरो यस्तु तं प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥ १४ ॥ तिलमाषविदारीणां शालीनां चूर्णमेव वा । पौंड्रकेक्षुरसेनार्द्रमर्दितं सैंधवान्वितम् ॥ १५॥ वराहमेदसा युक्तां घृतेनोत्कारिकां पचेत् । तां भक्षयित्वा पुरुषो गच्छेत्तु प्रमदाशतम् ॥ १६ ॥

इससे अगाडी अब हम जो वाजीकरणकी विधि है उन्हें वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥ तिल उडद और विदारीकंदका चूर्ण और शाली चावलोंका चून इन्हें पौंडेके रसमें सानकर सैंधानमक मिला ॥ १५ ॥ शूकरकी चरबी सांट) सहितकर घृतसे लपसी बनावे इसे खाकर पुरुष सौ स्त्रियोंसे संग कर सकता है ॥ १६ ॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् । शिशुमारवसापक्काः शष्कुल्यस्तैस्तिलैः कृताः । यः खादेत्स पुमान्गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ ॥ १७ ॥ पिप्पलीलवणोपेतं बस्तांडं क्षीरसर्पिषा । साधितं भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ १८॥ पिप्पलीमाषशालीनां यवगोधूमयोस्तथा॥ चूर्णभागैः समैस्तैस्तु घृतैः पूपालिकां पचेत् ॥ १९॥ तां भक्षयित्वा पीत्वा तु शर्करामधुरं पयः । नरश्चटकवद्गच्छेद्दशवाराञ्निरंतरम् ॥ २० ॥

(श्लो० १७ शिशुमारनामा जलजंतुः सूसइतिलोके ।

बकरेके अंडकोशमें सिद्ध किये हुये दुग्धसे तिलोंको कई बार भावना देकर शिशुमार नाम जलजंतुकी चरबीसे पकाकर इन तिलोंसे पूरिया बनावे फिर जो पुरुष इन्हें खावे वह सौ स्त्रियोंसे बेथकाव संग कर सकता है ॥ १७ ॥ पीपल, सधानमक लगाकर बकरेके अंडोंको दूध औ घृतमें साधन करे (घृतमें भून ले फिर गरम दूधमें छोड दे) इन्हे जो खावे वह सौ स्त्रियोंसे संग कर सकता है ॥१८॥ पिप्पल, उडद, चावल, जौ और गेहूं इसके चून सम भाग ले घृतमें पूरी बना लेवे, उन्हें खाकर दूध शर्करा युक्त पीवे तो पुरुष चिडेकी तरह निरंतर दशबार स्त्री संग कर सकता है ॥ १९ ॥ २० ॥

चूर्णं विदार्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् । सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति ॥ २१ ॥ एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् । शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् । एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ॥ २२ ॥

विदारीकंदको विदारीकंदके स्वरसकी भावना दे उसमें घृत और शहत मिलाकर (एक कर्ष विदारी चूर्ण) चाटे तो दश स्त्री संग कर सके ॥ २१ ॥ इसी प्रकार आँवलोंको आँवलोंके स्वरसकी भावना देकर उसे खांड शहत और घृत मिला कर चाटे ऊपरसे दूध पीवे इससे अस्सी वरसका बुढ्ढा भी जवानकी तरह हर्षित हो (स्त्री संग कर) सकता है ॥ २२ ॥

पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते । शिशुमारस्य वा खादेत्ते तु वाजीकरे भृशम् ॥ २३ ॥ कुलीरकूर्मनक्राणामण्डान्येवं तु भक्षयेत् । महिषर्षभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः ॥ २४ ॥ अश्वत्थफलमूलत्वक्शुंगासिद्धं पयो नरः । पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिंग इव हृष्यति ॥ २५ ॥

पीपल और लवणसे मिलाकर घृतमें साधन किये हुये बकरेके अंडकोश अथवा शिशुमार (सूस नाम जंतु) के अंड खावे तो ये दोनों परम वाजीकरण है ॥ २३ ॥ कुलीर (केकडे) कछुवे और मगर इनके अंडोंको भी इसी प्रकार खावे तो वाजीकरण हों अथवा महिष वृषभ (सांड) तथा बकरेका वीर्य पीवे

(श्लो० २४) कुलीरः कर्कटः गृहचटकइत्यन्ये मत्स्यविशेष इत्यपरे (इति नि० सं०) अण्डमत्रप्राणाधानो वर्तुलः नतु मुष्कः । इति डल्हनः ।

(श्लो० २५) शुंगाः अग्रपल्लवाः ।

(इससे भी परम पुरुषार्थ होता है) यह शुक्रपान आसेक्य नपुंसकोंको विशेष हित होता है ॥ २४ ॥ अथवा पीपलके फल जड छाल और कोंपल इन सबमें सिद्ध किया हुआ दुग्ध शर्करा और शहतके संग पीवे तो चिडेकी तरह (कामदेवका) हर्ष होवे ॥ २५ ॥

विदारीमूलकल्कं तु घृतेन पयसा नरः । उदुंबरसमं पीत्वा वृद्धोपि तरुणायते ॥२६॥ माषाणां पलमेकं तु संयुक्तं क्षौद्रसर्पिषा । अवलिह्य पयः पीत्वा तेन वाजीभवेन्नरः ॥ २७ ॥ क्षीरपक्वांस्तु गोधूमानात्मगुप्ताफलैः सह । शीतान् घृतयुतान्खादेत्ततः पश्चात्पयः पिबेत् ॥ २८ ॥

अथवा विदारीकंदका कल्क उदुंबर प्रमाण (कर्ष भर) घृत और दूधके साथ पीवे तो बूढा भी तरुणके समान होजावे ॥ २६ ॥ अथवा एकपल उडदोंको पीस कर शहत और घृत मिलाकर चाटे ऊपरसे दूध पीवे इससे पुरुष घोडेके तुल्य होजाता है ॥ २७ ॥ अथवा गेहूं और कौंचके बीजोंका दलिया बनाकर उनको दूधमें पकावे (खीर बनाले) ठंढा करके उसमें घृत मिलाकर खावे ऊपरसे वही दूध पीवे (या गेहूं और केंवचके बीज दूधमें उबाल ले ठंढाकर घृत मिलाकर खावे ऊपरसे वही दूध पी जावे) (इसमें शर्करा या शहत घृत मिला सकते हैं) ॥२८॥

पादाभ्यंगसे स्तंभन ।

नक्रमूषिकमंडूकचटकांडकृतं घृतम् । पादाभ्यंगे न कुरुते बलं भूमिं तु न स्पृशेत् । यावत्स्पृशति नो भूमिं तावद्गच्छेन्निरंतरम् ॥ २९ ॥

नक्र (मगर) मूसा मेंडक और चिडा इनके अंडे लेकर उनसे घृत सिद्ध करे उस घृतको पावोंके(तलवोंके) मल लेवे इससे बहुत बल और स्तंभन होताहै परंतु पृथ्वी पर पाँव नहीं रक्खे जबतक पृथ्वीसे पाँव नहीं छुवे तबतक बराबर गमनकी शक्ति रहे (वीर्यपात न होवे) ॥ २९ ॥

अन्य वाजीकरण योग ।

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोः फलेचूर्णं सशर्करम् । धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥३०॥ उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममिष्यते । शतावर्य्युच्चटामूलं पेयमेवं बलार्थिना ॥ ३१ ॥ स्वयंगुप्ताफलैर्युक्तं माषसूपं पिबेन्नरः ॥ ३२ ॥

(श्लो० ३१) उच्चटा गुंजायां लशुनभेदे चूडालायां भूम्यामलक्यां नागरमुस्तायांचेति (श. स्तो.) केचित् तु उच्चटा उट्टंकणकमाहुः, डल्लनमतेतु उच्चटा श्वेतदुर्वारिका स्वल्पविटपः प्रायशो नदी तीरे दृश्यते (इति. नि. सं.) ।

कौंचके बीज और तालमखाने इनका चूर्ण मिश्री मिलाकर (एक कर्षभर) धारोष्ण दूधके संग लेवे तो बल वीर्यमें क्षीणता नहो बलकी वृद्धि हो ॥ ३० ॥ अथवा उच्चटाके चूर्णको भी इसी प्रकार (मिश्री मिलाके) दूधके संग लेना उत्तम है अथवा शतावरी और उच्चटाकी जड इसी प्रकार बलकी इच्छा करनेवाले लेवें (उच्चटा कोई चिरमटीको यहां मानते हैं कोई भूम्यामलकी कहते हैं कोई उटंगन-के बीज कहते हैं हमारी समझमें उटंगनके बीज ठीक हैं) ॥ ३१ ॥ अथवा केंवच-के बीजोंसे युक्तकर उडदकी दाल पकाकर पुरुष पीवे यह भी परम वाजी-करण है ॥ ३२ ॥

गुप्ताफलं गोक्षुरकाच्च बीजं तथोच्चटां गोपयसा विपाच्य । खजाहतं शर्करया च युक्तं पीत्वा नरो हृष्यति सर्वरात्रम् ॥ ३३ ॥ माषान् विदारीमपि सोच्चटां च क्षीरे गवां क्षौद्रघृतोपपन्नाम् । पीत्वा नरः शर्करया सुयुक्तां कुलिंगवद्धृष्यति सर्वरात्रम् ॥ ३४ ॥

केंवचके बीज गोखरू तथा उच्चटा इन्हें गायके दूधमें पकावे रईसे मथे और फिर इसमें सुपेद शर्करा युक्तकर पीजावे इससे पुरुष रातभर मैथुनी शक्तिसे आनं-दित रहे ॥ ३३ ॥ अथवा उडद विदारीकंद और उच्चटा इन्हें गायके दूधमें पकाकर शहद और घृत मिलाकर शर्करा डालकर पीजावे तो पुरुष रातभर चिडेकी भांत मैथुन करनेको आनंद उठावे ॥ ३४ ॥

गृष्टीनां वृद्धवत्सानां माषपर्णभृतां गवाम् । यत्क्षीरं तत्प्रशंसंति बलकामेषु जंतुषु ॥ ३५ ॥ क्षीरमांसगणः सर्वः काकोल्यादिश्च पूजितः । वाजीकरणहेतोर्हि तस्मात्तत्तु प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

प्रथम बारकी व्याई गाय जिसका बच्छा बडा हो (चार पांच महीनेसे ज्यादा एक वर्षका हो) उसे उडदके पत्ते खिलावे उसका जो दूध हो वह बलाकांक्षी जीवों (पुरुषों) के लिये बहुत श्रेष्ठ है (उडदके हरे पत्र फली समेत खिलाने चाहिये) ॥ ॥ ३५ ॥ दूध सब प्रकारके मांस तथा काकोल्यादिगण वाजीकरणके लिये श्रेष्ठ हैं इससे इनका सेवन करते रहे ॥ ३६ ॥

एते वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः ।
सेव्या विशुद्धोपचितदेहैः कालाद्यपेक्षया ॥ ३७ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने षड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

(श्लो० ३५) गृष्टी प्रथमप्रसूता गौः, वृद्धवत्सानां एकवर्षवत्सानाम् माषपर्णभृताम् माषपर्णपोषितानां माषपर्णानि हरितानि फलसहितान्यभिप्रेतानि नतु शुष्काणीति (नि. सं.) ।

ये ऊपर कहे हुवे वाजीकरणप्रयोग हर्ष संतान और बलके देनेवाले हैं इन्हें विरेचनादिसे शुद्ध और अच्छे शरीरवालोंको समय विचारकर सेवन करना चाहिये ३७

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने षड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अथ रसायनतंत्रम् ।

अथातः सर्वोपघातशमनीयं रसायनं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम समस्त उपघातोंके शमन करनेवाली रसायनविधिका व्याख्यान करते हैं ॥

पूर्वे वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् । प्रयुंजीत भिषक् प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा॥ १ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः। न भाति वाससि क्लिष्टे रंगयोग इवाहितः ॥ २ ॥

प्रथम अवस्थामें अथवा मध्यम अवस्थामें मनुष्यको बुद्धिमान् वैद्य रसायनका उपयोग करावे परंतु पहले स्नेहनसे स्निग्ध और विरेचनादिसे शुद्ध शरीर करके सदा रसायन उपयोग करे ॥ १ ॥ क्योंकि विना शुद्ध शरीरके रसायन विधि योग्य नहीं जैसे मैलेवस्त्रपर श्रेष्ठ रंगका योग नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

(वक्तव्य) रसायन शब्दका अर्थ यह है कि " रसादिधातुनामिदमाप्यायनं रसायनम्" रसकी आदि लेकर सातों धातुओंकी जो पुष्टि करे उसे रसायन कहते हैं अथवा " वर्द्धक स्थापकमप्राप्तपाकं वेत्यर्थः" जो वृद्धि करे और स्थिति रक्खे तथा पाकको प्राप्त नहो उसे रसायन कहते हैं यह डल्लनमिश्रने लिखा है और शार्ङ्गधरमें ऐसा लिखा है कि "रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् " जो द्रव्य जरा (बुढापा) और व्याधियोंका नाश करे अथवा बुढापेकी व्याधियों पलितादिको जो नष्ट करे वह रसायन है ॥

रसायन तीन प्रकारका होता है १ काम्य २ नैमित्तिक ३ आजस्रिक जैसे बल आयुकी कामनासे काम्य और व्याधिनिमित्त नैमित्तिक तथा क्षीरादिके अभ्यासरूप आजस्रिक है-फिर ये दो प्रकारकी है १ कुटीप्रवेशक २ वातातपिक जिसमें वायु धूपकी रोक नहो देखो टिप्पणी ॥

(श्लो० १) रसादिधातूनामिदमाप्यायनं रसायनं तद्द्विविधं कुटीप्रवेशिकं वातातपिकंच पुनस्त्रिविधं काम्यं नैमित्तिकं आजस्रिकं च वामाद्याकामः श्रीकामः इत्यादिकं काम्यं नैमित्तिकं व्याधिनिमित्तं आजस्रिकं क्षीरघृताभ्यासादिकं इति । नि० सं० ।

शरीरस्योपघाता ये दोषजा मानसास्तथा।
उपदिष्टा प्रदेशेषु तेषां वक्ष्यामि वारणम् ॥ ३ ॥

वातादि दोषोंसे उपजे हुवे (रोग आदि) तथा मानस (मनके विकार आदि) जो शरीरके उपघात (नाशक) पहले कहेगये हैं उनके निवारण करनेके अर्थ (रसायनविधिका) वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

साधारण रसायन योग ।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं सर्पिरित्येकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतः स्थापयेद्वयः ॥ ४ ॥

ठंढा पानी दूध शहत घृत ये एक एक तथा कोईसे दो मिलाकर तथा तीन मिलाकर तथा चारों मिलाकर पहले पीनेसे अवस्थाकी स्थिति होती है ॥ ४ ॥

विडंग रसायन ।

तत्र विडंगतंडुलचूर्णमाहृत्य यष्टीमधुयुक्तं यथाबलं शीततोयेनोपयुंजीत शीततोयं चानुपिबेदेवमहरहर्मासं, तदेव मधुयुक्तं भल्लातकक्काथेन वा, मधुद्राक्षाक्काथयुक्तं वा, मध्वामलकरसाभ्यां वा, गुडूचीक्काथेन वा, एवमेते पंच प्रयोगा भवंति जीर्णे मुद्गामलकयूषेणलवणेनाल्पस्नेहेन घृतवंतमोदनमश्नीयात्, एते खल्वर्शांसि क्षपयंति कृमीनुपघ्नंति ग्रहणधारणशक्तिं जनयंति मासे मासे प्रयोगे वर्षशतमायुषोभिवृद्धिर्भवति ॥ ५ ॥

वायविडंगके चावल अर्थात् दानोंकी गिरी निकाल ले उसका चूर्णकर मुलेटीका चूर्ण मिला बलके अनुसार ठंढा पानीके संग लेवे और ऊपरसे भी ठंढा पानी पीवे ऐसे नित्य एक महीनेतक करे, अथवा इसीको शहत मिलाकर भिलावेके क्काथके संग लेवे, अथवा शहत और मुनक्काके क्काथमें मिलाकर पीजावे, अथवा शहत और आवलोंके रससे लेवे, अथवा गिलोयके क्काथसे लेवे, ऐसे ये पांच प्रयोग हैं इनके पच जाने पर मूंग और आवलोंके अलोने थोडे घृतके यूषके संग घृतसे चिकने भातका भोजन करे ये प्रयोग सब भांतिकी बवासीरके मस्से गिरा देते हैं कृमियोंको नष्ट करते हैं ग्रहण और धारणकी शक्ति उत्पन्न करते हैं एक एक महीने प्रयोग करने एक एक सौ वर्षकी आयु बढजाती है ॥ ५ ॥

विडंगको उत्कृष्टविधि ।

विडंगतण्डुलानां द्रोणं पिष्टपचने पिष्टवदुत्स्वेद्य विगतकषायं स्विन्न-

मवतार्य दृषदि पिष्टमायसे दृढे कुम्भे मधूदकोत्तरं प्रावृषि भस्मराशावंतर्गृहे चतुरो मासान्निदध्यात् वर्षाभिगमे चोद्धृत्योपसंस्कृतशरीरः सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुंजीत । जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेनाल्पस्नेहेन घृतवंतमोदनमश्नीयात् पांशुशय्यायां शयीत॥ ६ ॥

वायविडंगकी मींगी निकालकर एक द्रोण भर लेवे उसे कडाही या टोंकनीमें डालकर उबाले और दलियेकी तरह सिजावे जब पानी जल जावे और विडंग सीज जावे तब उतार ले और पत्थरपर डालकर पिट्ठीकी तरह पीस लेवे फिर इसे लोहेके दृढ घड़ेमें भर देवे और ऊपर शहत पानी भर देवे फिर (मुह बंदकर) प्रावृट् ऋतुमें इसे राखके ढेरमें छायाके मकानमें गाड दे और चारमहीनेतक गडा रहने दे वर्षाके व्यतीत होने पर उखाड़ लेवे और वमन विरेचनादिसे शरीरका संस्कार करके सहस्र संपाताध्यायोक्त रोगनाशक मंत्रोंसे हवन करके नित्य प्रातःकाल बलके अनुसार उपयोग करे। जब यह पच जावे तब मूंग आवलोंको अलोने कम चिकने यूषसे घृतयुक्त भात खावे और छाने हुवे रेतका बिछौना करके उसपर सोवे ॥ ६ ॥

तस्य मासादूर्द्ध्वं सर्वांगेभ्यः कृमयो निःक्रामंति तानणुतैलेनाभ्यक्तस्य वंशविदलेनापहरेत् द्वितीये पिपीलिकास्तृतीये यूकास्तथैवापहरेत् चतुर्थे दंतनखरोमाण्यवशीर्यंते पंचमे प्रशस्तगुणलक्षणानि जायंते अमानुषं चादित्यप्रकाशं वपुरधिगच्छति दूराच्छ्रवणानि दर्शनानि चास्य भवंति रजस्तमसी चापोह्य सत्वमधितिष्ठति श्रुतिनिगाद्य पूर्वोत्पादी गजबलोऽश्वजवः पुनर्युवाष्टौवर्षशतान्यायुरवाप्नोति ॥ ७ ॥

ऐसा करनेसे एक महीने पीछे समस्त शरीरमेंसे कीड़े निकलते हैं इनपर अणु तैल (जो पहले कहा गया है) मर्दन करे और वांसकी पच्चटसे या वांसकी चिमटीसे उन कीड़ोंको (उसका परिचारक) हटाता रहे फिर दूसरे महीने चींवटियाँ और तीसरे महीने जूँ समस्त शरीरसे निकलती हैं इन्हें भी पूर्वोक्त प्रकारसे दूर करे चौथे महीने दांत नख और रोम (बाल) सब गिरजाते हैं फिर पांचवें

· (वा० ६) पिष्टपचनमिति पिष्टं पच्यतेऽनेन पिष्टपाकपात्रं कटाहादिकं (इतिश० स्तो०) सहस्रसंपाताभिहुतंकृत्वाइति सहस्रसंपाताध्यायोक्तरुग्वधादिमंत्रैः सहस्रंहोमंकृत्वोपयुंजीत तत्प्राक्तनकर्मक्षयार्थं विघ्नक्षयार्थंवा (इति नि० सं०)।

(वा० ७) वंशविदलेन वंशपच्चाटिकयासंदंशेनवा ।

महीने श्रेष्ठ गुण लक्षणवाले नये दांत नख और रोम (बाल) पैदा होते हैं अमानुष (दिव्य) और सूर्यके प्रकाशवाला सुंदर नवीन शरीर होजाता है और दूरकी वार्ता सुनने और दूरकी वस्तु देखनेकी शक्ति उसे प्राप्त होजाती है रजोगुण और तमोगुण दूर होकर सत्वगुण उपस्थित हो जाता है श्रुति निगादी (वेद मंत्रादि) का अपूर्व उत्पन्न कर्ता होजाता है हाथीकासा बल और घोड़ेकासा वेग होजाता है फिर तरुण अवस्था (नवी जवानी) आजाती है और आठसौ ८०० वर्षकी अवस्था प्राप्त होजाती है (अर्थात्८०० बरसकी उमर होजाती है) ॥ ७ ॥

तस्याणुतैलमभ्यंगार्थे अजकर्णकषायमुत्सादनार्थे सोशीरं कूपोदकं स्नानार्थे चंदनमुपलेपार्थे भल्लातकविधानवदाहारः परिहारश्च ॥ ८ ॥ काश्मर्याणां निष्कुलीकृतानामेष एव कल्पः पांशुशय्याभोजनवर्ज्यम्।अत्र हि पयसा शृतेन भोक्तव्यं आशिषश्च पूर्वेण समानाः शोणितपित्तनिमित्तेषु विकारेष्वेतेषामुपयोगः ॥ ९ ॥

इसके मलनेके लिये अणु तैल और उत्सादनके लिये अजकर्ण (महासर्ज) का काथ और स्नानके लिये खसयुक्त कूवेका (ताजा) जल और लेपनको चंदन चाहिये और सब आहार परिहार भिलावेंकी विधिके समान रक्खे ॥ ८ ॥ इसीप्रकार खंभारीको छिलका उतारकर यही विधि करे उसमें रेतका सोना और पूर्वोक्त भोजन वर्जित है इसमें उबाले हुए दूधके संग भात खावे और सब उपदेश पूर्ववत् जानों रक्तपित्त जनित विकारोंमें इन खंभारियोंका (कल्प) उपयोग करे ॥ ९ ॥

बलादि रसायन ।

यथोक्तमागारं प्रविश्य बलामूलार्द्धपलं पलं वा पयसालोड्य पिबेत् जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः । एवं द्वादशरात्रमुपयुज्य द्वादशवर्षाणि वयस्तिष्ठति एवं दिवसशतमुपयुज्य वर्षशत वयस्तिष्ठति ॥ १० ॥ एवमे-

---

(वा० ८) उत्सादनं उत्सारणं उद्वर्तनंचेति (श. स्तो.)

(वा० १०) यथोक्तमागारामिति कुटीरचनविधिं वृद्धवाग्भट आह । क्षेमसुभिक्षधार्मिकश्रद्धधानजननृपतिवैद्यविप्रे सुलभमहौषधिघृतक्षीरपथ्यभोजनोपकरणे ग्रामे नगरे वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि प्रागुदक्प्रवणे सुविभक्तविहारोद्देशे देशे दृढघनसुमृष्टभित्तिमुत्सेधविस्तारसंपन्नां सूक्ष्मलोचनां त्रिगर्भामृतुसुखां निवातां प्रवातैकदेशां प्राग्द्वारामुदग्द्वारां वा शमीबिल्वक्षीरिवृक्षपारिगृहीतामनिष्टेंद्रियार्थवातातपरजोधूमस्वेदक्लेददंशमशकसरीसृपव्यालबालस्त्रीदासांतावसायिनामगम्यां सन्निहितवैद्यपरिचारकोपकरणां कुटीं कारयेत् तस्यां रसायनार्थी शरदि वसंते शुक्लपक्षे प्रशस्तेहनि पूजयित्वा यथार्थं देवगुरुवृद्धान्प्रणम्य दक्षाश्विप्रभृतीन् परिमृज्य सुवर्णघृतमधुसिद्धार्थकप्रियंगुरोचनाः प्रदक्षिणी कृत्य गोब्राह्मणमनुप्रविशेत् ।

वातिबलानागबलाविदारीशतावरीणामुपयोगः विशेषतस्त्वातिबलामुदकेन नागबलाचूर्णं मधुना विदारीचूर्णं वा क्षीरेण शतावरीमप्येवं पूर्वेणान्यत्स मानमाशिषश्च समाः। एतास्त्वौषधयो बलकामानां शोणितच्छर्दयतां विरिच्यमानानां चोपदिश्यंते ॥ ११ ॥

यथोक्त स्थान (कुटी या घर) में प्रवेश होकर खिरेंटीकी जड आधेपल या एक पल दूधमें (पीसकर) घोलकर पीवे और पचजानेपर दूध चावल घृत युक्त खावे इस प्रकार बारह दिन करनेसे बारह वर्षकी अवस्था बढ जाती है और १०० दिन इसी प्रकार करनेसे सौ १०० वर्षकी अवस्था हो जाती है ॥ १० ॥ इसी तरह अतिबला (कंघी), नागबला (गुलशकरी) और विदारी तथा शतावरी· का भी उपयोग होता है इतना विशेष है कि अतिबलाको जलसे लेना और नाग-बलाका चूर्ण शहतसे और विदारीका चूर्ण दूधसे तथा शतावरीका चूर्ण भी दूधसे लेना चाहिये और सब पूर्वोक्तके समान करना। ये औषधियाँ बलकी वांछावाले पुरुषोंको तथा जो रुधिरकी वमन एवं रक्त दस्तोंमें जानेवाले मनुष्योंके लिये उचित हैं ॥ ११ ॥

वाराहीमूलतुलाचूर्णं कृत्वा ततो मात्रां मधुयुक्तां पयसालोड्य पिबेत् जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः प्रतिषेधोत्र पूर्ववत् क्रियाप्रयोगमुपसेव-मानो वर्षशतमायुरवाप्नोति स्त्रीषु चाक्षयताम् ॥ १२ ॥ एतेनैव चूर्णेन पयोवचूर्ण्य श्रृतशीतमभिमथ्याज्यमुत्पाद्य मधुयुतमुपयुंजीत सायं प्रातरेककालं वा जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः एवं माससमुपयुज्य वर्ष-शतमायुर्भवति ॥ १३ ॥

वाराहीकंदका चूर्ण तुलाभर कर लेवे फिर उसकी (यथाबल) मात्रा शहतमें मिलाकर दूधमें घोलकर पीजावे पच जानेपर दूध घृत युक्त भात खावे इसमें पथ्या दिक सब पहलेके अनुसार हैं इस क्रियाका उपयोग करनेवाला १०० वर्षकी अवस्था प्राप्त करता है (सौ वर्षतक नहीं मरता) और स्त्रीसंगमें क्षीण कभी नहीं होता ॥ १२ ॥ अथवा इस वाराहीकंदके चूर्णको दूधपर बुरका दे फिर दूधको उबालले ठंढाहोने (दही जमनेपर मथकर घृत निकाल ले उस घृतको शहत मिलाकर पान करे संध्या सबेरे दोनों वार अथवा एक ही समय जब यह पचजावे तब दूध घृतयुक्त भात खावे ऐसे एक महीनातक उपयोग करनेसे सौ वर्षकी आयु हो जाती है ॥ १३ ॥

चक्षुःकामः प्राणकामो वा बीजकसाराग्निमंथमूलं निःक्वथ्य माषप्रस्थं साधयेत्तस्मिन् सिध्यति चित्रकमूलानामक्षमात्रं कल्कं दद्यादामलकरसचतुर्थभागं ततः स्विन्नमवतार्य सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा शीतीभूतं मधुसर्पिर्भ्यां संसृज्योपयुं[२]जीत यथाबलं लवणं परिहरन्भक्षयेत् जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन घृतवंतमोदनमश्नीयात् पयसा वा मासत्रयमेवाभ्यां प्रयोगाभ्यां चक्षुः सौपर्ण्यवद्भवत्यनल्पबलो बलवांस्त्रीषु चाक्षयो वर्षशतायुर्भवतीति ॥ १४ ॥

चक्षु दृष्टि स्थिर रहनेकी कामनावाला और बलकी कामनावाला मनुष्य वीजकसार और अरनीकी जड (पलभर आढक जलमें) क्वथित करे उसमें फिर प्रस्थभर उडद सिद्ध करे सीजते समय चित्रककी जडका अक्षमात्र कल्क डालदे और उडदोंसे चौथाई आंवलेका रस डाले जब सीज जावें तब उतार लेवे और सहस्रपाताध्यायोक्त हवन करके उन्हें ठंढा होनेपर शहत और घृतसे मिलाकर बलके अनुसार खा लेवे और इनके खानेमें लवणको त्याग दे जब ये पचजावें तब मूंग आवलेको अलोने यूषसे घृत युक्त भात खावे अथवा दूधके संग खावे तीन महीने तक इन २ प्रयोगोंके करनेसे गरुडके समान दिव्य दृष्टि होजाती है और अत्यंत बलवान् शरीर होजाता है तथा स्त्रीसंगमें क्षीण कभी नहीं होता और सौ वर्षकी आयु होजाती है ॥ १४ ॥

भवति चात्र ॥ पयसा सह सिद्धानि नरैः सनफलानि यः ।
भक्षयेत्पयसा सार्द्धं वयस्तस्य न शीर्यते ॥ १५ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थानेसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दूधसे सिद्ध किये हुए सनफल (घंटापारुलीके फल) जो मनुष्य दूधकेही संग खावे उसकी अवस्था क्षीण नहीं होवे जैसी की जैसी बनी रहै ("नरःसन फलानि" की जगह " नरोसनफलानि " ऐसाभी पाठ कई मानते हैं वहां असन फल अर्थात् विजयसारके फलोंको दूधमें सिजाकर दूधसे खावे तो अवस्था क्षय नहो ऐसा अर्थ होताहै और यह उचित भी है) ॥ १५ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने
रसायनविधौसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

(वा० १४) वीजकः विजयसार इति ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो मेधायुष्कामीयं रसायनं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम मेधा (बुद्धि) और आयुके (बढानेकी) कामनावाली रसायन विधिका व्याख्यान करते हैं ॥

बाकुचीका प्रयोग ।

मेधायुःकामः श्वेतावल्गुजफलान्यातपपरिशुष्काण्यादाय सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा गुडेन सह समालोड्य स्नेहकुंभे सप्तरात्रं धान्यराशौ निदध्यात् । सप्तरात्रादुद्धृत्य हृतदोषस्य यथाबलं पिंडं प्रयच्छेदनुदिते सूर्ये उष्णोदकं चानुपिबेत् भल्लातकविधानवच्चागारप्रवेशो जीर्णौषधश्चापराह्णे हिमाभिरद्भिः परिषिक्तगात्रः शालीनां च षष्टिकानां पयसा शर्करामधुरेणौदनमश्नीयात् एवं षण्मासानुपयुज्य विगतपाप्मा बलवर्णोपेतः श्रुतिनिगादी स्मृतिमानरोगी वर्षशतायुर्भवति ॥ १ ॥

बुद्धि और वायुकी वांछावाला मनुष्य सुपेद बावचीके बीजोंको धूपमें सुकाकर महीन पीस ले और गुडमें मिलावे फिर घृतके चिकने घडेमें भरकर सात दिनरात धान्यके ढेरमें गाड देवे सात दिन पीछे निकालकर वमन (रेचनादिसे) शरीरके दोष दूर करके बलके अनुसार सूर्य निकलनेसे पहले (प्रभात) उस पिंडेमेंसे एक पल लेकर खा लेवे ऊपरसे गरम पानी पीवे और भिलावेके विधानके भांति स्थानमें प्रविष्ट रहे जब औषध पच जावे तब तीसरे पहर ठंढे पानीसे शरीरका अभिषेक करे (स्नान करे) फिर शालि या षष्टिक चावलोंका भात दूध खांडसे खावे ऐसा छः ६ महीने करनेसे सब पाप दूर होकर बलरूप युक्त वेदवक्ता (श्रुतधारी) स्मृतिवाला रोगरहित होकर सौबरसकी आयुवाला होजाता है ॥ १ ॥

कुष्ठिनं पांडुरोगिणमुदरिणां वा कृष्णाया गोमूत्रेणालोड्यार्द्धपलिकं पिंडं विगतलौहित्ये सवितरि पाययेत पराह्णे चालवणेनामलकयूषेण सर्पिष्मंतमोदनमश्नीयात् एवं मासमुपयुज्य स्मृतिमानरोगी वर्षशतायुर्भवति ॥ २ ॥ एष एवोपयोगश्श्वित्रमूलानां रजन्याश्श्वित्रकमूले विशेषो द्विपलिकं पिंडं परं प्रमाणं शेषं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

(गद्य १) अवल्गुजा बाकुची (बावची इति लोके) अत्र सा श्वेता ग्राह्या, (इति नि. सं.)

कुष्ठवालेको पांडुरोगीको और उदर रोगवालेको यही काली वाकुचीका बनाया हुआ पिंडा आधे पल गौके गोमूत्रमें घोलकर सूर्यकी सुरखी हो जाने पर (दिन निकले) पिला दे और फिर पराह्ण कालमें (तीसरे पहर) अलोने आवलोंके यूषसे घृत युक्त भात खावे इस भांति एक महीनेतक करनेसे स्मृतिवाला (जो बातको कभी न भूले) निरोगी होकर सौ वर्षकी अवस्थावाला हो जावे (अर्थात् १०० वर्ष जीवे) ॥ २ ॥ इसी तरह चित्रककी जडका और हलदीका भी प्रयोग होता है (ऐसे ही उन्हें भी गुडमें मिला घृतकुंभमें रख पिंड बनावे) विशेष इतना है कि चित्रक की जडका पिंडा दोपल प्रमाण (खाना नित्य) चाहिये शेष सब पहले (वाकुचीके प्रयोग) के समान करे ॥ ३ ॥

मंडूकपर्णीके प्रयोग।

हतदोष एव प्रतिसंसृष्टभक्तो यथाक्रममागारं प्रविश्य मंडूकपर्णीस्वरसमादाय सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा यथाबलं पयसालोड्य पिबेत् पयोनुपानं वा तस्यां जीर्णायां यवान्नं पयसोपयुंजीत। तिलैर्वा सह भक्षयित्वा त्रीन्मासान् पयोनुपानं जीर्णे पयसःसर्पिरोदन इत्याहारः। एवमुपयुंजानो ब्रह्मवर्चसी श्रुतिनिगादी भवति वर्षशतमायुरवाप्नोति ॥ ४ ॥ त्रिरात्रोपोषितश्च त्रिरात्रमेनां भक्षयेत् त्रिरात्रादूर्ध्वं पयःसर्पिरिति चोपयुंजीत। बिल्वमात्रं पिंडं वा पयसालोड्य पिबेदेवं दशरात्रमुपयुज्य मेधावी वर्षशतायुर्भवति ॥ ५ ॥

वमन विरेचनादिसे शरीरके दोष नष्ट करके प्रतिसंसृष्ट भक्त होकर (प्रतिसंसृष्ट भक्तका अर्थ पहले लिख चुके हैं) क्रमसे स्थानमें प्रविष्ट होकर मंडूकपर्णी (ब्राह्मीका भेद) का स्वरस निकाल ले और सहस्रसंपाताभिहुत करके बलके अ सार दूधमें घोलकर पी जावे अथवा वह रस पीकर दूध पी जावे जब वह पच जावे तब जौका भोजन दूधके संग खावे। अथवा ब्रह्ममांडूकीको तिलोंके ग मिलाकर खावे और ऊपरसे दूधका अनुपान करे ऐसे तीन महीने करे पच जानेपर (नित्य) दूध घृत युक्त भात खावे इसप्रकार उपयोग करनेसे ब्रह्मतेजवाला वेदवक्ता होजाता है और सौ वर्षकी आयु होजाती है ॥ ४ ॥ अथवा तीन दिन निराहार रहकर तीन दिनतक केवल इसे (ब्रह्ममांडूकीको) ही भोजन करे

(गद्य २) कृष्णाया इति कृष्णाया बाकुच्याः तेन कृष्णावल्गुजानां मूलेन पाययेत (इति डल्हनः) कृष्णाया पिप्पल्या इति जैज्जटः, केचित् कृष्णायागोमूत्रेणेति वदंति तत्तुन सम्यक्।

(और कुछ खावे पीवे नहीं) तीन दिन पीछे केवल दूध घृतही पीवे अथवा एक पल ब्रह्ममांडूकीको पीस दूधमें घोलके पीवे इस भांति दश दिन करनेसे बुद्धिमान् सौ वर्षकी आयु होती है ॥ ५ ॥

ब्राह्मीके प्रयोग ।

हृतदोष एवागारं प्रविश्य प्रतिसंसृष्टभक्तो ब्राह्मीस्वरसमादाय सहस्रसंपाताभिहुतं कृत्वा यथाबलमुपयुंजीत जीर्णौषधश्चापराह्णे यवागूमलवणां पिबेत् क्षीरसात्म्यो वा पयसा भुंजीत एवं सप्तरात्रमुपयुज्य ब्रह्मवर्चसी मेधावी भवति ॥ ६ ॥ द्वितीयं सप्तरात्रमुपयुज्य ग्रंथमीप्सितमुत्पादयति नष्टं चास्य प्रादुर्भवति तृतीयं सप्तरात्रमुपयुज्य द्विरुच्चारितं शतमप्यवधारयति एवमेकविंशतिरात्रमुपयुज्यालक्ष्मीरपक्रामति मूर्तिमती चैनं वाग्देव्यनुप्रविशति सर्वाश्च न श्रुतय उपतिष्ठंति श्रुतधरः पंचवर्षशतायुर्भवति ॥ ७ ॥

वमन रेचनादिसे शरीरके दोष हरण करके स्थानमें प्रविष्ट हो प्रतिसंसृष्ट भक्त होकर ब्राह्मीका स्वरस निकाल ले (कूटके रस निचोड ले) सहस्रसंपाताभिहुत करके बलके अनुसार ब्राह्मीके रसको पी जावे जब यह औषध पक जावे तीसरे पहर अलोनी यवागू पीवे तथा दूधके अभ्यास वाला दूधके संग खावे ऐसे सात दिन करनेसे ब्रह्मतेजवाला बुद्धिमान् हो जावे ॥ ६ ॥ फिर दूसरे सप्ताह (सात दिन) उपयोग करे तो मनवांछित नया ग्रंथ रच दे तथा गुप्त बातें इसे प्रगट होजाती हैं । और तीसरे सप्ताह सेवन करनेसे दो वारके उच्चार किये हुये सौ श्लोक याद हो जातेहैं । इस प्रकारसे जो इक्कीस दिनतक इस उपयोगको करे तो अलक्ष्मा (शरीरकी अक्रांति) नष्ट हो जाती है और साक्षात् मूर्तिमती सरस्वती इसके शरीरमें प्रविष्ट होजाती है सब श्रुतियाँ याद होजाती हैं और सुनी बातें सब याद रहती हैं तथा पाँच सौ वर्षकी आयु होजाती है ॥ ७ ॥

ब्राह्मीस्वरसप्रस्थद्वये घृतप्रस्थं विडंगतंडुलानां कुडवं द्वे द्वे पले वचात्रिवृतयोर्द्वादश हरीतक्यामलकबिभीतकानि श्लक्ष्णपिष्टान्यावाप्यैकध्यं साधयित्वा स्वनुगुप्तं निदध्यात् ततःपूर्वविधानेन मात्रां यथाबलमुपयुंजीत जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः एतेनोर्द्ध्वमधस्तिर्यक् कृमयो निःक्रामंति

अलक्ष्मीरपक्रामति पुष्करवर्णः स्थिरवयाः श्रुतिनिगादी त्रिवर्षशतायुर्भवत्येतदेव कुष्टविषमज्वरापस्मारोन्मादविषभूतग्रहेष्वन्येषु च महाव्याधिषु च संशोधनमादिशति ॥ ८ ॥

ब्राह्मीका स्वरस२ प्रस्थ घृत१ प्रस्थ विडंगके बीज १ कुडव लेवे वच और निसोथ दो दो पल तथा त्रिफला बारह पल ले सबको गीली पीस इकट्ठी करे और साधके ढककर रक्खे फिर पूर्वोक्त विधानसे बलके अनुसार मात्रा लेवे जब यह पचजावे तब दूध घृत युक्त भात खावे इससे वमन और दस्तोंमें तथा पसीनेमेंसे कीडे निकलते हैं और अलक्ष्मी (पापदोष) दूर होजावे और कमल सरीका रूप हो और अवस्था स्थिर होवे वेदवक्ता होकर तीन सौ वर्षकी आयु हो जावे तथा यह प्रयोग कुष्ट विषमज्वर मृगी उन्माद विष भूतदोष ग्रहदोष इन व्याधियोंमें तथा अन्य महा व्याधियोंमें संशोधन (रूप होकरउन्हें नष्ट कर देता) है ॥ ८ ॥

वचके प्रयोग ।

हृतदोष एवागारं प्रविश्य हैमवत्या वचायाः पिंडमामलकमात्रमभिहुतं पयसाऽऽलोड्य पिबेत् जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहार एवं नवद्वादशरात्रमुपयुंजीत ततोस्य श्रोत्रं विव्रियते द्विरभ्यासात् स्मृतिमान्भवति त्रिरभ्यासाच्छतमादत्ते चतुर्द्वादशरात्रमुपयुज्य सर्वं तरति किल्विषं तार्क्ष्यदर्शनमुत्पद्यते शतायुश्च भवति ॥ ९ ॥ द्वे द्वे पले इतरस्या वचायाः निःक्काथ्य पिबे[2]त् पय[1]सा समानं भोजनं स[2]माः पूर्वेणा[1]शि[3]षश्च ॥ १० ॥ वचाशतपाकं वा सर्पिर्द्रोणमुपयुज्य पंचवर्षशतायुर्भवति गलगंडापचीश्लीपद स्वरभेदांश्चापहंतीति ॥ ११ ॥

वमन रेचनादिसे शरीरके दोष हरण करके स्थानमें प्रविष्ट होकर हेमवती (सुपेद) वच पीसकर आँवलेके बराबर पिंडा बना लेवे और पूर्वोक्त हवन करके उस वचके पिंडेको दूधमें घोलकर पी जावे जब वह पचजावे तब दूध घृतयुक्त चावलोंका भात खावे इस भांत बारा दिनतक उपयोग करे तो उस मनुष्यके कर्ण इंद्रिय खुल जावे (दूरकी बात सुन सके) फिर दूसरे बारा दिन करे तो स्मरण शक्तिवाला हो (कोई बात भूले नहीं) तीसरे बारा दिन करनेसे सौ श्लोक नित्य याद कर सके

(गद्य० ८) पुष्करकर्ण इति पुष्करः सारसपक्षी तद्वत् कर्णौयस्यस पुष्करकर्णः दूरश्रवणे पुष्करः प्रसिद्धस्तस्माद्दूरश्रवणशील इत्यर्थः । अथवा पुष्करवर्ण इति वा पाठस्तत्र पुष्करःकमलं तद्वद्वर्ण इत्यर्थः ।

(अथवा "श्रुतमादत्ते" ऐसा पाठांतर होनेसे सुननेमात्रसे याद हो जावे ऐसा अर्थ होवे) तथा चौथे बारा दिन करनेसे सब पाप नष्ट होजावे गरुडकी सी दृष्टि उत्पन्न हो और सौ वर्षकी आयु हो जावे ॥ ९ ॥ अन्य दूसरी भांतिकी वचको दो दो पलका क्वाथ करके दूधके संग पीवे और भोजन पहलेके समान करे तथा अन्य उपदेश भी पूर्वके समान ही जाने ॥ १० ॥ अथवा वचका शतपाक (सौवारका पकाया हुवा द्रोणभर घृत नित्य बलके अनुसार उपयोग करे तो पांचसौ वर्षकी आयु होजाती है तथा गलगंड अपची श्लीपद और स्वरभंग आदि रोगोंको ये वचाके प्रयोग नष्ट कर देते हैं ॥ ११ ॥

(वक्तव्य) ऊपर जो नव द्वादश रात्र लिखा है उसका अभिप्राय यह है कि बारा बारा दिनके ९ प्रयोग तक करे अर्थात् इसे १०८ दिनतक कर सकते हैं और १२ दिनका प्रथम प्रयोग है इसके पीछे फिर १२ दिनका दूसरा इसी भांति जानो और जितने अधिक प्रयोग करे उतनाही अधिक फल हो इसकी ९ प्रयोग १०८ दिनतककी अवधि है अधिक नहीं हो सकनेसे ४ ही प्रयोगतकका फल लिखा है ।

अन्य प्रकीर्ण प्रयोग ।

अथायुः कामीयं वक्ष्यामः ॥ मंत्रौषधसमायुक्तं संवत्सरफलप्रदम् । बिल्वस्य चूर्णं पुष्ये तु हुतं वारान्सहस्रशः ॥ १२ ॥ श्रीसूक्तेन नरः काल्ये ससुवर्णं दिने दिने । सर्पिर्मधुयुतं लिह्यादलक्ष्मीनाशनं परम् ॥ १३ ॥

यहांसे अगाड़ी अब हम आयुःकामीय (आयुके बढानेवाले बल और कांति बढानेवाले) प्रयोग वर्णन करते हैं । बिल्व (फल) का चूर्ण पुष्य नक्षत्रमें बनाकर श्रीसूक्तसे हजार आहुतिकर सुवर्ण मिलाके शहत और घृत मिलाके तरुण अवस्थामें मनुष्य नित्य चाटे यह प्रयोग मंत्र और औषधसे मिला हुवा है एक वर्ष दिनतक करनेसे फल देता है इससे शरीरकी अक्रांति नष्ट होकर दिव्यरूप होजाता है (पुष्य नक्षत्रसे इसका आरंभ करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

(वक्तव्य) सुवर्णसे कई तो मृत सुवर्ण अर्थात् सुवर्णकी भस्म लेना ऐसा मानते हैं और कई सुवर्णके अति सूक्ष्मपत्र वरक लेते हैं ॥

त्वचं बिल्वस्य मूलस्य मूलक्वाथं दिने दिने । प्राश्नीयात्पयसा सार्द्धं स्नात्वा हुत्वा समाहितः । दशसाहस्रमायुष्यं स्मृतं युक्तरथं भवेत् ॥ १४ ॥

(श्लो० १३) काल्ये तरुणा वस्थायां अथवा कल्ये इति पाठे प्रभाते इत्यर्थः ।

(श्लो० १४) रथः शरीरं (इति श स्तो.) युक्तरथमिति युक्तश्चासौ रथश्च युक्तरथः, डल्हनस्तु युक्तरथं रसायनसमर्थं भवेदित्याह ।

बिल्वकी जड़की छाल और मूलका क्काथ नित्य दूधके साथ खावे (और पीवे) परंतु नित्य स्नान करके और हवन करके तब सेवन करे ऐसा नित्य करते रहनेसे दश हजार वर्षतककी आयु होजाती है और शरीर ठीक बना रहता है (यह प्रयोग सदैव निरंतर करतेही रहनेसे फल होता है इसकी अवधि नहीं है) ॥ १४ ॥

हुत्वा बिशानां क्काथं तु मधुलाजैश्च संयुतम् । अमोघं शतसाहस्रं युक्तं युक्तरथं स्मृतम् ॥ १५ ॥ सुवर्णं पद्मबीजानि मधुलाजाप्रियंगवः । गव्येन पयसा पीतमलक्ष्मीं प्रतिषेधयेत् ॥ १६ ॥

हवन करके कमलकी जडका क्काथ शहत और धानकी खील मिलाके नित्य पीया करे तौ अक्षय लाख वर्षतक शरीर रह सकता है ॥ १५ ॥ सुवर्ण और कमलके बीज शहत धानकी खील और प्रियंगु इन्हें गौके दूधसे पीवे तो अक्रांति दूर होकर दिव्य स्वरूप होजावे ॥ १६ ॥

नीलोत्पलदलक्काथो गव्येन पयसा शृतः । ससुवर्णतिलैः सार्द्धमलक्ष्मीनाशनः स्मृतः ॥ १७ ॥ गव्यं पयः सुवर्णंच मधूच्छिष्टं च माक्षिकम् । पीतं शतसहस्राभिहुतं युक्तरथं स्मृतम् ॥ १८ ॥

नीले कमलके पत्तोंका क्काथ गौके दूधके संग उबालकर सुवर्ण और तिलोंके साथ सेवन करना अलक्ष्मीका परम नाशक है ॥ १७ ॥ गाका दूध सुवर्ण मोम और शहत इन्हें लक्ष आहुति देकर पान करे तो युक्त रथ हो (शरीर स्थिर रहे) ॥ १८ ॥

वचाघृतसुवर्णं च बिल्वचूर्णमिति त्रयम् । मेध्यमायुष्यमारोग्यपुष्टिसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वासामूलतुलाक्काथे तैलमावाप्य साधितम् । हुत्वा सहस्रमश्नीयात् मेध्यमायुष्यमुच्यते ॥ २० ॥ यावकांस्तावकान्भक्षेदभिभूय यवांस्तथा। पिप्पलीमधुसंयुक्तान् शिक्षाचरणवद्भवेत् ॥ २१ ॥ मध्वामलकचूर्णानि सुवर्णमिति च त्रयम् । प्राश्यारिष्टगृहीतोपि मुच्यते प्राणसंशयात् ॥ २२ ॥

वच घृत सुवर्ण बिल्वका चूर्ण ये तीनों मिलाकर खाने पवित्र आयु वृद्धिकारक नीरोगता करनेवाले पुष्टि और सुभगता बढानेवाले हैं ॥ १९ ॥ वासा (अडूसा) की जडको तुलाभर ले क्काथ करे फिर उसमें तैल डालकर सिद्ध करे (पकावे)

(श्लो० २०) तुलापलशतयावकान् तावकान् अभिभूय कुट्टयित्वा तत्कृतान् यवान् भक्ष्यान् पिप्पली मधुसंयुक्तान् भक्षेत् खादेदित्यर्थः । शिक्षाचारणवद्भवेदिति शिक्षा उपदेशापेक्षा शास्त्राभ्यासे नैकं गुरुं भवतीति (नि० सं०) ।

सहस्र आहुति देकर इसे पान करे यह बुद्धि और आयु बढानेवाला है ॥ २० ॥ यवोंको कूट छिलका उतार उनके पदार्थ बना पिप्पली और शहतके संग उन्हेंही खावे (और कुछ न खावे) तो शिक्षा चारी हो जावे (जो उसे बतावे वही उसे आजावे ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि हो जावे ॥ २१ ॥ शहत आवलोंका चूर्ण और सुवर्ण इन तीनोंको अरिष्टसे ग्रसितमनुष्य खावे तौ प्राण संशय (प्राणोंके भय) से छुट जावे ॥ २२ ॥

शतावरीघृतं सम्यगुपयुक्तं दिने दिने । सक्षौद्रं ससुवर्णं च नरेंद्रं स्थापयेद्वशे ॥ २३ ॥ गोचंदना मोहनिका मधुकं माक्षिकं मधु । सुवर्णमिति संयोगः पेयः सौभाग्यमिच्छता ॥ २४ ॥

शतावरीका घृत शहत और सुवर्णसे उपयुक्त कर (मिला) के नित्य सेवन करानेसे राजा दीर्घायु होकर वैद्यके वश होजाता है ॥ २३ ॥ गोचंदना (प्रियंगु) मोहनिका (जीया पोता या अवाक् पुष्पी) मुलेटी माक्षिक शहत और सुवर्ण यह प्रयोग सुभगता चाहनेवाले पान करे ॥ २४ ॥

पद्मनीलोत्पलक्काथे यष्टीमधुकसंयुते । सर्पिरासादितं गव्यं ससुवर्णं सदा पिबेत् ॥ २५॥ पयश्चानुपिबेत्सिद्धं तेषामेव समुद्भवे । अलक्ष्मीघ्नं सदायुष्यं राज्याय सुभगाय च ॥ २६ ॥

रक्त कमल (गुलाबी) तथा नील कमल इनका क्वाथमें मुलेटी मिला उसमें गौका घृत सिद्ध करके उसमें सुवर्ण भस्म मिलाकर नित्य सदा पीवे और इन्हींके क्वाथसे सिद्ध किया दुग्ध ऊपरसे पान करे यह अलक्ष्मी (अक्रांति) का नाशक सदा आयु देनेवाला और दीप्ति तथा सुभगता कारक है ॥ २५ ॥ २६ ॥

(वक्तव्य) जहां जहां इन योगोंमें सुवर्णका ग्रहण है वहां सर्वत्र सुवर्ण की भस्म (मृगांक) लेना चाहिये ॥

यत्र नोदीरितो मंत्रो योगेष्वेतेषु साधने । शब्दितो तत्र सर्वत्र गायत्री त्रिपदी भवेत् ॥ २७ ॥ पाप्मानं नाशयंत्येता दद्युश्चौषधयः श्रियम् । कुर्युर्नागबलं चापि मनुष्यममरोपमम् ॥ २८ ॥ सतताध्ययनं वादः परतंत्रावलोकनम् । तद्विद्याचार्यसेवा च बुद्धिमेधाकरो गणः ॥ २९ ॥

(श्लो० २४) गोचंदना प्रियंगु, मोहनिका पुत्रजीव इति डल्लनः ।

(श्लो० २६) तेषां समुद्भवे पद्मादीनां क्वाथे, राज्याय दीप्तये ।

आयुष्यं भोजनं जीर्णे वेगानां च विधारणम् । ब्रह्मचर्यमहिंसा च साहसानां च वर्जनम् ॥ ३० ॥

इति चिकित्सितेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इन योगोंके साधनमें जहां मंत्र नहीं कहा वहां सब जगह त्रिपदा गायत्री समझे और उसीसे कार्य करे ॥ २७ ॥ ये औषधियां पाप (दोषों) को नष्ट करती हैं और श्री (शोभा) को देती हैं तथा हाथीके तुल्य बल देती हैं और मनुष्यको देवताके समान कर देती हैं ॥ २८ ॥ नित्य पढते रहना संवाद करना अन्यरचित पुस्तकोंका देखना उस विद्याके आचार्यकी सेवा करना ये सब बातें बुद्धि और मेधा (की वृद्धि) करनेवाली हैं ॥ २९ ॥ पहले भोजन पच जानेपर भोजन करना वेगोंको न रोकना ब्रह्मचर्य रखना (अति स्त्रीसंग न करना) तथा हिंसा न करना और साहस (फिकर) से बचे रहना इतनी बातें आयुःके बढानेवाली है ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतभाषाटीकायां चिकित्सितस्थानेऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीयं रसायनं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वभावकी व्याधियों (क्षुधा तृषा निद्रा जरा मृत्यु आदि) के प्रतिषेध रूपक रसायनका वर्णन करते हैं ॥

ब्रह्मादयोऽसृजन्पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम् ।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मादिक देवता पूर्व (सृष्टिके आदि) कालमें सोम नामक अमृत(औषधि) को जरा (वृद्धता) और मृत्युके नाश करनेके अर्थ उत्पादन करते भये उसका विधान यहां वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

सोमके भेद ।

एक एवखलु भगवान्सोमः स्थाननामा-
कृतिवीर्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधा भिद्यते तद्यथा ॥ २ ॥

सोम नामक औषध अवश्य एक ही है परं च स्थान नाम आकृति और वीर्यके भेदास यह चौबीस प्रकार की है ॥ २ ॥

सोमके नाम।

अंशुमान्मुंजवांश्चैव चंद्रमा रजतप्रभः। दूर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्षः कनकप्रभः ॥ ३॥ प्रतानवांस्तालवृंतकरवीरोंशवानपि। स्वयंप्रभो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः ॥ ४॥ गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पांक्तो जागतः शांकरस्तथा। अग्निष्टोमो रैवतश्च यथोक्त इति संज्ञितः ॥ ५॥ गायत्र्या त्रिपदा युक्तो यश्चोडुपतिरुच्यते। एते सोमाः समाख्याता वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः ॥ ६ ॥ सर्वेषामेव चैतेषामेको विधिरुपासने। सर्वे तुल्यगुणाश्चैव विधानं तेषु वक्ष्यते ॥ ७ ॥

अंशुमान् मुंजवान् चंद्रमा रजतप्रभ दूर्वासोम कनीयान् श्वेताक्ष कनकप्रभ ॥ ३ ॥ प्रतानवान् तालवृंत करवीर अंशवान् स्वयंप्रभ महासोम और गरुडाहृत ॥ ४ ॥ गायत्र्य, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत, शांकर, अग्निष्टोम, रैवत, यथोक्त ॥ ५ ॥ और त्रिपदा गायत्री युक्त उडुपति इस भांति ये वेदोक्त शुभ नामोंसे २४ प्रकारके सोम वर्णन किये हैं ॥६॥ इन सबके उपयोग करनेकी एकही विधि है और सबका गुणभी एकसाही है अब इनका विधान वर्णन किया जाता है ॥ ७ ॥

सोमपानकी विधि।

अतोन्यतमं सोममुपयुयुक्षुः सर्वोपकरणपरिचारकोपेतः प्रशस्तदेशे त्रिवृतमागारं कारयित्वा हृतदोषः प्रतिसंसृष्टभक्तः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु अंशुमं तमादायाध्वरकल्पेनाहृतमभिषुतमभिहुतं चांतरागारे कृतमंगलः सोमकंदं सुवर्णसूच्या विदार्य पयो गृह्णीयात्सौवर्णे पात्रेंजलिमात्रं ततः सकृदेवोपयुंजीत नास्वादयंस्तत उपस्पृश्य शेषमप्स्वासाद्य यमनियमाभ्यामात्मानं संनियोज्य वाग्यतोऽभ्यंतरतः सुहृद्भिरुपास्यमानो विहरेत् ॥ ८ ॥

जो कोई मनुष्य इन सोमोंमेंसे किसी एकका उपयोग करना चाहे वह सब सामग्री और परिचारक समेत अच्छे स्थानमें तीन दरजेका मकान बनवावे और फिर वमन रेचन आदिसे शरीरके दोष दूर करके भोजनका यथोक्त नियम करके श्रेष्ठ तिथि करण मुहूर्त्त नक्षत्रोंमें अंशुमान् नामक सोम कंदको जो वेदोक्त रीति करक अध्व-

(गद्य. ८) अध्वरकल्पेनेति अध्वरकल्पस्य विधानेन आहृतं अग्निष्टोमविधानेन आनीतम्, अभिषुतं ऋत्विग्भिः क्षोडितम्।

रोंसे लाया गया हो मंगाकर धुलवा छिलवाकर तयार करे फिर होम करके निर्मित स्थानके भीतर छे दरजेमें जाकर मंगलपाठ करके उस सोम कंदको सुवर्णकी सींखसे चीरके सुवर्णके पात्रमें उसका दूध निचोडले फिर कुडव मात्र उसे विना स्वाद लिये एकवार गटगटाके पी जावे फिर आचमन करके शेष बचे हुएको पानीमें डाल दे और अपने शरीर और मनको यम नियम पूर्वक रक्खे अधिक बोले नहीं भीतरहीके मकानमें मित्रोंके साथमें विहार करता है ॥ ८ ॥

रसायनं पीतवांस्तु निर्वाते तन्मनाः शुचिः ।
आसीत तिष्ठत्क्रामेच्च न कथंचन संविशेत् ॥ ९ ॥

रसायन औषध पीकर पवन रहित स्थानमें पवित्रतासे उसी तरफ मन लगाये हुए बैठा रहे कभी टहलता रहे परंतु सोना कदाचित् नहीं चाहिये ॥ ९ ॥

सायं वा भुक्तवान् श्रुतशांतिः कुशशय्यायां कृष्णाजिनोत्तरायां सुहृद्भिरुपास्यमानः शयीत तृषितो वा शीतोदकमात्रां पिबेत् ततः प्रातरुत्थायोपश्रुतशांतिः कृतमंगलो गां स्पृष्ट्वा तथैवासीत ॥ १० ॥

श्यामको (क्षुधा होतो भोजनकर शांतिपाठ श्रवण करके कुशाकी शय्यापर काले मृगकी चर्म बिछाकर मित्रोंसे सेवित हुवा शयन करे तृषा लगे तो थोडा ठंढा जल पीवे फिर (दूसरे दिन) प्रभात उठकर शांतिपाठ (या शांतिकारक वचन) श्रवणकर मंगलाचरण करके गौका स्पर्श करे और पहलेकी भांति बैठ जावे ॥ १० ॥

(वक्तव्य) श्यामको भोजन करे तो क्या भोजन करे यह डल्हन महाराज टीका कारने भी नहीं खोला ऐसे आवश्यक विषयपर तो विना खोले कभी नही छोडना चाहिये यदि कहो कि अगाडी इसके विधानमें जो भोजन लिखा वही करना तो कई दिन इसमें भोजन लिखाही नहीं केवल दूध ही लिखा है पर ऋषिवाक्यमें भुक्तवान् है जो दूधमें भोजनका वाक्यार्थ नहीं निकलता तो भी हमारी संमतिमें दूधही देना भोजन समझे ॥

तस्य जीर्णे सोमे छर्दिरुत्पद्यते ततः शोणिताक्तं कृमिव्यामिश्रं छर्दितवतः सायं शृतशीतं क्षीरं वितरेत् ततस्तृतीयेऽहनि कृमिव्यामिश्रमतिसार्यते स तेनाविष्टप्रतिग्रहभुक्तप्रभृतिभिर्विशेषैर्मुक्तः शुद्धतनुर्भवति ततः सायं स्नातस्य पूर्ववदेव क्षीरं वितरेत् क्षौमवस्त्रास्तृतायां चैनं शय्यायां शाययेत ॥ ११ ॥

(गद्य ११) क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायामिति क्षुमाया अतस्याविकारः क्षौमः अतसीवल्कलजातवस्त्रं क्षौमं तदास्तृतायां शय्यायामित्यर्थः, शणजं वस्त्रं वा क्षौममिति (श. स्तो.)

जब उसके सोमरस पच जाता है तब वमन उत्पन्न होता है और रुधिर मिला कीडों सहित वमन करताहै ऐसा होनेमें संध्याको उबाला हुवा दूध ठंढा करके पिलावे फिर तीसरे दिन कीडोंसे मिले दस्त लगतेहैं जिससे अनिष्ट और प्रतिग्रह भोजन आदिसे छुटकर शुद्ध शरीर होजाता है तब सायंकाल स्नान कराकर पूर्ववत् दूध पिलावे और रातको शणके वस्त्र बिछी शय्या पर सुलावे ॥ ११ ॥

ततश्चतुर्थेऽहनि तस्य श्वयथुरुत्पद्यते ततः सर्वांगेभ्यः कृमयो निःक्रामंति तदहश्च शय्यायां पांशुभिरवकीर्यमाणः शयीत ततः सायं पूर्ववदेव क्षीरं वितरेत् । एवं पंचमषष्ठयोर्दिवसयोर्वर्तेत केवलमुभयकालमस्मै क्षीरं वितरेत् ततः सप्तमेऽहनि निर्मांसत्वगस्थिभूतः केवलं सोमपरिग्रहा देवी श्वसिति तदहश्च क्षीरेण सुखोष्णेन परिषिच्य तिलमधुकचंदनानुलिप्तदेहं पयः पाययेत् ॥ १२ ॥

फिर चौथे दिन उसके (शरीरमें) सोजा उत्पन्न होता है तिससे सब शरीरमें-से कीडे निकलने लगते हैं उस दिन उसके बिछौने पर रेत बिछाकर सुलावे और संध्याको वही पहलेकी तरह दूध पिलावे।इसी प्रकार पांचवें और छठे दिनोंमें वरताव करे केवल दोनों समय उसे दूध पिलादे फिर सातवें दिन उसका मांस और त्वचा गल जाते हैं अस्थि मात्र शरीर रहता है केवल सोम ग्रहणकी शक्तिसे श्वास लेता रहता है उस दिन थोडे २ निवाये दूधसे परिसेक करे (शरीरपर छिडके) और तिल मुलेटी चंदन शरीर पर लेपन करे और दूध पिलावे ॥ १२ ॥

ततोष्टमेऽहनि प्रातरेव क्षीरपरिषिक्तं चन्दनप्रदिग्धगात्रं पयः पाययित्वा पांशुशय्यां समुत्सृज्य क्षौमास्तृतायां शाययेत् ततो मांसमाप्यायते त्वक् चावदलति दंतनखरोमाणि चास्य पतंति तस्य नवमदिवसात्प्रभृत्यणुतैलाभ्यंगः सोमवल्ककषायपरिषेकः । ततो दशमेहन्येतदेव वितरेत् ततोस्यत्वक् स्थिरतामुपैति एवमेकादशद्वादशयोर्वर्तेत तत्र त्रयोदशात्प्रभृति सोमकल्ककषायपरिषेकः एवमाषोडशाद्वर्त्तेत ॥ १३ ॥

फिर आठवें दिन प्रभात ही दूधसे शरीरका परिषेक करके चंदन लेपन करके दूध पिलाकर रेतका बिछौना उठा देवे और अतसीका (रेशमी)कपडा बिछी शय्या पर (बहुत धीरे उठाकर) लिटा दे तब मांस पुष्ट होने लगता है और त्वचा बदलने लगती है और दाँत नख तथा रोम (केश) गिर जाते हैं फिर नवें दिनसे इसके

शरीरपर अणुतैल मलते रहें (मल दिया करें) और सोमके वक्कलके क्वाथसे परिषेक (सेचन) करे और दशवें दिनभी यही वरताव करे तब त्वचा कुछ २ स्थिरताको प्राप्त होने लगती है इसी भांति ग्यारहवें और बारहवें दिनभी वरतावकरते रहें और तेरहवें दिनसे सोमवक्कलके क्वाथसे परिषेक किया करें ऐसे सोहलवें दिनतक करते रहें ॥ १३ ॥

ततः सप्तदशाष्टदशयोर्दिवसयोर्दशना जायंते शिखरिणः स्निग्धवज्रवैडूर्य-स्फटिकनिकाशाः समाः स्थिराः सहिष्णवः तदाप्रभृति चानवैः शालितं-डुलैः क्षीरयवागूमुपसेवेत यावत्पंचविंशतिरिति ॥ १४ ॥

फिर सत्रहवें और अठारहवें दिनोंमें इसके नये दाँत निकलतेहैं वे दाँत नुकीले चिकने हीरे पन्ने और स्फटिक मणि जैसे चमकीले सब एकसार स्थिर और सहनशील होते हैं इस अवस्थामें पुराने चावलोंका क्षीर यवागू बनाकर भोजन करे और पच्चीसवें दिनतक ऐसाही करते रहें ॥ १४ ॥

ततोऽस्मै दद्याच्छाल्योदनं मृदूभयकालं पयसा ततोऽस्य नखा जायंते विद्रुमेन्द्रगोकतरुणादित्यप्रकाशाः स्थिराः स्निग्धा लक्षणसम्पन्नाः केशाश्च जायंते त्वक् च नीलोत्पलातसीपुष्पवैडूर्यप्रकाशा ऊर्द्ध्वं च मासात्केशान् वापयेद्वापयित्वा चोशीरचंदनकृष्णतिलकल्कैः शिरः प्रदिह्यात् पयसा वा स्नापयेत् ॥ १५ ॥

फिर पच्चीसवें दिनसे पीछे इसे दोनों समय कोमल शालि चावलोंका भात दूधसंग देवे तब इसके नये नख उत्पन्न होते हैं वे नख मूंगे बीरबहोटी निकलते सूर्य जैसे सुरख और चमकीले होते हैं स्थिर चिकने और लक्षणवाले होते हैं और नये बाल उत्पन्न होते हैं तथा त्वचाभी नीलकमल अलसीके फूल और वैडूर्य मणि जैसी श्यामसुंदर उत्पन्न होती है इस भांति जब एक महीना हो लेवे तब इसके वाल मुंडवा देवे और खस चंदन काले तिल पीसकर शिरपर लेप करे और दूधसे स्नान करावे ॥ १५ ॥

ततोऽस्यानंतरं सप्तरात्रात्केशा जायंते भ्रमरांजननिभाः कुंचिताः स्निग्धा स्ततस्त्रिरात्रात् प्रथमपरिसरान्निःक्रम्य मुहूर्तं स्थित्वा पुनरेवांतः प्रविशेत्। ततोस्य बलातैलमभ्यंगार्थेवचार्यं यवपिष्टमुद्वर्तनार्थे सुखोष्णं च पयःपरि-

(ग० १४) बैडूर्यमणिः अभ्रशुभ्रः ।

षेकार्थे अजकर्णकषायमुत्सादनार्थे सोशीरं कूपोदकं स्नानार्थे चंदनमनुलेपार्थे आमलकरसविमिश्राश्चास्य यूषसूपविकल्पाः क्षीरमधुकसिद्धं च कृष्णतिलमवचारणार्थे एवं दशरात्रं ततोन्यद्दशरात्रं द्वितीये परिसरे वर्तेत ॥ १६ ॥

तब इसके सात दिन पीछे इसके नये बाल निकलते हैं वे बाल भोरे और काजलसे काले घुँघराले चिकने होते हैं फिर इसके तीन दिन पीछे भीतरवाले दरजेसे निकलकर आगले दूसरे दरजेमें आवे और दोघडी ठैठकर फिर अंदरही घुस जावे इस अवस्थामें बला तैल (पहले इसकी भी विधि कही गई है) मलनेके काममें लावे और जौकी पिट्ठी उबटन करनेको निवाया दूध परिषेक करनेको अजकर्ण (महासर्ज) का क्वाथ उत्सादनको कूवेका जल खसयुक्त स्नान करनेको चंदन अनुलेपनको वरतावमें लाते रहे खानेको आवलोंके रससे मिले हुए यूष अथवा मूंग आदिकी दाल आदि देवें और दूध मुलेटीसे सिद्ध किये हुए काले तिल अवचारण करे इसप्रकार दश दिनतक रहे (अंदरके तीसरे दरजेमें रहे जरा अगले दूसरेमें आया करें) फिर इससे पीछे दशदिनतक दूसरे बीचके दरजेमें रहे और उपरोक्त वरतावकरे ॥ १६ ॥

ततस्तृतीये परिसरे स्थिरीकुर्वन्नात्मानमन्यद्दशरात्रमासीत किंचिदातपपवनान् वा सेवेत पुनश्चांतः प्रविशेत् । न चात्मानमादर्शेषु वा निरीक्षेत रूपशालित्वात् ततोन्यद्दशरात्रं क्रोधादीन्परिहरेदेवं सर्वेषामुपयोगः॥ १७॥

फिर इसके पीछे और दश दिनतक आत्माको स्थिर करता हुवा तीसरे सबसे अगले दरजेमें रहे और कुछ धूप वायुका सेवन करे और फिर अंदर घुस जाया करे अपने मुखको दर्पणमें नहीं देखे क्योंकि रूप बहुतही सुंदर होता है फिर इसके दश दिन पीछे तक क्रोध आदि न करे बस यही विधि सब प्रकारके सोमोंके सेवन की है ॥ १७॥

विशेषतस्तु वल्लीप्रतानक्षुपादयः सोमा भक्षयितव्याः तेषां तु प्रमाणमर्द्धचतुर्थमुष्टयः । अंशवंतं सौवर्णे पात्रेभिषुणुयात् चंद्रमसं राजते चोपयुज्याष्टगुणमैश्वर्यमवाप्येशानं देवमनुप्रविशति शेषांस्तु ताम्रमयेमृन्मये वा रोहिते चर्मणि वितते, शूद्रवर्ज्यं त्रिभिर्वर्णैः सोमा उपयोक्तव्याः ।

(गद्य १६) अजकर्णः महासर्जः ।

ततश्चतुर्थे मासे पौर्णमास्यां शुचौ देशे ब्राह्मणानर्चयित्वा कृतमंगले निः-क्रम्य यथोक्तं व्रजेदिति ॥ १८ ॥

विशेष करके वेल और प्रतान तथा क्षुप जातिके सोम भक्षण करने चाहिये उनका प्रमाण साढेचार मुष्टिका (कुडवसे आधेपल अधिक) है। अंशुमान् नामक सोमका रस सुवर्ण के पात्रमें निचोडे और चंद्रमा नामका चांदीके पात्रमें निचोडे इससे अष्टगुण ऐश्वय (अणिमादि अष्टसिद्धि) को प्राप्त हो जाता है और शिवमें मिल जाता है (अंतमें शिवजीमें लय होता है) शेष सोमोंको तांबे या मिट्टीके पात्रमें निचोडे या रक्त चर्म के पात्रमें रस निचोडे और शूद्रके सिवाय ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण सोमका उपयोग करसकते हैं। जब इसके कल्पारंभको चार महीने हो लें नया शरीर स्थिर हो जावें तब पूर्णमासीको शुद्ध जगह ब्राह्मणों-का पूजन कर मंगलाचरण करके रसायन स्थानसे बाहर निकल कर इच्छापूर्वक विचरे ॥ १८ ॥

सोमविधानका फल ।

ओषधीनां पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः । दशवर्षसहस्राणि नवां धारयते तनुम् ॥ १९ ॥ नाग्निर्नतोयं न विषं न शस्त्रं नास्त्रमेवच । तस्या-लमायुः क्षपणे समर्थाश्च भवंति हि ॥ २० ॥ भद्राणां षष्टिवर्षाणां प्रसुतानामनेकधा । कुंजराणां सहस्रस्य बलं समधिगच्छति ॥ २१ ॥ क्षीरोदं शक्रसदनमुत्तरांश्च कुरूनपि । यत्रेच्छति स गंतुं वा तत्राप्रतिहता गतिः॥ २२॥ कन्दर्पइव रूपेण कांत्या चंद्र इवापरः । प्रह्लादयति भूतानां मनांसि स महाद्युतिः ॥ २३ ॥ सांगोपांगांश्च निखिलान्वेदान् विंदति तत्वतः । चरत्यमोघसंकल्पो देववच्चाखिलं जगत् ॥ २४ ॥

औषधिके पति सोमका जो बुद्धिमान् उपयोग करता है वह दशहजार वर्षकी अवस्थावाला नवीन शरीर प्राप्त करता है ॥ १९ ॥ अग्नि जल विष शस्त्र अस्त्र कोई भी उसकी आयु नष्ट करनेकी समर्थ नहीं रखते (अर्थात् किसीसे भी वह नहीं मर सकता) ॥ २० ॥ श्रेष्ठ जातिके साठ वर्षकी अवस्थावाले मद झिरते हुए ऐसे हजार हाथियोंका जितना बल प्राप्त होजाता है ॥ २१ ॥ क्षीरसमुद्र इंद्रलोक उत्तरापथ (कैलास आदि) और कुरुद्वीप इत्यादि जहां जानेकी इच्छा करे वहांही जा सकता है ॥ २२ ॥ रूपमें कामदेवके समान और कांतिमें दूसरा

चंद्रमा जैसा महा दीप्तिमान् होकर प्राणियोंके मनको परम आनंद देनेवाला हो जाता है ॥ २३ ॥ सब वेदोंके सांगोपांग तत्वका जाननेवाला होता है और देवताओंकी भांति संपूर्ण जगत्में अमोघ संकल्प होकर विचर सकता है ॥ २४ ॥

सोमलताके लक्षण ।

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दशपंच च । तानि शुक्ले च कृष्णे च जायंते निपतंति च ॥ २५ ॥ एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा । शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत्पंचदशच्छदः ॥ २६ ॥ शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः । कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥ २७ ॥

सब सोमोंके पंदराही पंदरा पत्र होते हैं वे शुक्ल पक्षमें उत्पन्न होते हैं और कृष्ण पक्षमें झड जाते हैं ॥ २५ ॥ शुक्लपक्षमें एक एक दिनमें एक पत्र निकलता है यहांतक कि पूर्णमासीको पूरे पंदरा पत्र होजाते हैं ॥ २६ ॥ फिर कृष्णपक्ष आतेही एक एक दिनमें एक एक पत्र गिरने लगता है और अमावस्याके दिन विना पत्रकी केवल वेल रह जाती है ॥ २७ ॥

विशेष सोमोंके लक्षण ।

अंशुमानाज्यगंधस्तु कंदवान्रजतप्रभः । कदल्याकारकंदस्तु मुंजवांल्लशुनच्छदः ॥ २८ ॥ चंद्रमा कनकाभासोः जले चरति सर्वदा । गरुडाहृतनामा च श्वेताक्षश्चापि पांडुरौ ॥ २९ ॥ सर्पनिर्मोकसदृशौ तौ वृक्षाग्रावलंबिनौ । तथान्यैर्मंडलैश्चित्रैश्चित्रिता इव भांति ते ॥ ३० ॥ सर्व एव तु विज्ञेयाः सोमाः पंचदशच्छदाः । क्षीरकंदलतावंतः पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ॥ ३१ ॥

अंशुमान् सोममें घृतकेसी सुगंध होती है और रजतप्रभ कंदवाला होता है तथा मुंजवान् में केलेकेसा कंद और लहसनकेसे पत्ते होते हैं ॥ २८ ॥ चंद्रमा नाम सोम सुवर्ण जैसी कांतिवाला सदा जलमें रहता है गरुडाहृत और श्वेताक्ष ये दोनों पांडुरंगके सर्पकी कांचली जैसे वृक्षोंके अग्र भागमें लिपटे रहते हैं तथा अन्य और भी चित्र विचित्र मंडलोंसे शोभित हुवा करते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ सब सोमोंकी मुख्य पहचान यह है कि सबमें १५ पत्ते होते हैं कोई दूधवाले कोई कंदवाले कोई लतावाले (कोई क्षुप जातिके) नाना प्रकारके पत्तोंवाले होते हैं (पर सबमें पत्ते १५ ही होते हैं) ॥ ३१ ॥

सोमकी उत्पत्तिके स्थान ।

हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा । श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा ॥ ३२ ॥ पारियात्रे च विन्ध्ये च देवसुंदे ह्रदे तथा । उत्तरेण[2] वितस्तायाः प्रवृद्धा ये[3] महीधराः ॥ ३३ ॥ पंच[6] तेषामधो मध्ये सिंधुनामा महानदः । हठवत्प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः ॥ ३४ ॥ तस्योद्देशेषु वाप्यस्ति मुंजवानंशुमानपि । काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ॥ ३५ ॥ गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पांक्तो जागतः शांकरस्तथा । अत्र संत्यपरेचापि सोमाः सोमसमप्रभाः ॥ ३६ ॥

हिमालय पर्वतमें अर्बुद (आबू पहाडमें) सह्याद्रिमें तथा महेंद्र और मलयाचलमें तथा श्रीशैलमें देवगिरिमें देवसह पर्वतमें ये सोम होते हैं ॥ ३२ ॥ तथा पारियात्रमें विंध्याचलमें देवसुंदसरोवरमें तथा वितस्तानदीके उत्तरमें जो बडे बडे पांच पर्वत हैं उनकी जडमें तथा मध्यमें और सिंधु नाम महानद जहां है वहां चंद्रमा सोम तोंबीकी भांति तिरते मिलते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसीके पासमें मुंजवान् और अंशुमान् ये दोनों भी हुवा करते हैं काश्मीर देशमें एक दिव्य सरोवर जिसका नाम छोटमान सरोवर है वहां गायत्र्य नामक तथा त्रैष्टुभ जागत और पांक्त तथा शांकर नाम सोम होते हैं तथा यहां और सोम भी चंद्रके समान कांतिवाले होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

न तान्पश्यंत्यधर्मिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः ।
भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राह्मणद्वेषिणस्तथा ॥ ३७ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इन सोमोंको अधर्मी कृतघ्नी भेषज द्वेषी तथा ब्राह्मणके द्वेषी मनुष्य नहीं देख सकते अर्थात् इन्हें वह नहीं दीखाई दे सकता (जब ऐसे मनुष्योंको ये औषधें दिखाई ही नहीं देसकती तब ऐसे मनुष्योंको रसायन कभी उपयोग और फलदायक नहीं हो सकती) ॥ ३७ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

(श्लो० ३४) हठवत् प्लवते इति हठः प्लवमानः, मश्री कुंभिका (इति श० स्तो०)

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो निवृत्तसंतापीयं रसायनं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम निवृत्त संतापीय रसायन (जिससे शारीरिक और मानसिक दुःख निवृत्त होवे ऐसी रसायन विधि) का व्याख्यान करते हैं ॥

यथा[1] निवृत्त[2]संतापा मोदंते[3] दिवि[4] देवताः[5] ।
तथौषधीरिमाः[6] प्राप्य[7] मोदंते[12] भुवि[10] मानवाः[11] ॥ १ ॥

जैसे सब संतापोंसे निवृत्त होकर स्वर्गमें देवता आनंद करते हैं उसी प्रकार इन औषधियोंका उपयोग करके पृथ्वी पर मनुष्य समस्त दुःखोंसे निवृत्त होकर आनंद करसकते हैं ॥ १ ॥

अथ सप्त पुरुषा रसायनं नोपयुंजीरन् । तद्यथा अनात्मवान् अलसी प्रमादी दरिद्रः व्यसनः पापकृद्भेषजापमानी चेति । सप्तभिरेव कारणैर्न संपद्यते अज्ञानादनारंभादस्थिरचित्तत्वाद्दारिद्र्यादनायतत्वादधर्मादौषधाऽलाभाच्चेति ॥ २ ॥

नीचे लिखे हुए सात मनुष्योंको रसायनका उपयोग नहीं करना चाहिये जैसे अनात्मवान् (अजितेंद्रिय) आलसी दरिद्री प्रमादी (जिसका चित्त स्थिर नहो) व्यसनी (जिसे मद्य वेश्यागमनादिका व्यसन हो) पापी औषधि (तथा वैद्य) का अपमान करनेवाला इन सातोंको सातही कारणोंसे रसायन संपादन नहीं होसकती १ अजितेंद्रियको अज्ञानसे २ आलसीको कार्य आरंभ न करनेसे ३ प्रमादीको चित्तकी स्थिरता न होनेसे ४ दरिद्रीको दरिद्रके कारण ५ व्यसनीको स्वतंत्र न होनेसे ६ पापीको अधर्मके कारण ७ भेषजापमानीको औषधका लाभ न होनेसे ॥ २ ॥

अथौषधीर्व्याख्यास्यामः । अजगरी श्वेतकापोती कृष्णकापोती गोनसी वाराही कन्या छत्राऽतिच्छत्रा करेणुरजा चक्रिका आदित्यपर्णिनी ब्रह्मसुवर्चला श्रावणी महाश्रावणी गोलोमी चाजलोमी महावेगवती चेत्यष्टादश सोमसमवीर्या महौषधयो व्याख्याताः ॥ ३ ॥

अब यहांसे अगाडी हम (रसायनकी) औषधियोंका व्याख्यान करते हैं १ अजगरी २ श्वेतकापोती ३ कृष्णकापोती ४ गोनसी ५ बाराही ६ कन्या ७ छत्रा ८ अतिछत्रा ९ करेणु १० अजा ११ चक्रिका १२ आदित्यपर्णिनी १३ ब्रह्मसुव-

र्चला १४ श्रावणी १५ महाश्रावणी १६ गोलोमी १७ अजलोमी १८ महावेगवती ये अठारह महा औषधि सोमके तुल्य वीर्यवाली वर्णन करी हैं ॥ ३ ॥

तासां सोमवत्क्रियाशीःस्तुतयः शास्त्रेऽभिहितास्तासामागारेऽभिहुतानां याः क्षीरवत्यस्तासां क्षीरकुडवं सकृदेवोपयुंजीत । यास्त्वक्षीरा मूलवत्यस्तासां प्रदेशिनीप्रमाणानि त्रीणि कांडानि प्रमाणमुपयोगे । श्वेतकापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या, । गोनस्यजगरीकृष्णकापोतीनां सनखमुष्टिं खंडशः कल्पयित्वा क्षीरेण विपाच्य परिस्रावितमभिहुतं च सकृदेवोपयुंजीत । चक्रिकायाः पयःसकृदेव । ब्रह्मसुवर्चला सप्तरात्रमुपयोक्तव्या ॥ ४ ॥

इनके विधानकी क्रिया आशिष और फल शास्त्रमें सोमके तुल्यही कहे हैं इन्हें निर्वात स्थानमें हवन करके जो दूधवाली है उनका दूध कुडव प्रमाण एकही वार पीजावे । जो विना दूधकी जडवाली हैं उनकी अंगुली बराबर तीन जडेली उपयोगमें लावे । श्वेतकापोतीको जड पत्तोंके समेत भक्षण करे । गोनसी अजगरी और कृष्णकापोती इन्हें काँटों समेत मुष्टि प्रमाण टुकडे २ करके दूधमें पकाकर छानकर होम करके एकवार पीजावे । चक्रिकाका दूध (कुडवभर) एकवारही पीवे । और ब्रह्मसुवर्चलाका उपयोग सात दिनतक करे ॥ ४ ॥

भक्ष्यकल्पने शेषाणां पंचपलानि क्षीराढकक्कथितानि प्रस्थेवशिष्टेऽवतार्य परिस्राव्य सकृदेवोपयुंजीत । सोमवदाहारविहारौ व्याख्यातौ केवलं तु नवनीतमभ्यंगार्थे शेषं सोमवदानिर्गमादिति ॥ ५ ॥

अन्य शेष औषधोंको भक्ष्य कल्पके अनुसार पांच पल आढक भर दूधमें पकावे जब (चतुर्थभाग) प्रस्थभर रहे तब उतार कर छानले और एकही वार पीजावे । और इनपर आहार बिहार सोम विधानके तुल्यही कहे हैं केवल मक्खन शरीरपर अभ्यंग करे बाकी सब सोमके समान विधि शास्त्रसे समझनी चाहियें ॥ ५ ॥

इनके सेवनका फल ।

भवन्ति चात्र । युवानं सिंहविक्रांतं कांतं श्रुतिनिगादिनम् । कुर्युरेताः क्रमेणैवं द्विसाहस्रायुषं नरम् ॥ ६ ॥ अंगदी कुंडली मौली दिव्यस्रक्

(गद्य ४) गोनसीअजगरीकृष्णकापोतीनां सनखमुष्टिं खंडशः कल्पयित्वा इत्यत्र सनखमुष्टिं खंडश इति पदस्य गूढस्य श्रीमता डल्लनेनटीकाकारेणापि विवेचनं न कृतं मम मतेन नखः कंटकः तैः सहमुष्टिप्रमाणं पलमात्रं खंडशः कल्पयित्वेत्यर्थः, नखः कंटकः इति शब्दस्तोमे वाचस्पतिः, नखपर्यंतमुष्टिप्रमाणमित्यन्ये तत्तुन सम्यक् ।

चन्दनांबरः । चरत्यमोघसंकल्पो नभस्यंबुददुर्गमे ॥ ७ ॥ व्रजंति पक्षिणो येन जललंबाश्च तोयदाः । गतिः सौषधिसिद्धस्य सोमसिद्धगतिः परा ॥ ८ ॥

यहां श्लोक है कि । ये औषधि मनुष्यको सदा तरुण सिंहके समान बलवान् सुंदर रूपवान् वेदवक्ता और दोहजार वर्षकी आयुवाला कर देती हैं ॥ ६ ॥ इनके उपयोग करनेवाला बाजूबंद कुंडल और मुकुट दिव्यमाला चंदन तथा अच्छे वस्त्र धारण करके अमोघसंकल्प हुआ आकाशमें बादलोंसेभी ऊपर विचर सकता है ॥ ७ ॥ जिस आकाश मार्गसे पक्षी विचरते हैं तथा जलवाले बादल फिरते हैं वही गति इन औषधोंके साधन करनेवालेकी होजाती है और सोमके उपयोग करनेवालेकी जैसी गति होजाती है ॥ ८ ॥

इन औषधोंके स्वरूप ।

अथ वक्ष्यामि विज्ञानमौषधीनां पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥ मंडलैः कपिलैश्चित्रैः सर्पाभः पंचपर्णिनी । पंचारत्निप्रमाणा वा विज्ञेयाजगरी बुधैः ॥ १० ॥ निष्पत्रा कनकाभासा मूले द्व्यंगुलसंमिता । सर्पाकारा लोहितांता श्वेत-कापोतिरुच्यते ॥ ११ ॥ द्विपर्णिनीं मूलभवामरुणां कृष्णमंडलाम् । द्व्यरत्निमात्रां जानीयात् गोनसीं गोनसाकृतिम् ॥ १२ ॥

अब यहांसे अगाडी हम इन सब औषधोंकी पृथक् २ पहचान बताते हैं ॥ ९ ॥ जो कपिल (पीले) रंगके चित्रविचित्र मंडलोंसे युक्त सर्पसी बलदार पांच पत्तेवाली पांच अरत्निके प्रमाणवाली हो उसे विद्वान् " अजगरी " बताते हैं (अरत्निका प्रमाण कनिष्टिका अंगुली तक बँधी मुट्ठीका हाथ) ॥ १० ॥ जिसके पत्ते न हों कनक (सुवर्ण) सी चमके जडमें दो अंगुल जैसी हो सर्पकेसे आकारवाली तथा किनारे परसे लाल हो वह "श्वेतकापोती होती है ॥ ११ ॥ जिसके दो पत्ते हों जडमेंसे लाल हो काले मंडल हों दो अरत्नि प्रमाण हो और गोनस (एक भाँतके सर्प) की आकृति हो उसे "गोनसी" जानो ॥ १२ ॥

सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनेक्षुरसोपमाम् । एवं रूपरसां चापि कृष्णकापो-तिमादिशेत् ॥ १३ ॥ कृष्णसर्पस्वरूपेण वाराहीकंदसंभवा । एकपत्रा-

(श्लो० ८) येन मार्गेण जललंबनशीला तोयदाः पक्षिणश्च व्रजंतीति ।

(श्लो० १०) अरत्निः विस्तृतकनिष्ठ बद्धमुष्टिहस्ते तत्परिमाणे चेति वाचस्पतिः । बद्धमुष्टिकरोरत्निरिति निबंधसंग्रहे डल्हनः ।

(श्लो० १२) गोनसः सर्पविशेषः (इति० श० स्तो०)

महावीर्या भिन्नांजनसमप्रभा ॥ १४ ॥ छत्रातिच्छत्रके विद्याद्रक्षोघ्ने कंदसंभवे । जरामृत्युनिवारिण्यौ श्वेतकापोतिसंस्थिते ॥ १५ ॥

दूधवाली रोमयुक्त कोमल रसमें ईखके रस जैसी ऐसे स्वरूप और रसवाली "कृष्णकापोती" होती है ॥ १३ ॥ काले सर्प जैसे स्वरूप कंदसे उत्पन्न होनेवाली एक पत्रवाली विखरे कज्जल जैसी काली "वाराही" होती है ॥ १४ ॥ "छत्रा" और "अतिछत्रा" ये दोनों राक्षसोंका नाश करनेवाली कंदसे उत्पन्न होती हैं और श्वेतकापोतीके समान होती हैं ये वृद्धता और मृत्युके निवारण करनेवाली हैं ॥१५॥

कांतैर्द्वादशभिः पत्रैर्मयूरांगरुहोपमैः । कंदजा कांचनक्षीरी कन्या नाम महौषधिः ॥ १६ ॥ करेणुः सुबहुक्षीरा कंदेन गजरूपिणी । हस्तिकर्ण पलाशस्य तुल्यपर्णा द्विपर्णिनी ॥ १७ ॥

चमकीली मोर पंख जैसे बारह पत्तोंवाली कंदसे पैदा होनेवाली पीले दूधकी "कन्या" नामक महा औषध होती है ॥ १६ ॥ "करेणु" में बहुत दूध होता है कंदमेंसे हाथीके सी होती है हस्तिकर्ण नाम पलाशकेसे दो पत्तोंवाली होती है१७॥

अजास्तनाभकंदा तु सक्षीरा क्षुपरूपिणी । अजा महौषधी ज्ञेया शंखकुंदेन्दुपांडरा ॥१८॥ श्वेतां विचित्रकुसुमां काकादन्या समां क्षुपाम् । चक्रकांमौषधीं विद्याज्जरामृत्युनिवारिणीम् ॥ १९ ॥ मूलिनी पंचभिः पत्रैः सुरक्तांशुककोमलैः । आदित्यपर्णिनी ज्ञेया सदादित्यानुगामिनी ॥ २० ॥ कनकाभा जलांतेषु सर्वतः परिसर्पति । सक्षीरा पद्मिनी प्रख्या देवी ब्रह्मसुवर्चला ॥ २१ ॥

बकरीके स्तन जैसे कंदवाली दूधयुक्त क्षुप (पौदे) के रूपकी शंख कुंद चंद्रमा जैसी उज्ज्वल पांडुर रंगवाली " अजा " महौषधी जानो ॥ १८ ॥ सुपेद चित्रित पुष्पवाली काकादनीके समान पोदेवाली जरा मृत्युके दूर करनेवाली " चक्रका " महौषधि जानो ॥ १९ ॥ मूलवाली सुरख वस्त्र जैसे कोमल पांच पत्तोंवाली सदा सूर्यके अनुगत रहनेवाली "आदित्यपर्णिनी" जानो (सदादित्यानुगामिनी यहां कई पुस्तकोंमें सदादित्यानुवर्तिनी ऐसाभी पाठहै) ॥ २० ॥ जलके निकट सुवर्णके भांति चमकनेवाली सबतरफ फैलजाती है और उसमें दूध होता है कमलिनीके समान विदित होती है वह " ब्रह्मसुवर्चला " है ॥ २१ ॥

अरत्निमात्रक्षुपकापत्रैर्द्व्यंगुलसम्मितैः। पुष्पैर्नीलोत्पलाकारैः फलैश्चांजनसन्निभैः ॥ २२ ॥ श्रावणी महती ज्ञेया कनकाभा पयस्विनी । श्रावणी पांडुराभासा महाश्रावणिलक्षणा ॥ २३ ॥ गोलोमी चाजलोमी च रोमशे कंदसंभवे ॥ २४ ॥ हंसपादीव विच्छिन्नैः पत्रैर्मूलसमुद्भवैः । अथवा शंखपुष्पी च समाना सर्वरूपतः ॥ २५ ॥ वेगेन महताविष्टा सर्पनिर्मोकसन्निभा । एषा वेगवती नाम जायते ह्यंबुदक्षये ॥ २६ ॥

जिसका पौदा अरत्निमात्र होता है और दो अंगुलके बराबर पत्ते होते हैं पुष्प नीले कमल जैसा होता है और फल कज्जल जैसे काले २ लगते हैं सुवर्ण जैसी चमकीली और दूधवाली "महाश्रावणी" होती है और महाश्रावणीके लक्षणोंवाली सुपेद " श्रावणी होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ गोलोमी और अजलोमी दोनों रोमयुक्त होती हैं कंदसे उपजती हैं ॥ २४ ॥ हंसपदीके भांति फटे पत्तोंसे युक्त जो मूलसे उपजे अथवा सब रूपमें शंखपुष्पीके समान हो ॥ २५ ॥ जो बडे वेगसे युक्त हो (बहुतसी आंटियां खाये हुए हो) सर्पकी कांचली जैसी चमकीली हो वह "वेगवती" होती है यह वर्षाकालकी समाप्तिके समय होती है ॥ २६ ॥

सप्तादौ सर्वरूपिण्यो या ह्योषध्यः प्रकीर्तिताः ।
तासामुद्धरणं कार्यमंत्रेणानेन सर्वदा ॥ २७ ॥

समस्त रूप और प्रभाववाली जो सात औषधें पहले कही हैं उनको सदा इस मंत्रसे उखाडे ॥ २७ ॥ मंत्र यहां नीचे लिखा है ॥

महेंद्ररामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि ।
तपसातेजसा वा पि प्रशाम्यध्वं शिवायवै ॥ २८ ॥

इस मंत्रके अर्थकी आवश्यकता नहीं इसी प्रकार पाठ करना चाहिये अर्थ यह है महेंद्र रामचंद्र और श्रीकृष्ण इनके तथा ब्राह्मणोंके और गौवोंके तपसे तेजसे (हे औषधियां तुम) कल्याणके अर्थ शांति करो ॥ २८ ॥

मंत्रेणानेन मतिमान् सर्वानप्यभिमंत्रयेत् ॥२९॥ अश्रद्दधानैरलसैःकृतघ्नैः पापकर्मभिः । न वासादयितुं शक्याः सोमाः सोमसमास्तथा ॥ ३० ॥

ऊपर लिखे मंत्रसे बुद्धिमान् सब औषधोंको अभिमंत्रित करे ॥ २९ ॥ श्रद्धा रहित आलसी कृतघ्नी तथा पापी सोमके तुल्य सोम औषधोंको नहीं उखाडकर ला सकते ॥ ३० ॥

पीतावशेषममृतं देवै ब्रह्मपुरोगमैः ।
निहितं सोमवीर्यासु सोमे चाप्यौषधीपतौ ॥ ३१ ॥

ब्रह्मासे आदि लेकर देवताओंने जब अमृत पानकिया तब बचा हुवा अमृत सोम नामक औषधिमें तथा सोमके समान वीर्यवाली अन्य औषधीमें तथा औषधीपति चंद्रमामें डाल दिया (इसीसे इनमें अमृतके गुण हैं) ॥ ३१ ॥

देवसुंदे ह्रदवरे तथा सिंधौ महानदे । दृश्यते च जलांतेषु मध्ये ब्रह्मसुवर्चला ॥ ३२ ॥ आदित्यपर्णिनी ज्ञेया तथैवहि हिमक्षये । दृश्यतेजगरी नित्यं गोनसी चांबुदागमे ॥ ३३ ॥ काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम् । करेणुस्तत्र कन्या च छत्रातिच्छत्रके तथा ॥ ३४ ॥ गोलोमी चाजलोमी च महती श्रावणी तथा । वसंते कृष्णसर्पाख्या गोनसी च प्रदृश्यते ॥ ३५ ॥

देवसुंद नाम सरोवरमें तथा सिंधु नाम महानदीमें जलके किनारे या मध्यमें ब्रह्मसुवर्चला पाई जाती है ॥ ३२ ॥ आदित्यपर्णिनी हेमंतके क्षय (वसंत) में होती है अजगरी सदा मिलती है और गोनसी प्रावृट् ऋतुमें पाई जाती है ॥ ३३ ॥ काश्मीरमें एक दिव्य सरोवर क्षुद्रमानसरोवर नामक है वहां पर करेणु कन्या छत्रा तथा अतिच्छत्रा पाई जातीहैं ॥ ३४ ॥ तथा वहांही गोलोमी और अजलोमी महाश्रावणी और श्रावणी भी होती है वसंत ऋतुमें कृष्णसर्पाख्या अर्थात् वाराही और गोनसी पाई जाती हैं ॥ ३५ ॥

कौशिकीं सरितं तीर्त्वा संजयंत्यास्तु पूर्वतः । क्षितिप्रदेशो वल्मीकै राचितो योजनत्रयम् ॥ ३६ ॥ विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वल्मीकमूर्द्धसु । मलये नलसेतौ च वेगवत्यौषधी ध्रुवा ॥ ३७ ॥

कौशिकीनदीको तरकर संजयंती नगरीके पूर्वको तीन योजन विस्तृत सर्पोंकी बंबइयों से व्याप्त पृथ्वीका भाग (जंगल) है ॥ ३६ ॥ वहां श्वेतकापोती बंबइयों- के शिखरपर मिलती है और मलयगिरिमें तथा नलसेतु (सेतुबंधरामेश्वर) में वेगवती औषधी अवश्य होती हैं ॥ ३७ ॥

(श्लो० ३३) हिमक्षये वसंते, अंबुदागमे प्रावृट्काले ।

(श्लो० ३५) कृष्णसर्पाख्या वाराही (इति नि० सं०) अन्येतु कृष्णसर्पाख्या गोनसीएवेत्याहुः ।

(श्लो० ३६) संजयंतीनामनगरी पूर्वकालेचासीत् ।

(श्लो० ३७) नलसेतुः नलनाम्नावानरेणरचितः सेतुः नेलसतुः सचाद्य सेतुबंधरामेश्वरनाम्नाप्रसिद्धः ।

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां च भक्षयेत्तामुपोषितः ।
सोमवर्चात्र वर्तेत फलं तावच्च कीर्तितम् ॥ ३८ ॥

कार्तिककी पूर्णमासीको व्रत करके इन्हें भक्षण करे तो सोमके समान इनका फल होवे ऐसा कहा है ॥ ३८ ॥

सर्वा विज्ञेयास्त्वौषध्यः सोमे चाप्यर्बुदे गिरौ । स शृंगैर्देवरचितैरंबुदानीकभेदिभिः ॥ ३९ ॥ व्याप्तस्तीर्थैश्च विख्यातैः सिद्धर्षिसुरसेवितैः । गुहाभिर्भीमरूपाभिः सिंहोन्नादितकुक्षिभिः ॥ ४० ॥ गजालोडिततोयाभिरापगाभिः समंततः । विविधैर्धातुभिश्चित्रैः सर्वत्रैवोपशोभितः ॥ ४१ ॥

ये उपरोक्त से भी औषधें सामान्यतासे शीतल पहाडोंमें तथा आबूराजमें (अथवा शीतल अर्बुद पर्वतमें) मिलती हैं तथा ऊंची वादलोंको भेदन करनेवाली शिखर युक्त जो पर्वत है विख्यात तीर्थोंसे व्याप्त हैं जहां सिद्ध ऋषि देवता निवास करते हैं जिनमें बडी भयानक गुफायें हैं जिनके भीतर सिंह गर्जा करते हैं ऐसे स्थानोंमें ये औषधें होती हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तथा जिन नदियोंमें हाथी कलोल करते हैं उनके आसपासमें तथाच जो स्थान नाना प्रकारकी चित्र विचित्र धातुवोंसे शोभितहैं ऐसे स्थानोंमें ये औषधें मिलती हैं (अथवा ये सब अर्बुदहीके विशेषण हो सकते हैं कि जो अर्बुद देवरचित ऊंचे शृंगोंसे विख्यात तीर्थों आदिसे व्याप्त और शोभित है उसमें ये सब मिलती हैं ॥ ४१ ॥

नदीषु शैलेषु सरस्सु चापि पुण्येष्वरण्येषु तथाश्रमेषु ।
सर्वत्र सर्वाः परिमार्गितव्याः सर्वत्र भूमिर्हि वसूनि धत्ते ॥ ४२ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

नदियोंमें पहाडोंमें सरोवरोंमें पवित्र वनोंमें तथा आश्रमोंमें इन सब जगह इन सब औषधोंको तलास करना चाहिये यहांपर मिल जाना संभव है क्योंकि समस्त पृथिवीही द्रव्य धारण करनेवाली है ॥ ४२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीकभाषाटीकायां
चिकित्सितस्थाने त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३० ॥

इति रसायनतंत्रम् ।

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्नेहोपयौगिकं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम स्नेहके उपयोग करने विषयक चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

स्नेहसारोयं पुरुषः प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेहसाध्याश्च भवंति । स्नेहो हि पानानुवासनमस्तिष्कशिरोबस्त्युत्तरबस्तिनस्यकर्णपूरणगात्राभ्यंगभोजनेषूपयोज्यः ॥ १ ॥

यह मनुष्य शरीर स्नेहकाही सार है और प्राणभी स्नेहभूयिष्ट हैं अर्थात् प्राण अधिक स्नेहसे हैं और स्नेहहीसे साधन किये जाते हैं । स्नेह (चिकनाई घृत तैल वसा मज्जा) पीने अनुवासन मस्तिष्क शिरोबस्ति और उत्तर बस्ति नस्य (नास) कर्णपूरण (कानमें डालने) शरीरपर मलने तथा भोजन करनेमें उपयोग किया जाता है ॥ १ ॥

तत्र द्वियोनिश्चतुर्विकल्पेऽभिहितः स्नेहः गुणाश्च तत्र जंगमेभ्यो गव्यं घृतं प्रधानं स्थावरेभ्यस्तिलतैलं प्रधानमिति ॥ २ ॥

उस स्नेह (चिकनाई) के उत्पत्ति स्थान दो हैं १ स्थावर पदार्थ २ जंगम जीवजंतु और चार भेद हैं (घृत तैल वसा और मज्जा) तथा गुण भी बहुत हैं ये सूत्र स्थानमें वर्णन पहले हो चुके हैं तहां जंगम स्नेहोंमें गौका घृत प्रधान है और स्थावर स्नेहोंमें तिलका तैल प्रधान है ॥ २ ॥

अतऊर्द्ध्वं यथाप्रयोजनं यथाविधानं च स्थावरस्नेहानुपदेक्ष्यामः ॥ ३ ॥

यहांसे अगाडी हम प्रयोजनके अनुसार और विधिके अनुसार स्थावर स्नेह (तैलों) का उपदेश करते हैं ॥ ३ ॥

तत्र तिल्वकैरण्डकोशाम्रदंतीद्रवंतीसप्तलाशंखिनीपलाशविषाणिकागवाक्षी कंपिल्लकसंपाकनीलिनीस्नेहा विरेचयंति ॥ ४ ॥ जीमूतककुटजकृतवेधनेक्ष्वाकुधामार्गवमदनस्नेहा वामयंति ॥ ५ ॥ विडंगखरमंजरीमधुशिग्रुसूर्यवल्लीपीलुसिद्धार्थकज्योतिष्मतिस्नेहाः शिरो विरेचयंति ॥ ६ ॥

(वा० २) जंगमेभ्यः गमनशीलेभ्यः स्थावरेभ्यः उद्भिजाकरजेभ्यः ।

(वा० ४. ५. ६.) तिल्वकः राध्राकारः बृहत्पत्रः रक्तत्वक्, सप्तला यवतिक्ता, शंखिनी तद्भेदः, गवाक्षी द्रवकर्णी, जीमूतकः देवदाली, कृतवेधनः कोशातकी, इक्ष्वाकुः कटुतुंबी, सूर्यवल्ली अर्कपुष्पी इति (नि. सं.)

तिल्वक (पट्टिका लोध) एरंड, कोशाम्र, दंती (जयपाल) द्रवंती (जयपालका भेद), सप्तला (सातला थोहरका भेद), शंखिनी (थोहरका दूसरा भेद), पलाश, विषाणिका (मेढा सींगी), गवाक्षी (द्रवकर्णी) कमेला, किरमाला और नीलनी (कालादाना) इनका तैल विरेचन कर्ता है (इनमें जिनके बीजोंमें तैल होवे उसका तो तज्जन्य तैल समझे और जिनमें तेल नही है उन्हें तिलके तैलमें साधन करनेसे जो बने वही समझे) ॥ ४ ॥ जीमूतक (देवदाली) कुडा (इंद्रजौ) कृतवेधन (कोशातकी) इक्ष्वाकु (कटुतुंबी) धामार्गव (महाकोशातकी) और मैनफल इनका तैल वमन कारक है ॥ ५ ॥ विडंग खरमंजरी (अपामार्ग) मीठा संहँजना सूर्यवल्ली (अर्कपुष्पी) पीलु सिद्धार्थक (सुपेद सरसों या राई) और मालकांगनी इनका तैल शिरका विरेचन करता है ॥ ६ ॥

करंजपूतिककृतमालमातुलुंगेंगुदीकिराततिक्तकस्नेहाः दुष्टव्रणेषूपयुज्यंते । तुवरककपित्थकंपिल्लकभल्लातकपटोलस्नेहाः महाव्याधिषु ॥ ७ ॥ त्रपुसैर्वारुककर्कारुकतुम्बीकूष्मांडस्नेहाः मूत्रसंगेषु । कपोतवंकाबल्गुजहरीतकीस्नेहाः शर्कराश्मरीषु । कुसुंभसर्षपातसीपिचुमर्दातिमुक्तकभाण्डीकटुतुम्बीकटभीस्नेहाः प्रमेहेषु ॥ ८ ॥

करंज पूतिकरंज किरमाला विजौरा हिंगोट चिरायता इनका तैल बिगडे हुए घावों पर लगाना हित है । तुवरक (पश्चिमी समुद्र तटपर वृक्ष होता है) कैथ कमेला भिलावा और पटोल इनका तैल महाव्याधियोंमें उपयोग किया जाता है ॥ ॥ ७ ॥ ककडी आर या खीरा और मीठीतुंबी (घीया) तथा कोहला इनका तैल मूत्रके रुकनेमें काम आता है । कपोतवंका (ब्राह्मी) बावची और हरीतकी इनका तैल शर्करा रोग और पथरीमें लाभदायक है । कसूंभ (करड) सरसों अलसी निंबोली अतिमुक्तक (तेंदु) भांडी (भिंडी) कटुतुंबी और कटभी (मालकांगनी) इनका तैल प्रमेहोंमें हित है ॥ ८ ॥

तालनारिकेलपनसमोचपियालबिल्वमधूकश्लेष्मांतकाम्रातकफलस्नेहाःपित्तसंसृष्टे वायौ । बिभीतकभल्लातकपिंडीतकस्नेहाः कृष्णीकरणे । श्रवणकंगुकटुंटुकस्नेहाः पांडुकरणे शिंशपागुरुसारस्नेहाः दद्रुकुष्ठकिटिभेषु सर्व एव स्नेहा वातमुपघ्नंति तैलगुणाश्च समासेन व्याख्याताः ॥ ९ ॥

(वा० ८) पिचुमर्दः निंबः, अतिमुक्तकः तिंदुकः, भांडी भिंडीतिलोके इति नि० सं० । कटभी ज्योतिष्मती । (इति भा० प्र० निघंटुः) श्रवणः मुंडी इति निघंटुः ।

ताड नारियल कटहल मोच (शाल्मली) चिरोंजी बिल्व महुवा श्लेष्मातक (ल्हेसुवा) आमडा इनके फलोंका तेल पित्तसे मिली हुई वायुमें हितकारक है । बहेडा भिलावा और मैन फल इनका तेल सुपेद व्रणको काला करनेमें श्रेष्ठ है । श्रवण (मुंडी) कांगनी टुंटुक (पाठ) इनका तैल काले दागको पांडुवर्ण करनेके काम आता है । शीशम अगुरु सार इनका तैल दद्रुकुष्ठ और किटिभ रोगमें हित है । और सबही तैल वायुको शांत करते हैं तैलोंके सामान्यतासे गुण वर्णन किये गये९॥

अतऊर्द्ध्वं कषायस्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः । तत्र केचिदाहुस्त्वक्पत्रमूलादीनां भागस्तच्चतुर्गुणजलमावाप्य चतुर्भागावशेषं निःक्वाथ्यापहरेदित्येष कषायपाककल्पः स्नेहप्रसृतेषु षट्सु चतुर्गुणं द्रवमावाप्य चतुरश्याक्षसमान् भेषजपिंडानित्येष स्नेहपाककल्पः । एतत्तु न सम्यक् कस्मादागमासिद्धत्वात् ॥ १० ॥

अब यहांसे अगाडी हम क्वाथ पकाके स्नेह पकानेका क्रम बताते हैं । इसमें कई ऐसा कहतेहैं कि छाल पत्ते जड आदि औषधोंका एक भाग लेकर उससे चौगुने पानीमें डालकर ओंटावे और चौथाई रहनेपर अग्निसे उतारले यही क्वाथ बनानेकी विधि है । फिर छः प्रसृति स्नेह (तैलादिक) में चौगुना द्रव (क्वाथ गोमूत्रादि) डाले और उसमें एक पल पिसी हुई औषध डालकर पकाले (स्नेहमात्र शेष रह जावे) यही स्नेहपाककी विधि है परंतु धन्वंतरि जी कहते हैं कि यह ठीक नहीं क्योंकि शास्त्रसे यह विधि सिद्ध नही है ॥ १० ॥

मान (तोल) की परिभाषा ।

पलकुडवादीनामतो मानं तु व्याख्यास्यामः । तत्रद्वादशधान्यमाषा मध्यमाः सुवर्णमाषकः ते षोडश सुवर्णम् । अथ मध्यमनिष्पावा वा एकोनविंशतिर्द्धरणं तान्यर्द्धतृतीयानि कर्षः ततश्चोर्द्ध्वं चतुर्गुणमभिवर्द्धयंतः पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणा इत्यभिनिष्पद्यंते तुला पलशतं तानि विंशतिर्भारः शुष्काणामिदं प्रमाणमार्द्रद्रवाणां च द्विगुणमिति ॥ ११ ॥

यहांसे अगाडी हम पल कुडव आदि तोलके प्रमाणकी व्याख्या करते हैं । इसमें बारह साधारण उडद धान्यका १ सुवर्ण माष होता है और १६ सुवर्ण माषका

(वा० १०) प्रसृतेः प्रमाणं पलद्वयम् ।

एक सुवर्ण होता है । अथवा न बहुत छोटी न मोटी बिचौधड़ी १९ निष्पाव (मटर समधान्य) का एक धरण (टंक) होता है फिर साढ़ेतीन धरणका एक कर्ष होता है इसके पीछे चौगुने चौगुने बढाकर पल कुडव प्रस्थ आढक और द्रोण होते हैं (जैसे चार कर्षका १ पल चार पलका १ कुडव चार कुडवका १ प्रस्थ चार प्रस्थका १ आढक और चार आढकका १ द्रोण) सौ १०० पलकी एक तुला । वीस तुलाका १ भार होता है सूखे पदार्थोंका प्रमाण इसके अनुसार लेना गीले और द्रव पदार्थोंका प्रमाण दुगुना करना ॥ ११ ॥

(वक्तव्य) मान परिभाषाके कालिंग और मागध दो भेद हैं इसका विस्तार पूर्वक वर्णन हम इसके अंतमें परिशिष्ट रूपमें लिखेंगे वहां देखिये ॥

धन्वंतरिजीके मतसे क्वाथ और स्नेहपाकविधि ।

तत्रान्यतमपरिमाणसंमितानां यथायोगं त्वक्पत्रमूलादीनामातपपरिशोषितानां छेद्यानि खंडशश्छेदयित्वा भेद्यान्यणुशो भेदयित्वावकुट्याष्टगुणेन षोडशगुणेन वाम्भसाऽभिषिच्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्वाथयित्वापहरेदित्येष कषायपाककल्पः । स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कस्तदैकध्यं संसृज्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः ॥ १२ ॥

इसमेंसे किसी प्रमाणके अनुसार यथायोग छाल पत्ते जड आदिको धूपमें सुखाकर छेदन (टुकडे) करने योग्यके छोटे २ टुकडे करके और भेदन करने योग्यको बारीक भेदनकरले फिर जरा कूटकर (कोमल वस्तु होतो) आठ गुने और कठोर हो तो सोलह गुने जलमें डालकर हांडी या देगचीमें डाले और अग्निपर उबाले उबलकर चौथाई रहनेपर अग्निसे उतार ले (और छान ले) यही क्वाथ बनानेकी विधि ठीक है ॥ स्नेह पकानेमें स्नेह (तैलादि) से चौगुना द्रव (क्वाथ गोमूत्रादि) डाले और स्नेहसे चतुर्थांश पिसी औषधें मिलाकर पकावे (तैलमात्र रहे उतार ले) यह स्नेहपाककी (उत्तम) विधि है ॥ १२ ॥

अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्पत्रमूलादीनां तुलामावाप्यचतुर्भागावशिष्टे निःक्वाथ्यापहरेदित्येष कषायपाककल्पः । स्नेहकुडवे भेषजपलं पिष्टं कल्कं चतुर्गुणं द्रवमावाप्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः ॥ १३ ॥

(वा०१२) अष्टगुणेन षोडशगुणेन वाजलेनेति । कर्षादौतुपलं यावत् दद्यात्षोडशिकंजलम् । ततस्तुकुडवं यावत् तोयमष्टगुणंभवेत् । चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वं यावत्प्रस्थाधिकंभवेत् इति, प्रकारांतरेणाह मृदौ चतुर्गणं देयं कठिनेष्टगुणं जलम् । कठिनात्कठिने देयं जलं षोडशिकं मतम् इति । वस्तु तस्तु बाहुल्येन षोडशगुणेन जलेन क्वाथपानविषयस्नेहपाककल्पनं चेति (नि. सं.)

अथवा द्रोणभर जलमें छाल पत्ते जड आदि तुलाभर डालकर अग्नि पर उबाले और चौथाई रहे पर उतार कर छान ले यह भी क्वाथ बनानेकी विधि है । और कुडव भर स्नेहमें पिसी पलभर औषधका कल्क और स्नेहसे चौगुना द्रव (क्वाथादि) डालकर पकावे (स्नेह मात्र रहे उतार ले) यह स्नेह पाककी विधि है ॥ १३ ॥

भवतश्चात्र । स्नेहभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम् । तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु ॥ १४ ॥ अनुक्तद्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् । कल्कक्काथविनिर्देशे गणात्तस्मात्प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

यहां पर दो श्लोक हैं ॥ जहांपर स्नेह औषध और क्वाथ जल आदिका प्रमाण नहीं लिखा हो वहां इस उपरोक्त विधिके अनुसार लेना और जहां प्रमाण लिखाहो वहां उस प्रमाणके अनुसार सब वस्तु लेवे ॥ १४ ॥ जहां कहीं द्रव पदार्थका नियम नाम आदि नहीं लिखा हो वहां सब जगह जल ले लेना चाहिये और जहां जिन जिन औषधोंके कल्क तथा क्वाथ लिखे हों वहां उन्हीं औषधोंके कल्क और क्वाथ लेकर स्नेह पकाना चाहिये ॥ १५ ॥

तीनभाँतिकास्नेहपाक ।

अत ऊर्द्ध्वं स्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः । स तु त्रिविधस्तद्यथा मृदुर्मध्यमः खर इति । तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुरिति । मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः कृष्णमवसन्नमीषद्विषदं चिक्कणं च यत्र भेषजं स खर इति अतऊर्द्ध्वं दग्धस्नेहो भवति, तं पुनः साधु साधयेत् ॥ १६ ॥ तत्र पानाभ्यवहारयोर्मृदुः नस्याभ्यंगयोर्मध्यमः बस्तिकर्णपूरणयोस्तुखर इति ॥ १७ ॥

यहांसे अगाडी हम स्नेहपाक (तैल साधन करने) का उपदेश करते हैं ॥ वह स्नेह पका हुवा तीन प्रकारका होताहै जैसै मृदु मध्यम और खर (तीक्ष्ण) इनमेंसे जहां पके पीछे औषध और स्नेह न्यारा रहे (औषध जैसीकी तैसीबनी रह घुले मिले और जले नहीं) वह मृदु है । जहां औषध पककर मोमके छत्तेके समान होजावे परंतु उज्वल रहे और लिहस नहीं जावे वह मध्यम है । और जहां औषध पककर काली पडजावे और नीचे जमजावे कुछ गधली मैली सी होजावे और चिकनाई उसमें मिल जावे वह खर है । और इससे भी जादा पकाया जावे तो स्नेह दग्ध होजाता है इस लिये इसे सावधानीसे ठीक पकावे ॥ १६ ॥ इनमें से पीने और

खानेमें मृदु उपयोग करना चाहिये तथा नस्य और अभ्यंग (मर्दन करने) में मध्यम और बस्ति कर्म तथा कानोंमें डालनेको खर उपयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

स्नेहपक्वकी परीक्षा।

शब्दस्योपशमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा । गंधवर्णरसादीनां संपत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ १८ ॥ घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक् । फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ १९ ॥

खद बदका शब्द नष्ट होने और झाग बैठ जाने पर सुगंध रंग और रसादिककी ठीक प्राप्ति होजावे तब सिद्ध हुवा जाने ॥ १८ ॥ यह घृतपक्वकी परीक्षा बुद्धिमान् वैद्य जाने तैलमें झाग बहुतही उठते हैं(उनकी शांतिसे पका जाने) शेष सब बातें घृतके समान ही समझनी चाहियें ॥ १९ ॥

स्नेहपानकी विधि।

अत ऊर्ध्वं स्नेहपानक्रममुपदेक्ष्यामः॥अथलघुकोष्ठायातुराय कृतमंगलस्वस्तिवाचनायोदयगिरिशिखरसंस्थिते प्रतप्तकनकनिकरपीतलोहिते सवितरि यथाबलं तैलस्य घृतस्य वा मात्रां पातुं प्रयच्छेत् । पीतमात्रे चोष्णोदकेनोपस्पृश्य सोपानत्को यथासुखं विहरेत् ॥ २० ॥

इससे अगाडी हम स्नेहपान (घृत आदि पीने) की विधिका उपदेश करते हैं ॥ हलके कोठेवाले रोगीको प्रभात जिस समय सूर्य उदयाचलके शिखरपर हो और तपाये सुवर्ण जैसी पीली सुरख किरणें फूटने लगी हों उस समय मंगलपाठ स्वस्ति वाचन कराके बलके अनुसार तैल अथवा घृतकी मात्रा पिलावे । और पीकर गरम पानीसे आचमन (कुल्ले) करके जूता पहनकर जैसे जीचाहे वैसे फिरे (टहले) ॥ २० ॥

घृतपान और तैलपान योग्यरोगी।

रूक्षक्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् । हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ २१ ॥ कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः । पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनश्च ये ॥ २२ ॥

जो रूखे हों उरक्षत रोगसे क्षीण हो विष पीडितहो जिन्हें वायु और पित्तके विकार हों जिनकी बुद्धि और स्मरणशक्ति मंद हो उन्हें घृत पिलाना श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

जिनके कोठेमें कृमि हो जो वायुसे अवरुद्ध (रुके) हों जिनके कफ या मेद बढे हुये हों जिन्हें तैल गुण करता हो जो शरीरको दृढ करना चाहें वे तैलका पान करें ॥ २२ ॥

वसा और मज्जाके योग्य।

व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः ।महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नरा मता ॥ २३ ॥ क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः । मज्जानमाप्नुयुः सर्वे सर्पिर्वा स्वौषधान्वितम् ॥ २४ ॥

जो श्रम (या डंड कसरतसे दुबले हुये हों जिनका वीर्य और रुधिर सूख गया हो जिसके महा रोगहों जिनकी जठराग्नि बढी हो जिनके वायु बढा गया हो जो अति प्राण (बल) वाले हो वें चरबी पान करने योग्य होते हैं ॥ २३ ॥ जिनके आशय कठोर हों क्लेश सहनेवाले हों जो वायुसे दुखी हों जिनकी जठराग्नि अति दीप्त होवे सब मज्जापान करें अथवा औषधोंयुक्त घृतपान करें ॥ २४ ॥

दोषोंकेअनुसार स्नेहपान।

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् । देयं बहुकफे चापि व्योषक्षारसमायुतम् ॥ २५ ॥ दोषाणामल्पभूयस्त्वं संसर्गं समवेक्ष्य च । युंज्यात्त्रिषष्टिधाभिन्नैः समासव्यासतो रसैः ॥ २६ ॥

केवल पित्तकी व्याधिमें (या पित्तप्रकृतिमें) केवल घृतपान करना चाहिये और वायुके रोगमें (या वात प्रकृतिको) लवण मिलाकर पिलाना तथा कफके रोगमें या बहुत कफवालेको त्रिकटु और यवक्षार मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ २५॥ दोषोंमें कमती बढती और मेल देखकर ६३ त्रेसठप्रकार के जो रसके भेद (उत्तर तंत्रमें कहेंगे) उनके अनुसार संक्षेप और विस्तारसे रसभेदकी योजना करके स्नेह पान करावे ॥ २६ ॥

स्नेह पानका समय।

स्नेहसात्म्यः क्लेशसहः कालेनात्युष्णशीतले । अच्छमेव पिबेत्स्नेहमच्छपानं हि पूजितम् ॥ २७ ॥ शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि । वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ २८ ॥ वातपित्ताधिकस्योष्णे तृण्मूर्च्छोन्मादकारकः । शीते वातकफार्तस्य गौरवारुचिशूलकृत् ॥ २९ ॥

जिसे स्नेह माफकत हों जो क्लेश सह सके वह न गरमी और न सरदी ऐसे सामान्य समयमें स्वच्छ घृत तैलादि पान करे क्योंकि स्वच्छही पीना श्रेष्ठ होता है ॥ २७॥ शरदीकी ऋतुमें दिनके समय और गरमीकी ऋतुमें रात्रिके समय स्नेह पान करना उचित है । तथा जिसके वायु और पित्तकी अधिकता हो वह रात्रिमें और जिसके कफ वायुकी अधिकता हो वह दिनमें स्नेह पान करे ॥ ॥ २८ ॥ जिसके वायु पित्त अधिक हो वह यदि गरमीके समय स्नेह पान करे तो उसको तृषा मूर्च्छा और उन्माद रोग होजाते हैं तथा वायु कफके रोगवाला सरदीमें स्नेह पीवे तो उससे भारीपन अरुचि और शूल ऐसे रोग होतेहैं ॥ २९ ॥

स्नेहपान पर अति तृषा को उपचार ।

स्नेहपीतस्य चेत्तृष्णा पिबेदुष्णोदकं नरः।एवं चानुपशाम्यंत्यां स्नेहमुष्णांबुना वमेत् । दिह्याच्छीतैः शिरः शीतं तोयं चाप्यवगाहयेत् ॥ ३० ॥

स्नेहपानपर यदि तृषा लगे तौ गरम जल पीना चाहिये और जो ऐसा करनेसे तृषा शांत न हो (वलाकि बढे) तो गरम पानी पीकर स्नेहकी वमन कर डालनी चाहिये और ठंडी वस्तु शिरपर लगावे और ठंढे पानीमें घुसकर स्नान करे ॥ ३० ॥

स्नेहकी मात्रा और गुण ।

या मात्रा परिजीर्येत चतुर्भागगते हनि ।सा मात्रा दीपयंत्यग्निमल्पदोषे च पूजिता ॥३१॥ या मात्रा परिजीर्येत तथार्द्धदिवसे गते । सा वृष्या बृंहणी चैव मध्यदोषे च पूजिता ॥ ३२ ॥ या मात्रा परिजीर्येत चतुर्भागावशेषिते । स्नेहनीया च सा मात्रा बहुदोषेषु पूजिता ॥ ३३ ॥ या मात्रा परिजीर्येत तथा परिणतेहनि । ग्लानिमूर्च्छामदान् हित्वा सा मात्रा पूजिता भवेत् ॥ ३४ ॥ अहोरात्रादसंदुष्टा या मात्रा परिजीर्यते । सा तु कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥ ३५ ॥

जो घृत तैलादिकी मात्रा एक पहर दिन चढे (पहर भरहीमें) पच जाती है वह जठराग्निको दीपन करती है और थोडे दोषवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ और जो मात्रा मध्यान्हतक (दो पहरमें) पचती है वह वृष्य और बृंहण (शरीर पुष्ट करनेवाली) है और मध्यम दोषवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ जो मात्रा चतुर्थांश दिन रहे (तीन पहरमें) पचती है वह स्नेहनी (स्निग्धता कारक) है और अति दोषवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ जो मात्रा दिन पिछे (चार पहरमें) पचती है वह ग्लानि मूर्च्छा और मद इनको नाश करके श्रेष्ठ समझी जाती है ॥ ३४ ॥ और जो मात्रा

किसी प्रकारका दोष विना उत्पन्न किये दिनरातमें (आठ पहरमें) पचती है वह कुष्ठ विष उन्माद ग्रह और अपस्मार इतने रोगोंको नाश करती है ॥ ३५ ॥

प्रथम मात्राकी विधि ।

यथोग्नि प्रथमां मात्रां पाययेत विचक्षणः ।
पीतो ह्यतिबहुस्नेहो जनयेत्प्राणसंशयम् ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् वैद्य जठराग्निके अनुसार पहली मात्रा स्नेहकी पिलावे (अथवा प्रथम मात्रा जो एक पहरमें पच जावे उतना पिलावे) क्योंकि बहुत अधिक स्नेह पीया हुवा प्राणोंका संदेह उत्पन्न करता है ॥ ३६ ॥

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति । विष्टभ्य चापि जीर्यत्त वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ ३७ ॥ जीर्णाजीर्णविशंकायां स्नेहस्योष्णोदकं पिबेत् । तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तंप्रति रुचिस्तथा ॥ ३८ ॥

मिथ्या आचरण करनेसे अथवा बहुत पीजानेसे जिसको स्नेह पचे नहीं या पेटमें फुलावट कबजी करके पचे उसे गरम जलसे वमन करा देवे ॥ ३७ ॥ और स्नेह पचगया अथवा नहीं पचा ऐसी शंकामें गरम जल पीवे उससे शुद्ध डकार आजाते हैं और खानेपर रुचि होती है ॥ ३८ ॥

स्नेह पचनेके समय उपाधि ।

स्युः पच्यमाने तृड्दाहभ्रमसादारुचिक्लमाः ॥ ३९ ॥

जब स्नेह (घृत तैलादि) पचने लगते हैं उस समय तृषा दाह भ्रम अनुत्साह अरुचि और क्लम (ग्लानि) ये होते हैं (यदि ये स्वल्प हों तो कुछ बहुत चिंता नहीं परंतु यदि उपद्रव अधिक बढे तो तात्काल उसकी शांतिका उपाय करना चाहिये) ॥ ३९ ॥

परिषिच्याद्भिरुष्णाभिर्जीर्णस्नेहं ततो नरम् । यवागूं पाययेच्चोष्णां कामं क्लिन्नाल्पतंडुलाम् ॥ ४० ॥ देयौ यूषरसौ वापि सुगंधी स्नेहवर्जितौ॥ कृतौ वात्यल्पसर्पिष्कौ यवागूर्वा विधीयते ॥ ४१ ॥

जब स्नेह पच जावे तब मनुष्यको गरम पानीसे अभिषेक करके बहुत सीजे हुवे थोडे चावलोंकी गरम यवागू यथा रुचि पिलावे ॥ ४० ॥ अथवा विना चिकनाई-का यूष तथा मांस रस सुगंधि युक्त देवे अथवा बहुत कम घृतके यूष रस देवे अथवा यवागू ही देवे ॥ ४१ ॥

स्नेहपान करनेकी अवधि ।

पिबेत्र्यहं चतुरहं पंचाहं षडहं तथा ।
सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्म्यी भवति सेवितः ॥ ४२ ॥

घृत तैलादिक तीन दिन चार दिन पांच दिन तथा छह दिन पीवे फिर सात दिन पीछे सेवन करना सात्म्य होजाता है अर्थात् आहारमें होजाता है ॥ ४२ ॥

सुकुमारं कृशं वृद्धं शिशुं स्नेहद्विषं तथा ।
तृष्णार्तमुष्णकाले च सह भक्तेन पाययेत् ॥ ४३ ॥

सुकुमार (नाजुक मनुष्य) दुबले वृद्ध बालक तथा जिसको स्नेह पीनेसे अरुचि (नफरत) हो उन मनुष्योंको तथा तृषासे पीडितको और गरमीके समय भोजनके साथ स्नेह पान करावे ॥ ४३ ॥

सद्यःस्नेहन कर्त्ता पांच प्रयोग ।

पिप्पल्यो लवणं स्नेहाश्चत्वारो दधिमस्तुकः । पीतमेकध्यमेतद्धि सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ ४४ ॥ भृष्टमांसरसे स्निग्धा यवागूः सूपकल्पिताः । सक्षुद्रा पीयमाना तु सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४५ ॥ सर्पिष्मती पयःसिद्धा यवागूः स्वल्पतंडुला । सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४६ ॥ शर्कराचूर्णसंसृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम् । दुग्ध्वा क्षीरं पिबेद्रूक्षः सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४७ ॥ यवकोलकुलत्थानां क्काथो भागत्रयान्वितः । पयोदधिसुराक्षीरघृतभागैः समन्वितः ॥ ४८ ॥ सिद्धमेतैर्घृतं पीतं सद्यः स्नेहनमुच्यते । राज्ञे राजसमेभ्यो वा देयमेतद्घृतोत्तमम् ॥ ४९ ॥

पिप्पली लवण चारों स्नेह (घृत तैल वसा मज्जा) दही दहीका पानी इन सबको मिलाकर पीया हुवा सद्यही स्नेहन करनेवाला कहा है ॥ ४४ ॥ भुने हुए मांसके रसमें दालकी बनाई हुई चिकनी यवागूमें कटेली डालके पीना सद्यही स्नेहन करता है ॥ ४५ ॥ थोडे चावलोंकी दूधमें बनी हुई यवागू घृतयुक्त गरम गरम पीनेसे तात्कालही स्नेहन होता है ॥ ४६ ॥ दोहनीमें शर्करा (खांड) मिलाहुवा घृत डालकर उसमें गौका दूध निकाले उसे उसी समय (धारोष्ण) ही रूक्ष मनुष्य पीया करे यह सद्यः स्नेहन कर्ता है ॥ ४७ ॥ तथा जौ, बेर, कुलथी इन तीनोंको समान भाग लेकर क्काथ करे फिर उस क्काथमें दूध दही मद्य और जल समान भाग

मिलाकर इनमें घृत सिद्ध करे वह घृत पीना सद्यही स्नेहन करता है राजाको अथवा राजाके समान बडे आदमियोंको यह उत्तम घृत पिलाना योग्य है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

बलहीनेषु वृद्धेषु मृद्वग्निस्त्रीमहात्मसु । अल्पदोषेषु योज्या स्युर्योगाः सद्यस्नेहिनः ॥ ५० ॥

बलहीन मनुष्योंको वृद्धोंको जिनकी जठराग्नि कोमल हो स्त्री तथा महात्मा (शांतस्वभाव) तथा जिनके अल्पदोष हों ऐसे मनुष्योंको उपरोक्त सद्यःस्नेहन कर्त्ता ५ प्रयोगोंमेंसे उपयोग करने चाहिये ॥ ५० ॥

स्नेहपानके अयोग्यरोगी ।

विवर्जयेत्स्नेहपानमजीर्णी चोदरी ज्वरी । दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥ ५१ ॥ छर्द्यर्दितः पिपासार्तः श्रांतः पानक्लमान्वितः । दंतबस्तिर्विरिक्तश्च वांतो यश्चापि मानवः ॥ ५२ ॥ अकाले दुर्दिने चैव न च स्नेहं पिबेन्नरः । अकाले च प्रसूता स्त्री स्नेहपानं विवर्जयेत् ॥ ५३ ॥ स्नेहपानाद्भवंत्येषां नृणां नानाविधा गदाः । गदा वा कृच्छ्रतां यांति न सिध्यंत्यथवा पुनः ॥ ५४ ॥

इन निम्न लिखित रोगियोंको स्नेहपान वर्जित हैं अजीर्णवाले उदर रोगी (जिन्हें जलोदर आदिहो) ज्वरवाले दुर्बल अरुचिवाले स्थूलशरीरवाले जिन्हें मूर्च्छा आती हो जो मदसे पीडित हों ॥ ५१ ॥ जिन्हें छर्दि (उलटी) आती हो तृषायुक्त थका-हुवा मद्यपान और ग्लानियुक्त हो जिसके बस्तिकर्म किया हो जिसे विरेचन कराया हो जिसे वमन कराये हो (इन्हें स्नेहपान नहीं करावे) ॥ ५२ ॥ अकालमें (वे समय) अवर हुएमें मनुष्य स्नेह न पीवे तथा अकाल (वेसमय) जिस स्त्रीके बालक हुवाहो या गर्भपात हुवा हो उसे भी स्नेह (चिकनाई) वर्जित है ॥ ५३ ॥ इन ऊपर लिखे हुए मनुष्योंको स्नेहपान करनेसे नाना प्रकारके रोग होते हैं अथवा रोग कष्ट साध्य तथा असाध्य होजाते हैं ॥ ५४ ॥

गर्भाशये सशेषाः स्यू रक्तक्लेदमलास्ततः । स्नेहं जह्यान्निषेवेत पाचनं रूक्षमेवं च । दशरात्रात्ततः स्नेहं यथावदवचारयेत् ॥ ५५ ॥

अकाल प्रसूता स्त्रीके गर्भाशयमें रुधिर क्लेद और मल दूषित शेष रहते हैं इससे स्नेहत्यागकर रूखी पाचन वस्तु सेवन करे और दशादिनपीछे यथायोग्य चिकनाई देनी शुरूकरे ॥ ५५

(श्लो० ५५) अकालप्रसूता स्त्रीणांगर्भाशये रक्तक्लेदमलाः सशेषाःस्युरतः सा स्नेहं जह्यात्, दशरात्रात्परं यथावत्स्नेहं अवचारयेदित्यर्थः ।

रूक्षके लक्षण ।

पुरीषं ग्रथितं रूक्षं कृच्छ्रादन्नं विपच्यते । उरो विदहते वायुः कोष्ठादुपरि धावति । दुर्वर्णो दुर्बलश्चैव रूक्षो भवति मानवः ॥ ५६ ॥

रूक्ष मनुष्यके विष्ठा गांठ रूप रूखा होता है और अन्न भी कठिनतासे पचता है हृदयमें दाह होती है और कोष्टसे वायु ऊपर ऊपरको चढती है वर्ण विगडा (कुरूप) होता है और दुर्बल (कृश) मनुष्य होजाता है ॥ ५६ ॥

सम्यक् स्निग्धके लक्षण ।

ग्लानिः सदनमंगानामधस्तात्स्नेहदर्शनम् ।
सम्यक् स्निग्धस्य लिंगानि स्नेहद्वेषस्तथैव च ॥ ५७ ॥

जिसे प्रमाणका उचित स्नेह पान किया हो उसे ग्लानि अंगोंमें भारीपन होवे तथा विष्ठामें चिकनाई दीखे और चिकनाई पर रुचि न रहे (ये सम्यक् स्निग्धके लक्षण हैं) ॥ ५७ ॥

अतिस्निग्धके लक्षण ।

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुददाहः प्रवाहिका ।
पुरीषातिप्रवृत्तिश्च भृशस्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ५८ ॥

जिसको प्रमाणसे अधिक स्नेह पान कराया गया हो उसको भोजनमें प्रेम न हो मुखमें (स्निग्धता युक्त) कुल्ले भर भर आवें गुदामें गरमी हो प्रवाहिका (मरोडे) हों विष्ठाकी अधिक प्रवृत्ति हो (दस्त लगे) ये भृश स्निग्ध अर्थात् अतिस्निग्धके लक्षण हैं ॥ ५८ ॥

अतिरूक्ष और अति स्निग्धका प्रतीकार ।

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ५९ ॥

रूक्ष मनुष्योंको स्नेहसे (घृत तैलादिसे) स्निग्ध करना और अति स्निग्धोंको शामक कोदों छांछ खली और सतू आदिसे रूक्षण (रूखापन) करना चाहिये॥५९॥

(श्लो० ५६) कोष्ठादुपरि धावति वायुः ऊर्द्ध्वं गच्छतीत्यर्थः ।

(श्लो० ५७) सम्यक् स्निग्धस्य लिंगानि स्नेहद्वेषस्तथैवच । इत्यत्र स्नेहे जीर्यति लिंगानि जीर्णस्तैः शांतिमागतैः इति वा पाठांतरं तत्र शांतिंगतैः स्नेहोजीर्णो ज्ञायते ।

स्नेहपानकेगुण ।

दीप्तांतरग्निः परिशुद्धकोष्ठः प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः । दृढेन्द्रियो मंदजरः शतायुः स्नेहोपयोगी पुरुषो भवेत्तु ॥ ६० ॥ स्ने[3]हो हितो[4] दुर्बलवह्निदेहसंधु[2]क्षणे व्या[1]धिनिपीडितस्य । बलान्वि[6]तौ भोजनदोष[7]जातैः प्रमर्दितुं तौ[8] सहसा[9] न[10] सा[11]ध्यौ ॥ ६१ ॥

इतिचिकित्सितस्थानेएकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

स्नेह पानका उपयोग करनेसे जठराग्नि दीप्त हो जाती है कोठा शुद्ध होता है धातु बढती है बल और वर्णसे युक्त मनुष्य हो जाता है इंद्रियां दृढ होती हैं बुढापा मंद होता है अर्थात् देरसे वृद्धता होती है और सौ वर्षकी अवस्था हो जाती है ॥ ६० ॥ व्याधिपीडित और दुर्बल मनुष्यके अग्नि और देहके संधुक्षण (तेज करनेके लिये स्नेह परम हित हैं (और स्नेह पाकसे) बलवान् हुये जठराग्नि और शरीरको भोजनादिसे उत्पन्न हुये दोष शीघ्रही पीडन करनेको समर्थ नहीं हो सकते (अथवा दुर्बल अग्निके चिनगारेके संधुक्षण करने (तेज करने) के लिये जैसे घृतादिक स्नेह हित हैं वैसेही व्याधि पीडितके अग्नि और देहके संधुक्षण (तेज) करनेको स्नेह हित है क्योंकि बलवान् हुये अग्नि और शरीरको भोजनादिके दोष पीडित करनेको समर्थ नहीं होते सारांश यह कि घृतादिसे तेज हुई अग्नि जैसे आले गीले इंधनसे नहीं दबती इसी प्रकार स्नेहसे बलवान् हुई शारीरिक अग्नि भोजनके दोषसे पीडित नहीं होती) ॥ ६१ ॥

इति श्रीसुश्रुतभाषाटीकायांचिकित्सितस्थानेएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

परिशिष्ट (मानपरिभाषा) ।

औषध ग्रहणमें मानकी बडीही आवश्यकता है इस लिये इसे हम विस्तार पूर्वक तंत्रांतरसे लेकर परिशिष्ट रूपमें लिखते हैं तंत्रांतरमें मानकी परिभाषा दो प्रकारकी है एक मागधी परिभाषा दूसरी कालिंगीपरिभाषा मागधीका तोल पुरातन है और कालिंगीसे अधिक है और कालिंगीका कुछ न्यून है प्रथम मागधी परिभाषा लिखते हैं ॥

तिसृभीराजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः । यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १ ॥ षड्भिस्तु रक्तिकाभिःस्यान्माषको हेमधान्ययोः ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ २॥ टंकः स एव कथितस्त-द्द्वयं कोल उच्यते । क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥ ३ ॥

तीन राईके दानेके समान एक सरसोंका दाना होता है और आठ का १ जौ होता है और चार जौकी १ रत्ती (चिरमठी) होती है ॥ १ ॥ और छह रत्तियों का १ माष होता है यह धान्य तथा सुवर्णादिके तोलका माष होता है फिर चार माषका १ शाण होता है उसे धरणभी कहतेहैं ॥ २ ॥ और उसेही टंक-भी कहते हैं दो टंकका एक कोल होता है इसे क्षुद्रभ वटक और द्रंक्षण भी कहते हैं ॥ ३ ॥

कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिका बुधैः । अक्षःपिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिंदुकम् ॥ ४ ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यं हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहम् ॥ ५ ॥ उदुंबरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते । स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ ६ ॥

दो कोल (४ टंक) का १ कर्ष होता है उसे पाणिका और अक्षभी कहते हैं पिचु पाणितल किंचित्पाणि तथा तिंदुक भी कहते हैं ॥ ४ ॥ और बिडालपदक षोडशिका करमध्य हंसपद सुवर्ण और कवलग्रह भी इसे कहते हैं ॥ ५ ॥ तथा उदुंबर ये सब कर्षहीके पर्यायवाची नाम हैं तथा दो कर्षका आधा पल होता है इसे शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं ॥ ६ ॥

शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका।प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमे-वात्र कीर्त्यते ॥ ७ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृति-भ्यामंजलिः स्यात् कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ ८ ॥ अष्टमानं च संज्ञेयं कुड-वाभ्यां च मानिका । शरावोष्टपलं तद्वद् ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ ९ ॥

दो शुक्ति (४ कर्ष) का १ पल होता है उसे मुष्टि आम्र चतुर्थिका प्रकुंच षोडशी और बिल्व भी कहते हैं ॥ ७ ॥ दो पलका १ प्रसृति होता है जिसे प्रसृत भी कहते हैं । दो प्रसृति (४ पल) का १ अंजलि होता है जिसे कुडव कहते हैं और अर्द्ध शराव तथा अष्टमानभी कहते हैं फिर दो कुडवका १ मानिका होता है जिसे शराव और अष्टपल भी पंडितजन कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुः प्रस्थैस्तथाढकम् । भाजनं कांस्यपात्रं च चतुः-षष्टिपलं च तत् ॥ १० ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशोनल्वणोन्मनौ ।

उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ ११ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च चतुःषष्टिशरावकः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १२ ॥

दो शराव (४ कुडव) का १ प्रस्थ होता है और चार प्रस्थका १ आढक होता है जिसे भाजन और कांस्यपात्र भी कहते हैं यह ६४ पलका होता है ॥ १० ॥ चार आढकका १ द्रोण होता है और कलश नल्वण उन्मन उन्मान घट राशि ये सब द्रोणहीके पर्याय नाम हैं ॥ ११॥ दो द्रोणका १ शूप होता है इसे कुंभ भी कहते हैं यह ६४ शरावका होता है फिर दो शूपका १ द्रोणी होता है उसे वाह और गोणीभी कहते हैं ॥ १२ ॥

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः । चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १३ ॥ पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः । तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १४ ॥

४ द्रोणीकी १ खारी होती है जिसमें ४०९६ पल होते हैं ऐसा बुद्धिमानोंने कहा है ॥१३॥ फिर दो हजार पलका १ भार होता है और सौ १०० पलकी एक तुला होती है ऐसा सर्वत्र निश्चय है ॥ १४ ॥

कलिंग परिभाषा ।

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्वा नराः कलौ । अतस्तु मात्रा तद्योगाः प्रोच्यते शास्त्रसंमताः ॥ १५ ॥ यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः । यवद्वयेन गुंजा स्यात् त्रिगुंजो वल्लमुच्यते ॥ १६ ॥ माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् । स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टक एव च ॥ १७॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः । चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ १८ ॥ चतुः पलैश्च कुडवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः । प्रमाणमेव सर्वत्र ज्ञेयं बुद्धिविशारदैः ॥ १९ ॥

कलियुगके मनुष्य जोकि मंदाग्नि छोटे और हीन सत्व होते हैं इससे उनके योग्य मात्र शास्त्र संमित कहते हैं ॥ १५ ॥ बारह सुपेद सरसोंका १ जौ होता है और दो जौकी १ चिरमठी तीन चिरमठी की १ वाल होती है ॥ १६ ॥ फिर ८ रति चिरमठीका १ माष (मासा) होता है कहीं ९ रतिका भी मासा होता है और ४ माषका १ शाण होता है जिसे निष्क

और टंक भी कहते हैं ॥ १७ ॥ छः माषका १ गद्याणक होता है और दस माष (मासे) का १ कर्ष होताहै और ४ कर्षका १ पल होता है इसमें पलमें १० शाण होते हैं (अर्थात् १० टंकका यहां पल होता है) ॥ १८ ॥ फिर चार पलका १ कुडव होताहै और अगाडी पूर्वोक्त हिसाबसे चौगुने २ प्रस्थादिक सब जानने ऐसे सर्वत्र बुद्धिमानोंने प्रमाण जाना है ॥ १९ ॥

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ।
राशिगोणीखारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणम् ॥ २० ॥

मागधी परिभाषामें यह हिसाब है कि माषसे लेकर खारी पर्यंत एकसे दूसरी चौगुनी समझे जैसे (४ माषका १ टंक) (४ टंकका १ अक्ष (कर्ष) (४ अक्षका १ बिल्व (पल) (४ पलका १ कुडव) (४ कुडवका १ प्रस्थ) (४ प्रस्थका १ आढक) (४ आढकका १ राशि) (४ राशिकी १ गोणी) (४ गोणीकी १ खारी) अस्तु पलसे अगाडी खारीतक कलिंगि मानमेंभी यही हिसाब जानना (और कलिंगी मानमें भी उसके १०० पलकी १ तुला जाने इति ॥ २० ॥

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्वेदावचारणीयं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम स्वेदको अवचारण (पसीना दिलाने) की विधिरूप चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वेदकर्मके ४ भेद ।

चतुर्विधःस्वेदस्तद्यथा तापस्वेद उष्मस्वेद उपनाहस्वेदो
द्रवस्वेद इति अत्र सर्वस्वेदविकल्पावरोधः ॥ १ ॥

स्वेद कर्म चार प्रकारका होता है जैसे १ तापस्वेद २ उष्मस्वेद ३ उपनाहस्वेद ४ द्रवस्वेद बस इनहीके अंतर्गत सब भांतिके स्वेदोंके भेद होते हैं ॥ १ ॥

तापस्वेद ।

तत्र तापस्वेदः पाणिकांस्यकंदकपालवालुकावस्त्रैःप्रयुज्यते
शयानस्य चांगतापो बहुशः खादिरांगारैरिति ॥ २ ॥

तापस्वेद वह है जिसमें हाथ या कांसी आदिधातु या कंद या ठेकरा या वालू रेता इन्हें गरम करके सोये हुये (लेटे हुये) मनुष्यके अंगको तपावे और प्रायः खैरके अंगारोंसे तपावे ॥ २ ॥

उष्मस्वेदस्तु कपालपाषाणेष्टकालोहपिंडानग्निवर्णानद्भिरासिंचेदम्लद्रव्यैर्वा तैरार्द्रालक्तकपरिवेष्टितमंगप्रदेशं स्वेदयेत् ॥ ३ ॥ मांसरसपयोदधिधान्याम्लवातहरपत्रभंगक्काथपूर्णां वा कुंभीमनुतप्तां प्रावृत्कोष्माणं गृह्णीयात् ॥ ४ ॥ पार्श्वच्छिद्रेण वा कुंभेनाधोमुखेन तस्य मुखमभिसंधाय तस्मिन् छिद्रे हस्तिशुंडाकारां नाडीं प्रणिधाय तं स्वेदयेत् ॥ ५ ॥

उष्म स्वेद वह है जिसमें ठेकरा पत्थर ईंट लोहका पिंडा इत्यादिको अग्निमें लाल करके उसे जलसे या अम्ल द्रव्यों (कांजी) आदिसे बुझाकर अथवा शरीरपर उन्हीं अम्लादिसे भिगोकर गीला कपडा रखकर (या उन इंट पत्थर आदिको गीले कपडेसे लपेटकर) स्वेद करावे (सेंके)॥ ३॥अथवा मांसका रस दूध दही कांजी वायुनाशक वृक्षोंके पत्ते या क्काथ घडेमें भरकर उसे गरम करके उसको कंबल आदिसे ढककर उसकी भाफ लेवे (भाफसे सेंके) ॥ ४ ॥ अथवा घडेके पेटमें छेद करके या घडेका मुख नीचा करके उसके मुहपर कपडा आदि ढककर छेदमें (या मुखमें) हाथीके सूंड जैसी नाडी लगाकर अंगको स्वेदन करे (भंफारा लेवे) (इसे नाडी स्वेद भी कहते हैं) ॥ ५ ॥

नाडी स्वेद ।

सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् । हस्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ ६ ॥ सुखा सर्वांगगा ह्येषा न च क्लिश्नाति मानवम् । व्यामार्द्धमात्रा त्रिर्वक्रा हस्तिहस्तसमाकृतिः । स्वेदनार्थे हिता नाडी कैलिंजी हस्तिशुंडिका ॥ ७ ॥

सुख पूर्वक बैठे हुये या लेटे हुये अच्छे प्रकार स्नेहाभ्यंग किये हुये भारी वस्त्रसे शरीर ढके हुये वायुके रोगीको हाथीके सूंड जैसी नाडी (नली) से स्वेद करावे ॥ ६ ॥ यह नाडी सुखसे सब अंगोंके पास पहुँच सकती है और मनुष्यको क्लेश नहीं होता (जिस प्रत्यंगको चाहो उसीके पास नलीकी भाफ सुखसे

(वा० १) स्वेदावचारणीयं स्वेदप्रयोजनं तापः तापनं उष्मावास्यः उपनाह्य इत्युपनाहः । संशोधनमित्यर्थः उपनाहः बंधनं वा । द्रवतीतिद्रवः कूपीहेतुकः स्वेदः अत्रांतर्भवति उष्मस्वेदे प्रस्तराश्मघननाडीकुंभीभूस्वेदाः षडप्यंतर्भवंति, द्रवस्वेदे परिषेकावगाहौ अंतर्भवतः (इति नि० सं०) ।

(वा० २) वाग्भटस्तापस्वेदमाह तापस्वेदः पाणिकांस्यफालवालुकावस्त्रघटकादिभिश्च साक्षादग्निनाच प्रयोक्तव्यः ।

(श्लो० ७) व्यामार्द्धमात्रा इति व्यामः बाह्वोः संप्रसारितयोरंतरम्, कैलिंजीति किलिंजः कटविशेषः कट साधनद्रव्याणि कुशकाशखर्जूरपत्रादीनिच इति (श. स्तो. डल्हनश्च) ।

पहुँच सकती है) स्वेद करानेकी नाडी आधे व्याम (आधे पुरुष) के जितनी लंबी और तीन खमवाली तथा हाथीके सूंड जैसी होनी चाहिये यह हाथीके सूंडके आकारकी नाडी किलंज (चटाई आदि) की बनाई जानी चाहिये स्वेदनके लिये यह श्रेष्ठ होती है ॥ ७ ॥

भूस्वेद ।

पुरुषायाममात्रां च भूमिमुत्कीर्य खादिरैः । काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीर धान्याम्लवारिभिः ॥ ८ ॥ पत्रभंगैरवच्छाद्य शयानं स्वेदयेत्ततः । पूर्ववत्स्वेदयेद्दग्ध्वा भस्मापोह्यापि वा शिलाम् ॥ ९ ॥

मनुष्यकी लंबाइ चौडाईके समान पृथ्वीको अच्छी चौकोन खोदकर उसमें खैरकी लकडी जलावे (फिर उस अग्निको निकाल) दूध या धान्याम्ल (कांजी) जल छिडककर ॥ ८ ॥ (वायु नाशक एरंडादिके) पत्ते बिछाकर उस पर रोगीको लिटाकर वस्त्र उढा दे और स्वेदन करावे अथवा शिलाको इसी प्रकार गरम करके भस्मको उठाकर छिडककर पूर्वोक्त रीतिसे स्वेद करावे ॥ ९ ॥

कुटीस्वेद और प्रस्तरस्वेद ।

पूर्ववत् कुटीं वा चतुर्द्वारां कृत्वा तस्यामुपविष्टस्यांतश्चतुर्द्वारेंगारानुपसंधाय तं स्वेदयेत् । धान्यानि वा सम्यगुपस्वेद्यास्तीर्य किलिंजेऽन्यस्मिन् वा तत्प्रतिरूपके शयानं प्रावृत्य स्वेदयेदेवं पांशुगोशकृत्तुषबुसपलालोश्मभिः स्वेदयेत् ॥ १० ॥

पूर्वोक्त मनुष्यकी लंबाई चौडाईके समान चार द्वारवाली कुटी बनावे उसमें रोगीको बिठा (या लिटा) कर चारों द्वारोंपर कोयले जलते हुये रख दे इस भाँत स्वेद करावे । अथवा धान्यको ठीक उबाल बाकली बनावे फिर उन्हें गरम २ पृथिवी पर बिछा दे उसपर चटाई या और कोई ऐसी चीज बिछा कर उसपर रोगीको सुलाकर कपडा उढा देवे इसी भांति रेत गोबर तुष भुस पलाल (शूक धान्य) आदिको गरम करके स्वेद करावे (यह प्रस्तरस्वेद है) ॥१०॥

ये सब कुंभीस्वेद नाडीस्वेद कुटीस्वेद और प्रस्तारस्वेद आदि उष्मस्वेदहीके अंतर्गत हैं ॥

उपनाह स्वेद ।

उपनाहस्वेदस्तु वातहरमूलकल्कैरम्लपिष्टैर्लवणप्रगाढैः सुस्निग्धैः सुखोष्णैः

(वा०१०) पलालः शूकधान्ये धान्यकांडे चेति (शब्दस्तोमः) ।

प्रदिह्य स्वेदयेत् । एवं काकोल्यादिभिः सुरसादिभिस्तिलातसीसर्षपकल्कैः कृशरापायसोत्कारिकाभिर्वेशवारैः शाल्वणैर्वा तनुवस्त्रावनद्धैः स्वेदयेत् ॥ ११ ॥

उपनाह स्वेद उसे कहते हैं कि वायुनाशक जड आदिको (कांजी आदि)अम्लरससे पीसकर लवण मिलाकर चिकनाई डालकर गरम गरम गाढा लेप करके स्वेद करावे । इसी भांति काकोल्यादिक और सुरसादिक गण तिल अलसी सरसों इनको पीसकर कृशरा (खिचडी) खीर या उत्कारिका (पुलटस तथा वेसवार और सालन बनाकर बारीक कपडेपर रखकर बांध दे और उससे स्वेद करावे ॥ ११ ॥

द्रवस्वेद ।

द्रवस्वेदस्तु वातहरद्रव्यक्वाथपूर्णे कोष्णकटाहे द्रोण्यां वावगाह्य स्वेदयेत् एवं पयोमांसरसयूषतैलधान्याम्लघृतवसामूत्रेष्ववगाहेत सुखोष्णैः कषायैः परिषिंचेदिति ॥ १२ ॥

द्रवस्वेद उसे कहते हैं कि वायुनाशक द्रव्योंके गरम क्वाथसे भरे हुऐ कडाह या द्रोणी (बालटी) में बिठाकर स्नान कराकर स्वेद करावे । इसी प्रकार दूध मांसरस यूष तैल काँजी घृत चरबी और गोमूत्रादिसे कडाह भरकर उसमें बिठाकर स्वेद करावे अथवा निवाये (थोडेगरम) क्वाथ आदि शरीरपर सींचे तरडे दे दे कर डाले ॥ १२ ॥

स्वेदका नियोजन और गुण ।

तत्र तापोष्मस्वेदौ विशेषतः श्लेष्मघ्नौ उपनाहस्वेदो वातघ्नः अन्यतरस्मिन् पित्तसंसृष्टे द्रवस्वेद इति । कफमेदोन्विते वायौ निवातातपगुरुप्रावरणनियुद्धाध्वव्यायामभारहरणामर्षैः स्वेदमुत्पादयेदिति ॥ १३ ॥

इनमेंसे तापस्वेद और उष्मस्वेद ये दोनों विशेषकर कफनाशक हैं और उपनाह स्वेद वायुनाशक है कफ पित्त मिले वायुमें द्रव स्वेद ठीक है । और कफ मेदसे मिले हुए वायुमें निर्वातस्थानमें भारी वस्त्र उढाकर या युद्ध कराके मार्ग चलाके परिश्रम कराकर बोझा उठवाकर तथा क्रोध कराकर पसीना दिलवावे ॥ १३ ॥

स्वेदके पुनः दो भेद ।

भवंति चात्र । चतुर्विधो योऽभिहितो द्विधा स्वेदः प्रयुज्यते ।
सर्वस्मिन्नेव देहे तु देहस्यावयवे तथा ॥ १४ ॥

यहां श्लोक हैं कि । चार प्रकारका जो स्वेद वर्णन किया वह सब दो प्रकारसे उपयोग किया जासकता है १ समस्त शरीरमें स्वेद कराना दूसरे शरीरके किसी अंग प्रत्यंगमें स्वेद कराना ॥ १४ ॥

पूर्वपश्चात् और मध्य स्वेद्य ।

येषां नस्यं विधातव्यं बस्तिश्चैवहि देहिनाम् । शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मताः ॥ १५ ॥ पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भानुपद्रवा । सम्यक्प्रजाता काले या पश्चात्स्वेद्या विजानता ॥ १६ ॥ स्वेद्यं पूर्वं च पश्चाच्च भगंदर्यर्शसस्तथा । अश्मर्या चातुरो जंतुः शेषान् शास्त्रे प्रचक्ष्महे १७

जिनको नस्य दिलाना हो अथवा बस्ति कर्म करना हो अथवा वमन विरेचन देकर शोधन करना हो उनको इन कर्मोंसे पहले स्वेद कराना चाहिये ॥ १५ ॥ जिनका शल्य निकाला गया हो जिस स्त्रीके मूढगर्भ हो पर कोई उपद्रव न हो तथा समयपर जिस स्त्रीके अच्छा बालक जन्मा हो वे इनसे पीछे स्वेद कराने योग्य हैं ॥ १६ ॥ भगंदर अर्श और पथरीके रोगीको शस्त्रसे निकालनेके पूर्व तथा पश्चात् स्वेद कराना ठीक है इनके सिवाय अन्य रोगोंमें कब स्वेद कराना यह शास्त्रमें उन रोगोंके विषयमें कहेंगे ॥ १७ ॥

विना स्नेहनके स्वेदका निषेध ।

नानभ्यक्ते नापि चास्निग्धदेहे स्वेदो योज्यः स्वेदविद्भिः कथंचित् । दृष्टं लोके काष्ठमस्निग्धमाशु गच्छेद्भंगं स्वेदयोगैर्गृहीतम् ॥ १८ ॥

विना स्नेहाभ्यंग किये तथा रूक्ष शरीरमें स्वेद कर्म जाननेवाला वैद्य कभी स्वेद कर्म न करावे क्योंकि लोकमें देखा जाताहै कि विना चिकना किये काष्ठ भी स्वेद (तपावकर मोडने) से टूट जाता है ॥ १८ ॥

स्वेद (पसीना दिलाने) के गुण ।

अग्नेर्दीप्तिं मार्दवं त्वक्प्रसादं भक्तश्रद्धां स्रोतसां निर्मलत्वम् । कुर्यात्स्वेदो हंति निद्रां सतंद्रां संधीस्तब्धांश्चेष्टयेदाशु युक्तः ॥ १९ ॥ स्नेहक्लिन्ना धातुसंस्थाश्च दोषाः स्वस्थानस्था ये च मार्गेषु लीनाः । सम्यक्स्वेदैर्योजितैस्ते द्रवत्वं प्राप्ताः कोष्ठं यांति देहादशेषात् ॥ २० ॥

स्वेदका उपयोग (पसीनादिलाना) जठराग्निको दीपन करता है शरीरको नरम और त्वचाको प्रसन्न करता है भोजनमें रुचि और इंद्रियोंकी निर्मलता करता है

निद्रा और तंद्राको नष्ट करता है (अति निद्राको कम करता है) और रुकी हुई संधियोंको खोलता हैं ॥ १९ ॥ स्नेह करके क्लेदित हुये (वातादि दोष) जो धातुओंमें स्थित होते हैं तथा जो अपने स्थानसे अध ऊर्द्ध तिर्यग्गामी होकर मार्गोंमें लीन होगये हैं वे यथा योग्य स्वेद कर्मके योगसे द्रवताको प्राप्त होकर सब शरीरसे कोष्ठ (कोठे) में आजाते हैं (और फिर वमन रेचनादि द्वारा निकल जाते हैं)॥२०॥

यथोचित स्वेदके लक्षण ।

स्वेदास्रावो व्याधिहानिर्लघुत्वं शीतार्थित्वं मार्दवं वातुरस्य । सम्यक्स्विन्ने लक्षणं प्राहुरेतन्मिथ्यास्विन्ने व्यत्ययेनैतदेव ॥ २१ ॥

जब पसीना आना बंध होजावे व्याधि शांत होजावे शरीरमें हलका पन हो शीतकी वांछा हो रोगीका शरीर कोमल हो तो जानना चाहिये कि ठीक स्वेद हुवा और जो इनके विपरीत लक्षण हों तो स्वेदमें अयोग्यता जाने ॥ २१ ॥

अति स्वेदके उपद्रव ।

स्विन्नेत्यर्थं संधिपीडाविदाहः स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपः । मूर्च्छा भ्रांतिर्दाहतृष्णे क्लमश्च कुर्यात्तूर्णं तत्र शीतं विधानम् ॥ २२ ॥

अति स्वेद होनेसे संधियोंमें पीडा होती है (और शरीर तथा हृदयमें) दाह होता है फोडे उत्पन्न होते हैं तथा पित्तरक्त कुपित होते हैं मूर्च्छा भ्रम दाह तृषा और थकाव होती है यदि ऐसे हो तो शीघ्र ही इसमें ठंढी क्रिया करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्वेदके अयोग्य रोगी ।

पांडुर्मेही पित्तरक्ती क्षयार्तः क्षामोऽजीर्णी चोदरार्तो विषार्तः । तृट्छर्द्यार्तो गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्या यश्च मर्त्योऽतिसारी ॥ २३ ॥ स्वेदादेषां यांति देहा विनाशं चासाध्यत्वं यांति चैषां विकाराः ॥ २४ ॥

पांडुरोगी प्रमेहवाला पित्तरक्तका रोगी क्षयसे पीडित दुर्बल अजीर्णका रोगी उदररोगों (जलोदर आदि) से पीडित जिसने विष खायाहो या विष चढाहो तृषा युक्त छर्दिका रोगी गर्भवती स्त्री तथा जिसने मद्य पीया हो (या मदात्ययी) तथा अतिसारका रोगी इतने मनुष्योंको जानकार वैद्य स्वेद कभी नहीं करावे ॥ २३ ॥ क्योंकि स्वेद करानेसे इनका देह नष्ट होजाता है तथा इनके विकार भी असाध्य होजाते हैं ॥ २४ ॥

एतेषां स्वेदसाध्या ये व्याधयस्तेषु बुद्धिमान् ।
मृदून्स्वेदान्प्रयुंजीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ २५ ॥

उपरोक्त मनुष्योंके यदि स्वेदसाध्य व्याधि हो तो बुद्धिमान् वैद्य इनको मृदु (हलका) स्वेद करावे तथा हृदय अंडकोश और नेत्रोंमें स्वेद कराना हो तो यहां भी हलकाही स्वेद करावे ॥ २५ ॥

सर्वान्स्वेदान्निवाते च जीर्णान्नस्यावचारयेत्।स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतै-राच्छाद्य चक्षुषी ॥२६॥ स्विद्यमानस्य च मुहुर्हृदयं शीतलैः स्पृशेत् । सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नातमुष्णाम्बुभिः शनैः ॥ २७ ॥ स्वभ्यक्तं प्रावृतांगं च निवातशरणस्थितम् । भोजयेदनभिष्यंदि सर्वं वाऽऽचारमा-दिशेत् ॥ २८ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जिसे स्वेद कराना हो उसे पहला भोजन पचे पीछे शरीर पर तैलादि लगाकर निर्वात स्थानमें बिठा या लिटा कर स्वेद करावे और नेत्रोंपर ठंढी वस्तु ढाक देवे ॥ २६ ॥ स्वेद होते समय बार बार रोगीके हृदयको शीतल वस्तुवोंका स्पर्श करावे और जब ठीक२ स्वेद हो चुके तब धीरे धीरे मल२कर गरम जलसे स्नान करावे२७ फिर यथोचित शरीरको स्निग्ध करके (थोडा तैलादिक लगाकर वस्त्रसे खूब साफ करके) फिर शरीरको वस्त्रसे ढककर निर्वात स्थानमें रहे और जो अभिष्यं-दी नहो ऐसा भोजन करे इसके सिवाय और भी यथा योग्य आचार करावे ॥२८॥

परिशिष्ट (वृद्धवाग्भटात्)

किन २ रोगोंमें स्वेद करना उचितहै ।

श्वासकासप्रतिश्यायहिध्माध्मानविबंधिषु । स्वरभेदानिलव्याधिपक्षाघाता पतानके ॥ १ ॥ अंगमर्दकटीपार्श्वपृष्ठिकुक्षिहनुग्रहे । महत्वे मुष्कयोः खल्यामायामे वातकंटके ॥ २ ॥ मूत्रकृच्छ्रार्बुदग्रंथिशुक्राघाताढ्यमारुते । वेपथुश्वयथुस्वापस्तंभजृंभांगगौरवे ॥ ३ ॥ कर्णमन्याशिरःकोष्ठजंघापा-दोरुरुक्षुच । स्वेदं यथायथं कुर्यात्तदौषधविभागतः ॥ ४ ॥

निम्न लिखित रोगवालोंको स्वेद कराना उचित है श्वास खांसी जुखाम हिचकी पेट अफरना बंधा पडना (दस्त पेशाब बंदहोना) स्वरभेद वातव्याधि पक्षाघात और अपतानक वायु ॥ १ ॥ अंगडाई जादे आना कमर पसली पीठ कूख और ठोडीके अकडाव फोते बढना खल्ली नामक वायुरोग बाह्यायाम और अंतरायाम

(श्लो० २७) शीतलैः कमलपत्रादिभिः, अस्यश्लोकस्योत्तरार्द्धं अग्रिमेण सहान्वेतव्यम् ।

तथा वात कंटक रोग ॥२॥मूत्रकृच्छ्र अर्बुद (रसोली) गांठ शुक्र रुकना आढ्यवायु कंप सोथ त्वचा सुन्न पडना कोई अंग रह जाना जँभाई जादा आना अंग भारी होना ॥ ३ ॥ कानके रोग मन्यास्तंभ शिरके रोग कोठेके रोग जंघा पाँव और साथलके रोग इन सबमें यथा योग्य उनके नाशक औषधादिसे तथा जैसा स्वेद जहाँ चाहिये वैसा करे (जैसे प्रतिश्यायमें भारीकपडा ओढना कमर पीठके दर्दमें सेकना विबंधमें द्रवस्वेद तथा ग्रंथि आदिपर उपनाह स्वेद कराना कोई गरम पुलटस आदि बांधना इत्यादि जहां जैसा उचितहो वैसा वहां उपयोग करे) ॥ ४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने द्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनसाध्योपद्रवचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम वमन विरेचन साध्य रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं (वमन और विरेचनकी विधि वर्णन करतेहैं) ॥

दोषाः क्षीणा बृंहयितव्याः कुपिताः प्रशमयितव्या वृद्धा निर्हर्तव्याः समाः परिपाल्या इतिसिद्धांतः । प्राधान्येन वमनविरेचने वर्तते निर्हरणे दोषाणां तस्मात्तयोर्विधानमुच्यमानमुपधारय ॥ १ ॥

क्षीण (घटे हुये) दोषोंको बढाना योग्य है और कुपित हुओंको शांत करना और जो बहुतही बढ गये हों उन्हें निकाल देना तथा जो समान (ठीक) हो उनकी रक्षा करना (जैसे के जैसे ही रखना यही सिद्धांत है । अब निर्हरण (शोधन) अर्थात् दोषोंके निकालने प्रधानतासे वमन और विरेचन ये दो मुख्य हैं इस कारण इनका विधान जो वर्णन होता है उसे श्रवण करो और याद रक्खो ॥ १ ॥

तथातुरं स्निग्धं स्विन्नमभिष्यंदिभिराहारैरनवबद्धदोषमवलोक्य श्वो वमनं पाययितास्मीति संभोजयेत् तीक्ष्णाग्निं बलवंतं बहुदोषं महाव्याधिपरीतं वमनसात्म्यं च ॥ २ ॥

जब रोगीको बलवान् और तीक्ष्णाग्नि बहुत दोषोंसे व्याप्त महा व्याधियोंसे पीडित और वमन सानुकूल देखे तब स्नेहन स्वेदन कराकर ऐसा जाने कि कल इसे वमन करावेंगे तब उसे रोगीको अभिष्यंदि आहार भोजन करावे ॥ २ ॥

(गद्य० १) दोषाणां निर्हरणे पंचकर्मणि वमनं विरेचनंच प्रधानं पंचकर्माणितु " प्रथमं वमनं पश्चात् विरेकश्चानुवासनम् । एतानि पंच कर्माणि निरूहोनावनं तथा । एतेषांकालः । शरत्काले वसंतेच प्रावृट्कालेच देहिनाम् । वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलोभिषक् ॥ २ ॥ एषकालनियमस्तु स्वस्थानामल्पदोषाणांवा दारुण व्याधिनिपीडितस्य बहुदोषस्य वा न कालनियम इति राद्धांतः ।

भवति चात्र ॥ पेशलैर्विविधैरन्नैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनः ।
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

यहां श्लोक है कि ॥ प्रथम नाना प्रकारके पतले भोजन कराके दोषोंको उखाडकर पतले करके स्नेहन स्वेदन जिसे पहले दे चुके हो उसे वमन कारक औषध ठीक प्रवर्त होती है (खूब वमन लाती है) ॥ ३ ॥

अथापरेद्युः पूर्वाह्णे साधारणे काले वमनद्रव्यकषायकल्कचूर्णस्नेहाना-मन्यतमस्य मात्रां पाययित्वा वामयेत् । यथायोगं कोष्ठविशेषमवेक्ष्या-सात्म्यबीभत्सदुर्गंधदुर्दर्शनानि च वमनानि विदध्यात् । अतो विपरीतानि विरेचनानि ॥ ४ ॥

फिर दूसरे दिन साधारण समय (शरद्वसंतऋतु) में पहर दिन चढे वमन कारक औषधोंके क्वाथ या कल्क या चूर्ण या घृत तैलादिकमेंसे किसीकी मात्रा पिला-कर वमन करावे यथायोग कोठेको देखकर कि मृदु है या करडा फिर ग्लानि कारक दुर्गन्धित और जो बुरे दीखें ऐसे औषधादि वमनके लिये युक्त करने चाहिये । और विरेचनके लिये इनके विपरीत सुहावने सुगंधित और अच्छे औषधादि युक्त करे ॥ ४ ॥

तत्र सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं वा वमनसाध्येषु विकारेषु क्षीरद-धितक्रयवागूनामन्यतममाकंठं पाययेत् । पीतौषधं च पाणिभिरग्नितप्तैः प्रतप्यमानं मुहूर्तमुपेक्षेत ॥ ५ ॥

यदि सुकुमार हलके नाजुक मनुष्यको दुबले बालक वृद्ध डरपोंक इनको ऐसे रोग हों जो वमनसेही साध्य होसकें तो इन्हें दूध दही छाँछ यवागू इनमेंसे कोईसा कंठतक पेट भर कर पिला दे फिर औषध पिला कर अग्निसे हाथ तपाकर जरा सेके और दो घडी वमनका राह देखे (इसमें कोई तो क्षीरादिमें वमनकी औषध मिलाकर पिलाना मानते हैं और कई पृथक्) ॥ ५ ॥

तस्य च स्वेदप्रादुर्भावेन शिथिलतामापन्नं स्वेभ्यः स्थानेभ्यः प्रचलितं कुक्षिमनुसृतं जानीयात्ततः प्रवृत्तहल्लासं ज्ञात्वा जानुमात्रासनोपविष्टमास्य ललाटे पृष्ठे पार्श्वयोः कंठे च पाणिभिः सुपरिगृहीतमंगुलीगंधर्वह

(श्लो० ३) पेशलैः कोमलैः द्रवप्रायैरित्यर्थः ।
(ग० ४) साधारणे काले नातिशीतोष्णयुक्तेप्रावृट्शरद्वसंते इति फलितोर्थः ।
(ग० ६) गंधर्वहस्तः एरंडः ।

स्तोत्पलनालानामन्यतमेन कंठमभिस्पृशंतं वामयेत्तावद्यावत्सम्यग्वांत-लिंगानीति ॥ ६ ॥

जब उसे पसीना आनेसे शिथलता प्राप्त होने लगे और कुक्षि अपने स्थानसे उकसी हुई और उभरती हुई जानी जावे और उबकाई आती हुई जाने तब रोगीको घुटने मारकर बिठा देवे और दूसरा समझदार मनुष्य उसके शिर पीठ तथा पसवाडे हाथोंसे थाम लेवे और अंगुली या अरंडके पत्ते की डंडी या कमलकी नाली इनमेंसे किसीसे कंठमें स्पर्श (गुदगुदी) कर करके वमन कराते रहें जब-तक ठीक २ वमन होचुकनेके लक्षण जाने जावें तबतक करते ही रहे ॥ ६ ॥

हीन अधिक और ठीक वमनके लक्षण।

भवतश्चात्र ॥ कफप्रसेकं हृदयाविशुद्धिं कंडूं च दुश्छर्दितलिंगमाहुः । पित्तातियोगं च विसंज्ञितां च हृत्कंठपीडामपि चाऽतिवांते ॥ ७ ॥ पित्ते कफस्यानु सुखं प्रवृत्ते शुद्धेषु हृत्कंठशिरःसु चापि । लघौ च देहे कफ-संस्रवे च स्थिते सुवांतं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ ८ ॥

यहांपर दो श्लोक हैं कि ॥ मुखसे बार बार कफ गिरे हृदय शुद्ध न हो अर्थात भारी रहे और कंठनलकामें खाजसी चले ये दुर्वमन (हीन वमन) के लक्षण कहे हैं ॥ तथा पित्तका अधिक योग हो विसंज्ञता (मूर्च्छा) हो जावे हृदय और कंठमें पीडा होवे ये अति वमनके लक्षण है ॥ ७ ॥ और ठीक वमन हुएके ये लक्षण हैं कि कफके पीछे पित्त गिरे हृदय कंठ और शिर शुद्ध होजावे शरीर हलका होजावे और कफ आना बंद होजावे जो जाने कि शुद्ध वमन होगया ॥ ८ ॥

सम्यग्वांतको धूमपान।

सम्यग्वांतं चैनमभिसमीक्ष्य स्नेहनविरेचनशमनानां धूमानाम-न्यतमं सामर्थ्यतः पाययित्वाऽऽचारिकमादिशेत् ॥ ९ ॥

जब ठीक वमन हुवा जाने तब स्नेहन औषधोंका तथा विरेचन द्रव्योंका तथा शमन द्रव्योंका यथायोग्य शक्तिके अनुसार धूमपान कराकर आचार (उचित आहार विहार) का उपदेश करे ॥ ९ ॥

वमनके पीछे आहार।

ततोपराह्णे शुचिशुद्धदेहमुष्णाभिरद्भिः परिसिक्तगात्रम् । कुलत्थमुद्गाढकिजांगलानां यूषै रसैर्वाप्युपभोजयेत्तु ॥ १० ॥

(श्लो० ७) दुश्छर्दनं हीनवमनम् ।

(श्लो० ८) सुवांतं सम्यग्वांतम् ।

जब वमन ठीक हो चुके और देह शुद्ध होजावे तब दो पहर पीछे गरम जलसे हाथ मुँह और शरीर धुलवा कर कुलथी, मूंग, अरहडका यूष अथवा जंगली जीवों-के मांसका रस खानेको दे ॥ १० ॥

वमन करनेके गुण ।

कासोपलेपस्वरभेदनिद्रातंद्रास्यदौर्गंध्यविषोपसर्गाः । कफप्रसेकग्रहणीवि-कारा न संति जंतोर्वमतः कदाचित् ॥ ११ ॥ छिन्ने तरौ पुष्पफलप्ररोहा यथा विनाशं सहसा व्रजन्ति । तथा हृते श्लेष्मणि शोधनेन तज्जा विकाराः प्रशमं प्रयांति ॥ १२ ॥

खांसी कंठमें कफका लिहसना स्वरभेद (अवाज बैठना) निद्रा तंद्रा मुखकी दुर्गंध और विषका संसर्ग मुखसे कफ (लार) वहना ग्रहणीके विकार वमन करनेवाले मनुष्यके तात्काल नष्ट होजाते हैं ॥ ११ ॥ जैसे वृक्षके काटनेसे उसके फूल फल टहनी सब शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाते हैं (सूख जाते हैं) इसी प्रकार शोधन द्वारा कफ दूर होजानेसे उसके समस्त विकार शांत होजाते हैं ॥ १२ ॥

वमनके अयोग्य मनुष्य ।

न वामयेत्तैमिरिकोर्द्ध्ववातः गुल्मोदरप्लीहकृमिश्रमार्त्तान् । स्थूलक्षतक्षी-णकृशातिवृद्धमूत्रातुरान्केवलवातरोगान् ॥ १३ ॥ स्वरोपघाताध्ययन प्रसक्तदुश्छर्दिदुःकोष्ठतृडार्तबालान् । उर्द्ध्वास्रपित्तिक्षुधितातिरूक्षगर्भि-ण्युदावर्तिनिरूहितांश्च ॥ १४ ॥

इतने प्रकारके मनुष्योंको वमन कराना योग्य नहीं तिमिर, उर्ध्ववात, गुल्म, प्लीहा, कृमि इन रोगोंवाले तथा श्रमसे पीडित अतिस्थूल उरक्षतवाले क्षीण, दुर्बल, अति वृद्ध और मूत्ररोगवाले १३ जिन्हें केवल वायुके रोग हों ॥ १३ ॥ जिनका स्वर नष्ट हो गया हो जो पढते (घोखते) हों जिन्हें दुःखसे वमन होता हो जिनका कोठा कठोर हो जिन्हें तृषा अधिक हो तथा बालक जिन्हें ऊर्ध्वगत रक्त पित्त हो क्षुधा युक्त अतिरुक्ष गर्भिणी स्त्री जिनको उदावर्त हो तथा जिन्हें निरूहण बस्ति किया हो (इनको कभी वमन न करावे) ॥ १४ ॥

अवम्यवमनाद्रोगाः कृच्छ्रतां यांति देहिनाम् । असाध्यतां वा गच्छंति .

(श्लो० ११) ग्रहणीविकारा इत्यत्र ग्रहणीप्रदोषा इति वा पाठः । न संति जंतोर्वमतः कदाचित् इत्यत्र नश्यंति जंतोर्वमतः कदाचित् इतिवा पाठः ।

(श्लो० १४) एते श्लोकद्वयपठिता अवाम्याः स्मृताः एतयोः श्लोकयोर्मिलित्वान्वयः ।

नैते वाम्यास्ततः स्मृताः ॥ १५ ॥ एतेप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः । अतीव चोल्बणकफास्ते च स्युर्मधुकांबुना ॥ १६ ॥

जो वमनके योग्य नहीं है उनको वमन करानेसे उन मनुष्योंके रोग कष्ट साध्य हो जाते हैं अथवा असाध्य हो जाते हैं इस कारण ये उपरोक्त मनुष्य कभी वमन कराने नहीं चाहियें ॥ १५ ॥ यदि ये मनुष्य अजीर्णसे पीडित अथवा विषसे पीडित हो जावें अथवा अति कफ उल्बण हो जावे जिससे वमन कराना आवश्यक हो तो इन्हें मुलेटीके क्वाथसे (हलके हलके) वमन करावे ॥ १६ ॥

वमनके योग्य।

वाम्यास्तु विषशोषस्तन्यदोषविषममंदाग्न्युन्मादापस्मारश्लीपदार्बुदविदारिकामेदोमेहगरज्वरारुच्यपच्यामातीसारहृद्रोगचित्तविभ्रमविसर्पविद्रध्यजीर्णमुखप्रसेकहृल्लासश्वासकासपीनसपूतिनासकंठोष्ठवक्त्रपाककर्णस्रावाधिजिह्वोपजिह्विकागलशुंडिकाधःशोणितपित्तिनः कफस्थानजेषु विकारेष्वन्येषु कफव्याधिपरीतेष्विति ॥ १७ ॥

निम्न लिखित इतने मनुष्य वमन कराने योग्य हैं जैसे विष खाये हुए (तात्काल) शोष रोग (के आरंभ) में स्त्रीके दुग्धमें दोष हो विषमाग्नि तथा मंदाग्नि हो उन्माद और मृगीका रोगी जिनको श्लीपद रसोली विदारिका नाम दारुण फुंसी मेदरोग प्रमेह गर (कृत्रिम विष) ज्वर अरुचि अपची आमातिसार हृद्रोग चित्तभ्रम विसर्प विद्रधि अजीर्ण मुंहसे लारवहना उबकाई श्वास खाँसी पीनस (नाकमें दुर्गंध आना) कंठ होठ मुह पकना कान वहना अधिजिह्व और उपजिह्व रोग गलशुंडी और अधोगतरक्तपित्त ये रोग हों तथा कफस्थानके अन्य रोगोंमें तथा कफकी व्याधियोंमें वमन कराना उचित है ॥ १७ ॥

विरेचनकी विधि ।

विरेचनमपि स्निग्धस्विन्नाय वांताय च देयं अथातुर श्वा विरेचनं पाययितास्मीति लघु भोजयेत् फलाम्लमुष्णोदकं चैनमनुपाययेत् अपरेहनि विगतश्लेष्माणमातुरोपक्रमणीयादवेक्ष्यातुरमथास्मै औषधमात्रां पातुं प्रयच्छेत ॥ १८ ॥

(वा० १८) स्निग्धस्विन्नाय वांताय विरेचनं देयमित्यत्रावधिः । तथाहि चरकः 'एकाहात्परतः स्नेहाद् मुक्त्वा प्रच्छर्दनं पिबेत् । त्रिरात्रोपरतस्तद्वत् स्नेहात् प्रस्कंदनं पिबेत्' इति (नि० सं०) प्रस्कंदनं रेचनं इति (श० स्तो०) ।

विरेचन भी स्नेहन स्वेदन कराकर तथा वमन कराकर देना चाहिये जब ऐसा जाने कि अब कल अमुक रोगीको विरेचन देना है उसे रातको लघु (नरम) भोजन करावे और फलोंकी खटाई गरम पानी ऊपरसे पिलादे फिर दूसरे दिन जाने कि कफ नष्ट होगया (अथवा कोठेमें कफ प्राप्त होगया अर्थात् बलगम फूल आया) तब आतुरोपक्रमणीय अध्यायके अनुसार देखकर रोगीको विरेचनीय औषधकी मात्रा पिलानेका यत्न करे ॥ १८ ॥

तत्र मृदुः क्रूरो मध्य इति त्रिविधः कोष्ठो भवति । तत्र बहुपित्तो मृदुः स दुग्धेनापि विरिच्यते । बहुवातश्लेष्मा क्रूरः स दुर्विरेच्यः समदोषो मध्यमः स साधारण इति । तत्र मृदौ मात्रा मृद्वी तीक्ष्णा क्रूरे मध्ये मध्या कर्तव्येति पीतौषधश्च तन्मनाः शय्याभ्यासे विरिच्यते ॥ १९ ॥

कोठा मनुष्योंके तीन प्रकारका होता है १ मृदु २ क्रूर ३ मध्य इनमेंसे जिसमें पित्तकी अधिकता होती है वह मृदु (मुलायम) होता है जिसमें दूध (द्राक्षा आदि से विरेचन होजाता है । और जिसमें वायु कफकी अधिकता होती है वह क्रूर (करडा) तथा दुर्विरेच्य है अर्थात् कठिनतासे विरेचन होता है (दंती फलादि तीक्ष्ण औषधोंसे विरेचन होता है) तथा जिसमें समान दोष होतेहैं सो मध्यम है और साधारण है । मृदु कोठेवालेको मृद्वी (हलकी और मुलायम) मात्रा देनी चाहिये तथा क्रूर कोष्ठको तीक्ष्ण (तेज) मात्रा देवे और मध्य कोष्ठको साधारण मात्रा दे । औषध पीकर उसी तरफ मन लगाये रहे और शय्याके पासही दस्त जावे ॥ १९ ॥

(वक्तव्य) यहांपर "बहुवातश्लेष्मा क्रूरकोष्ठः सदुर्विरेच्यः" ऐसा लिखा है परंतु तंत्रांतरोंमें ऐसे लिखा है देखो भाव प्रकाश " बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः । बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यःस कथ्यते" अर्थात् बहुत पित्तवाला मृदुकोष्ठ होता है और बहुत कफवाला मध्यकोष्ठ तथा बहुत वायुवाला क्रूरकोष्ट और दुर्विरेच्य है और वृद्ध वाग्भट ऐसे लिखते हैं कि बहुत पित्तवाला मृदु तथा बहुत वायुवाला क्रूर और बहुत कफवाला तथा समान दोषोंवाला मध्यम देखो टिप्पणी ॥

विरेचनं पीतवांस्तु न वेगान्धारयेद्बुधः ।
निवातशायी शीतांबु न स्पृशेन्न प्रवाहयेत् ॥ २० ॥

(वा० १९) वृद्धवाग्भटे कोष्ठस्तु त्रिविधः मृदुः क्रूरो मध्यश्च तत्र बहुपित्तो मृदुः स विरिच्यते क्षीरेक्षुरसाम्लतक्रमस्तुगुडकृशरासर्पिर्नवमद्योष्णोदकपीलूद्राक्षादिभिः । बहुवातः क्रूरः सदुर्विरेच्यस्त्रिफलातिल्वकत्रिवृन्नीलिनीफलादिभिरपि बहुश्लेष्मा समदोषश्च मध्यः स साधारणः ॥

(श्लो० २०) शीतांबु नस्पृशेदिति दंतीवर्ज्यविषयः अभयामोदकादिदंतीविरेचनेषुतु शीतंचानुपिबेज्जलं शार्ङ्गधरभावामिश्रादिभिर्लिखितं अनुभूतं चेति ।

विरेचनकी औषध पीकर दस्तोंके वेगको न रोके निर्वात स्थानमें लेटे (ऊंचा सरहाने तकिया लगाकर उसके सहारे बैठे) तथा ठंढा पानी या ठंढी वस्तुवोंका स्पर्श नहीं करे और जादा जोर लगाकर किनछें भी नहीं ॥ २० ॥

यथा च वमने प्रसेकौषधकफपित्तानिलाः क्रमेण गच्छंति ।
एवं विरेचने मूत्रपुरीषपित्त औषधकफाः इति ॥ २१ ॥

जैसे वमनमें पहले लार फिर औषध फिर कफ फिर पित्त सबके पीछे वायु इस क्रमसे निकलते हैं इसी प्रकार विरेचनमें पहले मूत्र मल फिर पित्त फिर औषध फिर कफ ऐसे निकलते हैं ॥ २१ ॥

दुर्विरिक्त अति विरिक्त और सम्यग्विरिक्तके लक्षण ।

स्याद्दुर्विरिक्ते कफपित्तकोपो दाहोऽरुचिर्गौरवमग्निसादः । हृत्कुक्ष्यशुद्धिः परिदाहकंडूविण्मूत्रसंगाश्च न सद्विरेके ॥ २२ ॥ मूर्च्छागुदभ्रंशक-फातियोगाः शूलोद्गमश्चातिविरिक्तलिंगम् ॥ २३ ॥ गतेषु दोषेषु कफा-न्वितेषु नाभ्यां लघुत्वे मनसश्च तुष्टौ । गतेऽनिले चाप्यनुलोमभावं सम्य-ग्विरिक्तं मनुजं व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

जब विरेचन (जुलाब) बिगड जावे (ठीक ठीक दस्त न हों) तो ये बातें होती हैं कि कफ और पित्तका कोप दाह अरुचि भारीपन अग्निमें मंदता हृदय और कूखोंमें अशुद्धि जलन खाज और मल मूत्रका रुकना और जब ठीक विरेचन होजाता है तब इनमेंसे कोई विकार भी नहीं होता ॥ २२ ॥ और जब अधिक विरेचन हो जाता है (अनुमानसे जादा दस्त होते हैं) तो मूर्च्छा काँच निकल आना कफ (और पित्त) अति निकलना शूल होना ये लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥ और विरेचन ठीक और उत्तम होवे तो कफके संग मिले सब दोष निकल जावें नाभिके समीपमें हलका पन होवे मन प्रसन्न हो और वायु अनुलोम होकर ठीक अधो वायुका निःसरण होवे यदि ये बातें होवें तो जानों कि मनुष्यको ठीक जुलाब होगया ॥ २४ ॥

मंदाग्निमक्षीणमसद्विरिक्तं न पाययेत्तदहनि तत्र पेयाम् ।
क्षीणं तृडार्तं सुविरेचितं च तन्वीमशीतां लघु पाययेत ॥ २५ ॥

जिसकी अग्नि मंद हो तथा जो बहुत क्षीण न हो जिसे जुलाब ठीक न हुआ हो (जुलाबमें दस्त अच्छी तरह न आये हों) तो उसे उस दिन पेया (फीकी राब)

(श्लो०२५) पेयालक्षणं 'चतुर्दशगुणेनीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता । द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः' इति (भा० प्र०) ।

नहीं पिलावे और जो क्षीण हो तृषासे पीडित हो जिस अच्छा जुलाब होगया हो उसे हलकी निवाई थोड़ी पेया पिला दे ॥ २५ ॥

उत्तम विरेचनके गुण ।

बुद्धेः प्रसादं बलमिंद्रियाणां धातुस्थिरत्वं बलमग्निदीप्तिम् । चिराच्च पाकं वयसा करोति विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ २६ ॥ यथौदकाना मुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाशः । पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां भवति प्रणाशः ॥ २७ ॥

उत्तम विरेचनका उपयोग करना बुद्धिको प्रसन्न करता है इंद्रियोंमें बल धातुवोंमें स्थिरता शरीरके बल और जठराग्निको दीपन करता है और अवस्थाका पकाव (बुढापा) देरसे आने देता है ॥ २६ ॥ जैसे सरोवर आदि जलाशयोंका जल निकाल देनेसे उसके आश्रित चर जलजीव और स्थिर वृक्षादि सबका नाश होजाता है वैसेही पित्त (दुष्ट पित्त) के निकाल देनेसे तज्जनित (दुष्ट पित्तसे पैदा होनेवाले) उपद्रवोंका भी नाश होजाता है (जब दूषित दोषही नहीं तब उससे उत्पन्न होनेवाले विकार होही कैसे सकतेहैं) ॥ २७ ॥

विरेचनसे वर्जित मनुष्य ।

मंदाग्न्यतिस्नेहितबालवृद्धस्थूलाः क्षतक्षीणभयोपतप्ताः । श्रांतस्तृडार्तोऽप-रिजीर्णभक्तो गर्भिण्यधोगच्छति यस्य चासृक् ॥ २८ ॥ नवप्रतिश्याय-मदात्ययी च नवज्वरी या च नवप्रसूता । शल्यार्दिताश्चाप्यविरेचनीयाः स्नेहादिभिर्ये त्वनुपस्कृताश्च ॥ २९ ॥ अत्यर्थपित्ताभिपरीतदेहान् विरेचयेत्तानपि मंदवीर्यैः । विरेचनैर्यांति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तैरवि-रेचनीयाः ॥ ३० ॥

इतने मनुष्योंको विरेचन कराना (जुलाब देना) उचित नहीं जैसे मंदाग्निवाले अति चिकने (जिसने अत्यंत स्नेह अनुमानसे अधिक पान कर लिया) हो बालक वृद्ध स्थूल शरीरवाले क्षतक्षीण भयातुर थके हुवे तृषाके पीडित जिन्हें भोजन पचा न हो गर्भवती स्त्री जिसके अधोमार्गसे रुधिर गिरा हो॥२८ ॥ नये जुखामवाले मदा-त्ययके रोगी नवीन ज्वरवाले नवीन प्रसूता (थोड़े दिनकी प्रसूता स्त्री) शल्यसे (चोट आदिसे) आतुर ये विरेचन योग्य नहीं तथा जिननें स्नेहन स्वेदन आदि

(श्लो० २९) स्नेहादिभिरनुपस्कृताः स्नेहनस्वेदनादिसंस्काररहिताः ।

नहीं किये हों उन्हें भी रेचन अयोग्य है ॥ २९ ॥ परंतु यदि उपरोक्त मनुष्योंके शरीरमें पित्तका अत्यंत कोप होवे (और विना विरेचनके साध्य न हो सके) तो इन्हें भी हलकी औषधों से युक्ति पूर्वक विरेचन देवे क्योंकि जो विरेचनके अयोग्य हैं वे मनुष्य अज्ञानी लोगों के दिये हुवे विरेचनसे विनाशको प्राप्त हो जाते हैं (मर जाया करते हैं) ॥ ३० ॥

विरेचन योग्य मनुष्य ।

विरेच्यास्तु ज्वरगरारुच्यर्शोऽर्बुदोदरग्रंथिविद्रधिपांडुरोगापस्मारहृद्रोगवातरक्तभगंदरछर्दियोनिरोगविसर्पगुल्मपक्वाशयरुग्विबंधविषूचिकालसकमूत्राघातकुष्टविस्फोटकप्रमेहानाहप्लीहशोफवृद्धिशस्त्रक्षतक्षाराग्निदग्धदुष्टव्रणाक्षिपाककाचतिमिराभिष्यंदशिरःकर्णाक्षिनासास्यगुदमेढ्रदाहोर्द्ध्वरक्तपित्तक्रिमिकोष्ठिनः पित्तस्थानजेषु विकारेष्वन्येषु च पैत्तिकव्याधिपरीता इति ॥ ३१ ॥

इतने मनुष्योंको विरेचन कराना (जुलाब देना) योग्य है जैसे ज्वर (जीर्ण ज्वर) वाले गर (कृत्रिम विष खायेपर) अरुचि, बवासीर, रसोली, उदररोग, (जलोदरादिक) ग्रंथि, विद्रधि, पांडुरोग, अपस्मार, (मृगी) हृदय रोग, वातरक्त, भगंदर, छर्दि स्त्रियोंके योनिके रोग विसर्प, गुल्म, पक्वाशयके रोग बंधा पडना विषूची और अलससे मूत्र रुकना, कुष्ठ, विस्फोटक, प्रमेह आनाह (अफारा), प्लीहवृद्धि शोथ अंडवृद्धि शस्त्रका घाव इन रोगोंवाले क्षार या अग्निसे जले हुये दुष्ट व्रणवाले आंख दुखना काच तिमिर (अंधेरी) अभिष्यंद (ढलका) इनके रोगी शिर, कान, आंख नाक, मुह, गुदा और लिंगके रोगवाले दाहके रोगी तथा ऊर्द्धगत रक्तपित्ती जिनके पेटमें कृमि हो इन रोगवालोंको विरेचन देना चाहिये तथा जिनके पित्तके स्थानसे उत्पन्न हुये कोई अन्य विकार हो या पित्तकी व्याधियों से पीडित हों उन्हें भी विरेचन देना योग्य है ॥ ३१ ॥

विरेचन और वमनके गुणमें युक्ति ।

सरत्वसौक्ष्म्यतैक्ष्ण्यौष्ण्यविकाशित्वैर्विरेचनम् । वमनं तु हरेद्दोषं प्रकृत्यागतमन्यथा ॥ ३२ ॥ यात्यधो दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम् । गुणोत्कर्षाद्व्रजत्यूर्द्ध्वमपक्वं वमनं पुनः ॥ ३३ ॥

(श्लो० ३२) सरत्वात् सूक्ष्मत्वात् तीक्ष्णत्वात् उष्णत्वात् विकाशित्वाच्च विरेचनं दोषं हरेत्, वमनं तु अन्यथा प्रकृत्यागतं दोषं हरेदित्यर्थः । प्रकृत्या वीर्येणान्यथागतं ऊर्द्धगच्छन्नपहरेदित्याभिप्रायः । अथवा प्रकृत्यागतं दोषं अपक्वदोषं अन्यथा उर्द्धमार्गेण वमनं अपहरेदिति ।

सर होनेसे सूक्ष्म होनेसे तीक्ष्ण और उष्ण होनेसे तथा विकाशि होनेसे विरेचन दोषोंको निकालता है (नीचेको गिराता है) तथा वमन अन्यथा प्रकृत्यागत होकर दोषोंको निकालता है अर्थात् ऊपरको निकालता है (सरका अर्थ भेदन करनेवाले या गमन शील अथवा रेचक वायु और मलके प्रवर्त करनेवाला) (सूक्ष्म जो सूक्ष्मतासे बारीक स्रोतोंमें अनुसरण करे) (तीक्ष्ण दाह और तेजी करनेवाला) (उष्ण गरम) (विकाशि जो संधि बंधादिको ढीला करे) (देखो सूत्रस्थानकी ४६ अध्याय) ॥ ३२ ॥ जो पके हुये दोषोंको लेकर नीचेको निकले वह विरेचन है तथा गुणकी उत्कर्षतासे विना पके (कच्चे) दोषोंको लेकर ऊपर निकलने वाला वमन होता है ॥ ३३ ॥

विरेचनकी प्रकीर्ण बातें ।

मृदुकोष्ठस्य दीप्ताग्नेरतितीक्ष्णं विरेचनम् । न सम्यग्निर्हरेद्दोषानतिवेगप्रधावितान् ॥ ३४ ॥ पीतं यदौषधं प्रातर्भुक्तपाकसमे क्षणे । पक्तिंगच्छति दोषांश्च निर्हरेत्तत्प्रशस्यते ॥ ३५ ॥ दुर्बलस्य चलान्दोषानल्पाल्पान्पुनः पुनः । हरेत्प्रभूतानल्पांस्तु शमयेत्प्रच्युतानपि ॥ ३६ ॥ हरेद्दोषांश्चलान्पक्वान्बलिनो दुर्बलस्य च । चला ह्युपेक्षिता दोषाः क्लेशयेयुश्चिरं नरम् ॥ ३७ ॥

मृदु कोठेवाले जिसकी अग्नि दीपन हो उसके तीक्ष्ण विरेचनसे ठीक २ दोष नहीं निकलते क्योंकि तीक्ष्ण विरेचनी औषधसे उसके दोष अत्यंत वेगपूर्वक चलायमान होजाते हैं (दस्त जादे आते हैं और दोष ठीक नहीं निकलते जिससे बलक्षीण होजाता है) ॥ ३४ ॥ जो औषध प्रातः काल पीयी जावे और भोजनके पाकके समयतक पाकको प्राप्त होकर दोषोंको निकाल दे वह श्रेष्ठ होती है ॥ ३५ ॥ दुर्बल मनुष्यके चलायमान दोषोंको थोडा करके बार बार निकाले उठे हुये थोडे थोडे दोषोंको निकालता रेह थोडे थोडेको दबाता रहे (शांत करता रहे) (अर्थात कमजोर मनुष्यको थोडा २ कई बार जुलाब दे एक एक दो दो दिन बीचमें छोडते जावें) ॥ ३६ ॥ बलवान् हो चाहो दुर्बल यदि उसके पके हुये दोष चलायमान हों तो उन्हें निकाल देनाही ठीक हैं क्योंकि चलायमान हुये दोष छोड दिये जावे तो मनुष्यको बहुत दिनतक क्लेश देते हैं (अर्थात् मवाद फूल रहा हो और जारी भी हो तो उसे रखना ठीक नहीं) ॥ ३७ ॥

(श्लो० ३६) प्रभूतान् कुपितान् समुत्थितान् ।

मंदाग्निं क्रूरकोष्ठंचसक्षारलवणैर्घृतैः । संधुक्षिताग्निं स्निग्धं च स्विन्नं चैव विरेचयेत् ॥ ३८ ॥ स्निग्धस्विन्नस्य भैषज्यैर्दोषस्तूर्त्क्लेशितो बलात् । विलीयेत न मार्गेषु स्निग्धेभांड इवोदकम् ॥ ३९ ॥

मंदाग्निवाले क्रूरकोष्ट मनुष्योंको क्षार लवण तथा घृत मिलाकर विरेचनी औषध देना और दीप्ताग्निवालेको स्नेहन स्वेदन कराकर विरेचन देना उचित है ॥ ३८ ॥ क्योंकि स्नेहन स्वेदनसे चिकने कोठेमें उठाहुआ दोष विरेचनी औषधके बलसे ठीक निकल जाता है रस्तेमें नहीं ठैरता जैसे चिकने पात्रमें जल नहीं ठैरता और नहीं लगता है ॥ ३९ ॥

न चातिस्नेहपीतस्तु पिबेत्स्नेहविरेचनम् । दोषाः प्रचलितास्थानाद्भूयः श्लिष्यंति वर्त्मसु ॥ ४० ॥ विषाभिघातपिडकाशोफपांडुविसर्पिणः । नातिस्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्ठप्रमेहिणः ॥ ४१ ॥ विरूक्ष्य स्नेहसात्म्यं तु भूयः संस्नेह्य शोधयेत् । तेन दोषा हृतास्तस्य भवंति बलवर्द्धनाः ॥ ४२ ॥

जिसने अति स्नेह पीया हो वह मनुष्य चिकना विरेचन नहीं पीवे क्यों कि अति चिकनाई के कारण उसके दोष स्थानसे चलकर मार्गमें पुनः लिहसाय मान हो जाते हैं (लिस जाते हैं) ॥ ४० ॥ विष पीडित जिसे चोट लगी हो पिडका-का रोगी शोथवाला पांडु रोगी विसर्प रोगवाला तथा कुष्ठ और प्रमेहका रोगी इन्हें अति स्निग्ध करके (या अति स्निग्धता युक्त) विरेचन देना उचित नहीं ॥ ४१ ॥ जो स्नेह सात्म्य है अर्थात् नित्य खूब घृतादि खाने आदिका अभ्यास रखते हैं उन्हें पहले रूखाई करके (उनकी स्निग्धता एक बार दूर करके) फिर थोडा स्नेहन करके शोधन करना (विरेचन देना) चाहिये जिससे उसके दोष दूर होकर बलकी वृद्धि करे ॥ ४२ ॥

प्रागपीतं नरं शोध्यं पाययेतौषधं मृदु । ततो विज्ञातकोष्ठस्य कार्यं संशोधनं पुनः ॥ ४३ ॥ सुखं दृष्टफलं हृद्यमल्पमात्रं महागुणम् । व्यापत्स्व-ल्पात्ययं चापि पिबेन्नृपतिरौषधम् ॥ ४४ ॥

जिसने पहले औषध न पीयी हो (जिसके कोठेका हाल मालूम नहो) उसे पहले मृदु औषध देनी चाहिये और फिर जब कोठेका हाल मालूम होजावे तब फिर शोधन करे (अच्छी तरह विरेचन देवे) ॥ ४३ ॥ और राजा लोगों (अमीरों) को ऐसी औषध पीना (और खाना) चाहिये जो सुखसे पीयी या

खाई जावे और जिसका फल देखा हुवा हो (आजमाई हुई हो) जो हृदयको हित हो (जिससे उकलाई आदि न आवे और दिल बिगडे नहीं) जिसकी मात्रा भी बहुत जादा न हो और जिसका गुण बहुत अच्छा हो तथा व्याधियोंमें शीघ्र आराम करनेवाली हो ॥ ४४ ॥

स्नेहस्वेदावनभ्यस्य यस्तु संशोधनं पिबेत् । दारुशुष्कमिवानामे देहस्तस्य विशीर्यते ॥ ४५ ॥ स्नेहस्वेदप्रचलिता रसैः स्निग्धैरुदीरिताः । दोषाः कोष्ठगता जंतोः सुखा हर्तुं विशोधनैः ॥ ४६ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

जो स्नेहन स्वेदन विना किये शोधन (वमन विरेचनकी औषध) पीतेहैं इनका देह इस प्रकार खंडित होजाता है जैसे सूखी लकडी नवाने (मोडने) से टूट जाया करती है ॥ ४५ ॥ स्नेह और स्वेदसे प्रचलित हुए दोष और स्निग्ध रसोंसे प्रेरित मनुष्योंके कोठेमें प्राप्त हुए दोष शोधनसे सुख पूर्वक निकल जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकभाषाटीकायाश्चिकित्सितस्थाने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

परिशिष्ट १.

प्रसंगसे वैद्यकके कुछयोग लिखते हैं।

यद्यपि विरेचनकी बहुतसी औषधोंके योग पहले सूत्रस्थानका (४४) वां अध्यायमें वर्णन होचुके हैं वहां देखें परंतु कुछ योग यहांभी लिखते हैं ॥

छहोंऋतुवोंके विरेचन ।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् । समृद्धीकारसं क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ १ ॥ त्रिवृद्दुरालभामुस्तशर्करोदीच्यचंदनम् । द्राक्षांबुना सयष्ट्याह्वं शीतलं च घनात्यये ॥ २ ॥ पिप्पली नागरं स्निग्धं श्यामा त्रिवृतया सह। लिह्यात्क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम्॥ ३॥ त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ ४ ॥

निसोथ इंद्रजौ पिप्पली सोंठ इन्हें मुनक्काके रस और शहतके संग लेना यह वर्षा ऋतुका विरेचन है ॥ १ ॥ निसोथ दुरालभा नागरमोथा खांड और नेत्रवाला और

चंदन इनमें मुलेटी मिलाकर मुनक्काके जलसे लेना शरद् ऋतुके योग्य शीतल विरेचन है ॥ २ ॥ पिप्पली सोंठ चिकनाई (घृत) वृद्धदारु और निसोथ इन्हें शहतमें मिलाकर चाटना शिशिर और वसंत ऋतुका विरेचन है ॥ ३ ॥ निसोथका चूर्ण और समान खांड मिला कर लेना ग्रीष्मका विरेचन है (निसोथके चूर्णको प्रथम घृतसे स्निग्ध कर लेना.)

इनमें निसोथकी मात्रा कोष्ठ और दोषोंके अनुसार १० मासे से २॥ तोले तककी होसकती है और अन्य औषधोंकी मात्रा इसके अनुरूप कल्पना करलेनी चाहिये ॥

अभयामोदक ।

अभयामरिचं शुंठी विडंगामलकानि च । पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ १ ॥ एतानि समभागानि दंती तु त्रिगुणा भवेत् । त्रिवृताष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥ २ ॥ मधुना मोदकान्कृत्वाकर्षमात्रप्रमाणतः । एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ ३ ॥ तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेवते । पानाहारविहारेषु भवेन्नियंत्रणः सदा ॥ ४ ॥

हरडेकी छाल, स्याह मिरच, सोंठ, विडंग, आंवले, पीपल, पीपलामूल, तजपत्रज नागरमोथा॥ १॥इन सबको समान भाग एक एक कर्ष लेवे और दंती(जमाल गोटेकी जड) तीन भाग (३ कर्ष) ले और निसोथ आठगुनी (८ कर्ष) और खांड छः गुनी (६ कर्ष) लेवे ॥ २ ॥ सबको कूट छान एकत्र कर शहतसे मोदक (बडी गोली) एक एक कर्ष (१० मासे) की बनावे (जब विरेचन लेनाहो) एक एक प्रभातमें खावे ऊपर ठंढापानी पीवे (और हर दस्तके पीछे थोडा ठंढापानी पीवे) ॥ ३ ॥ इसमें जबतक गरम पानी या गरम वस्तु न सेवन करे तबतक दस्त आते हैं (अर्थात् ठंढापानी पीते रहनेसे दस्त आते हैं और गरमसे बंद होते हैं) इसमें पान आहार विहारकी विशेष यंत्रणा नहीं है ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) यदि जमाल गोटेकी जड नहीं मिले तो शुद्ध जमाल गोटे उतने ही (३ कर्ष) डाल दे परंतु जमाल गोटे डाले तो मात्रा १ कर्षकी नहीं दे किंतु १ टंक अनुमानकी गोली बनावे इसकी चने प्रमाण गोली खानेसे साधारण दो एक दस्त भी हो जाते हैं) ॥

इसके गुण ।

विषमज्वरमंदाग्निपांडकासभगंदरान् । दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडोदरभ्र-

मान् ॥ ५ ॥ विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् । वातरोगांस्तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् ॥ ६ ॥ पृष्ठपार्श्वरुजं चैव जंघोदररुजं जयेत् । स्नेहाभ्यंगं च रोषं च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ७ ॥ सततं शीलनादेव पलितानि च नाशयेत् । अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ८ ॥

यह विरेचन विषम ज्वर मंदाग्नि पांडु खांसी भगंदर बवासीर कुष्ठ गुल्म मस्सेकी बवासीर गलगंड उदररोग भ्रम ॥ ५ ॥ विदाह प्लीहा प्रमेह क्षयी नेत्ररोग वातरोग अफारा मूत्रकृच्छ्र और पथरी ॥ ६ ॥ पीठके पसलीके रोग जंघा और पेटके रोग इतने रोगोंको दूर करता है इसके पीछे स्नेहाभ्यंग रोष आदि कुपथ्य एक दिन त्याग देवे ॥ ७ ॥ इनको निरंतर सेवन करनेसे ये पलित बुढापेकी झरी सपेद बाल होने अदिको नष्ट करते हैं ये अभया मोदक (निर्भय) रसायनमें श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥

परिशिष्ट २.

यूनानी मतके ढंगसे जुल्लाव ।

दोषोंके शोधनमें विरेचन (जुल्लाब) सबसे प्रधान है और इस समयमें इसका प्रचार भी साधारण रूपसे देखें तो बहुतही है विरेचनकी रीति उत्तम और लाभ दायनी जैसी वैद्यक शास्त्रमें कहीहै वैसी यूनानी आदि किसी अन्य देशीय चिकित्सा विद्यामें नही है परंतु हमारे वैद्यक शास्त्रकी पूर्ण रीतिसे विरेचनका प्रचार इस समय सर्वतो भावसे नष्ट प्राय हो गया है विरेचनके आरंभिक कर्म स्नेहन स्वेदन तथा सामासिक अंग निरूहण और अनुवासन बस्ति इत्यादिको इस समयके बहुधा वैद्यतक भी नहीं जानते ।

बहुत दिनसे इस देशमें यूनानी तिबावतका वरताव फैलनेसे उसकी रीतिके अनुसार विरेचन (जुलाब) का प्रचार बहुतही होगया है और अमीरसे गरीबतक बहुधा उसीके अनुसार जुलाबको ठीक समझते हैं इस लिये हम उसके अनुकूल संक्षेपसे जुलाबकी विधि लिखते हैं ॥

जैसे वैद्यक मतसे मनुष्योंके शरीर तथा कोष्ठमें वायु पित्त और कफ इन तीन दोषोंमेंसे किसीकी उल्बणता होती है उसी तरह यूनानी मतसे भी मेदे और अंतडियों आदिमें सौदा सफरा तथा बलगम इन तीनों खिलतोंमेंसे कोईसी खिलत बढी हुई या बिगडी हुई होती है (जिसके निकालनेको जुलाब दिया जाता हैं) जैसे वैद्यक मतसे स्नेह पान कराकर तथा अभ्यंग कराकर फिर पसीना दिलाकर शरीरके सब अंग प्रत्यंगको मुलायम करते हैं और शरीरके

सब भागोंमेंसे दोषोंको निचोडकर या जिस जगह दोष हों वहांके दोषोंको पतला करके खेंचके आमाशयमें ले आते हैं कि जिससे वे विरेचनमें निर्दोष सरलता पूर्वक निकल जावें वैसे यूनानी मतसे हरेक खिलतके मुलायम और पतला करने तथा पकाकर फुलानेके लिये उसीके मूजिब मुंजिश देकर मुलायम करते हैं सौदा आदि खिलतोंका हाल संक्षेपसे हम शारीरकके परिशिष्टमें लिख चुके हैं उससे देख लें कि इसके कौनसी खिलतका विकार है फिर उसीके पकाने और मुलायम करनेको मुंजिश देने चाहिये ॥

सफरा (पित्त) का मुंजिश ।

नीलोफर कासनी कासनीकी जड परशावशां खतमी खुव्वाजी बनफशा शाहतरा गुलाबके फूल इन सबको तीन २ मासे लेकर जरा कूट कर रातको गरम पानीमें भिगो दे फजर जरा मलकर तुरंजवीन तोला १ अलग भिगोंकर डाल दे और गुलकंद तोला २ डालकर छानकर पीवे यादि सफरा खालिस हो तो ३ दिनमें पक जाता है और गैर खालिसके लिये ५ दिनतक पीवे गैर खालिस ४ दिनमें पकता है ।

बलगम (कफ) का मुंजिश ।

सौंफ सौंफकी जड मुनक्का मुलेठी वादरंज बोया परशावशा शकाई बादियानरूमी अंजीर मकोह तुखम करफस उस्त खट्टूस गुलाबके फूल इन सबको तीन २ मासे और मुनक्का ९ अंजीर १ दाना इन सबको रातको भिगों दे फजर जोश दे आधा पानी रहे उतार ले गुलकंद २ तोला मिला मल छान कर पीवे ऐसे ९ दिनतक पीवे जिससे बलगम पक जावे ॥

सोदाका मुंजिश ।

सोदा सूखी जली हुई खितल वलगम या सफरा होती है यह बहुत दिनमें मुलायम होती और पकती है इसके लिये अनुमान १५ दिन मुंजिश पीना पडताहै मुंजिशकी दवायें ये हैं गावजुवां, ल्हेसुवा, उन्नाव, सौंफ, शाहतरा, उस्तखूस, परशावशां, मुलेटी, बिसफायज इन सबको रातको भिगोकर फजर जोशदेकर गुलकंद ३ तोला डालकर पीवे ॥

इनके सिवाय किसी खास वजेपर या खास बीमारी तबियत या मोसम या उम्र वगैराके लिये जो दवा हकीम मुनासिब समझें कम जादे कर देवे जैसे खून फसादवालेके मुंजिश तथा मुसहिलमें मुसप्फी खूनकी रयायत रक्खे इत्यादि और यह भी याद रक्खे कि जुल्लाबका मौसम मातादिल होना चाहिये जैसे चैत या आसोज का महीना पर सख्त बीमारीमें इसकी कैद नहीं और मुंजिश के दिनोंमें भी भोजन

हलका खावे और करडावासी न खावे यदि सादा हो तौ चिकनाई भी भले ही खावे पर बलगम बढा हो तो चिकनाई बहुतही कम खावे ॥

जुल्लाबकी विधि ।

जैसे वैद्यकमें मृदु मध्य और क्रूर ये तीन भेद कोठेके कहे हैं ऐसे ही मेदा मुलायम है या करडा इस बातकी देख भाल यूनानी वालेभी करते हैं. यदि मेदा मुलायम होताहै या खिलत खुद ही पककर मवाद रुजू हो तो ऐसे मौके पर जादा मुंजिश-की भी जरूरत नहीं और जुल्लाब भी इनको हलका ही दिया जाता है ॥

हलके मेदेवालों और कमजोर आदमियोंको या जिनके थोडी खिलतका बिगाड हो उन्हें हलका जुलाब देना चाहिये और जिनका मेदा करडा हो बलवान् आद-मियोंको और जिनकी खिलतमें जादा बिगाड हो उन्हें तेज जुल्लाब देना चाहिये इसके सिवाय जुलाब देनेमें खिलतकाभी खयाल रखना होता है जैसे सफराके लिये हलकी मीठी और ठंढी दवा तजवीज करना और सौदा बलगमके लिये उनके मूजिब इन दिनोंमें मनुष्योंमें कम जोरी अकसर जादा होनेसे बहुधा लोग हलका साधारण जुल्लाब लेकर पांच सात दस्त हो जानाही अच्छा समझते हैं अगर चे इससे बहुत कुछ फायदा नहीं होता तो भी कुछ न कुछ फायदा होताही है और साधारणमें नुकसानभी बहुत नहीं होते इसीसे इसका अधिकही प्रचार है ॥

हलका जुल्लाब ।

सनाय २ तोला मुनक्का १५ दाने इलायची १० सोंफ छःमासे इन्हें रातको भिगो-दे फजर जरा जोश देकर गुलकंद ३ तोला डालकर मलकर छानकर जरा निवाया पीजावे इससे हलके मेदे वालोंको ८-१० दस्त हो जाते हैं हर दस्तके बाद थोडा सोंफका अरक या निवाया पानी पीवे और पान खावे (फिर दूसरे दिन ठंढाई लेकर फिर इसी तरह पीवे (ऐसे ३ दिन तीन जुलाब लेवे और बीचमें ठंढाई पीता रहे)॥

नुकताव ।

जुलाबके दिन दो पहर पीछे जब दस्त हो चुकें तब मूंगका नुकताव पीवे नुक-ताव उसे कहते हैं कि मूंग फजरहीसे पानीमें भिगो दे फिर दो पहर पीछे उन्हें दो सेर पानीमें जोश दे जब देखे कि मूंग खूब सीजकर फट गये तब उसे कपडेमें छान ले उसमें थोडा निमक डालकर उसे जी चाहता पीवे इसके पीनेके बाद एक आध दस्त साफ और होता है ॥

इसके ४-६ घडी बाद पुराने चावलोंकी मूंगकी दाल मिली खिचडी मुलायम बिना घीके खावे और जुलाबके दिनोंमें ऊंचेपर न चढे फिरे भी नहीं स्त्री संग न करे वह परहेजीकी चीजें न खावे जादा गरमी और सरदीसे बचे ॥

जुल्लाबके बीचकी ठंढाई ।

यद्यपि ठंढाई भी खिलत मौसम और बीमारीके मूजिब बहुतसी तरह की हैं पर साधारण ये हैं कि सौदा हो तो रेशाखतमी और बीहदाना खयारै इन्हें पानी में भिगा दे और लुआव निकाल कर थोडी मिश्री डालकर पीवे अगर बलगम हो तो सोंफ, गुलाबकेफूल, मुलेटी, स्याहमिर्च, इन्होंकी ठंढाई बनाकर पीवे और जो सरदीकी जादती हो तो ठंढाई पीवे ही नहीं अगर सफरा हो तो जरूरही ठंढाई पीनी चाहिये कासनी, खयारैन, गुलेगाजुवा, इलायची मिश्री इनकी ठंढाई बनाकर पीवे अगर खून फिसाद हो तो उन्नाव, मुलेटी, मुनक्का, गोरखमुंडी, गुलेबनफशा, मिश्री इनकी ठंढाई बनाकर पीवे इनके सिवा हकीम अपनी रायसे इनमें कमजादा कर देवे ॥

मध्यम जुल्लाब ।

सुपेद निसोथको छीलकर भीतरका ठंडल निकालकर तोला १ बदाम रोगन मासे ६ मिश्री तोला १ इनको मिलाकर फंकी लेकर ऊपरसे पूर्वोक्त सनाय का काढा पी जावे और हरदस्तके पीछे सौंफका और मकोहका अर्क आधपाव पीया करे और पान भी खाता रहे इससे १०।१२ दस्त होते हैं ।

जुल्लाबपर मदद ।

अगर किसीको दस्त सुरू न हों तो दो तोले गुलकंद सौंफ ६ मासे मिलाकर खावे ऊपर सोंफका अर्क जरा गरम करके पीवे अगर किसीका मेदा करडा हो तो गुलकंद २ तोले काला दाना ५ मासे मिलाकर खावे और जो बहुत ही करडे मेदेवाला हो तो उसे उसारा-रेवन मासा भर देवे जिससे जरूर दस्त सुरू हो जावेंगे ॥

अमलतासका जुल्लाब ।

यह जुल्लाब नामीहै और फायदेमंदभी जादे है पर इसमें पहले ठीक मुंजिश होने चाहिये और इस जुल्लाबमें परहेजभी जादे चाहिये अमलतासका गूदा उमदा २ तोले (यह ४ तोलेतक ले सकते हैं) पानीमें भिगोदे (इसे जोश नहीं देना) और सनाय १॥ तोले बडी हडेकी छाल ९ मासे मुनक्का १५ आलू बुखारे १५ (या इमली २ तोले) खतमी खुब्बाजी बनफशा सौंफ चंदनचूरा गोरखमुंडी ये छः छः मासे उन्नाव ७ दाने इन्हें अमली के सिवाय जोश करे और इमलीकोभी भिगोदे फिर अमलतासको मलकर छान ले खूब नितारकर साफ करले फिर उस कोटमें मिलाले और तुरंजबीन २ तोले और शीरखिश्त १ तोले अलग पानी या गुलाबमें भिगोकर छानकर मिलाले और गुलकंद २ तोले मिलावे और इसमें गुलाबके अर्ककी खुशबू देकर ऊपर बदामकी गिरीके टुकडे बुरकाकर गटगटाकर पीजावे

ऊपरसे पान इलायची खावे और हाथोंके बाजूपर कपडा बांधदेकि कै न हो जावे और जुल्लाबकी दवा पीकर लेटना सोना हरगिज नहीं चाहिये-इसमें भी ऊपरसे हरदस्तपर सोंफका अर्क गुलाबका अरक और मकोका अरक मिलाकर आधपावके अंदाजन पीते रहें और नुकताव ठंढाई वगेरा पहलेकी तरह करते रहें इसी भांति यह तीनदिनतक तथा ४ दिनतक एक एक दिन बीचमें ठंढाई लेकर लेते रहें यह जुल्लाब ठीक हो जावे तो शरीरकी अनेक बीमारी दूर होजावें हाजमेंकी ताकत और बदनकी ताकत भी खूब बढ जावे ॥

जमाल गोटे आदिका बरताव ।

जिनका मेदा करडा जादे होताहै उन्हें हलके जुलाबसे दस्त नहीं उनके लिये यूनानी तवीबभी जमाल गोटे या उसारे रेवन या इंद्रावन वगेरा तेजचीजोंका बरताव करतेहैं परंतु जमाल गोटेको विना शोधे नहीं वरतना चाहिये उसके शोधनकी यह विधि है कि जमाल गोटोंका पहले तीन दिनतक गोवरमें दबा दे जिससे वे फूल जावें फिर उन्हें घुले हुये गोबरमें जोशदे फिर पानीसे धोकर उनका छिलका दूरकर दे और जरा हाथोंके घी लगाकर उन्हें बीचसे चीरकर उसकी जीभी निकाल डाले फिर उनको बहुत बारीक कपडेमें बांधकर दूधमें खूब जोशदे यहांतक कि दूध गाढा होजावे फिर दूधको फेंक दे और उन्हें धोकर साफ कर ले और फिर दूधमें पीसकर मिट्टीके ठेकरपर लेप दे और धूपमें सुखा ले उनकी जहरीली चिकनाईको ठेकरा सोख लेगा फिर उसे चाकूसे खुरचकर काममें लावे ऐसे शुद्ध जमाल गोटे छःमासे इलायचीके बीज छःमासे कत्था छःमासे मिरच स्याह ३ मासे इन्हें पीस उडदके बराबर गोली बनावे उनमेंसे १ गोलीसे दो तीन दस्त साफ होजाते हैं ये ऐसी ६ गोलीसे अच्छा जुल्लाब होजाता है पर इसपर गरम पानी नहीं पीवे ठंढा पानी या सोंफका अरक पीवे वैद्यकके रस ग्रंथोंमें इच्छाभेदी आदि अनेक रस इस जमाल गोटे और शुद्धगंधक शुद्धपारे आदि दवाओंसे बनाते हैं उनकी विधि उन्हीं ग्रंथोंमें देखो ।

डाक्टरी मतसे जुल्लाव ।

यद्यपि डाक्टर लोगभी जुल्लाव बहुतही देते हैं परंतु न तो वैद्यक की तरह वे स्नेहन स्वेदन करते हैं और न यूनानीकी तरह मुंजिशहीं देते हैं ये तो दस्तावर दवा देकर दस्त करा देनाही मुख्य बात समझते हैं जुल्लाब डाक्टरीमें भी कई प्रकारका है परंतु जादे वरताव में यही है कि कास्टर आइल (एरंडीका तेल) अनुमान १ औंस (२॥ तोले) दूधमें डालकर या खाली ही पिला देना जिससे ८।७ दस्त होजाते हैं खाने को ऊपर चावल दाल या खिचडी वगैरा मुलायम बस जादे परहेजका भी उसके यहां झगडा कुछ बहुत नहीं है इसी प्रकार जलप वगैरा पौंडरसे दस्त करा देते हैं ॥ इति ॥

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम वमन और विरेचनमें जो उपाधियां होती हैं उनकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

वैद्यातुरनिमित्तं वमनं विरेचनं च पंचदशधा व्यापद्यते तत्र वमनस्याधोगतिरूर्द्ध्वं विरेचनस्येति पृथक् सामान्यमुभयोः सावशेषौषधत्वं जीर्णौषधत्वं हीनाधिकदोषापहृतत्वं वातशूलमयोगातियोगौ जीवादानमाध्मानं परिकर्त्तिकापरिस्रावप्रवाहिकाहृदयोपसरणं विबन्ध इति ॥ १ ॥

वैद्य और रोगीके (प्रमाद अज्ञान हठादिके) कारणसे वमन और विरेचनमें १५ प्रकारकी व्यापत्ति (उपाधियां) होती हैं जिनमें १ वमनका नीचेको चला जाना और विरेचनका ऊर्ध्वगामी होना जुदा जुदा है और दोनोंमें सामान्यता से २ औषधोंका शेष रह जाना ३ औषधोंका पच जाना ४ दोषोंका पूरा न निकलना ५ दोषोंका अधिक निकल जाना ६ वायु शूल (दरद होना) ७ अयोग होना ८ अतियोग ९ जीवादान (जीवनीय रक्तादि निकलना) १० अफारा होना ११ परिकर्तिका (कातन होना) १२ परिस्राव १३ प्रवाहिका १४ हृदयोपसरण और १५ विबंध ये उपाधि होती हैं (वैद्य और रोगीके ग्रहणसे औषध और परिचारक भी लेना चाहिये क्योंकि औषध योग्यायोग्य न्यूनाधिक तथा परिचारककी मूढता प्रमादिक भी उक्त व्याधियोंके कारण होते हैं) ॥ १ ॥

वमनके अधोगमनकी उपाधि ।

तत्र बुभुक्षापीडितस्यातितीक्ष्णाग्नेर्मृदुकोष्ठस्य चावतिष्ठमानं दुर्बलस्य वा गुणसामान्यभावाद्वमनमधो गच्छति तत्रेप्सितानवाप्तिर्दोषोत्कर्षश्च तमाशु स्नेहयित्वा भूयस्तीक्ष्णतरैर्वामयेत् ॥ २ ॥

इनमेंसे क्षुधासे पीडित तीक्ष्णाग्नि मृदुकोष्ठवाले तथा दुर्बल मनुष्यको उपयोग करी हुई वमनकी औषध गुणके सामान्यभाव होनेसे पचकर नीचेको चली जाती है

(वा० १) वैद्यातुरग्रहणेनैव भेषजपरिचारकयोर्ग्रहणमतस्तयोरपि व्यापन्निमित्तं स्यादिति (डल्हनः) उभयोर्वमनविरेचनयोः सावशेषौषधादिकं तयोर्दशसंख्योपेतं व्यापत्वेन सामान्यमिति (डल्हनः) । जीवादानं जीवशोणितादानम् ।

(वा० २) क्षुत्पीडितस्य रिक्तामाशयत्वात्पीतमात्रमेवाधोयाति, तीक्ष्णाग्नेरग्निबलात्पाकं याति मृदुकोष्ठस्यापि कोष्ठमार्दवादधोयाति दुर्बलस्यच, अवतिष्ठमानं पाकप्राप्तम्, गुणसामान्यभावात् सामान्यगुणत्वात्, स्नेहयित्वेत्यत्र स्वेदयित्वेत्याक्षिप्तो बोद्धव्यः (इति. नि. सं.)

जिससे इच्छापूर्वक वमन नहीं होते (या होते ही नहीं) और दोष बढ जाया करते हैं ऐसा होनेपर रोगीको शीघ्रही स्नेहन कराकर फिर अति तीक्ष्ण औषधों से वमन कराना चाहिये ॥ २ ॥

विरेचनका ऊर्द्धगमन ।

अपरिशुद्धामाशयस्योत्क्लिष्टश्लेष्मणः सशेषान्नस्य वाऽहृद्यमतिप्रभूतविरेचनं पीतमूर्द्ध्वं गच्छति तत्राशुद्धमामाशयमुल्बणश्लेष्माणमाशु वामयित्वा भूयस्तीक्ष्णतरैर्विरेचयेत् आमान्वयेत्वामवत्संविधानम् । अहृद्येतिप्रभूते च हृद्यं प्रमाणं युक्तं च अतऊर्द्ध्वमुत्तिष्ठत्यौषधेन तृतीयं पाययेत् ततस्त्वेनं मधुघृतफाणितयुक्तैर्लेहैर्विरेचयेत् ॥ ३ ॥

जिसका आमाशय शुद्ध न हो जिसके कफ अत्यंत बढा हुवा हो जिसके भोजन किया अन्न पच नहीं चुका हो ऐसे मनुष्योंको अथवा हृदयको अप्रिय और बहुतसी विरेचनीय औषध पीयी जानेसे वह ऊपरको निकल जाया करती हैं (वमन हो जाती है) ऐसा होने पर अशुद्ध आमाशय और बढे कफवालेको औरभी वमन कराकर फिर तीक्ष्ण विरेचन देवे । आमका दोष होतो आम पकानेकी युक्ति (लंघन पाचनादि) करे । अहृद्य और विशेष औषधसे वमन हुवा हो तो हृदय प्रिय और थोडी औषधका उपयोग करे । और जो फिरभी ऊपरको निकल जावे तो फिर तीसरी बार नहीं पिलाना चाहिये फिर तो उसे शहत घृत और फाणित (गुड या खांडकी राब) मिलाकर विरेचनी औषधोंका अवलेह खिलाकर विरेचन करावे ॥ ३ ॥

सावशेष औषधकी उपाधि ।

दोषविग्रथितमल्पमौषधमवस्थितमूर्द्ध्वभागिकमधोभागिकं वा न स्रंसयति दोषान् तत्र तृष्णापार्श्वशूलं छर्दिर्मूर्च्छापर्वभेदो हृल्लासारत्युद्गाराविशुद्धिश्च भवति । तमुष्णाभिरद्भिराशु वामयेत् सावशेषौषधमतिप्रधावितदोषमतिबलमसम्यग्विरिक्तमप्येवं वामयेत् ॥ ४ ॥

दोषोंसे मिली हुई थोडीसी वमन और विरेचनकी औषध उपयुक्त ऊर्द्ध भागके दोषोंको तथा अधोभागके दोषोंको नहीं निकाल सकती जिससे तृषा पसलीमें शूल छर्दि मूर्च्छा संधियोंका भेदन उबकाई अरति (बेचैनी) डकारें विशेष आना शुद्धि न होना (भारीपन) ये उपद्रव होते हैं ऐसा होनेपर रोगीको गरम जलसे शीघ्र वमन करावे और पेटमें औषध शेष रह जावें तथा जिसके दोष अति प्रधावित

(वा० ३) आमवत्संविधानं लंघनपाचनादिकम् ।

हों और रोगी बलवान् हो अथवा जिसे ठीक विरेचन नहीं हुवा हो उसे भी गरम जलसे वमन करावे (और जिसे ठाक विरेचन न हुवा हो उसे वमन कराके फिर विरेचन भी करावे) ॥ ४ ॥

औषध जीर्ण होने (पचजाने) के अवगुण ।

क्रूरकोष्ठस्यातितीक्ष्णाग्नेरल्पमौषधमल्पगुणं वा भक्तवत् पाकमुपैति तत्र समुदीर्णा दोषा यथाकालमनिर्ह्रियमाणा व्याधिं बलविभ्रंशं चापादयंति तमनल्पममंदमौषधं च पाययेत् ॥ ५ ॥

करडे कोठेवाले तीक्ष्णाग्नि मनुष्यको थोडी और स्वल्प गुण करनेवाली (वमन रेचनकी) औषध भोजनकी भांति पच जाती हैं इससे बडे और उभरे हुये दोष समयपर नहीं निकले हुए व्याधिको और बलकी हानिको उत्पन्न करते हैं ऐसा होनेपर उसे बहुतसी तथा तीक्ष्ण (तेज) औषधें पिलावे ॥ ५ ॥

स्वल्प दोष हरण।

अस्निग्धस्विन्नेनाल्पगुणं वा भेषजमुपयुक्तमल्पान्दोषान् हंति । तत्र वमने दोषशेषः गौरवमुत्क्लेशं हृदयाविशुद्धिं व्याधिवृद्धिं करोति, तत्र यथायोगं पाययित्वा वामयेद्दृढतरम् ॥ ६ ॥ विरेचने गुदपरिकर्तनमाध्मानं शिरोगौरवमनिःसरणं वा वायोर्व्याधिवृद्धिं करोति, तमुपपाद्य भूयः स्नेहस्वेदाभ्यां विरेचयेद्दृढतरं । दृढं बहुप्रचलितदोषं वा तृतीये दिवसेऽल्पगुणं चेति ॥ ७ ॥

विना स्नेहन स्वेदन किये अल्प गुणवाली (वमन रेचनकी) औषध उपयुक्त करी हुई स्वल्प दोषोंको निकालती है (निःशेष सारे दोषोंको नहीं निकालती) । इसमेंसे वमनके शेष रहे दोष भारीपन उत्क्लेश (जी मिचलाना मुहमें पानी भर भर आना) तथा हृदयकी अशुद्धि और व्याधिमें वृद्धि करते हैं ऐसा होनेम यथायोग वमनकी (तीक्ष्ण) औषध पिलाकर खूब वमन करावे ॥ ६ ॥ विरेचनमें शेष रहे दोष गुदामें परिकर्तन (काटनी) अफारा शिरका भारीपन और अधो वायु का न निकलना तथा व्याधिकी वृद्धि करते हैं, ऐसा होनेमें उसे फिर स्नेहन स्वेदन कराकर तीक्ष्ण विरेचन देवे । और जो दृढ देहवाला (या दृढ व्याधिवाला) हो और उसके दोष चलायमान हों (अर्थात् मवाद फूला हुवा हो) तो उसे तीसरे दिन थोडे गुणवाली (हलकी) ही औषध फिर देवे (तीक्ष्ण न दे) ॥ ७ ॥

वातशूल ।

अस्निग्धस्विन्नेन रूक्षमौषधमुपयुक्तमब्रह्मचारिणा वा वायुं कोपयति । तत्र वायुः प्रकुपितः पार्श्वपृष्ठश्रोणिमन्यामर्मशूलं मूर्च्छा भ्रमं संज्ञानाशं च करोति, तमभ्यज्य धान्यस्वेदेन स्वेदयित्वा यष्टीमधुकविपक्केन तैलेनानुवासयेत् ॥ ८ ॥

विना स्नेहन स्वेदन किये रूक्ष औषध (वमन विरेचनकी) उपयोग करनेसे तथा इन दिनों स्त्रीसंग करनेसे वायु कुपित हो जाता है । तब कुपित हुवा वायु पसवाडे पीठ कमर ग्रीवाके जोते तथा मर्म स्थानोंमें शूल पैदा करता है और मूर्च्छा भ्रम तथा संज्ञाका नाश (बेसुधी) करता है ऐसा होनेपर उस रोगीको स्नेहाभ्यंग करके धान्यसे स्वेदन करके मुलेठीसे पके हुये तैलसे अनुवासन बस्ति करे ॥ ८ ॥

अयोग ।

स्नेहस्वेदाभ्यामतिभावितशरीरेणाल्पमौषधमल्पगुणं वा पीतमूर्द्ध्वमधो वा नाभ्येति दोषांश्चोत्क्लिश्य तैः सह बलक्षयमापादयति । तत्राध्मानं हृदयग्रहस्तृष्णामूर्च्छादाहश्च भवति तमयोगमित्याचक्षते । तमाशु वामयेन्मदनफललवणांबुभिर्विरेचयेत्तीक्ष्णतरैः कषायैश्च ॥ ९ ॥ दुर्वांतस्य तु तमुत्क्लिष्टा दोषा व्याप्य शरीरं कंडूश्वयथुकुष्ठपिडकाज्वरांगमर्दनिस्तोदनानि कुर्वंति । ततस्तानवशेषान्महौषधेनापहरेत् ॥ १० ॥

जो स्नेहन स्वेदनसे शरीर संस्कृत किया हुवा नहीं हो यदि अल्प औषध अथवा अल्प गुणवाली औषध पीवे ओर वह वमन विरेचन नहीं करे (अर्थात् वमनकी औषधसे वमन न हो और विरेचनकीसे दस्त न लगे) और दोषोंको उत्क्लेशित करके उनके साथ बलको नाश कर देवे जिससे अफारा हृदय घिरासा रहना तृषा मूर्च्छा और दाह हो जाता है तो इसे "अयोग" ऐसा कहतेहैं ऐसा होनेमें रोगीको मैनफल नमक पानीमें मिलाकर इससे वमन करावे और तीक्ष्ण क्वाथोंसे विरेचन देवे ॥ ९ ॥ यदि वमन न हो तो उसके दोष उत्क्लिष्ट होकर सब शरीरमें फैलकर खाज शोथ कुष्ठ फोडे फुन्सी ज्वर अंगोंका टूटनासा और दर्द इन उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं ऐसा होनेमें उन दोषोंको उग्र औषधोंसे निकाले (और शांत करे) ॥ १० ॥

(गद्य० ९) स्नेहस्वेदाभ्यामतिभावितशरीरेण इत्यत्र स्नेहस्वेदाभ्यामभिभावितशरीरेणेतिवापाठः ।

अस्निग्धस्विन्नस्य मृदुविरिक्तस्याधो नाभेः स्तब्धपूर्णोदरता शूलं वात-पुरीषसंगः कडूमंडलप्रादुर्भावो भवति तमास्थाप्य पुनः संस्नेह्य विरेचयेत्तीक्ष्णेन ॥ ११ ॥ नातिप्रवर्तमाने तिष्ठति वा दुष्टसंशोधने तत्संतेजनार्थमुष्णोदकं पाययेत् पाणितापैश्च पार्श्वोदरमुपस्वेदयेत् ततः प्रवर्तंते दोषाः ॥ १२ ॥ अनुप्रवृते चाल्पदोषे जीर्णौषधं बहुदोषमहःशेषं बलं चावेक्ष्य भूयो मात्रां विदध्यात् । अप्रवृत्तदोषं दशरात्रादूर्द्ध्वमुपसंस्कृतदेहं स्नेहस्वेदाभ्यां भूयः शोधयेत् ॥ १३ ॥

विना स्नेहन स्वेदन किये हलका विरेचन लेलेनेसे (कभी कभी) नाभिके नीचे रुकावट पेटमें भारीपन दरद अधोवायु और दस्त रुकजाना खाज और चकद्दे होजाते हैं ऐसा होनेमें उसे आस्थापन बस्ति देकर फिर स्नेहन कराके तीक्ष्ण विरेचन देवे ११॥ यदि रेचनी औषध पीवे पीछे दस्त न लगे या शोधनी औषध दूषित हुई पेटमें ठैर जावे (गुडगुडा हठ नहीं करे) तो उसके उत्तेजन करनेको गरम पानी पिलावे हाथ सेक सेक कर रोगीके पँसवाडे और पेटको तपावे ऐसे करनेसे दस्त होने लगेंगे ॥ १२॥ यदि थोडेसे दस्त होकर औषध पच जावे तो देखे कि दोष बहुत रहे हैं और दिनभी बहुत बाकी है और बलभी है तब उसी समय और मात्रा देके साफ करे। यदि गरम जल पिलाने आदि उत्तेजन करने परभी दस्त न लगे तो दश दिन ठैर कर फिर स्नेहन स्वेदनसे शरीरका संस्कार करकरके फिर शोधन करे (फिर जुल्लाब देवे) ॥ १३ ॥

दुर्विरेच्यमास्थाप्य पुनः संस्नेह्य विरेचयेत् । ह्रीभयलोभैर्वेगावातशीलाः प्रायशः स्त्रियो राजसमीपस्था वणिजः श्रोत्रियाश्च भवंति तस्मादेते दुर्विरेच्या बहुवातत्वादेत एव तानतिस्निग्धान् स्वेदोपपन्नान् शोधयेत् ॥ १४ ॥

दुर्विरेच्य मनुष्योंको पहले आस्थापन बस्ति करके फिर स्नेहन करके विरेचन कराना चाहिये । लज्जा भय लोभ आदिके कारण दस्तके वेग रोकनेवाले प्रायः स्त्री तथा राजाके पास वाले दुकानदार और श्रोत्रिय (वेदपाठी विद्यार्थी कर्मकांडी आदि) मनुष्य होते हैं (अर्थात उपरोक्त मनुष्य प्रायः दस्तोंके वेगको रोका करतेहैं) इससे वायु बढ कर (या ऊर्द्धगामी होके) वे मनुष्य दुर्विरेच्य होजातेहैं अर्थात् इन्हें ठीक दस्त नहीं आते इस वास्ते इनको अत्यंत स्नेहन और स्वेदन कराके विरेचन देवे ॥ १४ ॥

अति योगकेउपद्रव ।

स्निग्धस्विन्नस्यातिमात्रमतिमृदुकोष्ठस्य वा तीक्ष्णाधिकदत्तमौषधमतियोगं कुर्यात् ॥ १५ ॥ तत्र वमनातियोगे पित्तातिप्रवृत्तिर्बलविस्रंसो वातकोपश्च बलवान् भवति तं घृतेनाभ्यज्यावगाह्य शीतास्वप्सु शर्करा मधुमिश्रैर्लेहैरुपचरेद्यथास्वम् ॥ १६ ॥

अत्यन्त स्नेहन स्वेदन किये हुये अतिमृदु कोठेवाले मनुष्यको तीक्ष्ण या अधिक औषध दी जानेसे वह अतियोग करती हैं (अनुमानसे जादा वमन रेचन करती है) ॥ १५ ॥ इनमेंसे वमन जादे होनेसे पित्त अधिक निकल जाता है बलका नाश होता है तथा अत्यंत ही वायुका कोप होता है ऐसा होने पर उसे घृतसे अभ्यंग करके शीतल जलमें स्नान कराके मिश्री शहतसे मिले हुए यथायोग्य अवलेहोंसे उपचार करे ॥ १६ ॥

विरेचनातियोगे कफस्यातिप्रवृत्तिरुत्तरकालं च सरक्तस्य तत्रापि बलविस्रंसो वातकोपश्च बलवान्भवति । तमतिशीतांबुभिः परिषिच्यावगाह्य वा शीतैस्तंडुलांबुभिर्मधुमिश्रैश्छर्दयेत् । पिच्छाबस्तिं चास्मै दद्यात्, क्षीरसर्पिषा चैनमनुवासयेत्, प्रियंग्वादिं चास्मै तंडुलांबुना पातुं प्रयच्छेत्, क्षीररसयोश्चान्यतरेण भोजयेत् ॥ १७ ॥

विरेचनका अतियोग होनेसे कफका जादे निकलना और पीछे रक्तमिला कफ दस्तोंमें आना इसमें भी बल नष्ट होता तथा अत्यंत ही वायुका कोप होताहै एसा होनेमें खूब ठंढे पानीके तरडे देना या स्नान कराना चाहिये और शीतल चावलोंके जलमें शहत मिलाकर उससे वमन करावे और पिच्छल बस्ति देवे और दूध घृतकी अनुवासनबस्ति करावे और चावलोंके पानीके संग प्रियंग्वादि गणकी औषध पिलावे और दूध या रसके संग भोजन करावे (दूध भात खिलावे) ॥ १७ ॥

तस्मिन्नेव वमनातियोगे प्रवृद्धे शोणितं ष्ठीवति छर्दयति वा तत्र जिह्वानिःसरणमक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहननं तृष्णा हिक्का ज्वरो वैसंज्ञादीत्युपद्रवा भवंति । तमजासृक्चंदनोशीरांजनलाजाचूर्णैः सशर्करोदकैर्मंथं पाययेत् । फलरसैर्वा सघृतक्षौद्रशर्करैः, शुंगाभिर्वा वटादीनां, पेयां सिद्धां सक्षौद्रां, वर्चोग्राहिभिर्वा, पयसा जांगलरसेन वा भोजयेत्, । अतिस्रुतशोणितविधानेनोपचरेत् ॥ १८ ॥

वमनके अति योगके बढजानेपर रुधिर थूकने और रुधिरकी वमन होने लगती हैं जिससे जीभ निकल आना आंखें फटना ठोडी अकड जाना तृषा हिचकी ज्वर और बेहोशी आदि उपद्रव होते हैं ऐसा होनेमें बकरेका रुधिर चंदन खस रसोत धानकी खीलका चूरा और खांड तथा जल इन सबको मथकर (छानकर) पिलावे (रुधिरसे घृणावाले मनुष्य बकरीका दूध लेकर मंथ बनावे) फलोंको रसमें घृत शहत खांड मिलाकर इससे या वटादि वृक्षोंकी कोपलोंसे अथवा मलके रोकनेवाली औषधोंके संग अथवा दूध या जंगली जीवोंके मांसके रसके संग सिद्ध करी हुई पेयामें शहत मिलाकर भोजन करावे और अति रुधिर निकलनेके (रक्तपित्तोक्त) विधानसे उपचार करे ॥ १८ ॥

जिह्वामतिसर्पितां त्रिकटुकलवणचूर्णप्रवृष्टां तिलद्राक्षाप्रलिप्तां वा पीडयेत् प्रविष्टायामम्लमन्ये तस्य पुरस्तात्स्वादयेयुः । व्यावृत्ते चाक्षिणी घृताभ्यक्ते पीडयेत् । हनुसंहनने वातश्लेष्महरं नस्यं स्वेदांश्च विदध्यात् । विसंज्ञे वेणुवीणागीतस्वनं श्रावयेत् ॥ १९ ॥

जिह्वा जो अधिक बाहर निकल आई हो उसपर त्रिकटु और लवण घिसकर तिल और दाखका लेप करके पीडन करे (भीतरको प्रवेश करे) जब भीतर प्रवेश हो जावे तब और मनुष्य उसके सामने बैठकर दिखा दिखाकर अम्ल (नींबूमें नमक लगा हुवा) चूंसे ऐसे करनेसे उसके मुँहमें पानीसा भरेगा जिससे जीभ मुलायम होगी) । आखें फटें या निकलें तो उनपर घृत लगाकर मल दे या बांध दे । ठोडी अकड जावे तो वायु कफनाशक नास देवे या वायु कफनाशक द्रव्योंसे स्वेदित करे । संज्ञानाश (बेहोशी) हो तो वंशी या वीणाके गीत सुनावे ॥ १९ ॥

विरेचनातियोगे च सचंद्रकं सलिलमधः स्रवति ततो मांसधावनप्रकाशमुत्तरकालं च जीवशोणितंच ततो गुदनिःसरणं वेपथुर्वमनातियोगोपद्रवाश्चास्य भवंति तमपि निस्रुतशोणितविधानेनोपचरेत् ॥ २० ॥ निःसर्पितगुदस्य गुदमभ्यज्य परिस्वेद्यांतः पीडयेत् क्षुद्ररोगचिकित्सितं वा वीक्षेत वेपथौ वातव्याधिविधानं कुर्वीत जिह्वानिःसरणादिषूक्तः प्रतीकारः ॥ २१ ॥

विरेचनका अतियोग बढ जानेपर मोरपंखके चंदे जैसा सुनहरा पानीही दस्तोंमें आना (अथवा मोरपंखके चंदे जैसे छींछडेदार पानीही दस्तोंमें आना) फिर मांसके धोवन सरीखा पानी आना अंतको जीवसंज्ञक रुधिर निकलना और काँच निकल आवना कंप होजाना तथा वमनके अतियोगके उपद्रव (जिह्वा निकलना नेत्र फट

जाना बेहोशी आदि) भी होजाते हैं ऐसा होनेपर भी रुधिर अति निकलनेके विधानसे चिकित्सा करे (चंदन लाजा आदिका मंथ पिलावे) ॥ २० ॥ यदि काँच निकल आवे तो उसपर चिकनाई लगाकर जरा गरम करके भीतरको प्रविष्टकर दे अथवा क्षुद्र रोगोक्त गुदभ्रंशका यत्न करे । कंप होजावे तो वात व्याधिका विधान करे (कट्फल आदिका मर्दन करे) और जिह्वा निकलना आदि उपद्रव होंतो उनका विधान पहले अति वमनके योगमें अभी लिख चुके हैं उस भांति करे ॥ २१ ॥

जीवादान उपाधिका यत्न ।

अतिप्रवृत्ते वा जीवशोणिते कश्मरीफलबदरीदूर्वोशीरैः शृतेन पयसा घृतमंडांजनयुक्तेन सुशीतेनास्थापयेत् । न्यग्रोधादिकषायक्षीरेक्षुरसघृतशोणितसंसृष्टैश्चैनं बस्तिभिरुपाचरेत् । शोणितष्ठीवने रक्तपित्तरक्तातिसारक्रियाश्चास्य विदध्यात् । न्यग्रोधादिं चास्य विदध्यात्पानभोजनेषु ॥ २२ ॥

यदि जीव शोणित अधिक निकलने लगे तो खंभारी फल वेर दूब खस इनसे औटाये हुए दूधमें घृत मांड रसोत मिला ठंढाकर उससे आस्थापन बस्ति करे । और न्यग्रोधादिकके क्वाथ दूध ईखका रस घृत रुधिर मिलाकर बस्ति करे । रुधिर थूकनेमें रक्तपित्त और रक्तातिसारकी क्रिया करे और न्यग्रोधादिगण रोगीके पीने तथा भोजनकी वस्तुवोंमें मिलावे ॥ २२ ॥

रक्तपित्त और जीव शोणितकी परीक्षा ।

जीवशोणितरक्तपित्तयोश्च जिज्ञासार्थं तस्मिन् पिचुप्लोतं वा क्षिपेत् यद्युष्णोदकप्रक्षालितमपि वस्त्रं रंजयति तज्जीवशोणितमवगंतव्यम् । सभक्तं च शुने दद्यात् सक्तुसंमिश्रं वा स यद्युपभुंजीत तज्जीवशोणितमवगंतव्यम् ॥ २३ ॥

जीव शोणित और रक्तपित्तके ज्ञानके लिये ऐसा करे कि उसमें रुईका (सुपेद) कपडा भिगो ले और फिर उसे गरम जलसे धोवे यदि वस्त्रमें सुरखी रहे तो उसे जीव शोणित जाने (और यदि रंग धुल जावे तो रक्त पित्त जाने) अथवा उस रक्तको भात या सत्तूमें मिलाकर कुत्तेको खिलावे अगर कुत्ता खाजावे तो उसे जीव शोणित जाने (जो नही खावे तो रक्त पित्त) (जीव शोणितके अधिक निकलनेसे मनुष्य तात्काल मर जाता है और रक्तपित्तके रक्तसे नही मरता इस कारण जीव शोणितकी बहुत रक्षा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

आध्मान ।

सशेषान्नेन बहुदोषेण रूक्षेणानिलप्रायकोष्ठेनानुष्णमस्निग्धं वा पीतमौषधमाध्मापयति। तत्रानिलमूत्रपुरीषसंगः समुन्नद्धोदरता पार्श्वभंगो गुदबस्तिनिस्तोदनं भक्तारुचिश्च भवति तं चाध्मानमित्याचक्षते । तमुपस्वेद्यानाहवर्तिदीपनबस्तिक्रियाभिरुपचरेत् ॥ २४ ॥

जिसका भोजन नहीं पचा हो और दोष बढे हुए हों तथा शरीर रूखा हो और कोठेमें वायु हो ऐसा मनुष्य यदि ठंढी और रूखी वमन रेचनकी औषध पीलेवे तौ उससे पेट अफर आता है जिससे अधोवायु मूत्र और.मल रुक जाते हैं और पेट ऊपरको फूल आता है पसवाडे फटजाने लगते गुदा और बस्तिमें दरद होता है भोजनमें रुचि नहीं होती इसे आध्मान कहते हैं ऐसा होने पर उसे स्वेदन कराके आनाहवर्ति (उदर) रोगोक्त करे तथा दीपन बस्ति करे ॥ २४ ॥

परिकर्तिका ।

क्षामेणातिमृदुकोष्ठेन मंदाग्निना रूक्षेण वा तीक्ष्णोष्णातिलवणमतिरूक्षं वा पीतमौषधं पित्तानिलौ प्रदूष्य परिकर्तिकामापादयति तत्र गुदनाभिमेढ्रबस्तिशिरःसु परिकर्त्तनमनिलसंगो वायुविष्टंभो भक्तारुचिश्च भवति तत्र पिच्छाबस्तिर्यष्टीमधुककृष्णतिलकल्कः मधुघृतयुक्तः । शीतांबुपरिषिक्तं चैनं पयसा भुक्तवंतं घृतमंडेन यष्टीमधूकसिद्धेन तैलेन वानुवासयेत् ॥ २५ ॥

दुर्बल मनुष्य जिसका कोठा मृदु हो और अग्नि मंद हो तथा शरीर रूक्ष हो ऐसा मनुष्य अति तीक्ष्ण गरम अति लवण युक्त और अति रूखी (विना चिकनाईके) विरेचन की औषध पी लेवे तो पित्त और वायुको दूषित करके परिकर्त्तिका (कतरनी जैसी पीडा) उत्पन्न कर देती है इसमें गुदा, नाभि, लिंग, बस्ति शिर इन स्थानोंमें कतरनीसी पीडा होती है वायुका वेग रुक जाता है और अधो वायु तथा मल स्तंभित हो जाते हैं और भोजनमें अरुचि होती है ऐसा होनेमें पिच्छल बस्ति करावे और मुलेटी काले तिल पीसकर शहत घृत मिलाकर देवे । तथा ठंढे पानीमें परिषेक करे (तरडे दे) और रोगीको दूधके संग भोजन कराके घृत मंड अथवा मुलेटी से सिद्ध किये हुये तैलकी अनुवासन बस्ति करे ॥ २५ ॥

(वा० २५) क्षामोदुर्बलः, अतितीक्ष्णोष्णातिलवणं पित्तं प्रकोपयति अतिरूक्षं च वायुं प्रदूषयाति । शीतांबुपरिषेचनं पैत्तिके, पैत्तिके च घृतमंडेनानुवासनं वातिकेच यष्टीमधुकतैलेनानुवासनं विधातव्यम् ॥

परिस्राव ।

क्रूरकोष्ठस्यातिप्रभूतदोषस्य मृद्वौषधमवचारितं समुत्क्लिश्य दोषान् न निःशेषानपहरति, ततस्ते दोषाः परिस्रावमापादयंति । तत्र दौर्बल्योदरविष्टंभारुचिगात्रसदनानि भवंति, सवेदनौ चास्य पित्तश्लेष्माणौ परिस्रवतस्तं परिस्रावमित्याचक्षते । तमजकर्णधवतिनिशपलाशकषायैर्मधुसंयुक्तैरास्थापयेत्, उपशांतदोषं स्निग्धं च भूयः संशोधयेत् ॥ २६ ॥

जिसका कोठा करडा हो और दोष बढे हुए हों उसे मृदु (हलकी) विरेचन की औषध दी जावे तो वह दोषोंको उखाड (उठा) द्रव करके निःशेष नहीं निकाल सकती इससे वे दोष परिस्राव पैदा करते हैं (थोडे थोडे बहुत दिनतक निकलतेही रहते हैं) इससे दुबलापन उदररोग मल रुकना (साफ दस्त न होना) अरुचि अंगोंमें थकाव ये उपद्रव होते हैं और वेदना (मरोडे) सहित पित्त और कफके थोडेसे भाग युक्त दस्त जारी होजाते हैं इसे परिस्राव कहते हैं ऐसा होने पर रोगीको अजकर्ण धव तिनिश पलाश इनके क्वाथमें शहत मिलाकर आस्थापन बस्ति करे और जब दोष शांत हो तब स्नेहन (स्वेदन) कराके फिर शोधन करे (फिर जुलाब देवे) ॥ २६ ॥

प्रवाहिका नामक उपद्रव ।

अतिरूक्षेऽतिस्निग्धे वा भेषजमवचारितमप्राप्तं वा वातवर्चं उदीरयेत् वेगाघातेन वा प्रवाहिका भवति तत्र सवातं सदाहं सशूलं सश्वेतं सपिच्छलं कृष्णं रक्तं वा भृशं प्रवाहमाणः कफमुपविशति तं परिस्रावविधानेनोपचरेत् ॥ २७ ॥

अतिरूक्ष या अति स्निग्ध मनुष्यको विरेचनकी औषध दी हुई न प्राप्त हो (कार्य न करे) तो वह वायु और मलको उल्बण कर देती है (उकसा देती है) और वेग रोकनेसे भी प्रवाहिका पैदा होती है इसमें वायु सहित दाहसहित शूलसहित और सुपेदी युक्त कुछ गाढा पन से मिला काला या लाल मल थोडा २ बारबार आता है और जब रोगी जोरसे किनछता है तो कफ भी थोडा निकलता है ऐसा होनेमें (प्रवाहिकामें) उपरोक्त परिस्रावके विधानसे उपचार करे ॥ २७॥

हृदयोपसरण ।

यस्तूर्ध्वमधो वा भेषजवेगं प्रवृत्तमज्ञत्वाद्विनिहंति तस्योपसरणं हृदि कुर्वं-

ति दोषाः । तत्र प्रधानमर्मसंतापाद्वेदनाभिरत्यर्थं पीड्यमानो दंतान् किटकिटायते उर्द्धताक्षो जिह्वां खादति प्रताम्यत्यचेताश्च भवति, तं परिवर्जयंति मूर्खाः । तमभ्यज्य धान्यस्वेदेन स्वेदयेद्यष्टिमधुकसिद्धेन च तैलेनानुवासयेत् । शिरोविरेचनं चास्मै तीक्ष्णं विदध्यात् । ततो यष्टिमधुकमिश्रेण तंडुलाम्बुना छर्दयेद्यथादोषोच्छ्रायेण चैनं बस्तिभिरुपाचरेत् ॥ २८ ॥

जो मनुष्य वमन या विरेचनकी औषध पीसकर उससे आवते हुए वमन या दस्तोंको अज्ञानसे रोंक लेते हैं उनके दोष हृदयकी तरफ गमन करते हैं तब प्रधान मर्म (हृदय) के संतापके कारण अत्यंत वेदनासे पीडित हुवा मनुष्य दांतोंको किटकिटाता (चबाता) है ऊपरको आखें फाड देता है जिह्वाको दांतोंसे काटता है फिर अंधेरीसी आकर मूर्छित (बेहोश) होजाता है जिसे मूर्ख वैद्य असाध्य मानकर छोड देते हैं (परंतु नहीं) ऐसा होनेपर रोगीको स्नेहाभ्यंग करके धान्यसे स्वेदित करे और मुलेठीसे सिद्ध किये तैलकी अनुवासन बस्ति करे तथा उसे तीक्ष्ण नास देकर शिरका रेचन करे और फिर मुलेठीसे मिले चावलोंके पानीसे वमन करावे और दोषोंके अनुसार बस्तिभी करे ॥ २८ ॥

विबंध ।

यस्तूर्द्धमधो वा प्रवृत्तदोषः शीतागारमुदकमनिलमन्यद्वा सेवेत तस्य दोषाः स्रोतःस्ववलीयमाना घनीभावमापन्ना वातमूत्रशकृद्ग्रहमापाद्य विबध्यंते तस्याटोपो दाहो ज्वरो वेदनाश्च तीव्रा भवन्ति तमाशु वामयित्वा प्राप्तकालां क्रियां कुर्वीत ॥ २९ ॥ अधोभागे त्वधोभागहरद्रव्यसैंधवाम्लमूत्रसंसृष्टं विरेचनं पाययेत् आस्थापनमनुवासनं च यथादोषं विदध्यात् यथादोषमाहारक्रमं चोभयतो भागे तूपद्रवविशेषान्यथास्वं प्रतिकुर्वीत ॥ ३० ॥

जिस मनुष्यने वमनकी औषध अथवा विरेचनकी औषध पान करी हो और वमन या दस्त आनेवाले हों इस समयमें यदि शीतल स्थानमें रहे या ठंढा पानी पीवे या ठंढी हवा जादा खावे या और कोई ऐसाही कारण होजावे तो उसके दोष मार्गोंमें लीन होकर गाढे होजाते हैं और अधो वायु मूत्र मल आदिकी रुकावट करके बंधा डाल देते हैं जिससे पेटपर अफारा दाह ज्वर और तीक्ष्ण वेदना

होजाती है ऐसा होनेमें उसे शीघ्र वमन कराकर यथायोग्य समयानुसार क्रिया करे ॥ २९ ॥ यदि अधोभाग (पक्काशय मलाशय) में उपद्रव होतो अधोभाग शोधक द्रव्य और सैंधव तथा अम्लरस और गोमूत्र मिलाकर विरेचन देवे तथा आस्थापन बस्ति और अनुवासन बस्तिभी दोषोंके अनुसार करे और आहारभी दोषोंके अनुसारही देवे और यदि दोनों भागोंमें (पक्काशय और आमाशयमें) उपद्रव होतो उनका यथायोग्य यत्न करे ॥ ३० ॥

या तु विरेचने गुदपरिकर्तिका तद्वमने कंठक्षणनं यदधःपरिस्रवणं स उर्द्ध्वभागे श्लेष्मप्रसेको यात्वधः प्रवाहिका सा तूर्द्ध्वं शुष्कोद्गारा इति ॥ ३१ ॥

जैसे विरेचनमें गुदस्थानमें कतरनीसी होती है वैसेही वमनमें कंठमें छीलनीसी होती है जैसे गुदामार्गसे मलका परिस्रवण होता है वैसे ऊर्द्ध भागमें मुखसे कफ वहना होता है जैसे नीचेके भागमें प्रवाहिका होती है वैसे ऊर्द्ध भागमें सूखी डकारें आना (अर्थात् जैसे विरेचनके दोषसे गुदपरिकर्तन परिस्रवण और प्रवाहिका होती है वैसे वमनके दोषसे कंठक्षणन कफ प्रसेक और शुष्कोद्गार होती हैं) ॥ ३१ ॥

भवति चात्र । यास्त्वेता व्यापदः प्रोक्ता दशपंच चतत्वतः ।
एता विरेकातियोगदुर्योगायोगजाः स्मृताः ॥ ३२ ॥
इति चिकित्सिते चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

यहां श्लोक है कि ये जो १५ व्यापत्ति (उपाधि) कहीं ये वास्तवमें विरेचन (वमन) के अतियोग या दुर्योग अथवा अयोगसे होती हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो नेत्रबस्तिप्रमाणप्रविभागचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम नेत्र (बस्तिकी नली) और बस्ति इनका प्रमाण और विभाग संबंधि चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

तत्र स्नेहादीनां कर्मणां बस्तिकर्म प्रधानतममाहुराचार्याः कस्मादनेककर्म्मकरत्वाद्बस्तेरिह बस्तिर्नानाविधद्रव्यसंयोगाद्दोषाणां संशोधनसंशमन

(वा० १) नीयतेऽनेनेति नेत्रं बस्तेर्नलिका ययाचौषधं नीयते तन्नेत्रमित्यर्थः स्नेहादीनां स्नेहनस्वेदनवमनरेचनादीनां, नानाविधद्रव्यसंयोगात् इति संशोधनशमनग्राहणवाजीकरणबृंहणकर्षणप्रीणनादिकौषधसंयोगात् बस्तिरेणादीनां मूत्राधारः तेनैतत्कर्म साध्यते तेन बस्तिकर्मेति प्रसिद्धम् ।

संग्राहणानि करोति क्षीणशुक्रं वाजीकरोति कृशं बृंहयति स्थूलं कर्षयति चक्षुः प्रीणयति वलीपलितमुपहंति वयः स्थापयति शरीरोपचयं वर्णबलमारोग्यमायुषः परिवृद्धिं च करोति बस्तिः सम्यगुपासितः ॥ १ ॥

सब स्नेहादि कर्मोंमें बस्ति कर्म आचार्योंने प्रधान कहा है क्योंकि एक बस्ति अनेक कार्य सिद्धकर सकती है यह बस्ति नानाप्रकारके द्रव्योंके संयोगसे दोषोंका शोधन शमन और संग्राहण सभी कर सकती है क्षीण वीर्यवालेको वाजीकरण है दुबलेको मोटा कर सकती है और स्थूलको हलका कर देती है नेत्रोंकी तृप्ति करती है और शरीरमें बुढापेकी झुर्री और सुपेद बाल होनेको दूर करती है तथा आयुको स्थिर करती है यहांतक है कि बस्तिका ठीक उपयोग होना शरीरकी वृद्धि रूप बल निरोगता और आयुकी वृद्धिभी कर सकता है ॥ १ ॥

बस्तिकर्मके योग्य रोगी ।

तथा ज्वरातिसारतिमिरप्रतिश्यायशिरोरोगाधिमंथार्दिताक्षेपकपक्षाघातैकांगसर्वांगरोगाध्मानोदरशर्कराशूलवृद्ध्युपदंशानाहमूत्रकृच्छ्रगुल्मवातशोणितवातमूत्रपुरीषोदावर्तशुक्रार्तवस्तन्यनाशहृद्धनुमन्याग्रहार्शोऽश्मरीमूढगर्भप्रभृतिषु चात्यर्थमुपयुज्यते ॥ २ ॥

ज्वर अतीसार तिमिर (अंधेरी आना) जुखाम शिरके रोग अधिमंथ नाम नेत्र रोग अर्दित वायु आक्षेपकवायु पक्षाघात एकांग रोग सर्वांग रोग अफारा उदररोग शर्करा शूल अंडवृद्धि उपदंश आनाह (पेटफूलना) मूत्रकृच्छ्र गुल्म वातरक्त वायुरोग मूत्र पुरीषके रोग उदावर्त और वीर्य स्त्रीका आर्तवरक्त तथा दूध इनका नाश (कम होना) हृदय ठोंडी और मन्याका रुकजाना बवासीर पथरी मूढगर्भ इत्यादि रोगों में बस्तिका उपयोग अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥

भवतिचात्र ॥ बस्तिर्वाते च पित्ते च कफे रक्ते च शंस्यते ।
संसर्गे सन्निपाते च बस्तिरेव हितः सदा ॥ ३ ॥

यहां श्लोक है कि ॥ वायु (के रोगों)में पित्तमें कफमें तथा द्वंद्वज (रोगों) में अर्थात् वायुपित्त कफवायु और कफपित्त दो दो मिले हुवोंमें तथा सन्निपातमें (सब दोष मिले हुओंमें) सब जगह बस्तिकर्म श्रेष्ठ होता है ॥ ३ ॥

नेत्र (नली) और मात्रा आदिका प्रमाण।

तत्र सांवत्सरिकाष्टद्विरष्टवर्षाणां षडष्टदशांगुलप्रामाणानि कनिष्ठिकानामिकामध्यमांगुलिपरिणाहान्यग्रेध्यर्द्धांगुलद्व्यंगुलार्द्धतृतीयांगुलसंनिविष्टकर्णिकानि कंकश्येनबर्हिपत्रनाडीतुल्यप्रवेशानि मुद्गमाषकलायमात्रस्रोतांसि विदध्यान्नेत्राणि ॥ ४ ॥ तेषु त्वास्थापनद्रव्यप्रमाणमातुरहस्तसंमितेनप्रसृतेनसंमितौ प्रसृतौ द्वौ चत्वारोऽष्टौ विधेयाः ॥ ५ ॥

नलीका प्रमाण इस भांति जाने कि एक वर्षकी अवस्थावाले बालक तथा आठ वर्षकी अवस्थावाले और सोलह वर्षकी अवस्थावालेके लिये छः अंगुल आठ अंगुल और दश अंगुल लंबी क्रमसे नली बनावे जो कनिष्ठिका अनामिका और मध्यमा अंगुलीकी मुटाईके समान (बीचसे) हो और उसके अगाडी आधे अंगुल दो अंगुल और साढे तीन अंगुल क्रमसे प्रवेश करनेकी नाली होकर वहां कर्णिका (निकसवां किनारे) हो (यह किनारा छत्राकर बीचमें इस लिये होता है कि इसके अगाडीहीका भाग भीतर प्रविष्ट हो) और कंक पक्षी शिकरा और मोरकी पांख जैसी नली प्रवेशकी हो तथा मूग उडद और मटरके बराबर छिद्रवाली नाली यथा क्रम बनावे ॥४॥ और आस्थापन द्रव्यका प्रमाण रोगीके हाथ की हथेलीमें जितना आवे वैसी प्रसृति प्रमाणसे दो प्रसृति चार प्रसृति और आठ प्रसृति हों ॥ ५ ॥

वर्षोत्तरेषु[1] नेत्राणां[4] बस्तिर्मानस्य[5] चैव[6][7] हि[8] ।
वयो[2]बलशरीराणि समीक्ष्य[3] वर्द्धये[10]द्विधिम्[9] ॥ ६ ॥

वर्षोंके अनुसार अवस्था बढनेपर नेत्रोंका प्रमाण और बस्तिका प्रमाण (तथा मात्राका प्रमाण) अवस्था बल आर शरीरको देखकर बढा लेना उचित है ॥ ६ ॥

पंचविंशतेरूर्द्ध्वं द्वादशांगुलमूलेंगुष्ठोदरपरिणाहमग्रे कनिष्ठिकोदरपरिणाहमग्रे त्र्यंगुलसंनिविष्टकर्णिकं गृध्रपत्रनाडीतुल्यप्रवेशं कोलास्थिमात्रं छिद्रं क्लिन्नकलायमात्रं छिद्रमित्येके सर्वाणि मूले बस्तिनिबंधनार्थं द्विकर्णिकानि। आस्थापनद्रव्यप्रमाणं तु विहिता द्वादशप्रसृताः सप्ततेरूर्द्ध्वं नेत्र प्रमाणमेतदेव द्रव्यप्रमाणं तु द्विरष्टवर्षवत् ॥ ७ ॥

(वा० ४) सांवत्सरिकेत्यादि यथा संख्येन सांवत्सरिकबालस्य निरूहयंत्रं षडंगुलप्रमाणं तत्कनिष्ठिका॰परिणाहमग्रेध्यर्द्धांगुलसंनिविष्टकार्णिकं कंकपत्रनाडीतुल्यप्रवेशमूलमुद्गतुल्यस्रोतः इति क्रमेणाष्टवर्षषोडशवर्षयोरपि विदध्यात्, कर्णिका छत्राकारगुदत्रिकातः प्रवेशरोधिनी इति (नि. सं.)।

(वा० ५) प्रसृतोऽत्र कुंचितांगुलिपाणिमात्रं नतु पलद्वयं इति गयदासाचार्यः।

पच्चीस वर्षसे ऊपर नली बारह अंगुल लंबी चाहिये और पिछाडीसे अंगूठे जैसी मोटी और अगाडीसे कनिष्ठिका जैसी गोल होवे और तीन अंगुल प्रविष्ट नलीके पीछे कर्णिका (किनारा) होना चाहिये गीधके पक्षकी डंडी जिसमें आ जावे और बेरकी गुठली जितना छिद्र रहे कई ऐसा कहते हैं कि भीगकर फूली हुई मटरके समान छिद्र होना चाहिये और सब नलियोंकी जडमें निबंधनके लिये दो किनारे चाहियें अर्थात् नलीके पिछाडीमें उसके बस्ती बँधी रहे इसलिये दो किनारे या बढे होने चाहियें)। और आस्थापन द्रव्यका प्रमाण तो बारह प्रसृत चाहियें तथा सत्तर वर्षसे ऊपर नेत्रका प्रमाण यही और औषधका प्रमाण सोलह वर्षवालेके तुल्य हो ॥ ७ ॥

तत्र नेत्राणि सुवर्णरजतताम्रायोरीतिदंतशृंगमणितरुसारमयानि श्लक्ष्णानि दृढानि गोपुच्छाकृतीनि ऋजूनि गुटिकामुखानि ॥ ८॥ बस्तयश्चावृद्धानां मृदवोनातिबहला दृढाः प्रमाणवंतो गोमहिषवराहाजोरभ्राणाम् ॥ ९ ॥

इसमें नेत्र (अर्थात् अगाडीकी नली) सुवर्ण चांदी ताँबे लोहे पित्तलके अथवा हाथी दांतके सींगके मणि (जवाहरात या काच) के तथा लकडीके चाहियें और वे साफ दृढ गावदुम सीधे और गोल मुहवाले बनावे ॥ ८ ॥ और बस्ति जो बूढे नहो ऐसे बैल भैंसे सूकर बकरे तथा मेंढेकी (चर्ममय) (मूत्राधार स्थानकी) कोमल न बहुत बडी हो किंतु मजबूत और प्रमाणकी होवे ॥ ९ ॥

नेत्रालाभे हिता नाडी नलवंशास्थिसंभवा । बस्त्यलाभे हितं चर्म सूक्ष्मं वा तांतवं घनम् ॥ १० ॥ बस्तिं निरुपदिग्धं तु शुद्धं सुपरिमार्जितम् । मृद्वनुद्धतहीनं च मुहुः स्नेहविमर्दितम् ॥ ११ ॥ नेत्रमूले प्रविष्टाप्य न्युब्जं तु विवृताननम् । बद्ध्वा लोहेन तप्तेन चर्मस्रोतांसि निर्दहेत् ॥ १२ ॥

उपरोक्त सुवर्णादिके नेत्र (नली) न बन सके तो नरसलकी या वांसकी या हड्डीकी नली बना लेनी चाहिये और जो वृष महिष आदिकी बस्ति (मूत्राधार चर्म) न मिल सके तो सूक्ष्म चर्म (पतले चमडे जैसे बकरीके थन इत्यादिकी बनावे) या गाढे कपडे (मोमजामें आदि) की बनावे ॥ १० ॥ वह बस्ति किसी पदार्थसे लिहसी हुई न हो शुद्ध हो धुली हुई साफ हो कोमल हो कहींसे जादे

(वा० ९) बस्तिविधौ भावमिश्रः " मृगाजशूकरगवां महिषस्यापिवाभवेत् । मूत्रकोशस्य बस्तिस्तु तदलाभेतु चर्मणः" इति ।

उभरी या सुकडी न हो और बारबार तैल मलकर चिकनी कीहुई हो इस बस्तिके नेत्र (नली) के मूलमें ओंधी इस प्रकार प्रवेश करे कि चौडा मुह ऊपर को खुला हुवा रहे और तंग मुह नलीसे बंध सके फिर उसे खूब करडा बांधकर गरम लोहसे उसके झिरावके छिद्र तप्त कर दे जिससे रिसे नहीं ॥ ११ ॥ १२ ॥

३ कर्णिका बस्ति
१ नेत्र ५ ६ ७
२
४ कर्णिका कर्णिका
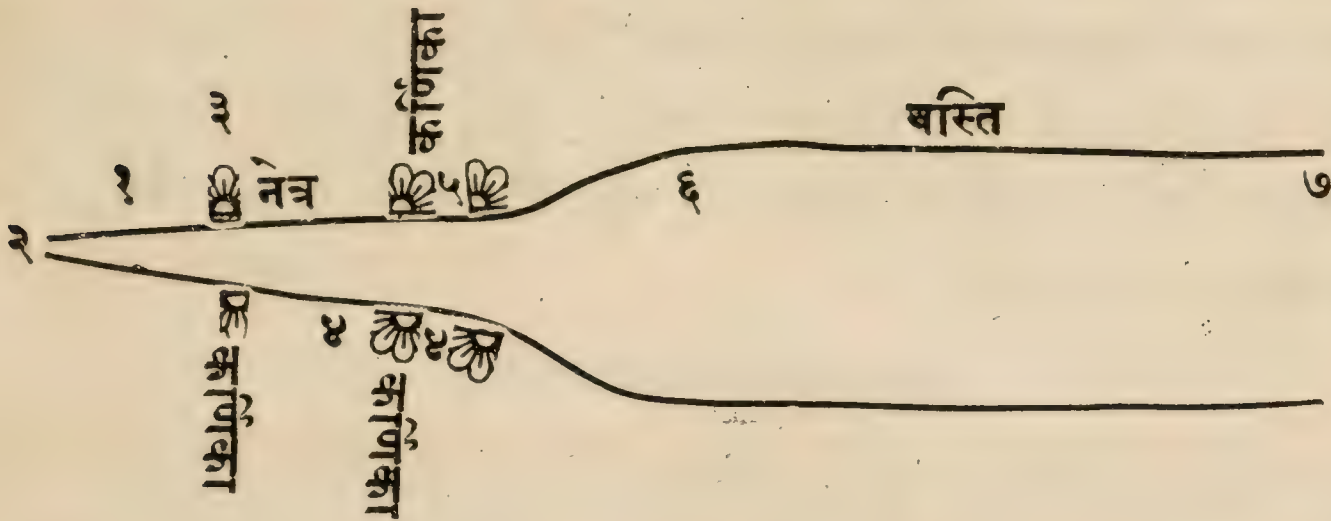
बस्तिका चित्र ऊपर लिखा है यद्यपि इस समयके लोग साधारण बस्तिको पिचकारी जानतेहैं पर बस्ति पिचकारी नहीं होती हां पिचकारीका काम देती है इसमें १ नेत्रका अग्रभाग है २ छिद्र है ३ कर्णिका है ४ नेत्रका मूल है ५ वह स्थान है जहां दो कर्णिका हैं और वहां बस्ति बंधी है ६ ये चर्म बस्ति है ७ बस्तिका ऊपरी मुख है इसमें औषध तैलादि भर कर दबानेसेही भीतर प्रविष्ट होता है और नेत्रका अग्र भाग भीतर प्रवेश किया जाता है जहांतक कर्णिका है वहांतक प्रवेश होता है ॥

परिवर्त्य ततो बस्तिं बद्ध्वा गुप्तं निधापयेत् । आस्थापनं च तैलं च यथावत्तेन दापयेत् ॥ १३ ॥ मृदुर्बस्तिः प्रयोक्तव्यो विशेषाद्बालवृद्धयोः । तयोस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु बस्तिर्हिंस्याद्बलायुषी ॥ १४ ॥

उपरोक्त प्रकारकी बस्ति बनवाकर वैद्य उसे रक्षा पूर्वक बांधकर रक्खे और आस्थापन द्रव्य तथा तैल इसके द्वारा प्रविष्ट करे ॥ १३ ॥ और जहांतक हो कोमल द्रव्योंकी बस्ति करे विशेषकर बालक और वृद्धको अवश्यमेव कोमल द्रव्योंकी बस्ति करना क्योंकि इनको तीक्ष्ण बस्तिके उपयोग करनेसे उनके बल और आयुका नाशकर देती है ॥ १४ ॥

तत्र द्विविधो बस्तिः निरूहिकः स्नैहिकश्च आस्थापनं निरूह इत्यनर्थान्तरं तस्य विकल्पो माधुतैलिकः । तस्य पर्यायशब्दोपायनो युक्तरथः सिद्धबस्तिरिति । स दोषनिर्हरणाच्छरीररोगहरणाद्वा निरूहः वयस्थाप-

(गद्य १५) बस्तिर्द्विविधः नैरूहिकःस्नैहिकश्च आस्थापनंनिरूह इति अनर्थांतरं न अर्थांतरमित्यर्थः एकार्थकमिति स्पष्टार्थः ।

नादायुःस्थापनाद्वास्थापनं माधुतैलिकविधानं च निरूहक्रमचिकित्सिते वक्ष्यामः ॥ १५ ॥

बस्ति दो प्रकारकी होती है १ निरूह बस्ति २ स्नेह बस्ति आस्थापन और निरूह इनका एकही अर्थ (मतलब) है और इसीका भेद माधुतैलिक है इसके पर्याय शब्द पायन युक्तरथ और सिद्ध बस्तिभी है । दोषोंके निकालनेसे अथवा शरीरके रोग हरण करनेसे इसे निरूह कहते हैं तथा अवस्था स्थापनसे अथवा आयुःस्थापनसे इसे आस्थापन कहते हैं । माधुतैलिकका विधान निरूह क्रम चिकित्सामें कहेंगे ॥ १५ ॥

अनुवासन बस्ति ।

तत्र यथा प्रमाणगुणविहितः स्नेहबस्तिविकल्पोऽनुवासनः पादावकृष्टः अनुवसन्नपि नदुष्यत्यनुदिवसं वा दीयते इत्यनुवासनः तस्यापिबिकल्पोऽर्द्धार्द्ध-मात्रावकृष्टोऽपरिहार्योमात्राबस्तिरिति ॥ १६ ॥

इसी प्रकार प्रमाण और गुणके अनुसार स्नेह बस्तिका भेद अनुवासन बस्ति है उसमें निरूहकी अपेक्षा पौनी मात्रा दीजाती है । जो अनुवास (बासीहो) करके भी दूषित नहो अथवा दिन दिन प्रति दीजावे उसे अनुवासन कहते हैं उसके भी भेद हैं जैसे अर्द्धार्द्ध मात्रा आधी आधी करना तथा अवकृष्ट (कुछ मात्रा घटा देना) अपरिहार्य (पूरी मात्रा रखना) तथा मात्रा बस्ति (थोडीसी मात्रा लेनी) ॥ १६ ॥

निरूहः शोधनो लेखी स्नेहनो बृंहणो मतः। निरूहशोधितान्मार्गात् सम्यक् स्नेहोनुगच्छति । अपेतसर्वदोषासु नाडीष्विव वहअलम् ॥ ॥ १७ ॥ सर्वदोषहरश्चासौ शरीरस्य च जीवनः । तस्माद्विशुद्धदहस्य स्नेहबस्तिर्विधीयते ॥ १८ ॥

निरूहण बस्ति शोधन लेखन स्नेहन बृंहण सब होसकती है निरूहण बस्तिसे शुद्ध किये हुए मार्गसे स्नेह ठीक गमन करताहै जैसे नालोमसे सब दोष (कूडा कंकर) दूरकर देनेसे उसमें ठीक जल बहता है ॥ १७ ॥ इसी प्रकार जीवन

(वा० १६) पादावकृष्टः पादेन चतुर्थांशेन अवकृष्टः हीनः ।

(श्लो० १७) वहअलं इत्यत्र वहेज्जलं इति वा पाठांतरम् ।

(श्लो० १८) असौ निरूहः सर्वदोषहरः तस्मात् निरूहणात् विशुद्धदेहस्य स्नेहबस्तिर्विधीयते विधातुं योग्य इति ।

और शरीरके सब दोष दूर करनेवाली निरूहण बस्ति करके तिससे पीछे शुद्ध देह वालेको स्नेह बस्ति करना चाहिये ॥ १८ ॥

बस्ति कर्मके अयोग्य ।

तत्रोन्मादभयशोकपिपासारोचकाजीर्णार्शःपांडुरोगभ्रमदमूर्च्छाछर्दिकुष्ठ-मेहोदरस्थौल्यश्वासकासकंठशोषशोफोपसृष्टक्षतक्षीणचतुस्त्रिमासगर्भिणी-दुर्बलाग्न्यसहाबालवृद्धौ च वातरोगादृते क्षीणा नानुवास्यानास्थापयितव्याः ॥ १९ ॥

उन्माद, भय, शोक, तृषा,अरुचि, अजीर्ण, बवासीर, पांडुरोग, भ्रम,मद, मूर्च्छा, छर्दि, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, स्थूलता, श्वास, कास, कंठशोष और शोथ इन रोगोंवाले तथा क्षतसे क्षीण तीन चार महीनेकी गर्भवती मंदाग्निवाले जो असमर्थ हों बालक और वृद्ध तथा क्षीण ये वातव्याधिके सिवाय न अनुवासन करने योग्य होते हैं न आस्थापन बस्तिके योग्य (अर्थात् इनको यदि वात रोग हो तो बस्ति करे नहीं तो न करे) ॥ १९ ॥

(वक्तव्य) पहले अर्श रोगी बस्ति योग्य लिख आये हैं यहां अयोग्य लिखा इसका समाधान यही है कि वातप्रधान हो तो बस्तिकर्म करना चाहिये नहीं तो नहीं ऐसेही और कोईहो तो वहांभी यही समझें ॥

इसमें विशेषता ।

उदरी च प्रमेही च कुष्ठी स्थूलश्च मानवः । अवश्यं स्थापनीयाश्च नानुवास्याः कथंचन ॥ २० ॥ असाध्यतां विकाराणां स्यादेषामनुवासनात् । असाध्यत्वेपि भूयिष्ठं गात्राणां सदनं भवेत् ॥ २१ ॥

उदररोगी प्रमेहवाले कुष्ठी और स्थूल मनुष्य ये अवश्य स्थापन बस्तिके योग्य होते हैं इन्हें अनुवासन बस्ति कभी नही दे ॥ २० ॥ इनको अनुवासन बस्ति कर देनेसे इनके विकारोंमें असाध्यता हो जाती है और असाध्यता होकर शरीरमें बहुत शिथिलता हो जाती है ॥ २१ ॥

पक्काशये तथा श्रोण्यां नाभ्यधस्ताच्च सर्वतः । सम्यक्प्रणिहितो बस्तिः स्थानेष्वेतेषु तिष्ठति ॥ २२ ॥ पक्काशयाद्बस्तिवीर्यं खै र्देहमुपसर्पति ।

(गद्य १९) कुष्ठिनामर्शसांच मूढवातानां प्रयोज्य निरूहस्य वर्षादर्वाक् बालस्य तत्पूर्वं वृद्धस्य मृदुरपि बस्तिर्निहितः अतोन्यथा तीक्ष्णएव निषिद्ध इतिदिक् । एतेन अवस्थावशात् निषिद्धमपिकार्यस्यात् (इति नि. सं.)

(श्लो० २३) खैःसूक्ष्माछिद्रैः ।

वृक्षमूले निषिक्तानामपां वीर्यमिव द्रुमम् ॥ २३ ॥ स चापि सहसा बस्तिः केवलः समलोपि वा । प्रत्येति त्वीनि लैर्वीयमपानाद्यैर्विनीयते ॥ २४ ॥ वीर्येण बस्तिरादत्ते दोषानापादमस्तकात् । पक्वाशयस्थोवरगो भूमेरर्को रसानिव ॥ २५ ॥

पक्वाशय तथा कमर नाभिके नीचे सब जगह इन स्थानोंमें स्थित यथोक्त उपयोग करी हुई बस्ति (गुणकारिणी होती है) ॥ २२ ॥ पक्वाशयसे बस्तिका पराक्रम सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा समस्त शरीरमें इस प्रकारसे पहुंचता है जैसे वृक्षकी जडमें सींचे हुये जलका गुण समस्त वृक्षमें पहुंचजाता है ॥ २३ ॥ वह बस्ति द्रव्य शीघ्रही केवल या मलसे मिलकर उलटा गिर जाता है अपानादिक वायुओंसे वीर्यको (शरीरमें) प्राप्त कर देता है ॥२४॥ बस्ति पक्वाशयमें स्थित (प्राप्त) होकर पैरोंसे लेकर मस्तक पर्यंतके दोषोंको खैंच लेती है जैसे आकाशमें रहकर सूर्य पृथ्वीके रस (नमी) को खैंचता है ॥ २५ ॥

स कटीपृष्ठकोष्ठस्थान्वीर्येणालोड्य संचयान् । उत्खातमूलान्हरति दोषाणां साधुयोजितः ॥ २६ ॥ दोषत्रयस्य यस्माच्च प्रकोपे वायुरीश्वरः । तस्मात्तस्यातिवृद्धस्य शरीरमभिनिघ्नतः ॥ २७ ॥ वायोर्विहते वेगं नान्या बस्तेर्ऋते क्रिया । पवनाविद्धतोयस्य वेलावेगमिवोदधेः ॥ २८ ॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः । कुरुते परिवृद्धिं च बस्तिः सम्यगुपासितः ॥ २९ ॥

अच्छे वैद्यकी उपयोग करी हुई बस्ति कटि प्रदेश पीठ कोष्ठ (पेट) इन स्थानोंमें हुए दोषोंके संचयको विलोडन करके जडसे उखाडकर नष्ट करदेती है ॥ २६ ॥ क्योंकि तीनों दोषोंके कोप होनेमें प्रधान और प्रेरक वायु ही है इससे जब वायु बढकर शरीरका नाश करने लगे तब उस वायुके वेगको बस्तिकर्मके सिवाय कोई नहीं रोक सकता है जैसे पवनसे उझलते हुए समुद्रके वेगको वेला (उंच तट) के सिवाय कोई नहीं रोक सकता है ॥ २७ ॥२८॥ यथोक्त उपयोग करी हुई बस्ति शरीरकी मुटाई रूप बल आरोग्य तथा आयुकी वृद्धि करती है ॥ २९ ॥

बस्तिकी व्यापत्तियां
प्रणिधान दोष और नेत्र दोष ।

अत ऊर्द्ध्वं व्यापदो वक्ष्यामः ॥ तत्र नेत्रं चलितं विवर्तितं पार्श्वावपी-

---

(श्लो० २७।२८) अनयोर्मिलित्वान्वयः । दोषत्रयस्य कोपे वायुः ईश्वरः प्रधानः वेला उत्तुंगकूलमर्यादा ।

डितमत्युत्क्षिप्तमवसन्नं तिर्यक्क्षिप्तमिति षट् प्रणिधानदोषाः ॥ ३० ॥ अतिस्थूलं कर्कशमवनतमणु भिन्नं सन्निकृष्टविप्रकृष्टकर्णिकं सूक्ष्मातिच्छिद्रमतिदीर्घमतिह्रस्वमित्येकादश नेत्रदोषाः ॥ ३१ ॥

इसके अगाडी हम बस्तिकी व्यापत्तियों (खराबियों तथा उपाधियों) का वर्णन करते हैं ॥ इनमेंसे ६ "प्रणिधान दोष" (नाली प्रवेश करके लगाने) के दोष होते हैं जैसे १ नेत्र (नली) कंपित होवे २ उलट आवे ३ एक पार्श्वमें रगडी जावे ४ ऊपरकी तरफ झुकाव हो ५ अवसन्न (नीचेको झुकाव हो) ६ टेढी तरफ झुकाव हो ॥ ३० ॥ "नेत्र (नली) के दोष" १ अति मोटी हो २ खुरधरी हो ३ टेढी हो ४ पतली हो ५ फटी या टूटी हो ६ जिसके अति निकट किनारा हो ७ दूर किनारा हो ८ बारीक छिद्र हो ९ अति चौडा छिद्र हो १० नली अति लंबी हो ११ अत्यंत छोटी हो ये ११ नेत्र (नली) के दोष हैं ॥ ३१ ॥

बस्तिके दोष और अवपीडनके दोष ।

बहुलताल्पता सच्छिद्रता प्रस्तीर्णता दुर्बद्धतेति पंच बस्तिदोषाः ॥ ॥ ३२ ॥ अतिपीडितता शिथिलपीडितता भूयोभूयोऽवपीडनं कालातिक्रम इति चत्वारः पीडनदोषाः ॥ ३३ ॥

"बस्तिके दोष" १ बहुत बडी होना २ अति छोटी होना ३ उसमें छिद्र होना ४ बहुत फैली हुई होना ५ ठीक बांधी न जाना ये पांच बस्तिके दोष होते हैं ॥ ३२ ॥ "अवपीडन दोष" १ अति दबा देना २ शिथिलतासे दबाना ३ बारबार या कई वार थोडा २ दबाना ४ समय चूककर दबाना ये चार अवपीडन अर्थात् दबानेके दोष हैं ॥ ३३ ॥

द्रव्यके दोष और शय्याके दोष ।

आमताहीनतातिमात्रताऽतिशीततात्युष्णताऽतितीक्ष्णताऽतिमृदुताऽतिस्निग्धताऽतिरूक्षताऽतिसांद्रतातिद्रवतेत्येकादश द्रव्यदोषाः ॥ ३४ ॥ अवाक्शीर्षोच्छीर्षन्युब्जोत्तानसंकुचितदेहस्थितता दक्षिणपार्श्वशायिनः प्रदानमिति सप्त शय्यादोषाः ॥ ३५ ॥

"द्रव्यदोष" १ कच्चा रहना २ कम मात्रा होना ३ अति मात्रा होना ४ अति शीतलता ५ अति उष्णता ६ अति तीक्ष्णता ७ अति मृदुता ८ अति स्निग्धता ९

(वा० ३५) अवाक्शीर्षः निम्नशिरस्कः, उच्छीर्ष उर्द्धशिरस्कः, न्युब्ज अधोमुखः ।

अति रूक्षता १० अति गाढापन ११ अति पतलापन ये ग्यारह दोष द्रव्य अर्थात् औषधके होते हैं ॥ ३४ ॥ "शय्या दोष" १ नीचा शिरकरना २ ऊंचा सिर करना ३ औंधा सोना ४ ऊपरको पाँव करके सोना ५ देह सकोडना ६ स्थितता (बैठे होना) ७ दाहनी करवट सोनेमें बस्ति देना ये सात शय्या अर्थात् बस्तिके समय सोनेके दोष हैं ॥ ३५ ॥

एवमेताश्चतुश्चत्वारिंशद्व्यापदो वैद्यनिमित्ताः आतुरनिमित्ताः ।
पंचदश आतुरोपद्रवचिकित्सिते वक्ष्यंते ॥ ३६ ॥

इस प्रकार ये उपरोक्त चवालीस व्यापत्तियां बस्तिकर्ममें वैद्यके कारणसे (वैद्यकी असावधानीसे) होती हैं और रोगीके कारण (असावधानी) से जो १५ व्यापत्तियां बस्तिकर्ममें होती हैं वे अगाडी आतुरोपद्रव चिकित्साध्यायमें वर्णन करी जावेगी ॥ ३६ ॥

(वक्तव्य) शय्या (सोने) के दोष तो रोगीके कारणसे होते हैं वे वैद्य कृतमें क्यों लिखे इसका समाधान यह है कि सावधान वैद्यको चाहिये कि उस समय रोगीको यथोक्त सुलावे ॥

स्नेहस्त्वष्टाभिः कारणैः प्रतिहतो न प्रत्यागच्छति त्रिभिर्दोषैरशनाभिभूतो मलव्यामिश्रो दूरानुप्रविष्टोऽस्विन्नस्यानुष्णोऽल्पोऽभुक्तवतोऽल्पाशनस्य चेति वैद्यातुरनिमित्ता भवन्ति ॥ ३७ ॥

स्नेहबस्तिमें स्नेह आठ कारणोंसे अवरुद्ध होकर उलटा नहीं निकलता है । तीनों दोषोंसे २ भोजनमें अभिभूत (प्राप्त) होनेसे ३ मलमें मिलनेसे ४ दूर पहुँच जानेसे ५ विना स्वेद किये हुए ६ ठंढा होनेसे ७ कम होनेसे ८ थोडा भोजन करनेसे (अर्थात् थोडासा भोजनकर बस्ति करानेसे) ये आठ ८ कारण स्नेह उलटा नहीं निकलनेके हैं ये वैद्य और रोगी दोनों के कारणसे होते हैं ॥ ३७ ॥

अयोगस्तूभयोराध्मानं परिकर्तिका परिस्रावः प्रवाहिका हृदयोपसरणं अंगप्रग्रहोऽतियोगो जीवादानमिति नव व्यापदो वैद्यनिमित्ता भवंति ॥ ३८ ॥

अयोग होना दोनोंके कारणसे होता है और आध्मान (अफारा) परिकर्तिका परिस्राव प्रवाहिका हृदयोपसरण अंगग्रह अतियोग और जीवादान ये उपाधियां बस्ति कर्ममें भी होती हैं (इनके लक्षण और अर्थ पिछाडी वमन विरेचन व्यापत् चिकित्साध्यायमें कह चुकेहैं) ये वैद्यके कारण से होती हैं ॥ ३८ ॥

(वा० ३७) प्रतिहतो रुद्धः अभिभूतः मिश्रितः ।

भवति चात्र ॥ षट्सप्ततिः समासेन व्यापदः परिकीर्तिताः ।
तासां वक्ष्यामि विज्ञानं सिद्धिं च तदनंतरम् ॥ ३९ ॥
इति चिकित्सिते पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

यहां श्लोक है कि ॥ बस्तिके और बस्ति कर्म के ७६ दोष (उपद्रव) संक्षेपतासे वर्णन किये अगाडी उनके विज्ञान (लक्षण) और उसके पीछे सिद्धि (यत्न) वर्णन करेंगे ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतटीकायां चिकित्सितस्थाने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो नेत्रबस्तिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम नेत्र और बस्तिकी व्यापत्तियोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

नेत्र (नलीके) प्रणिधान दोषके लक्षण यत्न ।

अथ नेत्रे विचलिते तथा चैव विवर्तिते । गुदे क्षतं रुजा वा स्यात्तत्र सद्यः क्षतक्रिया ॥ १ ॥ अत्युत्क्षिप्तेऽवसन्ने च नेत्रे पायौ भवेद्रुजा । विधिरत्रापि पित्तघ्नः कार्यः स्नेहैश्च सेचनम् ॥ २ ॥ तिर्यक् प्रणिहिते नेत्रे तथा पार्श्वावपीडिते । मुखस्यावरणाद्बस्तिर्न सम्यक्प्रतिपद्यते । ऋजुनेत्रं विधेयं स्यात्तत्र सम्यग्विजानता ॥ ३ ॥

यदि नेत्र (नली) हिलजावे (कंपित हो) अथवा विवर्तित होवे तो गुदामें जखम और पीडा होती है इसमें सद्यः घाव (जखम) की चिकित्सा करे ॥ १ ॥ यदि नली ऊपरको हो या नीचेको झुकजावे तो गुदामें पीडा होती है इसमें स्नेहका सेचन और पित्तनाशक विधि करनी चाहिये ॥ २ ॥ यदि तिरछी नली होजावे या पसवाडेकी तरफ झुक जावे तो मुख रुक जानेसे ठीक बस्ति कर्म नहीं होता (ठीक औषध नहीं पहुँचती) इस लिये बुद्धिमान्को चाहिये कि नली सीधी रक्खे ॥ ३ ॥

नेत्र दोषके लक्षण यत्न ।

अतिस्थूले कर्कशे च नेत्रे चावनते तथा । गुदे भवेत्क्षतं रुक् च साधनं पूर्ववत्स्मृतम् ॥ ४ ॥ आसन्नकर्णिके नेत्रे भिन्ने वाप्यपार्थकः । अवसेको भवेद्बस्तेस्तस्माद्दोषान्विवर्जयेत् ॥ ५ ॥ प्रकृष्टकर्णिके रक्तं

गुदमर्मप्रपीडनात् । क्षरेत्यत्रापि पित्तघ्नो विधिर्बस्तिश्च पिच्छलः ॥ ६ ॥ ह्रस्वे त्वणुस्रोतसि च क्लेशो बस्तिश्च पूर्ववत् । प्रत्यागच्छंस्ततः कुर्याद्रोगान्बस्तिविघातजान् ॥ ७॥ दीर्घे महास्रोतसि च ज्ञेयमत्यवपीडवत् ॥ ८॥

यदि नली अत्यंत मोटी हो तो खुरधरी हो या टेढी हो तो गुदामें घाव और पीडा होवे इसमें भी पहलेके अनुसार सद्यः क्षतकी चिकित्सा करे ॥ ४ ॥ अति निकट किनारा हो या नली फटी टूटी हो या पतली हो तो बस्ति निरर्थक होती है औषध बस्तिके स्थानमें ठीक न पहुँचकर गिर जाती है इससे इन दोषोंको दूर करे५॥ यदि नलीमें किनारा दूर हो तो गुदाके मर्म स्थानमें नली पहुँचकर उसमें पीडा करनेसे रुधिर निकलता है इसमें पित्तघ्न क्रिया करे और पिच्छल बस्ति करे ॥६॥ नली बहुत छोटी हो या छिद्र छोटा हो तो पूर्ववत् (आसन्नकर्णिकाकेतुल्य) क्लेश होता है उसमेंसे द्रव्य उलटा आनेमें बस्ति विघातजन्य (मूत्राघातादि) रोग पैदा करता है ॥ ७ ॥ यदि नली बहुत बडी या उसका छिद्र बहुत बडा हो तो अत्यवपीडनके समान दोष होता है ॥ ८ ॥

बस्ति दोषोंकेलक्षणयत्न ।

प्रस्तीर्णे बहले चापि बस्तौ दुर्बद्धदोषवत् । बस्तावल्पेल्पता वापि द्रव्यस्याल्पगुणा मताः । दुर्बद्धे चाणुभिन्ने च विज्ञेयं भिन्ननेत्रवत् ॥ ९ ॥

यदि बस्ति चौडी (फैली) जादा हो या बडी हो तो दुर्बद्धके समान दोष होता है (औषध ठीक नहीं पहुँचती) और जो बस्ति छोटी हो तो उसमें औषध स्वल्प आवेगी और न औषध स्वल्प आवेगी तो गुण भी अल्प होगा दुर्बद्ध (ठीक नबँधने) में या अणुभिन्न (छिद्र) होनेमें भिन्न नेत्रके समान निरर्थक होता है॥९॥

पीडनदोषके लक्षण यत्न ।

अतिप्रपीडितो बस्तिः प्रयात्यामाशयं ततः । वातेरितो नासिकाभ्यां मुखतो वा प्रपद्यते ॥ १० ॥ तत्र तूर्णं गलापीडं कुर्याच्चाप्यवधूननम् । शिरःकायविरेकौ च तीक्ष्णौ सेकांश्च शीतलान् ॥ ११ ॥

अति जोरसे बस्ति दबानेसे औषध आमाशयमें चली जाती है वायुकी पेरित नाक और मुखसे निकलने लगती है ॥ १० ॥ इसमें शीघ्र गलको मले और अवधूनन करे (बाल खोल कर फैलावे) और शिरोविरेचन और कायाका विरेचन कर तथा शीतल द्रव्योंका सेवन करे ॥ ११ ॥

(श्लो० ११) गलापीडं गलमर्दनं, अवधूननं केशादि उत्क्षिप्यचालनम् ।

शनैःप्रपीडितो बस्तिः पक्वाधानं न गच्छति। नं चं संपादयत्यर्थांस्तस्मा-युक्तं प्रपीडयेत् ॥ १२ भूयो भूयोवपीडेन वायुरतः प्रपीड्यंते। तेना-ध्मानं रुजश्चोग्रा यथास्वं तत्र बस्तयः ॥ १३ ॥ कालातिक्रमणात्क्लेशो व्याधिश्चाभिप्रवर्द्धते। तत्र व्याधिबलघ्नं तु भूयो बस्तिं निधापयेत्॥ १४॥

धीरे बस्ति दबानेसे औषध पक्काशयमें नहीं पहुंचती और प्रयोजन सिद्ध नहीं करती इस कारण यथायोग्य दबावें ॥ १२ ॥ बारबार दबानेसे वायु भीतर पीडित होती है जिससे अफारा और दारुण पीडा होती है इसमें यथायोग्य बस्ति करे॥१३॥ समय चूक कर (ठैरकर) बस्ति दबानेसे (बस्ति कर्म करनेसे) व्याधि बढती है। इसमें व्याधि का बल घटानेके लिये पुनः बस्ति करें ॥ १४ ॥

द्रव्य (औषधके) दोष।

गुदोपदेहशोफौ तु स्नेहोऽपक्वः करोति हि। तत्र संशोधनो बस्तिः हितं चापि विरेचनम् ॥ १५ ॥ हीनमात्रावुभौ बस्ती नातिकार्यकरौ मतौ। अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १६ ॥ मूर्च्छादाहमतीसारं पित्तं चाप्युष्णतक्ष्णकौ। मृदुशीतावुभौ वातविबंधाध्मानकारकौ ॥ १७ ॥ तत्र हीनादिषु हितः प्रत्यनीकक्रियाविधिः। तत्र सांद्रे तनुं बस्तिं तना सांद्रश्च दापयेत् ॥ १८ ॥ स्निग्धोतिजाड्यकृद्रूक्षः स्तंभाध्मानकृदुच्यते। बस्तिं रूक्षमतिस्निग्धे स्निग्धं रूक्षे च दाप-येत् ॥ १९ ॥

अपक्व (कच्चा) स्नेह या औषध गुदाके लिहस जाती है और शोथ पैदा करती है ऐसा होनेमें शोधन बस्ति करना और विरेचन देना हित है ॥ १५ ॥ हीन मात्राकी दोनों बस्ति (निरूहण और अनुवासन) ठीक कार्य नहीं करती तथा अति मात्रांकी दोनों बस्ति अफारा क्लम और अतिसार पैदा करती हैं॥१६॥ जादे गरम और तीक्ष्ण औषध मूर्च्छा दाह अतीसार और पित्त कारक होती हैं तथा शीतल और मृदु औषध बस्तिमें उपयोग करनेसे वायु और मलका बंध तथा आध्मान (अफारा) करती हैं ॥१७॥इनमें हीन मात्रा आदि दोष हो तो उनके प्रतिकूल क्रिया करनी चाहिये। यदि

(श्लो० १३) अंतः प्रपीड्यते उदरे प्रपीड्यते।
(श्लो० १५) गुदोपदेहः गुदलेपनम्।
(श्लो० १६) उभौबस्ती स्नेहबस्तिनिरूहणबस्तिश्च।
(श्लो० १८) सांद्रः घनः तनुः द्रवः।

सांद्र गाढी औषधकी बस्ति दी गई हो तो पतली औषधकी बस्ति पुनः देवे और यदि पतली औषधकी दी गई हो तो गाढीकी पुनः देवे ॥ १८ ॥ अति स्निग्ध द्रव्य जडता कारक है और रूक्ष स्तंभ (रुकावट) और अफारा करता है यदि अति स्निग्ध बस्तिसे उपद्रव हो तो रूक्षबस्ति देनी चाहिये और जो रूक्ष हो तो स्निग्ध बस्ति देवे ॥ १९ ॥

शय्या दोषके लक्षणयत्न ।

अतिपीडितवद्दोषान्विधिं चाप्यवशीर्षके। उच्छीर्षके समुन्नाहं बस्तिः कुर्याच्च मेहनम् ॥ २० ॥ तत्रोत्तरो हितो बस्तिः सुस्विन्नस्य सुखावहः । न्युब्जस्य बस्तिर्नाप्नोति पक्वाधानं विमार्गगः ॥ २१ ॥ हृद्गुदं बाधते चात्र वायुः कोष्ठमथापि वा । उत्तानस्यावृते मार्गे बस्तिर्नान्तः प्रपद्यते ॥ २२ ॥ नेत्रसंवेजनभ्रांतो वायुश्चांतः प्रकुप्यति । देहे संकुचिते दत्तः सक्थ्नोरप्युभयोस्तथा । न सम्यगनिलाविष्टो बस्तिः प्रत्येति देहिनः ॥ २३ ॥

बस्ति कर्मके समय नीचा सिर करनेसे (कमर नवा देनेसे) अति पीडितके समान दोष होते हैं और उसीके समान यत्न करना तथा ऊपरको सिरकर देनेसे (धड आगेको उभार देनेसे) समुन्नाह मेहन (अर्थात् स्निग्धता युक्त मूत्रता) करती है ॥ २० ॥ इस लिये ठीक स्वेदन करके सुख पूर्वक यथोक्त शयन करके उत्तर बस्ति करावे । और औंधा होनेसे बस्ति पक्वाशयमें नहीं पहुचती किंतु कुमार्ग गामी होजाती है ॥ २१ ॥ इससे हृदय और गुदामें पीडा होती है और वायुसे कोष्ठमें भी पीडा होती है । तथा उत्तान (चित्त हो ऊपरको पाव करनेसे) मार्ग रुक जाता है और बस्ति भीतर नही पहुँचती ॥ २२ ॥ नेत्र (नली) के हिलनेसे भ्रमित हुआ वायु भीतर कुपित होता है । देह सकोड़ने तथा दोनों साथल सकोड़नेसे वायुसे मिश्रित बस्ति ठीक उलटी नहीं आ सकती है ॥ २३ ॥

स्थितस्य बस्तिर्दत्तस्तु क्षिप्रमायात्यवाङ्मुखः । न चाशयं तर्पयति तस्मान्नार्थकरो हि सः॥ २४॥ नाप्नोति बस्तिर्दत्तस्तु कृत्स्नं पक्वाशयं

(श्लो० २०) उच्छीर्षे मेहनं समुन्नाहं कुर्यात् सस्नेहमेहनं संसृष्टमूत्रप्रवर्द्धनमिति जैज्जटः । वृद्धमते चायंपाठोन्यथा ‘उच्छीर्षके समुन्नाहो बस्तेः कृच्छ्रत्वमेहनम्” इति बस्तेः समुन्नाहो बस्तेः सन्नद्धता कृच्छ्रमेहनं कृच्छ्रमूत्रता चेति (नि. सं.) ।

(श्लो० २२) हृद्गुदमित्यत्र हृद्गुदामिति वा पाटः ।

पुनः । दक्षिणाश्रितपार्श्वस्य वामपार्श्वानुगो हितः ॥ २५ ॥ न्युब्जादीनां प्रदानं च बस्तेर्नैव प्रशस्यते । पश्चादनिलकोपोत्र यथास्वं तत्र कारयेत् ॥ २६ ॥

बैठे हुए मनुष्यके बस्ति देनेसे औषध शीघ्रही उलटी निकल पडती है वह आशयोंको तृप्त नहीं करती इससे निरर्थक हो जाती है ॥ २४ ॥ दाहनी करवट लेटे हुए मनुष्यके बस्ति कर्म करनेसे पूर्ण पक्वाशयमें नहीं प्राप्त होती इस वास्ते बांई करवटमें बस्ति कर्म करना हितकारक होता है ॥२५॥ औंधे आदि मनुष्योंके बस्तिकर्म करना श्रेष्ठ नहीं क्योंकि इनमें पीछे वायुका कोप होता है इस कारण यथायोग्य रीतिसे बस्तिकर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥

व्यापदः स्नेहबस्तेस्तु वक्ष्यन्तेत्र चिकित्सिते ।
अयोगाद्यास्तु वक्ष्यामि व्यापदः सचिकित्सिताः ॥ २७ ॥

स्नेह बस्ति (अनुवासन बस्ति) की व्यापत्तियां उपाधियां यहांसे अगली अध्यायमें (अनुवासन बस्ति चिकित्सामें) वर्णन करेंगे यहां अब अयोगादिक व्यापत्तियोंको चिकित्सा सहित कहते हैं ॥ २७ ॥

अयोग ।

अनुष्णोल्पौषधो हीनो बस्तिर्नैति प्रयोजितः । विष्टब्धाध्मानशूलैश्च तमयोगं प्रचक्षते । तत्र तीक्ष्णो हितो बस्तिस्तीक्ष्णं चापि विरेचनम् ॥ २८ ॥

जो ठंढी थोडी हीन पराक्रमवाली औषध बस्तिमें उपयोग कीजावे वह ठीक नहीं होती विष्टंभ आध्मान (अफारा) और शूल पैदा करी है उसे अयोग कहते हैं इसमें फिर तीक्ष्ण बस्ति करना चाहिये और तीक्ष्ण विरेचनभी देवे ॥ २८ ॥

आध्मानका लक्षण यत्न ।

सशेषान्ने तथा भुक्ते बहुदोषे च योजितः । अत्याशितस्यातिबहुर्बस्तिर्मन्दोष्ण एव च ॥ २९ ॥ अनुष्णलवणस्नेहो ह्यतिमात्रोथवा पुनः । तथा बहुपुरीषं च क्षिप्रमाध्मापयेन्नरम् ॥ ३० ॥ हृत्कटी पार्श्वपृष्ठेषु शूलं तत्राति दारुणम् । तत्र तीक्ष्णतरो बस्तिर्हितं चाप्यनुवासनम् ॥ ३१ ॥

उदरमें अन्न शेष रहने पर भोजन करनेमें जिसके बहुत दोष बढे हों जिसने बहुत भोजन किया हो उसके बस्ति कर्म करनेसे तथा बहुत बस्ति या कम गरम औषधी ॥ २९ ॥ ठंढी विना लवण चिकनाईकी तथा अधिक औषधकी बस्ति तथा

जिसके विष्ठा बहुत हो ऐसे मनुष्यको बस्ति अध्मान (अफरा) करती है ॥ ३० ॥ इसमें हृदय पसवाडा पीठ इनमें अति दारुण शूल चलता है ऐसा होनेमें अति तीक्ष्ण बस्ति देना तथा अनुवासन भी करना हित होता है ॥ ३१ ॥

परिकर्तिका और परिस्रावके लक्षण यत्न ।

अतितीक्ष्णोष्णलवणो रूक्षो बस्तिः प्रयोजितः । सपित्तं कोपयेद्वायुं कुर्याच्च परिकर्तिकाम् ॥३२॥ नाभिबस्तिगुदं तत्र छिनत्तीवाति देहिनः पिच्छाबस्तिर्हितस्तत्र स्नेहश्च मधुरैः शृतः ॥ ३३ ॥ अत्यम्ललवणस्तीक्ष्णः परिस्रावाय कल्पते। दौर्बल्यमंगसादश्च जायते तत्र देहिनः ॥३४॥ परिस्रवेत्ततः पित्तं दाहं संजनयेद्गुदे। पिच्छाबस्तिर्हितस्तत्र बस्तिः क्षीरघृतस्य च ॥ ३५ ॥

अति तीक्ष्ण अति गरम अति लवण युक्त रूक्ष औषधकी बस्ति उपयोग करनेसे पित्तयुक्त वायुको कुपित करती है तथा परिकर्तिका (काटनी) करती है ॥ ३२ ॥ इसमें नाभि बस्ति (मूत्राशय) और गुदामें कतरनीसी लगतीहै ऐसा होनेमें पिच्छल बस्ति करनी चाहिये और मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुवा स्नेह उपयोग करे ॥ ३३ ॥ अति खटाई लवण तीक्ष्ण औषध परिस्राव करनेवाली होती है इसमें मनुष्यको दुबलापन अंगोंमें थकाव होती है ॥ ३४ ॥ तथा गुदासे पित्त वहने लगता है तथा गुदामें दाह होता है ऐसा होनेमें पिच्छल बस्ति हित होती है और दूध घृतकी बस्ति हित कारक होती है॥ ३५ ॥

प्रवाहिका और हृदयोपसरण ।

प्रवाहिका भवेत्तीक्ष्णान्निरूहात्सानुवासनात् । सदाहशूलं कृच्छ्रेण वासृक्तत्रोपवेश्यते ॥ ३६ ॥ पिच्छाबस्तिर्हितस्तत्र पयसा चैव भोजनम् । सर्पिर्मधुरकैः सिद्धं तैलं चाप्यनुवासनम् ॥ ३७ ॥ अतितीक्ष्णो निरूहो वा सवाते चानुवासनः । हृदयस्योपसरणं कुरुते चांगपीडनम् ॥ ३८ ॥ दोषैस्तत्र रुजास्तास्ता मदो मूर्च्छांगगौरवम् । सर्वदोषहरं बस्तिंशोधनं तत्र दापयेत् ॥ ३९ ॥

तीक्ष्ण निरूहणके साथही अनुवासन देनेसे प्रवाहिका होजाती है इसमें दाह और शूल होताहै कृच्छ्रतासे रुधिर भी आने लगता है ॥ ३६ ॥ ऐसा होनेमें पिच्छल बस्ति करना चाहिये और दूधके संग भोजन देना तथा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किये

घृतको उपयोग और तैलकी अनुवासन बस्ति करना योग्य है ॥ ३७ ॥ अतितीक्ष्ण निरूहण करने तथा वातयुक्तमें अनुवासन करनेसे हृदयमें उपसरण कर जाता है और अंगोंमें पीडन करता है ॥ ३८ ॥ इसमें तीनों दोषोंसे उनही उनकी व्याधियां होती हैं जैसे मद मूर्च्छा और शरिरका भारीपन ऐसा करनेमें सब दोषोंके हरने वाली शोधन बस्ति करना चाहिये ॥ ३९ ॥

अंगग्रह ।

रूक्षस्य बहुवातस्य तथा दुःशयितस्य च । बस्तिरंगग्रहं कुर्याद्रूक्षो मृद्वल्पभेषजः ॥ ४० तत्रांगसादः प्रस्तंभो जृंभोद्वेष्टनवेपकाः । पर्वभेदश्च तत्रेष्टाः स्वेदोभ्यंजनबस्तयः ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य रूखा हो जिसके बहुत वायु हो तथा जो अयोग्य सोकर बस्ति करावे उसके रूक्ष मृदु तथा थोडी औषधवाली बस्ति की जावे तो वह अंगग्रह (अंगोंका अकडना) करती है ॥ ४० ॥ इसमें अगमें थकाव और स्तंभ (अंगोंका रुकजाना) जमाही उद्वेष्टन (हाथ पाँव दे दे पटकना) कंप तथा संधियोंका भेद-न होना ये उपाधियां होती हैं ऐसा होनेमें हितकारक स्वेद और अभ्यंग तथा पुनः बस्ति करना श्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥

अतियोग और जीवादान ।

अत्युष्णतीक्ष्णोतिबहुर्दत्तोतिस्वेदितस्य च । अल्पदोषस्य वा बस्तिर-तियोगाय कल्पते ॥ ४२ ॥ विरेचनातियोगेन समानं तच्चिकित्सितम् । पिच्छाबस्तिप्रयोगश्च तत्र शीतः सुखावहः ॥ ४३ ॥ अतियोगात्परं यत्र जीवादानं विरिक्तवत् । देयस्तत्र हितश्चापि पिच्छाबस्तिः सशोणितः ॥ ४४ ॥

जिस मनुष्यके अल्पदोष हो उसे अति स्वेद कराकर अति गरम तीक्ष्ण और बहुतसी औषधकी बस्ति दीजावे तो वह अतियोग करनेवाली होजाती है ॥ ४२ ॥ उसमें विरेचनके अतियोगके (लक्षण होते हैं और उसीके सम चिकित्सा करनी चाहिये तथा पिच्छल बस्ति करना तथा शीत विधान सुखदायक होता है ॥४३॥ अतियोगके बढनेपर जीवादान (जीवशोणित निकलना) विरेचनकी भांति बस्तिमेंभी होता है ऐसा होनेमें रुधिर युक्त पिच्छल बस्तिका देना श्रेष्ठ होता है ॥ ४४ ॥

नवैता व्यापदो यास्तु निरूहं प्रत्युदाहृताः । स्नेहबस्तिष्वपि हिता विज्ञेयाः कुशलैरिह ॥ ४५ ॥ इत्युक्ता व्यापदः सर्वाः सलक्षणचिकि-त्सिताः । भिषजा च तथा कार्यं यथैता न भवंति हि ॥ ४६ ॥

ये ऊपर नौ व्यापात्तियां (उपाधियां) निरूहण बस्तिकी वर्णन करी हैं इसी भांति येही स्नेह बस्ति (अनुवासन) में भी चतुर वैद्योंको समझ लेनी चाहियें ॥ ॥ ४५ ॥ इसप्रकारसे वस्ति कर्मकी सब उपाधियां लक्षण और चिकित्सा सहित वर्णन करी गई हैं वैद्यको ऐसी रीतिसे काम करना चाहिये जिससे ये उपाधियां होनेही नहीं पावें ॥ ४६ ॥

वमन विरेचन और बस्तिमें दिनोंका अंतर ।

पक्षाद्विरेको वांतस्य ततश्चापि निरूहणम् ।
सद्यो निरूढोऽनुवास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थाने षट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥

वमन करानेके १५ दिन पीछे विरेचन देना चाहिये और विरेचनके सात दिन पीछे निरूहण बस्ति करना तथा निरूहणके पीछे सद्य ही अनुवासन बस्ति करना उचित है ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने षट्त्रिंशोध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोनुवासनोत्तरबस्तिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी हम अनुवासनबस्ति (स्नेहबस्ति) तथा उत्तरवस्ति (शिश्नबस्ति) के विधानरूपक चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

अनुवासनका समय और मात्रा ।

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च । कृतान्नायानुवास्याय सम्यग्देयोनुवासनः ॥ १ ॥ यथावयो निरूहाणां या मात्राः परिकीर्तिताः । पादावकृष्टास्ताः कार्याः स्नेहबस्तिषु देहिनाम् ॥ २ ॥

विरेचनको सात दिन व्यतीत होजानेपर जब रोगीका बल आ जावे और अनुवासनके योग्य हो जावे तब योग्य पथ्य भोजन कराकर यथोचित अनुवासन बस्ति करना चाहिये ॥ १ ॥ जैसे अवस्थाके अनुसार निरूहण बस्तिमें औषधोंकी मात्रा वर्णन करी हैं उससे एक चतुर्थांश कम (अर्थात् पौनी) मात्रा स्नेह बस्तिमें मनुष्योंको उपयोग करनी चाहिये ॥ २ ॥

(श्लो० ४७) निरूढः पुरुषः सद्य एवदिवसे एवानुवास्यः एतेन दत्तनिरूहोक्तं यथा भवति तथा भोजयित्वाद्रवानुरेवानुवास्यः विरेचितस्य सप्तरात्रात् परतोऽनुवास्यः नार्वाक (इति नि० सं०)

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रे नरे बस्तिं विधापयेत् । एतैर्हि विहतः स्नेहो नैवांतः प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥ स्नेहबस्तिर्विधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनः । स्नेहवीर्यं तथादत्ते देहं चानु विसर्पति ॥ ४ ॥

अधो वायु और विष्ठा तथा मूत्रको त्याग कर (पाखाने पेशाबसे निश्चिन्त होकर) जब रोगी शुद्ध होजावे तब उसके बस्ति कर्म करना चाहिये क्योंकि इन मल मूत्रादिके अवरोधसे स्नेह भीतर ठीक प्रवेश नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ विना (मल मूत्रादिसे) शरीर शुद्ध किये स्नेह बस्तिका उपयोग नहीं करना क्योंकि स्नेह बस्ति स्नेहका गुण देकर देहमें फैल जाती है ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) अविशुद्ध शरीरसे कई ऐसा अर्थ करते हैं वमन रेचन निरूहण आदिसे शरीर विना शुद्ध किये स्नेहबस्ति नहीं करना चाहिये ॥

बस्तियोग्य तैलोंका साधन ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि तैलानीहं यथाक्रमम् ।
पानान्वासननस्येषु यानि हन्युर्गदान्बहून् ॥ ५ ॥

इसके अगाडी अब हम तैलोंका यथाक्रम वर्णन करते हैं जो पीने और अनुवासन करने तथा नस्य देनेमें बहुत रोगोंको नाश करे ॥ ५ ॥

शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः शताह्वाकुष्ठयष्ट्याह्ववचाबिल्वहुताशनैः ॥ ६ ॥ सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरं तैलं तोयचतुर्गुणम् । पक्त्वा बस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलोमनम् ॥ ७ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम् । कटयूरुपृष्ठकोष्ठस्थान्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥ ८ ॥

कचूर पुष्करमूल पीपल मैंनफल देवदारु सोया कूठ मुलेटी वच बिल्व और चित्रक ॥ ६ ॥ इन्हें पीसकर दूना दूध लेवे और चौगुना जल लेवे जलसे चौथाई तैल डाले और पकाकर बस्तिमें उपयोग करे यह मूढ वायु (प्रतिलोम वायु) को अनुलोमन करता है ॥ ७ ॥ तथा बवासीर ग्रहणीके दोष आनाह विषमज्वर तथा कमर साथल पीठ और कोठेके वायु रोग इन्हें नष्ट करता है ॥ ८ ॥

वचापुष्करकुष्ठैलामदनामरसिंधुजैः । काकोलीद्वययष्ट्याह्वमेदायुग्मनराधिपैः ॥ ९ ॥ पाठाजीवकजीवंतीभार्गीचंदनकट्फलैः । सरलागुरुबिल्वांबुवाजिगंधाग्निवृद्धिभिः ॥ १० ॥ विडंगारग्वधश्यामात्रिवृन्मागधिका-

(श्लो० ५) अन्वासनं अनुवासनं इत्यार्षः ।

र्द्विभिः । पिष्टैस्तैलं पचेत्क्षीरं पंचमूलैरसान्वितम् ॥ ११ ॥ गुल्मानाहाग्निषंगार्शोग्रहणीमूत्रसंगिताम् । अन्वासनविधौ युक्तं शस्यतेनिलरोगिणाम् ॥ १२ ॥

वच पुष्करमूल कूट इलायची मैंनफल देवदारु सैंधानमक काकोली क्षीरकाकोली मुलेटी मेदा महामेदा किरमाला ॥ ९ ॥ पाठा जीवक जीवंती भारंगी चंदन कायफल सरला (निसोथ) अगुरु बिल्व नेत्रवाला असगंध चित्रक वृद्धि ॥ १० ॥ वायविडंग अमलतास वृद्धदारु निसोथ पीपल ऋद्धि इन्हें पीस (कल्क बना) तैल पकावे उसमें पकतेमें दूध और बृहत्पंचमूलका क्वाथ डाल दे ॥ ॥ ११ ॥ यह तैल बस्तिमें उपयोग करनेसे गुल्म अफारा अग्निकी मंदता बवासीर ग्रहणी मूत्ररुकना इनमें श्रेष्ठ है तथा वात रोगियोंके लिये श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

(वक्तव्य) यह है कि जो औषधी किसी योगमें दो वार आवे उसे दुगुनी लेना॥

चित्रकातिविषापाठादंतीबिल्ववचामिषैः । सरलांशुमतीरास्नानीलिनीचतुरंगुलैः ॥ १३ ॥ चव्याजमोदकाकोलीमेदायुग्मसुरद्रुमैः । जीवकर्षभवर्षाभूवस्तगंधशताह्वयैः ॥ १४ ॥ रेण्वश्वगंधामंजिष्ठा शटी पुष्करतस्करैः । सक्षीरं विपचेत्तैलं मारुतामयनाशनम् ॥ १५ ॥ गृध्रसीखंजकुब्जाढ्यमूत्रोदावर्तरोगिणाम् । शस्यतेल्पबलाग्नीनां बस्तावाशुनियोजितम् ॥ १६ ॥

चित्रक अतीस पाठा दंती बिल्व वच गुग्गुलु निशोथ अंशुमती (शालपर्णी) रास्ना नीलनी किरमाला ॥ १३ ॥ चव्य अजमोद काकोली मेदा महामेदा देवदारु जीवक ऋषभक पुनर्नवा अजगंधा शतावरी ॥ १४ ॥ रेणु (रेणुका या पित्तपापडा) असगंध मंजीठ कचूर पुष्करमूल तस्कर (चोरक) इन्हें (कल्ककर) दूध युक्त तैल पकावे यह तैल वायुके रोगोंको नाश करनेवाला है ॥ १५ ॥ इसको बस्तिमें उपयोग करनेसे गृध्रसी वायु खंजवायु कुबडापन आढ्यवायु मूत्रदोष उदावर्त इन रोगोंवालोंको श्रेष्ठ है तथा मंदाग्निवालोंको भी हितकारक है ॥ १६ ॥

(श्लो० ९।१२) नराधिपः कृतमालः, सरला त्रिवृत, पंचमूलं बिल्वादि, अत्र तैले नराधिपारग्वधसरलात्रिवृच्च एतयोर्द्विगुणामात्रादेया । उक्तंच 'घृतेतैलेच युक्ते यद्द्रव्यंतु पुनरुच्यते । तद्ज्ञातव्यमिहाचार्यैर्भागतो द्विगुणं मतम्' (इति नि० सं०) ।

(श्लो० १३ । १६) आमिषः गुग्गुलुः । अंशुमती शालपर्णी, तस्करः चोरकः ।

भूतिकैरण्डवर्षाभूरास्नावृषकरोहिषैः । दशमूलसहाभांर्गीषड्ग्रंथामरदारुभिः ॥ १७ ॥ बलानागबलामूर्वावाजिगंधामृताह्वयैः । सहाचरवरीविश्वाकाकनासाविदारिभिः ॥ १८ ॥ यवमाषातसीकोलकुलत्थैः क्वथितैः शृतम् । जीवनीयप्रतीवापं तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ १९ ॥ जंघोरुत्रिकपार्श्वांसबाहुमन्याशिरःस्थितान् । हन्याद्वातविकारांस्तु बस्तियोगैर्निषेवितम् ॥ २० ॥

कायफल अरंड सांठी रास्ना अडूसा रोहिस (रोसा) दशमूल सहा (शालपर्णी) भारंगी पीपलीमूल देवदारु ॥ १७ ॥ खिरेंटी नागबला (गुलशकरी) मूर्वा असगंध गिलोय कुरंट शितावरी सोंठ काकनासा विदारीकंद ॥ १८ ॥ जौ उड़द अलसी वेर कुलथी इनका क्वाथ करके तैल पकावे और पकतेमें जीवनीय गणकी प्रतीवाप दे (डाल दे) तथा चौगुना दूधभी डाले ॥ १९ ॥ यह तैल बस्तिमें उपयोग करनेसे जंघा (पिंडली) और ऊरु (साथल) त्रिकस्थान (कमर चूतडों का जोड) पसवाड़े और अंस (खोदे) हाथ मन्या (गरदनके पट्टे) और शिर इतने स्थानोंके वायुरोगोंको नष्ट करता है ॥ २० ॥

जीवंत्यतिबलामेदाकाकोलीद्वयजीवकैः । ऋषभातिविषाकृष्णा काकनासावचामरैः ॥ २१ ॥ रास्नामदनयष्ट्याह्वसरलाभीरुचंदनैः । स्वयंगुप्ता शटीशृंगीकलसीसारिवाह्वयैः ॥ २२॥ पिष्टैस्तैलं घृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन तु । तच्चानुवासने देयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ॥ २३ ॥ बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम् । नस्ये पाने च संयुक्तमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥ २४ ॥

जीवंती अतिबला मेदा काकोली क्षीरकाकोली जीवक ऋषभक अतीस पीपल काकनासा वच देवदारु ॥ २१ ॥ रास्ना मैनफल मुलेटी निसोथ भीरु (शतावरी) चंदनके बीज कचूर काकड़ासींगी पृष्ठिपर्णी सारिवा ॥ २२ ॥ इनको कल्ककी भांत पीस इसमें तैल तथा घृत पकावे और पकतेमें आठगुना दूध डाले फिर इसे अनुवासन बस्तिमें देवे यह वीर्य जठराग्नि और बल बढानेवाले हैं ॥ २३ ॥ बृंहणहैं और वायु पित्त नाशक हैं गुल्म अफारा इनका परम नाशक हैं इसे नस्यमें या पान करनेमें उपयोग करे तो ऊपरके जोतों (पट्ठों) के रोगोंको नाशकरे ॥ २४ ॥

(श्लो० १७ । २०) भूतिकः कट्फलः । सहाचरः सहचरः कुरंट इति ।

(श्लो० २१) अमरः देवदारुः ।

(श्लो० २२) भीरुः शतावरी, कलशी पृष्टपर्णी ।

मधुकोशीरकाश्मर्यकटुकोत्पलचंदनैः । श्यामापद्मकजीमूतशक्राह्वातिविषांबुभिः ॥ २५॥ तैलपादं पचेत्सर्पिः पयसाष्टगुणेन च । न्यग्रोधादिगणक्वाथयुक्तं बस्तिषु योजितम् ॥ २६ ॥ दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधीन् । पित्तरक्तेज्वराद्यांश्च हन्यात्पित्तकृतान्गदान् ॥ २७ ॥

मुलेटी खस खंभारी कुटकी कमल चंदन प्रियंगु पद्माख नागरमोथा इंद्रजौ अतीस नेत्रवाला ॥ २५ ॥ इन्हें पीस इनसे घृत सिद्ध करे पकते समय घृतसे चौथाई तैल और आठ गुना दूध डाले फिर इसमें न्यग्रोधादिक गणका क्वाथ मिलाकर बस्तिकर्ममें उपयोग करे॥२६॥ यह दाह रक्त प्रदर विसर्प वातरक्त विद्रधि पित्तरक्त ज्वर (अथवा पित्तके और रक्तके ज्वर) इत्यादि पितके रोगोंको नष्ट करता है ॥२७॥

मृणालोत्पलशालूकसारिवा द्वयकेशरैः । चंदनद्वयभूनिंबपद्मबीजकसेरुकैः ॥ २८ ॥ पटोलकटुकारक्तागुंद्रापर्पटवासकैः । पिष्टैस्तैलमिदं पक्वं तृणमूलरसेन च ॥ २९ ॥ क्षीरद्विगुणसंयुक्तं बस्तिकर्मणि योजितम् । नस्येऽभ्यंजनपाने वा हन्यात्पित्तगदान्बहून् ॥ ३० ॥

कमलकी नाल, कमल, कमलकंद, सारिवा और कृष्णसारिवा नागकेसर, चंदन-सुपेद और चंदन रक्त चिरायता, कमलगट्टे कसेरु ॥ २८ ॥ पटोल (परवल) कुटकी, मंजीठ, प्रियंगु, पित्तपापडा, अडूसा इन्हें आर्द्र पीसकर तैल पकावे उसमें पकते समय तृण पंचमूलका क्वाथ (तैलसे चौगुना) और तैलसे दूना दूध मिलाकर पका ले इसे बस्ति कर्ममें उपयोग करे अथवा नस्यमें मर्दनमें तथा पीनेमें भी उपयोग करे तो बहुतसे पित्तके रोगोंको नष्ट कर देवे ॥ २९ ॥ ३० ॥

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निंबारग्वधषड्ग्रंथा सप्तपर्ण निशाद्वयैः ॥ ३१ ॥ गुडूचीन्द्रसुराकृष्णाकुष्टसर्षपनागरैः । तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ ३२ ॥ पानाभ्यंजनगंडूषनस्यबस्तिषु योजितम् । स्थूलतालस्यकंड्वादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥ ३३ ॥

त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोथ, चित्रक, अडूसा, नींब, किरमाला, पिपलीमूल सातला, हलदी, दारुहलदी ॥ ३१ ॥ गिलोय, इंद्रसुरा, (इंद्रवारुणी) पीपल कूट, सरसों, सोंठ इन सबको समान भाग लेकर तैल पकावे और उसमें सुरसादि

(श्लो० २५) श्यामा प्रियंगुः ।
(श्लो० ३२) इंद्रसुरा इंद्रवारुणी ।

गणका क्राथ डाले ॥ ३२ ॥ यह तैल पीने मलने कुल्ले करने नास लेने तथा बस्ति कर्म करनेमें उपयोग करनेसे स्थूलता आलस्य खाज आदि कफ रोगोंको जीतनेवाला है ॥ ३३ ॥

पाठाजमोदाशार्ङ्गष्टापिप्पलीद्वयनागरैः । सरलागुरुकालीयभार्गीचव्यामरद्रुमैः ॥ ३४ ॥ मरिचैलाभयाकट्वीशठीग्रंथिककट्फलैः । तैलमेरंडतैलं वा पक्कमेभिः समायुतम् ॥ ३५ ॥ वल्लीकंटकमूलाभ्यां क्राथेन द्विगुणेन च । हन्यादन्वसनैर्दत्तं सर्वान्कफकृतान्गदान् ॥ ३६ ॥

पाठा अजमोद शार्ङ्गष्टा (महाकरंज) पिप्पली गजपिप्पली सोंठ निसोथ अगर पीतचंदन भारंगी चव्य देवदारु ॥ ३४ ॥ कालीमिरच इलायची हरडे कुटकी कचूर पीपलामूल कायफल इनसे तैल पकावे अथवा अरंडका तैल पकावे ॥ ३५ ॥ और पकते समय वल्ली पंचमूल तथा कंटक पंचमूल इन दोनोंका क्राथ तैलसे दुगुना डाले इस तैलकी अनुवासन बस्ति करनेसे सब कफके रोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

विडंगोदीच्यसिंधूत्थशटीपुष्करचित्रकैः । कट्फलातिविषाभार्गीवचाकुष्ठसुराह्वयैः ॥ ३७ ॥ मेदामदनयष्ट्याह्वश्यामानिचुलनागरैः । शताह्वानीलिनीरास्नाकदलीवृषरेणुभिः ॥ ३८ ॥ बिल्वाजमोदकृष्णाह्वादंतीचव्यनराधिपैः । तैलमेरंडतैलं वा मुष्ककादिरसाप्लुतम् ॥ ३९ ॥ प्लीहोदावर्तवातासृग्गुल्मानाहकफामयान् । प्रमेहशर्करार्शांसि हन्यादार्श्वनवासनात् ॥ ४० ॥

वायविडंग नेत्रवाला सैंधानमक कचूर पुष्करमूल चित्रक कायफल अतीस भारंगी बच कूट देवदारु ॥ ३७ ॥ मेदा मैनफल मुलेटी श्यामा (वृद्धदारु) निचुल (जल वेतस) सोंठ सितावर नीलनी रास्ना केला अडूसा पित्तपापडा ॥ ॥ ३८ ॥ बिल्व अजमोद पीपल दंती चव्य किरमाला इनसे तिलोंका तल अथवा अरंडका तैल पकावे और पकते समय मुष्ककादि गणका क्राथ डाले ॥ ३९ ॥ इस तैलकी अनुवासन बस्ति करनेसे प्लीहा वृद्धि (तिल्ली) उदावर्त वातरक्त गुल्म

(श्लो० ३४) शार्ङ्गष्टा महाकरंज इतिनिघंटुः, कालीयं पीतचंदनं इतित्वभिनवनिघंटुः । शब्दस्तोमेतु कालीयं कालीयकं च दारुहरिद्रायां कृष्णचंदने च । केचिदत्र अगुरु कालीयं कृष्णागुरु इतिमन्यंते ॥

(श्लो० ३८) अत्र श्यामाशब्देन वृद्धदारुग्रहणं तस्य कफघ्नत्वात् ।

(श्लो० ३९) नराधिपः राजवृक्षः आरग्वध इति ।

अफारा कफके रोग प्रमेह शर्करा (मूत्रमें रेत आना) और बवासीर इतने रोग नष्ट होते हैं ॥ ४० ॥

बस्ति कर्ममें शिक्षा योग्यबातें।

अशुद्धमपि वातेन केवलेनाति पीडितम्। अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ॥ ४१ ॥ रूक्षस्य बहुवातस्य द्वौ त्रीनप्यनुवासनम्। दत्वा-स्निग्धतनुं ज्ञात्वा ततः पश्चान्निरूहयेत् ॥ ४२ ॥ अस्निग्धमपि वातेन केवलेनाति पीडितम्। स्नेहप्रगाढैर्मतिमान् निरूहैः समुपाचरेत् ॥ ४३ ॥ अथ सम्यङ्निरूढं तु वातादिष्वनुवासयेत्। बिल्वयष्ट्याह्वमदनफलतैलैर्यथाक्रमम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य केवल वायुसे अत्यंत पीडित हो उसे वमन रेचनादिसे विना शुद्ध हुए भी अनुवासन बस्ति करना योग्य है तथा दिनरातके सब समयमें अनुवासन करना ठीक है (इस मौकेपर समयकाभी नियम नहीं है)॥४१॥जो मनुष्य रूक्ष हो और बहुत वायु बढा हुवा हो उसे दो तीन अनुवासन बस्ति देवे और जब जाने कि शरीर स्निग्ध होगया तब पीछे निरूहण करे ॥ ४२ ॥ तथा जो केवल वायुसे अत्यंत पीडित हो वह स्निग्ध न भी हो (कम स्निग्ध भी हो) तो उसे स्नेहसे मिली हुई निरूहण बस्ति देवे ॥ ४३ ॥ और जब ठीक निरूहण होजावे तब वात आदि दोषोंमें यथाक्रम बिल्वके तैलसे मुलेटीके तैलसे और मैनफलके तैलसे अनुवासन करे (अर्थात् वायुमें बिल्वतैलसे पित्तमें मुलेटीके तैलसे कफमें मैनफलके तैलसे अनुवासन करे) ॥ ४४ ॥

रात्रिमें बस्तिका निषेध।

रात्रौ बस्तिं न दद्यात्तु दोषोत्क्लेशो हि रात्रिजः। स्नेहो वीर्ययुतः कुर्यादाध्मानं गौरवं ज्वरम् ॥ ४५ ॥ अह्नि स्थानस्थिते दोषे वह्नौ वान्नरसान्विते। स्फुटस्रोतोमुखे देहे स्नेहौजः परिसर्पति ॥ ४६ ॥

रात्रिको बस्तिकर्म नहीं करना चाहिये क्योंकि रात्रिमें दोषोंका उत्क्लेश होता है रातको स्नेह पराक्रमी होकर आध्मान भारीपन और ज्वर कर देता है ॥ ४५ ॥

(श्लो० ४१) वातेनाति पीडितंअहोरात्रस्य सर्वेषु कालेषु अनुवासयेत् नात्रकालनियमः ।

(श्लो० ४५) दोषोत्क्लेश इति कालशैत्यान्मुखसंवृतत्वेन दोषधातुमलेषु विक्लेदनलक्षणउत्क्लेशो भवति ।

(श्लो० ४६) स्नेहौजः स्नेहस्यवीर्यं शरीरं परिसर्पति ।

दिनमें दोष सब अपने २ स्थानमें स्थित रहते हैं और अग्नि अन्नरससे युक्त होती है तथा स्रोतों (द्वारों) के मुँह स्फुट खुले होते हैं इससे स्नेहका बल सर्वत्र गमन करके (गुणदायक होता है) ॥ ४६ ॥

रात्रिमें भी बस्तिकी आज्ञा ।

पित्ताधिके कफे क्षीणे रूक्षे वातरुगर्दिते । नरे रात्रौ च दातव्यं काले चोष्णेऽनुवासनम् ॥ ४७ ॥ उष्णे पित्ताधिके वापि दिवा दाहादयो गदाः । संभवंति यतस्तस्मात्प्रदोषे योजयेद्भिषक् ॥ ४८ ॥

जिसके पित्त अधिक हो कफ क्षीण हो रूक्ष मनुष्य हो वायुके रोगसे पीडित हो ऐसे मनुष्यको रात्रिमें बस्ति करना उचित है और उष्णकाल (गरमीकी ऋतु) में रातको (पहले पहरमें) बस्ति करना योग्य है ॥ ४७ ॥ उष्ण कालमें और अधिक पित्तवालेको दिनमें (बस्तिसे) दाह आदिक रोग होतेहैं इस वास्ते इन अवस्थाओंमें प्रदोष (संध्यासमय) में बस्ति करना चाहिये ॥ ४८ ॥

दिनरातमें बस्तिका नियम ।

शीते वसंते च दिवा ग्रीष्मे प्रावृड्घनात्यये । स्नेहो दिनांते पानोक्तान्दोषान्परिजिहीर्षता ॥ ४९ ॥ अहोरात्रेषु कालेषु सर्वेष्वेवानिलाधिकम् । तीव्रायां रुजि जीर्णान्नं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ ५० ॥

स्नेह पानके विषयमें पहले ऋतुवोंके अनुसार दिन रात्रिमें स्नेह पानका विधान और अन्यथाके दोष कह आये हैं वेही दोष बस्ति (स्नेहबस्ति) में जानने चाहियें अस्तु जो मनुष्य उन दोषोंको दूर रखना चाहे ये शीत कालमें और वसंतमें दिनके समय (स्नेहबस्ति) करे तथा ग्रीष्म प्रावृट् और शरद् ऋतुमें संध्या समयमें (स्नेहबस्ति) करे ॥ ४९ ॥ जिनको वायुकी अधिक तीव्र वेदना हो उनको दिन रातके सभी समयमें जीर्णान्न भोजन कराके बस्ति कर्म करना चाहिये ॥ ५० ॥

भोजनका नियम ।

न वाऽभुक्तवतः स्नेहः प्रणिधेयः कथंचन । शुद्धत्वाच्छून्यकोष्ठस्य स्नेह ऊर्द्ध्वमथोत्पतेत् ॥ ५१ ॥ सदानुवासयेच्चापि भोजयित्वार्द्रपाणिनम् ।

(श्लो० ४७) रात्रिशब्दोत्र प्रथमप्रहरवाचकः प्रदोषे योजयेदिति वक्ष्यमाणवचनादिति (डल्लनः)

(श्लो० ४९) स्नेहपानोक्तान् दोषान् परिजिहीर्षता त्यक्तुमिच्छता वैद्येन शीते वसंते दिवा तथा ग्रीष्मे प्रावृड्घनात्यये दिनांते स्नेहो स्नेहबस्तिर्देय इत्यन्वयः ।

(श्लो० ५१) अत्र वा शब्दो अवधारणेर्थे वर्त्तते नतु विकल्पार्थे ।

ज्वरं विदग्धभुक्तस्य कुर्यात्स्नेहः प्रयोजितः ॥ ५२ ॥ न चातिस्नि-ग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत् । मदं मूर्च्छां च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ५३ ॥

विना भोजन कराये कदाचित् (स्नेहबस्ति) करना योग्य नहीं क्योंकि खाली कोठा शुद्ध होनेसे स्नेह ऊपरको गमन कर जाता है ॥ ५१ ॥ सदा अनुवासन बस्ति भोजन कराकर हाथ गीले कराके (धुलाके) करनी चाहिये (और विदग्ध भोजन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि) विदग्ध भोजन किये हुयेको स्नेहबस्ति करनेसे ज्वर होता है ॥ ५२ ॥ अतिस्निग्ध भोजन कराकर भी अनुवासन (स्नेहबस्ति) करना योग्य नही क्योंकि दोनों तरफ (भोजनमें और बस्तिमें अर्थात् मुखकी तरफसे और गुदाकी तरफसे) स्नेहका प्रयोग करना मद और मूर्च्छा उत्पन्न करता है ॥ ५३ ॥

रूक्षं भुक्तवतो ह्यन्नं बलं वर्णं च हापयेत् । युक्तस्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ ५४ ॥ यूषक्षीररसैस्तस्माद्यथाव्याधिमवेक्ष्य वा । यथोचितात्पादहीनं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ ५५ ॥

(रूखा अन्न भी नहीं खाना क्योंकि) रूखा भोजन करके बस्तिकर्मसे बल और रूपका नाश होता है इस लिये मनुष्यको कम चिकना भोजन कराकर अनुवासन बस्ति करना चाहिये ॥ ५४ ॥ यूष दूध या मांस रस अथवा रोगको देखकर उसके अनुकूल भोजन करावे और भोजनभी भूखसे पौना कराके अनुवासन करे ॥५५॥

अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ॥ ५६ ॥ विसृज्य च शकृन्मूत्रं योजयेत्स्नेहबस्तिना । प्रणिधानविधानं तु निरूहे च प्रवक्ष्यते ॥ ५७ ॥ ततः प्रणिहिते स्नेह उत्तानो वाक्शतं भवेत् ॥ प्रसारितैः सर्वगात्रैस्तथा वीर्यं विसर्पति ॥ ५८ ॥ ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वारान् शनैः शनैः । स्फिजोश्चैनं ततः शय्यां त्रीन्वारानुत्क्षिपेत्ततः ॥ ५९ ॥ एवं प्रणिहिते बस्तौ मंदायासोथ मंदवाक् । स्वास्तीर्णे शयने काममासीताचारिकैरतः ॥ ६० ॥

अनुवासन करने योग्य मनुष्यको ठीक स्नेहाभ्यंग कराकर गरम जलसे

(श्लो० ५४) युक्तस्नेहं अल्पस्नेहं ।

(श्लो० ५५) यूषोत्रमुद्गयूषः क्षीरंगव्यं रसो मांसरसः तैर्यथासंख्यं कफपित्तानिलप्रत्यनीकैरिति डल्हनः ।

धीरे धीरे स्वेदित करके शास्त्रोक्त (यूषादिक) भोजन कराके फिर धीरे धीरे टह- लावे ॥ ५६ ॥ (यदि दस्त पेशाब की हाजत हो तो) दस्त पेशाबसे निवृत्त होकर स्नेह बास्ति करना चाहिये इसके प्रवेश करने आदिकी विधि निरूहण बस्तिके प्रकरणमें कही जावेगी ॥ ५७ ॥ जब बस्ति द्वारा स्नेह भीतर प्रवेश कर चुके तब सौ गिने इतनी दर अंगोंको पसारकर लेटे जिससे बस्तिके स्नेहका प्रभाव सब शरीरमें पहुंच जावे ॥ ५८ ॥ फिर वैद्यको चाहिये कि रोगीके तलवोंको तीन तीन बार थपेड़े और चूतडों पर भी तीन तीन थपेड़े धीरे धीरे लगावे तथा तीन वार शय्यासे उठे और लेटे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार बस्ति कर्मकी क्रिया होचुके तब विना श्रम किये चुपचाप अच्छे बिछौने पर बैठ जावे और उचित आचार विचारका आचरण करे ॥ ६० ॥

स तु सैंधवचूर्णेन शताह्वेन च योजितः ।
देयः सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् ॥ ६१ ॥

बस्ति देते समय विचार रक्खें उसमें सैंधा नमक और सोंफ बारीक पीस कर मिला दें और कुछ गरम गरम औषध उपयोग करें जिससे सहजमें सुख पूर्वक उलटी निकल आवे ॥ ६१ ॥

यस्यानुवासने दत्तः सकृदन्वक्षमाव्रजेत् । अत्यौष्ण्यादतितैक्ष्ण्याद्वा वायुना वा प्रपीडितः ॥ ६२ ॥ सवातोधिकमात्रो वा गुरुत्वाद्वा सभेष- जः । तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निह्यत्यतिष्ठति ॥ ६३ ॥

जो अनुवासन द्रव्य अति गरम होनेसे अतितीक्ष्ण होनेसे या वायुके धकेलेसे ॥ ६२ ॥ या वायुसे मिल कर या अधिक मात्रा होनेसे या भारीपनसे शीघ्रही सब उलटा निकल पडे तो उसके थोडी मात्राकी दूसरी बस्ति देनी चाहिये क्योंकि विना कुछ देर ठैरे द्रव्य स्निग्धता नहीं कर सकता ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

न्यूनाधिकस्नेह बस्तिके दोष ।

विष्टब्धानिलविण्मूत्रं स्नेहहीनोनुवासनः ।
दाहक्लमप्रवाहार्तिकरश्चात्यनुवासनः ॥ ६४ ॥

यदि अनुवासन स्नेहसे हीन हो (थोडा स्नेह हो) तो अधोवायु और मल मूत्रमें रुकाव कर देता है और जो अत्यंत अनुवासन हो तो दाह क्लम और प्रवाहिका करता है ॥ ६४ ॥

यथोक्त बस्ति हुईका लक्षण ।

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ।
ओषचोषौ विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ ६५ ॥

वायु सहित और विष्ठायुक्त जिसके अनुवासनकी स्निग्ध औषध थोडी देर ठैर कर उलटी निकल आवे और दाह पीडा आदि कुछ उपद्रव नहीं करे तो ठीक अनुवासन होगया जानना ॥ ६५ ॥

बस्ति कर्मके उत्तर क्रिया ।

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः । लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ६६ ॥ प्रातरुष्णोदकं देयं धान्यनागरसाधितम् । तेनास्य दीप्यते वह्निर्भक्ताकांक्षा च जायते ॥ ६७ ॥ स्नेहबस्तिक्रमेष्वेवं विधिमाहुर्मनीषिणः । अनेन विधिना षड्वा सप्त वाष्टौ नवैव वा । विधेया बस्तयस्तेषामंतरा तु निरूहणम् ॥ ६८ ॥

जब बस्तिका स्नेह पीछे उलट निकल चुके तब संध्याके समय पुराने अन्नका बना हुआ हलका भोजन यदि जठराग्नि दीप्त हो तो इच्छा पूर्वक खिलावे ॥ ६६ ॥ फिर प्रभातमें धनियाँ और सोंठसे साधन किया हुआ गरम जल पिलावे जिससे उस मनुष्यकी जठराग्नि दीप्त होती है और भोजनपर रुचि होती है ॥ ६७ ॥ बुद्धिमानोंने जो स्नेह बस्तिका क्रम कहा यही क्रम सर्वत्र जानना इसी विधिसे छः अथवा सात या आठ या नौ स्नेह बस्ति करना और बीचमें (यदि मलादिका संचय हो) निरूहण करके साफ करते रहना चाहिये ॥ ६८ ॥

दत्तस्तु प्रथमो बस्तिः स्नेहयेद्बस्तिवंक्षणौ । सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थमनिलं जयेत् ॥ ६९ ॥ जनयेद्बलवर्णौ च तृतीयस्तु प्रयोजितः । रसं चतुर्थो रक्तं तु पंचमः स्नेहयेत्तथा ॥ ७० ॥ षष्ठस्तु स्नेहयेन्मांसं मेदः सप्तम एव च । अष्टमो नवमश्चास्थि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ ७१ ॥ एवं

(श्लो० ६८) अंतरानिरूहणं दद्यात् दोषसंचयसाधनाय इति। तथाच चरकः 'त्रीन् त्रीन् च वारान् चतुरोपि षड्वा वाताधिकानामनुवासनीयाः । बस्तीन्प्रदत्वा सुभिषक् विदध्यात् स्रोतो विरोध्यद्भमतो निरूहम्' इति अंतरातु निरूहणं इत्यत्र अंते चैव निरूहणं इतिपाठांतरं भावमिश्रेणकृतं तन्मतेन अंते निरूहणं कुर्यादिति सिद्धांतः। अत्र वृद्धवाग्भट इत्याह 'एवं कफे स्नेहबस्तिमेकंत्रीन्वाप्रयोजयेत् । पंचवा सप्तवापित्ते नवैकादशवानिले । पुनस्ततोप्ययुग्मांस्तु पुनरास्थापनंततः' ।

शुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टदशकान्बस्तीनां यो निषेवते ॥ ७२ ॥ यथोक्तेन विधानेन परिहारक्रमेण तु । स कुंजरबलोऽश्वस्य जवस्तुल्योमरप्रभः ॥ ७३ ॥ वीतपाप्मा श्रुतिधरः सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ७४ ॥

प्रथमकी एक बस्ति उपयोग करनेसे बस्तिस्थान और वंक्षण (नलों) को स्निग्ध करती है । और यथोक्त दूसरी बस्ति ऊपर (मूर्द्धा) के वायुको (वायु रोगको) जीतती है ॥ ६९ ॥ तीसरी बस्ति बल और सुंदर रूप उत्पन्न करती है । चौथी स्नेह बस्ति रसमें सचिक्कणता करती है और पांचवीं रुधिरमें चिक्कणता करती है ॥ ७० ॥ छठी मांसको स्निग्ध कर देती है और सातवीं मेदको स्निग्ध करती है । आठवीं और नवीं बस्ति अस्थि और मज्जाको क्रमसे स्निग्ध करती है ॥ ७१ ॥ तथा इनसे दूनी १८ बस्ति शुक्रगत सब दोषोंको दूर कर देती हैं जो इस प्रकार रीति पूर्वक अठारह अठारह बस्तियोंको सेवन करता है और यथोचित विधि और पथ्यादि सहित उपयोग करता है वह हाथीके समान बलवान् तथा घोड़ेके समान वेगवाला हो जाता है और देवताओं जैसी कांतिवाला हो जाता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और सब प्रकारके पापों (दोषों) से छूटकर वेदका धारण करनेवाला अथवा श्रुतबातको विस्मरण नहीं करनेवाला ऐसा होकर हजार वर्षकी आयुवाला हो जाता है॥७४॥

स्नेहबस्तिं निरूहं वा नैकमेवाति शीलयेत् । स्नेहादग्निवधोत्क्लेशौ निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ ७५ ॥ तस्मान्निरूढोनुवास्यो निरूह्यश्चानुवासितः । न च पित्तकफोत्क्लेशौ स्यातां न पवनाद्भयम् ॥ ७६ ॥

स्नेह बस्ति निरूहण बस्ति एक अकेली कभी नहीं देनी चाहिये अकेली स्नेह बस्तिसे जठराग्निका नाश और उत्क्लेश होता तथा अकेली निरूहण से वायु (के कोप) का भय होता है ॥ ७५ ॥ इससे निरूहण करे तो पीछे अनुवासन बस्ति अवश्य करनी चाहिये तथा अनुवासन पहले करे तो पीछे अवश्य निरूहण करनी उचित है ऐसा करनेसे न तो पित्त और कफका उत्क्लेश होता है और न वायुका भय ॥ ७६ ॥

बस्तिके अंतरका समय ।

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहबस्तिं दिने दिने । दद्याद्वैद्यस्ततोऽन्येषामग्न्याबाधभयात्त्र्यहात् ॥ ७७ ॥ स्नेहोल्पमात्रो रूक्षाणां सर्वकालमनत्ययः । तथा निरूहः स्निग्धानां स्वल्पमात्रः प्रशस्यते ॥ ७८ ॥

रूक्ष और अधिक वायुवाले मनुष्यको नित्य दिन दिन स्नेह बस्ति देनी चाहिये और अन्य मनुष्योंको जठराग्निकी बाधाके भयसे तीन तीन दिनके अंतरसे अनुवासन बस्ति देनी चाहिये ॥ ७७ ॥ रूक्ष मनुष्योंको थोड़ी मात्राकी स्नेह बस्ति सर्वदा हानिकारक नहीं (किंतु गुण कारक ही होती है) इसी भांति स्निग्ध मनुष्योंको थोड़ी मात्रावाली निरूहण बस्ति भी सदा हित है (चाहे जब करो) ॥ ७८ ॥

स्नेह बस्तिकी व्यापद् ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि व्यापदः स्नेहबस्तिजाः। बलवंतो यदा दोषाः कोष्ठे स्युरनिलादयः ॥ ७९ ॥ अल्पवीर्यं तदा स्नेहमभिभूय पृथग्विधान् । कुर्वंत्युपद्रवान्स्नेहः स चापि न निवर्तते ॥ ८० ॥

इसके अगाड़ी अब हम स्नेह बस्तिसे होनेवाली व्यापदों (उपाधियों) का वर्णन करते हैं । यदि कोठेमें वातादि दोष बलवान् हों और थोड़े पराक्रमवाले स्नेहकी बस्ति दी जावे तो वे दोष स्नेहसे मिलकर नाना प्रकारके उपद्रव करते हैं और वह स्नेह भी पीछे पलटकर नहीं निकलता ॥ ७९ ॥ ८० ॥

वातादिदोषोंसे अभिभूत स्नेहके उपद्रव ।

तत्र वाताभिभूते तु स्नेहे मुखकषायता । जृंभा वातरुजस्तास्ता वेपथुर्विषमज्वरः ॥ ८१ ॥ पित्ताभिभूते स्नेहे तु मुखस्य कटुता भवेत् । दाहस्तृष्णा ज्वरः स्वेदो नेत्रमूत्रांगपीतता ॥ ८२ ॥ श्लेष्माभिभूते स्नेहे तु प्रसेको मधुरास्यता । गौरवं छर्दिरुच्छ्वासः कृच्छ्रः शीतज्वरोरुचिः ॥ ॥ ८३ ॥ तत्र दोषाभिभूते तु स्नेहे बस्तिं निधापयेत् । यथास्वं दोषशमनान्युपयोज्यानि यानि च ॥ ८४ ॥

यदि वायुसे पराजित स्नेह होवे (अर्थात् वायुके आधीन) स्नेह होजावे तब मुखमें कषायता जृंभा तथा अन्य वायुके रोग कंप और विषमज्वर होते हैं ॥ ८१ ॥ पित्तसे पराजित स्नेह होनेमें मुखमें कटुकता होती है तथा दाह तृष्णा ज्वर पसीना अधिक आना तथा नेत्रोंमें मूत्रमें और देहमें पीलापन होजाता है ॥ ८२ ॥ यदि कफसे पराजित स्नेह होवे तो मुखसे लार वहना मुँह मीठा रहना भारीपन छर्दि कष्ट और शीतज्वर ये लक्षण होते हैं ॥८३॥ जिस जिस दोषसे अभिभूत (पराजित

(श्लो० ७८) अनत्ययः निर्दोषः ।
(श्लो० ८०) अभिभूय पराजितं कृत्वा, तिरस्कृत्य स्वाधीनं कृत्वा मिलित्वा वा ।

या आधीन होकर या मिलकर) स्नेह जो व्याधि करे उसीके अनुसार बस्ति करना तथा उसी दोषकी शांतिके अन्य उपायभी करने चाहिये ॥ ८४ ॥

अन्नाभिभूत स्नेहके उपद्रव ।

अत्याशितेऽन्नाभिभवात्स्नेहो नैति यदा तदा । गुरुरामाशयः शूलं वायोश्चाप्रति संचरः ॥ ८५ ॥ हृत्पीडा मुखवैरस्यं श्वासो मूर्च्छा भ्रमोरुचिः । तत्रापतर्पणस्यांते दीपनो विधिरिष्यते ॥ ८६ ॥

बहुत भोजनकर लेनेपर स्नेह अन्नसे पराजित होता है और ठीक जगह नहीं पहुँचता तब आमाशय भारी होजाता है और शूल होता है तथा ठीक वायुका संचारभी नहीं होता ॥ ८५ ॥ हृदयमें पीडा मुखकी विरसता श्वास मूर्च्छा भ्रम और अरुचि ये उपद्रव होते हैं ऐसा होनेमें अपतर्पण करना (तृप्ति न करना अर्थात् लंघन करना) चाहिये और उसके पीछे दीपनविधि करना ॥ ८६ ॥

अशुद्धके मल मिश्रित स्नेहके उपद्रव ।

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः । तदांगसदनाध्माने श्वासः शूलंच जायते ॥८७॥ पक्काशयगुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् । अतितीक्ष्णौषधैरेवं सिद्धं चाप्यनुवासनम् ॥ ८८ ॥

जिसका पक्काशय शुद्ध नहो उसके स्नेह मलसे मिलकर ठीक स्थानपर नहीं पहुँचे तो उस मनुष्यके अंगोंमें थकाव अफारा श्वास तथा शूल ये उपद्रव होते हैं ॥ ॥ ८७ ॥ और पक्काशयमें भारीपन होता है ऐसा होनेमें रोगीको निरूहण बस्ति करना चाहिये अथवा अति तीक्ष्ण औषधोंसे सिद्ध अनुवासन ही फिर करना चाहिये ॥ ८८ ॥

दूरानुसृत स्नेहके दोष ।

शुद्धस्य दूरानुसृते स्नेहे स्नेहस्य दर्शनम् । गात्रेषु सर्वेंद्रियाणामुपलेपोवसादनम् ॥ ८९ ॥ स्नेहगंधिर्मुखं तत्र कासश्वासावरोचकः । अतिपीडितवत्तत्र विधिरास्थापनं तथा ॥ ९० ॥

शुद्ध कोष्ठवाले मनुष्यके यदि स्नेह दूर (ज्यादे भीतरको) पहुँच जावे तो शरीरमें स्नेह चमकने लगता है और सब इंद्रियोंमें उपलेप (लहेस) सा मालूम होता है तथा थकावसी होती है ॥ ८९ ॥ और मुँहकी तरफसे स्नेह (चिकनाई) की बास आने लगती है और इसमें खांसी श्वास अरुचिभी होजाती है ऐसा होनेमें अति पीडित व्यापद्के अनुसार विधि करना चाहिये और निरूहणबस्ति करना ॥ ९० ॥

प्रवाहण ।

अस्विन्नस्याविशुद्धस्य स्नेहोऽल्पः संप्रयोजितः। शीतो मृदुश्च नाभ्येति ततो मंदं प्रवाहयेत् ॥९१॥ विबंधगौरवाध्मानशूलाः पक्वाशयं प्रति। तत्रास्थापनमेवाशु प्रयोज्य सानुवासनम् ॥ ९२ ॥

विना स्वेद कराये अशुद्ध देहवाले मनुष्यके थोडा या ठंढा या हलका स्नेह बस्तिमें उपयोग किया जावे तो वह ठीक गमन नहीं करता और मंद प्रवाह (बहाव) उत्पन्न करता है ॥ ९१ ॥ और विबंध भारीपन तथा पक्वाशयमें अफारा और शूल करता है ऐसा होनेमें शीघ्रही अनुवासनके संग आस्थापन बस्तिका उपयोग करना चाहिये ॥ ९२ ॥

मंदानुसरण ।

अल्पं भुक्तवतोऽल्पो हि स्नेहो मंदगुणस्तथा । दत्तो नैति क्लमोत्क्लेशौ भृशं वाऽरतिमावहेत् ॥ ९३ ॥ तत्र वाऽऽस्थापनं कार्यं शोधनीयेन बस्तिना । अन्वासनं च स्नेहेन शोधनीयेन शस्यते ॥ ९४ ॥

थोडा भोजन किये हुये मनुष्यके थोडा स्नेह तथा मंद गुणवाला स्नेहबस्तिमें उपयुक्त किया जावे तो वह ठीक जगह नहीं पहुँचता या उलटा नहीं निकलता और ग्लानि तथा उत्क्लेश और दारुण अरति (बेचैनी) करता है ॥ ९३ ॥ इसमें शोधनी आस्थापन बस्ति करना अथवा शोधनीय स्नेहोंसे पुनः अनुवासन बस्ति करना चाहिये ॥ ९४ ॥

स्नेहका उलट न आना ।

अहोरात्रादपि स्नेहः प्रत्यागच्छेन्न दूष्यति । कुर्याद्बस्तिगुणांश्चापि जीर्णस्त्वल्पगुणो भवेत् ॥ ९५ ॥ यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहबस्तिरनिःसृतः।सर्वोऽल्पो वाऽऽवृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ९६ ॥ अनायातं त्वहोरात्रात्स्नेहं संशोधनैर्जयेत् । स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ ९७ ॥ इत्युक्ता व्यापदः सर्वाः सलक्षणचिकित्सिताः । बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य विधिं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ९८ ॥

यदि एक दिन रात (२४ घंटे) में भी जो बस्तिका दिया स्नेह उलटा निकले तो भी कुछ दोष नहीं किंतु बस्तिके गुणही करता है परंतु यहां यदि पच जावे तो अल्प गुण करता है (कुछ ठीक गुण नहीं करता ॥ ९५ ॥ और बस्तिका दिया

हुवा स्नेह सबका सब या कुछ थोडा रूक्षताके कारण नहीं निकले और कुछ उपद्रव भी नहीं करे तो समझदार वैद्यको उसे छोड देना (रहने देना) चाहिये ॥ ९६ ॥ (पर ठीक तो यही है कि) जो एक दिन रात (२४ घंटे) में स्नेह बस्तिका स्नेह नहीं निकले तो उसे शोधन द्रव्योंसे निकालही डाले जो बस्तिका स्नेह नहीं निकले तो फिर और स्नेह बस्ति कदाचित् नहीं देना ॥ ९७ ॥ इस प्रकारसे बस्तिकी (स्नेह बस्तिकी) सब व्यापत् (उपाधियां) लक्षण और चिकित्सा सहित वर्णन करी गई इससे अगाडी हम उत्तर बस्ति (शिश्नबस्ति) की विधि वर्णन करते हैं ॥९८॥

(उत्तर बस्तिका विधान)

नेत्र और मात्राका प्रमाण ।

चतुर्दशांगुलं नेत्रमातुरांगुलसंमितम् । मालतीपुष्पवृंताग्रं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ ९९ ॥ मेढ्रायामसमं केचिदिच्छंति खलु तद्विदः । स्नेहप्रमाणं परमं कुंचश्चात्र प्रकीर्तितः ॥ १०० ॥ पंचविंशादधो मात्रां विदध्याद्बुद्धिकल्पिताम् । निविष्टकर्णिकं मध्ये नारीणां चतुरंगुले ॥ १०१ ॥ मूत्रस्रोतः परीणाहं मुद्गवाहि दशांगुलम् । तासामपत्यमार्गे तु निदध्याच्चतुरंगुलम् ॥ १०२ ॥ द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे तु कन्यानां त्वेकमंगुलम् । विधेयं चांगुलं तासां विधिवद्वक्ष्यते यथा ॥ १०३ ॥ स्नेहस्य प्रसृतं चात्र स्वांगुलीमूलसंमितम् । देयं प्रमाणं परममर्वाग्बुद्धिविकल्पितम् ॥ १०४ ॥

उत्तरबस्ति (मेढ्रबस्ति यह पुरुषोंके मेढ्रमार्गमें तथा स्त्रियोंके गर्भाशय और मूत्र मार्गमें दी जाती है) इसमें पुरुषोंकी उत्तर बस्तिकी नेत्र (नली) १४ अंगुल लंबी रोगीकी अंगुलोंसे चाहिये और मालतीके पुष्पकी डंडी जैसी पतली चाहिये और जिसमें सरसोंका दाना आ सके उतना चौडा छिद्र चाहिये ॥ ९९ ॥ कोई बस्तिके ज्ञाता ऐसा कहते हैं कि नली रोगीके मेढ़ जितनी लंबी चाहिये और स्नेह मात्राका प्रमाण १ कुंच (पलभर) चाहिये ॥ १०० ॥ पच्चीस वर्षवालेको १ पल मात्रा है तो पच्चीस वर्षसे कम अवस्थावालेको बुद्धिसे कल्पना कर ले (प्रति वर्ष पलका पच्चीसवाँ भाग कम कर ले) स्त्रियोंकी उत्तर बस्तिकी नलीमें चार अंगुल पर कर्णिका (किनारा) चाहिये ॥ १०१ ॥ और नली मूत्रद्वार जितनी मोटी

(श्लो० ९९ से १०४) उत्तरबस्तौ भत्रामिश्र आह 'निरूहादुत्तरो यस्मात्तस्मादुत्तरसंज्ञकः' ।

जिसमेंसे मूंग आ जावे ऐसी दश अंगुल लंबी चाहिये इसे गर्भाशयमें चार अंगुल प्रवेश करना चाहिये ॥१०२॥ और मूत्रमार्गमें प्रवेश करनी हो तो दो अंगुल प्रवेश करे तथा कन्याओंके १ अंगुल ही प्रवेश करे और उन्हींके अंगुलोंसे नापे ऐसी विधि है ॥ १०३ ॥ और स्नेहकी मात्रा १ प्रसृति अपनी अंगुलियोंके मूलसे लेनी यह परम प्रमाण है इसके सिवाय कमती बढती बुद्धिसे वैद्य कल्पना कर लेवे (प्रसृति तथा प्रसृत २ पलको कहते हैं पर यहां अंगुलियोंकी जडसे हथेली भर प्रसृत समझना) (यह स्त्रियोंके गर्भाशयके लिये मात्रा है) ॥ १०४ ॥

यह सबके उत्तरमें (अर्थात् सबसे पीछे) उपयोग की जाती है इससे इसे उत्तर बस्ति कहते हैं) देखो टिप्पणी ।

उत्तरबस्तिके योग्य बस्ति ।

औरभ्रः शौकरो वापि बस्तिराजश्च पूजितः । तदलाभे प्रयुञ्जीत गलेचर्म तु पक्षिणाम् । अस्यालाभेततः पादो मृदुचर्म ततोपि वा ॥१०५॥

उतरबस्तिके लिये बस्ति मीढेकी या शूकर या बकरेकी चाहिये यह नहीं होसके तो पक्षियोंके बालकी चर्म लेनी यह भी न होतो मशकके पाँवकी बनानी या इससे भी कोमल चर्म हो उसकी बनवानी (इस समयमें रबरकी बनवा लेना बहुत ठीक रहै) ॥ १०५ ॥

उतरबस्ति कर्मकी विधि ।

अथातुरमुपस्निग्धं सुस्विन्नं प्रथिताशयम् । यवागूं सघृतक्षीरां पीतवंतं यथाबलम् ॥ १०६ ॥ निषण्णमाजानुसमे पीठे स्थानाश्रये समे । स्वभ्यक्तबास्तिमूर्द्धानं तैले नोष्णेन मानवम् ॥ १०७ ॥ ततः समं स्थापयित्वा नालमस्य प्रहर्षितम् । पूर्वं शलाकयान्विष्य ततो नेत्रमनंतरम् ॥ ॥ १०८ ॥ शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं विदध्यादंगुलानि षट् । ततावपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ॥ १०९ ॥ ततःप्रत्यागतस्नेहमपराह्णे विचक्षणः । भोजयेत्पयसा मात्रां यूषेणाथ रसेन वा ॥ ११० ॥ अनेन विधिना दद्याद्बस्तींस्त्रींश्चतुरोपि वा ॥ १११ ॥

रोगीको स्नेहन करा स्वेदन कराके जब आशय स्फुट होजावे तब दूध घृतयुक्त यवागू बलके अनुसार पिलाकर ॥ १०६ ॥ जानुके समान ऊंचे स्थानपर जिसके

(श्लो० १०८) अस्य प्रहर्षितं नालं पूर्वंशलाकयाऽन्विष्य इति अस्य स्फुटं नेत्रप्रणिधानमार्गं पूर्वं शलाकया अन्वेषणं कृत्वा इत्यर्थः ।

पीछेको सहारा हो उसपर (समान भावसे दोनों घुटने पसारकर) स्थित होवे मनुष्यके बस्तिके शिरको (नाभिसे नीचे गरम तैलसे अभ्यंग करे (खूब चुपड दे)॥ ॥ १०७ ॥ फिर समान भावसे बिठाकर उसके छिद्रको सलाईसे (सलाई डालकर) देखले फिर बस्तिकी नलीको घृतसे चुपडकर धीरे धीरे छह अंगुलके अनुमान मेढ्रमें प्रवेशकर दे फिर बस्तिको दबावे (जिससे स्नेहादि द्रव्य भीतर पहुँचे) फिर धीरे धीरे नलीको मेढ्रसे बाहर निकाल ले ॥ १०८॥ १०९ ॥ और जब स्नेह पीछे उलटा निकल आवे तब अपराह्नमें (तीसरे पहर) दूध या मुद्गयूष अथवा मांस रसके संग (हलका) भोजन करावे ॥ ११० ॥ इस विधिके अनुसार तीन या चार बस्ति (उत्तर बस्ति) उपयोग करे ॥ १११ ॥

स्त्रियोंके उत्तरबस्ति देनेकी विधि ।

ऊर्द्ध्वजान्वै स्त्रियै दद्यादुत्तानायै विचक्षणः । कल्पेतरस्यै कन्यायै दद्यात्सुमृदुपीडितः ॥ ११२ ॥ त्रिकर्णिकेन नेत्रेण दद्याद्योनिमुखं प्रति । गर्भाशयविशुद्ध्यर्थं स्नेहेन द्विगुणेन तु ॥११३॥

यदि स्त्रियोंको उत्तर बस्ति देनी हो तो स्त्रीको दोनों घुटने ऊंचे करके दोनों पांव ऊंचे उठाये हुये सीधी लेटी हुईके उत्तरबस्ति चतुर वैद्य देवे और जो तरुण न हुई ऐसी कन्याके उत्तरबस्ति देनी हो तो बहुत कोमल और बस्तिका दबावभी कोमल ही रक्खे ॥ ११२ ॥ और तीन किनारेवाले ही नेत्रसे योनिके मुखमें उत्तर बस्ति करें और गर्भाशयकी शुद्धिके लिये दुगुने स्नेहकी मात्रासे बस्ति कर्म करे ॥ ११३ ॥

उत्तरबस्तिका स्नेह उलटा न आवे तो क्रिया ।

अप्रत्यागच्छति भिषक् बस्तावुत्तरसंज्ञिते । भूयो बस्तिं निदध्यात्तु संयुक्तं शोधनैर्गणैः ॥ ११४ ॥ गुदे वर्तिं निदध्याद्वा शोधनद्रव्यसंभृताम् । प्रवेशयेद्वा मतिमान्बस्तिद्वारमथैषणीम् । पीडयेद्वाप्यधो नाभेर्बलेनोत्तरमुष्टिना ॥ ११५ ॥

यदि उत्तर बस्तिका स्नेह द्रव्यादि उलटा नहीं निकले तो फिर वैद्य शोधन द्रव्योंसे युक्त दूसरी बस्ति देवे ॥ ११४ ॥ अथवा शोधन द्रव्योंसे सानी हुई बत्ती (कपडेकी मोटी बत्ती) गुदामें प्रवेश करे अथवा बस्ति (मूत्रमार्ग) के द्वारपर बुद्धिमान् वैद्य शलाका प्रवेश करे अथवा नाभिके नीचे बलपूर्वक उत्तरमुष्टिसे पीडन करे ॥ ११५ ॥

(श्लो० ११२) कल्पेतरस्यै इति सञ्जीभूता युवतिकल्पा तदितरस्यै कन्यायै ।

वर्तिविधान ।

आरग्वधस्य पत्रेषु निर्गुण्ड्याः स्वरसेषु च।कुर्याद्गोमूत्रपिष्टेषु वर्ति वा पि ससैंधवाः ॥ ११६ ॥ मुद्गैलासर्षपसमाः प्रविभज्य वयांसि तु । बस्तेरागमनार्थाय तां निदध्याच्छलाकया ॥ ११७ ॥

किरमालेके पत्ते और निर्गुंडी (सँभालू) का रस इन्हें गोमूत्रसे पीसकर सैंधानमक मिलाकर बत्तियां (जरा जरासी) बनावे ॥ ११६ ॥ अवस्थाको विचार कर मूंग इलायचीके बीज और सरसों जैसी बनावे उत्तर बस्तिके उलटा आनेके लिये इन्हें शलाकासे (बस्तिके द्वारपर) पहुँचावे ॥ ११७

यही बत्ती यदि स्त्रियोंके गर्भाशयमें देनी हो तो मोटी चार अंगुलकी बनावे देखो टिप्पणी ॥

आगारधूमबृहतीपिप्पली फलसैंधवैः । कृता वा सक्तुगोमूत्रसुरापिष्टैः सनागरैः ॥११८॥ अनुवासनसिद्धिं च वीक्ष्य कर्म प्रयोजयेत् । शर्करा मधुमिश्रेण शीतेन मधुकांबुना ॥११९॥ दह्यमाने तदा बस्तौ दद्याद्बस्तिं विचक्षणः । क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ॥ १२० ॥

घरका धूवां, बडी कटेली, पिप्पली, मैनफल और सैंधानमक इन्हें सिरके (या कांजी) या गोमूत्र या मदिरामें पीस सोंठ मिलाकर बत्ती बनावे ॥ ११८ ॥ अनुवासनकी सिद्धि देखकर (अर्थात् उसको स्नेह उलटा नहीं निकले तो) इस बत्तीका उपयोग करे इसे प्रवेश करे। और जो बस्तिमें जलन हो मुलेटीका क्वाथ ठंढा कर उसमें खांड शहत मिलाकर उसकी बस्ति देवे । अथवा दूधवाले (गूलर आदि) वृक्षोंके क्वाथकी बस्ति करें अथवा ठंढ दूधकी बस्ति करे (इससे बस्तिका दाह शांत हो जाता है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

उत्तरबस्तिके गुण ।

शुक्रं दुष्टं शोणितं चांगनानां पुष्पोद्रेकं तस्य नाशं च कष्टम् । मूत्राघातान्मूत्रदोषान्प्रवृद्धान्योनिव्याधिं संस्थितिं चापरायाः ॥ १२१ ॥ शुक्रो-

---

(श्लो० ११७) मुद्गैलासर्षपसमा मूत्रमार्गे स्नेहापकर्षणार्थमपत्यमार्गे स्थूलावर्तिश्चतुरंगुला प्रणिधेया (इति नि० सं०)

(श्लो० ११८) अगारधूमादिसाधिता वर्तिः अनुवासनस्य स्नेहस्य अनागमने योज्या नतूत्तरबस्तेः। फलं मदनफलम् ।

त्सेकं शर्करामश्मरीं च शूलं बस्तौ वंक्षणे मेहने च।घोरान्नन्यान्बस्तिजांश्चापि रोगान्हित्वा मेहानुत्तरो हंति बस्तिः ॥१२२॥

पुरुषका वीर्य दूषित हो स्त्रियोंका आर्तव रक्त दूषित होना अधिक रजोधर्म होना रजोधर्म नहीं होना तथा कष्टसे होना मूत्राघात बढेहुये मूत्रदोष तथा योनिके रोग और प्रसूति होकर अफरा (जरायु) नहीं पडना ॥ १२१ ॥ पुरुषोंके वीर्य गिरना शर्करा रोग पथरी तथा बस्तिस्थान वंक्षण (नलों) और मेढ्र इनमें शूल होना तथा और अनेक बस्तिके रोग इन सबको यह उत्तरबस्ति दूर कर देती है और नष्ट करती है ॥ १२२ ॥

सम्यग्दसस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च ।
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहबस्तिना ॥ १२३ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

उत्तर बस्तिके ठीक हुयेके लक्षण तथा इसकी व्यापद् और क्रम सब स्नेह बस्ति (अनुवासन बस्ति) के समान ही जानने चाहिये ॥ १२३ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो निरूढोपक्रमचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम निरूढोपक्रम अर्थात् निरूहणबस्तिके क्रम विषयक चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

बस्ति देनेकी विधि ।

अथानुवासितमास्थापयेत्स्वभ्यक्तस्विन्नशरीरमुत्सृष्टबहिर्वेगमप्रवाते शुचौ वेश्मनि मध्याह्ने प्रततायां शय्यायामधः सुपरिग्रहायां श्रोणिप्रदेशव्यूढायामनुपधानायां वामपार्श्वशायिनमाकुंचितदक्षिणसक्थिमितरप्रसारितसक्थिं सुमनसं जीर्णान्नं वाग्यतं सुनिषण्णदेहं विदित्वा ततो वामपादस्योपरि नेत्रं कृत्वेतरपादांगुष्ठांगुलिभ्यां कर्णिकामुपरि निष्पीड्य सव्यपाणिकनिष्ठिकानाभिकाभ्यां बस्तेर्मुखार्द्धं संकोच्य मध्यमप्रदेशिन्यंगुष्ठैरर्द्धं तु विवृतास्यं कृत्वा बस्तावौषधं प्रक्षिप्य दक्षिणहस्तांगुष्ठप्रदेशिनीभ्यां चानुसि-

क्मनायतमबुद्बुदमसंकुचितमवातमौषधासन्नमुपसंगृह्य पुनरितरेण गृहीत्वा दक्षिणेनावसिंचेत्ततः सूत्रेणैवौषधांते द्विस्त्रिर्वावेष्ट्य बध्नीयात् ॥ १ ॥

अनुवासन बस्तिके पीछे आस्थापनबस्ति करने चाहिये रोगीको स्नेहाभ्यंग कराके स्वेद दिलाकर मलमूत्रके वेगसे निवर्त कराके निर्वात पवित्र स्थानमें मध्याह्नके समय अच्छी लंबी चौडी अच्छे दृढ पाँयोंवाली जो बीचसे खूब खींची हो (ढीली झटोल नहीं हो) जिस पर तकिया नहो ऐसी शय्यापर बाँयेकरवट लिटाकर दाहनी साथल सकोडकर और बाँई पसारकर प्रसन्न चित्त भोजन पचेपर चुपके हुवे सीधा शरीर किये ऐसा जाने तब वैद्य अपने बांये पाँवपर बस्तिकी नली रखकर दूसरे पाँवके अँगूठे और अंगुलीसे कर्णिकाके ऊपरसे दबाकर बांये हाथकी कनिष्ठिका और अनामिकासे बस्तिके आधे मुँहको संकुचित करके मध्यमा तर्जनी और अँगूठेसे आधे मुखको चौडा करके बस्तिके भीतर औषध डाले दाहने हाथके अँगूठे और तर्जनीसे डाले कैसी औषध हो जो बस्तिद्वारा ठीक सेचन योग्य हो तथा बहुत ज्यादे न हो जिसमें बुलबुले न हों तथा संकोच (गाँठे) न हों और औषधके संग बस्तिमें वायु न भर जावे ऐसी औषध डालकर ऊपर औषधके पास-से बांये हाथसे थामकर दाहनेहीसे डालता रहै (औषध बस्तिमें यथायोग भरकर) औषधके अन्तमें दोरेसे दो तीन लपेटे देकर (बस्तिके ऊपर ले मुँहको भी) बांध देवे ॥ १ ॥

अथ दक्षिणेनोत्तानेन पाणिना बस्तिं गृहीत्वा वामहस्तमध्यमांगुलिप्रदेशि-नीभ्यां नेत्रमुपसंगृह्यांगुष्ठेन नेत्रद्वारं पिधाय घृताभ्यक्ताग्रनेत्रं घृताक्तगुदाय प्रयच्छेदनुपृष्ठवंशं सममुन्मुखमाकर्णिकं नेत्रं प्रणिधस्त्वेति ब्रूयात् ॥ २॥

फिर दाहना हाथ ऊंचा करके उससे बस्तिको थामके बांये हाथकी मध्यमा और तर्जनीसे नेत्र (नली) को पकडके उसी अँगूठेसे नेत्र (नली) के मुँहको रोककर नलीके अग्रभाग पर घृत चुपड कर और गुदाको भी घृतसे चिकनी करके पीठके बाँसकी सीधमें सीधा ऊपरको मुख (छिद्र) रख कर कर्णिका तक नलीको गुदामें धारण करो (अर्थात् गुदामें जाने दो) ऐसा रोगीसे कहे ॥ २ ॥

बस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत् ।
एकेनैवावपीडेन न द्रुतं न विलंबितम् ॥ ३ ॥

जब नली कर्णिकातक गुदामें प्रविष्ट होजावे तब बाँये हाथसे वैद्य बस्तिको पकडे और दाहने हाथसे उसे दबावे और एकहीबार युक्तिसे ऐसी तरह

दबावे कि औषध भीतर पहुंच जावे बहुत जल्दी भी न दबावे और बहुत विलंब (धीरे) से भी न दबावे ॥ ३ ॥

ततो नेत्रमपनीय त्रिंशन्मात्राः पीडनकालादुपेक्ष्योत्तिष्ठेत्यातुरं ब्रूयात् । आतुरमुपवेशयेदुत्कटकं बस्त्यागमनार्थं निरूहप्रत्यागमनकालस्तु मुहूर्तो भवति ॥ ४ ॥

फिर नेत्र (नली) को गुदासे बाहर निकाल कर तीस गिने जावे इतनी देर औषध पहुँचनेसे पीछेतक रहने दे फिर रोगीसे कहे कि उठो और फिर रोगीको बस्तिकी मात्रा उलटी निकलनेके अर्थ ऊकडू बिठावे निरूहणकी औषध उलटी निकलनेके समयकी अवधि अनुमान एक मुहूर्त होती है ॥ ४ ॥

अनेन विधिना बस्तिं दद्याद्बस्तिविशारदः।द्वितीयं वा तृतीय वा चतुर्थं वा यथार्थतः ॥५॥ सम्यङ्निरूढलिंगे तु प्राप्ते बस्तिं निवारयेत्।अपि हीनक्रमं कुर्यान्नतु कुर्यादतिक्रमम् ॥ ६ ॥ विशेषात्सुकुमाराणां हीन एव क्रमो हितः ॥ ७ ॥

बस्ति कर्मका जाननेवाला वैद्य इसी विधिसे बस्ति प्रणिधान करे और एकके सिवाय दूसरी अथवा तीसरी अथवा चौथी बस्तिका भी यथार्थ हो तो उपयोग करे ॥ ५ ॥ और जब ठीक निरूहण हुएके लक्षण मालूम देवे तब बस्तिकर्म बंद कर देवे यह ध्यान रक्खें कि बस्तिमें हीन क्रम तो भलेही हो (अर्थात् थोडी कमी तो भले ही रह जावे) परंतु अतिक्रम (जादती) कभी नहीं करना ॥ ६ ॥ और बालकों तथा कोमल आदमियों को अवश्य कम बस्तिकर्म करना उचित है॥७॥

दुर्निरूढ अतिनिरूढ और सम्यङ्निरूढके लक्षण ।

यस्य स्याद्बस्तिरत्यल्पवेगो हीनमलानिलः । दुर्निरूढः स विज्ञेयो मूत्रार्त्यरुचिजाड्यवान् ॥ ८ ॥ यान्येव प्राक् प्रयुक्तानि लिंगान्यतिविरेचिते । तान्येवातिनिरूढेऽपि विज्ञेयानि विपश्चिता ॥ ९ ॥ यस्य क्रमेण गच्छंति विट्पित्तकफवायवः । लाघवं चोपजायेत सुनिरूढं तमादिशेत् ॥ १० ॥

जिसके बस्तिका बहुतही अल्पवेग होवे और मल तथा वायु बहुतही कम प्रवत हो तो उसे दुर्निरूढ कहते हैं इससे मूत्रकी पीडा तथा अरुचि और जडता होती है ॥ ८ ॥ जो पहले अतिविरेचनके लक्षण कहे गये हैं वेही लक्षण अति निरूढमें

(निरूहणबस्तिकी अधिकतामें) विद्वान् वैद्यको समझ लेने चाहिये ॥ ९ ॥ जिस मनुष्यके मल पित्त और कफ क्रमसे ठीक निकल जावे और शरीरमें हलकापन होजावे तो उसे सुनिरूढ (अच्छी निरूहणबस्ति हुवा) समझना चाहिये ॥ १० ॥

सुनिरूढं ततो जंतुं स्नानवंतं तु भोजयेत् । पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ॥ ११ ॥ सर्वं वा जांगलरसैर्भोजयेदविकारिभिः । त्रिभागहीनमर्द्धं वा हीनमात्रमथाऽपि वा । यथाग्निदोषं मात्रैवं भोजनस्य विधीयते ॥ १२ ॥

जब अच्छे प्रकारसे निरूहणबस्ति हो चुके तब स्नान करावे और पित्तवालेको गोदुग्धसे कफवालेको मूंगके यूषसे और वायुवालेको मांसके रस (शोरवे) के संग भोजन करावे ॥ ११ ॥ अथवा सबको विकार रहित जंगली जीवोंके मांसके रसहीसे भोजन करावे और भोजनभी तृतीयांश कम या आधा या थोडी मात्राका करावे और भोजनकी मात्रा रोगीकी जठराग्नि तथा दोष विचारकर कल्पना करनी चाहिये ॥ १२ ॥

अनंतरं ततो युंज्याद्यथास्वं स्नेहबस्तिना ॥ १३ ॥ विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः । आस्थापनस्नेहबस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥ १४ ॥

इसके पीछे (ठीक निरूहणके पीछे) यथायोग्य स्नेहबस्तिका उपयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥ आस्थापन तथा स्नेहबस्तीके ठीक उपयोग हुएके ये लक्षण हैं कि विविक्तता (इंद्रियोंमें विवेचन शक्ति) मनकी प्रसन्नता स्निग्धता और जिस व्याधिके लिये कीजावे उसका निग्रह (रुकाव) होजावे ॥ १४ ॥

तदहस्तस्य पवनाद्भयं बलवदिष्यते । रसौदनस्तेन शस्तस्तदहश्चानुवासनम् ॥ १५ ॥ पश्चादग्निबलं मत्वा पवनस्य च चेष्टितम् । अन्नोपस्तंभिते कोष्ठे स्नेहबस्तिर्विधीयते ॥ १६ ॥

उस दिन (निरूहणबस्तिके पीछे) रोगीको वायु (के उपद्रवों) का बडा भारी भय होता है इसलिये मांसरस और भातका भोजन करावे और उसी दिन अनु-

---

(श्लो० ११) स्नानवंतमिति उष्णवारिणा स्नानवंतमित्यर्थः, 'तदुक्तं-ततःप्रत्यागते बस्तौ वाप्युष्णं नागरैः शृतम् । पाययेत् कृतशौचं च स्नापयेदुष्णवारिणा' (इति डल्लनः) । भावप्रकाशेपि 'स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवा स्वप्नमजीर्णतां वर्जयेत्' इति ।

(श्लो० १४) विविक्तता दत्तौषधिनिःसरणं इति भावमिश्रः ।

वासन (स्नेहबास्ति) करे ॥ १५ ॥ फिर रोगीकी अग्नि बल और वायुकी गति देखकर (उचित होतो) भोजन खिलाकर (और भी) स्नेहकी बस्ति करे ॥१६॥

अनायांतं मुहूर्तात्तु निरूहं शोधनैर्हरेत् । तीक्ष्णैर्निरूहैर्मतिमान्क्षारमूत्राम्लसंयुतैः ॥ १७ ॥ विगुणानिलविष्टब्धं चिरं तिष्ठन्निरूहणम् । शूलारतिज्वरानाहं मरणं वा प्रवर्तयेत् ॥ १८ ॥

यदि दोघडीमें निरूहणबस्ति उलटी नहीं निकले तो उसे बुद्धिमान् वैद्य निरूहणकी तीक्ष्ण औषधोंसे जिनमें यवक्षारादि क्षार गोमूत्र और कांजी आदि मिले हो पुनः बस्ति देकर निकाल ही देवे ॥ १७ ॥ क्योंकि जो निरूहणकी औषध देरतक भीतर ठहरे तो वायुकी विगुणता विष्टब्धता शूल अरती (बेचैनी) ज्वर और अफारा तथा मृत्यु करती है ॥ १८ ॥

न तु भुक्तवते देयमास्थापनमिति स्थितिः । विषूचिकां वा जनयेच्छर्दिं वाऽपि सुदारुणाम् ॥ १९ ॥ कोपयेत्सर्वदोषान्वा तस्माद्द्यादभोजिते । जीर्णान्नस्याशये दोषाः पुंसः प्रव्यक्तिमार्गताः ॥ २० ॥ निःशेषाः सुखमायांति भोजनेनाप्रपीडिताः । न वा स्थापनविक्षिप्तमन्नमग्निः प्रधावति ॥ ॥ २१ ॥ तस्मादास्थापनं देयं निराहाराय जानता ॥ २२ ॥

भोजन करे पर आस्थापन बस्ति कभी न देना यह सिद्धांत है, क्योंकि इससे विषूची पैदा होजाती है या तीक्ष्ण वमन होता है ॥ १९ ॥ अथवा सब दोष कुपित होजाते हैं इससे निरूहण बस्ति विनाही भोजन कराये देनी चाहिये । और भोजन पचेपर मनुष्यके दोष प्रगट (उत्कट) ताको प्राप्त होतेहैं ॥ २० ॥ और भोजनसे विना पीडित हुवे दोष सुखसे निःशेष होजाते हैं । और आस्थापनसे बिगडने पर जठराग्नि अन्नकी तरफ नहीं दौडती (अर्थात् भोजन पर रुचि नहीं होती) ॥ २१ ॥ इस कारणसे विना भोजन किये निराहार मनुष्यको आस्थापन बस्ति देनी उचित है ॥ २२ ॥

आवस्थिकं क्रमं चापि मत्वा कार्यं निरूहणम् ।
मलेऽपकृष्टे दोषाणां बलवत्वं न विद्यते ॥ २३ ॥

अवस्थाका क्रम विचार कर भी निरूहणबास्ति करनी चाहिये क्योंकि मलके क्षीण होजानेसे दोषोंमें बलवत्ता नहीं रहती है ॥ २३ ॥

निरूहणके द्रव्य ।

क्षीराण्यम्लानि मूत्राणि स्नेहाः क्वाथा रसास्तथा । लवणानि फलं क्षौद्रं

शताह्वा सर्षपं वचा ॥ २४ ॥ एला त्रिकटुकं रास्ना सरलं देवदारु च । रजनी मधुकं हिंगु कुष्टं संशोधनानि च ॥ २५ ॥ कटुका शर्करा मुस्तमुशीरं चंदनं शटी । मंजिष्ठा मदनं चण्डा त्रायमाणा रसांजनम् ॥ ॥ २६ ॥ बिल्वमध्यं यवानीच फलिनी शक्रजा यवा । काकोली क्षीर-काकोली जीवकर्षभकावुभौ ॥ २७ ॥ तथा मेदा महामेदा ऋद्धिर्वृद्धि-र्मधूलिका । निरूहेषु यथालाभमेषवर्गो विधीयते ॥ २८ ॥

अनेक दुग्ध कांजि आदि खटाई गोमूत्रादि मूत्र अनेक स्नेह (तैल घृतादि) औषधोंके क्काथ तथा स्वरस लवण फल (फलत्रय) शहत शताह्वा (सोया अथवा सौंफ) सरसों वच ॥ २४॥ इलायची त्रिकुट रास्ना सरल (तारपीन) देवदारु हलदी मुलेटी हींग कूट शोधनद्रव्य (निसोथ आदि) ॥ २५ ॥ कुटकी खांड नागरमोथा खस चंदन कचूर मंजीठ मैनफल चंडा (चोरक नाम गंध द्रव्य) त्रायमाण और रसोत ॥ २६ ॥ बिल्वमध्य (वेलगिरी) अजवायन फलिनी (प्रियंगु) इंद्रजौ काकोली क्षीरकाकोली जीवक ऋषभक ॥ २७ ॥ मेदा महामेदा ऋद्धि वृद्धि मधू-लिका (तृणविशेष अथवा मूर्वा) इनमेंसे जो जहां योग्य हो तथा जो मिलसके वे निरूहणमें युक्त करे यह वर्ग निरूहण के लिये कहा है ॥ २८ ॥

बस्तिद्रव्योंके भागोंकी कल्पना ।

स्वस्थे क्काथस्य चत्वारो भागाः स्नेहस्य पंचमः।क्रुद्धेऽनिले चतुर्थस्तु षष्ठः पित्ते कफेऽष्टमः ॥ २९ ॥ सर्वेषु चाऽष्टमो भागः कल्कानां लवणं पुनः। क्षौद्रं मूत्रं फलं क्षीरमम्लं मांसरसं तथा । युक्त्या प्रकल्पयेद्धीमान्निरूहे कल्पना त्वियम् ॥ ३० ॥ कल्कस्नेहकषायाणामविवेकाद्भिषग्वरैः । बस्तिस्तु कल्पितः सम्यक् तस्यादानं यथार्थकृत् ॥ ३१ ॥

स्वस्थ मनुष्यके लिये चार भाग क्काथ और एक भाग पांचवा स्नेह लेना और जो वायुका कोप हो तो तीन भाग क्काथमें एक चौथा भाग स्नेह लेवे और पित्तके कोपमें

(श्लो० २५) सरलः धूपकाष्ठेपीतदारुणि सरलद्रवः तारपीनइति शब्दस्तोमः । संशोधनानि त्रिवृदा॰ दीति (नि० सं०)

(श्लो० २६) चंडा चोरकनामगन्धद्रव्येशंखपुष्पायांचेति (श०स्तो०)

(श्लो० २७) फलिनी प्रियंगुः 'प्रियंगुः फलिनी कांता' इति निघंटुः ।

(श्लो० २८) मधूलिका डल्लनमतेतु तृणविशेषः, शब्दस्तोमेतु मधूलिका मूर्वा, निघंटावपि मधूलिका-मूर्वा पठिता ।

छठा भाग तथा कफके कोपमें आठवां भाग स्नेहका डालना चाहिये ॥ २९ ॥ और सब दोष हों तो आठवाही भाग लेवे तथा कल्क लवण शहत गोमूत्र फल दूध खटाई मांसरस इन सबके भाग बुद्धिमान् वैद्य युक्तिसे कल्पना कर लेवे निरूहण की कल्पनाकी यही विधि है ॥ ३० ॥ कल्क स्नेह क्वाथ इनको वैद्योंने बिना विभागके विवेचनके ही (यथा दोष यथा अवसर) कल्पना करके बस्तिकी कल्पनाकरी है वैद्यकी युक्तिसे उपयोग करना यथार्थ ही होता है ॥ ३१ ॥

योजनका प्रकार ।

दत्वादौ सैंधवस्याक्षं मधुनः प्रसृतद्वयम् । पात्रे तैलेन मथ्नीयादनुस्नेहं शनैः शनैः ॥ ३२ ॥ सम्यक्सुमथिते दद्यात्फलकल्कमतः परम् । ततो यथोचितान्कल्कान्भागैः स्वैः श्लक्ष्णपेषितान् ॥ ३३ ॥ गंभीरे भाजनेन्यस्मिन्मथ्नीयात्तं खजेन च ।यथा च साधु मन्येत न सांद्रो न तनुः समः ॥ ३४ ॥ कषायप्रसृतान्पंच सुपूतांस्तत्र दापयेत् । रसक्षीराम्लमूत्राणां दोषावस्थामवेक्ष्य तु ॥ ३५ ॥

पहले एककर्ष भर सैंधानमक और चारपल शहत एक पात्रमें डालकर हथेलीसे धीरे धीरे मथें और मथते बार स्नेहभी डालता जावे ॥३२॥ जब मथजावे तब उसमें मैनफलका कल्क मिला दे और जो यथोचित कल्क हो उनको भी नरम पीसकर अपने भागोंके अनुसार डालदे ॥ ३३ ॥ फिर दूसरे बडे पात्रमें डालकर रईसे मथे और देखले कि न बहुत गाढा होवे और न बहुत पतला किंतु ठीक एकसा हो॥ ३४॥फिर इसमें छने हुये क्वाथ पाँच प्रसृत (१० पल) डालदे और रोगीके दोषोंको विचार कर उसके अनुसार रस (मांसरस) दूध कांजी गोमूत्र आदि अनुमानसे कल्पना करके डालदे ॥ ३५ ॥

अत ऊर्द्ध्वं द्वादशप्रसृतान्वक्ष्यामः ।

दत्वादौ सैंधवस्याऽक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम् । विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ ३६ ॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् । संमूर्च्छिते कषायं तु चतुःप्रसृतिसंमितम् ॥ ३७ ॥ वितरेच्च तदावापमंते द्विप्रसृतोन्मितम् । एवं प्रकल्पितो बस्तिर्द्वादशप्रसृतो भवेत् ॥ ३८ ॥

अब हम बारहप्रसृति योजनाके विभाग बताते हैं वे ऐसे हों कि, सबसे पहले

(श्लो० ३६) प्रसृतिः प्रसृतं च पलद्वयप्रमाणम् ॥

एक कर्ष सैंधानमक और दो प्रसृति (४ पल) शहत डालके मथे और उसमें तीन प्रसृत (६ पल) स्नेह डाले ॥ ३६ ॥ जब शहत और स्नेह मिल जावे १ प्रसृत (२ पल) कल्क डाले जब कल्क भी मिल जावे तब ४ प्रसृत (८ पल) क्काथ डाले ॥ ३७ ॥ और फिर दो प्रसृत (४ पल) अन्य डालनेकी वस्तु (दूध कांजी मांसरस गोमूत्र आदि) डाले ऐसे विभाग कल्पना करनेसे बस्ति द्रव्य १२ प्रसृत हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

ज्येष्ठायाः खलु मात्रायाः प्रमाणमिदमीरितम् । अप्रह्लासे भिषक्कुर्यात्तद्-त्प्रसृतिहापनम् ॥ ३९ ॥ यथावयो निरूहाणां कल्पनेयमुदाहृता । सैंध-वादिद्रवांतानां सिद्धिकामैर्भिषग्वरैः ॥ ४० ॥

यह प्रमाण १२ प्रसृतिका जो ऊपर कहा है यह बडेसे बडी मात्राका प्रमाण कहा है वैद्य इसमेंसे घटाकर यथोचित जितनी प्रवृत्ति ठीक समझे उतनी (इसी हिसाबसे) कम कर लेवें ॥ ३९ ॥ अवस्थाके अनुसार सिद्धि चाहनेवाले वैद्यवरोंने सैंधवसे लेकर द्रव (क्काथ मूत्रादि) तक की निरूहणबस्तिमें यह कल्पना करी है (सद्वैद्य इसमें भी अपनी बुद्धिसे न्यूनाधिक कल्पना कर सकता है) ॥ ४० ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यंते बस्तयोत्र विभागशः ।
यथादोषं प्रयुक्ता ये हन्युर्नानाविधान्गदान् ॥ ४१ ॥

यहांसे अगाडी अब बस्तियोंके विभाग (भेद) वर्णन करते हैं जो दोषोंके अनु-सार उपयोग किये जानेसे नाना प्रकारके रोगोंको नष्ट कर सके ॥ ४१ ॥

आस्थापनके योग ।

शंपाकोरुबुवर्षाभूवाजिगंधानिशाच्छदैः । पंचमूलीबलारास्नागुडूचीसुरे-दारुभिः ॥ ४२ ॥ क्कथितैः पालिकैरेभिर्मदनाष्टकसंयुतैः । कल्कै-र्मागधिकाम्भोदहबुषामिसिसैंधवैः ॥ ४३ ॥ वत्साह्वयप्रियंगूग्राय-ष्ट्याह्वयरसांजनैः । दद्यादास्थापनं कोष्णं क्षौद्राद्यैरभिसंस्कृतम् ॥ ४४ ॥ पृष्ठोरुत्रिकशूलाश्मविण्मूत्रानिलसंगिनाम् । ग्रहणीमारुतार्शोघ्नं रक्तमां-सबलप्रदम् ॥ ४५ ॥

किरमाला अरंड सांठी असगंध हलदी (अथवा कचूर) पंचमूल (लघु) खिरेंटी रास्ना गिलोय देवदारु ॥ ४२ ॥ इन सबको पल पल भर लेवे और आठ मैन-

(श्लो० ४३) चतुर्दशद्रव्याणां चतुर्दशपलेष्टगुणं जलं दत्वाक्काथयेत् ।

(श्लो० ४४) क्षौद्राद्यैरित्यत्र आद्यशब्देन मूत्रस्नेहादयोग्राह्याः, निरूहस्यांगत्वात् ।

फल डालकर क्काथ करले और पीपल नागरमोथा हाऊबेर सोया सैंधानमक ॥ ॥ ४३ ॥ इंद्रजौ, प्रियंगु, वच, मुलेटी और रसोत इनका कल्क करे इस कल्कको और क्काथको मिलाकर थोडा गरम कर शहत आदि मिलाकर आस्थापन करे ॥ ४४ ॥ यह योग पीठ साथल त्रिक इन स्थानोंके शूल पथरी मल मूत्र और वायुकी रुकावट ग्रहणी वायु रोग बवासीर इतने रोगोंको नष्ट करता है रुधिर और मांसको बल देता है ॥ ४५ ॥

इन योगोंमें अन्वयकी विशेष आवश्यकता नहीं है और न कोई अन्वयके योग्य बात ही है ॥

गुडूचीत्रिफलारास्नादशमूलबलापलैः । क्कथितैः श्लक्ष्णपिष्टैस्तु प्रियंग्वंजन-सैंधवैः ॥ ४६ ॥ शतपुष्पावचाकृष्णायवानीकुष्टबिल्वजैः । सगुडैरक्षमात्रैस्तु मदनार्द्धपलान्वितैः ॥ ४७ ॥ क्षौद्रतैलघृतक्षीरशुक्तकांजिकमस्तुभिः। समालोड्य च मूत्रैस्तु दद्यादास्थापनं परम् ॥ ४८ ॥ तेजोवर्णबलोत्साहवीर्याग्निप्राणवर्द्धनम् । सर्वमारुतरोगघ्नं वयः स्थापनमुत्तमम् ॥ ४९ ॥

गिलोय त्रिफला रास्ना दशमूल खिरेंटी इनको पल पल लेकर क्काथ बनावे और प्रियंगु रसोत सैंधानमक ॥ ४६ ॥ सौंफ वच पीपल अजवायन कूट वेलगिरी और गुड इनको कष भर लेकर और दो कर्ष मैनफल मिलाकर सजल पीसकर कल्क बनावे ॥ ४७ ॥ और शहत, तैल, घृत, दूध, सिरका, कांजी और दहीका पानी सबको इकट्ठा करके गोमूत्र मिलाकर मथ डाले इससे आस्थापन बस्ति करे ॥ ॥ ४८ ॥ यह तेज वर्ण बल और उत्साह वीर्य जठराग्नि और प्राण (जीवन) इन सबकी वृद्धि करती है तथा सब वायुके रोगोंका नाश करती है यह आस्थापन-बस्ति परम उत्तम है ॥ ४९ ॥

कुशादिपंचमूलाब्दत्रिफलोत्पलवासकैः । सारिवोशीरमंजिष्ठारास्नारेणु-परूषकैः ॥ ५० ॥ पालिकैः क्कथितैः सम्यग्द्रव्यैरेभिश्च पेषितैः । शृंगाटकात्मगुप्तेभकेसरागुरुचंदनैः ॥ ५१ ॥ विदारीमिसिमंजिष्ठाश्यामेंद्रयवसिंधुजैः । फलपद्मकयष्ट्याह्वैः क्षौद्रक्षीरघृताप्लुतैः ॥ ५२ ॥ दत्तमास्थापनं शीतमम्लहीनैस्तथा द्रवैः। दाहासृग्दरपित्तासृक्पित्तगुल्मज्वराञ्जयेत् ॥ ५३ ॥

(श्लो० ५०) रेणुः पर्पटः नतुरेणुका पर्पटस्य पित्तघ्नत्वात्, तथाच रेणुकाया रेणुनामपिनास्ति केनचिद्भ्रांत्यैव रेणुका लिखिता ।

(श्लो० ५२) अत्र मधुनश्चत्वारिपलानि पित्तेनातिबहुक्षौद्रमित्युक्तत्वात् ।

कुशादिक (तृण) पंचमूल नागरमोथा त्रिफला कमल अडूसा सारिवा खस मंजीठ रास्ना पित्तपापडा फालसे ॥ ५० ॥ इन सबको एक एक पल लेवे और क्काथ कर लेवे और अगाडी कही हुई औषधोंको पीस लेवे ये हैं सिंघाडे कवचके बीज नागकेसर, अगर, चंदन॥५१॥विदारीकंद, सौंफ, मंजीठ, प्रियंगु, इंद्रजौ, सैंधानमक, मैनफल, पद्म । और मुलेटी इन्हें पीसकर कल्क बनावे और शहत दूध तथा घृत भी मिलावे और खटाई (युक्त कांजी आदि) नहीं डाले और कुछेक पतली रक्खे और इससे ठंढा आस्थापन करे यह प्रयोग दाह रक्तप्रदर रक्तपित्त पित्तगुल्म और ज्वर इन्हें नाश करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

(वक्तव्य) इस योगकी टीकामें डल्लन मिश्रजीने शृंगाटादि १५ द्रव्य कल्क बनानेमें लिखे हैं पर पाठमें १४ ही है जिनका पृथक् २ नाम टीकामें नहीं लिखा कोई १५ पूरे करनेको इभकेसर इस नागकेसरवाची एक पदमेंसे " इभ और केसर पृथक् करके इभका अर्थ गजपीपल और केसर मानते हैं परंतु हमारी समझ-में यह अनुचित है क्योंकि गजपीपल पित्तनाशक नहीं ।

रोध्रचंदनमंजिष्ठारास्नानंताबलर्द्धिभिः । सारिवावृषकाश्मर्यमेदामधुकपद्म-कैः ॥ ५४ ॥ स्थिरादितृणमूलैश्च क्वाथैः कर्षत्रयोन्मितैः । पिष्टैर्जीव-ककाकोलीयुगर्द्धिमधुकोत्पलैः ॥ ५५ ॥ प्रपौंडरीकजीवंतीमेदारेणुपरू-षकैः । अभीरुमिसिसिंधूत्थवत्सकोशीरपद्मकैः ॥५६॥ कसेरुशर्करायुक्तैः सर्पिर्मधुपयःप्लुतैः । द्रवैस्तीक्ष्णाम्लवर्ज्यैश्च देत्तो बस्तिः सुशीतलैः ॥ ॥ ५७ ॥ गुल्मासृग्दरहृत्पांडुरोगान्सविषमज्वरान् । असृक्पित्तातिसारौ च हन्यात्पित्तकृतान्गदान् ॥ ५८ ॥

लोध, चंदन, मँजीठ, रास्ना, अनंता(उत्पल सारिवा)खिरेंटी,ऋद्धि,सारिवा, अडूसा, खंभारी, मेदा, मुलेटी,पद्माख ॥ ५४ ॥ स्थिरादि (शालपर्णी आदि लघु पंचमूल) तृणमूल (तृण पंचमूल) इन सबको तीन २ कर्ष लेकर क्काथ बनावे और जीवक काकोली क्षीरकाकोली ऋद्धि मुलेटी और कमल ॥ ५५ ॥ प्रपौंडरीक जीवंती मेदा पित्तपापडा फालसा अभीरु (शतावरी) सौंफ, सैंधानिमक, इंद्रजौ, खस, पद्माख ॥ ५६ ॥ कसेरु तथा खांड इन्हें पीसकर डाले और घृत शहत तथा दूधभी मिलावे तीक्ष्ण और खटाई नहीं मिलावे (किंतु इक्षुरस आदि शीतल द्रव वस्तु मिलावे) और इससे बस्तिकर्म करे ॥ ५७ ॥ यह गुल्म, रक्तप्रदर, हृदयरोग, पांडुरोग,विषमज्वर, रक्तपित्त, अतिसार तथा पित्तके रोगोंको दूर करता है ॥५८॥

भद्रानिम्बकुलत्थार्ककोशातक्यमृतामरैः। सारिवाबृहतीपाठामूर्वारग्वधवत्सकैः ॥ ५९॥ क्वाथः कल्कस्तु कर्तव्यो बलामदनसर्षपैः। सैंधवामरकुष्ठैलापिप्पलीबिल्वनागरैः ॥ ६० ॥ कटुतैलमधुक्षारमूत्रतैलांबुसंयुतः। कार्यमास्थापनं तूर्णं कामलापांडुमेहिनाम् ॥ ६१ ॥ मेदस्विनामनग्नीनां कफरोगाशनद्विषाम्। गलगंडगरग्लानिश्लीपदोदररोगिणाम् ॥ ६२ ॥

भद्रा (भद्रमुस्ता या भद्रदारु) निंब कुलथी आक तोरई गिलोय देवदारु सारिवा बडी कटेली पाठा मूर्वा किरमाला कुडा ॥ ५९ ॥ इनका तो क्वाथ करे और खिरेटी मैनफल सरसों सैंधानिमक देवदारु कूट इलायची पीपल बेलगिरी सोंठ इन्होंको पीसकर कल्क बनावे ॥ ६० ॥ कडुवा तैल शहत यवक्षार गोमूत्र और तिलका तैल और जल सबको मिलाकर इससे आस्थापन करे इतने रोगोंवालेको यह हितकारक है कि कामला पांडुरोग और प्रमेहरोगवाले ॥ ६१ ॥ जिनके मेद बढा हो जिनकी जठराग्नि नष्ट हो जिनको कफके रोग हो जिनको भोजनसे द्वेष हो (अरुचि हो) तथा गलगंडके रोगी गरसे व्याप्त जिन्हें अंगग्लानी हो श्लीपद हो तथा कफोदर आदि उदरके रोग हो ॥ ६२ ॥

दशमूलीनिशाबिल्वपटोलत्रिफलामरैः। क्वथितैः कल्कपिष्टैस्तु मुस्तसैंधवदारुभिः ॥ ६३ ॥ पाठामागधिकेंद्राह्वैस्तैलक्षारमधुप्लुतैः। कुर्यादास्थापनं सम्यग्मूत्राम्लफलयोजितम् ॥ ६४ ॥ कफपांडुमदालस्यमूत्रमारुतसंज्ञिनाम्। आमाटोपापचीश्लेष्मगुल्मकृमिविकारिणाम् ॥ ६५ ॥

दशमूल हलदी बिल्व पटोल त्रिफला देवदारु इनका क्वाथ करे और नागरमोथा सैंधानमक देवदारु ॥ ६३ ॥ पाठा पीपल इंद्रजौ इनका कल्क कर ले और तैल क्षार (यवक्षार) और शहतसे प्लुत करके गोमूत्र कांजी तथा मैनफल युक्त करके आस्थापन बस्ति करे (इसमें तैल और मधु चार चार पल डाले क्षार दो कर्ष गोमूत्र डेढपल कांजी आधेपल मैनफल दो कर्ष लेवे) ॥ ६४ ॥ यह कफ पांडु मद आलस्य तथा मूत्र और अधोवायुका रुकना आमका विकार आटोप अपची कफका गुल्म और कृमिरोगवालोंको हितकारी है ॥ ६५ ॥

वृषाश्मभेदवर्षाभूधान्यगंधर्वहस्तकैः। दशमूलबलामूर्वायवकोलनिशाच्छदैः ॥ ६६ ॥ कुलत्थबिल्वभूनिंबैः क्वथितैः पलसंमितैः। कल्कैर्मदन

(श्लो० ५९) भद्रा भद्रमुस्ता देवदारु चेति (शब्दस्तोमः)।

(श्लो० ६३) अत्रजलमष्टगुणं योजयित्वाक्काथंकुर्यात्।

(श्लो० ६६) निशाच्छदः शटी इति डल्हनः।

यष्ट्याह्वषड्ग्रंथामरसर्षपैः ॥ ६७ ॥ पिप्पलीमूलसिंधूत्थयवानीमिसिवत्सकैः । क्षौद्रेक्षुरसगोमूत्रसर्पिस्तैलरसप्लुतैः ॥ ६८ ॥ तूर्णमास्थापनं कार्यं संसृष्टं बहुरोगिणाम् । गृध्रसीशर्कराष्ठीलातूर्णीगुल्मगदापहम् ॥ ६९ ॥

अडूसा पाषाणभेद सांटी धनिया अरंड दशमूल खिरेंटी मूर्वा जौ बेर कचूर ॥ ६६ ॥ कुलथी बिल्व चिरायता इन तेईस द्रव्योंको पलपल भर ले अठगुने जलमें क्वाथ करे और मैनफल मुलेटी वच देवदारु सरसों पीपलामूल सैंधानमक अजवायन सौंफ इंद्रजौ इन्हें पीस कल्क बनावे फिर शहत ईखका रस गोमूत्र घृत तैल मांसरस भी मिला दे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ और शीघ्र इसकी आस्थापना बस्ति देवे जो बहुत रोगोंसे व्याप्त हो गृध्रसी वायु शर्करा अष्ठीला तूणी और गुल्म इतने रोगोंवालेको हित है ॥ ६९ ॥ (इसमें शहत तीनपल ईखका रस दूध गोमूत्र डेढ डेढ पल घृत २ पल तैल २ पल मांस रस आधे पल लेना तथा दोषों की न्यूनाधिकतासे वैद्य कम ज्यादाभी कर लेवे) ॥

रास्नारग्वधवर्षाभूकटुकोशीरवारिदैः । त्रायमाणामृतारक्तापंचमूलबिभीतकैः ॥ ७० ॥ सबलैः पालिकैः क्वाथः कल्कस्तु मदनान्वितैः । यष्ट्याह्वमिसिसिंधूत्थफेनिलेंद्रयवाह्वयैः ॥ ७१ ॥ रसांजनरसक्षौद्रद्राक्षासौवीरसंयुतैः । युक्तो बस्तिसुखोष्णोयं मांसशुक्रबलौजसाम् ॥ ७२ ॥ आयुष्योग्नेश्च संस्कर्ता हंति चाशु गदानिमान् । गुल्मासृग्दरवीसर्पमूत्रकृच्छ्रक्षतक्षयान् ॥ ७३ ॥ विषमज्वरमर्शांसि ग्रहणीं वातकुंडलीम् । जानुजंघाशिरोबस्तिग्रहोदावर्तमारुतान् ॥ ७४ ॥ वातासृक्शर्कराष्ठीला कुक्षिशूलोदरारुचीः । रक्तपित्तकफोन्मादप्रमेहाध्मानहृद्ग्रहान् ॥ ७५ ॥

रास्ना, किरमाला, सांठी, कुटकी, खस, नागरमोथा, त्रायमाण, गिलोय, मँजीठ, पंचमूल (आद्य पंचमूल) बहेडा ॥ ७० ॥ और खरेटी, इन सबको पल पल लेकर अठ गुने जलमें क्वाथ करे और मैनफल मुलेटी सौंफ सैंधानमक प्रियंगु इंद्रजौ ॥७१॥

(श्लो० ७१) सबलैः बलासहितैः ।

(श्लो० ७२) द्राक्षासौवीरसंयुतैरित्यत्र क्षीरसौवीरसंयुतैरिति पाठं मन्यंते, स्नेहस्य निरूहस्य निरूहणांगत्वात् अतोप्यत्र षट्पलप्रमाणानि निक्षेपणीयानि अत्र कल्कस्य त्रीणि पलानि मधुनस्त्रीणि पलानि रसांजन मांसरसक्षीरसौवीराणां प्रत्येकमेकपलमित्येवं (इति डल्हनः) ।

इन्हें पीस कल्क बनावे और रसौत मांसरस शहत दाख (मुनक्का) कांजी मिलाकर निवायाकर बस्ति देवे यह मांस वीर्यबल और ओजवालोंको (स्वस्थकोभी) हित है ॥ ७२ ॥ आयु देनेवाली है अग्निको संस्कार करके शुद्ध करे और निम्न लिखित रोगोंको नष्ट करे गुल्म रक्तप्रदर विसर्प मूत्रकृच्छ्र क्षत और क्षय ॥ ७३ ॥ विषम-ज्वर बवासीर संग्रहणी वात कुंडली जानु और जंघा शिर बस्ति इनका ग्रह (अकडना) उदावर्त तथा वायुके रोग ॥ ७४ ॥ वातरक्त शर्करा अष्ठीला कूखकी शूल उदर रोग अरुचि रक्तपित्त कफके रोग उन्माद प्रमेह अफारा और हृदयक रुकना इतने रोगोंमें यह हितकारक है ॥ ७५ ॥

(वक्तव्य) इसमें मैनफलसे लेकर इंद्रजौतक छः द्रव्योंका कल्क ३ पल लेना और यद्यपि स्नेह इसमें नहीं लिखा तो भी निरूहणका मुख्य अंग होनेसे स्नेह ६ पल शहत ३ पल रसौत मांसरस क्षीर सौवीर ये पलपलभर लेवे (तथा दाखका रसभी १ पल लेवे और कई द्राक्षा सौवीरकी जगह "क्षीरसौवीरसंयुतैः" ऐसाही पाठ मानते हैं-देखो टिप्पणी) ॥

(विशेष वक्तव्य) इन योगोंमें क्वाथ का यह नियम जानना कि द्रव्योंसे अठगुने जलमें क्वथित करे और चतुर्थांश रहे उतारले उसमेंसे छानकर आठ पल अनुमान लेकर कल्क क्षौद्रादिमें डालना और सब मिलकर अनुमान १२ प्रसृत (२४ पल) होजावे ऐसा हिसाब लगा लेना और जो अल्प मात्रा करनी होतो उसी हिसाबसे अनुमान तीसरा भाग क्वाथका रखना पहलेके मनुष्योंका शरीर विशाल और बल एवं शक्ति अधिक होती थी उस समय १२ प्रसृति अर्थात् २४ पल जो सवासेरके अनुमान हुई इतनी औषध बस्ति द्वारा पक्वाशयमें प्रणिधान होसकती होगी परंतु इस समय क्षुद्र मनुष्योंका शरीर क्षुद्र बल और शक्ति बहुत अल्प तथा पक्वाशया-दिक आशय भी उतने विस्तृत नहीं इस कारण इस समयके लिये बस्तिके द्रव्योंकी मात्रा आधी अर्थात् १२ पल ही की बडी मात्रा रखनी चाहिये और सुकुमार बाल वृद्धों आदिके लिये इससे भी अल्प औषधकी बस्ति देना चाहिये ॥

वातादि दोषों में बस्ति ।

वातघ्नौषधनिःक्वाथाः सैंधवत्रैवृतैर्युताः । साम्लाः सुखोष्णा योज्याः स्यु-र्बस्तयः कुपितेनिले ॥ ७६ ॥ न्यग्रोधादिगणक्वाथाः काकोल्यादिस-मायुताः । विधेया बस्तयः पित्ते ससर्पिष्काः सशर्कराः ॥ ७७ ॥ आर-ग्वधादिनिःक्वाथाः पिप्पल्यादिसमायुताः । सक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युर्बस्तयः

कुपिते कफे ॥ ७८ ॥ शर्करेक्षुरसक्षीरघृतयुक्ताः सुशीतलाः । क्षीरवृक्ष कषायाढ्या बस्तयः शोणिते हिताः ॥ ७९ ॥

वायुके कोपमें वायुनाशक औषधोंका क्काथ कर उसमें सैंधानमक और त्रैवृत स्नेह डाल कांजी मिलाकर सुहाते २ निवायेकी बस्ति करना (इसमें वायुनाशक भद्रदारु आदि द्रव्य १६ पलका क्काथ कर उसमेंसे ८ लेना) ॥ ७६ ॥ पित्तके कोपमें न्यग्रोधादि गणका क्काथ कर उसमें काकोल्यादिका कल्क मिला और घृत तथा शर्करा मिलाकर बस्ति करना (इसमें कल्क २ पल घृत ४ पल शर्करा १ पल और अनुक्त मधु सैंधव क्षीरादि भी मिलावे ॥ ७७ ॥ कफके कोपमें आरग्वधादि गणकी १६ पल औषधोंका क्काथकर इसमेंसे ८ पल ले और पिप्पल्यादिका कल्क ३ पल डाले शहत ६ पल गोमूत्र ३॥ पल मिलाकर बस्ति करे ॥ ७८ ॥ रक्तके कोपमें शर्करा ईखका रस दूध घृत और दूधवाले वृक्षोंका क्काथ मिलाकर बस्ति करे (इसमेंभी क्काथ ८ पल लेकर क्षीरादि बुद्धिसे अनुमानकर ले ॥ ७९ ॥

(वक्तव्य) इसमें डल्लन मिश्रजीने हरेक योगमें मात्राका बडा झगडा बारबार लिखा है इसे तो वैद्य पूर्वोक्त द्वादश प्रसृतोक्त आदि बीजोंसे स्वयंही कल्पनाकर सकता है तथा वैद्य देशकाल अवस्था व्याधि और दोषका विचार करके स्वयं समयोचित कल्पना करे वही ठीक होता है क्योंकि जो प्रमाणके भाग उन्होंने लिखे वे २४ पलके पूरा करनेको लिखे हैं सो इस समय ठीक नहीं तथा बहुतसी अनुक्त योजनाभी लिखी जो पाठसे सर्वथा असिद्ध है इसलिये हमने सब जगह यह झगडा नहीं लिखा परंतु कहीं २ लिखभी दिया है पर वैद्य सदा अपनी बुद्धिसे विचारकर काम करे ॥

शोधन बस्ति और लेखन बस्ति ।

शोधनद्रव्यनिःक्काथास्तत्कल्कस्नेहसैंधवैः। युक्ताः खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥ ८० ॥ त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः । उषकादिप्रतीवापा बस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ ८१ ॥

शोधन द्रव्यों (निसोथ आदि) का क्काथ करे और उन्हींका कल्क तथा स्नेह सैंधानमक मिलाकर रईसे मथे ये शोधन करनेवाली बस्ति हैं ॥ ८० ॥ " लेखन बस्ति " त्रिफलाका क्काथ गोमूत्र शहत और जवाखार तथा उषकादि गणका कल्क डालकर बस्ति करना लेखन है ॥ ८१ ॥

बृंहण और वाजीकरण बस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिःक्वाथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः । सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ ८२ ॥ चटकांडोच्चटाक्वाथाःसक्षीरघृतशर्कराः । आत्मगुप्ताफलावापाः स्मृता वाजीकरा नृणाम् ॥ ८३ ॥

" बृंहणबस्ति " विदारिकंदादि बृंहण द्रव्योंके क्वाथमें काकोल्यादि मधुर द्रव्योंका कल्क मिला घृत मांसरस डालकर बस्ति करना बृंहण है ॥ ८२ ॥ " वाजीकरण बस्ति " चिडियाके अंडे उच्चटा (चिरमठी या उटंगनके बीज) का क्वाथ तथा दूध घृत खांड मिला कवचके बीजोंका कल्क डाल बस्ति करना वाजीकरण है पुरुषोंको यह परमबलदायक है ॥ ८३ ॥

पिच्छल बस्ति ।

विदार्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनांकुराः । क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुताः सास्राः पिच्छलबस्तयः ॥ ८४ ॥ वाराहमाहिषौरभ्रबैडालैणेयकौक्कुटम् । सद्यस्क मसृगंडं वा देयं पिच्छलबस्तिषु ॥ ८५ ॥

विदारी कंद, ऐरावती (नागबला), शेलू (श्लेष्मातक अर्थात् ल्हेसुवा) शाल्मली (सिंभल या सेमल) तथा धन्वन वृक्षके अंकुर इन्हें दूधमें पकाकर शहत और रुधिर मिलाकर बस्ति करना पिच्छल (गाढा करनेवाला तथा रक्तादि रोकनेवाला) है ॥ ८४ ॥ इस पिच्छल बस्तिमें सूकर, भैंसे मेंढे, बिलाव, हिरन तथा मुरगे इनका ताजा रुधिर लेना (अर्थात् जीवते हुवेका रुधिरही जीवको साधता है इससे सजीवका ही रुधिर लेना) अथवा अंडे लेना (अंडे केवल कुक्कुट पक्षिका हीमें लेना) ॥ ८५ ॥

संग्रहण बस्ति ।

प्रियंग्वादिगणक्वाथा अंबष्ठाद्येन संयुताः ।
सक्षौद्राः सघृताश्चैव ग्राहिणो बस्तयः स्मृताः ॥ ८६ ॥

प्रियंग्वादि गणका क्वाथ लेके अंबष्ठादि गणके कल्कमें मिला शहत और घृतयुक्त कर बस्ति करना संग्रहण है ॥ ८६ ॥

(श्लो० ८५) सद्यस्कं असृक् देयं इत्यत्र सद्यस्कं तात्कालानीतं तं प्रजीवितमेव ग्राह्यं जीवानुसाधनार्थमिति (नि. सं.) ।

एतेष्वेव च योगेषु स्नेहाः सिद्धाः पृथक् पृथक् ।
समस्तेष्वथ वा सम्यग्विधेयाः स्नेहबस्तयः ॥ ८७ ॥

इन योगोंमेंसे पृथक् पृथक्से सिद्ध किये हुये अथवा समस्त योगसे सिद्ध किये हुवे स्नेहसे ठीक बस्ति करना इसको स्नेह बस्ति कहाती है ॥ ८७ ॥

वंध्यात्वनाशक बस्ति ।

वंध्यानां शतपाकेन शोधितानां यथाक्रमम् ।
बलातलेन देयाः स्युर्बस्तयस्त्रैवृतेन च ॥ ८८ ॥

वंध्या स्त्रियोंको स्नेहन स्वेदन वमन रेचनादिसे शुद्ध करके शतपाक विधानसे सिद्ध किये बलातैलकी बस्ति देवे तथा त्रैवृत घृतकी बस्ति देवे तो वंध्यापन नष्ट होवे ॥ ८८ ॥

नरस्योत्तमसत्वस्य तीक्ष्णं बस्तिं निधापयेत् । मध्यमं मध्यसत्वस्य विपरीतस्य वै मृदुः ॥ ८९ ॥ एवं कालं बलं दोषं विकारं च विकारवित्। बस्तिद्रव्यबलं चैव वीक्ष्य बस्तीन्प्रयोजयेत् ॥ ९० ॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं पुनः । पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्बस्तिं विचक्षणः ॥९१॥

उत्तम सत्ववाले (अति बलवान्) को तीक्ष्ण (तेज) बस्ति देनी चाहिये मध्यम सत्ववालेको मध्यम तथा हीन सत्ववाले (दुर्बल) को मृदु बस्ति देनी उचित है ॥ ८९ ॥ इसी प्रकार काल (समय) बल दोष तथा व्याधिको देख (विचार) कर रोगोंका जाननेवाला वैद्य बस्तिका प्रयोग करे (और बस्तिके द्रव्योंको भी समय दोष आदिसे अनुकूल देख लेवे) तथा बस्तिकी औषधोंका बल भी समझ लेवें जब उपयोग करे ॥ ९० ॥ सबसे पहले उत्क्लेशन (दोषोंके उठानेवाली) बस्ति देवे फिर दोषोंके निकालनेवाली देवे इससे पीछे संशमन (बचे रहे दोषोंको शांत करनेवाली बास्तिका उपयोग करे ॥ ९१ ॥

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैंधवं वचा । हबुषाफलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ ९२ ॥ शताह्वा मधुकं बीजं कौटजं फलमेव च । सकांजिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ ९३ ॥ प्रियंगु मधुकं मुस्ता तथैव च रसांजनम् । सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमनः परः ॥ ९४ ॥

"उत्क्लेशन बस्ति" अरंडके बीज मुलेटी पीपल सैंधानमक वच हाऊबेर मैनफलका कल्क करके बस्ति देनेसे उत्क्लेश (दोषोंका उठाया पतलापन) होताहै ॥ ९२ ॥ शताह्वा (सौंफ या सोया) मुलेटी कुडेके बीज अर्थात् इंद्रजौ और मैनफल इनका कल्क कर कांजी और गोमूत्र मिलाकर बस्ति करनेसे दोष निकल जाते हैं यह दोषोंके निकालनेवाली बस्ति है ॥ ९३ ॥ "शमन बस्ति" प्रियंगु मुलेटी नागरमोथा और रसोत इनमें दूध मिलाकर बस्ति करनेसे (शेष रहे) दोष शांत होते हैं यह दोषोंके शमन करनेवाली बस्ति है ॥ ९४ ॥

माधुतैलिक बस्ति ।

नृपाणां तत्समानानां तथा सुमहतामपि । नारीणां सुकुमाराणां शिशुस्थविरयोरपि ॥ ९५ ॥ दोषनिर्हरणार्थाय बलवर्णोदयाय च । समासेनोपदेक्ष्यामि विधानं माधुतैलिकम् ॥ ९६ ॥ यानस्त्रीभोज्यपानेषु नियमश्चात्र नोच्यते । फलं च विपुलं दृष्टं व्यापदां चाप्यसंभवः ॥ ९७॥ योज्यस्त्वतः सुखेनैव निरूहक्रममिच्छता । यदेच्छति तदैवैष प्रयोक्तव्यो विपश्चिता ॥ ९८ ॥

राजोंके लिये तथा राजाओंके समान बडे आदमियोंके लिये तथा स्त्रियों और कोमल (नाजुक) मनुष्यों तथा बालकों और वृद्धों के लिये ॥ ९५ ॥ दोषोंके निकालनेके वास्ते और बल रूप आदिके उदय होनेके वास्ते माधुतैलिक बस्तिका विधान विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ॥ ९६ ॥ इसमें सवारी स्त्रीसंग भोजन पान इत्यादिका कुछ भी नियम नहीं है और फल (फायदा) बहुत विशेष है और व्याधियां भी इससे नहीं होती (अर्थात् कुछ उपद्रव भी इसमें नहीं होते) ॥ ९७ ॥ इस कारणसे निरूहणके क्रमकी इच्छावाले विद्वान् वैद्यको सुखपूर्वक जब इच्छा हो तब इसीका उपयोग करना चाहिये ॥ ९८ ॥

मधुतैले समे स्यातां क्वाथश्चैरंडमूलजः । पलार्द्धं शतपुष्पायास्ततोऽर्द्धं सैंधवस्य च ॥ ९९ ॥ फलेनैकेन संयुक्तः खजेन च विलोडितः । देयः सुखोष्णे भिषजा माधुतैलिकसंज्ञितः ॥ १०० ॥

इसमें शहत और तैल समान भाग लेना और इतनाही अरंडकी जडका क्वाथ तथा आधे पल सौंफ और सौंफसे आधा सैंधानमक ॥ ९९ ॥ इसमें १ मैनफल पीसकर मिला देवे और रईसे मथ डाले फिर सुहाता गरम करके वैद्य इसकी बस्ति देवे इसका नाम माधुतैलिक बस्ति है ॥ १०० ॥

(वक्तव्य) इसमें द्रव्योंकी समष्टि मात्रा ९ प्रसृत अर्थात् १८ पल पूरी लिखी है जिसमें ४ पल शहत ४ पल तैल ८ पल क्वाथ लेना टीकाकारने लिखा है पर इस समय इसकी मात्रा भी आधी आधी ही रखनी उचित है अर्थात् सब मिलाकर ९पल इसी हिसाबसे लेकर बस्ति देना समयानुसार ठीक प्रतीत होता है ॥

वचा मधुकतैलं च क्वाथः सरससैंधवः । पिप्पलीफलसंयुक्तो बस्तिर्युक्तरथः स्मृतः ॥ १०१ ॥ सुरदारुवरारास्नाशतपुष्पावचामधुः । हिंगुसैंधव संयुक्तो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १०२ ॥ पंचमूलीकषायं च तैलं मागधिकां मधु । बस्तिरेष विधातव्यः सशताह्वः ससैंधवः ॥ १०३ ॥ यवकोलकुलत्थानां क्वाथो मागधिका मधु ।ससैंधवः समधुकः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ १०४ ॥

वच शहत तैल और क्वाथ (अरंड मूलका क्वाथ) मांसरस सैंधानमक पिप्पली और मैनफल इनकी बस्ति करना युक्तरथ (माधुतैलिक युक्त रथ) बस्ति है (इसमें पिप्पलीफलसंयुक्तोकी जगह पिप्पलीमूलसंयुक्तो ऐसा भी पाठ है) ॥ १०१ ॥ देवदारु त्रिफला रास्ना सौंफ वच शहत हींग और सैंधानमक (और तैल अनुक्त भी लेना) इन सबको मिलाके बस्ति करना इसको दोषहर बस्ति कहलाता है ॥ १०२ ॥ पंचमूलका क्वाथ तैल पीपल शहत सौंफ और सैंधानमक इनको मिलाकर बस्ति करनाभी श्रेष्ठ है ॥ १०३ ॥ जो बेर कुलथी इनका क्वाथ पीपल शहत सैंधानमक मुलेटी (और तैल अनुक्त भी लेना, क्योंकि ये सब माधुतैलिकहीके भेद हैं) इनकी बस्ति करना सिद्ध बस्ति कहलाता है ॥ १०४॥

मुस्तादिक बस्ति।

मुस्तापाठामृतातिक्ता बलारास्नापुनर्नवा । मंजिष्ठारग्वधोशीरत्रायमाणाक्ष्यगोक्षुरान् ॥ १०५ ॥ पालिकान् पंचमूलाल्पसहितान्मदनाष्टकम् । जलाढके पचेत्क्वाथं पादशेषं पुनः पचेत् ॥ १०६ ॥ क्षीरप्रस्थेन संयुक्तं क्षीरशेषं परिस्रुतम् । पादेन जांगलरसस्तथा मधुघृतं समम् ॥ ॥ १०७ ॥ शताह्वा फलिनीयष्टीवत्सकैः सरसांजनैः । कार्षिकैः सैंधवयुतैः कल्कैर्बस्तिः प्रयोजितः ॥ १०८ ॥ वातासृङ्मोहशोफार्शोगुल्ममूत्रविबंधनुत् । विसर्पज्वरविड्भंगरक्तपित्तविनाशनः ॥ १०९ ॥ बल्यः

संजीवनो वृष्यश्चक्षुष्यः शूलनाशनः । स्थापनानामयं राजा बस्तिर्मुस्तादिको मतः ॥ ११० ॥

नागरमोथा पाठा गिलोय कुटकी खिरेंटी रास्ना सांठी मंजीठ किरमाला खस त्रायमाण और गोखरू ॥ १०५ ॥ और लघुपंचमूल इन सबको पल पल भर लेवे और आठ मैनफल लेवे इन सबको आढक भर जलमें क्काथ कर चतुर्थांश रहे उतार ले फिर उसको छान कर १ प्रस्थ दूधमें पकावे और दूध शेष रहे लेवे और इसमें १ चौथाई जंगली जीवोंके मांसका रस तथा उतना २ ही शहत और घृत डाले ॥१०६॥१०७॥ और सौंफ प्रियंगु मुलेटी इंद्रजौ और रसोत और सैंधानमक सब कर्ष कर्ष ले कल्क कर मिला दे फिर इसकी बस्ति उपयोग करे ॥ १०८ ॥ यह वातरक्त मोह (मूर्च्छा) शोथ बवासीर गुल्म मूत्रदोष और बंधा पडना इन रोगोंको नाश करे है तथा विसर्प ज्वर विड्भेद तथा रक्त पित्त इनको भी नष्ट करनेवाला है ॥ १०९ ॥ बलकारक जीवन वृष्य नेत्रोंको हितकारक तथा शूल नाशक है यह मुस्तादिक बस्तिका प्रयोग सब आस्थापनके प्रयोगोंमें राजाके तुल्य है ॥ ११० ॥

अवेक्ष्य भेषजं बुध्वा विकारं च विकारवित् । बीजेनानेन मतिमान् कुर्याद्बस्तिशतान्यपि ॥ १११ ॥ अजीर्णे न प्रयुंजीत दिवास्वप्नं च वर्जयेत् । आहाराचारिकं शेषमन्यद्युक्तं समाचरेत् ॥ ११२ ॥

रोगोंको जाननेवाला बुद्धिमान् वैद्य औषधको देख लेवे (विचार लेवे) और रोगको विचारले फिर इसी बीजके अनुसार सैंकडों बस्तिके प्रयोग बुद्धिसे कल्पना कर सकता है ॥ १११ ॥ अजीर्णमें बस्ति कर्म नहीं करना तथा बस्ति कर्म किये जानेपर दिन दिनमें सोनाभी उचित नहीं इसके सिवाय और आहारविहारभी यथायोग्यही करने चाहिये ॥ ११२ ॥

यस्मान्मधु च तैलं च प्राधान्येन प्रदीयते।माधुतैलिक इत्येवं भिषग्भिर्बस्तिरुच्यते ॥ ११३ ॥ रथेष्वपि च युक्तेषु हस्त्यश्वे चापि कल्पिते । यस्मान्न प्रति षिद्धोयमतो युक्तरथः स्मृतः ॥ ११४ ॥ पलोपचयवर्णानां यस्माद्व्याधिशतस्य च । भवंत्येतेन सिद्धिस्तु सिद्धबस्तिरतो मतः ॥ ११५ ॥

(श्लो० ११२) अन्यद्युक्तं समाचरेदित्यत्र अन्यत्कामं समाचरेदितिवा पाठः तत्र कामं यथेष्टं समाचरेदिति (नि. सं.)

जिसमें मधु और तैल प्रधानतासे दिये जाते हैं इससे वैद्य इसे माधुतैलिक बस्ति कहते हैं ॥ ११३ ॥ रथमें नियुक्त होनेपर तथा हाथी और घोडेकी कल्पनामें जो नहीं थके या नहीं रुके इससे उसे युक्तरथ कहते हैं ॥ ११४ ॥ जिससे शरीरको बल वृद्धि और रूपकी तथा सैंकडो व्याधियोंकी एकहीसे सिद्धि होजावे इससे उसे सिद्ध बस्ति कहतेहैं ॥ ११५ ॥

सुखिनामल्पदोषाणां नित्यं स्निग्धाश्च ये नराः । मृदुकोष्ठाश्च ये तेषां विधेया माधुतैलिकाः ॥ ११६ ॥ मृदुत्वात्पादहीनत्वादकृत्स्नविधिसेवनात् । एकबस्तिप्रदानाच्च सिद्धबस्तिष्वयंत्रणा ॥ ११७ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सितस्थानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सुखी आदमियोंको जिनके अल्प दोष हो उन्हें तथा जो नित्यही स्निग्ध रहते हैं तथा जो नरम कोठेवाले हो उने सबको माधुतैलिक बस्तिका उपयोग करना चाहिये ॥ ११६ ॥ और मृदु होनेसे पौनी मात्रा होनेसे तथा वमनादिक सब विधियोंके सेवन नहीं होनेसे और केवल १ ही बस्ति प्रयोग करी जानेसे सिद्धबस्ति सबसे श्रेष्ठ है (अर्थात् इसमें स्नेहन स्वेदन वमन रेचनकीभी आवश्यकता नहीं और एकही बस्ति दीजावे इससे यह अयंत्रणा (निर्बंधन) सिद्ध है और श्रेष्ठ है ॥ ११७ ॥

इतिश्री सुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां चिकित्सित-
स्थानेऽष्टत्रिंशोध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथात आतुरोपद्रवचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी हम रोगीके उपद्रवोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

पंचकर्मके पीछे जठराग्निकी रक्षा ।

स्नेहपीतस्य वांतस्य विरिक्तस्य स्रुतासृजः । निरूढस्य च कायाग्निर्मंदो भवति देहिनः ॥ १ ॥ सो न्नैरत्यर्थगुरुभिरुपयुक्तैः प्रशाम्यति । अल्पो महद्भिर्बहुभिश्छादितोऽग्निरिवेन्धनैः ॥ २ ॥ संचाल्पैर्लघुभिश्चान्नै रुपयुक्तैर्विवर्द्धते । काष्ठैरणुभिरल्पैश्च संधुक्षित इवानलः ॥ ३ ॥

(श्लो० ११७) अकृत्स्नविधिसेवनात् वमनादिसंस्कारवर्जितात् (इति नि० सं०) ।

(श्लो० १) आतुरोपद्रव इति रोगः तेनात्र पंचकर्मनिमित्ताः व्यापदः प्रायेणेति, डल्लनमतेतु एतानि पंचकर्माणि स्नेहपानं गमनं रेचनं रक्तस्रुतिः निरूहणंच ।

स्नेहपान करने वमन करने विरेचन लेने रुधिर निकलवाने तथा निरूहणबस्ति कराने (इन पांच कर्मों) के पीछे मनुष्यकी शारीरक अग्नि मंद हो जाया करती है ॥१॥ और इस समयमें अत्यंत भारी (गरिष्ठ) भोजनसे वह अग्नि शांतही हो जाती (अर्थात् नष्टप्राय हो जाती) है जैसे छोटी अग्निकी चिनगारी बहुत भारी ईंधनसे दब (बुझ) जाया करती है ॥ २ ॥ और यदि इन पांच कर्मोंके पीछे थोडा और हलका उचित भोजन करे तो जठराग्नि बढती है जैसे छोटे २ हलके काठके टुकडोंसे (थोडी) अग्नि भी (प्रचंड हो जाती है) जलने लगती है ॥ ३ ॥

दोष हरणके अनुसार भोजन।

हृतदोषप्रमाणेन सदाहारविधिः स्मृतः। त्रीणि चात्र प्रमाणानि प्रस्थोर्द्धा-ढकमाढकम् ॥ ४ ॥ तत्रावरं प्रस्थमात्रं द्वे शेषे मध्यमोत्तमे ॥ ५ ॥ प्रस्थे परिस्रुते देया यवागूः स्वल्पतंदुला । द्वे चैवार्द्धाढके देये तिस्रश्चा-प्याढके गते ॥ ६ ॥

दोषोंके निकलनेके प्रमाणसे सदा आहार विधि करनी चाहिये इसके तीन प्रमाण है १ प्रस्थ (२) आधे आढक (३) आढक ॥ ४ ॥ इनमेंसे प्रस्थका हीन प्रमाण है तथा आधे आढक दोष निकल जाना मध्यम और आढक उत्तम है ॥ ५ ॥ इसमें प्रस्थभर दोष निकलेपर थोडे चावलोंकी यवागू १ वार देवे आधे आढक निकल जानेपर दो समय आढक भर निकलनेपर तीन बार यवागू दे (प्रस्थभर निकलनेसे कई रुधिर निकलनाही अर्थ करते हैं) ॥ ६ ॥

विलेपीमुचितांद्भक्तांच्चतुर्थांशकृतां ततः । दद्याद्युक्तेन विधिना क्लिन्नसि-क्थामपिच्छिलाम् ॥ ७ ॥ अस्निग्धलवणां स्वच्छमुद्गयूषयुतां ततः । अं-शद्वयप्रमाणेन दद्यात्सुस्निग्धमोदनम् ॥ ८ ॥ ततः सघृतमंडेन हृद्येनेंद्रि-यबोधिना । त्रीनिंशान्वितरेद्धोकुंमातुरायौदनं मृदु ॥ ९ ॥

उचित चावलोंके चौथाई भागसे बनाई हुई जिसमें चावल खूब सीजे हो और जो गाढी न होगई हो ऐसी विलेपी जिसमें चिकनाई और नमक नहो उसे अच्छे मूंगके यूषके संग भोजन करावे इसके कुछ दिन पीछे आधे भाग चावलोंका कोमल भात चिकनाई युक्त देवे (अथवा अंश द्वयसे यह भी अभिप्राय कई लेते हैं कि

(श्लो० ६) यवागू इत्यत्र एकवचननिर्देशादेकवारामिति बोध्यम्, द्वेचैवार्द्धाढके इत्यत्र द्वे पेये द्वौवारौ इति बोद्धव्यं तिस्र इति वारत्रयं दद्यादिति (नि. सं.)।

(श्लो० ७) क्लिन्नसिक्थां इति क्लिन्नं सिक्थं यत्र ताः सिक्थं भक्तपुलाकं ग्रासंचेति (श०स्तो०)

स्निग्ध भात आधे भूख देवे) ॥ ७ ॥ ८ ॥ इसके पीछे घृत मंडके संग इंद्रियोंका बोध करनेवाला चावलोंका कोमल भात रोगीको तीन भाग खानेको देवे (अर्थात् एक भागकी क्षुधा रहने दे) ॥ ९ ॥

ततो यथोचितं भक्तं भोक्तुमस्मै विचक्षणः । लवणैर्हरिणादीनां रसैर्दद्यात्सुसंस्कृतैः ॥ १० ॥ हीनमध्योत्तमेष्वेव विरेकेषु विधिः स्मृतः । एकद्वित्रिगुणः सम्यगाहारस्य क्रमो हितः ॥ ११ ॥

इसके पीछे यथोचित भात लवण युक्त हरिणादिक जीवोंके मांस रसके संग रोगीके लिये खानेको वैद्य देवे तथा उस मांसरसमें जीरकादिका संस्कार भी कर देवे ॥ १० ॥ हीन मध्य और उत्तम विरेचनमें भी यही विधि है कि हीन विरेचनवालेको (प्रथम वही पूर्वोक्त यवागू) एक बार मध्य विरेचनवालेको दो बार उत्तम विरेचनवालेको तीन बार (फिर उपरोक्त क्रमसे विलेपी भात आदि देवे) ॥ ११ ॥

कफपित्ताधिकान् मद्यनित्यान् हीनविशोधितान् । पेयाभिष्यंदयत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः ॥ १२ ॥ वेदनालाभनियमशोकवैचित्यहेतुभिः । नरानुपोषितांश्चापि विरिक्तवदुपाचरेत् ॥ १३ ॥

जिसके कफ पित्त अधिक हो नित्य मद्य पीते हो जिनका हीन शोधन हुवाहो उनको पेया (पेय भोजन) अभिष्यंद कारक होता है उनको तर्पण भोजन हित होता है ॥ १२ ॥ वेदना प्राप्त होनेसे नियम (व्रतादि करने) से शोकसे चित्त बिगड जानेसे जिन मनुष्योंने लंघन किया हो उनको भी विरेचन किये मनुष्यके तुल्य ही भोजनआदि सब उपचार कराने चाहिये ॥ १३ ॥

आढकार्द्धाढकप्रस्थसंख्या ह्येषा विरेचने । एको विरेकः श्लेष्मांतो न द्वितीयोस्ति कश्चनः ॥ १४ ॥ बलं यत्त्रिविधं प्रोक्तमतस्तत्र क्रमस्त्रिधा । तत्रानुक्रममेकं तु बलस्थः सकृदाचरेत् । द्विराचरेन्मध्यबलस्त्रीन् वारान् दुर्बलस्तथा ॥ १५ ॥ केचिदेवं क्रमं प्राहुर्मन्दमध्योत्तमाग्निषु ॥ १६ ॥

(श्लो० १४) आढकार्द्धाढकप्रस्थसंख्या ह्येषाविरेचने इत्यनेनात्र निर्गतमलपरिमाणेन संख्या निर्मिता नतु प्रवाहणगणनया, भावमिश्रादिभिस्तु प्रवाहणवेगैरेव संख्याकृता तदुक्तंच–'मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतकः। वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका' इति। तत्तुनसम्यक्। तत्राह डल्लनः यद्यपि पित्तस्यांतस्तदनंतरं तत्परं आमरूपः कफः प्रवर्तते तस्मात् कफान्वितत्वाद्विरेकस्य तां प्रवाहिकां संख्यां विरेचनविदो नेच्छंति इति।

विरेचनमें आढक अर्द्ध आढक तथा प्रस्थ यह संख्या (दोषोंके निकलनेकी) है और जिसके एकही विरेचनके अंतमें कफ गिर जावे तो दूसरा कदापि न देवे (और कई यहभी अर्थ करते हैं कि एक विरेचनही कफका अंतकारक होता है और दूसरा कोई यत्न नहीं है) ॥ १४ ॥ जोकि बल तीनप्रकारका कहा है (हीनबल मध्यबल उत्तमबल) तो फिर उसके लिये क्रमभी तीनही प्रकारका है इसमें बलवान्को एक एक बारही अनुक्रमण करना चाहिये और मध्यम बल वालेको दो बार तथा दुर्बलको तीन बार करना चाहिये ॥ १५ ॥ कोई इस क्रमको मंदाग्नि मध्याग्नि और उत्तमाग्निके लिये वर्णन करते हैं ॥ १६ ॥

(वक्तव्य) अभिप्राय इसमें यह है कि बलवान्को एकही बार पूर्ण कफांतकृत् विरेचन (एकही दिनमें) दे देना चाहिये और मध्य बलवालेको थोडा २ करके दोबार (दो दिन) देना और दुर्बल मनुष्योंको तीन बार करके (तीन दिनमें जुलाब) देना चाहिये बस्ति मल संचयके लिये एक २ दिनका अंतर करे तो भी ठीक है जैसे इन दिनों एक दिन जुलाब दूसरे दिन ठंढाई ऐसे तीन ३ दिन जुलाब देते हैं ॥

रसभेदसे भोजन ।

संसर्गेण विवृद्धेऽग्नौ दोषकोपभयाद्भजेत् । प्राक् स्वादुतिक्तौ स्निग्धाम्ललवणान्कटुकं ततः ॥ १७ ॥ स्वाद्वम्ललवणान्भूयः स्वादुतिक्तावतः परम् । स्निग्धरूक्षान् रसांश्चैव व्यत्यासात्स्वस्थवत्ततः ॥ १८ ॥

पंचकर्मके पीछे अन्नादिके संसर्गसे जब अग्नि बढ जावे तब दोषोंके कोपके भयसे (अर्थात् इस अवस्थामें जैसा जैसा आहार विशेष किया जावे उसी दोषकी अधिक वृद्धि और कोप होकर अनेक भयंकर रोग चिरस्थायी उत्पन्न होजाते हैं जैसे अधिक मधुर स्निग्धसे स्थूलता मेद वृद्धि तथा अतिरूक्ष कटुकके खानेसे शोष कृशता इत्यादि इसीलिये भोजनका ऐसा विचार रक्खे जिससे कोई दोष बढकर कोपको प्राप्त न हो) प्रथम बढी हुई अग्निकी व पित्तकी समताके लिये मधुर और तिक्त (कडवे) रस भोजन करने फिर वायुकी शांतिके लिये स्निग्ध अम्ल और लवण रस भोजन करने फिर कफकी शांतिके लिये कटुक (चरपरे) रसके पदार्थ भोजन करे ॥१७॥ फिर इसके पीछे मीठे खट्टे और लवणके पदार्थ भोजन करे और फिर मीठे और तिक्त भोजन करे और स्निग्धरूक्ष रस अलट पलट कर खावे (अर्थात् स्निग्धके पीछे रूक्ष और रूक्षके पीछे स्निग्ध खाते रहे) (ऐसा क्रम करते रहनेसे कोई दोष वृद्धि और कोपको प्राप्त नहीं होता) और फिर स्वस्थ मनुष्यकी तरह यथेच्छ भोजन करे ॥ १८ ॥

केवलं स्नेहपीतो वा वांतो यश्चापि केवलम्। स सप्तरात्रं मनुजो भुंजीत लघुभोजनम् ॥ १९ ॥ कृतः शिराव्यधो यस्य कृतं यस्य च शोधनम् । स ना परिहरेन्मासं यावद्वा बलवान्भवेत् ॥ २० ॥ एकैकस्मिन्परिहरेद्वस्तौ बस्तौ त्र्यहं त्र्यहम् । तृतीये तु परिहरेद्यथायोगं समाचरेत् ॥ २१ ॥

जिसने केवल स्नेह पान ही किया हो या केवल वमन ही किया हो वह मनुष्य सात दिन पीछेतक हलका भोजन करे॥१९॥ और जिसकी फस्द खोली गई हो या जिसका शोधन किया हो अर्थात् जिसे जुलाब दिया हो वह मनुष्य १ महीनेतक या जबतक पूरा २ बलवान् हो तबतक लघु भोजन करे (और पथ्यसे रहे) ॥ २० ॥ एक एक बस्ति कर्ममें तीन तीन दिन पथ्य करे और तीसरे परिहारके पीछे यथायोग्य आचरण करे ॥ २१ ॥

रोगीके कुपथ्यसे होनेवाले उपद्रव ।

तैलपूर्णाममृद्भांडसधर्माणो व्रणातुराः । स्निग्धशुद्धाक्षिरोगार्ता ज्वरार्तासारिणश्च ये ॥ २२ ॥ क्रुध्यतः कुपितं पित्तं कुर्यात्तांस्तानुपद्रवान् । आयास्यतः शोचतो वा चित्तं विभ्रममृच्छति ॥ २३ ॥

तैलसे भरे हुये मिट्टीके कच्चे घडेके समान ये रोगी होते हैं जैसे व्रणातुर स्नेह पान किये हुये शुद्ध वमन विरेचन और बस्ति किये हुये नेत्र रोगवाले ज्वरवाले और अतिसारके रोगी ॥ २२ ॥ यदि ये क्रोध करे तो पित्त कुपित होकर उसी उसी प्रकारके उपद्रव करता है इससे इन्हें क्रोधादि करना उचित नहीं और परिश्रम करनेसे तथा शोच करनेसे चित्तमें भ्रम होता है ॥ २३ ॥

मैथुनोपगमाद्धोरान् व्याधीनाप्नोति दुर्मतिः । आक्षेपकं पक्षघातमंगप्रग्रहमेव च ॥ २४ ॥ गुह्यप्रदेशे श्वयथुं कासश्वासौ च दारुणौ । शुक्रवच्चापि रुधिरं सरजस्कं प्रवर्तते ॥ २५ ॥ लभते च दिवास्वप्नान्तांस्तान्व्याधीन्कफात्मिकान्।प्लीहोदरं प्रतिश्यायं पांडुतां श्वयथुं ज्वरम्॥ २६॥ मोहं सदनमंगानामविपाकं तथारुचिम् । तमसा चाभिभूतस्तु स्वप्नमेवाभिनंदति ॥ २७ ॥

वमन रेचनके पीछे मैथुन करनेसे दुर्मति मनुष्य आक्षेपक पक्षाघात अंगग्रह आदि घोर व्याधियोंको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ गुह्य देशमें शोथ और दारुण श्वास

कास हो जाते हैं और प्रमेह होता है तथा स्त्री रुधिर रजमें मिलके निकलने लगता है (स्त्री भी वमन रेचनादिके पीछे उक्त कुपथ्य न करे) ॥ २५ ॥ वमन रेचनादिके पीछे दिनमें सोनेसे कफकी व्याधियां प्लीहवृद्धि जुखाम पांडुता शोथ और ज्वर हो जाता है ॥ २६ ॥ तथा मूर्च्छा अंगोंका थकाव भोजन न पचना तथा अरुचि होती है और तमोगुणसे व्याप्त होकर नींद ज्यादे आने लगती है (अर्थात् निद्रा बढ जाती है) ॥ २७ ॥

उच्चैःसंभाषणाद्वायुः शिरस्यापादयेद्रुजम् । आंध्यं जाड्यमजिघ्रत्वं बाधिर्यं मूकतां तथा॥ २८॥ हनुमोक्षमधीमंथमर्दितं च सुदारणम् । नेत्रस्तंभं निमेषं वा तृष्णां कासं प्रजागरम् ॥ २९ ॥ लभते दंतचालं च तांस्तांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ ३० ॥ यानयानात्तु लभते छर्दिर्मूर्च्छाभ्रमक्लमान् । तथैवांगग्रहं घोरमिंद्रियाणां च विभ्रमम् ॥ ३१ ॥

"ऊंचे (पुकार २ के) ज्यादा बोलनेसे" वायु शिरमें रोग उत्पन्न करती है अंधापन मूर्खता गंधका अज्ञान बहरापन तथा गूंगापन इतने रोग पैदा करे हैं ॥ ॥ २८ ॥ ठोडी (जबडा) खुला रहना या बंध रहना अधिमंथ अर्दितवायु तथा नेत्र ठठराजाना या पलक बंध न होना तृषा खांसी और निद्रा नहीं आना इतने दारुण रोग पैदा करता है ॥ २९ ॥ तथा दाँतोंका चलायमान होना और उसी भांतिके अन्य उपद्रव उस मनुष्यको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ और " सवारी करनेसे " वमन मूर्च्छा भ्रम थकाव तथा शरीरका जकडना और इंद्रियोंका विभ्रम इन रोगोंको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

चिरासनात्तथा स्नानाच्छ्रोण्यां भवति वेदना ॥ ३२ ॥ अतिचंक्रमणाद्वायुर्जंघयोः कुरुते रुजम् । सक्थिप्रशोषं शोफं वा पादहर्षमथापि वा॥ ॥ ३३ ॥ शीतसंभोगतोयानां सेवा मारुतवृद्धये । ततोंगमर्दविष्टंभशूलाध्मानप्रवेपकाः ॥ ३४ ॥ वातातपाभ्यां वैवर्ण्यं ज्वरं चापि समाप्नुयात् । विरुद्धाध्यशनान्मृत्युं व्याधिं वा घोरमृच्छति ॥ ३५ ॥

बहुत देर " एक आसनसे बैठनेसे " तथा " स्नान करनेसे " (ठंढ पानीके न्हानेसे) कमरमें दरद होता है ॥ ३२ ॥ " अत्यंत फिरनेसे " वायु साथलोंमें पीडा करता है साथले सूख जाती हैं या सूज जाती हैं अथवा पावोंमें झन्नाटा होने

लगता है ॥ ३३ ॥ " शीतल वस्तुओंका वरताव करने " या जलकी सेवा (फुहारे आदिके पास बैठनेसे) वायुकी वृद्धि होती है जिससे अँगडाई ज्यादे आना विष्टंभ होना शूल अफारा कंप होजाता है ॥ ३४ ॥ " प्रचंड हवामें रहने या धूपमें रहनेसे " विवर्णता (रूप बिगड जाना) ज्वर ये होते हैं और " विरुद्ध भोजनसे " या "भोजनपर भोजन करनेसे" (या ज्यादे खानेसे) मृत्यु होजाती है या घोर उपाधियां होती हैं ॥ ३५ ॥

असात्म्यभोजनं हन्याद्बलवर्णमसंशयम् । अनात्मवंतपशुवद्भुंजते ये प्रमाणतः । रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवंति हि ॥ ३६ ॥

जो "असात्म्य" (बे माफकतकी वस्तु) भोजन करे तो निःसंदेह बल और वर्णका नाश होवे तथा अजितेंद्रिय (वह परहेज) मनुष्य जो अप्रमाणसे पशुओंके तुल्य बहुत भोजन करते रहे वे रोग समूहके मूल अजीर्णको प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥

व्यापदां कारणं वीक्ष्य व्यापत्स्वेतासु बुद्धिमान् ।
प्रयतेतातुरारोग्ये प्रत्यनीकेन हेतुना ॥ ३७ ॥

इन व्यापदोंमें से हरेक व्यापद् और उसके कारणको बुद्धिमान् वैद्य विचारकर उसके विपरीत औषध आहार और विहारसे रोगीकी आरोग्यताके लिये यत्नकरे॥ ३७

(वक्तव्य) पहले जो पैंतीसवे अध्यायमें यह वर्णन किया था कि, आतुर अर्थात् रोगीकी असावधानी आदि से १५ उपद्रव होते हैं उन्हें आतुरोपद्रव चिकित्सित अध्यायमें कहेंगे सो वे येही पंद्रह उपद्रव ऊपर वर्णन किये गये हैं) ॥

विरिक्तवांतैर्हरिणैणलावकास्ततश्च सेव्यः समयूरतित्तिरिः ।
सषष्टिकाश्चैव पुराणशालयस्तथैव मुद्गा लघु यच्च कीर्तितम् ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुते चिकित्सिते एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

विरेचन और वमन किये पीछे मनुष्य हरिण एण लवा मोर तीतर इनका मांस तथा षष्टिक (सांठी चाबल और शालीचावल पुराने) तथा मूंग ये सेवन करे तथा अन्य हलके पदार्थ भी सेवन करे ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः।

अथाऽतो धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम धूमपान और नस्य तथा कवल धारण करण चिकित्सा-का व्याख्यान करते हैं।

धूमः पंचविधो भवति । तद्यथा प्रायोगिकः
स्नेहनः वैरेचनः कासघ्नो वामनीयश्चेति ॥ १ ॥

धूम पांच प्रकारका होता है जैसे १ प्रायोगिक (जिसके प्रयोग रखनेसे वायु कफ शांत हो) २ स्नेहन (स्निग्धताके अंशांश पहुँचानेवाला) ३ वैरेचन (जिससे शिरके या शरीरके दोषोंका रेचन होवे) ४ कासनाशक (जिससे खाँसी कंठके रोग तथा हिक्का आदि नष्ट होवे) ५ वामनीय (वमनकारक) ॥ १ ॥

पांच प्रकारके धूमकी बत्तियां।

तत्रैलादिना कुष्टतगरवर्ज्येण श्लक्ष्णपिष्टेन द्वादशांगुलं शरकांडं क्षौमेणाऽष्टांगुलं वेष्टयित्वा लेपयेदेषा वर्तिः प्रायोगिके, । स्नेहफलसारमधूच्छिष्ट-सर्जरसगुग्गुलुप्रभृतिभिः स्नेहमिश्रैः स्नेहने । शिरोविरेचनद्रव्यैर्वैरेचने । बृहतीकंटकारिकात्रिकटुककासमर्दहिंग्विंगुदीत्वङ्मनःशिलाछिन्नरुहाक-र्कटशृंगीप्रभृतिभिः कासहरैश्च कासघ्ने । स्नायुचर्मखुरशृंगकर्कटका-स्थिशुष्कमत्स्यवल्लूरकृमिप्रभृतिभिर्वामनीयैश्च वामनीये ॥ २ ॥

इसमेंसे प्रायोगिक धूमपानके लिये ऐसा करे कि एलादि गणकी औषधोंमेंसे कूट और तगर छोडकर सबको गीला पीस ले और बारह अंगुलकी सुली लेकर उस पर आठ अंगुलतक क्षौम (सण या अतसीका पतला वस्त्र) लपेटकर उस पर वह कल्क लेपन कर दे यह वर्ति (सींख) प्रायोगिक धूमके लिये है । और (२) चिकने फलोंकी गिरी मोम राल गूगल आदिमें घृत मिलाकर उपयोग करना स्नेहनमें चाहिये । (३) शिरा विरेचन द्रव्यों (अपामार्ग कायफल आदि) से वैरेचन धूमपानमें बत्ती बनावे । (४) कासघ्नके लिये बडी कटेली छोटी कटेली त्रिकटु कासमर्द (कसोंधी) हींग हिंगोट तज मैनफल गिलोय काकडासींगी आदि खांसी नष्ट करनेवाले द्रव्योंसे बनावे । (५) वामनीय (वमन करानेके लिये) स्नायु चर्म खुर सींग केकेडेके अस्थि सूखी मच्छली सूखा मांस तथा कीडे इन्हें काममें लावे (इनका बीभत्स सूगला धूम उपयोग करे) ॥ २ ॥

धूम पानकी नली ।

तत्र बस्तिनेत्रद्रव्यैर्धूमनेत्राणि व्याख्यातानि भवंति । धूमनेत्रं तु कनिष्ठिकापरिणाहमग्रे कलायमात्रं स्रोतो मूलेऽगुष्ठपरिणाहं धूमवर्तिप्रवेशस्रोतोंगुलान्यष्टचत्वारिंशत्प्रायोगिके । द्वात्रिंशत्स्नेहने । चतुर्विंशति वैरेचने । षोडशांगुलं कासघ्ने वामनीये च । एते अपि कोलास्थिमात्रछिद्रे भवतः । व्रणनेत्रमष्टांगुलं धूपनार्थं कलायपरिमंडलं कुलत्थवाहिस्रोत इति ॥ ३ ॥

जिन पदार्थोंके बस्ति नेत्र (नली) बनाना पहले लिख चुके हैं उन्हीसे धूमपानकी नली बनानी चाहिये । धूमपानकी नली कनिष्ठिका अँगुली जैसी मोटी अगाडीसे मटर जितनी छिद्र होवे और जडमेंसे अंगूठे जितनी मोटी और जिसमें धूम द्रव्योंकी बत्ती आ सके उतना छिद्र चाहिये यह नली प्रायोगिक धूमके लिये ४८ अंगुल लंबी चाहिये । और स्नेहनके लिये ३२ अंगुल । तथा वैरेचन धूमके लिये २४ अंगुल लंबी । और कासघ्न तथा वामनीय १७ अंगुलकी चाहिये । और ये दोनों बेरकी गुठली सम छिद्रवाली चाहिये । व्रणके धूनी देने केलिये नली आठ अंगुलकी मटर समान मोठी जिसमें कुलथी आ जावे इतनी छिद्रवाली चाहिये॥ ३॥

धूमपानकी विधि ।

अथ सुखोपविष्टः सुमना ऋज्वधोदृष्टिरतंद्रितः स्नेहाक्तां
प्रदीप्ताग्रां वर्तिं नेत्रस्रोतसि प्रणिधाय धूमं पिबेत् ॥ ४ ॥

रोगी सुखपूर्वक बैठकर प्रसन्न चित्त सीधा नीचेको दृष्टि करके आलस्यको त्यागकर पूर्वोक्त धूम द्रव्योंकी बत्तीके जरा चिकनाई (घृत) लगाकर उसकी नोकको अग्निसे जलाकर उसे नली (नै) के छिद्रमें लगाकर धूमपान करे (धूवाँको पीवे)॥ ४॥

मुखेन तं पिबेत्पूर्वं नासिकाभ्यां ततः पिबेत् । मुखपीतं मुखेनैव वमेत्पीतं च नासया ॥ ५ ॥ मुखेन धूममादाय नासिकाभ्यां न निर्हरेत् । तेन हि प्रतिलोमेन दृष्टिस्तत्र निहन्यते ॥ ६ ॥

पहले उस नलीको मुखमें लगाकर धूवाँ खेंचे और फिर नाकमें लगाकर नाकसेभी धूवाँ खेंचे और मुखसे खेंचा हुवा धूवां तथा नाकसे खेंचा हुवा धूवाँ दोनोंको मुखहीमेंसे निकाले ॥ ५ ॥ मुहसे पीया हुवा धूवां कदापि नाकसे नहीं निकाले इस प्रतिलोमसे दृष्टि नष्ट होजाती है ॥ ६ ॥

विशेषतस्तु प्रायोगिकं घ्राणेनाददीत स्नेहनं मुखनासाभ्यां नासिकया वैरे-

चनं मुखेन वैतरौ ॥ ७ ॥ तत्र प्रायोगिके वर्ति व्यपगतशरकांडां निवातातपशुष्कामंगारेष्ववदीप्य नेत्रमूलस्रोतसि प्रयुज्य धूममाहरेति ब्रूयात् । एवं स्नेहनं वैरेचनिकं च कुर्यात् ॥ ८ ॥

प्रायोगिक धूमपान विशेष कर नाकसे करे स्नेहन मुँह और नाक दोनोंसे पीवे वैरेचन (शिरो विरेचन) धूम नाकसे ही लेवे और वामनीय तथा कासघ्न ये दोनों मुखसे ही पीवे ॥ ७ ॥ इसमेंसे प्रायोगिक धूम पानकी वर्तिमेंसे तुली निकाल लेवे और उसे निर्वात जगह और छायामें सुखाकर अंगारोंसे जलाकर नलीकी जडके छिद्रसे लगाकर धूवां खेंचो ऐसा कहे और इसी भांति स्नेहन और वैरेचनमें करे ॥ ८ ॥

(वक्तव्य) शरकांडका अर्थ कई मुंजा अर्थात् मूंज करते हैं और उसे खिल्हाकर उसके भीतर कल्क भरकर सुखावे पर हमारी समझमें बत्ती पोली होनी चाहिये तुली पर द्रव्य लगाकर तुली निकाल डालनेसे होजाती है ॥

इतरयोर्व्यपेतधूमांगारे स्थिरे समाहिते शरावे प्रक्षिप्य वर्ति मूलछिद्रेणान्येन शरावेण पिधाय तस्मिन् छिद्रे नेत्रमूलं संयोज्य धूममासेवेत ॥ ॥ ९ ॥ प्रशांते धूमे वर्तिमवशिष्टां प्रक्षिप्य पुनरपि धूमं पाययेदादोषविशुद्धेरेष धूमपानोपायविधिः ॥ १० ॥

अन्य कासघ्न आदि धूम पानमें ऐसा करे कि एक सकोरा लेकर उसमें विना धूवाँके अंगारे डालकर उन अंगारोंपर वर्ति (बत्तीकी औषध) डाले और एक दूसरे सकोरेके नीचे छेद करके इसे उसपर ढकदे और उस छेदसे नलीकी जड लगाकर धूमपान करे ॥ ९ ॥ जब इसका धूवां पीया जाचुके तब फिर बची हुई बत्ती (औषध) इसी प्रकारसे डालकर धूम पान करे जबतक दोषकी शुद्धि तबतक कई बार धूमपान करे बस यही धूम पानकी विधि है ॥ १० ॥

धूम पानके अयोग्य मनुष्य ।

तत्र शोकश्रमभयामर्षौष्ण्यविषरक्तपित्तमदमूर्च्छादाहपिपासापांडुरोगतालुशोषछर्दिशिरोभिघातोद्गारापतर्पिततिमिरप्रमेहोदराध्मानोर्ध्ववातार्त्ता बालवृद्धदुर्बलविरिक्तास्थापितजागरितगर्भिणीरूक्षक्षीणक्षतोरस्कमधुघृतदधिदुग्धमत्स्यमद्ययवागूपीताल्पकफाश्च न धूममासेवेरन् ॥ ११ ॥

(वा०८) यथास्वं च धूमद्रव्याणां कल्केन श्लक्ष्णेनाक्षमात्रेण द्वादशांगुलायतामीषिकामंभस्यहोरात्रोषितांलपयोदिति (वृ. वा.)

तहां शोक, श्रम, भय, क्रोध, उष्णता और विषसे व्याप्त रक्त पित्त मद मूर्च्छा दाह तृषा पांडुरोग तालु सूखना छर्दि शिरका अभिघात डकार लंघन तिमिर प्रमेह उदररोग अफारा तथा ऊर्ध्ववायु इतने रोगोंवाले और बालक वृद्ध दुर्बल विरेचन लिये पर आस्थापन बस्ति कराके रात्रको जागरण करके गर्भवती स्त्री रूखा मनुष्य क्षीण उरक्षतवाले तथा जिसने शहत घृत दही दूध मछली मद्य यवागू ये तात्काल ही खाये पीये हो तथा जिनके शरीरमें कफ थोडा रह गया हो ये इतने मनुष्य धूम पान नहीं सेवन करे (इन्हें धूम पान वर्जित है) ॥ ११ ॥

अकालमें धूमपानका निषेध।

अकालेपीतः कुरुते भ्रममूर्च्छाशिरोरुजः ।
घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वानामुपघातं च दारुणम् ॥ १२ ॥

अकालमें (बेसमय) धूमपान करना भ्रम मूर्च्छा शिरमें पीडा नासिका-इंद्रिय श्रोत्र-इंद्रिय और नेत्र तथा जिह्वा इनमें दारुण उपघात करता है ॥ १२ ॥

धूमपानका समय।

आद्यास्तु त्रयो धूमा द्वादशसु कालेषूपादेयाः । तद्यथा क्षुतदंतप्रक्षालननस्यस्नानभोजनदिवास्वप्नमैथुनछर्दिमूत्रोच्चाररुषितशस्त्रकर्मांतेष्विति ॥ ॥ १३ ॥ तत्र मूत्रोच्चारक्षवथुरुषितमैथुनांतेषु स्नैहिकः । स्नानछर्दनदिवास्वप्नांतेषु वैरेचनः । दन्तप्रक्षालननस्यस्नानभोजनशस्त्रकर्मांतेषु प्रायोगिक इति ॥ १४ ॥

आद्यके तीन धूमपान (प्रायोगिक स्नेहन वैरेचन) के लिये बारह समय कहे हैं जैसे छींक और दांतोंको धोना नस्य लेना स्नान भोजन दिनमें सोना मैथुन करना वमन करना पेशाब करना दस्त जाना क्रोध और शस्त्र कर्म इनके अंतमें धूमपान करना उचित है अन्यथा उचित नहीं ॥ १३ ॥ जिनमेंसे दस्त पेशाब करने छींकने क्रोध और मैथुन इनके पीछे स्नेहन धूमपान करना और स्नान वमन दिनमें सोना इनके पीछे वैरेचन धूम पीना चाहिये और दांत (मुह) धोना नास लेना स्नान भोजन और शस्त्र कर्म इनके पीछे प्रायोगिक धूमपान करना चाहिये ॥ १४ ॥

(वक्तव्य) इन समयोंमें कफ वायुका उत्क्लेश होता है इससे इन समयोंमें ये धूम पीने चाहिये वृद्ध वाग्भट्टमें लिखा है कि " एषुहि कालेषु वातकफोत्क्लेशो भवति " अर्थात् इन्हीं समयोंमें वायुकफका उत्क्लेश (उफान या द्रवत्व) होता है । और कासघ्न तथा वामनीयका समय नियत नहीं किया कास आदि रोगमें कासघ्न तथा वमन करानेके उचित समय वामनीय धूमपान करना ॥

तत्र स्नेहनो वातं शमयति स्नेहादुपलेपाच्च । वैरेचनः श्लेष्माणमुत्क्ले-श्यापकर्षति रौक्ष्यात्तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्वैशद्याच्च । प्रायोगिकः श्लेष्माण-मुत्क्लेशयत्युत्क्लिष्टं चापकर्षति साधारणत्वात्पूर्वाभ्यामिति ॥ १५ ॥

इनमेंसे स्नेहन धूम चिकनाईके कारण तथा ल्हेस पैदा करनेसे वायुको शांत करता है। वैरेचन धूम रूखेपनसे तीक्ष्णतासे उष्ण होनेसे और विशद (हलका पतला) होनेसे कफको पिघलाकर (पतला करके) निकाल देता है और प्रायोगिक धूम पहलेवालेसे साधारण होनेके कारण कफको पतला भी करता है और जो पतला उभरा हुवा होता है उसे निकाल देता है ॥ १५ ॥

धूम पानके गुण।

भवति चात्र ॥ नरो धूमोपयोगाच्च प्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः। दृढकेशद्विजश्म-श्रुसुगंधिविशदाननः ॥ १६ ॥ कासश्वासारोचकास्योपलेपस्वरभेदमु-खास्रावक्षवमथुतंद्रानिद्राहनुमन्यास्तंभपीनसशिरोरोगकर्णाक्षिशूलवातकफ-निमिताश्चास्य मुखरोगा न भवंति ॥ १७ ॥

यहां श्लोक है कि। धूमपानका उपयोग करनेसे मनुष्यकी इंद्रियाँ प्रसन्न रहती हैं वाणी और मनभी अच्छे रहते हैं केश दांत दाढी मूछ दृढ रहते हैं तथा मुँह सुगंधित और साफ रहता है ॥ १६ ॥ इसके सिवाय धूमपान करनेवाले मनुष्यके खांसी श्वास अरुचि मुहमें ल्हेस स्वरभंग (अवाज बैठना) मुँहसे लार बहना मुहमें पानी भर भर आना या वमन होना तंद्रा अतिनिद्रा और जकड तथा मन्याका स्तंभ पीनस शिरके रोग कान और आखोंमें शूल तथा वायु कफके अन्य रोग और मुखके रोग भी नहीं होते हैं ॥ १७ ॥

धूमपानके योगायोग।

तस्य योगातियोगौ विज्ञातव्यौ तत्र योगो रोगप्रशमनोतियोगो रोगा-प्रशमनस्तालुगलशोषपरिदाहपिपासामूर्च्छाभ्रममदकर्णाक्षिदृष्टिनासारोगदौ-र्बल्यानीत्ययोगो जनयति ॥ १८ ॥

धूमपानका सम्यग्योग और अतियोगभी जानना चाहिये इसमें रोगकी ठीक शांति होना (और कोई उपद्रव न होना) यह सम्यक् योग जानना और रोगका शांति नहीं होना और तालु सूखना गळ सूखना दाह तृषा मूर्च्छा भ्रम मद कान नेत्र और दृष्टि तथा नासिका इनमें रोग हो जाना और दुर्बलता होना ये लक्षण हो तो अतियोग जानना (या अयोग जानना) ॥ १८ ॥

प्रायोगिकं त्रींस्त्रीनुच्छ्वासानाददीत। मुखनासिकाभ्यां च । पर्य्यायांस्त्रींश्चतुरो वेति । स्नैहिकं यावदश्रुप्रवृत्तिः । वैरेचनिकमादोषदर्शनात् । तिलतंडुलयवागूपीतेन पातव्यो वामनीयः । ग्रासांतरेषु कासघ्न इति ॥ १९ ॥

प्रायोगिक धूमको मुख और नासिकासे तीन २ श्वास खेंचे । और दूसरे प्रकारके धूमोंको तीन या चार श्वास खेंचकर पीवे । तथा स्नैहिक धूमको अश्रु (आंसू) आनेतक पीवे । और वैरेचन धूमको जबतक दोष टपके तबतक पीवे । और वामनीय धूमको तिल चावलोंके यवागूको पिलाकर पिलावे । और कासघ्न धूमको ग्रासोंके बीचमें पिलाना चाहिये ॥ १९ ॥

व्रणधूपन ।

व्रणधूमं शरावसंपुटोपनीतेन नेत्रेण व्रणमानयेत् ।
धूमनाद्वेदनोपशमो व्रणवैशद्यमास्रावोपशमश्च भवति ॥ २० ॥

व्रणको धूनी देनेकी यह विधि है कि शराव संपुटमें अग्नि रख द्रव्य डाल उसके छिद्रमें नली लगाकर व्रणपर धूवाँ पहुँचावे (अथवा अंगारोंपर द्रव्य डालकर ही धूनी देवे) व्रणको धूनी देनेसे पीडाकी शांति होती है व्रण साफ हो जाता है स्राव भी सूख जाता है ॥ २० ॥

(वक्तव्य) "प्रायोगिकके नामांतर" शमन और मध्यम भी हैं इसी भांति "स्नेहनके नामांतर" बृंहण और मृदु भी हैं तथा "वैरेचनके नामांतर" शोधन और तीक्ष्ण भी है देखो टिप्पणी ।

विधिरेष समासेन धूमस्याभिहितो मया ।
नस्यस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं निरवशेषतः ॥ २१ ॥

(वा० १९) पर्य्यायान् क्रमागतानन्यान्, स्नैहिके निबंधसंग्रहे भोजः 'प्रमाणं स्नैहिके धूमे कृशो मात्र पिबेन्नरः । सबलस्तु पिबेत्तावद्यावदश्रुर्नगच्छति' । वैरेचनिकमादोषक्ष्दर्शनादिति दोषस्य विकृतस्य दर्शनादतएव तंत्रांतरे शोधनस्यैकस्मिन्दिने त्रिचतुःपानं प्रतिपादितं तथा चोक्तं 'सकृत्पिबेत्स्नेहनीयं यौगिकं सकृदेवच । द्विभावितं रेचनीयं त्रिचतुर्वा पिबेन्नरः' । ग्रासांतरे इति कवलमंतरं भोजनस्योत्तरमित्यन्ये ।

(अत्रवृद्धवाग्भटः.) तत्र प्रायोगिकं द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वाऽऽपानांस्त्रींश्च पर्यायान्कंठाच्चौर्ध्वमुत्क्लिष्टे दोषे पूर्वं नासया ततोमुखेन कंठेतु पूर्वमास्येन ःपरं चाहोरात्रस्य द्विःपिबेत् । स्नैहिकं त्रींस्त्रींश्चतुरश्चतुरो वाऽऽपानान् यावद्वाश्रुप्रवृत्तिस्तथाहोरात्रस्य । तीक्ष्णं नासाभ्यामेव चतुरश्चतुरश्चाऽऽपानान् यावद्वा स्रोतोलाघवं तथा त्रिश्चतुर्वाहोरात्रस्येति, । (एतेषां पर्यायाः) तत्र शमनः प्रायोगिको मध्यम इति पर्यायाः । बृंहणः स्नेहनो मृदुरिति शोधनो विरेचनस्तीक्ष्ण इति चेति (वृ. वा.) । भावप्रकाशेपि 'शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा । बृंहणस्य च पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेवच । रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च' इति (भा. प्र.) ।

श्री धन्वंतरिजी कहते हैं कि धूमपानकी विधि हमने ऊपर विस्तार पूर्वक वर्णन करी अब अगाडी नस्यकी संपूर्ण विधि वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥

अथ नस्यविधि ।

औषधमौषधसिद्धो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यं तद्विविधं शिरोविरेचनं स्नेहनं च ॥ २२ ॥ तद्विविधमपि पंचधा तद्यथा नस्यं शिरोविरेचनं प्रतिमर्शोऽवपीडः प्रधमनं च । तेषु नस्यं प्रधानं शिरोविरेचनं च नस्यविकल्पः प्रतिमर्शः शिरोविरेचनविकल्पोऽवपीडः प्रधमनं च । ततो नस्यशब्दः पंचधा निपातितः ॥ २३ ॥

औषध अथवा औषधोंसे सिद्ध किया हुवा स्नेह नासिका द्वारा दिया जावे इस लिये इसे नस्य कहते हैं यह नस्य (नास देना) दो प्रकारका है एक शिरोविरेचन दूसरा स्नेहन ॥ २२ ॥ यह कर्म दो प्रकारका हो कर भी इसके पांच भेद हैं जैसे १ नस्य २ शिरोविरेचन ३ प्रतिमर्श ४ अवपीड ५ प्रधमन । इन सबमें नस्य और शिरोविरेचन प्रधान है नस्यका भेद प्रतिमर्श है और शिरोविरेचनका भेद अवपीड और प्रधमन है इसीसे नस्य शब्द पांच प्रकारका कहा है (अथवा पांच प्रकारसे प्रयुक्त किया जाता है) ॥ २३ ॥

तत्र यः स्नेहनार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कंधोरसां बलजननार्थं दृष्टिप्रसादजननार्थं वा स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्यशब्दः॥ २४ ॥

इसमें शून्य शिरवालोंको स्नेहन (तरावट) के लिये तथा ग्रीवा कंधे और छातीमें बल उत्पन्न करनेके लिये अथवा दृष्टिमें प्रसन्नता पैदा करनेके लिये जो स्नेहका उपयोग (नासिका द्वारा) किया जाता है उसी अर्थमें विशेष करके नस्य शब्द उपयुक्त है ॥ २४ ॥

स्नेहन नस्यके योग्य रोगी ।

तत्तु नस्यं देयं वाताभिभूते शिरसि दंतकेशश्मश्रुप्रपातदारुणकर्णशूल कर्णक्ष्वेडतिमिरस्वरोपघातनासारोगास्यशोषापबाहुकाकालजवलीपलितप्रादुर्भावदारुणप्रबाधेषु वातपैत्तिकेषु मुखरोगेष्वन्येषु च वातपित्तहरद्रव्यसिद्धेन स्नेहेनेति ॥ २५ ॥

(वा० २२) नस्यस्य नामांतरं नावनं च ।

वह स्नेहन नस्य इतने प्रकारके मनुष्योंको देनी चाहिये जिनका शिर वायु रोगसे व्याप्त हो दांत शिरके बाल डाढी मूछोंके बाल झडने लगे हो कानमें तीक्ष्ण शूल हो तथा कर्ण क्ष्वेड तिमिर स्वरभंग नासिका रोग मुह सूखना अपबाहुक (हाथ वायुसे स्तंभित होना) बेसमय शरीरमें झरी पडना और बाल सुपेद होना तथा अन्य दारुण व्याधि होना तथा वायु और पित्तके रोगों में और मुखके रोगोंमें वात पित्त नाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुये स्नेह (घृत तैल आदि) से नस्य देना ॥ २५ ॥

शिरोविरेचनके योग्य ।

शिरोविरेचनं श्लेष्मणाऽभिव्याप्ततालुकंठशिरसामरोचकशिरोगौरवशूल-पीनसार्द्धावभेदकक्रमिप्रतिश्यायापस्मारगंधाज्ञानेष्वन्येषु चोर्द्ध्वजत्रुगतेषु कफजेषु विकारेषु शिरोविरेचनद्रव्यैस्तत्सिद्धेन वा स्नेहेनेति ॥ २६ ॥

शिरोविरेचन (नस्य) उन्हें देनी चाहिये जिनका तालु कंठ और शिर कफसे व्याप्त हो तथा अरुचि शिरमें भारीपन शूल पीनस आधाशीशी क्रमिरोग (शिरमें क्रमि हो) जुखाम मृगी गंधज्ञान नष्ट होना इतने रोगवालोंको तथा जिनके ऊपरके जोतों में कफके और कोई रोग हो उन्हें शिर विरेचनी द्रव्यों (कायफल आदि) से अथवा इनसे सिद्ध किये हुवे स्नेहसे शिरो विरेचन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

नस्यका समय ।

तत्रैतद् द्विविधमभुक्तवतोऽन्नकाले पूर्वाह्णे श्लेष्मरोगिणां मध्याह्ने पित्तरोगिणामपराह्णे वातरोगिणाम् ॥ २७ ॥

यह दोनों प्रकारका नस्य (स्नेहन तथा शिरोविरेचन) विना भोजन कराये अन्नके समय देना चाहिये इसमें कफके रोगियोंको पूर्वाह्णमें (१० बजे दुपहर पहले) देना तथा पित्तके रोगवालोंको मध्याह्नमें और वायुके रोगवालोंको अपराह्ण में (तीसरे पहर पीछे) नस्य देना चाहिये (इन समयोंमें ये दोष उत्क्लेशित होते हैं और अन्य समयमें धात्वादिमें प्रायः लीन रहते हैं) ॥ २७ ॥

(वा० २६) शिरोविरेचनद्रव्यैः खरमंजरिकाद्यैः ।

(वा० २७) कालनिर्देशेवृद्धवाग्भटोर्पात्याह वातपित्तकफामयेषु क्रमेणापराह्णमध्याह्न पूर्वाह्णेषु स्वस्थवृत्तेतु शीतेमध्याह्नेशरद्वसंतयोः प्राह्णे ग्रीष्मेऽपराह्णेवर्षास्वादित्यदर्शने (इति वृ. वा.)

अथ पुरुषाय शिरोविरेचनीयाय दंतकाष्ठधूमपानाभ्यां विशुद्धवक्त्रस्रोतसे पाणितापपरिस्विन्नमृदितगलकपोलललाटप्रदेशाय वातातपरजोहीनवेश्मन्युत्तानशायिने प्रसारितकरचरणाय किंचित् प्रविलंबितशिरसे वस्त्राच्छादितनेत्राय विशुद्धस्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णानुतप्तं रजतसुवर्ण ताम्रमृत्पात्रशुक्तीनामन्यतमस्थं शुक्त्यां पिचुना वा सुखोष्णं स्नेहमद्रुतमासिंचेदव्यवच्छिन्नधारं यथा नेत्रे न प्राप्नोति ॥ २८ ॥

शिरो विरेचनीय नस्य देने योग्य मनुष्यको दाँतोन कराके धूम पान कराके (हुक्का पिलाके) जब उसका मुँह और कंठ आदि शुद्ध (साफ) होजावे तब हाथोंको गरम कर करके रोगीके गल कपोल और शिरको तपा तपाकर स्वेदित और नरम करे फिर विशेष हवा और धूप तथा धूल न हो ऐसे स्थानमें उसे चित्त सुलादे और हाथ पावोंको फैलवादे और शिरको जराही पीछेको झुकवादे और नेत्रोंपर वस्त्र ढक दें फिर शुद्ध किये हुवे रोगीके नाकमें चांदी या सोने तांबे या मिट्टीके पात्र या सीपीमें रक्खे हुवे स्नेहको जो सुहाता हुवा कुछ गरम हो सीपीसे या रूईके फोहेसे टपकावे और टपकाते समय तार टूटने नहीं पावे झट टपका देवे और यह विचार रक्खें कि आँखों में औषध न चली जावे (स्नेह यहाँ उपलक्षण मात्र कहा है इसी रीतिसे स्वरस क्राथ आदि भी टपकाये जाते हैं नस्य देते ही उसी समय कान शिर केश भ्रुकुटी कपोल गल कंधे हाथ पावोंक तलुवे इन्हें धीरे धीरे मर्दन करे तथा जरा हिलावे देखो टिप्पणी) ॥ २८ ॥

नस्यके समयका वरताव ।

स्नेहेवसिच्यमाने तु शिरो नैव प्रकंपयेत् । नकुप्येन्न प्रभाषेच्च न क्षणुयान्न हसेत्तथा ॥ २९ ॥ एतैर्हि विहतः स्नेहो न सम्यक् प्रतिपद्यते । ततःकास प्रतिश्याय शिरोक्षिगदसंभवः ॥ ३० ॥

जब स्नेह नासिकामें टपकाया जावे उस समय रोगी शिर नहीं हिलावे और क्रोध नहीं करे पुकारे नहीं छींक भी नले और हँसे भी नहीं ॥ २९ ॥ इन बातोंसे दुर्युक्त हुवा स्नेह ठीक उपयुक्त नहीं होता किंतु उसी समय खांसी जुखाम शिर तथा नेत्रोंमें रोग होजाते हैं ॥ ३० ॥

(वा० २८) दत्तमात्रे नस्ये कर्णललाटकेशभ्रूगंडगलस्कंधपाणिपादतलान्यनु सुखं मर्दयेत् शनैःशनैश्चोच्छिंघ्यादिति (निबंध संग्रहे वृद्ध वाग्भटमतम्) ।

नस्य स्नेहका प्रमाण ।

तस्य प्रमाणमष्टौ बिंदवः प्रदेशिनीपर्वद्वयनिःसृता प्रथममात्रा द्वितीया शुक्तिस्तृतीया पाणिशुक्तिरित्येता स्तिस्रो मात्रा यथाबलं प्रयोज्याः । स्नेहनस्यं न चोपगिलेत्कथंचिदपि ॥ ३१ ॥

नस्यमें स्नेहका प्रमाण आठ बिंदुका है वह बिंदु तर्जनी अंगुलीके दो पोरवे स्नेहमें डबोकर जितनी मोटी बिंदु गिरे वह एक बिंदु जानो ऐसी आठ बिंदु (और डल्लनमिश्र टीकाकारके मतसे दोनों नाकके छिद्रोंमें आठ आठ बिंदु) देना यह प्रथम मात्रा है दूसरी मात्रा एक शुक्ति (अर्थात् २ कर्ष) की होती है तथा तीसरी सबसे अधिक मात्रा दो शुक्तिकी होती है इनमेंसे बलके अनुसार नस्यकी मात्रा उपयोग करनी चाहिये और नस्यका स्नेह मुँहमें आ जावे तो उसे कदापि निगलना उचित नहीं ॥ ३१ ॥

मुखागत स्नेहका निष्ठीवन ।

शृंगाटकमभिप्लाव्य निरेति वदनाद्यथा ।
कफोत्क्लेशभयाच्चैवं निष्ठीवेदविधारयन् ॥ ३२ ॥

शृंगाटक स्थानको खूब स्निग्ध करके यदि नस्यका स्नेह मुँहके तरफ आजावे तो उसे कफके उत्क्लेशित होनेको भयसे थूकताही जावे निगले कदापि नहीं (और थूके सो दोनों तरफ दाहनी तरफ भी थूके और बाँई तरफ भी थूके देखो टिप्पणी) ॥ ३२ ॥

दत्ते च पुनरपि संस्वेद्य गलकपोलादीन् धूममासेवेत भोजयेच्चैनमभिष्यंदि ततोस्याचारिकमादिशेत् । रजोधूमस्नेहातपमद्यद्रवपानशिरःस्नानातियानक्रोधादीनि च परिहरेत् ॥ ३३ ॥

नस्य देकर फिरभी गल कपोल आदिको स्वेदित करके धूमपान करावे और खानेको अभिष्यंदी भोजन देवे और रोगीको उचीत आहार विहारका उपदेश करे तथा धूल धूवाँ चिकनाई धूप मदिरा पतली चीज पीना शिर भिगोकर स्नान करना अति सवारी करना और क्रोध आदि इतनी बातोंको त्याग देवे ॥ ३३ ॥

(वा० ३१) प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्निमग्नोद्धृताद्यावत्पतति स बिंदुः । अमी दशाष्टौषट्बिंदवः उत्तममध्यमकनीयस्यो मात्राः इति (वृ० वा) ।

(वा० ३२) वामदक्षिणपार्श्वयोरौषधं निष्ठीवेत् स कफंहितदवभ्यवहृतमाग्निबलमवसादयेत् दोषंच संवर्द्धयेत् । एकपार्श्वनिष्ठीवनेन सर्वाः शिराभेषजेन सम्यग्व्याप्यंते (इति वृद्धवाग्भटः) ।

तस्य योगातियोगानां विज्ञानं भवति।

लाघवं शिरसो योगे सुखस्वप्नप्रबोधनम्। विकारोपशमः शुद्धिरिंद्रियाणां मनःसुखम् ॥ ३४ ॥ कफप्रसेकः शिरसो गुरुत्वेंद्रियविभ्रमः। लक्षणं मूर्ध्न्यतिस्निग्धे रूक्षं तत्रावचारयेत् ॥ ३५ ॥ अयोगे चैव वैगुण्यमिंद्रियाणां च रूक्षता। रोगाशांतिश्च तत्रेष्टं भूयो नस्यं प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

नस्य (स्नेह) का सम्यक् योग होनेके ये लक्षण हैं कि शिरमें हलकापन सुखपूर्वक सोना और जागना (अर्थात् ठीक ठीक निद्रा आना) विकारकी शांति। इंद्रियोंमें शुद्धि होना और चित्तमें आनंद होना ॥ ३४ ॥ स्नेहका अतियोग होनेसे ये लक्षण होते हैं कि मुँहसे कफ (लार) बहना शिरका भारी होना इंद्रियोंमें विभ्रम होना ये लक्षण हों तो मूर्द्धामें स्नेहका अत्यंत (अनुमानसे अधिक) योग हुआ जाने और ऐसा होनेमें रूक्ष द्रव्योंका उपयोग करे ॥ ३५ ॥ नस्य द्वारा स्नेहका अयोग (हीनयोग) हो तो ये लक्षण होते हैं विगुणता इंद्रियोंमें होना तथा रूक्षता और रोगकी शांति न होना ऐसे होनेमें फिर यथोक्त स्नेहन नस्यका उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

शिरोविरेचनकी मात्रा।

चत्वारो बिंदवः षड्वा तथाष्टौ वा यथाबलम्। शिरोविरेकस्नेहस्य प्रमाणमभिनिर्दिशेत् ॥ ३७ ॥ नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः। शुद्धहीनातिसंज्ञानि विशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥ ३८ ॥

चार बिंदु छह बिंदु और आठ बिंदु बलके अनुसार शिरोविरेचन स्नेहकी मात्राका प्रमाण है ॥ ३७ ॥ इस विरेचनीय नस्यके प्रयोगमें भी विद्वानोंने तीनही लक्षण विशेष करके वर्णन किये हैं। सम्यक् शुद्धि हीन शुद्धि और अतिशुद्धि ॥ ३८ ॥

शुद्धि और हीनातिशुद्धिके लक्षण।

लाघवं शिरसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिनिर्जयः। चित्तेंद्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ ३९ कंडूपदेहौ गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः। मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ ४० ॥ मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिंद्रियविभ्रमः। शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढविरेचिते ॥ ४१ ॥

शिरमें हलकापन होना स्रोतोंमें शुद्धता व्याधिकी शांति चित्त और इंद्रियोंकी प्रसन्नता ये लक्षण शिरकी ठीक शुद्धिके हैं ॥ ३९ ॥ खाज तथा शिर नाक आदिमें ल्हेससा होना स्रोतोंका भारीपन और कफ झिरना ये लक्षण शिर कम शुद्ध हुयेके हैं ॥ ४० ॥ मस्तकका मस्तुलुंग (स्नेहन निज भाग) निकलना वायुकी वृद्धि इंद्रियोंमें विभ्रम शिरमें शून्यता ये लक्षण शिरके अधिक विरेचन हुयेके हैं ॥ ४१ ॥

इनका उपचार ।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् । सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्यं निषेचयेत् ॥ ४२ ॥ एकांतरं द्व्यंतरं वा सप्ताहं वा पुनःपुनः । एकविंशतिरात्रं वा यावद्वा साधु मन्यते ॥ ४३ ॥ मारुतेनाभिभूतस्य वात्यंतं यस्य देहिनः । द्विकालं चापि दातव्यं नस्यं तस्य विजानता ॥ ४४ ॥

शिरकी अल्प शुद्धि हो तो कफ नाशक उपचार करे और अधिक शुद्धि हुई हो तो वायुनाशक यत्न करे और जो ठीक २ शुद्धि हो गई हो तो घृतकी नस्यका उपयोग करना चाहिये ॥ ४२ ॥ एक २ दिनके अंतरसे दो दिनके अंतरसे अथवा सात दिनमें अथवा इक्कीस दिन अथवा जिस प्रकारसे उचित मालूम हो घृतका सेचन किया करे ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य वायु रोगसे व्याप्त हो या जिसके अत्यंत वायु बढा हुवा हो उसको जानकार वैद्य दिनमें दो दोबार नस्य देवे ॥ ४४ ॥

अवपीड और प्रधमन ।

अवपीडस्तु शिरोविरेचनवदभिष्यंदसर्पदष्टविसंज्ञेभ्यो दद्याच्छिरोविरेचनद्रव्याणामन्यतममवपीड्यावपिष्य ॥ ४५ ॥ चेतोविकारकृमिविषाभिपन्नानां चूर्णं प्रधमेत् ॥ ४६ ॥

अवपीडन उसे कहते हैं जो शिरोविरेचनकी तरह अभिष्यंद (जिसकी रसवहा शिरा रुक गई हो) तथा सर्पके काटे हुये और विसंज्ञ (बेहोश) को शिरोविरेचन द्रव्योंमेंसे किसीको छेत पीसकर उसका रस निचोड कर नस्य देवे ॥ ४५ ॥ प्रधमन वह है कि चित्तके विकार (मृगी आदि) कृमि और विष युक्तोंके नाकमें किसी द्रव्यका चूर्ण फूकसे पहुँचावे ॥ ४६ ॥

(श्लो० ४२) हीनशुद्धे कफघ्नं अतिशुद्धे वातघ्नं कर्म कुर्यात् ।

(वा० ४५ । ४६) अवपीडप्रधमनयोर्वैशिषिकं लक्षणं भावप्रकाशे यथाह "अवपीडः प्रधमनं द्वौभेदावपरौ स्मृतौ । शिरोविरेचनस्यार्थे तौतुदेयौयथायथम् ॥ १ ॥ कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितोनिःसृतोरसः । सोवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यंसमुद्भवः ॥ २ ॥ षडंगुलाद्विवक्त्राया नाडी चूर्णं तया धमेत् । तीक्ष्णंकोलमितंवक्त्र वातैः प्रधमनं हितम्" ॥ ३ ॥

शर्करेक्षुरसक्षीरघृतमांसरसानामन्यतमं क्षीणानां शोणितपित्ते च निदध्यात् ॥४७॥ कृशदुर्बलभीरूणां सुकुमारस्य योषिताम् । शृताः स्नेहाः शिरःशुद्ध्यै कल्कस्तेभ्यो यथा हितः ॥ ४८ ॥

क्षीण मनुष्योंको और रक्तपित्तके रोगमें खांड ईखका रस दूध घृत मांसका रस इनमेंसे किसी वस्तुकी नस्य देना चाहिये ॥ ४७ ॥ कृश दुर्बल डरपोक कोमल इतने मनुष्योंको तथा स्त्रियोंको शिरकी शुद्धिके लिये इन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुवे स्नेहका उपयोग करे या कल्क उपयुक्त करे जैसे हितकारक हो वैसे करे ॥ ४८ ॥

नस्यके अयोग्य ।

नस्येन परिहर्त्तव्यो भुक्तवानपतर्पितोत्यर्थतरुणप्रतिश्यायी गर्भिणी पीतस्नेहोदकमद्यद्रवोऽजीर्णी दत्तबस्तिः क्रुद्धो गरार्तस्तृषितः शोकाभिभूतः श्रांतो बालो वृद्धो वेगावरोधितः शिरःस्नातुकामश्चेति अनार्तवे चाभ्रे नस्यधूमौ परिहरेत् ॥ ४९ ॥ तत्र हीनातिमात्रातिशीतोष्णसहसाप्रदानातिप्रविलंबितशिरस उच्छिंघ्यातो विचलितोऽभ्यवहरतो वा प्रतिषिद्धप्रदानाच्च व्यापदो भवंति तृष्णोद्गारादयो दोषनिमित्ताः क्षयजाश्च॥५०॥

इतने मनुष्योंको नस्य नहीं देना चाहिये जैसे भोजन किये हुयेको क्षुधातुरको जिसे नया जुखाम हो गर्भिणी स्त्री जिसने स्नेह पानी मद्य पतले पदार्थ पीये हुवे हो अजीर्णवाले जिसे बस्ति दी हो क्रोध युक्त स्थावर विषसे पीडित तृषा युक्त शोक ग्रस्त थका हुवा बालक वृद्ध जिसने मल मूत्रके वेग रोंके हो और जो शिर भिगोकर स्नान करना चाहता हो तथा ये ऋतु बादल होनेमें नस्य और धूम दोनोंका उपयोग नहीं करे ॥ ४९ ॥ और नस्यका हीन तथा अति उपयोग भी न करे विशेष शरदी गरमीमें भी न करे द्रव्य झट पट न सुंघादे बहुत देर भी नहीं करे शिरको उछाले और हिलावे भी नहीं तथा नस्य निगले भी नहीं निषिद्ध वस्तुओंकी भी नस्य नंदे क्योंकि इनसे व्यापद होती हैं यातो दोषोंसे उत्पन्न हुवे तृषा उद्गार आदि उपद्रव होते हैं या क्षयसे उपजे शोषादिक होजाते हैं (इससे उपरोक्त बातोंका नस्यमें विचार रक्खे) ॥ ५० ॥

भवतश्चात्र ॥ नस्ये शिरोविरेके च व्यापदो द्विविधाः स्मृताः । दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥ दोषोत्क्लेशनिमित्तांस्तु जयेच्छमनशोधनैः । अथ क्षयनिमित्तांस्तु यथास्वं बृंहणं हितम् ॥ ५२ ॥

यहां पर दो श्लोक हैं ॥ कि नस्यमें और शिरोविरेचनमें दो प्रकारकी व्यापद् (उपाधियां) होती हैं एक दोषोंके उत्क्लेशसे दूसरी क्षयसे इन्हें यथाक्रम जानना ॥ ५१ ॥ दोषोंके उत्क्लेशसे उत्पन्न हुई व्याधियोंको शमन और शोधनसे शांत करना चाहिये और क्षयसे उपजी हुई व्याधियोंको यथायोग्य बृंहण करना उचित है ॥ ५२ ॥

प्रतिमर्शके समय ।

प्रतिमर्शश्चतुर्दशसु कालेषूपादेयः तद्यथा तल्पोत्थितेन प्रक्षालितदंतेन गृहान्निर्गच्छता व्यायामव्यवायाध्वपरिश्रांतेन मूत्रोच्चारकवलांजनांते ऽभुक्तवता छर्दितवता दिवास्वप्नोत्थितेन सायं चेति ॥ ५३ ॥

प्रतिमर्श नस्य चौदह समयमें उपयुक्त करने योग्य है १ बिछोनेसे उठकर दांतोन करके घरसे बाहर जाते हुये व्यायाम मैथुन और मार्गसे थके हुये मूत्रोच्चार कवल और अंजनके पीछे भोजन विनकरे वमन करके दिनमें सोकर उठतेही और सायंकाल ॥ ५३ ॥

(वक्तव्य) मर्श और प्रतिमर्श ये दोनों स्नेहन नस्यकेंही भेद हैं जिसमें मर्शकी मात्रा पूरी तृप्ति करनेवाली ८ शाणकी होती है मध्यम ४ शाण और हीन एक शाणकी (नस्यमें ८ बिंदुओंका १ शाण होता है) पहले हम जो स्नेह नस्यकी विधि और मात्रा लिख चुके हैं उसीका नाम मर्श है इकत्तीसवे वाक्यमें जो मात्राका प्रमाण लिखा गया है वह मर्शहीका है और प्रतिमर्श स्नेहनकी मात्रा केवल दो तीनही बिंदु हुआ करती है और यह प्रायः बाल वृद्ध क्षीण आदिको दीजाती है (देखो टिप्पणी) सारांश यह कि स्नेहनमें अधिक स्नेहकी मात्रा उपयुक्त करी जावे वह मर्श स्नेहन नस्य है जिसमें अल्प स्नेहकी मात्रा हो वह प्रतिमर्श ॥

तत्र तल्पोत्थितेनासेवितः प्रतिमर्शो रात्रावुपचितं नासास्रोतोगतं मलमुपहंति मनःप्रसादं च करोति ॥ ५४ ॥ प्रक्षालितदंतेनासेवितो दंतानां दृढतां वदनसौगंध्यं चापादयति ॥ ५५ ॥ गृहान्निर्गच्छता सेवितो नासास्रोतसः क्लिन्नतया रजो धूमो वा नावधत्ते ॥ ५६ ॥ व्यायाममै-

---

वा० ५३) मर्शश्चप्रतिमर्शश्चद्वौभेदौस्नेहनेमतौ । मर्शस्यतर्पणी मात्रामुख्याशाणैःस्मृताऽष्टभिः ॥ १ ।मध्यकातु चतुःशाणैर्हीनाशाणमितामताएकैकास्मिंस्तुमात्रेयं देयानासापुटबुधैः ॥ २ ॥ स्नेहग्रंथिद्वयंयावन्निमग्नाचोद्धृताततः।तर्जनीयं स्रवेद्बिंदुंसामात्राबिंदुसंज्ञिता ॥ ३ ॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टाभिः शाणउच्यते।सदेयोमर्शनस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिंदुकः ॥ ४ ॥ प्रतिमर्शस्यमात्रातु द्वित्रिबिंदुमितामता । प्रत्येकशोनासिकायां स्नेहनेतिविनिश्चितम् ॥ ५ ॥

थुनाच्च परिश्रांतेनासेवितः श्रममुपहंति ॥ ५७ ॥ मूत्रोच्चारांते वा सेवितो दृष्टेर्गुरुत्वमपनयति ॥ ५८ ॥ कवलांजनांते सेवितो दृष्टिं प्रसादयति ॥ ५९ ॥ अभुक्तवता सेवितः स्रोतसां विशुद्धिं लघुतां चापादयति ॥ ६० ॥ वांतेनासेवितः स्रोतोविलग्नं श्लेष्माणमपोह्य भक्तकांक्षामापादयति ॥ ६१ ॥ दिवास्वप्नोत्थितेनासेवितो निद्राशेषं गुरुत्वं मलं चापोह्य चित्तैकाग्र्यं जनयति ॥ ६२ ॥ सायं चासेवितः सुखनिद्राप्रबोधं चेति ॥ ६३ ॥

इसमेंसे बिछोनेसे उठते ही प्रतिमर्श नस्यका सेवन करनेसे रातको जो नासिकाके द्वारोंमें मल इकट्ठा होताहै उसे नष्ट करताहै और मनको प्रसन्न करता है ॥५४॥ दंतधावनके पीछे सेवन करना दांतोंकी दृढता और मुखकी सुगंधता करताहै ॥५५॥ घरसे बाहर जाते हुवे सेवन करना नाकके छिद्रोंमें क्लिन्नतासे प्राप्त हुवे धूल वा धूवाँ बाधा नहीं करते ॥ ५६ ॥ व्यायाम और मैथुनसे थकने पर सेवन करना उस थकावको नष्ट कर देता है ॥ ५७ ॥ मूत्र और मलके त्यागके पीछे सेवन करना नेत्रोंके भारीपनको दूर करता है ॥ ५८ ॥ कवल और अंजनके अंतमें सेवन करना दृष्टिको प्रसन्न करता है ॥ ५९ ॥ विना भोजन किये हुवे सेवन करना स्रोतोंकी शुद्धि और हलकापन उत्पन्न करता है ॥ ६० ॥ वमन करनेके पीछे सेवन करना द्वारोंमें लगे हुए कफको दूर करके भोजनकी रुचि उत्पन्न करता है ॥ ६१ ॥ दिनमें सोकर उठनेके पीछे सेवन करना शेष निद्रा और भारीपन तथा मलको दूर करके चित्तमें एकाग्रता पैदा करता है ॥ ६२ ॥ और सायंकाल प्रतिमर्श नस्यका सेवन करना सुखपूर्वक निद्रा और प्रबोध (जागना) ठीक करता है ॥ ६३ ॥

ईषदुच्छिंघतः स्नेहो यावद्वक्त्रं प्रपद्यते ।
नस्येनिषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शं प्रमाणतः ॥ ६४ ॥

शिरको ऊँचा करने जरा फडफडानेसे जितना स्नेहन नस्यका स्नेह मुँहमें आजावे अनुमान उतना नासिकामें शुद्ध स्नेह डालना यह प्रतिमर्शकी मात्राका प्रमाण है (अनुमान दो तीन बिंदु इसका प्रमाण है जिसे हम ५३ वी फक्किकाकी टीकामें इसी अध्यायमें लिख चुके हैं) ॥ ६४ ॥

नस्येन रोगाः शाम्यंति नराणामूर्ध्वजत्रुजाः। इंद्रियाणां च वैमल्यं कुर्यादास्यं सुगंधि च॥६५॥ हनुदंतशिरोग्रीवात्रिकबाहूरसां बलम् । वलीपलितखालित्यव्यंगानां चाप्यसंभवः ॥ ६६ ॥

(वा० ५८) मूत्रोच्चारांते इति उच्चारः विष्ठा इति डल्हनः शब्दस्तोमेच ।

नस्यके लेनेसे मनुष्यके ऊपर लेजा तो (ग्रीवासे ऊपरके पठ्ठों) के सब रोग नष्ट होते हैं और इंद्रियोंमें निर्मलता तथा मुखमें सुगंधिभी (नस्य) करता है ॥ ॥ ६५ ॥ ठोडी (जबडे) दांत शिर ग्रीवा (गरदन) त्रिक (ग्रीवा और कंधोंके बीचके स्थान बाहू तथा छाती इतने स्थानोंको बलवान् करता है और वे समय शरीरमें झुरी पडना बाल सपेद होना शिरके बाल उड जाना तथा मुखपर चकद्दे पड जाना येभी नस्य लेनेवालेके नहीं होने पाते ॥ ६६ ॥

तैलं कफे सवाते स्यात् केवलं पवने वसाम् । दद्यात्सर्पिः सदा पित्ते मज्जानं च समारुते ॥ ६७ ॥ चतुर्विधस्य स्नेहस्य विधिरेव प्रकीर्तितः । श्लेष्मस्थानाविरोधित्वात्तेषु तैलं विधीयते ॥ ६८ ॥

कफयुक्त वातव्याधियोंमें तैल (नस्यमें) उपयोग करना और केवल वायुरोगमें वसा (चरबी) तथा पित्त रोगोंमें घृत एवं वायुसहित पित्तमें मज्जाका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ६७ ॥ चारों प्रकारके स्नेहोंकी यह विधि वर्णन करी है कफके स्थानके अविरोधसे अर्थात् जहां कफ स्थित हो वहां इनमेंसे तैलहीका उपयोग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि कवलग्रहणे विधिम् । चतुर्द्धा कवलः स्नेही प्रसादी शोधिरोपणौ ॥६९॥ स्निग्धोष्णैः स्नेहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः । पित्ते कट्वम्ललवणै रूक्षोष्णैः शोधनः कफे ॥ ७० ॥ कषायतिक्तमधुरैः कटूष्णै रोपणो व्रणे। चतुर्विधस्य चैवास्य विशेषो यं प्रकीर्तितः ॥७१॥

इससे अगाडी अब हम कवल धारण करनेकी विधि वर्णन करते हैं (औषधियोंकी मुखमें कुछ देर रखनेको कवल धारण कहते हैं कवलका मुख्य अर्थ ग्रास है) यह कवल धारण चार प्रकारका होता है १ स्नेही (स्नेहन करनेवाला) २ प्रसादी (प्रसन्न करनेवाला) ३ शोधी (शोधन करनेवाला) ४रोपण (व्रणादि रोपण करनेवाला) ॥ ६९ ॥ स्निग्ध उष्ण द्रव्योंका कवल स्नेही होता है और यह वायुके रोगोंमें दिया जाता है तथा मीठे द्रव्योंका शीतल कवल प्रसादी होता है यह पित्त रोगोंमें हित है और चरपरा खट्टा नमकीन और रूक्ष उष्ण कवल शोधन होता है यह कफके रोगमें देना चाहिये ॥ ७० ॥ कसेला कडुवा मीठा चरपरा गरम यह कवल रोपण है यह व्रणके लिये हित होता है इस प्रकार चारोंतरहके कवलोंका विशेष वर्णन किया गया है ॥ ७१ ॥

(श्लो० ६९) कवलः ग्रासः तस्य मुखे धारणं कवलग्रहणम् ।

तत्र त्रिकटुकवचासर्षपहरीतकीकल्कमालोड्य तैलशुक्तसुरा मूत्रक्षारम-धूनामन्यतमेन सलवणमभिप्रतप्तमुपस्विन्नमृदितगलकपोलललाटप्रदेशो धारयेत् ॥ ७२ ॥

त्रिकटु (सोंठ मिरच पीपल) वच सरसों हरीतकी (बडी हरड) इनका गाढा कल्क बना और उसमें तैल या सिरका या मदिरा या गोमूत्र या कोई क्षार या शहत इनमेंसे जो उचित कोई वस्तु हो मिलाकर मथकर थोडा नमक मिलाकर तयार करे और रोगीके गल कपोल और शिरको जरा सेक कर स्वेदित और मृदित (मुलायम) करके वह तयार किया हुआ कवल गरम करके मुखमें धारण करावे ॥ ७२ ॥

सुखं संचार्यते या तु मात्रा सा कवले स्मृता ।
असंचार्या तु या मात्रा गंडूषः स प्रकीर्तितः ॥ ७३ ॥

जो औषधीकी मात्रा मुखमें सुखसे इधर उधर चलाई जा सके (चबाई जा सके) ऐसी गाढी लुगदी सी हो वह कवलमें दी जाती है (उसे कवल कहते हैं) और जो इधर उधर नहीं फेरी जा सके ऐसी पतली हो तो वह गंडूष कहलाती है (अर्थात् उसे कुरले कहते हैं) ॥ ७३ ॥

तावच्च धारयितव्योऽनन्यमनसोन्नतदेहेन यावद्दोषपरिपूर्णकपोलत्वंनासास्रो-तो नयनपरिप्लावश्च भवति तदा वि मोक्तव्यः पुनश्चान्यो गृहीतव्यः॥ ७४ ॥

एकाग्रचित्त होकर शरीरको उन्नत (सीधा ऊंचा) करके इतनी देरतक कवल-को मुखमें रहने देना चाहिये जबतक मुँहमें दोषका पानी भर आवे तथा नाक और आंखोंसे पानी झिरने लगे या तरावट हो जावे फिर उसे थूंक देना चाहिये और दूसरा फिर मुखमें लेना चाहिये ॥ ७४ ॥

एवं स्नेहपयः क्षौद्ररसमूत्राम्लसंभृताः ।
कषायोष्णोदकाभ्यां च कवला दोषतो हिताः ॥ ७५ ॥

इसी भांतिं स्नेह (घृत तैलादि) दूध शहत रस गोमूत्र कांजी तथा क्वाथ गरम

(श्लो० ७३) कवलस्य लक्षणं भावप्रकाशे-" वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे । अर्द्धनिक्षिप्य सुचर्व्य निष्ठीवेत् कवलेविधिः" इति' कवलः ग्रासः । गंडूषो यथा-'स्नेहक्षीरकषायादिद्रवैः संपूर्णमाननम् । आपूर्य धीयते तावद्विधिर्गंडूषधारणे । कफपूर्णास्यतायावच्छेदो दोषस्य वामयेत्'इति । धीयते गुळगुळक्रियते (इति भा० प्र०) कवलगंडूषयोर्मात्रा-'दद्याद्द्रवेषु चूर्णंच गंडूषेकोलमात्रकम् । कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैरिति ।

जल इनमेंसे किसीके संग दोषोंके अनुसार औषध मिलाकर कवल धारण कराना हितकारक है ॥ ७५ ॥

(जैसे वायुमें स्नेहसे पित्तमें दूधसे कफमें शहतसे मिलाकर कवल बनाना इत्यादि इसी प्रकार संसर्ग और संनिपातमें भी तत्तद्दोषनाशक द्रव्य लेना)

शुद्ध और हीनाधिककवलके लक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् । इंद्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ॥ ७६ ॥ हीने जाड्यकफोत्क्लेशाऽवरसज्ञानमेव च । ॥ ७७ ॥ अतियोगान्मुखेपाकः शोषतृष्णारुचिक्लमाः ॥ शोधनीये विशेषेण भवंत्येवं नसंशयः ॥ ७८ ॥

व्याधिका घटाव हो तृप्ति होजावे मुखमें सफाई और हलकापन हो तथा इंद्रियों-में प्रसन्नता हो ये शुद्ध कवल हुवेके लक्षण हैं ॥ ७६ ॥ जडता होनी कफका उभार हो रसका ज्ञान न रहे ये लक्षण हीन कवल हुयेकेहैं ॥ ७७ ॥ मुखमें पाक होना शुष्कता तृषा अरुचि और क्लम होना ये अतिकवल होनेके लक्षण हैं ये लक्षण शोधनीय कवलमें निःसंदेह विशेष करके होतेहैं (अन्य प्रसादना-दिमें नहीं) ॥ ७८ ॥

गंडूष ।

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।
सक्षौ[1]द्रो दग्धवक्त्र[3]स्य गंडू[2]षो दाह[4]नाशनः ॥ ७९ ॥

तिल, नीलकमल, घृत, खांड और दूध इनमें शहत मिलाकर जले हुये (क्षारा-दिसे या तीक्ष्ण पदार्थ या उष्ण पदार्थसे जले हुये) मुखके दाह शांत करनेको कुरले करना योग्य है ॥ ७९ ॥

प्रतिसारणकी विधि ।

कवलस्य विधिर्ह्येष समासेन प्रकीर्तितः । विभ[3]ज्य भे[2]षजं बुद्ध्या[1] कुर्वीत[6] प्रति[4]सारणम् ॥ ८० ॥ कल्को रसक्रिया क्षौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम् । अंगुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥ ८१ ॥

(श्लो० ८०) प्रतिसारणं कुर्वीत नचएकगतिं घर्षयेदिति डल्लनः अतः प्रतिसारणं घर्षणं।तदुक्तंभावप्रकाशे दंतजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः ।शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणं' इति । रसक्रिया फाणिताकृतिः । इति,(लि० सं०) ॥

कवल धारण करनेकी विधि यह संक्षेपतासे वर्णन करी है और औषधोंको बुद्धिसे विचारकर (इसी भांति) प्रतिसारणभी करसकतेहैं ॥ ८० ॥ कल्क रसक्रिया (द्रव्योंका रस निकालके) और शहत तथा सूखा चूर्ण इस तरह चार प्रकारका प्रतिसारण होता है (अर्थात् कल्कमें औषधोंको मिलाके स्वरस या शहतमें औषध मिलाके या केवल सूखा चूर्ण) अंगुलीके अग्रभागमें लगाकर मुखरोगवालोंके प्रतिसारण करें (अर्थात् अंगुलीसे औषध रगड दे इसे प्रतिसारण कहतेहैं) ॥ ८१ ॥

तस्मिन्योगमयोगं च कवलोक्तं विभावयेत् । तांनेव शमयेद्व्याधीन् कवलो यानपोहति ॥ ८२ ॥ दोषघ्नमनभिष्यंदि भोजयेच्च तथा नरम् ॥ ८३ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां चिकित्सितस्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

(समाप्तमिदं चिकित्सितस्थानं चतुर्थम् ४)

इसमें योग और अयोग (हीनयोग और अतियोग) के लक्षण कवल ग्रहणके योगायोगके समान जानने चाहिये और जिन व्याधियोंको कवल ग्रहण दूर करता है उन्हींको प्रायः यह "प्रतिसारण" दूर करता है ॥ ८२॥ इसके पीछे उन्हीं दोषोंके शांत करनेवाला और जो अभिष्यंदी (रस वहा शिराओंको रोकनेवाला) नहो ऐसा भोजन रोगी मनुष्यको खिलाना चाहिये ॥ ८३ ॥

इतिश्री पं०मुरलीधरशर्माराजवैद्यविरचितसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीक सपरिशिष्टभाषाटीकायां चिकित्सितस्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीक्षेमराजाख्यमखंडपौरुषंकुर्युःशुभाशीर्वचनानिपाठकाः
यत्प्रेरणाद्वैद्यवरेणसुश्रुतेटीकान्वितेपूर्तिमगाच्चिकित्सितम् ॥ १ ॥

श्रीयुत श्रेष्ठिवर श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीको पाठकवृंद शुभ आशीर्वाद करो कि जिनकी प्रेरणासे सुश्रुतसंहिताकी सान्वय सटिप्पणीक भाषाटीकाका चिकित्सितस्थान पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्यने समाप्त किया ।

समाप्तमिदं चिकित्सितस्थानम् ४.

(वक्तव्य) हे पाठक वृंद ! जितने रोगोंकी चिकित्सा इस चिकित्सितस्थानमें लिखी है उससे यह नहीं समझें कि सुश्रुतसंहितामें बस इतनेही रोगोंकी चिकित्सा है नहीं नहीं इसके उत्तर तंत्रमें निःशेष समस्त रोगोंकी खूब ही विस्तारपूर्वक चिकित्सा लिखी है उसे अगाडी देखिये शुभमिति ॥

विज्ञप्ति ।

जिन महाशयोंको कोई महाव्याधि हो और उसमें आराम नहीं होता हो इस विषयमें कुछ पूछना हो या औषध कराना हो तो हमें लिखें हम यथासाध्य उसका उपाय करेंगे जबाबके लिये जबाबी कार्ड या टिकट भेजें ॥

निवेदक-

फर्रुखनगरनिवासीपं॰मुरलीधर शर्मा वैद्य टीकाकार,

हाल राजवैद्य रियासत–सैलाना (मालवा.)

पुस्तकोंके मिलनेका पता–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–बम्बई.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहितायाः

कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नपानरक्षाकल्पं व्याख्यास्यामः ।

अब चिकित्सितस्थानके अनंतर यहांसे अगाड़ी हम अन्नपान रक्षा कल्प (अर्थात् विषादिकसे खाने पीनेके पदार्थोंकी रक्षा करना या रक्षा रखना इस विषय) का व्याख्यान करतेहैं ॥

विषसे रक्षाका विधान ।

धन्वंतरिः काशिपतिस्तपोधर्मभृतां वरः । सुश्रुतप्रभृतीञ्छिष्याञ्शशासाहतशासनः ॥ १ ॥ रिपवो विक्रमाक्रांता ये च स्वेकृत्यतांगताः । सिसृक्षवः क्रोधविषं विवरं प्राप्य तादृशम् ॥ २ ॥ विषै र्निहन्युर्निपुणं नृपतिं दुष्टचेतसः। स्त्रियो वा विविधान्योगान्कदाचित्सुभगेच्छया॥ ३ ॥ विषकन्योपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून्नरः । तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः ॥ ४ ॥

तपस्वी और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ काशीके राजा श्रीधन्वन्तरि भगवान् सुश्रुतादिक अपने शिष्योंको शिक्षा देते भये कैसे हैं भगवान् धन्वंतरिजी कि उत्तम है शिक्षा जिनकी ॥ १ ॥ सो यह शिक्षा देने लगे कि राजाके पराजित किये शत्रु लोग अथवा सेवक लोग जो अकृत्यताको प्राप्त होजावें (अर्थात् जिन्हें राजासे निरादर हो जावे या द्वेष होजावे तथा अन्य ईर्षा युक्त राजकुटुंबके लोग) क्रोधरूप

(श्लो० १) आहतशासनः दृढशासनः अथवा शशास हितशासन इति पाठांतरे हितशासन इत्यर्थः ।

(श्लो० २) स्वेच आत्मीया भृत्याः कृत्यतांगता विद्वेषंगता इति डल्हनः, अन्येतु स्वेऽकृत्यतांगता इति मन्यंते ।

(श्लो० ३) स्त्रियो वा सुभगेच्छया युंजंतीति शेषः, सौभाग्येच्छया अथवा सभगं अन्यपतिं इच्छंत्यः।

(श्लो० ४) विषकन्योपयोगादिति ‘ हंति स्पृहंती स्वेदेन गम्यमाना च मैथुने’ इति (नि०सं०)

विषके पैदा करनेवाले वे लोग अवसर पाकर निपुण राजाको विषोंसे मार डालते हैं और कभी दुष्ट स्वभाववाली स्त्रीवर्गभी अपने सौभाग्यकी इच्छासे नाना प्रकारके योग (दुर्योग) नियुक्त करती हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ तथा विषकन्या (एक प्रकारकी स्त्री होती हैं) जिनके संसर्ग करनेसे मनुष्य तात्काल मरजाता है इस कारण वैद्यको चाहिये सदा राजाकी विषसे रक्षा रक्खें (एवं और मनुष्योंकी भी यथासंभव रक्षा रक्खें) ॥ ४ ॥

राजाकी सावधानी ।

यस्माच्च चेतोऽनित्यत्वमश्ववत्प्रथितं नृणाम् ।
न विश्वस्यात्ततो राजा कदाचिदपि कस्यचित् ॥ ५ ॥

जो कि मनुष्योंका चित्त चंचल घोडेके समान है कभी स्थिर नहीं रहता यह निश्चय ही बात है इस कारण राजाको कभी भी किसीका विश्वास नहीं रखना चाहिये (सदा सावधान रहे) ॥ ५ ॥

योग्य वैद्यका विश्वास ।

कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम् । अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम् ॥ ६ ॥ क्रोधपारुष्यमात्सर्यमदालस्यविवर्जितम् । जितेंद्रियं क्षमावंतं शुचिं शीलदयान्वितम् ॥ ७ ॥ मेधाविनमसंश्रांतमनुरक्तं हितैषिणम् । पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं मायाविवर्जितम् ॥ ८ ॥ पूर्वोक्तैश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम् । महानसे प्रयुंजीत वैद्यं तद्विधपूजितम् ॥ ९ ॥

राजाको गुणयुक्त वैद्यका सदा विश्वास रखना चाहिये जो वैद्य कुलीन (अच्छे कुलका) धर्मात्मा स्नेहभाव रखनेवाला तथा सुभृत (जिसका राजाने खानपान वस्त्रभूषणादिका खूब अच्छा निबंध करदिया हो) जो सदा उद्यम शील रहता हो जो लोभी और मूर्ख नहो भक्त हो किये हुए गुणोंको जाननेवाला प्यारा दीखनेवाला हो ॥६॥ क्रोध काठोरता ईर्षा मद और आलस्य इनसे रहित हो जितेंद्रिय क्षमावाला पवित्र शीलस्वभाव और दयावान् हो ॥ ७ ॥ तथा बुद्धिमान् परिश्रमी अनुरागी (प्रेमी) हितेच्छु चतुर और प्रगल्भ (भर खम) निपुण दक्ष (क्रियामें चतुर) तथा माया (छल कपट) से रहित हो ॥ ८ ॥ इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त और सदा

(श्लो० ६) सततोत्थितः इति निरंतरोद्यमशीलः उत्थितः उद्यमशीलः (इति श. स्तो.)

(श्लो० ९) सन्निहितागदं इति अगदः विषनाशनः औषधिः, संनिहिता अगदा येन तं सन्निहितागदं इति, तद्विधपूजितं तद्विधैः वैद्यैः पूजितम् ।

विषादि रोग नाशक औषध तयार रखनेवाला और उस विद्याके जाननेवालोंमें पूज्य ऐसा वैद्य सदा रसोई (भोजन) की देख भालमें नियुक्त रखना चाहिये ॥ ९ ॥

रसोईका स्थान ।

प्रशस्तदिग्देशकृतं शुचिभांडं महच्छुचि । सजालकं गवाक्षाढ्यमात्मवर्गनिषेवितम् ॥ १० ॥ विकक्षसृष्टसंसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् । परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम् ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ दिशा (अग्नि कोणमें) और श्रेष्ठ देश (जिसके समीप मल मूत्रादि स्थान न हो) जिसमें रसोई बनानेके सब पात्र पवित्र साफ माजे धोये हुये हों स्थान भी बडा लंबा चौडा हो और पवित्र हो जहां कोई मैला कुचैलापन नहीं हो उसमें जालीके कटहरे लगे हों और झरोखेदार हो तथा भरोसेके अपने आदमियोंसे व्याप्त हो ॥ १० ॥ और उसके समीपमें तृणादिका संचय भी न होवे (अथवा विकक्ष सृष्टसंसृष्टका अर्थ कई ऐसा करते हैं कि जिसके समीपमें सब सामग्रीका स्थान हो अर्थात् उसके पासही एक ऐसा कोठा होवे जिसमें आटा, दाल, चावल, घृत, खाँड, नमक, मिरची, मसाला आदि सब चीजें मौजूद रहें) और उसमें वितान अर्थात् क्यारियां या दरजें बैठनेवालोंके लिये बने हों तथा उसमें अग्नि आदि देवताओंका पूजन होता हो तथा उसमें परीक्षित् स्त्री पुरुषही जाने पावें ऐसा महानस (रसोई) का स्थान होना चाहिये ॥ ११ ॥

अध्यक्ष परिचारकादिक ।

तत्राध्यक्षं नियुंजीत प्रायो वैद्यगुणान्वितम् ॥ १२ ॥ शुचयो दक्षिणा दक्षा विनीताः प्रियदर्शनाः । संविभक्ताः सुमनसो नीचकेशनखाः स्थिराः ॥ १३ ॥ स्नाता दृढं संयमिनः कृतोष्णीषाः सुसंयुताः । तस्य चाज्ञाविधेयाः स्युर्विविधाः परिकर्मिणः ॥ १४ ॥

उस रसोईके स्थानका अध्यक्ष (प्रबंध कर्ता) भी प्रायः वैद्य कैसे गुणोंवाला ही नियुक्त करना चाहिये ॥ १२ ॥ और परिचारक लोग रसोई बनानेवाले तथा काम करनेवाले भी पवित्र कारीगर चतुर नम्रतावाले और देखनेमें प्यारे होनें चाहिये तथा सबके काम बँटे हुये होवें सब प्रसन्न चित्त और क्षौर बनवाये हुये नख कटाये हुये स्थिरचित्त हों॥१३॥ तथा सभी स्नान किये दृढ नियमी (जो झूँठा न कर दे ऐसे) हों पगडी बांधे सावधान और अध्यक्ष तथा वैद्यके आज्ञाकारी होने चाहिये ॥ १४ ॥

(श्लो० ११) विकक्षसृष्टसंसृष्टमिति, डल्लनमतेतु विगततृणस्थानकरणसंपर्कं एतेन रसवतीसमीपे तृणसंचयो न करणीय इत्युक्तं भवति इति (नि० सं०) अन्येतु विकक्षे कक्षाभागे सृष्टं नियुक्तं संसृष्टं पाकद्रव्यादिकं यत्र तत् विकक्षसृष्टसंसृष्टमित्याहुः ।

आहारः स्थितयश्चापि भवंति प्राणिनो यतः । तस्मान्महानसे वैद्यः प्रमादरहितो भवेत् ॥ १५ ॥ महानसिकवोढारः सौपौदनिकपौपिकाः । भवेयुर्वैद्यवशगा ये चाप्यन्ये तु केचन ॥ १६ ॥

जो कि आहार मनुष्योंकी स्थिति अर्थात् जीवनका कारण है इसलिये रसोईमें वैद्य प्रमादसे रहित रहैं (बहुत सावधानीसे रहैं) ॥ १५ ॥ और भोजनकी सामग्री लानेवाले पकडानेवाले तथा दालभात पूरी रोटी आदि बनानेवाले तथा अन्य रसोई और भोजनपानसे संबंध रखनेवाले मनुष्य सब वैद्यकी आज्ञामें रहने चाहिये ॥ १६ ॥

विष देनेवालेकी परीक्षा ।

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टमुखवैकृतैः । विद्याद्विषस्य दातारमेभिर्लिंगैश्च बुद्धिमान् ॥ १७ ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षन्मोहमेति च । अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ १८ ॥ स्फोटयेत्यंगुलीर्भूमिमकस्माद्विलिखेद्धसेत् । वेपथुर्जायते तस्य त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ॥ १९ ॥ क्षामो विवर्णवक्रश्च नखैः किंचिच्छिनत्यपि । आलपेतासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् ॥ २० ॥ निर्यियासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः । वर्तते विपरीतस्तु विषदाता विचेतनः ॥ २१ ॥

मनुष्योंकी चेष्टा जाननेवाला वैद्य अथवा हाकिम या बुद्धिमान् वाणी चेष्टा मुखकी विकृति आदि इन लक्षणोंसे विष देनेवालेको जान लेवे ॥ १७ ॥ पूछनेसे उत्तर न दे या कहने लगे और भूल जावे निरर्थक अस्तव्यस्त बहुत बकै उन्मत्तकी तरह बातें करै ॥ १८ ॥ अंगुली मरोडे अकस्मात् पृथ्वी कुरेदे गिरजावे कांपने लगे डरसे आपसमें इधर उधर देखने लगे ॥ १९ ॥ हीनदशा होजावे वर्ण और मुख बिगड जावे नखूनोंसे कुछ तोडने लगे बारबार दीनकी तरह पुकारे हाथसे शिरके बाल नोचे ॥ २० ॥ भागनेकी इच्छासे बार २ द्वारोंको तके विपरीत होजावे संज्ञा जाती रहे ये विष दाताके लक्षण प्रायः होजाते हैं ॥ २१ ॥

केचिद्भयात्पार्थिवस्य त्वरिता वा तदाज्ञया । असतामपि संतोपि चेष्टां कुर्वन्ति मानवाः । तस्मात्परीक्षणं कार्यं भृत्यानामादितो नृपैः ॥ २२ ॥

(श्लो० १६) महानसिका रसवतीपतयः, वोढारः काहारादयः, सौपौदनिकपौपिकाः सूपौदनपूपकादिकारकाः ।

(श्लो० २१) अपद्वारैः असन्मार्गैः निर्यियासुः गंतुमिच्छुः ।

(श्लो० २२) संतो निर्दोषाः ।

कभी कभी कोई राजाके भयसे अथवा राजाकी भयभीत आज्ञासे घबराकर महात्मा निर्दोष सीधे सादे मनुष्यभी उपरोक्त दुष्ट विषदाता लोगोंकैसी चेष्टा करने लगतेहैं इससे राजाको आदिसे अपने सेवकोंकीही परीक्षा करनी चाहिये (और उनमेंभी परीक्षाके समय बहुत भय न देवें नहीं तो निर्दोषी भी घबराकर अस्तव्यस्त चेष्टा करने लगतेहैं) ॥ २२ ॥

विषके अधिष्ठान।

अन्ने पाने दंतकाष्ठे तथाभ्यंगेऽवलेखने।उत्सादने कषाये च परिषेकेऽनुलेपने ॥ २३ ॥ स्रक्षु वस्त्रेषु शय्यासु कवचाभरणेषु च। पादुकापादपीठेषु पृष्ठेषु गजवाजिनाम् ॥ २४ ॥ विषजुष्टेषु चान्येषु नस्यधूमांजनादिषु। लक्षणानि प्रवक्ष्यामि चिकित्सामप्यनंतरम् ॥ २५ ॥

अन्न (भोजनमें) पीनेके जलादिकमें दतोनमें स्नानके जलमें तथा अवलेखन (कंघी झामें आदि) में उबटनेमें क्वाथमें तथा छिड़कनेकी वस्तुमें चंदन आदिमें ॥ ॥ २३ ॥ माला वस्त्र शय्या (बिछौने) बकतर आभूषण खडाऊं आसन तथा घोड़े हाथीकी पीठ ॥ २४ ॥ इन स्थानोंमें विषका संसर्ग तथा विषयुक्त अन्य नस्य (नास या इतर आदि) धूम (हुक्केकी चिलम आदि) तथा अंजन इत्यादिमें विषके लक्षण कहते हैं और पीछे उसकी चिकित्सा कहेंगे ॥ २५ ॥

विषयुक्त भोजनकी परीक्षा।

नृपभक्ताद्बलिं न्यस्तं सविषं भक्षयंति ये । तत्रैव ते विनश्यंति मक्षिका वायसादयः ॥ २६ ॥ हुतभुक्तेन चान्नेन भृशं चटचटायते । मयूरकण्ठप्रतिमो जायते चापि दुःसहः ॥ २७ ॥ भिन्नार्चिस्तीक्ष्णधूमश्च नाचिराच्चोपशाम्यति ॥ २८ ॥

राजाके भोजनमेंसे पहले बलि देना चाहिये क्योंकि यदि वह विष युक्त होवे तो उसको जो मक्खियां काग आदिक जीव खावें वे तात्काल ही मर जाते हैं ॥ २६ ॥ और भोजनमेंसे प्रथम अग्निमें थोड़ा डालना चाहिये विषयुक्तसे अग्नि चटचट करने लगती है अथवा मोरकी ग्रीवा जैसी नीली ज्योति निकलने लगती है और दुःसह होती है ॥ २७ ॥ अथवा ज्योति छिन्न भिन्न होती है और धूवाँ बडा तीक्ष्ण होता है और शीघ्र शांत नहीं होता ॥ २८ ॥

(श्लो० २३) पादपीठः आसनम् ।

(इसीसे हमारे धर्ममें पहले बसंदर जिमाना फिर भोजन करना लिखा है)।
चकोरस्याक्षिवैराग्यं जायते क्षिप्रमेव तु । दुष्टान्नं विषसंसृष्टं म्रियंते जीवजीवकाः ॥ २९ ॥ कोकिलः स्वरवैकृत्यं क्रौंचस्तु मदमृच्छति । हृष्येन्मयूर उद्विग्नः क्रोशतः शुकसारिके ॥ ३० ॥ हंसः क्ष्वेडति चात्यर्थं भृंगराजस्तु कूजति । पृषतो विसृजत्यश्रु विष्ठां मुंचति मर्कटः ॥ ३१ ॥ सन्निकृष्टास्ततः कुर्याद्राज्ञस्तान्मृगपक्षिणः । वेश्मनोऽथ विभूषार्थं रक्षार्थं चात्मनः सदा ॥ ३२ ॥

विषयुक्त भोजनकी परीक्षा पक्षी आदि जीवोंसे भी होती है इस लिये प्रथम उन्हें खिलाकर नित्य देख लेना चाहिये विषयुक्त पदार्थ खानेसे (या देखने हीसे) चकोरकी आखें बदल जाती हैं और जीवजीवक पक्षी मरजाते हैं ॥ २९ ॥ तथा विषयुक्त अन्न खानेसे कोकलाकी कंठध्वनि बिगड़ जाती है क्रौंच मदोन्मत्त हो जाता है ॥ मोर उद्विग्नसा होकर नाचने लगता है और तोता मैना पुकारने लगते हैं ॥ ३० ॥ हंस अति शब्द करने लगता है भ्रमर कूजने (गूंजने) लगता है पृषत् (सामर) आंसू डालने लगता है और वानर बारबार विष्ठा त्यागने लगता है ॥ ३१ ॥ इस लिये ऐसे मृग और पक्षियोंको राजाके समीप (रसोईके निकट) रखना चाहिये इससे स्थानकी शोभा होती है और सदैव अपनी रक्षा रहती है ॥ ३२ ॥

परोसे हुवे भोजनमें विषकी परीक्षा।

उपक्षिप्तस्य चान्नस्य बाष्पेणोर्द्ध्वं प्रसर्पता । हृत्पीडा भ्रांतनेत्रत्वं शिरोदुःखं च जायते ॥ ३३ ॥ तत्र नस्यांजने कुष्टं रामठं नलदं मधु । कुर्याच्छिरीषरजनीचंदनैश्च प्रलेपयेत् । हृदि चंदनलेपस्तु तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ पाणिप्राप्तं पाणिदाहं नखशातं करोति च । अत्र प्रलेपः श्यामेंद्रगोपासोमोत्पलानि च ॥ ३५ ॥

जब थाल या प्यालों आदिमें विषयुक्त अन्नादि परोसा जावे तब उसकी उठी हुई भाफसे हृदयमें पीडा नेत्रोंमें भ्रमणीकता और शिरमें दुःख मालूम होता है ॥ ॥ ३३ ॥ इस बाष्प जनित पीडा दूर करनेको नस्य देना और अंजन देना इस नस्य अंजनमें कूट हींग खस और शहत होना चाहिये तथा शिरस हलदी और

(श्लो० ३१) हंसः क्ष्वेडति क्ष्विड कूजने इत्यस्य धातोः, पृषतः शुभ्रबिंदुमति मृगभेदे (इति श० स्तो०)

चंदन इनका मस्तकपर लेप करना और हृदयपरभी चंदनका लेप करना इससे शांति होजाती है ॥ ३४॥ और जो उस विष युक्तको हाथोंका स्पर्श होवे (खानेको ग्रास उठावें) तब हाथोंमें जलन होने लगता है तथा नखून फटेसे होजातेहैं (ऐसा विदित होनेपर भोजन त्याग देना चाहिये) और हाथोंपर प्रियंगु वीरबहुट्टी सोम (सोमलता अथवा गिलोय) और कमल इनका लेप करना चाहिये३५॥

ग्रासमें विषपरीक्षा ।

स चेत्प्रमादान्मोहाद्वा तदन्नमुपसेवते । अष्ठीलावत्ततो जिह्वा भवत्यरसवेदिनी ॥ ३६ ॥ तुद्यते दह्यते चापि श्लेष्मा चाऽऽस्यात्प्रसिच्यते । तत्र बाष्पेरितं कर्म यच्च स्याद्दांतकाष्ठिकम् ॥ ३७ ॥

यदि प्रमाद या मोहसे वह अन्न खानेमें आजावे (अर्थात् ग्रास मुखमें लिया जावे) तौ उससे जिह्वा अष्ठीला(ठेकरी)की भांत या अष्ठीला रोगकी भांत करड़ी और रसके ठीक न जाननेवाली हो जाती है (अर्थात् मुहमें विषयुक्त अन्न जानेपर जिह्वासे उस अन्नादिका यथावत् स्वाद नहीं आता और जीभमें कुछ करड़ापन मालूम देता है) (ऐसा ग्रास मुहमें मालूम देतेही उसे त्याग देना चाहिये) ॥३६॥ और जीभमें पीडा और जलनभी होती है तथा मुहसे लार बहने लगती हैं इसमें बाष्पोक्त कुष्टादिका कवल मुहमें रखना तथा (दंतधावनोक्त विषनाशक यत्न करना या दतोन आदि विषघ्न उपचार करना) ॥ ३७ ॥

आमाशयगत विषके लक्षण और यत्न ।

मूर्च्छां छर्दिमतीसारमाध्मानं दाहवेपथू । इंद्रियाणां च वैकृत्यं कुर्यादामाशयं गतम् ॥ ३८ ॥ तत्राशु मदनालाबुबिम्बीकोशातकीफलैः । छर्दनं दध्युदश्विद्भ्यामथवा तंडुलांबुना ॥ ३९॥

आमाशय (मेदे) में यदि विष पहुंच जावे (अर्थात् किसी कारणसे विष खाया पीया जावे) तो मूर्च्छा,वमन, अतिसार पेट अफरना दाह कंप और इंद्रियोंमें विकार कर देता है ॥ ३८ ॥ ऐसा होनेमें बहुतही शीघ्र मैनफल कड़वी तोंबी बिंबी (कदूरी) और कोशातकी (कड़वी तोरी) इनसे वमन कराकर विष निकाल देना चाहिये अथवा दही और उदश्वित् (दहीमें जल मिले हुये) से अथवा चावलोंके पानीसे वमन करावें ॥ ३९ ॥

(श्लो० ३६) अष्ठीला दीर्घवर्तुलपाषाणविशेषः (इति डल्लनः) ।

(श्लो० ३९) उदश्वित् अर्द्धजलेन मथितं तक्रमिति शब्दस्तोमः, छर्दनं कारयादिति शेषेणान्वयः ।

पक्वाशय गत विषके लक्षण और यत्न ।

दाहं मूर्च्छामतीसारं नृणामिन्द्रियवैकृतम् । आटोपं पांडुतां कार्श्यं कुर्यात्पक्वाशयं गतम् ॥ ४० ॥ विरेचनं ससर्पिष्कं तत्रोक्तं नीलनीफलम् । दध्ना दूषीविषारिश्च पेयो वा मधुसंयुतः ॥ ४१ ॥

(और जब आमाशय गत विषका यत्न न हो तब वह विष पक्वाशयमें पहुंच जाता है) और पक्वाशयमें पहुँचा हुवा विष दाह मूर्च्छा अतिसार और मनुष्योंकी इंद्रियोंमें विकार अफारा और रंग पीला पड़ जाना और कृशता ये लक्षण करता है (कार्श्यकी जगह कई कार्ष्ण्य ऐसा पाठ मानते हैं कि मनुष्यका रंग काला पड़ जाता है सो ठीकभी है कइयोंका रंग स्याह पड़ जाता है) ॥ ४० ॥ इस अवस्थामें नीलनी फल (काला दाना) घृतमें मिलाकर देकर विरेचन करावें अथवा दही या शहतके संग दूषी विषारि (चौलाई आदि) पिलावें ॥ ४१ ॥

पेय पदार्थोंमें विषपरीक्षा ।

द्रवद्रव्येषु सर्वेषु क्षीरमद्योदकादिषु । भवंति विविधा राज्ये फेणबुद्बुदजन्म च ॥ ४२ ॥ छायाश्चात्र न दृश्यंते दृश्यंते यदि वा पुनः । भवंति यमलाश्छिद्रास्तन्व्यो वा विकृतास्तथा ॥ ४३ ॥

दूध, मद्य, जल आदि समस्त द्रव पदार्थोंमें (विषसे) अनेक भांतकी लकीरेंसी होजाती हैं तथा झाग या बुलबुले पैदा होजाते हैं ॥ ४२ ॥ और इसमें छाया नहीं दीखती और जो दीखें तो दो छाया दीखें या छिद्रयुक्त दीखें तथा पतलीसी और बिगड़ी हुई दीखें ॥ ४३ ॥

शाकादिमें विषकी परीक्षा ।

शाकसूपान्नमांसानि क्लिन्नानि विरसानि च । सद्यः पर्य्युषितानीव विगंधानि भवंति च ॥ ४४ ॥ गंधवर्णरसैर्हीनाः सर्वे भक्ष्याः फलानि च । पक्वान्याशु विशीर्यंते पाकमामानि यांति च ॥ ४५ ॥

शाक दाल भात और मांस विषयुक्त होनेसे क्लेदित और विरस होजाते हैं तथा तात्कालही बासी हुए (बुसे हुवे) से मालूम देते हैं और दुर्गंधित होजाते हैं ॥ ४४ ॥ सब भक्ष्यके पदार्थ सुगंधि रूप और रससे हीन होजाते हैं तथा फल जो

(श्लो० ४०) कार्श्यमित्यत्र कार्ष्ण्यमिति वा पाठः ।

(श्लो० ४५) आमानि अपक्वानि ।

पके होते हैं वे फूट जाते हैं या नरम पड़ जाते हैं और जो कच्चे होते हैं वे पकेसे होजाते हैं ॥ ४५ ॥

दतोन आदिमें विषकी परीक्षा ।

विशीर्यंते कूर्चकस्तु दंतकाष्ठगते विषे । जिह्वादंतौष्ठमांसानां श्वयथुश्चोपजायते ॥४६॥ अथास्य धातकीपुष्पपथ्याजंबूफलास्थिभिः । सक्षौद्रैः प्रच्छिते शोफे कर्तव्यं प्रतिसारणम् ॥ ४७ ॥ अथवांगोटमूलानि त्वचः सप्तच्छदस्य वा । शिरीषमाषका वापि सक्षौद्रा प्रतिसारणम् ॥ ॥ ४८ ॥ जिह्वानिर्लेखकवलौ दंतकाष्ठवदादिशेत् ॥ ४९ ॥

यदि दतोनमें विषका योग हो तो उसकी कूची फटी छीदी या बिखरी हुईसी होती है और जीभ दांत होठ इनके मांसमें सोथ होजाता है ॥ ४६ ॥ ऐसा होवे तो धायके फूल हरड़े और जामनकी गुठली इन्हें पीस शहतमें मिलावें और सूजी जगह पछने लगाकर उससे रगड़ दें ॥ ४७॥ अथवा अंकोटकी जड़ और सातला-की छाल तथा शिरसके बीज शहतमें मिलाकर रगड़ दें ॥ ४८ ॥ और जिह्वा कुरचनेकी सीख और कवलमें विषका योग हो तो ये ही दंतधावन केसे लक्षण जानने चाहिये और इसीके अनुसार यत्न करें ॥ ४९ ॥

अभ्यंगगत विष लक्षण और यत्न ।

पिच्छलो बहलोऽभ्यंगो विवर्णो वा विषान्वितः । स्फोटजन्म रुजास्रावत्वक्पाकः स्वेदनं ज्वरः । दारणं चापि मांसानामभ्यंगे विषसंयुते ॥ ५० ॥ तत्र शीतांबुसिक्तस्य कर्तव्यमनुलेपनम् । चंदनं तगरं कुष्टमुशीरं वेणुपत्रिका ॥ ५१ ॥ सोमवल्यमृता श्वेता पद्मं कालीयकं त्वचम् । कपित्थरसमूत्राभ्यां पानमेतच्च युज्यते ॥ ५२ ॥ उत्सादने परीषेके कषाये चानुलेपने।शय्यावस्त्रतनुत्रेषु ज्ञेयमभ्यंगलक्षणैः ॥ ५३ ॥

यदि अभ्यंग मलनेके तैलादिमें विष हो तो वह गाढा गिधला और विवर्ण हो जाता है और (उसके लगानेसे) फोड़े (फालके) हो जाते हैं पीडा होती है पानी झरता है त्वचा पक जाती है स्वेद ज्वर ये हो आते हैं तथा मांस फट जाता

(श्लो० ४६) कूर्चको दंतकाष्ठस्याग्रिमो भागः ।

(श्लो० ४८) शिरिषमाषकाः शिरिषबीजानि, प्रतिसारणं घर्षणम् ।

(श्लो० ५२) श्वेता श्वेतस्यंदः, कालीयकं दारुहरिद्रा तत्त्वचं अन्येत्वचं पृथगाहुः ।

भी है ये लक्षण विषयुक्त अभ्यंग के हैं ॥५०॥ ऐसा होवे तब ठंढे पानीसे धोकर स्नान करके चंदन तगर कूट खस वंशपत्री ॥ ५१ ॥ सोमवल्ली गिलोय श्वेता (श्वेतस्यंद) कमल कालीयक (पीतचंदन) और तज इनका लेप करे तथा कैथके रस और गोमूत्रके संग इन्हें पिलावे भी ॥ ५२ ॥ उत्सादन (उवटने) छिड़कनेके पदार्थों और क्वाथों तथा लेपके द्रव्य शय्या (बिछौने) वस्त्र और तनुत्र (कवच) इनमें विषका योग हो तो उसके लक्षण (और यत्न) अभ्यंगके समान जानने चाहिये ॥ ५३ ॥

अनुलेपनगत विषके लक्षण और यत्न ।

केशशातः शिरोदुःखं खेभ्यश्च रुधिरागमः । ग्रंथिजन्मोत्तमांगेषु विषजुष्टे तु लेपने ॥ ५४ ॥ प्रलेपो बहुशस्तत्र भाविताः कृष्णमृत्तिकाः । ऋष्यपित्तघृतश्यामापालिंदीतंदुलीयकैः ॥ ५५ ॥ गोमयस्वरसो वापि हितो वा मालतीरसः । रसो मूषकपर्ण्या वा धूमो वागारसंभवः ॥ ५६ ॥

यदि अनुलेपन (चंदनादि) विषयुक्त हो तो उससे बाल (रोम) गिर जाते हैं शिरमें पीड़ा होती है और रोमछिद्रोंसे रुधिर निकलने लगता है और चेहरेपर गाँठें पैदा हो जाती हैं ॥ ५४ ॥ इसमें काली मिट्टीको ऋष्य (नीलगाय रोझ) के पित्ते घृत प्रियंगु पालिंदी (श्यामा निसोथ) और चौलाई इनमें कई भावना देकर लेप करे ॥ ५५ ॥ अथवा गोबरका रस अथवा मालतीका रस अथवा मूषकपर्णीका रस या घरका धूम लेप करना हित है ॥ ५६ ॥

शिरोभ्यंग और मुखलेपगत विष ।

शिरोभ्यंगः शिरस्त्राणं स्नानमुष्णीषमेव च । स्रजश्च विषसंसृष्टाः साधयेदनुलेपवत् ॥ ५७ ॥ मुखलेपे मुखं श्यावं युक्तमभ्यंगलक्षणैः । पद्मिनीकंटकप्रख्यैः कंटकैश्चोपचीयते ॥ ५८ ॥ तत्र क्षौद्रघृतं पानं प्रलेपश्चंदनं घृतम् । पयस्या मधुकं फंजी बंधुजीवपुनर्नवाः ॥ ५९ ॥

शिरमें लगानेके तैल (इतर वगैरा) शिरस्त्राण (टोपी) और स्नानके जल

(श्लो०५४) खेभ्यः रोमकूपेभ्यः, उत्तमांगेषु ग्रीवाया उपरिभागेषु,उत्तमांगः मस्तकः (इति श० स्तो०)।

(श्लो० ५५) ऋष्यः नीलांतः रोझ इति प्रसिद्धः तत्पित्तं कालखंडलग्ननलिकामध्यगतं लालजलं पित्तं, श्यामा पियंगु, पालिंदी श्यामा तृ वृत (इति नि० सं०) त्रिवृत् श्यामार्द्ध चंद्राच पालिंदीच सुषेणिका इति (निघंटुः)

(श्लो० ५९) फंजी भांगीं ।

तथा पगड़ी तथा माला ये विषयुक्त उपयोगमें आजावें तो अनुलेपनकी ही क्रियासे साधन करना चाहिये (और अनुलेपगत विषके हीसे लक्षण जानने) ॥ ५७ ॥ मुहके मलनेके पदार्थोंमें विष हो तो उससे मुख स्याह पड़ जाता है और अभ्यंग विषकेसे लक्षण होतेहैं तथा पद्मनी मरुय (मुहासे) जैसे छोटे २ दाने पैदा होजाते हैं ॥ ५८ ॥ इसमें घृत और शहत पिलाना चंदन घृत लेप करना तथा अर्कपुष्पी मुलेठी फंजी (भाडंगी) बंधुजीव (दुपहरिया) और सांठी इनका लेप करें ॥५९॥

सवारियोंकी पीठपर विष ।

अस्वास्थ्यं कुंजरादीनां लालास्रावोऽक्षिरक्तता । स्फिक्पायुमेढ्रमुष्केषु युक्तेषु स्फोटसंभवः । तत्राभ्यंगवदेष्टा यातृवाहनयोः क्रियाः॥ ६० ॥

यदि हाथी, घोड़े, आदिकी पीठपर विष लगा हो तो उनमें अस्वस्थता (रोग) हो जावे मुहसे लार वहें और आँखें लाल होजावें और उनपर सवार होनेसे साथल गुदा लिंग वृषण इन स्थानोंमें फोड़े (फफोले) होजातेहैं एसा होनेमें अभ्यंगोक्त क्रिया करनी श्रेष्ठ है तथा उन वाहनोंके भी विष नाशक वही क्रिया करनी चाहिये ॥ ६० ॥

नस्य धूम और पुष्पोंमें विषके ल. य. ।

शोणितागमनं खेभ्यः शिरोरुक्कफसंस्रवः । नस्यधूमगते लिंगमिंद्रियाणां तु वैकृतम् ॥ ६१ ॥ तत्र दुग्धैर्गवादीनां सर्पिः सातिविषैःशृतम् । पाने नस्ये च सश्वेतं हि तं समर्दयंतिकम् ॥ ६२ ॥ गंधहानिर्विवर्णत्वं पुष्पाणां म्लानता भवेत्। जिघ्रितेश्च शिरोदुःखं वारिपूर्णे च लोचने ॥ ६३ ॥ तत्र बाष्पेरितं कर्म मुखालेपे च यत्स्मृतम् ॥ ६४ ॥

नस्य या धूमपान (हुक्के आदि) में विष हो तो उसके उपयोग करनेसे स्रोतों (मुख नाक आदि) से रुधिर आवे शिरमें पीडा होवे कफ गिरने लगे तथा इंद्रियोंमें विकार हो जावे ॥ ६१ ॥ इसमें ऐसा करें कि गौ आदिके दूधमें अतीस युक्तकर उसमें पकायाहुवा घृत पान करावें तथा वचा और मल्लिका मिलाकर घृतकी नस्य देवे॥ ६२॥ यदि पुष्पोंमें विषका सम्पर्क हो तो उनकी सुगंधि जातीरहै और रंगभी बिगड़जावे तथा कुमलाये हुएसे हो जावें और उनके सूंघनेसे शिरमें पीडा (शिरमें दर्द) और आँखोंमें अश्रुपात होने लगते हैं ॥ ६३ ॥ ऐसा होनेमें

(श्लो० ६२) सश्वेतं वचायुक्तं श्वेतात्र वचा, गयीतु श्वेतां कटभीमाह, समर्दयंतिकं मल्लिकासहितं (इति नि० सं०) ।

पूर्वोक्त विष युक्त बाष्पकी भांत चिकित्सा करें या जो मुखलेपनमें विष हो उस चिकित्सा जैसी कहीहै वैसे करें ॥ ६४ ॥

कर्ण तैलमें विषके ल. य.

कर्णतैलगते श्रोत्रवैगुण्यं शोफवेदने । कर्णस्रावश्च तत्राशु कर्तव्यं प्रतिपूरणम् ॥ ६५ ॥ स्वरसो बहुपुत्रायाः सघृतः क्षौद्रसंयुतः । सोमवल्करसश्चापि सुशीतो हित इष्यते ॥ ६६ ॥

कानमें डालनेके तैलादिमें विष हो तो श्रोत्रइंद्रियकी विगुणता हो जावे शोथ और पीडा होवे कान बहनेलगे ऐसा होनेमें शीघ्रही कर्णपूरण करना चाहिये ॥ ६५ ॥ शितावरीका स्वरस घृत और शहत मिलाकर कानमें डाले अथवा खदिरका रस (क्काथ) शीतल करके डालना हित है (अर्थात् इससे कान धोना श्रेष्ठ है) ॥ ६६ ॥

अंजनमें विषके ल. य.

अश्रूपदेहौ दाहश्च वेदना दृष्टिविभ्रमः । अंजने विषसंसृष्टे भवेदांध्यमथापि वा ॥ ६७ ॥ तत्र सद्योघृतं पेयं तर्पणं च समागधम् । अंजनं मेषशृंगस्य निर्यासो वरुणस्य च ॥ ६८ ॥ मुष्ककस्याजकर्णस्य फेणो गोपित्तसंयुतः । कपित्थमेषशृंग्योश्च पुष्पं भल्लातकस्य वा ॥ ६९ ॥ एकैकं कारयेत्पुष्पं बंधूकांकोटयोरपि ॥ ७० ॥

यदि अंजन (सुरमे आदि) में यदि विष हो तौ उससे नेत्रोंमें आंसू और लेपसा होवे तथा दाह और पीडा हो तथा दृष्टिमें भ्रमणीकता अथवा अंधापन (नेत्रनाश) होजाताहै ॥ ६७ ॥ इसमें सद्य घृत पीपल युक्त कर पीना चाहिये यह तर्पण (तृप्तिकारक) है तथा मेढासींगी और वरणेवृक्षका गोंद इनका अंजन करे ॥ ६८ ॥ अथवा मुष्कक (मोखा) और अजकर्ण (महासर्ज) इनका निर्यास और फेण (समंदरझाग) और गोरोचन इन्हें मिलाकर अंजन करे अथवा कैथ मेढासींगी इनके पुष्प अथवा भिलावेंके फूल ॥ ६९ ॥ अथवा बंधूक तथा अंकोटके फूल इनका एक एकका पृथक् पृथक् अंजन करें ॥ ७० ॥

शोफः स्रावस्तथा स्वापः पादयोः स्फोटजन्म च । भवंति विषजुष्टाभ्यां

(श्लो० ६६) बहुपुत्रा शतावरी, सोम वल्कः खदिरः (इति श० स्तो०)
(श्लो० ६७) उपदेहः मलवृद्धिः (इति डल्लनः)
(श्लो० ६९) फेणः समुद्रफेण इति (नि०स०)
(श्लो० ७१) स्वापः स्पर्शाज्ञानम् ।

पादुकाभ्यामसंशयम् ॥ ७१ ॥ उपानत्पादपीठानिपादुकावत्प्रसाधयेत् । भूषणानि हतार्चींषि न विभांति यथापुरा ॥ ७२ ॥ स्वानि स्थानानि हन्युश्च दाहपाकावदारणैः । पादुकाभूषणे युक्तमभ्यंगविधिमाचरेत् ॥ ७३ ॥ विषोपसर्गो बाष्पादिर्भूषणांतोर्थ ईरितः । समीक्ष्योपद्रवांस्तस्य विदधीत चिकित्सितम् ॥ ७४ ॥

यदि खडाऊं पर विषका योग हो तो उनसे पावोंमें सोजा तथा पाव सोना (स्पर्श ज्ञान नष्ट होना) पैरोंमें फोड़े (फफोले) पटजाना और पीव झिरना निःसंदेह ये लक्षण होते हैं ॥७१ ॥ और जूता तथा पादपीठ (आसन या गद्दी) इनमें विषका योग होतो उसे खडाऊंके समान जानना । और आभूषणोंमें विषका संसर्ग होतो उनकी चमक मंदी पड़जाती है पहलेकी तरह उज्वल नहीं दीखते ॥ १२ ॥ और जहां वे धारण किये जावें उन स्थानोंमें दाह पाक और फटान करके उन्हें नाश कर देतेहैं पादुका (खडाऊं) और आभूषणके विषमें यथायोग्य विष नाशक मलनेकी औषधका उपयोग करना चाहिये ॥ ७३ ॥ बाष्प (भाफ) से आदि ले आभूषण पर्यंत विषके योगके लक्षण चिकित्सा वर्णन किये गये इनमें जहां जैसा उपद्रव देखे वैद्य उसीके अनुसार चिकित्साका विधान करे ॥ ७४ ॥

विषघ्न संक्षिप्त उपाय ।

महासुगंधिमगदं यं प्रवक्ष्यामि तं भिषक् । पानालेपननस्येषु विदधीतांजनेषु च ॥ ७५ ॥ विरेचनानि तीक्ष्णानि कुर्यात्प्रच्छर्दनानि च । शिराश्च व्यधयेत्क्षिप्रं प्राप्तं विस्रावणं यदि ॥ ७६ ॥ मूषिकाऽजरुहावापि हस्ते बद्धा तु भूपतेः । करोति निर्विषं सर्वमन्नं विषसमायुतम् ॥ ७७ ॥

महा सुगंधि नामक अगद (विषनाशक औषध) जो हम वर्णन करेंगे उसे वैद्य पिलाने लेपन करने नस्य देने तथा अंजन करनेमें उपयोग करे ॥ ७५ ॥ पक्काशयमें विष पहुँच जावे तो तीक्ष्ण विरेचन देने चाहिये और आमाशयमेंही हो तब खूब वमन कराके निकाल देना चाहिये और जब रुधिरमें हो तब फस्द कराकर खून निकलवा दे और मुनासिब हो जिस प्रकार रुधिर निकाले (मौका हो सींगी

(श्लो० ७२) हतार्चींषि तेजोरहितानि ।

(श्लो० ७५) अगदः विषहरयोगः ।

(श्लो० ७७) मूषिकाऽजरूहा इति तत्राजरुहा 'कंदः श्वेतः सपिंडीको भेदे वांजनसन्निभः । गंधलेपन पाणिस्तु विषं जरयते नृणाम्॥१॥ दष्टानां विषपीतानां ये चान्ये विषमोहिताः विषंजरयते तेषां तस्मादजरुहा स्मृता ॥२॥ मूषिकालोमशा कृष्णा भवेत् सापिचतद्गुणा,(इति निबंध संग्रहे उशनाः) ।

लगाकर मौका हो तो वैसे खून निकाले) ॥ ७६ ॥ मूषिका और अजरुहा राजा या विषपीडित मनुष्यके हाथके बांध देनेसेही सब विषयुक्त अन्नादिको निर्विषकर देता है (अर्थात् विषका प्रभाव नष्टकर देता है) (मूषिका एक छोटी रुगटोंवाली काली चूहीकी भांत होती है) (और अजरुहा एक सुपेद कंद पिंडी जैसा होता है और कोई काला कज्जलसाभी होता है इसके गंध लेपन और हाथमें स्पर्श करने-सेही विष नष्ट होजाता है देखो टिप्पणी) ॥ ७७ ॥

(वक्तव्य) अजरुहा उत्तम असल निर्विषीको समझे यह असल मिलनी दुर्लभ है ॥

हृदयावरणं नित्यं कुर्यान्मित्रमध्यगः । पिबेद्घृतमजेयाख्यममृताख्यं च बुद्धिमान् । सर्पिर्दधि पयः क्षौद्रं पिबेद्वा शीतलं जलम् ॥ ७८ ॥

नित्य मित्र मंडलीमें बैठकर हृदयावरण (चित्त प्रसन्न करनेके यत्न) करता रहे तथा अजेय नाम घृत अथवा अमृताख्य घृतका बुद्धिमान् पान करे तथा घृत दही दूध शहत एवं ठंढा जल पीवे (पैत्तिक विषमें ठंढा पानी पीना चाहिये वातिकमें नहीं जैसे इस समयके " संखिये " नामक विषपर गरम जल हितकारक होता है और ठंढेसे बडी हानि होती है इन बातोंको विचार लेना चाहिये) ॥ ७८ ॥

मयूरान्नकुलान्गोधाःपृषतान्हरिणानपि । सततं भक्षयेच्चापि रसांस्तेषां पिबेदपि ॥ ७९ ॥ गोधानकुलमांसेषु हरिणस्य च बुद्धिमान् । दद्या-त्सुपिष्टां पालिंदीं मधुकं शर्करां तथा ॥ ८० ॥ शर्करातिविषे देये मायूरे समहौषधे । पार्षते चापि देयाः स्युः पिप्पल्यः समहौषधाः ॥ ॥ ८१ ॥ सक्षौद्रः सघृतश्चैव शिबीयूषो हितः सदा । विषघ्नानि च सेवेत भक्ष्यभोज्यानि बुद्धिमान् ॥ ८२ ॥

मोर नकुल (नोल) गोह (निर्विष गोह) पृषत (सामर) हिरण इनको निरंतर भक्षण करता रहे तथा इनके मांसका रस पीवे ॥ ७९ ॥ गोधा (निर्विष गोह) नोल तथा हिरण इनके मांसमें निसोथ मुलेटी और खांड पीसकर मिलावें और खानेको देवे ॥ ८० ॥ तथा मोरके मांसमें अतीस और खांड और सोंठ मिलाकर दें तथा पृषतके मांसमें पीपल और सोंठ मिलाकर देवें ॥ ८१ ॥ तथा शहत घृत युक्त शिंबी (सेम) का यूष पीना सदा हित है तथा बुद्धिमान् विषनाशक भक्ष्य भोज्य अन्य भी यथायोग्य सेवन करे ॥ ८२ ॥

पिप्पलीमधुकक्षौद्रशर्करेक्षुरसांबुभिः ।
छर्दयेद्गुप्तहृदयो भक्षितं यदिवा विषम् ॥ ८३ ॥
इति सुश्रुते कल्पस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यदि किसीने स्वयं ही गुप्तरूपसे विष खा लिया हो तो वह पीपल मुलेठी शहत खांड ईखका रस इनसे गुप्त हृदय (गुप्त मनसे) ही वमन कर देवे (अथवा किसी-ने गुप्त मनसे विष स्वयं ही खा लिया हो तो उसे वैद्य पिप्पली आदिसे वमन कराके शीघ्र विष निकाल दे) (और जो पक्काशयमें पहुँच गया हो तो रेचन देवें)॥८३॥

इतिश्रीसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीक भाषाटीकायां कल्पस्थाने प्रथमोऽध्यायः॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः स्थावरविषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी हम स्थावर विषके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं॥

विषके दो भेद ।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ।
दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

विषके दो भेदहैं १ स्थावर (जो स्थिर रूप एक ही जगह रहे जैसे वृक्ष पत्थर आदि जड पदार्थ) २ जंगम (जो चल फिर सके चैतन्य जीव जंतु जैसे सर्प विच्छु कीड़े आदि) इनमेंसे प्रथम स्थावर विषके स्थान भेदसे दस प्रकारका होता है और जंगमके स्थान सोलह हैं इससे उसके १६ भेद होतेहैं ॥ १ ॥

स्थावरविषके १० अधिष्ठान भेद ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च ।
निर्यासोधातवश्चैव कंदश्च दशमः स्मृतः ॥ २ ॥

मूल (जड़) पत्र(पत्ते) फल फूल, छाल, दूध, सार, गोंद, धातु (जो खानसे निकलें) और दसवां कंद ये दस भेद हैं (अर्थात् कोई जड़ विषैली होती है कोई पत्ते कोई फल, कोई फूल इत्यादि) ॥ २ ॥

मूलविष ।

तत्र क्लीतकाश्वमारगुंजासुबंधगर्गरककरघाट-
विद्युच्छिखाविजयानीत्यष्टौ मूलविषाणि ॥ ३ ॥

क्रीतक अश्वमार (कनेर) चिरमठी सुवंध गर्गरक करघाट विद्युच्छिखा और विजय ये आठ मूल विष हैं (अर्थात् इनकी जड़में विष होता है) (करघाट कई मैनफलकी जड़ समझते है कई विद्युच्छिखा कलहारीको बताते हैं और विजया भंग बताते हैं परंतु डल्लनमिश्रजीने विषोंके नाम रूप लक्षणादि कुछ लिखे ही नहीं ॥३॥

पत्र फल और पुष्प विष ।

विषपत्रिकालंबावरदारुककरंभमहाकरंभाणि पंच पत्रविषाणि ॥ ४ ॥ कुमद्वतीरेणुकाकरंभमहाकरम्भककर्कोटकवेणुकखद्योतकचर्मरीभगंधासर्पघातिनंदनसारपाकानीति द्वादश फलविषाणि ॥ ५ ॥ वेत्रकादंबवल्लिजकरंभमहाकरंभाणि पंच पुष्पविषाणि ॥ ६ ॥

विषपत्रिका लंबा वरदारु करंभ और महाकरंभ ये पांच पत्र विष हैं ॥ ४ ॥ कुमुद्वती रेणुका करंभ महाकरंभ कर्कोटक वेणु व खद्योतक चर्मरी इभगंधा सर्पघाती नंदन और सारपाक ये बारह फल विष हैं ॥ ५ ॥ वेत्र कादंब वल्लिज करंभ महाकरंभ ये पांच पुष्प विष हैं ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) कोई विषपत्रिका भंगको मानते हैं कोई लंबा कडुवी तुंबीको कहते हैं कोई वरदारु सागौन वृक्षको बताते हैं और इसी भांत फल विषोंकाभी ठीक पता नहीं लगता समयके फेरसे नाम ही बदल गये क्या इन नामोंका पता न तो किसी कोषमें ठीक लगता न ग्रंथांतरमें फल विषमें कुचला जो प्रसिद्ध विष है उसके नामका यहां फल विषोंमें पताही नहीं लगता और जो नाम लिखे हैं उन द्रव्योंका पता नहीं इसीसे डल्लनमिश्रजीने निबंधसंग्रह टीकामें लिखा है कि "मूलादिविषाणां यत्नपरैरपि ज्ञातुं अशक्यत्वात् तत्र तानि हिमवत्प्रदेशे किरातशबरादिभ्यो ज्ञेयानि" अर्थात् मूल पत्र फल पुष्प कंद आदि विषोंकी परीक्षा और उनकी आकृति लक्षणादि बहुत यत्न करनेसे भी नहीं जाने जासकते हैं उन्हें हिमालय विंध्याचलादि पर्वतोंमें वहांके जंगली भिल्ल कृषक आदि लोगोंसे पता लगाने पर शायद कुछ पता लगजावे ॥

त्वक्सार निर्यास दुग्ध तथा धातु विष ।

अंत्रपाचककर्तरीयसौरीयककरघाटकरंभनंदनवराटकानि सप्त त्वक्सारनिर्यासविषाणि ॥ ७ ॥ कुमुदघ्नीस्नुहीजालक्षीर्याणि त्रीणि क्षीरविषाणि ॥ ८ ॥ फेणाश्मभस्म हरितालं च द्वे धातुविषे ॥ ९ ॥

अंत्र पाचक कर्तरीय सौरीयक करघाट करंभ नंदन वराटक ये सात त्वक् (छाल) और सार तथा निर्यास (गोंद) विष हैं ॥ ७ ॥ कुमुदघ्नी स्नुही (थोहर) जालक्षीरी ये तीन दूध विष हैं ॥ ८ ॥ फेणाश्म भस्म और हरताल ये दो धातु विष हैं अर्थात् खानसे निकलनेवाले पार्थिव विष हैं ॥ ९ ॥

(वक्तव्य) फेणाश्मभस्म कई संखियेको मानते हैं।

कंदविष ।

कालकूटवत्सनाभसर्षपकपालककर्दमकवैराटकमुस्तकशृंगीविषप्रपौंडरीक-मूलकहालाहलमहाविषकर्कटकानीति त्रयोदश कंदविषाणि । इत्येवं पंचपंचाशत् स्थावरविषाणि भवंति ॥ १० ॥

कालकूट, बत्सनाभ, सर्षप, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृंगीविष प्रपौंडरीक, मूलक, हालाहल, महाविष और कर्कटक ये तेरह कंदविष हैं इस प्रकार मूलसे आदि लेकर कंदपर्यंत सब ५५ प्रकारके स्थावर विष होते हैं ॥ १० ॥

(वक्तव्य) भावमिश्रजीने अपने भावप्रकाशमें विषोंकी गणना यूँ लिखी है श्लोकः "वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः।सौराष्ट्रिकः शृंगिकश्च कालकूटस्तथैवच। हलाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव" ॥ १ ॥ अर्थात् बत्सनाभ, हारिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृंगी (सींगीमोहरा), कालकूट हलाहल और ब्रह्मपुत्र ये ९ विषके भेद हैं ऐसा लिखा है और इनके लक्षण भी लिखे हैं इनके सिवाय उपविष भी लिखे हैं जैसे "अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकम् । गुंजाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविष जातयः" अर्थात् आकका दूध थोहरका दूध कलिहारी कनेर चिरमठी (सुपेद) अफीम और धतूरा ये सात उपविष हैं ।

चत्वारि वत्सनाभानि मुस्तके द्वे प्रकीर्तिते ।
षट्चैव सर्षपाण्याहुः शेषाण्येकैकमेव तु ॥ ११ ॥

इनमें बत्सनाभ चार प्रकारका होता है और मुस्तक दो प्रकारका तथा सर्षप छह प्रकारका और शेष सब एक एक प्रकारकेही होतेहैं ॥ ११ ॥

इन विषोंके उपद्रव ।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च । जृंभांगोद्वेष्टनश्वासा ज्ञेयाः पत्रविषेण तु ॥ १२ ॥ मुष्कशोफः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च । भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मोह एव च ॥ १३ ॥ त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवंति हि । आस्यदौर्गंध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ १४ ॥ फेणा-

गेमः क्षीरविषैर्वि ड्भेदो जिह्मजिह्वता । हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥ १५ ॥ प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् । कंदजानि तु तीक्ष्णानि तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ १६ ॥

मूल विषोंके खाने आदिके पदार्थोंमें उपयोग हो जानेसे उद्वेष्टन (हडफूटन प्रलाप) और मोह (मूर्च्छा) होजाती है । तथा पत्र विषसे जँभाई जादे आना और अंगोंका उद्वेष्टन होता है ॥ १२ ॥ फलके विषसे अंड कोशोंमें सोजा दाह और अन्नसे द्वेष हो जाता है और पुष्पके विषसे वमन होना पेट अफरना और मोह ये लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥ छालके विषसे सार और निर्यासके विषके उपयोगमें आनेसे मुहमें दुर्गंधि कठोरता शिरमें पीडा मुहसे कफ गिरना ये लक्षण होजातेहैं ॥ १४ ॥ दूधके विषसे मुहसे झाग आना मलमें भेदन हो जाना और जिह्वामें ऐंठनसी होना ये लक्षण होते हैं और धातुके विषसे हृदयमें पीडा मूर्च्छा और तालुमें दाह (जलन) होती है ॥ १५ ॥ ये उपरोक्त विष प्रायः कालांतरमें मृत्युकारक होतेहैं और कंदविष तीक्ष्ण होतेहैं उनके लक्षण हम विस्तारपूर्वक कहते हैं ॥ १६ ॥

कंदविषोंके उपद्रव ।

स्पर्शाज्ञानं कालकूटे वेपथुः स्तंभ एव च । ग्रीवास्तंभो वत्सनाभे पीतविण्मूत्रनेत्रता ॥ १७ ॥ सर्षपे तालुवैगुण्यमानाहो ग्रंथिजन्म च । ग्रीवादौर्बल्यवाक्संगौ पालकेऽनुमतौविह ॥ १८ ॥ प्रसेकः कर्दमाख्ये तु विड्भेदो नेत्रपीतता । वैराटकेनांगदुःखं शिरोरोगश्च जायते ॥ १९ ॥ गात्रस्तंभो वेपथुश्च जायते मुस्तकेन तु ॥ शृंगीविषेणांगसाददाहोदरविवृद्धयः ॥ २० ॥ पुंडरीकेन रक्तत्वमक्ष्णो वृद्धिस्तथोदरे । वैवर्ण्यं मूलकैश्छर्दिर्हिक्काशोफप्रमूढताः ॥ २१ ॥ चिरेणोच्छ्वसिति श्यावो नरो हालाहलेन वै।महाविषेण हृदये ग्रंथिशूलोद्गमौ भृशम् ॥ २२ ॥ कर्कटेनोत्पतत्यूर्द्धं हसन्दंतान्दशत्यपि ।कंदजान्युग्रवीर्याणि प्रयुक्तानि त्रयोदश॥ २३॥

कंद विषोंमेंसे " कालकूटसे " स्पर्शका अज्ञान कंप और शरीरका स्तंभित होना ये लक्षण होते हैं । और " वत्सनाभसे " ग्रीवाका स्तंभ और मलमूत्र तथा नेत्रोंमें पीलापन होजाता है ॥ १७ ॥ " सर्षप " विषसे तालुमें विगुणता और अफारा तथा ग्रंथि पैदा होजाती हैं । और " पालक " नाम विषसे ग्रीवा पतली पड़ जाती है और बोलना बंध होजाता है ॥ १८ ॥ " कर्दम " नाम विषसे मल फट जावे

आंखें पीली पडजावें। और "वैराटक" विषसे अंगमें दुःख और शिरमें पीडा होती है ॥ १९ ॥ "मुस्तक" नाम विषसे शरीर अकड जावे तथा कंप होजावे। और "शृंगी" विष (सींगी मोहरे) से अंगोंमें ढीलापन दाह और पेट फूलना ये लक्षण होजाते हैं ॥ २० ॥ "पुंडरीक" (प्रपौंडरीक) विषसे आंखें लाल होजाती हैं और पेट फूल जाता है। और "मूलक" विषसे वर्ण बिगड जाता है वमन होने लगते हैं हिचकी चलती हैं सोजा होता है और मूढता होजाती है ॥ ॥ २१ ॥ "हलाहल" विषसे श्वास रुकरुककर आता है और मनुष्य काला पड़ जाता है। तथा "महाविष" से हृदयमें गांठ पड़जाती है और दारुण शूल होता है ॥ २२ ॥ "कर्कटक" विषसे ऊपर २ को उछलने लगता है और कभी हँस हँसकर दांतोंको चबाने लगता है ऐसे ये १३ कंदविष उग्र वीर्यवाले हैं और इनके उपयोगमें आनेसे उपरोक्त लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

विषमात्रके १० गुण।

सर्वाणि कुशलैर्ज्ञेयान्येतानि दशभिर्गुणैः। रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च। विकाशि विशदं चैव लघ्वपाकि च तत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

कुशल वैद्योंको सभी विष नीचे लिखे हुये इन दश गुणोंसे जानने चाहियें (अर्थात् विष इन दश गुणोंवाला होता है) जैसे १ रूक्ष (अति रूखा) २ उष्ण (गरम) ३ तीक्ष्ण ४ सूक्ष्म (बारीक छिद्रोंमें प्रवेश करनेवाला) ५ आशु (शीघ्र गमन करनेवाला अर्थात् झटपट प्रभाव करनेवाला) ६ व्यवायि (पहले सब शरीरमें व्याप्त होकर पके) ७ विकाशि (संधि बंधनोंको ढीला करनेवाला) ८ विशद (जो पिच्छल न हो) ९ लघु (हलका) १० अपाकी (जो पचे नहीं) ॥ २४ ॥

इन दश गुणोंके कार्य।

तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम्। मानसं मोहयेत्तैक्ष्ण्यादंगबंधांश्छिनत्यपि ॥ २५ ॥ शरीरावयवान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च। आशुत्वादाशु तद्धंति व्यवायात्प्रकृतिं भजेत् ॥ २६ ॥ क्षपयेच्च विकाशित्वाद्दोषान्धातून्मलानपि। वैशद्यादतिरिच्येत दुश्चिकित्स्यं च लाघवात् ॥ २७ ॥ दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम् ॥ २८ ॥

(श्लो० २४) रूक्षादीनां गुणानां लक्षणानि पूर्वं सूत्रस्थाने लिखितानि तत्र द्रष्टव्यानि।

स्थावरं जंगमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम् । सद्योव्यापादयेत्तत्तु ज्ञेयं दशगुणान्वितम् ॥ २९ ॥

विष रूक्षतासे वायुको कोप करता है और उष्णतासे पित्तको और रुधिरको कुपित कर देता है तीक्ष्णतासे बेहोशी करता है और शरीरके बंधोंको तोड़ डालता है ॥ २५ ॥ सूक्ष्मतासे शरीरके भागोंमें प्रवेश कर उनको बिगाड देता है और आशुताके गुणसे शीघ्रही नष्ट कर देता हे और व्यवायी होनेसे सब शरीरकी प्रकृति अपनीसी कर देता है ॥ २६ ॥ विकाशि होनेसे दोष धातु और मलको नष्ट करता है और विशदतासे शक्तिहीन कर देता है (या दस्त जारी कर देता है) और लघुताके कारण चिकित्साके योग्य कठिनतासे होता है असाध्य होजाता है ॥ ॥ २७ ॥ और अविपाकी होनेसे दुर्जर होता है पचता नहीं इससे बहुत समयतक दुःख देता है ॥ २८ ॥ चाहो स्थावर विष हो चाहो जंगम चाहो कृत्रिम जिसमें ये दशगुण होते हैं वह शीघ्रही प्राणोंका नाश कर देता है ॥ २९ ॥

हीनविष (दूषीविष)

यत्स्थावरं जंगमकृत्रिमं वा देहादशेषं यदनिर्गतं तत् । जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ ३० ॥ स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति । वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत् कफावृतं वर्षगणानुबंधि ॥ ३१ ॥

जो स्थावर विष हो या जंगम विष या कृत्रिम (मिलाकर किसी योगसे बनाया हुआ) विष हो वह जो देहमेंसे निकल गया हो पर कुछ रह गया हो अथवा जीर्ण होगया हो (पुराना पड़गया हो या पचगया हो) अथवा विष नाशक औषधोंसे दबाया और नष्ट किया गया हो अथवा दावाग्नि (दवाडसे जला हुवा हो) और प्रचंड वायु तथा धूपसे सूख गया हो ॥ ३० ॥ अथवा स्वभावहीसे जिसमें हीन गुण हों ऐसा विष दूषीविष कहलाता है और स्वल्प पराक्रम होनेसे यह मृत्युकारक भी नहीं होता किंतु कफसे आच्छादित होकर वरसों शरीरमें व्याप्त रहताहै ॥ ३१ ॥

दूषी विष युक्तके लक्षण ।

तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधवैरस्यमुखः पिपासी । मूर्च्छन्वम-

(श्लो० ३१) ननिपातयेत् नमारयेत् कफावृत्तं विलीनश्लेष्मणा आवृतत्वान्न मारयेदित्यर्थः वर्षगणानुबंधि इयत्र यर्ष गुणानुबंधीतिवापाठः चिरकालानुबंधी त्यर्थः (इति नि० स०) अपरेवर्षगुणानु बंधीत्यत्र यत्र यत्रावयवे वर्षति प्राप्नोति तद्गुणानुबंधि तत्र विकारकारी भवतीतिव्याख्यानयंति ।

नाद्गदवाग्विपन्नो भवेच्च दूष्योदरलिंगजुष्टः ॥ ३२ ॥ आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेनिलपित्तरोगी । भवेन्नरो स्तब्धशिरोरुहांगो विलून पक्षैस्तु यथा विहंगः ॥ ३३ ॥ स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् । कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तत्र रूपम् ॥ ३४ ॥

जिसके शरीरमें यह दूषी विष ठैर जाता है उससे पीडित मनुष्यका मल और वर्ण पलट जाता है मुखमें दुर्गंध और विरसता होती है तथा तृषा विशेष होतीहै मूर्च्छा और वमन भी कभी होते हैं गद्गद वाणी होजाती है और दूष्योदर केसे लक्षण होते हैं ॥ ३२ ॥ यदि यह विष आमाशयमें रहता है तो मनुष्य कफ वायुका रोगी होताहै और पक्वाशयमें रहनेसे वात पित्तका रोगी होताहै शिरके बाल और रोंगटे शरीर परसे झड़ जाते हैं जैसे परंदके पर नोचलेनेसे नंगासा होजाताहै ॥ ३३ ॥ यदि यह विष रस आदि धातुओंमें स्थित होजाता है तब उन्ही उन्ही धातुओंमें यथोक्त विकार करता है और शीत वायु तथा अबरके दिनोंमें झट कोपको प्राप्त होता है अब इसके पूर्वरूप सुनो ॥ ३४ ॥

इसके कोपके पूर्वरूप और उपद्रव ।

निद्रा गुरुत्वं च विजृंभणं च विश्लेषहर्षावथवांगमर्दः।ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मंडलकोठमोहान् ॥ ३५ ॥ धातुक्षयं पादकरास्यशोफं दकोदरं छर्दिमथातिसारम् । वैवर्ण्यमूर्छाविषमज्वरान्वा कुर्यात्प्रवृद्धां प्रबलां तृषां वा ॥ ३६ ॥ उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् । गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तां स्तान्विकाराश्च बहुप्रकारान् ॥ ३७ ॥

जब जब इसका कोप होने लगता है उसके पूर्वरूप ये होते हैं निद्रा अधिक आना शरीरभारी होजाना जँभाही अधिक आना अंगोंका टूटना रोमहर्ष और अँगडाई जाद आना ऐसा होनेके पीछे इसके कोपके उपद्रव होने लगते हैं जैसे अन्नमें मद और न पचना और अरुचि होना तथा शरीरपर चकत्ते पड़जाते हैं कोठ (शरीरपर दाफड़से उमड आते हैं) कभी २ मोह (बेहोशी होजाती है) ॥ ३५ ॥ धातुका नाश हाथ पावोंमें सूजन जलोदर वमन अतिसार वर्ण बिगड़ना मूर्च्छा वि-

(श्लो० ३३) विलूनपक्षोलुंचितपक्षः ।

षमज्वर और प्रबल तृषा इत्यादि उपद्रव करता है ॥ ३६ ॥ कोई विष कुपित होकर उन्माद पैदा कर देता है कोई पेट फुला देता है कोई वीर्यको नष्ट कर देताहै कोई वाणीको गद्गद करदेता है कोई कुष्ठ कर देता है और इसी भांतिके अनेक विकार करदेता है ॥ ३७ ॥

दूषी विषकी निरुक्ति ।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वमैरभीक्ष्णशः ।
यस्माद्दूषयते धातून्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

यह (हीन विष) शरीरमें रहाहुवा देश काल और खानपानकी अयोग्यता तथा दिनके सोने इत्यादिके निरंतर अधिक सेवनसे दूषित होकर यह बिष जोकि धातुवोंको दूषित कर देता है इस कारणसे इसका नाम "दूषीविष" है ॥ ३८ ॥

स्थावरविषके ७ वेग ।

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे तु प्रथमे नृणाम् । श्यावा जिह्वा भवेत्स्तब्धा मूर्च्छा श्वासश्च जायते ॥ ३९ ॥ द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कंडूरुजस्तथा । विषमामाशयप्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ ४० ॥ तालुशोषं तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् । दुर्वर्णे हरिते शूने जायेते चास्य लोचने ॥ ४१ ॥ पक्वाशयगते तोदो हिक्का कासोऽन्त्रकूजनम् । चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम् ॥ ४२ ॥ कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे । सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना ॥ ४३ ॥ षष्ठे प्रज्ञाप्रणाशश्च भृशं वाप्यतिसार्यते । स्कंधपृष्ठकटीभंगः सन्निरोधश्च सप्तमे ॥ ४४ ॥

स्थावरके उपयोग होजानेसे मनुष्योंके सात वेग (दौर) होतेहैं उनमेंसे पहले वेगमें जीभ काली और करडी होजाती है मूर्च्छा और श्वास होता है ॥ ३९ ॥ दूसरे वेगमें कंप (शरीर कांपता है) पसीना आता है दाह खाज होतेहैं । आमाशयमें प्राप्त हुआ विष हृदयमें पीडा करता है ॥ ४० ॥ तीसरे वेगमें तालूमें खुश्की और आमाशयमें दारुण शूल होता है दोनों आंखें विवर्ण हरी हरी सूजी सूजीसी हो जाती हैं (ये तीन वेग आमाशयगत विषमेंही होतेहैं) ॥ ४१ ॥ इसके पीछे जब विष पक्वाशयमें पहुँचता है वहां दरद होता है हिचकी और खांसी होती है

श्लो० ४४) संनिरोधश्च सप्तमे इत्यत्र सन्निरोधः उच्छ्वासस्य इति शेषः (इति डल्हनः)

आँतें बोलती हैं (इसके अगाडी ४ वेग पक्काशय गतविषके हैं) चौथे वेगमें शिर बहुत भारी होजाता है (जिससे शिर झुकजाता है) ॥ ४२ ॥ पाँचवें वेगमें मुँहसे कफ बहने लगता है वर्ण बिगड़जाता है संधियोंमें भेदन होता है सब दोषों (वायु पित्त कफ रक्त) का कोप होता है और पक्काशयमें वेदना होती है ॥ ॥ ४३ ॥ छठे वेगमें बुद्धिका नाश होजाता है और बहुत दस्त आते हैं तथा सातवें वेगमें कंधे पीठ कमर टूटती हैं और श्वास रुकजाता है ॥ ४४ ॥

प्रथमे विषवेगे तु वांतं शीतांबुसेवितम् । अगदं मधुसर्पिर्भ्यां पाययेत समायुतम् ॥ ४५ ॥ द्वितीये पूर्ववद्वांतं पाययेत्तु विरेचनम् । तृतीये गदपानं तु हितं नस्यं तथांजनम् ॥ ४६ ॥ चतुर्थे स्नेहसंमिश्रं पाययेता गदं भिषक् । पंचमे क्षौद्रमधुकक्काथयुक्तं प्रदापयेत् ॥ ४७ ॥ षष्ठेती-सारवत्सिद्धिरवपीडश्च सप्तमे । मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ ४८ ॥

पहले वेगमें तो शीतल जल पिलाकर वमन करावे और शहत घृतके साथ अगद (विष नाशक औषध) पिलावे ॥ ४५ ॥ दूसरे वेगमें पहलेकी भांति वमन कराकर विरेचन भी देसकते हैं फिर तीसरे वेग होनेपर अगद पिलाना नस्य और अंजन करना हित है ॥ ४६ ॥ चौथे वेगमें अगदको घृत मिलाकर पिलावे और पांचवें वेगमें शहत और मुलेठीके क्काथमें मिलाकर अगद औषध पिलावे ॥ ४७ ॥ छठे वेग होनेपर अतिसारकी तरह साधन करे और अवपीडन नस्य देवे । और सातवें वेग होनेपर (असाध्य जान कर यत्न नहीं करे) अथवा (असाध्य कहकर) शिर (कपाल) पर काकके पदका चिह्न शस्त्रसे करके उसपर रुधिर युक्त ताजा मांस रक्खे (इससे कुछ श्वासका रुकाव खुले तो फिर अन्य यत्न करे) ॥ ४८ ॥

विषघ्न यवागू ।

वेगांतरे त्वन्यतमे कृते कर्मणि शीतलाम् । यवागूं सघृतक्षौद्रामिमां दद्यां-द्विचक्षणः ॥ ४९ ॥ कोशातक्योऽग्निकः पाठासूर्यवल्यमृताभयाः । शिरीषः किणिही शेलुर्गिर्य्याह्वा रजनीद्वयम् ॥ ५० ॥ पुनर्नवे हरेणुश्च त्रिकटुः सारिवे बला । एषां यवागूर्निःक्काथे कृता हंति विषद्वयम् ॥ ५१ ॥

(श्लो० ४८) षष्ठे अवपीडश्चदेयः अथवा चकारात्सप्तमेपि देय इति भावार्थः, सप्तमे वेगे असाध्यरूपेपि प्रत्याख्याय प्रतिक्रियां कुर्यात् ।

(श्लो० ४९ से ५१ तक) कोशातकी घोषकः, अग्निकोऽजमोदः, सूर्य्यवल्ली पटोलसदृशपत्रा यस्याःपत्र-रसेनाक्तं मांसं स्विन्नमिव भवति, अन्येसूर्यावर्तमाहुः । किणिही कटभी, शेलुःश्लेष्मातकः, गिर्याह्वा श्वेतकंदः ।

उपरोक्त वेगोंमेंसे किसी वेगके बीचमें उसका यत्न कियेजानेपर घृत और शहतके साथ इस नीचे लिखी यवागूको बुद्धिमान् वैद्य ठंढा करके पिलावे ॥ ४९ ॥ कोशातकी (जंगली तोरी) अग्निक (अजमोद) पाठा सूर्यवल्ली (एक वेल पटोल पत्र जैसी होती है कोई सूर्यावर्त कहते हैं) गिलोय हरीतकी शिरस किणही (कटभी) शेलु (ल्हेसुवा) और गिर्य्याह्वा (श्वेतकंद) और दोनों हलदी ॥५०॥ दोनों प्रकारकी पुनर्नवा हरेणु त्रिकटु दोनों सारिवा और खरेंटी इनके क्वाथमें पकाई हुई यवागू दोनों प्रकारके (स्थावर जंगम) विषोंको नष्ट करती है ॥ ५१ ॥

अजेयघृत ।

मधुकं तगरं कुष्टं भद्रदारुहरेणवः । पुन्नागकैलवालूनि नागपुष्पोत्पलं सिता ॥ ५२ ॥ विडंगं चंदनं पत्रं प्रियंगु ध्यामकं तथा । हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च सारिवे च स्थिरा सहा ॥ ५३ ॥ कल्कैरेषां घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् । विषाणि हंति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ ५४ ॥

मुलेठी, तगर, कूट, भद्रदारु, हरेणु, पुन्नाग, एलवालुक, (कई इसे एलुवा जानते हैं परंतु यह एलुवा कदापि नहीं एलुवा गुवारपाठेके रससे बनाया जाता है और यह छोटे दानेसे होतेहैं) तथा नागकेसर, कमल और मिश्री ॥ ५२ ॥ विडंग चंदन पत्रज प्रियंगु ध्यामक (एक तृण विशेष है) दोनों हलदी दोनों कटेली दोनों सारिवा शालपर्णी सहा (पृश्निपर्णी) ॥ ५३ ॥ इनके कल्कमें सिद्ध किया हुआ घृत अजेय घृत कहलाता है और सब प्रकारके विषोंको नष्ट करता है सर्वत्र शीघ्रही जयको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

विषारिनामक अगद ।

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्द्धं चाधश्च शोधितम् । पाययेतागदं नित्यमिमं दूषीविषापहम् ॥ ५५ ॥ पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी सावरः परिपेलवम् । सुवर्चिका ससूक्ष्मैला तोयं कनकगैरिकम् ॥ ५६ ॥ क्षौद्रयुक्तोऽगदो ह्येष दूषीविषमपोहति । एष नाम्ना विषारिस्तु न चान्यत्रापि वार्यते ॥ ५७ ॥

(श्लो० ५३) पुन्नागः भृंगः पूर्वदेशे प्रसिद्धः इति डल्लनः ।

(श्लो० ५४) अजितं क्वचिदिति नजितं अजितं क्वचित् कस्मिन्नपि स्थावरादावित्यर्थः (इति नि.सं.)

(श्लो०५६) परिपेलवं डल्लनमते तु धान्यकं वाचस्पत्यादयः कैवर्तमुस्तकमाहुः ।

यदि कोई दूषीविषका रोगी (दूष्योदरी आदि) हो तो उसे ठीक स्वेद कराकर वमन विरेचन द्वारा ऊपर नीचेसे शोधनकर नित्य यह दूषी विनाशक अगद पिलावे ॥ ५५ ॥ पिप्पली ध्यामकमांसी (जटामांसी) सावर लोध परिपेलव (धनियां) सुवर्चिका (सज्जी) छोटी इलायची तोय (नेत्रवाला) और सोनागेरू ॥ ५६ ॥ इनसे बनाया हुआ (क्वाथ) अगद औषध शहत मिलाकर पिलावे यह दूषी विषको नाश करता है इसका नाम विषारि (अर्थात् विषका शत्रु) है दूषीविषके सिवाय और विषोंमेंभी देना वर्जित नहीं (अथवा इसके ज्वरादि उपद्रओंमें भी वर्जित नहीं है) ॥ ५७ ॥

ज्वरे दाहे च हिक्कायामानाहे शुक्रसंक्षये । शोफेऽतिसारे मूर्च्छायां हृद्रोगे जठरेऽपि वा ॥५८ ॥ उन्मादे वेपथौ चैव ये चान्ये स्युरुपद्रवाः। यथास्वं तेषु कुर्वीत विषघ्नैरौषधैः क्रियाम् ॥ ५९ ॥

इस विषके उपद्रव रूप ज्वरमें दाहमें हिचकियोंमें अफारेमें वीर्यनाशमें शोथमें अतिसारमें मूर्च्छामें हृदय रोगमें उदर रोगोंमें ॥ ५८ ॥ उन्मादमें कंपमें अथवा अन्य उपद्रव हों उनमें यथा योग्य विष नाशक औषधोंसे (तथा उन रोगोंके प्रयोगोंमें विष नाशक औषधोंके योगसे) यत्न करे ॥ ५९ ॥

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् ।
दूषीविषमसाध्यं तु क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ६० ॥
इति सुश्रुते कल्पस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह दूषीविष जितेंद्रिय मनुष्योंको तात्काल (थोड़े दिन) का हुवा साध्य होता है तथा वर्ष दिन पीछेका याप्य हो जाता है तथा क्षीण और अहितसेवी (बदपरहेज) मनुष्यके असाध्य होता है ॥ ६० ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः भाषाटीकायां कल्पस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो जंगमविषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम जंगम (जीव जंतुवों सर्पादिके) विषके विज्ञान होनेकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

जंगमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडश ।
समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥ १ ॥

हमने जो पहले संक्षेप मात्रसे ऐसा कहा है कि जंगम विषके सोलह अधिष्ठान हैं अब उनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

जंगम विषके अधिष्ठान ।

तत्र दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्रानखमूत्रपुरीषशुक्रलालार्तवमुखसंदंशविशर्द्धितगुदास्थिपित्तशूकशवानीति ॥ २ ॥

जंगम विषके १६ अधिष्ठान ये हैं जैसे दृष्टि[१] श्वास[२] डाढ[३] नख[४] मूत्र[५] विष्ठा[६] [७]वीर्य आर्तव[८] राल[९] (मुखकी लार) मुखसंदंश[१०] विशर्द्धित[११] (गुद वायुका शब्द अर्थात् अपान वायु) गुदा[१२] हड्डी[१३] पित्ता[१४] शूक[१५] (डंक या कांटे या रोम) और शव[१६] (मृत शरीर) ॥ २ ॥

तत्र दृष्टिनिःश्वासविषास्तु दिव्याः सर्पा भौमास्तु दंष्ट्राविषाः ॥ ३ ॥ मार्जारश्ववानरमकरमंडूकपाकमत्स्यगोधाशंबूकप्रचलाकगृहगोधिकाचतुष्पादकीटास्तथान्ये दंष्ट्रानखविषाः ॥ ४ ॥

इनमेंसे दृष्टि और निश्वास विषवाले दिव्य सर्प होते हैं और पृथ्वीके सामान्य सर्पोंके दंष्ट्रा (डाढ) में विष होता है ॥ ३ ॥ बिल्ली कुत्ता बंदर मगर मेंडक (एक भांतिका विषैल होता है) पाकमत्स्य (एक भांतिका मत्स्य) गोधा(गोह या गुहेरा) शंबुक (एक जलजंतु) प्रचलाक (एक भांतिका कीट) गृहगोधा (छिपकली) तथा अन्य चार पैरवाले जंतु इनके डाढ और नखमें विष होता है ॥ ४ ॥

चिपिटपिच्चटककषायवासिकसर्षपवासिकतोटकवर्चःकीटकौंडिल्यकाः शकृन्मूत्रविषाः ॥ ५ ॥ मूषिकाः शुक्रविषाः । लूताश्च लालामूत्रपुरीषमुखसंदंशनखशुक्रार्तवविषाः ॥ ६ ॥

चिपिट पिच्चटक कषायवासिक सर्षपवासिक तोटकवर्च कीटकौंडिल्य ये ऐसे जीव हैं जिनके विष्ठा और मूत्रमें विष होताहै (इनके नामांतर हिंदी भाषामें और नहीं मिलते) ॥ ५ ॥ और कई प्रकारके चूहोंके वीर्यमें विष होताहै । तथा मकड़ीके लार मूत्र पुरीष मुँहके संदंश नख शुक्र और आर्तवमें विष होता है ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) मकडीकी अनेक जातिहैं किसी २ देशमें इतनी बडी मकड़ी होती हैं जिनके नखून होते हैं कइयों के मूत्रमें कइयों के पुरीषमें कइयों के मुखके संदंशमें विष होता है और लारमें तो सभीके विष होता है इत्यादि ।

(वा० २) जंगमस्यत्वाश्रयाः षोडश दृष्टिनिःश्वासस्पर्शदंष्ट्रामुखनखास्थिमूत्रपुरीषशुक्रार्तवलालाशूकपित्तशोणितशवानीति (वृद्धवाग्भटः) अत्र गुदं विशर्द्धितं च विहाय स्पर्शशोणितयोर्ग्रहणम् ।

वृश्चिकविश्वंभरराजीवमत्स्योच्चिटिंगासमुद्रवृश्चिकाश्चालविषाः ॥ ७ ॥ चित्रशिरः सरावकुर्दितशतदारुकारिमेदकसारिकामुखा मुखसंदंशविशर्द्धितमूत्रपुरीषविषाः ॥ ८ ॥ मक्षिकाकणभजलायुका मुखसंदंशविषाः ॥ ९ ॥

बिच्छू विश्वंभर (एक भांतिका कृमि) राजीवमत्स्य उच्चिटिंग और समुद्रका बिच्छू इनके अल अर्थात् पृष्ठभागके डंकमें विष होता है ॥ ७ ॥ चित्रशिर सराब कुर्दित, शतदारुक, अरिमेदक और सारिकामुख इत्यादिके मुख संदंश विशर्द्धित मूत्र और पुरीषमें विष होता है ॥ ८ ॥ मक्खी कणभ और कई भांतिकी जोंक इनके मुखके संदंश (पकड़) में विष होता है ॥ ९ ॥

(वक्तव्य) विश्वंभर उच्चिटिंग चित्रशिर सराब कुर्दित आदि एक प्रकारके कृमि होते हैं उनके नाम आकृति आदि यहां मिलते नहीं ।

विषहतास्थिसर्पकंटकवरटीमत्स्यास्थि चेत्यस्थिविषाणि ॥ १० ॥ शकुलीमत्स्यरक्तराजीचरकीमत्स्याश्च पित्तविषाः ॥ ११ ॥ सूक्ष्मतुंडोच्चिटिंगवरटीशतपदीशूकवलभिकाशृंगीभ्रमराः शूकतुंडविषाः ॥ १२ ॥ कीटसर्पदेहा गतासवः शवविषाः ॥ १३ ॥ शेषास्त्वनुक्ता मुखसंदंशविशेष्वेव गणयितव्याः ॥ १४ ॥

विषसे मरेहुयेकी अस्थि, सर्प, कंटक, वरटीमत्स्य इनकी हड्डी ये अस्थिविष हैं ॥ १० ॥ शकुली मत्स्य रक्तराजी चरकी मत्स्य इनके पित्तमें विष है ॥ ११ ॥ सूक्ष्मतुंड उच्चिटिंग वरटी (चींटी) शतपदी (कनखजूरा) शूकवल (कातरा) भिका शृंगी (कई भृंगी पाठ मानतेहैं) और भ्रमर (भँवरी या भौंरा) इनके शूक (डंक) कांटों तथा तुंड (डंक या मुँह) में विष होता है ॥ १२ ॥ विषयुक्त कीड़े और सर्प मरे पीछे इनके शरीरमें भी विष होता है ॥ १३ ॥ इनके सिवाय जो विषयुक्त जंतु हैं और कहे नहीं गये वे सब मुख संदंश (मुँहसे काटनेके विषवालोंमें ही गिनने और जानने) चाहिये ॥ १४ ॥

विषदूषित तृणजलादि दूषित जलके लक्षण ।

भवंतिचात्र । राज्ञोरिदेशे रिपवस्तृणांबुमार्गान्नधूमश्वसनान्विषेण ।

(वा० ७) वृश्चिकाद्या अलविषाः अलं-वृश्चिकपुच्छस्थकंटकाकारपदार्थे (इति श. स्तो.)

(श्लो० १५) श्वसनः पवनः ।

संदूषयंत्येभिरतिप्रदुष्टान्विज्ञाय लिंगैरभिशोधयेच्च ॥ १५ ॥ दुष्टं जलं पिच्छलमुग्रगंधि फेणान्वितं राजिभिरावृतं च । मंडूकमत्स्यं म्रियते विहंगा मत्ताश्च सानूपचरा भ्रमंति ॥ १६ ॥ मज्जंति ये चात्र नराश्वनागास्ते छर्दिमोहज्वरदाहशोफान् । गच्छंति तेषामपहृत्य दोषान्दुष्टं जलं शोधयितुं यतेत ॥ १७ ॥

यहां श्लोक हैं कि । राजाके शत्रु मार्गमें या देशमें, तृण जल, मार्ग, अन्न, धूम, वायु इनको विषसे दूषित करदेते हैं इन दूषित हुओंको नीचे लिखे लक्षणोंसे जानकर उनके शोधन करनेका यत्न करे ॥ १५ ॥ यदि जल दूषित हो तो वह कुछ गाढा होजाता है और उसमें तीक्ष्ण गंध और झाग होतेहैं लकीरेंसी मालूम देने लगती हैं तथा मेंडक और मछलियां मरी पाई जावें और वहांके पक्षी तथा तटके जीव उन्मत्तसे होकर भ्रमें ये लक्षण दूषित जलके जानने चाहिये ॥ ॥ १६ ॥ इस दूषित जलमें जो मनुष्य घोड़े हाथी न्हावें (या पान करें) वे वमन मूर्च्छा ज्वर दाह और शोथ इन उपद्रवोंको प्राप्त होजाते हैं इसमें वैद्य उन विषके उपद्रव जुष्ट जीवोंके निर्विष होनेका उपायकर और जलकी शुद्धिका यत्न करे॥ १७॥

जलके शोधनका प्रकार !

धवाश्वकर्णासनपारिभद्राः सपाटलाः सिद्धकमोक्षकौ च । दग्धाः सराजद्रुमसोमवल्कास्तद्भस्म शीतं विंतरेत्सरःसु ॥ १८ ॥ भस्मांजलिं चापि घटे निधाय विशोधयेदीक्षितमेवमंभः ॥ १९ ॥

धव अश्वकर्ण (पीपलकेसे पत्रवाला पूर्व देशमें वृक्ष होता है) विजैसार पारिभद्र (फरहद) पाटला सिद्धक (सिन्दुवार) मोखा और किरमाला तथा सोमवल्क (सुपेद खैर) इन्हें जलाकर इनकी शीतल भस्म सरोवरों (नदियों कूपों) में डाल दे ॥ १८ ॥ और थोड़ा जल चाहिये तो घड़ा भरकर उसमें एक अंजलीभर भस्म घोलकर रख दे जब सब भस्म नीचे बैठकर साफ जल होजावे उसे शुद्ध जाने और पीने आदिके काममें लावे ॥ १९ ॥

विषदूषित पृथ्वी ।

क्षितिप्रदेशं विषदूषितं तु शिलास्थलीं तीर्थमथेरिणं वा । स्पृशंति गात्रे-

(श्लो० १८) सिद्धकः सिन्धुवारः, डल्लनमते तु रोहिणीसदृशपत्रः पूर्वदेशे प्रसिद्धः ।
(श्लो० १९) घटे द्रोणप्रमितेजले भस्म अंजलिं चतुःपलं निधाय शोधयेदिति ।
(श्लो० २०) ईरिणं ऊषरं इति डल्लनः अन्येतु, ईरयंति गच्छंति येन तत् ईरिणं मार्गमित्यर्थ इत्याहुः ।

णं तु येन येन गोवाजिनागोष्ट्रखरा नरा वा । तच्छूनतां यात्यथ दह्यते च विशीर्यते रोमनखस्तथैव ॥ २० ॥

यदि पृथ्वी विषदूषित होतो उसकी शिला स्थल (स्थान) घाट तथा रस्ता (सडक) ऐसी होती हैं जिनसे बैल घोड़े हाथी ऊंट गधे तथा मनुष्य जो जो जिस शरीरसे उसे स्पर्श करें वही अंग या तो सूज जावे या जलने लगे अथवा वहांके बाल झड़ने लगें या नखून फटने लगे ॥ २० ॥

तत्राप्यनंतां सह सर्वगंधैः पिष्ट्वा सुराभिर्विनियोज्य मार्गम् ।
सिंचेत्पयोभिस्तु मृदन्वितैस्तं विडंगपाठाकटभीजलैर्वा ॥ २१ ॥

ऐसा होनेपर अनंता (जवासे) और सर्वगंध इन्हें मद्यमें पीसकर (घोलकर) मार्ग (सडक) पर छिड़क देवे अथवा बँबईकी मिट्टी पानी घोलकर छिड़के अथवा विडंग पाठा और कटभी इनके जलसे खूब छिड़क देवे ॥ २१ ॥

विष युक्त तृण ।

तृणेषु भक्तेषु च दूषितेषु सीदंति मूर्च्छंति वमंति चान्ये ।
विड्भेदमृच्छंत्यथवा म्रियंते तेषां चिकित्सां प्रणयेद्यथोक्तम् ॥ २२ ॥

यदि तृण विष युक्त दूषित हो तो उसके खानेसे घोड़े हाथी थक जावें मूर्च्छित हो जावें वमन करनेलगें पेट चल जावे (मलफट जावे) अथवा मर जावें ऐसा होनेपर इनकी यथोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

विषघ्न वाद्य लेप ।

विषापहैर्वाप्यगदैर्विलिप्य वाद्यानि चित्राण्यपि वादयेत । तारः सुतारः ससुरेंद्रगोपः सर्वैश्च तुल्यः कुरुविंदभागः ॥ २३ ॥ पित्तेन युक्तैः कपिलान्वयेन वाद्यप्रलेपो विहितः प्रशस्तः । वाद्यस्य शब्देन हि यांति नाशं विषाणि घोराण्यपि यानि संति ॥ २४ ॥

विष नाशक द्रव्योंसे बाजों (दुंदुभी आदिको) लेपन करके उन्हें बजावे इनके लेपकी औषधी इस भांति बनावे कि तार (चांदीका बुरादा) और सुतार (पारा) इंद्रगोप (वीर वहोटी) इन सबके समान कुरुविंद (मोथा या हिंगलू) डाले॥२३॥

(श्लो० २१) अनंता दुरालभा, सर्वगंध इति चातुर्जातककर्पूरकंकोलागुरुकुंकुमम् । लवंगसहितं चैव सर्वगंधं प्रकीर्तितम् ॥ इति वाचस्पत्ये, मृदन्वितैरित्यत्र वल्मीकमृदन्विताभिरद्भिः (इति नि० सं०) पयोभिरद्भिः।

(श्लो० २३) तारः रूप्यं, सुतारः पारदः (इति नि० सं०) कुरुविंदः मुस्तायां कुल्माषे हिंगुले पद्मरागे चेति (श० स्तो०) परंत्वत्र मुस्तोग्राह्यः ।

और कपिलाके पित्तमें मिलाकर बाजों पर लेप करदेवे इनके शब्दसे घोर विष (के षरमाणु) नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

विषयुक्त धूम और वायु तथा इनकी शुद्धि ।

धूमेऽनिले वा विषसंप्रयुक्ते खगाः श्रमार्ताः प्रपतंति भूमौ । कासप्रतिश्यायशिरोरुजश्च भवंति तीव्रा नयनामयाश्च ॥ २५ ॥ लाक्षाहरिद्रातिविषाभयाब्दाहरेणुकैलादलवल्ककुष्टम् । प्रियंगुकांचाप्यनले निधाय धूमानिलौ चापि विशोधयेत ॥ २६ ॥

विषयुक्त धुवां अथवा वायु विषयुक्त हो तो उससे आकाशके उड़नेवाले पक्षी व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरने लगते हैं और मनुष्योंको खांसी जुखाम शिरमें पीड़ा और दारुण नेत्रके रोग होजाते हैं ॥ २५ ॥ ऐसा होनेमें लाख हलदी अतीस हरीतकी, नागरमोथा, हरेणु, इलायची, दल (पत्रज), वल्क (लोध या दालचीनी). (और कई एळा, दलवल्कको इलायचीके पत्ते और छाल कहते हैं) तथा कूट, प्रियंगु इन्हें अग्निमें डालकर धुवां करके धूम और वायुकी शुद्धि करे ॥ २६ ॥

विषकी उत्पत्ति ।

प्रजामिमामात्मयोनेर्ब्रह्मणः सृजतः किल । अकरोदसुरो विघ्नं कैटभो नाम दर्पितः ॥ २७ ॥ ततः क्रुद्धस्य वै वक्त्राद्ब्रह्मणस्तेजसोनिधेः । क्रोधो विग्रहवान्भूत्वा निःपपाताथ दारुणः ॥ २८ ॥ स तं ददाह गर्जतमंतकाभं महाबलम् । ततोऽसुरं घातयित्वा तत्तेजोऽवर्द्धताद्भुतम् ॥ २९ ॥

जिस समय सृष्टिकी आदिमें स्वयंभू ब्रह्माजी इस संसारको रचने लगे उस समय कैटभ नाम असुर मदमें दर्पित होकर विघ्न करने लगा ॥ २७ ॥ उस समय तेजके निधान श्री ब्रह्माजीके क्रोध होनेपर उनके मुखसे साक्षात् क्रोध दारुण शरीररूप धारणकर पृथ्वीमें पडा (अर्थात् उनके चेहरेसे क्रोध टपका) ॥ २८ ॥ वह क्रोध तीक्ष्णरूप धारण करके उस कैटभ नाम असुरको जो महा बलवान् अंतक यमराजके समान गर्जता था दग्धकरता भया फिर उस असुरको मारकर वह विष तेजरूप होकर अद्भुत रीतिसे बढता भया ॥ २९ ॥

विषकी निरुक्ति आदि ।

ततो विषादो देवानामभवत्तं निरीक्ष्य वै । पिषादर्जननत्वाच्च विषमित्य-

श्लो० २८) विग्रहवान् भूत्वा शरीरं धारयित्वा विग्रहः देहः इति (श. स्तो.) ।

भिधीयते ॥ ३० ॥ ततः सृष्ट्वा प्रजाः शेषं तदा तं क्रोधमीश्वरः । विन्यस्तवान्स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ३१ ॥ यथाव्यक्तरसं तोयमंतरिक्षान्महीगतम् । तेषु तेषु प्रदेशेषु रसं तं तं नियच्छति ॥ ३२॥ एवमेवं विषं यद्यद्द्रव्यं व्याप्यावतिष्ठते । स्वभावादेव तं तस्य रसं समनुवर्तते ॥ ३३ ॥

उसको देखकर देवताओंको बडा विषाद उत्पन्न हुवा । जो कि विषाद पैदा करनेवाला होनेसे इसका नाम " विष " होगया ॥ ३० ॥ फिर ब्रह्माजी शेष रही प्रजाको उत्पन्न करके कई स्थावर और जंगम पदार्थोंमें उस क्रोधरूप विषको स्थापन करते भये (अर्थात् बहुतसे स्थावर जंगम पदार्थोंमें उसे स्थान दिया) ॥ ॥ ३१ ॥ जैसे आकाशका अव्यक्तरस जल पृथ्वीमें प्राप्त होकर जैसे २ प्रदेशों (पदार्थोंमें) प्रविष्ट और सहकारी होताहै वैसेही वैसे रसको ग्रहण करता है ॥ ॥ ३२ ॥ इसी भांति यह विषभी जिस जिस द्रव्यमें व्याप्त होकर रहता है स्वभावसेही उसी उसके रसका अनुकरण करता है ॥ (अर्थात् उसीकासा रस ग्रहण करलेता है ॥ ३३ ॥

विषे यस्माद्गुणाः सर्वे तीक्ष्णाः प्रायेण सन्ति हि । विषं सर्वमतो ज्ञेयं सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ ३४ ॥ ते तु वृत्तिं प्रकुपिता जहति स्वां विषार्दिताः । नोपयाति विषं पाकमतः प्राणान्रुणद्धि च ॥ ३५ ॥ श्लेष्मणावृतमार्गत्वादुच्छ्वासोऽस्य निरुध्यते । विसंज्ञः सति जीवेपि तस्मात्तिष्ठति मानवः ॥ ३६ ॥

जोकि विषमें सब गुण प्रायः तीक्ष्ण हैं इससे विष सब दोषों (वायुपित्त कफ और रक्त) का कोप करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥ विषसे पीडित हुए वे (वातादि) अपनी प्रकृतिको त्याग देते हैं (अर्थात् अपने २ कार्य नहीं कर सकते) और विष पाकको प्राप्त नहीं होता (पचता नहीं) इससे प्राणोंको रोंक देता है ॥ ३५ ॥ कफसे मार्ग रुकनेसे (विष पीडितका) श्वास रुकजाता है (श्वास आना बंध होजाता है) इससे वह मनुष्य जीवयुक्त होनेपरभी विसंज्ञ (बेहोश) (काष्ठवत्) पड़ा रहता है (जिसे साधारण लोग मुरदा जान लेते हैं) ॥ ३६॥

(श्लो० ३५) ते प्रकुपिता वातादयः स्वां वृत्तिंधातुप्रस्यंदनादिकां रागपक्त्यादिकां संधिसंश्लेष्मणादिकांच त्यजंति इति डल्हनः ।

शुक्रवत्सर्वसर्पाणां विषं सर्वशरीरगम् । क्रुद्धानामेति चांगेभ्यः शुक्रं निर्मथनादिव ॥ ३७ ॥ तेषां बडिशवद्दंष्ट्रास्तासु सज्जति चागतम् । अनुद्धृता विषं तस्मान्न मुंचन्ति च भोगिनः ॥ ३८ ॥

जैसे पुरुषोंका वीर्य सब शरीरमें व्याप्त है वैसेही सर्पोंके सब शरीरमें विष व्याप्त रहता है और जैसे स्त्री दर्शनादिके हर्षसे वह वीर्य सब शरीरमेंसे निचुडकर वीर्यवाहिनी शिराओंमें प्राप्त होजाता है वैसेही क्रोधसे सर्पोंका विषभी सब शरीरमेंसे डाढमें आकर प्राप्त होजाता है ॥ ३७ ॥ और सर्पोंकी डाढ बडिश अर्थात् मछली पकड़नेके कांटेके समान होती है उनमें आकर स्थित हो जाता है इसी कारणसे बिना उद्धृत हुये(बिना क्रोध किये) (अथवा अनुद्धृत हुये विना काटे बिना सर्प विष नहीं छोडते) ॥ ३८ ॥

यस्मादत्यर्थमुष्णं च तीक्ष्णं च पठितं विषम् । अतः सर्वविषेषूक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ३९ ॥ मंदं कीटेषु नात्युक्तं बहुवातकफं विषम् । अतः कीटविषे चापि स्वेदो न प्रतिषिध्यते ॥ ४० ॥

जो कि विष अत्यंत उष्ण और तीक्ष्ण कहा है इससे सब विषोंमें प्रायः शीतल परिषेक करना (ठंढे छिडके देना) (उचित) कहा है ॥ ३९ ॥ और कीड़ोंका विष बहुत (तेज) नहीं होता प्रायः मंद होता है और बहुतवायु कफवाला होता है इससे कीड़ोंके विषमें प्रायः स्वेद (सेकने) का निषेध नहीं है (परंतु अपि शब्दसे कई कीड़ोंके विषमें स्वेदका निषेध भी है) ॥ ४० ॥

(वक्तव्य) जिनमें वायु कफ अधिक हो उनमें स्वेद कराना हितही होता है वात कफके विषमें प्रायः शोथ होता है तौ शोथ युक्तमें स्वेद हित है ॥

विष युक्तके मांसका निषेध ।

कीटैर्दष्टानुग्रविषैः सर्पवत्समुपाचरेत् ॥ ४१ ॥ स्वभावादेव तिष्ठेत्तु प्रहारादंशयोर्विषम् । व्याप्य सावयवं देहं दिग्धविद्धाहिदष्टयोः ॥ ४२ ॥ लौल्याद्विषान्वितं मांसं यः खादेन्मृतमात्रयोः । यथाविषं स रोगेण क्लिश्यते म्रियतेपि वा ॥ ४३ ॥ अतश्चाप्यनयोर्मांसमभक्ष्यं मृतमात्रयोः । मुहूर्तात्तदुपादेयं प्रहारादंसवर्जितम् ॥ ४४ ॥

(श्लो० ३८) अनुद्धृता अननुयोजिता अनुच्छलिता इति यावत् । इति (नि० सं०) कीटेषु मंदविषं अति न उक्तं किंतु बहुवातकफं विषंभवति अतःकीटविषे स्वेदो न प्रतिषिध्यते अपिशब्दात्केषुचित् कीटेषु चापि स्वेदस्य निषेधइत्यर्थः ।

यदि तीक्ष्ण विषवाले कीड़ोंने काटा हो तो उसकी चिकित्सा सर्पके समान करनी चाहिये ॥ ४१ ॥ विषका स्वभाव है कि यह प्रहार (काटने) की जगहसे समस्त शरीरमें व्याप्त होकर फिर कंधोंके स्थानमें आकार स्थित होजाता है इस लिये दिग्ध (विष बुझे या विषयुक्त शस्त्र) से विंधे हुए तथा सर्पके काटे हुए मृतमात्र-के मांसको जो लोलुपताके कारणसे खाजावे वह विषकेसे उपद्रव क्लेशित होता है अथवा मरजाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इससे इन दोनों कारणोंसे मृतमात्र (पशु) का मांस भक्षण करने योग्य नहीं होता है और जो प्रहार (विषयुक्त शस्त्रकी चोट तथा सर्पादिकके काटने) से मुहूर्त पीछेतक देखे कि (तीक्ष्ण विष नहीं है पशु मृत या मूर्च्छित नहीं हुवा) तो उसके कंधोंको त्यागकर शेष मांस ग्रहण कर लेवे ॥ ४४ ॥

विषयुक्तके लक्षण ।

सवातं गृहधूमाभं पुरीषं योऽतिसार्यते आध्मातोऽत्यर्थमुष्णास्रोविवर्णः सादपीडितः । उद्वमत्यर्थं फेणं च विषपीतं तमादिशेत् ॥ ४५ ॥ न चास्य हृदयं वह्निर्विषजुष्टं दहत्यपि । तद्धि स्थानं चेतनायाः स्वभावाद्व्याप्य तिष्ठति ॥ ४६ ॥

वायु युक्त घरके धुवांके वर्ण जो मल त्याग करे और पेट फूल जावे अत्यंत गरम रुधिर हो अथवा नेत्रसे बहुत गरम आंसू गिरें वर्ण बिगड़ जावे तथा अत्यंत शक्तिहीन होजावे और मुँहसे झागोंका वमन होवे तो उसे जानले कि इसने विष पिया (या खाया) है ॥ ४५ ॥ इस विषसे मरे हुए मनुष्यके हृदयको अग्नि ठीकर दग्ध नहीं करता (अर्थात् उसका हृदय दाहके समय अग्निसे पूरापूरा नहीं जलता) क्योंकि यह हृदय चेतनाका स्थान है विष स्वभावसे यहां व्याप्त होकर स्थित हो जाता है ॥ ४६ ॥

असाध्य विष ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु । याम्ये सपित्रे परिवर्जनीया ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दष्टाः ॥ ४७ ॥ दार्वीकराणां विषमाशु घाति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवंति । अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालप्रमेहेष्वथ गर्भिणीषु ॥ ४८ ॥ वृद्धातुरक्षीणबुभुक्षितेषु रूक्षेषु भीरुष्वथ

(श्लो० ४५) उष्णास्रः उष्णरुधिरः, अथवा अस्रं नयनजलं तेन उष्णाश्रुपातः इति वा, विषपीतमित्यत्र विषजुष्टं तमादिशेत् इति वा पाठः ।

(श्लो० ४९) अस्य श्लोकस्योत्तरार्द्धः अग्रिमार्द्धेन सहान्वेतव्यः ।

दुर्दिनेषु । शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न संभवंति ॥ ॥ ४९ ॥ शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ ५० ॥

जिन्हें पीपलके नीचे देवस्थान मरघट बँबई इन स्थानोंमें सर्प काटे तथा संध्याके समय तथा भरणी और मघानक्षत्रमें काटे अथवा मर्मस्थानोंमें काटे (वह असाध्य होते हैं) ॥ ४७ ॥ दार्वीकर (जिनका चमचेसा फण हो) उनका विष शीघ्र मृत्युकारक होता है और उष्णकाल (गरमी) में सब विष दुगुने प्रभाववाले होजाते हैं । और अजीर्ण रोगी पित्त बढे हुए धूपसे पीडित बालक प्रमेहवाले और गर्भवती स्त्री (इनमेंभी विषका प्रभाव विशेष होता है) ॥ ४८ ॥ वृद्धरोगी क्षीण भूंखा रूखा डरपोक इनमें तथा अबरके दिनोंमेंभी विष (अधिक प्रभाववाला) असाध्य होता है और शस्त्रसे काटनेपर जिस विषपीडितके रुधिर नहीं निकले तथा कोड़ा चाबुक आदि मारनेसे रेखा नहीं उपड़े और ठंढा पानी डालनेसे रोंगटे खड़े नहों उस विषयुक्तको असाध्य जाने और त्याग देवे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

जिह्वा सिता यस्य च केशशातो नासावभंगश्च सकंठभंगः । कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च स वर्जनीयः ॥ ५१ ॥ वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य । दंष्ट्रानिपाताः सकलाश्च यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ॥ ५२ ॥ उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथवा विवर्णं । सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्याच्च तं कर्म न तत्र कुर्यात् ॥ ५३ ॥

इति सुश्रुते कल्पस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जिसकी जीभ असिता (काली) पड़जावे (अथवा सिता सुपेद हो जावे) और बाल गिरने लगें नाक मुड़जावे अवाज घोंघी पड़जावे और डंककी जगह ऊदा शोथ होवे और जाबड़ा बंध हो जावे वह विषयुक्त (असाध्य और) त्यागने योग्य होता है ॥ ५१ ॥ जिसके मुँहसे कफकी बत्तीसी गाढी २ गाठें गिरे और मुख तथा गुदा लिंगसे रुधिर झिरे जिसके सब डाढें बैठी हों अर्थात् भर मुँह काठा हो (अथवा जिसके सब दांत गिर पड़ें) उसे भी वैद्य त्याग देवे ॥ ५२ ॥ जिसे अत्यंत उन्मत्तता हो और अत्यंत उपद्रव होवे और कंठस्वर हीन होजावे (शब्द न निकले) और वर्ण बिगड़ जावे जिसके मृतककेसे लक्षण होने लगें जिसके वेग मंदे पड़ जावें उसे भी त्याग दे वहां कर्म न करे (औषधादिक नहीं देने चाहियें) ॥ ५३ ॥

इति श्रीपं० मुरलीधरशर्मराजवैद्यविरचितसुश्रुतभाषा-
टीकायां कल्पस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः सर्पदष्टविषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम सर्पके डसे (काटे हुयेके विष विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं) ॥

धन्वंतरिं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् । पादयोरुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ १ ॥ सर्पसंख्यां विभागं च दष्टलक्षणमेव च । ज्ञानं च विषवेगानां भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

सब शास्त्रोंमें विशारद परम बुद्धिमान् श्रीधन्वंतरिजीके दोनों चरणोंको पकड़कर सुश्रुत पूछने लगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! आप सर्पोंकी संख्या (कितने प्रकारके सर्प होतेहैं) और उनके विभाग (अर्थात् भेद) और डसे हुयेके लक्षण तथा विषके वेगोंका ज्ञान (ये सब बातें मेरे प्रति) वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

दिव्यसर्प ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः ॥ ३ ॥ असंख्या वासुकिमुखा विख्यातास्तक्षकादयः । महीधराश्च नागेंद्रा हुताग्निसमतेजसः ॥ ४ ॥ ये चाप्यजस्रं गर्जंति वर्षंति च तपंतिच।ससागरा गिरिद्वीपा यैरियं धार्यते मही ॥ ५ ॥ क्रुद्धा निश्वासदृष्टिभ्यां ये हन्युरखिलं जगत् । नमस्तेभ्योऽस्तिनो तेषां कार्यं किंचिच्चिकित्सया ॥ ६ ॥

सुश्रुतजीके इस वचनको सुनकर वैद्योंमें श्रेष्ठ श्रीधन्वंतरि भगवान् बोले ॥ ३ ॥ कि वासुकी आदिक और तक्षकादिक जो (दिव्यसर्प) विख्यातहैं वे असंख्यातहैं जो पृथिवीको धारण करनेवाले नागोंके राजा और जलती हुई अग्निके समान तेजवालेहैं ॥ ४ ॥ वे निरन्तर गर्जना करतेहैं वर्षतेहैं (विषादि बरसातेहैं अर्थात् विषकी वर्षा करसकतेहैं) और तपतेहैं या जगत्को संतापयुक्त कर सकतेहैं जिन्होंने यह पृथ्वी समुद्र तथा द्वीप सहित धारण कर रक्खी है ॥ ५ ॥ ये क्रोध होकर दृष्टि और श्वास (फुंकार) से सारे संसारको नष्ट कर देवें इनको नमस्कार हो इनकी चिकित्सासे कुछ काम नहीं ॥ ६ ॥

पार्थिव सर्पोंके भेद ।

ये तु दंष्ट्राविषा भौमा ये दशंति च मानुषान् । तेषां संख्यां प्रवक्ष्यामि

(श्लो० ५) अजस्रं निरंतरम् ।

यथावदनुपूर्वशः ॥ ७ ॥ अशीतिस्त्वेवं सर्पाणां भिद्यते पंचधा तु सा । दर्वीकरा मंडलिनो राजिमंतस्तथैव च ॥ ८ ॥ निर्विषा वैकरंजाश्चत्रिविधास्ते पुनः स्मृताः । दर्वीकरा मंडलिनो राजिमंतश्च पन्नगाः ॥ ९ ॥

जो पृथिवीके सर्प जिनकी डाढमें विष होता है और जो मनुष्योंको काटते हैं उनकी यथावत् संख्या (गणना) वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ सर्प सब ८० प्रकारके होते हैं और उनके पाँच भेद इस प्रकारसे हैं कि (१) दर्वीकर (फणवाले) (२) मंडली (मंडल चकद्दे या टमकीवाले) (३) राजिमंत (लकीरवाले धारीदार) (४) निर्विष (विषरहित या स्वल्प विषवाले) (५) वैकरंज (दूसरी जातिकी सर्पिणीमें दूसरी जातिके सर्पसे पैदा होनेवाले परंतु ये सब तीनही प्रकारके होते हैं यातो दर्वीकर (फणवाले) या मंडली (चकद्देवाले) या राजिमंत (धारीदार) ॥ ८ ॥ ९ ॥

तेषु दर्वीकरा ज्ञेया विंशतिः षट् च पन्नगाः । द्वाविंशतिर्मंडलिनो राजिमंतस्तथा दश ॥ १० ॥ निर्विषा द्वादश ज्ञेया वैकरंजास्त्रयस्तथा । वैकरंजोद्भवाः सप्त चित्रा मंडलिराजिलाः ॥ ११ ॥

इनमें दर्वीकर २६ प्रकारके होते हैं और मंडली सर्प २२ प्रकारके तथा राजीमंत १० प्रकारके होते हैं ॥ १० ॥ निर्विष सर्प १२ प्रकारके और वैकरंज तीन प्रकारके होते हैं तथा इन वैकरंजोंसे उत्पन्न हुए चित्र (चितकबरे) मंडली और धारीदार ये सात ७ और होते हैं (ऐसे ये सब मिलकर८०प्रकारके सर्प हैं)॥११॥

दंशके भेद ।

पदाभिमृष्टा दुष्टा वा क्रुद्धा ग्रासार्थिनोपि वा । ते दशंति महाक्रोधास्तद्धि त्रिविधमुच्यते ॥ १२॥ सर्पितं रदितं वापि तृतीयमथ निर्विषम् । सर्पांगाभिहतं केचिदिच्छंति खलुतद्विदः ॥ १३ ॥

ये सर्प पांवसे दब जानेसे या दुष्ट होकर क्रोधसे या ग्रासार्थी (काटनेकी इच्छा करके) जो क्रोधसे काटते हैं वह काटना (डसना) तीन प्रकारका होता है ॥१२॥

(श्लो० ८) दर्वीकरा दर्वी काष्ठादिनिर्मिता व्यंजनहारका चमचा इति लोके तद्वत्करः फणो यस्य स ते । (इति श०स्तो०) डल्लनस्तु दार्वीकराः फणावंतः । मंडलिनः फणवर्जिताः । राजिमंतो रेखायुक्ताः । निर्विषा विषरहिता अजगर दुंदुभ्यादयः अथवा निःशब्द ईषदर्थे अतः स्वल्पविषाः । वैकरंजा संकीर्णाः पृथक् जातीयसर्पिण्यां पृथग्जातीयसर्पाभ्यां जाताः (इति नि० सं०) सर्पाणां अशीतिः सा अशीति पंचधाभिद्यते इत्यन्वयः अशीतिः स्त्री अष्टगुणितदशसंख्यान्विते इति (वाचस्पतिः) ।

प्रथम सर्पित दूसरे रदित तीसरे निर्विष और कोई २ विषविद्याके जाननेवाले चौथा भेद सर्वांगाभिहत भी मानते हैं ॥ १३ ॥

इनके लक्षण।

पदानि यत्र दंतानामेकं द्वे वा बहूनि च । निमग्नान्यल्परक्तानि यान्यु-द्धृत्य करोति हि ॥ १४ ॥ चंचुमालकयुक्तानि वैकृत्य करणानि च । संक्षिप्तानि सशोफानि विद्यात्तं सर्पितं भिषक् ॥ १५ ॥ राज्यः सलोहिता यत्र नीलाः पीताः सितास्तथा । विज्ञेयं रदितं तत्तु ज्ञेयमल्प-विषं च तत् ॥ १६ ॥ अशोफमल्पदुष्टासृक्प्रकृतिस्थस्य देहिनः । पदं पदानि वा विद्यादविषं तच्चिकित्सकः ॥ १७ ॥ सर्पस्पृष्टस्य भीरोर्हि भयेन कुपितोऽनिलः । कस्यचित्कुरुते शोफं सर्पांगाभिहतं तु तत् ॥ १८ ॥

"सर्पितके लक्षण" जहां काटे हुएकी जगह एक या दो या कई दांतोंके चिह्न गडे हुएसे मालूम हों और निकलनेपर थोडा रुधिरभी निकले ॥ १४ ॥ और वह दांतोंकी पंक्ति पूरी २ गडीसी मालूम हो तथा इंद्रियादिकमें (शीघ्र) विकार करदे तथा डाढ सम्यक् रीतिसे बैठगई हो तथा कुछ शोथभी हो तो उसे सर्पित कहते हैं (अर्थात् पूरा डसाहुवा कहते हैं) ॥ १५ ॥ "रदितके लक्षण" जिसके दंशकी जगह नीली या पीली या सपेद, लाली लिये (अथवा रुधिर युक्त) लकीरेंसी मालूम हों उसे अल्प विषवाला रदित (झरोंट) समझे ॥ १६ ॥ "अविष दंशके लक्षण" जिसके दंशकी जगह शोथ नहो रुधिर थोडा दुष्ट हुवाहो इंद्रिय और शरीरकी प्रकृतिमें विकार न हो तो चाहो एक या अधिक दांतोंके चिह्न हों पर उसे वैद्य निर्विष दंश समझे ॥ १७ ॥ "सर्पांगाभिहित" उसे कहते हैं कि जो डरपोक मनुष्यके शरीरसे सर्पका स्पर्श होनेसे ही वह भयभीत हो जावे (या उसे भ्रम हो जावे कि मुझे डसा है) तो कईयोंके ऐसा होनेपर भयमात्रहीसे शोथ हो जाता है कुछ २ प्रकृति भी बिगड जाती है तो इसे सर्पांगाभिहत कहते हैं ॥ १८ ॥

व्याधितोद्विग्नदष्टानि ज्ञेयान्यल्पविषाणि तु । तथातिवृद्धबालातिदष्टमल्प-विषं स्मृतम् ॥ १९ ॥ सुपर्णदेवब्रह्मर्षियक्षसिद्धनिषेविते । विषघ्नौषधि-युक्ते च देशे न क्रमते विषम् ॥ २० ॥

व्याधियुक्त और उद्विग्न जो सर्प हो उसके डसे हुये अल्पविष होते हैं तथा अति-वृद्ध और अतिबालक सर्पके काटमें भी सूक्ष्म विष होताहै ॥ १९ ॥ जहां गरुड

देवता ब्रह्मऋषि यक्ष सिद्ध ये वास करते हों तथा जहां विषनाशक औषध (विशेष) हो वहां विषका प्रभाव नहीं होता (या सूक्ष्म होता है) ॥ २० ॥

दर्वीकरादि सर्पोंके लक्षण ।

रथांगलांगलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः । ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥ २१ ॥ मंडलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मंदगामिनः । ज्ञेया मंडलिनः सर्पा ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ २२ ॥ स्निग्धा विविधवर्णाभि स्तिर्यगूर्द्ध्वं तु राजिभिः । चित्रिता इव ये भांति राजिमंतस्तु ते स्मृताः ॥ २३ ॥

जिनके शिरपर रथांग (पहिये) तथा हल छत्र स्वस्तिक (चौराहा या साथिया) तथा अंकुश इनके चिह्न हों तथा फणवाले और शीघ्र चलनेवाले दर्वीकर कहलाते हैं ॥ २१ ॥ जो अनेक भांतिके मंडलों (चकद्दों) से चित्रित हों मोटे हों धीरे चलें वे जलती हुई अग्निकीसी कांतिवाले मंडली नामक सर्प जानने चाहिये ॥ २२ ॥ जो चिकने और अनेक प्रकारकी तिरछी सीधी रेखा (लकीरों) से चित्रितसे प्रतीत होवें उन्हें राजिमंत कहतेहैं ॥ २३ ॥

सर्पोंकी ब्राह्मणक्षत्रियादि जाति ।

मुक्तारूप्यप्रभा ये च कपिला ये च पन्नगाः । सुगंधिनः सुवर्णाभास्ते जात्या ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ २४ ॥ क्षत्रियाः स्निग्धवर्णास्तु पन्नगा भृशकोपनाः । सूर्यचंद्राकृतिच्छत्रलक्ष्य तेषां तथांबुजम् ॥ २५ ॥ कृष्णा वज्रनिभा ये च लोहिता वर्णतस्तथा । धूम्राः पारावताभाश्च वैश्यास्ते पन्नगाः स्मृताः ॥ २६ ॥ महिषद्वीपवर्णाभास्तथैव परुषत्वचः । भिन्नवर्णाश्च ये केचिच्छूद्रास्ते परिकीर्तिताः ॥ २७ ॥

जो सपेद मोती और चांदी जैसे हों तथा जो कपिल (नारंगी) रंगके सुगंधि युक्त हों तथा सुवर्ण (सोनेके रंगके पीले या सुंदर होवें) ब्राह्मण जातिके सर्प समझने चाहिये ॥ २४ ॥ जो चिकने और उग्र कोपवाले तथा सूर्य चंद्रमाकी आकृति और छत्र तथा कमलके चिह्नवाले काले वज्रके समान तथा रक्तवर्ण के

(श्लो० २३) पृथवो विस्तीर्णाः स्थूलावा ।

(श्लो० २६) अंबुजं पद्मं शंखंवा ।

(श्लो० २७) वज्रनिभा वज्रसदृशा हीरकनिभावा ।

(श्लो० २८) द्वीपो हस्ती द्वीपि इतिवा पाठे द्विपीचित्रः ।

हो इन्हें क्षत्रिय जातिका सर्प समझिये और जो धूम्र (धुवांके रंगके धूंधले) हों तथा कबूतरी रंगके हों उन्हें वैश्य जातिका सर्प जाने ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो महिष (भैंसे) और हाथीकेसे वर्णवाले और कठोर (खरदरी त्वचावाले) और कोई भिन्न वर्णके (चितकबरे) सर्प होंवे शूद्र जातिके सर्प कहलाते हैं ॥ २७ ॥

वातादि दोष कोपकारक सर्पोंकी जाति ।

कोपयंत्यनिलं जंतोः फणिनः सर्व एव तु । पित्तं मंडलिनश्चापि कफं चानेकराजयः ॥ २८ ॥ अपत्यमसवर्णाभ्यां द्विदोषकरलक्षणम् । ज्ञेयौ दोषैश्च दंपत्योर्विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ २९ ॥

फणवाले (सब दर्वीकर) मनुष्यों (जीवों) के वायुको कुपित करते हैं और मंडली पित्तको तथा अनेक रेखावाले (राजिमंत) कफको कुपित करते हैं ॥ २८ ॥ और जो दो जातिके मेलसे पैदा हुवे (वैकरंज) हैं वे दो दोषोंको कुपित करते हैं और दो दोषोंको उन्हीं स्त्री पुरुष सर्पों के अनुसार समझना चाहिये जिनके मेलसे वे पैदा होते हैं इसमें अगाडी विशेष वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

विचरनेका समय और अवस्था भेदसे उग्रत्व ।

रजन्याः पश्चिमे यामे सर्पाश्चित्राश्चरंति हि । शेषे सूक्ता मंडलिनो दिवा दर्वीकराः स्मृताः ॥ ३० ॥ दर्वीकरास्तु तरुणा वृद्धा मंडलिनस्तथा । राजिमंतो वयोमध्ये जायंते मृत्युहेतवः ॥ ३१ ॥ नकुलाकुलिता बाला वारिविप्रहताः कृशाः । वृद्धा मुक्तत्वचो भीताः सर्पास्त्वल्पविषाः स्मृताः ॥ ३२ ॥

रात्रीके पिछले भागमें राजिमंत सर्प प्रायः विचरते हैं और शेष (पूर्व भागमें) मंडली और दिनमें दर्वीकर प्रायः फिरा करते हैं ॥ ३० ॥ दर्वीकर चढती उमरमें (पट्ठा) और मंडली वृद्ध (ढलती उमरवाले) तथा राजिमंत मध्य अवस्थावाले मृत्युकारक होते हैं ॥ ३१ ॥ नकुल (नौले) से घबराये या दबाये हुए बालक जलके रहनेवाले दुबले बुड्ढे तथा (काचली छोडते ही) पीले (पुरानी काचली-से ढके हुवे) ये सर्प स्वल्प विषवाले होते हैं ॥ ३२ ॥

दर्वीकरोंके भेद ।

तत्र दर्वीकराः कृष्णसर्पो महाकृष्णः कृष्णोदरः श्वेतकपोतो महाकपोतो

(श्लो० ३०) दंपत्योः तेषां मातृपित्रोः ।

(श्लो०३२) मुक्तत्वचो मुक्तकंचुका इति डल्हनः अन्येतु अमुक्तत्वच इति पठंति ।

बलाहको महासर्पः शंखपालो लोहिताक्षो गवेधुकः परिसर्पः खंडफणः ककुदः पद्मो महापद्मो दर्भपुष्पो दधिमुखः पुंडरीको भ्रुकुटीमुखो विष्किरः पुष्पाभिकीर्णो गिरिसर्प ऋजुसर्पः श्वेतोदरो महाशिरा अलगर्दो आशीविष इति ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इनमेंसे दर्वीकर सर्पोंके ये भेद हैं जैसे कृष्णसर्प (कालासांप) महाकृष्ण कृष्णोदर श्वेतकपोत महाकपोत बलाहक महासर्प शंखपाल लोहिताक्ष गवेधुक तथा परिसर्प खंडफण ककुद पद्म महापद्म दर्भपुष्प दधिमुख पुंडरीक भ्रुकुटीमुख विष्किर पुष्पाभिकीर्ण गिरिसर्प ऋजुसर्प श्वेतोदर महाशिरा अलगर्द और आशीविष (इनके लक्षण स्वरूप आदि कुछ २ इनके नामोंहीसे जानलेने चाहिये विशेष पता नहीं लगसकता) ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मंडलियोंके भेद।

मंडलिनस्तु आदर्शमंडलः श्वेतमंडलो रक्तमंडलश्चित्रमंडलः पृषतो रोध्रपुष्पो मिलिंदको गोनसो वृद्धगोनसः पनसो महापनसो वेणुपत्रकः शिशुको मदनः पालिंहिरः पिंगलस्तंतुकापुष्पः पांडुः षडगोऽग्निको बभ्रुः कषायः कलुषः पारावतो हस्ताभरणश्चित्रक एणीपद इति ॥ ३५ ॥

मंडली सर्पोंके ये भेद हैं जैसे आदर्शमंडल श्वेतमंडल रक्तमंडल चित्रमंडल पृषत रोध्रपुष्प मिलिंदक गोनस वृद्धगोनस पनस महापनस वेणुपत्रक शिशुक मदन पालिंहिर पिंगल तंतुकपुष्प पांडु षडंग अग्निक बभ्रुः कषाय कलुष पारावत हस्ताभरण चित्रक और एणीपद (इनमें आदर्श मंडलादि चारोंको १ और गोनस वृद्धगोनसको १ तथा पनस महापनसको १ समझिये ऐसे ये २२ भेद हुये) ॥ ३५ ॥

राजिमंतोंके भेद।

राजिमंतस्तु पुंडरीको राजिचित्रोंगुलराजिर्बिंदुराजिः कर्दमकस्तृणशोषकः सर्षपकः श्वेतहनुर्दर्भपुष्पकश्चक्रको गोधूमकः किक्किसाद इति॥ ३६॥

राजिमंतके ये भेदहैं कि पुंडरीक राजिचित्रे अंगुलराजि बिंदुराजि कर्दमक तृण शोषक सर्षपक श्वेतहनु दर्भपुष्पक चक्रक गोधूमक किक्किसाद (राजिरेखाओंसे चित्रित ऐसा अंगुलराजि जिसके अंगुल अंगुल पर रेखा हों तथा बिंदुराजि बिंदुरूप रेखा हों ये तीनों १ समझिये ऐसे राजिमंतके दश भेद हुये) ॥ ३६ ॥

निर्विषोंके भेद।

निर्विषास्तु, गलगोली शूकपत्रोऽजगरो दिव्यको वर्षाहिकः पुष्पशकली ज्योतीरथःक्षीरिकापुष्पकोऽहिपातकोन्धाहिको गौराहिको वृक्षेशय इति ॥ ३७ ॥

निर्विष सर्पोंके ये भेद हैं जैसे गलगोली शूकपत्र अजगर दिव्यक वर्षाहिक पुष्पशकली ज्योतीरथ क्षीरिका पुष्पक अहिपातक अंधाहिक गौराहिक और वृक्षेशय (इसमें कई तो दिव्यक वर्षाहिकको १ मानतेहैं कई क्षीरिका पुष्पक एक मानतेहैं ऐसे निर्विषोंके ये १२ भेद हुये) ॥ ३७ ॥

वैकरंजोंके भेद।

वैकरंजास्तु, त्रयाणां दर्वीकरादीनां व्यतिकराज्जाताः तद्यथा माकुलिः पोटगलः स्निग्धराजिरिति ॥ ३८ ॥ तत्र कृष्णसर्पेण गोनस्यां वैपरीत्येन वा जातो माकुलिः। राजिलेन गोनस्यां वैपरीत्येन वा जातः पोटगलः। कृष्णसर्पेण राजिमत्यां वैपरीत्येन वा जातः स्निग्धराजिरिति ॥ ३९ ॥ तेषामाद्यस्य पितृवद्विषोत्कर्षो द्वयोर्मातृवदित्येके ॥ ४० ॥

वैकरंज (दोगले) सर्प इन्हीं दर्वीकर आदि तीनोंके मेलसे पैदा होते हैं वे इस भांति हैं कि माकुलि पोटगल और स्निग्धराजि बस इनमेंसे जो कृष्णसर्प (दर्वीकर) पुरुष और गोनसी (मंडलिनी) स्त्री (सर्पिणी) इनसे अथवा गोनस सर्प और दर्वीकर सर्पिणी इनके मेलसे जो पैदा हुवा हो वह माकुलि कहलाता है। और राजिमंत सर्प और गोनसी सर्पिणी इनके मेलसे अथवा गोनस सर्प और राजिमती सर्पिणीके मेलसे जो पैदा हो वह पोटगल कहलाता है। कृष्णसर्प और राजिमती सर्पिणी अथवा राजिमत सर्प और कृष्णा (दर्वीकर) सर्पिणी इनके मेलसे जो पैदा हो वह स्निग्धराजि कहलाता है ॥ ३९ ॥ इनमेंसे प्रथम माकुलि सर्पके विषका उत्कर्ष पिताके अनुसार होता है और दोनोंका (पोटगल और स्निग्धराजिका) माताके अनुसार ॥ ४० ॥

वैकरंजोद्भवोंके भेद।

त्रयाणां वैकरंजानां पुनर्दिव्येलकरोध्रपुष्पकराजिचित्रकाः प्रोटगलः पुष्पाभिकीर्णो दर्भपुष्पो वेल्लितकः सप्त तेषामाद्यास्त्रयो राजिलवच्छेषाः मंडलिवत्। एवमेतेषां सर्पाणामशीतिरिति ॥ ४१ ॥

(गद्य ४१) येषांमध्ये ये अप्रसिद्धाः सर्पभेदास्ते सर्वे नानादेशवासिभ्यः सर्प हेलिकादिभ्योज्ञेयाः (इति डल्हनः)।

उन तीन वैकरंजोंसे फिर जो सात भेद होते हैं वे ये हैं दिव्येलक रोध्रपुष्पक राजिचित्रक पोटगल पुष्पाभिकीर्ण दर्भपुष्प और वेल्लितक इनमेंसे तीन आदिके राजिमंतोंके तुल्य होते हैं और बाकी मंडलीके तुल्य । इसप्रकार इन सर्पोंके अस्सी (८०) भेद सब हुये ॥ ४१ ॥

(वक्तव्य) इनमें जो कोई नाम दोदोबार आये हैं उन्हें यह समझना कि इस नाम (और लक्षण) वाला वहां भी होता है और दूसरी जगहभी होता है । इनमेंसे प्रायः अप्रसिद्ध और दुर्दर्श हैं उनके स्वरूप आदि देशदेशांतरके कालवेलियोंसे पूछ पूछकर मालूमकर सकते हैं अन्यथा स्वरूपादिका ज्ञान नहीं होसकता ॥

सर्प सर्पिणीके चिह्न ।

तत्र महानेत्रजिह्वास्यशिरसः पुमांसः सूक्ष्मनेत्रजिह्वास्यशिरसः स्त्रियः उभयलक्षणा मंदविषा अक्रोधा नपुंसका इति ॥ ४२ ॥

इनमेंसे जिनके नेत्र जिह्वा मुख शिर ये बडे और मोटे हो वे पुरुष अर्थात् सर्प होते हैं और जिनके नेत्र, जिह्वा, मुख, शिर छोटे हों उन्हें स्त्री (अर्थात् सर्पिणी) समझो और जिनमें दोनोंके लक्षण मिलें मंद विषवाले और क्रोध रहित हों वे नपुंसक सर्प होते हैं ॥ ४२ ॥

दंशकी शीघ्र मारकरता ।

तत्र सर्वेषां सर्पाणां सामान्यत एव दष्टलक्षणं वक्ष्यामः ॥ ४३ ॥ किं कारणं विषं हि निशितनिस्त्रिंशाशनिहुतवहदेश्यमाशुकारि मुहूर्तमप्युपेक्षितमातुरमतिपातयति नैचाऽवकाशोस्ति वाक्संसमूहमनुसर्त्तुम् ॥ ४४ ॥

अब हम सब सर्पोंके सामान्यतासे डसनेके लक्षण कहते हैं ॥ ४३ ॥ क्या कारण है कि विष तीक्ष्ण खड्गके प्रहार तथा वज्र और अग्निके समान शीघ्रही (मृत्युका) कार्य करता है यदि दो घडीभी विना यत्नके छोडा जावे तो मनुष्यको मारडालता है और बातें कहनेका भी अवकाश नहीं देता ॥ ४४ ॥

प्रत्येकमपि दष्टलक्षणेऽभिहिते सर्पत्रैविध्यं भवति तस्मात्रैविध्यमेव वक्ष्यामः एतद्ध्यातुरहितमसंमोहकरं च अपिचात्रैव सर्वसर्पव्यंजनावरोधः ॥ ४५ ॥

प्रत्येक सर्पके डसेहुयेके लक्षण कहे जावें तो भी सब सर्प तीनही प्रकारके होते हैं (और तीनही प्रकारके काटेहुवेके लक्षण होते हैं) इस कारण हम तीनही

प्रकारसे कहते हैं यही रोगीके लिये हितका कारण है और वैद्य आदिको मोह (संदेह या भ्रम) कारक नहीं होता और इन्हींके अंतर्गत सब सर्पोंके दंश भेद आजाते हैं ॥ ४५ ॥

दर्वीकरके विषका लक्षण।

तत्र दर्वीकरविषेण त्वङ्नयननखदशनमूत्रपुरीषदंशकृष्णत्वं रौक्ष्यं शिरसो गौरवं संधिवेदना कटीपृष्ठग्रीवादौर्बल्यं जृंभणं वेपथुः स्वरावसादो घुरघुरको जडता शुष्कोद्गारः कासश्वासौ हिक्का वायोरूर्द्ध्वगमनं शूलोद्वेष्टनं तृष्णा लालास्रावः फेणागमनं स्रोतोवरोधस्तास्ताश्च वातवेदना भवंति ४६

इनमेंसे फणदारके विषसे त्वचा नेत्र नाखून दांत मूत्र और दस्त काले होजाने रूक्षता शिरका भारीपन संधि पीडा कमर पीठ ग्रीवा इनमें दुर्बलता जँभाई कंप अवाज थक जाना कंठमें घुर घुर करना जडता सूखी डकार खांसी श्वास हिचकी वायुका ऊर्द्ध्व गमन शूल उद्वेष्टन (रोंठन) तृषा मुँहसे राल बहना झाग आना स्रोतोंका रुक जाना और ऐसेही अन्य वायुकी वेदना होना ये लक्षण होते हैं ॥४६॥

मंडलीके विषका लक्षण।

मंडलिविषेण त्वगादीनां पीतत्वं शीताभिलाषः परिधूपनं दाहस्तृष्णा मदो मूर्च्छा ज्वरः शोणितागमनमूर्द्ध्वमधश्च मांसानामवशातनं श्वयथुर्दंशकोथः पीतरूपदर्शनमाशुकोपस्तास्ताश्च पित्तवेदना भवंति ॥ ४७ ॥

मंडलीके विषसे त्वचा आदिको पीला पडना शीतकी वांछा संताप दाह तृषा मद मूर्च्छा ज्वर मुख गुदा आदिसे रुधिर आना मांस लटकना शोथ दंशके स्थानका सडना सब रूप पीले दिखना शीघ्र कोप और अन्य ऐसेही पित्तकी उपाधियां होना ये लक्षण होते हैं ॥ ४७ ॥

राजिमतके विषके लक्षण।

राजिमद्विषेण शुक्लत्वं त्वगादीनां शीतज्वरो रोमहर्षस्तब्धत्वं गात्राणामादंशशोफः सांद्रकफप्रसेकश्छर्दिरभीक्ष्णमक्ष्णोः कंडूः कंठे श्वयथुर्घुरघुरक उच्छ्वासनिरोधस्तमःप्रवेशस्तास्ताश्च कफवेदना भवंति ॥ ४८ ॥

राजिमंत सर्पोंके विषसे त्वचा आदिका सपेद पडजाना शीतज्वर रोमखडे होना अंगोंका अकड जाना दंशके पास शोथ गाढा कफ मुँहसे गिरना वमन होना बारबार

(गद्य० ४७) त्वगादीनामित्यत्रादिशब्देन पूर्वोक्तनयननखदशनमूत्रपुरीषाणां ग्रहणम् ।

नेत्रोंमें खाज चलना कंठमें सोजा और घुर घुर करना श्वास रुकजाना अँधेरी आना और ऐसेही अन्य कफके उपद्रव होना ये लक्षण होजातेहैं ॥ ४८ ॥

स्त्री पुरुषादि सर्पदष्टके लक्षण ।

पुरुषाभिदष्ट ऊर्द्ध्वं प्रेक्षतेऽधस्तात्स्त्रिया शिराश्चोत्तिष्ठंति ललाटे नपुंसकाभिदष्टस्तिर्यक् प्रेक्षी भवति ॥ ४९ ॥ गर्भिण्याः पांडुमुखोध्मातश्च सूतिकया शूलार्तो रुधिरं मेहत्युपजिह्विका चास्य भवति ॥ ५० ॥ ग्रासार्थिनाऽन्नं कांक्षति वृद्धेन मंदा वेगाश्च बालेनाशु मृदवश्च निर्विषेणाविषलिंगं अंधाहिकेनांधत्वमेत्येके ग्रसनादजगरः शरीरप्राणहरो न विषात् ॥ ॥ ५१ ॥ तत्र सद्यःप्राणहराहिदष्टः पतति शस्त्राशनिहत इव भूमौ स्रस्तांगः स्वपिति ॥ ५२ ॥

नर सर्पका डसा हुवा ऊपर देखता है और सर्पिणीका डसा हुवा नीचेको दृष्टि रखता है और उसके मस्तक पर नसें उठी हुई होजाती हैं और नपुंसक सर्पका काटा हुवा मनुष्य टेढी निगाह रखता है ॥ ४९ ॥ गर्भवती सांपणके काटे हुये मनुष्यका मुँह पीला पड जाता है और पेट फूल जाता है और व्याई हुई सांपणके काटे हुयेके शूल होता है और मूत्रमें रुधिर आता है तथा इसके उपजिह्वक रोग भी हो जाता है (उपजिह्विकाके लक्षण पहले मुखरोगोंमें कहचुके हैं वहां देखो) ॥ ५० ॥ भूंखे सर्पका काटा हुवा अन्न (भोजन) की इच्छा करता है और बूढे सर्पके काटेसे वेग मंद होते हैं। बालक सर्पके काटेसे शीघ्र २ वेग होते हैं और हलके वेग होते हैं, निर्विष सर्पके काटनेसे विषके चिह्न नहीं होते और अंधाहिक सर्प (जीर्ण विलशायी या अंधे) के काटनेसे मनुष्य अंधा हो जाता है ऐसा कोई कहते हैं और अजगर मनुष्यको निगल जानेसे शरीर और प्राणोंको नष्ट कर देता है विषसे मारक नहीं होता ॥ ५१ ॥ इनमें सद्यःप्राणहर सर्पका काटाहुवा मनुष्य झट पृथिवीमें ऐसे गिर जाता है जैसे शस्त्र या बिजलीका मारा हुवा हो और सब शरीर शिथिल होकर लंबी नींद सोजाता है ॥ ५२ ॥

तत्र सर्वेषां सर्पाणां विषस्य सप्त वेगा भवन्ति ॥ ५३ ॥

इसमें सब सर्पोंके विषके सात २ ही वेग (दौर या मैड़) होते हैं (जिन्हें अगाडी क्रमपूर्वक वर्णन करते हैं) ॥ ५३ ॥

फणदार सर्पोंके विषके सात-७ वेग ।

तत्र दर्वीकराणां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति तत्प्रदुष्टं कृष्णता -

पैति तेन कार्ष्ण्यं पिपीलिकापरिसर्पणमिवचांगे भवति ॥५४॥ द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं कृष्णता शोफो ग्रंथयश्चांगे भवंति ॥ ५५ ॥ तृतीये मेदो दूषयति तेन दंशक्लेदः शिरोगौरवं स्वेदश्चक्षुर्ग्रहणं च ॥५६॥ चतुर्थे कोष्ठानुप्रविश्य कफप्रधानान्दोषान्दूषयति तेन तंद्राप्रसेकसंधिविश्लेषा भवंति ॥ ५७ ॥ पंचमेऽस्थीन्यनुप्रविशति प्राणमग्निं च दूषयति तेन पर्वभेदो हिक्का दाहश्च भवति ॥ ५८ ॥ षष्ठे मज्जानमनुप्रविशति ग्रहणीं चात्यर्थं दूषयति तेन गात्राणां गौरवमतिसारो हृत्पीडा मूर्च्छा च भवति ॥ ५९ ॥ सप्तमे शुक्रमनुप्रविशति व्यानं चात्यर्थं कोपयति कफं च सूक्ष्मस्रोतोभ्यः प्रच्यावयति तेन श्लेष्मवर्तिप्रादुर्भावः कटिपृष्ठभग्नश्च सर्वचेष्टाविघातो लालास्वेदयोरतिप्रवृत्तिरुच्छ्वासनिरोधश्च भवति ॥६०॥

तिनमेंसे दर्वीकरोंका विष पहले वेगमें रुधिरको दूषित करता है इससे वह रक्त बिगडकर काला होजाता है जिससे शरीर काला पडजाता है और देहमें चींटियोंके चलने जैसा मालूम होता है ॥ ५४ ॥ दूसरे वेगमें वह विष मांसको दूषित करता है इससे देहमें अत्यंत कालापन होजाता है सोजा और गांठें शरीरपर होजाती हैं ॥ ५५ ॥ तीसरे वेगमें वह विष मेदको दूषित करता है जिससे डंककी जगह क्लेद शिरमें भारीपन पसीना होता है और आंखें मिचने लगती हैं ॥ ॥ ५६ ॥ चौथे वेगमें वह विष कोष्ठ (उदर) में प्रविष्ट होकर कफ प्रधान दोषों (क्लेदन कफ रस ओज आदि) को दूषित करता है जिससे तंद्रा (घुमेर) मुँहसे पानी आना और संधियोंमें भेद होना ये होते हैं ॥ ५७ ॥ पांचवें वेगमें वह विष अस्थि (हड्डियों) में प्रवेश होता है और प्राण (बल) और शारीरक अग्निको दूषित करता है जिससे संधियोंका भेद हुचकी और दाह होता है ॥ ५८ ॥ छठे वेगमें वह मज्जामें प्राप्त होता है और ग्रहणीको दूषित करता है जिससे गात्रमें भारीपन अतिसार हृदयमें पीडा और मूर्च्छा होती है ॥ ५९ ॥ सातवें वेगमें वह विष वीर्यमें प्राप्त होजाता है और व्यान वायुको अत्यंत कुपित करदेता है और सूक्ष्म स्रोतोंसे कफको झिराने लगता है जिससे कफकी बत्तियांसी (पुटक) बँधजाती हैं कमर और पीठ टूट जाती है सब हलने चलने आदि चेष्टा नष्ट होजाती हैं मुँहसे पानी और शरीरसे पसीना बहुत आने लगता है और फिर श्वास आना बंद होजाता है ॥ ६० ॥

मंडली सर्पों के विषके ७ वेग ।

तत्र मंडलिनां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति तत्प्रदुष्टं पीततामुपैतितत्र परिदाहः पीतावभासता चांगानां भवति । द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं पीततापरिदाहौ दंशे श्वयथुश्च भवति । तृतीये मेदो दूषयति तेन पूर्ववच्चक्षुर्ग्रहणं तृष्णा दंशे क्लेदः स्वेदश्च । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य ज्वरमापादयति । पंचमे परिदाहं सर्वगात्रेषु करोति षष्ठसप्तमयोः पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

मंडली सर्पोंका विष प्रथम वेगमें रुधिरको दूषित करता है वह दुष्ट हुवा रुधिर पीला हो जाता है जिससे दाह और अंगोंका पीलापन दीखने लगता है । दूसरे वेगमें वह मांसको दुष्ट करता है:जिससे बहुत पीलापन और दाह होता है डंककी जगह सोजा होता है । फिर तीसरे वेगमें वह मेदको बिगाडता है जिससे पहलेकी भांति नेत्रोंका मिचना तृषा दंशकी जगह क्लेद होता है और पसीने आते हैं चौथे वेगमें कोठेमें प्रवेश होकर ज्वर पैदा करदेता है और पांचवें वेगमें सारे शरीरमें तीक्ष्ण दाह होता है । और छठे तथा सातवें वेगमें पूर्वोक्त (दर्वीकरों के विषके तुल्य) लक्षण होतेहैं ॥ ६१ ॥

राजिमंत सर्पों के विषके वेग ।

राजिमतां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति तत्प्रदुष्टं पांडुतामुपैति तेन रोमहर्षः शुक्लावभासश्च पुरुषो भवति । द्वितीये मांसं दूषयति तेन पांडुतात्यर्थं जाड्यं शिरःशोफश्च भवति । तृतीये मेदो दूषयति तेन चक्षुर्ग्रहणं दंतक्लेदः स्वेदो घ्राणाक्षिस्रावश्च भवति । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य मन्यास्तंभं शिरोगौरवं चापादयति । पंचमे वाक्संगं शीतज्वरं च करोति । षष्ठसप्तमयोः पूर्ववदिति ॥ ६२ ॥

राजिमंत सर्पोंका विष प्रथम वेगमें शोणित (रक्त) को दूषित करता है उससे दुष्ट रुधिर पांडुताको प्राप्त होता है जिससे रोमहर्ष और मनुष्य सपेद मालूम देने लगता है । फिर दूसरे वेगमें वह मांसको दुष्ट करता है तिससे पांडुता ज्यादा हो जाती है और जडता शिरमें शोथ हो जाता है । तीसरे वेगमें मेदको दुष्ट करता है जिससे आंखें मिचना दांत अमलाना पसीना आना नाक और आंखोंसे पानी आना ये लक्षण होते हैं । चोथे वेगमें कोठे (उदर) में प्रवेश होकर मन्यास्तंभ और

शिरका भारीपन करता है। पांचवें वेगमें बोलना बंद हो जाता है तथा शीतज्वर पैदा करदेताहै। छठे और सातवें वेगोंमें पूर्वोक्त (दर्वीकर) के समान लक्षण जानने ॥ ६२ ॥

वेग सात होनेका कारण।

भवंति चात्र। धात्वंतरेषु याः सप्त कलाः संपरिकीर्तिताः। तास्वेकैकामतिक्रम्य वेगं प्रकुरुते विषम् ॥ ६३ ॥ येनांतरेण हि कलां कालकल्पं भिनत्ति हि। समीरणेनोह्यमानं तत्तु वेगांतरं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

यहांपर श्लोक है कि। जो धातु आशयान्तरके बीचकी मर्यादा रूप सातकला पहले (शारीरक स्थानमें) वर्णन करी हैं उन्हीं एक एकको अति क्रमण करके विष सात वेग करता है ॥ ६३ ॥ जब वह काल कल्प (विष) वायुसे प्रेरणा किया हुवा जिस अंतरसे कला (एक कला) को भेदन करता है उल्लंघन करता है उसीको वेगांतर (अर्थात् एक वेगसे दूसरा वेग) कहतेहैं ॥ ६४ ॥

(वक्तव्य श्लो० ६३) इसमें जो विरोध आता है उसपर डल्लनाचार्य यों लिखते हैं कि जो पुरीषधरा कला है वही अस्थिधरा है और जो पित्तधरा है वही मज्जधरा कला समझिये (देखो टिप्पणी) परंतु कइयोंकी बुद्धिमें यह नहीं आता क्योंकि पुरीषधरा कला अस्थि धराकेसे होवे और पित्त धरा कला (अर्थात् ग्रह णी) मज्जा धरा होसके तथा विष पहले रक्तसे चलता है और कला प्रथम मांसधरा है इत्यादि इससे कई इन दो श्लोकोंको क्षेपक बताते हैं महर्षि प्रणीत नहीं मानते और कई ऐसा कहतेहैं कि, धन्वंतरिजीने साधारण रूपसे विषका अनुक्रमण कह दिया कुछ कलाओंमें विषकी यथावत् प्रविष्टकी बात नहीं ॥

पशुओंको विषके वेग।

शूनांगः प्रथमे वेगे पशुर्ध्यायति दुःखितः। लालास्रावो द्वितीये तु कृष्णांगः पीड्यते हृदि ॥ ६५ ॥ तृतीये च शिरोदुःखं कंठग्रीवा च भज्यते। चतुर्थे वेपते मूढः खादन्दंतानहात्यसून् ॥ ६६ ॥ केचिद्वेगत्रयं प्राहुरंतश्चैतेषु तद्विदः ॥ ६७ ॥

(श्लो० ६३) सप्तकला प्रागुक्ता तासु एकैकामतिक्रम्य सप्तसु धातुषु अनुसप्तवेगा भवंति तद्यथा रसरक्तयोरंतरस्थां कलामतिक्रम्य रक्ते प्रथमवेगः। रक्तमांसयोरंतरस्थां कलामतिक्रम्य द्वितीयः। मांसमेदसोरंतरस्थां कलामतिक्रम्य तृतीयः। मेदःकफयोरंतरस्थांकलामतिक्रम्यचतुर्थः। कफपुरीषयोरंतरस्थां कलामतिक्रम्य पंचमः। पुरीषपित्तयोरंतरस्थां कलामतिक्रम्य षष्ठः। पित्तशुक्रयोरतरस्थां कलामतिक्रम्यसप्तम इति। यैव कलापुरीषधरा सैवास्थिधरेति पंचमे अस्थीन्यनुप्रविशति इति अविरुद्धम्। एवं यैव पित्तधरा सैवमज्जधरेति षष्ठे मज्जानमनुप्रविशतीत्यविरुद्धं (इति निबंधसंग्रहे डल्लनः) केचित्तु एतौ श्लोकौ क्षेपकाविति मन्यंते।

(पशुको सर्प काटे तो उसके ४ वेग होते हैं) प्रथम वेगमें पशुका शरीर सूज जाता है दुःखित होकर घ्या घ्या करता है (अथवा घ्यायति पाठ होनेसे ध्यानमें निमग्न हो जाता है) । और दूसरे वेगमें मुँहसे पानी (राल) बहती है शरीर काला पड जाता है और हृदयमें पीडा होती है ॥ ६५ ॥ तीसरे वेगमें शिरमें दुःख होता है और कंठ तथा ग्रीवा टूटने लगता है चौथे वेगमें मूढ होकर कांपने लगता है और दांतोंको चबाता हुवा प्राण त्याग देता है ॥ ६६ ॥ और कई आचार्य विष विद्याके जाननेवाले इनके तीनही वेग बतलाते हैं और सब उपद्रवोंको उन तीनही वेगोंके अंतर्गत मानते हैं ॥ ६७ ॥

पक्षियोंके विषके वेग ।

ध्यायति प्रथमेवेगे पक्षी मुह्यत्यतःपरम् । द्वितीये विह्वलः प्रोक्तस्तृतीये मृत्युमृच्छति ॥ ६८ ॥ केचिदेकं विहंगेषु विषवेगमुशन्ति हि । मार्जारनकुलादीनां विषं नातिप्रवर्तते ॥ ६९ ॥

इति सुश्रुते कल्पस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पक्षी प्रथम वेगमें ध्यान मग्न हो जाता है और फिर मोह (मूर्च्छा) को प्राप्त हो जाता है । फिर दूसरे वेगमें विह्वल (बेसुध) हो जाता है और तीसरे वेगमें मर जाता है (ऐसे पक्षियोंके तीन वेग होते हैं) ॥ ६८ ॥ तथा कोई आचार्य पक्षियोंके एकही विषका वेग होना मानते हैं और मार्जार (बिलाव) तथा नकुल आदि (आदि शब्दसे मयूरादिकोंको समझना) इनके (शरीरमें) सर्पोंके विषका प्रभाव प्रायः नहीं होता ॥ ६९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकभाषाटीकायां कल्पस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ४॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातः सर्पदष्टकल्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम सर्पके काटे हुवेकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

सर्पके काटे हुवेका आरंभिक यत्न ।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः । दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरंगुले ॥ १ ॥ प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनान्यतमेन च । न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ २ ॥

(श्लो० १) अरिष्टाः वस्त्रादिभिर्मन्त्रपुरस्कृतैर्बंधाः इति डल्हनः, मंत्रैर्विनापि बंधा दातव्याः तैरेव विषस्योपसर्पणमूर्द्धप्रदेशे न भवेदिति । तद्वक्ष्यमाणश्लोकेचोक्तं "सा पुनररिष्टा मंत्ररहिता रज्ज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकारी भवतीति" (नि० सं०) ।

सब प्रकारके सर्पोंमेंसे किसीने काटा हो आरंभहीमें (बहुत शीघ्र) यदि हाथ या पाँवमें काटा होतो डंक (डाढ) की जगहसे चार अंगुल ऊपर बंध लगा देना चाहिये ॥ १ ॥ वह बंध सूतकी डोरीका या चर्मका या किसी वृक्षकी छाल (शण आदि) मेंसे किसी मृदु छालका बांधना चाहिये क्योंकि अरिष्ट (बंध) से रोका हुवा विष देहमें नहीं फैल सकता ॥ २ ॥

दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बंधो न जायते । आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ ३ ॥ प्रतिपूर्य मुखं वस्त्रैर्हितमाचूषणं भवेत् । स दष्टव्यो ऽथवा सर्पो लोष्टो वापि हि तत्क्षणात् ॥ ४ ॥ अथ मंडलिना दष्टं न कथंचन दाहयेत् । स पित्तविषबाहुल्याद्दंशो दाहाद्विसर्पति ॥ ५ ॥

अथवा जहां बंध नहीं लगसके वहां काटेहुवेकी जगहको काटकर शीघ्र जला देना चाहिये चूसना काट देना और जला देना सब जगह श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ मुखमें चर्मकी बस्ति लगाकर चूसलेनाभी हित है अथवा डसा हुवा मनुष्य उसी सर्पको काटले अथवा यह नहोसके तो तात्काल लोष्ट (लोहकिट्ट) को मुखसे काटे ॥ ॥ ४ ॥ परंतु जो मंडली सर्पने डसा हो तो उसे कदापि जलावे नहीं क्योंकि यह पित्तकारक विष होता है जलानेसे अधिक बढता है ॥ ५ ॥

मंत्रोंकी प्रधानता ।

अरिष्टामपि मंत्रैश्च बध्नीयान्मंत्रकोविदः । सा तु रज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरी मता ॥ ६ ॥ देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मंत्राः सत्यतपोमयाः । भवंति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम् ॥ ७ ॥ विषं तेजोमयैर्मंत्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः यथा निवार्यते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः ॥ ८ ॥

यदि कोई मंत्र जाननेवाला होवे तो मंत्रोंसे बंध बांध देवे वह रस्सी आदिकी बँधीहुई अरिष्टा (बंधनी) विषको नष्ट करनेवाली होती है ॥ ६ ॥ देवता ब्रह्मऋषि इनके कहे हुये सत्य और तपोमय मंत्र अन्यथा (झूंठे) नहीं होते वे भारी विषको तात्काल नष्ट करसकते हैं ॥ ७ ॥ तेजमय तथा सत्य ब्रह्म तपोमय मंत्रोंसे जितना शीघ्र विष दूर होता है औषधोंके प्रयोगों से उतना नहीं होसकता ॥ ८ ॥

मंत्राणां ग्रहणं कार्यं स्त्रीमांसमधुवर्जिना ॥ जिताहारेण शुचिना कुशास्तरणशायिना ॥ ९ ॥ गंधमाल्योपहारैश्च बलिभिश्चापि देवताः । पूजयेन्मंत्रसिद्ध्यर्थं जपहोमैश्च यत्नतः ॥ १० ॥

स्त्रीसंग, मांस, मद्य त्यागकर जिताहार (व्रती) होकर पवित्र होकर कुशाके विस्तरपर शयनका नियम रखकर मंत्रोंका ग्रहण (और साधन) करना चाहिये ॥ ९ ॥ गंध माला भेंट और बलिदान इनसे मंत्रोंकी सिद्धिके लिये देवताओंका पूजन करे और जप होमादिकसे यत्नपूर्वक (मंत्रोंको सिद्ध करले तब उनको काममें लावे) ॥ १० ॥

मंत्रसिद्धिमें कठिनता।

मंत्रास्तु विधिनाऽप्रोक्ता हीना वा स्वरवर्णतः ।
यस्मान्न सिद्धिमायांति तस्माद्योज्योऽगदक्रमः ॥ ११ ॥

जोकि मंत्र विधिके बिना उच्चारण किये (या बताये) हुवे तथा स्वर वा वर्णसे हीन हों तो सिद्धिको प्राप्त नहीं होते इस कारण अगद (औषध) काही क्रम योजना करना चाहिये ॥ ११ ॥

विषमें शोणितस्रावकी प्रधानता।

समंततः शिरां दंशाद्विध्येत्तु कुशलो भिषक् । शाखाग्रे वा ललाटे वा वेध्यास्ता विसृते विषे ॥ १२ ॥ रक्ते निर्ह्रियमाणेतु कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम् । तस्माद्विस्रावयेद्रक्तं सा ह्यस्य परमा क्रिया ॥ १३ ॥

दंशके आसपासमें कुशल वैद्य सिरा वेधन करके (रक्त निकाले) और यदि विष फैल गया हो तो हाथ पाओंके अग्रमें या ललाटमें सिरावेधें (फस्त खोल दें) ॥ १२ ॥ रुधिरके निकल जानेसे सब विष निकल जाता है इससे रुधिर निकाल देना ही इसकी परम क्रिया है ॥ १३ ॥

सामान्य औषधक्रम।

समंतादगदैर्दंशं प्रच्छयित्वा प्रलेपयेत् । चंदनोशीरयुक्तेन वारिणा परिषेचयेत् ॥ १४ ॥ पाययेत्तागदांस्तांस्तान्क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः । तदलाभे हिता वा स्यात्कृष्णा वल्मीकमृत्तिका ॥ १५ ॥

डाढकी जगह पछना लगाकर (खुरच कर) अगद विषघ्न औषधोंसे लेप करे और चंदन खस मिले हुये जलके तरडे देवे ॥ १४ ॥ और उन्हीं उन्हीं (जिसके

(श्लो० ११) स्वरतो वर्णतो वा हीना मंत्रा न सिध्यंति किंतु विपरीत कार्यकरा भवंति । तदुक्तं ' मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतोवा सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति इति ।

(श्लो० १५) तांस्तान् अगदान् वक्ष्यमाणमहाऽगदताक्ष्यागदादीन् ।

लिये जैसे उचित हो) अगदों (विष नाशक औषधोंको दूध घृत शहत इनके संग पिलावें और वे न मिल सकें तो बँबईकी काली मिट्टी काममें लावें ॥ १५ ॥

कोविदारशिरीषार्ककटभीर्वापि भक्षयेत् । नापिबेत्तैलकौलत्थमद्यसौवीरकाणि च ॥ १६ ॥ द्रवमन्यत्तुयत्किंचित्पीत्वा पीत्वा तदुद्वमेत् । प्रायो हि वमनेनैव सुखं निर्ह्रियते विषम् ॥ १७ ॥

कचनाल सिरस आक तथा कटभी इनका भक्षण करे अर्थात् (यथोचित इनके पत्र चबावे) और तैल कुलथीके पदार्थ मदिरा कांजी आदि खट्टे पदार्थ इन्हें नहीं पीवे ॥ १६ ॥ इनके सिवाय अन्यद्रवपदार्थ पी पीकर उन्हें वमन करते रहै वमन करने २ से प्रायः विष सुखपूर्वक निकल जाता है ॥ १७ ॥

दर्वीकरोंके विषकी चिकित्सा ।

फणिनां विषवेगे तु प्रथमे शोणितं हरेत् । द्वितीये मधुसर्पिर्भ्यां पाययेतागदं भिषक् ॥ १८ ॥ नस्यकर्माञ्जने युंज्यात्तृतीये विषनाशने । वांतं चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूमथ दापयेत् ॥ १९ ॥ शीतोपचारं कृत्वादौ भिषक्पंचमषष्ठयोः । दापयेच्छोधनं तीक्ष्णं यवागूं चापि कीर्तिताम् । सप्तमे त्ववपीडेन शिरस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥ २० ॥ तीक्ष्णमेवांजनं दद्यात्तीक्ष्ण शस्त्रेण मूर्ध्नि च । कुर्यात्काकपदं चर्म सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ २१ ॥

फणदार (दर्वीकर) सब सर्पोंके विषके प्रथम वेगमें रुधिर निकालें और दूसरे वेगमें वैद्य शहत और घृतके संग अगद (विषघ्न औषध) पिलावे ॥ १८ ॥ तीसरे वेगमें नस्य विष नाशक और अंजनका उपयोग करे चौथे विषवेगमें वमन कराकर पूर्वोक्त (स्थावर विषोक्त) यवागू पीनेको देवें ॥ १९ ॥ पाँचवे और छठे वेगमें पहले शीत उपचार करके वैद्य तीक्ष्णशोधन करे और कही हुई यवागू पिलावै ॥ २० ॥ सातवे वेगमें खूब तीक्ष्ण अवपीडन (नस्य) से शिरका शोधन करे और तीक्ष्णही अंजन लगावे और तीक्ष्ण शस्त्रसे मूर्धापर कागकेपंजेके आकार खुरचकर उसपर रुधिर युक्त ताजा चर्म या मांस रखना चाहिये ॥ २१ ॥

पूर्वे मंडलिनां वेगे दर्वीकरवदाचरेत् । अगदं मधुसर्पिर्भ्यां द्वितीये पाययेत च ॥ २२ ॥ वामयित्वा यवागूं च पूर्वोक्तामथ दापयेत् । तृतीये शोधिते तीक्ष्णैर्यवागूं पाययेद्धिताम् ॥ २३ ॥ चतुर्थे पंचमे वापि

दर्वीकरवदाचरेत् । काकोल्यादिर्हितः षष्ठे पयश्च मधुरो गणः ॥ २४ ॥
हितोऽवपीडे त्वगदः सप्तमे विषनाशनः ॥ २५ ॥

मंडली सर्पोंके प्रथम वेगमें पूर्वोक्त दर्वीकरके प्रथम वेगके तुल्य यत्नकरे और दूसरे वेगमें शहत घृतके संग अगद पिलावे ॥ २२ ॥ और वमन कराकर पूर्वोक्त यवागू पिलादें । फिर तीसरे वेगमें तीक्ष्ण शोधन करके हितकारक यवागू देवें॥२३॥ चौथे और पांचवे वेगमें दर्वीकरके यत्नके समानही यत्नकरें और छठे वेगमें दूध और मधुर गण (काकोल्यादि)(तथा महागदादिमें जो तीक्ष्ण है सो) पिलावें॥२४॥ और सातवे वेगमें (असाध्य होगया ऐसा कहकर) अवपीडनकरें और विषनाशन औषधोंका उपयोग करें (शिरपर पूर्वोक्त ताजचर्मादिक धरें) ॥ २५ ॥

राजिमंतके वेगोंका यत्न ।

अथ राजिमतां वेगे प्रथमे शोणितं हरेत् । अगदं मधुसर्पिभ्यां संयुक्तं पाययेत च ॥ २६ ॥ वांतं द्वितीये त्वगदं पाययेद्विषनाशनम् ॥ तृतीयादिषु त्रिष्वेव विधिर्दर्वीकरो हितः ॥ २७ ॥ षष्ठेंजनं तीक्ष्णतममवपीडश्च सप्तमे ॥ २८ ॥

राजिमंतसर्पोंके विषके प्रथम वेगमें रुधिर निकाले और शहत घृतके संग अगद (औषध) पिलावे ॥ २६ ॥ दूसरे वेगमें वमन कराकर विषनाशन अगद पिलावे और फिर तीसरे वेगसे आदि लेकर चौथे और पाँचवे वेगमेंभी दर्वीकरके यत्नके समान करे ॥ २७ ॥ छठे वेगमें तीक्ष्ण अंजन लगावे और सातवेमें अवपीडन करे ॥ २८ ॥

गर्भिणी आदिकी विधि ।

गर्भिणीबालवृद्धानां शिराव्यधविवर्जितम् ॥
विषार्तानां यथोद्दिष्टं विधानं शस्यते मृदु ॥ २९ ॥

गर्भवती स्त्री बालक और वृद्ध जो विषपीडित हो तो उनके शिरावेध नहीं करे किंतु यथोचित मृदु विधान करना चाहिये ॥ २९ ॥

विषपीडित पशुपक्षीका यत्न ।

रक्तावसेकांजनानि नरतुल्यान्यजाविके।गवाश्वयोश्च द्विगुणं त्रिगुणं महिषोष्ट्रयोः ॥ ३० ॥ चतुर्गुणं तु नागानां केवलं सर्वपक्षिणाम् ॥ परिषेकान्प्रदेहांश्च सुशीतानवचारयेत् ॥ ३१ ॥

(श्लोक. २४) मधुरोगण इतिमहागदादिषु यः तीक्ष्णः सपेय इति डल्हनः, अन्येतु काकोल्यादिर्मधुरोगणः पयश्चपेयं इत्याहुः काकोल्यादिमधुरगणस्य पित्तशमकत्वादत्राहितएव ॥

रक्त निकालना अंजन आदि सब मनुष्यके तुल्यही बकरी और भेडको करना चाहिये और गौ तथा घोडेके सर्पका विष होतो सब दुगुना करे और भैंस तथा ऊंटके होतौ त्रिगुणा करे ॥ ३० ॥ और हाथीके होतो चौगुना करना चाहिये और यदि पक्षीके सर्पका विष होतो सब पक्षियोंके लिये शीतल परिषेक और प्रदेह करे (अर्थात् उनपर ठंढा पानी छिडके) इतनाही बहुत है ॥ ३१ ॥

औषधकी मात्रा ।

माषकं त्वंजनस्येष्टं द्विगुणं नस्यतो हितम् ॥
पाने चतुर्गुणं पथ्यं वमनेऽष्टगुणं पुनः ॥ ३२ ॥

अंजनके लिये एक माषभर (विषघ्न) औषधकी मात्रा उचित है और नस्यके लिये दुगुनी तथा पिलानेके लिये चौगुनी (माष) लेनी (इसे कल्कादिमें उपयोग करना) और वमनके लिये अठगुनी लेना ॥ ३२ ॥

(वक्तव्य) इस बातपर डल्हन मिश्रजीने स्नेहकी मात्राका प्रमाण दिया है कि "अहोरात्रादसंतुष्टा या मात्रा परिजीर्यते । सा च कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी" इससे और उपरोक्त मात्रासे यही प्रयोजन है कि विषघ्न औषधकी मात्रा उपरोक्तसे अधिक होनी चाहिये बल्कि दो श्लोक और भी लिखदिये हैं ।

विषमें देश कालादिका विचार ।

देशप्रकृतिसात्म्यर्तुविषवेगबलाबलम् । प्रधार्य निपुणो बुध्या ततः कर्म समाचरेत् ॥ ३३ ॥ वेगानुपूर्वमित्येतत्कर्मोक्तं विषनाशनम् । कर्माव-स्थां विशेषेण विषयोरुभयोः शृणु ॥ ३४ ॥

देश प्रकृति सात्म्य और ऋतु तथा विषके वेग एवं रोगी के बलाबलको चतुर वैद्य बुद्धिसे विचारकर फिर यत्न करना आरंभ करे ॥ ३३ ॥ यह जो ऊपर क्रिया कही गई है यह वेगोंके क्रमानुसार वर्णन करी है अब यहांसे अगाडी दोनों प्रकारके (स्थावर जंगम) विषके कर्म अवस्थाके अनुसार श्रवण करो ॥ ३४ ॥

दोषभेदसे विषचिकित्सा ।

विवर्णे कठिने शूने सरुजेंगे विषार्दिते । तूर्णं विस्रावणं कार्यमुक्तेन विधिना ततः ॥ ३५ ॥ क्षुधार्तमनिलप्रायं तद्विषार्तं समाहितः । पाययेद्दधि तक्रं वा सर्पिः क्षौद्रं तथा रसम् ॥ ३६ ॥ तृड्दाहघर्मसम्मोहे षे त्तं पैत्ते विषातुरम् । शीतैः संवाहनस्नानप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥ ३७ ॥

शीते शीतप्रषेकार्तं श्लैष्मिकं कफकृद्विषम् । वामयेद्वमनैस्तीक्ष्णैस्तथा मूर्च्छामदान्वितम् ॥ ३८ ॥

जिसका विषसे वर्ण बिगड जावे कठिन शोथ हो अंगोंमें पीडा हो उसके रुधिरको शीघ्र उक्त विधिसे निकाल दे ॥ ३५ ॥ जो क्षुधार्त हो और वात प्राय उपद्रवोंसेयुक्त विषार्त हो तो उसे सावधान वैद्य दही छाँछ या शहत घृत या मांसरस पिलावे ॥ ॥ ३६ ॥ जिसे तृषा दाह गरमी मूर्च्छा पित्तकी उपाधियां हों और रोगी पित्तके विषसे पीडित हो उसे शीतल द्रव्योंका स्पर्श स्नान लेपन आदि शीत क्रिया करे॥ ३७॥ शीतसमय कफके उपद्रव शीत कंप आदि हो कफकाही विष हो और मूर्च्छा मद हो तो उसे तीक्ष्ण वमनद्रव्योंसे वमन करावे ॥ ३८ ॥

उपद्रवोंके अनुसार विषचिकित्सा ।

कोष्ठदाहरुजाध्मानमूत्रसंगरुगन्वितम् । विरेचयेच्छकृद्वायुसंगपित्तातुरं नरम् ॥ ३९ ॥ शूनाक्षिकूटं निद्रार्तं विवर्णाविललोचनम् । विवर्णं चापि पश्यंतमंजनैः समुपाचरेत् ॥ ४० ॥ शिरोरुग्गौरवालस्यहनुस्तम्भगलग्रहे । शिरोविरेचयेत्क्षिप्रं मन्यास्तंभे च दारुणे ॥ ४१ ॥

जिसके कोष्ठमें दाह पीडा अफरा हो और मूत्र रुकनेकी पीडा हो दस्त और अधोवायु की रुकावटके साथ पित्तसे पीडित हो ऐसे विषार्त मनुष्यको विरेचन देना चाहिये ॥ ३९ ॥ जिसके नेत्रोंके कोये सूजे हों निद्रा आती हो नेत्र विवर्ण और गडेसे होजावें और कुछ का कुछ विपरीत देखने लगे ऐसे विषार्तको नेत्रोंमें विषनाशक अंजन लगाना उचित है ॥ ४० ॥ जिसके शिरमें दरद भारीपन और आलस्य हो ठोडी (और जबडे) अकड जावें गल रुकजावे तथा दारुण मन्यास्तंभ हो (अर्थात् ग्रीवा मुडेनहीं) तो शीघ्रही शिरका विरेचन करना योग्य है ॥ ४१ ॥

नष्टसंज्ञं विवृताक्षं भग्नग्रीवं विरेचनैः । चूर्णैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैर्विषार्तं समुपाचरेत् ॥ ४२ ॥ ताडयेच्च शिराः क्षिप्रं तस्य शाखाललाटजाः । तास्वप्रसिच्यमानासु मूर्ध्नि शस्त्रेण शस्त्रवित् ॥ ४३ ॥ कुर्यात्काकपदाकारं व्रणमेवं स्रवंति ताः । सरक्तं चर्म मांसं वा निक्षिपेच्चास्य मूर्ध्नि च ॥ ४४ ॥ चर्मवृक्षकषायं वा चूर्णं वा कुशली भिषक् । वादयेच्चाऽगदैर्लिप्तां दुंदुभीस्तस्य पार्श्वयोः ॥ ४५ ॥

(श्लो० ४०) आविललोचनं कलुषितनेत्रम् ।

(श्लो० ४२) विरेचनैरत्र शिरोविरेचनैः ।

(श्लो० ४५) चर्मवृक्षकषायं इत्यत्र कषायो निर्यास इति डल्हणः ।

जो विषके प्रभावसे नष्टसंज्ञ (बेहोश) हो जावे आखें फट जावें ग्रीवा (गरदन) टूटजावे ऐसी अवस्थामें तीक्ष्ण शिरोविरेचन चूर्णों प्रधमन (नस्यों) से उसका उपचार करे (उग्र शिरोविरेचनी नस्य देवे) ॥ ४२ ॥ और तात्काल हाथ पैरोंकी या धिरकी शिरा वेधन करे (फस्दखोले) यदि उनमेंसे रक्त नहीं निकले तो मूर्द्धा (दिमाग़) में वैद्य शस्त्र (नश्तर) से निकालके पेज जैसा (चीरा लगादे) निशान करे ऐसा करनेसे रगोंमेंसे रक्त निकलने लग जाता है फिर रुधिरयुक्त ताजा चर्म या मांस दिमागपर रखदेवे (यह विषको खैंचलेता है ॥ ४३ ॥४४॥ अथवा वल्कलवाले वृक्षोंका कषाय (निर्यास या सारे) या चूर्ण वह रखदे और विषघ्न द्रव्यों से लिपे दुदुंभी (नगारे ढोल डमरू) उसके पास बजावे ॥ ४५ ॥

लब्धसंज्ञं पुनश्चैनमूर्द्ध्वं चाधश्च शोधयेत् । निःशेषं निर्हरेच्चैवं विषं परमदुर्जयम् ॥ ४६ ॥ अल्पमप्यवशिष्टं हि भूयो वेगाय कल्पते । कुर्याद्वा सादवैवर्ण्ये ज्वरकासशिरोरुजः ॥ ४७ ॥ शोफशोषप्रतिश्याय-तिमिरारुचिपीनसान् । तेषु चाऽपि यथादोषं प्रतिकर्म प्रयोजयेत् । विषार्तोपद्रवाश्चापि यथास्वं समुपाचरेत् ॥ ४८ ॥

जब वह चेतमें हो जावे तब फिर इसको वमन रेचन देकर ऊपर नीचेसे शुद्ध करे परम दुर्जय विषको निःशेष (समस्त) निकाल देवे ॥ ४६ ॥ क्योंकि जो किंचित् मात्रभी विष शरीरमें शेष रह जाता है तो फिर वेग (दौर) होने लगजाते हैं अथवा शिथिलता और विवर्णता ज्वर खांसी शिरमें पीडा ये उपद्रव करता है ॥ ४७ ॥ तथा शोथ क्षय प्रतिश्याय (जुखाम) तिमिर (अंधेरी) अरुचि और पीनस ये उपाधियां करता है इन उपद्रवोंमें फिर दोषों के अनुसार प्रतिकारका उपयोग करे और विषयुक्तके जोर उपद्रव हों उनका यथा योग्य उपचार करे॥४८॥

विषकी उत्तरक्रिया ।

अथारिष्टां विमुच्याशु प्रच्छयित्वाऽङ्कितं तथा । दिह्यात्तत्र विषं स्कन्नं भूयो वेगाय कल्पते ॥ ४९ ॥ एवं क्रियाक्रमैर्मन्त्रैरौषधीभिश्च यत्नतः । विषे हृतगुणे देहाद्यदा दोषः प्रकुप्यति ॥५०॥ तदा पवनमुद्वृत्तं स्नेहाद्यैः समुपाचरेत् । तैलमत्स्यकुलत्थाम्लवर्ज्यैर्मारुतनाशनैः ॥

(श्लो० ४७) श्लोकोयं अग्रिमेणार्द्धेन सह मेलयित्वान्वेतव्यः ।

(श्लो० ४९ । ५०) अनयोर्मिलित्वाऽन्वयः ।

॥ ५१ ॥ पित्तज्वरहरैः पित्तं कषायैः स्नेहबस्तिभिः ॥ ५२ ॥ कफमारग्वधाद्येन सक्षौद्रेण गणेन तु । श्लेष्मघ्नैरगदैश्चापि तिक्तैरूक्षैश्च भोजनैः ॥ ५३ ॥

इसके पीछे बंध खोलकर शीघ्रही डाढकी जगह कुरचकर ऊपर लेप (विषघ्न लेप) करदे क्योंकि जो विष ठैर जावे तो फिर वेग होने लगजावे ॥ ४९ ॥ इस भांति यत्नपूर्वक मंत्रोंसे अथवा औषधोंसे उपाय करनेपर शरीरसे विष दूर हो जावे और फिर दोष (वातादि) कुपित हों तो बढे हुये वायुको स्नेहादिसे उपचार करे जो तैल मछली कुलथी इनसे रहित वायु नाशक हो ॥ ५० ॥ ५१ ॥ और जो पित्त उल्बण हो तो पित्तज्वर नाशक क्वाथ स्नेह और बस्तियोंसे शांत करे ॥ ५२ ॥ यदि कफ बढा हो तो उसे आरग्वधादि गणके द्रव्योंमें शहत युक्त कर उपयोग करे तथा कफघ्न अगद (औषध) और तिक्त रूक्ष भोजनोंसे शांत करे ॥ ५३ ॥

अन्यभांतिसे नष्टसंज्ञ होना ।

वृक्षप्रयातविषमपतितं मृतमंभसि ॥
उद्वृत्तं च मृतं सद्यश्चिकित्सेन्नष्टसंज्ञवत् ॥ ५४ ॥

जो वृक्षादिसे गिरकर या विषम (स्थानादिसे) पडकर (मूर्च्छित होगया हो) तथा जलमें डूबकर मरगया (अति मूर्च्छित होगगा हो) अथवा जो उद्वृत्त (चानचक) मरगया हो (अर्थात् श्वास बंध होकर मृत तुल्य होगया हो) उसकी विषसे नष्ट संज्ञा हुये (बेहोश हुये) के समान अवपीड प्रधमन नस्यादि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

(वक्तव्य) किसी कारण या चानचक मूर्च्छित मृत तुल्य होजाना ऐसाभी होता है कई मनुष्य भले चंगे काम करते २ एकदम मृतसे होजाते हैं श्वास नाडी आदिकी गति नष्ट होजाती है कोई तो इस अवस्थामें मुरदा होही जाते हैं परंतु कोई जीव रहनेपर श्वास और नाडीके रुकनेसे मृत मालूम होते हैं इनमें मृत और सजीवकी यह परीक्षा है कि यदि रोगीके नेत्रोंमें दूसरे देखने वालेका प्रतिबिंब दीखे या दीपककी प्रभादीखे तो सजीव है अन्यथा मृत है यूनानी हकीम इस बीमारीको जमूद कहते हैं (देखो तिब्त अकबर पहलाबाब आठवीं फसल) और मृत जीवितकी परीक्षार्थ (देखो पहलाबाब सतरइवीं फसल) मूर्च्छामें और इसमें यह अंतर है कि मूर्च्छामें श्वास और नाडीकी गति रहती है पर इसमें वेभी बंद होजाती हैं ॥

(श्लो० ५२) अयमर्द्धः एव ।

विषके व्रण और विषलिपे हुवे शस्त्रके व्रणके लक्षण ।

गाढं बद्धेऽरिष्टया प्रच्छितेपि तीक्ष्णै लेपैस्तद्विधैर्वा विशेषैः । शूने गात्रे क्लिन्नमत्यर्थपूति ज्ञेयं मांसं तं द्विषात्पूति कष्टम् ॥ ५५ ॥ सद्यो विद्धं निःस्रवेत्कृष्णरक्तं पाकं यायाद्दह्यते चाप्यभीक्ष्णम् । कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति शीर्णं मांसं यात्यजस्रं क्षताच्च । तृष्णा मूर्च्छा भ्रांतिदाहौ ज्वरश्च यस्य स्युस्तं दिग्धविद्धं व्यवस्येत् ॥ ५६ ॥

करडा बंध लगानेसे या पछने लगानेसे अथवा ऐसेही तीक्ष्ण लेपों आदिसे विषसे सूजा हुवा गात्र क्लेदित (गला) होजाता है और विषसे सडा हुवा मांस कठिनतासे अच्छा होता है ॥ ५५ ॥ शस्त्रसे वेधन करतेही काला रक्त निकलता है पकजाता है बहुत दाह होता है काला पडजाता है अत्यंत क्लेदित और दुर्गंधित होता है घावमेंसे विखरा मांस वारंवार निकलता है और तृषा मूर्च्छा भ्रम दाह ज्वर ये लक्षण जिस क्षतमें होते हैं उसे दिग्धविद्ध (विषलिपे हुवे शस्त्रका विंधा) घाव समझे ॥ ५६ ॥

पूर्वोद्दिष्टं लक्षणं सर्वमेतज्जुष्टं यस्यालं विषेण व्रणाःस्युः।लूतादष्टा दिग्धविद्धा विषं वा जुष्टा ये स्युर्ये व्रणाः पूतिमांसाः ॥ ५७ ॥ तेषां युक्त्या पूतिमांसान्यपोह्य वार्योकोभिः शोणितं चापहृत्य । हृत्वा दोषान्क्षिप्रमूर्द्धं त्वधश्च सम्यक्सिंचेत्क्षीरिणां त्वक्कषायैः ॥५८॥ अंतर्वस्त्रं दापयेच्च प्रदेहां शीतैर्द्रव्यैराज्ययुक्तैर्विषघ्नैः । भिन्नेऽस्थ्ना वै दुष्टजातेन कार्यः पूर्वो मार्गः पैत्तिकेयो विषे च ॥ ५९ ॥

जिन व्रणोंमें पूर्वोक्त लक्षण हों और विषयुक्त डंक जिसके रहगया हो तथा मकडी लडेके जिसके व्रणहों अथवा दिग्ध विद्ध (विषलिप्तशस्त्रके घाव)तथा विषयुक्त व्रण एवं जिनव्रणोंका मांस सड गया हो ॥५७॥ इन उपरोक्त सब व्रणोंके गले सडे मांस को युक्तिसे अलग करदे (शस्त्रसे छीलदे) और फिर वार्योक (जोंकें) लगाकर रक्त निकाले और ऊपर नीचेसे वमन विरेचनद्वारा दोषोंको शुद्ध करके दूधवाले वृक्षों (गूलर आदि) की छालके क्वाथसे यथोक्त सेचन करे तरडे देदे कर धोवें ॥५८॥ फिर सौबारके धुले हुये घृतमें विषनाशक शीतल द्रव्य मिलाकर उसे वस्त्रपर लगाकर प्रदेह

(श्लो० ५७) यस्य विषेण जुष्टंअलं विषकंटकमित्यर्थः ।

(श्लो० ५९) दुष्ट जातेन अस्थ्ना तेन तत्सदृशशकृन्मूत्र शुक्रस्पर्श दंतास्थिशूकशवैश्च भिन्ने व्रणे कृते (इति नि० सं०)

करे (अर्थात् वह वस्त्र मरहमके भांति लगादे) और यदि किसी दुष्ट जन्तुके अस्थि (नख कंटक आदि) से कोई क्षतहुवा होतौ उसमें पूर्वोक्तही क्रमकरना चाहिये अथवा पैत्तिक विषमें जो यत्न कहा सो करना ॥ ५९ ॥

महाऽगद नामक विषनाशक प्रयोग ।

त्रिवृद्विशल्ये मधुकं हरिद्रे रक्ता नरेंद्रो लवणश्च वर्गः । कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृंगे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥ ६० ॥ एषोगदो हंति विषं प्रयुक्तः पानांजनाभ्यंजननस्ययोगैः । अवार्यवीर्यो विषवेगहंता महागदो नाम महाप्रभावः ॥ ६१ ॥

निशोथ विशल्या मुलेठी दोनों हलदी मँजीठ किरमाला और पांचों लवण तथा त्रिकटु इनको पीसकर शहत मिलाकर सींगमें भरदे ॥ ६० ॥ इस अगद (विषनाशक योग) को पान अंजन लेपन और नस्यके योगोंमें उपयुक्त करनेसे यह विषको नष्ट करदेताहै इसका नाम महागद है यह विषवेग हरनेवालाहै इसका प्रभाव अनिवार्यहै ॥ ६१ ॥

(इसमें विशल्या कही इसे कई कलहारी कई दंती मानतेहैं डल्लन मिश्रजी काष्ठपाटला बताते हैं) ॥

अजिता गद ।

विडंगपाठात्रिफलाजमोदाहिंगूनि चक्रं त्रिकटूनि चैव । सर्वश्च वर्गो लवणश्च सूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ॥ ६२ ॥ शृंगे गवां शृंगमयेन चैवं प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च । एषोऽगदः स्थावरजंगमानां जेता विषाणामजितो हि नाम्ना ॥ ६३ ॥

विडंग पाठा त्रिफला अजमोद हींग चक्र (तगर) त्रिकटु और सब नमक तथा चित्रक इन सबको महीन पीसकर गौके सींगमें भरकर ऊपरसे गौके सींगहीसे ढक कर बंदकर पंद्रह दिन धर रक्खे (फिर निकालकर उपयोग में लावे) यह अजित नामक अगद स्थावर और जंगम सब प्रकारके विषोंको जीतनेवाला है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

तार्क्ष्यागद ।

प्रपौंडरीकं सुरदारु मुस्ता कालानुसार्या कटुरोहिणीच । स्थौणेयकं

(श्लो० ६०) विशल्या काष्ठ पाटला इति डल्लनः अन्ये दंतीमपरे लांगलीमाहुः ।
(श्लो० ६३) गवांशृंगे निधेयः इति पूर्वेणान्वयः ।

ध्यामकपद्मकानि पुन्नागतालीशसुवर्चिका च ॥ ६४ ॥ कुटंनटैलासितसिंधुवाराः शैलेयकुष्टे तगरं प्रियंगुः । रोध्रं जलं कांचनगैरिकं च समागधं चंदनसैंधवं च ॥ ६५ ॥ सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृंगे निदध्यान्मधुसंयुतानि । एषोऽगदस्तार्क्ष्य इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य ॥ ६६ ॥

प्रपौंडरीक (पुंडरिया) देवदारु मोथा कालानुसार्य (कालीयक) कटुरोहिणी (कुटकी) स्थौणेयक (थुनेरा) ध्यामक (तृण विशेष) और पद्माख पुन्नाग तालीसपत्र सुवर्चिका (सज्जी) ॥६४॥ कुटन्नट (स्योनाक) इलायची, सपेद सँभालू, शैलेय, कूट, तगर, प्रियंगु, लोध, नेत्रवाला, सुनहरा गेरू, पपिल, चंदन, सैंधानमक ॥ ॥ ६५ ॥ इन सबको समान भागले महीन पीस शहतमें मिला सींगमें भर दे यह तार्क्ष्य (गरुड) नाम अगद है यह तक्षकके तुल्य जहरीले सर्पके विषको नष्ट करदेवे ॥ ६६ ॥

ऋषभागद ।

मांसीहरेणुत्रिफलामुरंगीरक्तालतायष्टिकपद्मकानि । विडंगतालीशसुगंधिकैलात्वक्कुष्टपत्राणि सचंदनानि ॥ ६७ ॥ भांर्गी पटोलं किणिही सपाठा मृगादनी कर्कटिका पुरं च । पालिंद्यशोकौ क्रमुकं सुरस्याः प्रसूनमारुष्करजं च पुष्पम् ॥ ६८ ॥ चूर्णान्यथैषां निहितानि शृंगे न्यसेच्च पित्तानि समाक्षिकानि । वराहगोधाशिखिशल्लकानां मार्जारजं पार्षतनाकुले च ॥ ६९ ॥ यस्याऽगदोयं सुकृतो गृहे स्यान्नाम्नर्षभो नाम नरर्षभस्य॥न तत्र सर्पाः कुत एव कीटास्त्यजन्ति वीर्याणि विषाणि चैव ॥ ७० ॥ एतेन भेर्य्यः पटहाश्च दिग्धा नानद्यमाना विषमाशु हन्युः । दिग्धाः पताकाश्च निरीक्ष्य सद्यो विषाभिभूता ह्यविषा भवंति ॥ ७१ ॥

जटामांसी हरेणु त्रिफला मुरंगी (सहिंजना) रक्ता (मँजीठ) मुलेठी पद्माख विडंग तालीसपत्र सुगंधिका (सर्पगंधिया नाकुली) इलायची तज तेजपात और चंदन ॥ ६७ ॥ भांर्गी पटोल किणही पाठा तथा मृगादनी कर्कटी (इंद्रायणका फल) गूगल पालिंदी (निसोथ) अशोक सुपारी तुलसीके पुष्प अर्थात् मंजरी

(श्लो० ६८) मृगादनी कर्कटिका इंद्रवारुणी फलं पुरं गुग्गुलुं पालिंदी त्रिवृत् इति (नि० सं०) ।

और भिलावेंके फूल ॥ ६८ ॥ इन सबको पीसकर सींगोंमें भरदेवे और इसमें शूकर गोह (निर्विषगोह) मोर सेह बिलाव पृषत (साबर) और न्योला इनका पित्ता तथा शहत मिलाकर (सींगोंमें भरे) ॥ ६९ ॥ यह ऋषभ नामक अगद सुंदर संपादन किया हुवा जिस राजाके यहां घरमें होवे वहां सर्पभी अपना विष शुक्रादि नहीं त्याग सकेत फिर अन्य कीट मूषकादि की तो क्या सामर्थ्य है (अथवा वहां सर्प विषयुक्त नहीं रहसकते फिर अन्य कीटोंकी क्या सामर्थ्य है सब अपने वीर्य और विषको त्यागदेते हैं किंतु निर्विष होजाते हैं) ॥ ७० ॥ इसको यदि भेरी और दुंदुभी आदि बाजोंपर लेप करके उन्हें बजावे तो विषको शीघ्र नाश करदेते हैं और इसे ध्वजाओंपर लेपकर स्थापन करे तो उन्हें देखकर ही शीघ्र विषव्याप्त मनुष्यगण निर्विष होजाते हैं ॥ ७१ ॥

संजीवन नाम अगद ।

लाक्षा हरेणुर्नलदं प्रियंगुः शिग्रुद्वयं यष्टिकपृथ्विकाश्च । चूर्णीकृतोयं रजनी विमिश्रो वर्गो विधेयो मधुसर्पिषाक्तः ॥ ७२ ॥ शृंगे गवां पूर्ववदापिधानस्ततः प्रयोज्योंजननस्यपानैः । संजीवनो नाम गतासुकल्पमेषो गदो जीवयतीहमर्त्यम् ॥ ७३ ॥

लाख हरेणु नलद (खस) प्रियंगु दोनों सहिंजने मुलेठी बडी इलायची इनको पीसकर हलदी मिलाकर शहत और घृतमें मिलावे ॥ ७२ ॥ फिर इसे पूर्वोक्त क्रमसे गौके सींगोंमें बंद करदे फिर इसे अंजन नस्य और पीनेके लिये उपयुक्त करे यह संजीवन नामक अगद है जो विषसे गतप्राणभी हो गया है (अर्थात् मृत्युप्राय हो गया है) उस मनुष्यको भी जिला देता है ॥ ७३ ॥

दर्वीकर और राजिमंतका अगद ।

श्लेष्मातकोः कट्फलमातुलुङ्गः श्वेता गिरिह्वा किणिही सिता च ।
सतंडुलीयोगदं एषु मुख्यो विषेषु दर्वीकरराजिलानाम् ॥ ७४ ॥

श्लेमांतक (ल्हसुवे) कायफल मातुलुंग (नींबू बिजोरा) श्वेतगिरिह्वा श्वेतस्यंदा किणही (नीलस्यंदा) और मिश्री तथा चौंलाई यह अगद (औषधका योग) मुख्य करके दर्वीकर और राजिमंतोंके विषके अर्थ है ॥ ७४ ॥

मंडली सर्पोंकी औषध ।

द्राक्षा सुगंधा नगवृत्तिका च पिष्टा समंगा समभागयुक्ता । देयो द्विभागः सुरसाच्छदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाच्च ॥ ७५ ॥ तथार्द्धभागो

सितसिंधुवारादंकोटमूलादपि गैरिकाच्च । एषोऽगदः क्षौद्रयुतो निहंति विशेषतो मंडलिनां विषाणि ॥ ७६ ॥

मुनक्का सुगंधा (नाकुली) नगवृत्ति (शल्लकी) इन तीनोंको पीसकर सबके समान मँजीठ मिलावे और दो भाग तुलसीके पत्ते और कैथ बेल और अनार (के पत्र) दो दो भाग ॥ ७५ ॥ और सपेद सँभालू अंकोटकी जड और गेरू ये आधे २ भाग मिलावे इसमें शहत मिलावे यह अगद विशेष करके मंडली सर्पोंके विषको दूर करता है ॥ ७६ ॥

सर्प लूतादि विषनाशक योग ।

वंशत्वगार्द्रामलकं कपित्थं कटुत्रिकं हैमवती सकुष्टा । करंजबीजं तगरं शिरीषपुष्पं च गोपित्तयुतं निहंति ॥ ७७ ॥ विषाणि लूतोंदुरुपन्नगानां कैटं च लेपांजननस्ययोगैः । पुरीषमूत्रानिलगर्भसंगान्निहन्ति वर्त्यंजननाभिलेपैः ॥ ७८ ॥ काचार्मकोथान्पटलांश्च घोरान्पुष्पं च हंत्यंजननस्ययोगैः ॥ ७९ ॥

बांसकी छाल अदरख आंवले कैथ त्रिकटु वच कूट करंजबीज तगर शिरसके फूल इनमें गोपित्त (गोरोचन) मिलावे यह निम्न लिखित व्याधियोंको नष्ट करता है॥७७॥ मकडी चूहे और सर्पके विषको तथा कीडोंके विषको लेप अंजन और नस्यके योगसे दूर करता है और इसीकी बत्ती प्रवेश करने अंजन करने और नाभिपर लेप करनेसे मल मूत्र अधोवायु और गर्भ इनकी रुकावट खुलजाती है॥७८॥ और यही अंजन करनेसे काच, अर्म, कोथ और घोर पटल तथा फूली ये सब नेत्रके रोग दूर हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

कीट विष नाशक ।

समूलपुष्पांकुरवल्कबीजात्काथः शिरीषात्त्रिकटुप्रगाढः ।
सलावणःक्षौद्रयुतोऽथ पीतो विशेषतः कीटविषं निहन्ति ॥ ८० ॥

शिरसकी जड फूल, पत्र, छाल और बीज इनका क्वाथ कर त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल,) मिला लवण (सैंधानमक) मिला और शहत युक्त कर पीवे तो इससे विशेष करके कीडोंका विष नष्ट होजावे ॥ ८० ॥

(श्लो० ७८) अस्यपूर्वार्द्धस्य पूर्वश्लोकोक्तेन निहंति पदेन सहान्वयः ।
(श्लो० ७९) काच अर्म कोथ पटलाः पुष्पं च नेत्ररोगाः ।

मूषक विषनाशक योग ।

कुष्टं त्रिकटुकं दार्वी मधुकं लवणद्वयम् । मालती नागपुष्पं च सर्वाणि मधुराणि च ॥ ८१ ॥ कपित्थरसंपिष्टोयं[3] शर्कराक्षौद्रसंयुतः । विषं हंत्यगदः सर्वं मूँषिकाणां विशेषतः ॥ ८२॥

कूट, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल,) दारुहलदी, मुलेठी, दोनों लवण, (सेंधा, सोंचर,) मालती, नागपुष्प (नागकेशर) और सब मधुर (काकोल्यादि गण) ॥ ८१ ॥ इनको कैथके रसमें पीसकर खांड और शहत मिलाकर पीने आदिमें उपयोग करे यह अगद सब विषोंको नष्ट करता है और विशेष करके मूषकोंके विषको नाश करता है ॥ ८२ ॥

विषनाशक गण ।

सोमराजीफलं पुष्पं कटभी सिंधुवारकः । चोरको वरुणः कुष्टं सर्पगंधा ससतला ॥ ८३ ॥ पुनर्नवा शिरीषस्य पुष्पमारग्वधार्कजम् । श्यामां-बष्ठाविडंगानि तथाम्राश्मंतकानि च ॥ ८४ ॥ भूमी कुरबकश्चैव गण एकसरः स्मृतः।एकशो द्विस्त्रिशो वापि प्रयोक्तव्यो विषापहः ॥ ८५ ॥

इति सुश्रुते कल्पस्थाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सोमराजी (बावची), के बीज और फूल कटभी,सँभालू,चोरक,(गंधद्रव्य),वरणा, कूट, सर्पगंधा (नाकुली, नाई, नामबूटी),सातला॥८३॥पुनर्नवा (सांठी और विषखपरा) शिरसके फूल (तथा पंचांग) किरमालाके फूल और आकके फूल श्याम (श्यामलता या निसोथ या प्रियंगु) अम्बष्ठा (पाठा) वायविडंग और आम्र (आमचूर या आमडा) तथा अश्मन्तक (पीपल सरीखा वृक्ष होता है) ॥८४॥ भूमी (काली मिट्टी बँबईकी मिट्टी) कुरबक (लाल फूलका पियावासा) ये सब एकसर नामक गण हैं इनमेंसे एक या दो या तीन जितनी मिलसकें बहुतही शीघ्र विषपर उपयोग करनी ये विषनाशक हैं इसमें संदेह नहीं इनमेंसे जो मिले उसेही शीघ्र खाने लगाने आदिमें भली भांति उपयोग करनेसे प्रायः विष शांत होजाता है ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) कई इसमें सोमराजी (वाकुची) और फल (मैनफल) तथा पुष्प (नागपुष्प) ऐसा पृथक् पृथक् मानते हैं तथा भूमी कुरबकको एक मानते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीक भाषाटीकायां
कल्पस्थाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।

अथातो मूषिककल्पं व्याख्यास्यामः।

यहांसे अगाडी अब हम मूषिकाओंके विषकी क्रियाका व्याख्यान करते हैं ॥

सविष मूषिकोंके १८ भेद।

पूर्वमुक्ताः शुक्रविषा मूषिका ये समासतः।
नामलक्षणभैषज्यैरष्टादश निबोध तान् ॥ १ ॥

शुक्र विषवाले जो पहले मूषक संक्षेपसे वर्णन किये हैं उनके १८ भेद हैं जिनके नाम लक्षण और विषके उपाय सुनो और समझो ॥ १ ॥

विषमूषकोंके नाम।

लालनः पुत्रकः कृष्णो हंसिरश्चिक्किरस्तथा । छुछूंदरोऽलसश्चैव कषायदशनोपि च ॥ २ ॥ कुलिंगश्चाजितश्चैव चपलः कपिलस्तथा । कोकिलोऽरुणसंगश्च महाकृष्णस्तथोन्दुरः ॥ ३ ॥ श्वेतेन महता सार्द्धं कपिलेनाखुना तथा । मूषिकेश्च कपोताभस्तथैवाष्टादश स्मृताः ॥ ४ ॥

१ लालन २ पुत्रक ३ कृष्ण (कालामूषक) ४ हंसिर ५ चिक्किर ६ छछूँदर ७ अलस ८ कषायदशन ॥ २ ॥ ९ कुलिंग १० अजित ११ चपल १२ कपिल १३ कोकिल १४ अरुणसंग १५ महाकृष्ण ॥ ३ ॥ १६ महाश्वेत १७ कपिलाखु १८ कपोताभ इसप्रकारसे ये १८ भांतिके सविष मूषक होते हैं ॥ ४ ॥

इनके विषकी प्रवृत्ति और लक्षण।

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रघृष्टैः स्पृशंति वा । नखदंतादिभिस्तस्मिन्गात्रे रक्तं प्रदुष्यति ॥ ५ ॥ जायंते ग्रंथयः शोफाः कर्णिका मंडलानि च । पिडकोपचयश्चोग्रा विसर्पाः किटिभानि च ॥ ६ ॥ पर्वभेदो रुजस्तीव्रा ज्वरो मूर्च्छा च दारुणा । दौर्बल्यमरुचिः श्वासो वेपथुर्लोमहर्षणम् ॥ ७ ॥

(श्लो० १) मूषिकाः शुक्रविषाः इति जंगमविषविज्ञानाध्याये पूर्वमुक्तांस्तानष्टादशनिबोधत (इत्यर्थः)

(श्लो० ४) श्वेतेन महता सार्द्धमिति महाश्वेतः इत्यादि ।

(श्लो० ५) नखदंतादिभिरित्यत्रादिशब्दात् पुरीषमूत्राभ्यां च इति निबंधसंग्रहः तथा वा शुक्रेणाथ पुरीषेण। मूत्रेण च नखैस्तथा। दंष्ट्राभिर्वा मूषिकाणां विषं पंचविधं स्मृतमिति तंत्रांतरे तस्मात् मूत्रपुरीषादिभ्यः तद्घृष्टानांच स्पर्शादपि रक्तं प्रदुष्यति ।

(श्लो० ६) कर्णिका कमलमध्यवीजकोशाकृतिः ।

जहां इनका शुक्र गिरे तथा उससे रगडा लगे हुवे पदार्थसे जिनका स्पर्श होजावे अथवा नख दांत और आदि शब्दसे मूत्र तथा मल जिनके शरीरसे स्पर्श होजावे वहाँही उनके शरीरमें रुधिर दूषित होजाताहै ॥ ५ ॥ जिससे ग्रंथि (गांठ) सोजा कर्णिका (किनारेदार चिह्न) और मंडल (चकद्दे) तथा दारुण फुडिया विसर्प और किटिभ ये पैदा होजाते हैं ॥ ६ ॥ पर्वोंमें भेद और तीव्र पीडा ज्वर तथा दारुण मूर्च्छा, दुर्बलता, अरुचि, श्वास, कंप और रोमहर्ष ये हो जाते हैं ॥७॥

पृथक् पृथक् इनके विषके लक्षण और यत्न ।

दुष्टरूपं समासोक्तमेतच्च व्यासतः शृणु ॥ ८ ॥ लालास्रावो लालनेन हिक्का छर्दिश्च जायते । तंडुलीयककल्कं तु लिह्याँ तत्र समाक्षिकम् ॥ ॥ ९ ॥ पुत्रकेणांगसादश्च पांडुवर्णश्च जायते । चीयं ते ग्रंथिभिश्चाङ्ग-माखुशावकसंन्निभैः । शिरीषेंगुदकल्कं तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम्॥ १०॥ कृष्णेनासृक् छर्दयति दुर्दिनेषु विशेषतः । शिरीषफलकुष्टं तु पिबे-त्किंशुकभस्मना ॥ ११ ॥ हिंसिरेणान्नविद्वेषो जृंभा लोम्नां च हर्षणम् । पिबेदारग्वधादिं तु सुवांतस्तत्र मानवः ॥ १२ ॥ चिक्किरेण शिरो-दुःखं शोफो हिक्का वमी तथा । जालिनीमदनांकोटकषायैर्वामयेत्तु तम् ॥ १३ ॥ छुछूंदरेण विड्भंगो ग्रीवास्तंभो विजृंभणम् । यवनालर्षभीक्षारं बृहत्याश्चात्र दापयेत् ॥ १४ ॥

ऊपर जो लक्षण लिखे वे सामान्यतासे दुष्ट (विषयुक्त मूषिक) के कहे इससे अगाडी हरेकके लक्षण विस्तारसे श्रवण करो (यहां दुष्टका अर्थ काटा हुवा नहीं है विषयुक्त है क्योंकि मूषिकोंका शुक्र विषप्रधान है दंष्ट्राविष प्रधान नहीं सो ऊपर लिख चुके हैं) ॥ ८ ॥ "लालन" नाम मूषकके विषसे लार बहे हिचकी चले वमन हो इसमें चौलाईका कल्क शहत मिलाकर चाटे ॥ ९ ॥ "पुत्रक" नाम मूषक के विषसे अंगोंमें सुस्ती शरीरमें पीलापन हो जावे और चूहीके बच्चे जैसी गांठें शरीरपर होजावें इसमें शिरस हिंगोट इनका कल्क शहत मिलाकर चाटे ॥ १० ॥

(श्लो० ८) दुष्टरूपमित्यत्र दुष्टशब्देन विषाभिभूतस्य ग्रहणमेव नतु दंष्ट्रादष्टस्य मूषिकाणां शुक्र विष प्रधानत्वात् ।

(श्लो० ११) किंशुक भस्मना इति भस्मोदकेन इत्यभिप्रायः (इति नि० सं०) ।

(श्लो० १३) जालिनी कोशातकी ।

(श्लो० १४) यवनालं यवनालिका, ऋषभी कपि कच्छुः ऋषभ इति वा पाठे ऋषभकः इति, अनयो-र्बृहत्याश्च क्षारं दापयेत्, विजृंभणं इत्यत्र विषूचिका इति वा पाठः ।

"कृष्ण मूषक" के विषसे रुधिरकी वमन हो विशेष कर बादलोंके दिनोंमें इसमें ढाककी भस्मके जलसे शिरसके बीजोंका कल्क पीवे ॥ ११ ॥ "हिंसिर" के विषसे अन्नमें द्वेष जृंभा रोमहर्ष ये होते हैं इसमें वमन करके आरग्वधादि गणका क्काथ पीवे ॥ १२ ॥ "चिक्किर" के विषसे शिरमें पीडा शोथ हिचकी वमन ये हों इसमें जालिनी (कोशातकी) मैनफल, अंकोट इनके क्काथसे वमन करावे ॥ १३ ॥ "छछूंदर" के विषसे विड्भंग ग्रीवास्तंभ जँभाई ये होते हैं इसमें यवकी नाली केंवच और बृहती इनका क्षार देवे ॥ १४ ॥

ग्रीवास्तंभोऽलसेनोर्द्ध्ववायुर्दंशे रुजा ज्वरः । महागदं ससर्पिष्कं लिह्या-त्तत्र समाक्षिकम् ॥ १५ ॥ निद्रा कषायदंतेन हृच्छोषः कार्श्यमेव च । क्षौद्रोपेता शिरीषस्य लिह्यात्सारफलत्वचः ॥ १६ ॥ कुलिंगेन रुजः शोफो राज्यश्च दंशमंडले । सहे ससिंधुवारे च लिह्यात्तत्र समाक्षिके ॥ ॥ १७ ॥ अजितेन वमी मूर्च्छा हृद्ग्रहः कृष्णनेत्रता । तत्र स्नुहीक्षीर-पिष्टां पालिंदीं मधुना लिहेत् ॥ १८ ॥ चपलेन भवेच्छर्दिर्मूर्च्छा च सह तृष्णया । सभद्रकाष्ठां सजटां क्षौद्रेण त्रिफलां लिहेत् ॥ १९ ॥ कपि-लेन व्रणे कोथो ज्वरो ग्रंथ्युद्गमस्तथा । क्षौद्रेण लिह्यात्त्रिफलां श्वेतां चापि पुनर्नवाम् ॥ २० ॥

" अलस "के विषसे ग्रीवास्तंभ होवे ऊर्द्ध वायु तथा दंश (विष स्पर्श) की जगह पीडा और ज्वर होवे इसमें महाऽगदं नाम योगमें घृत शहत मिलाकर चाटे॥ १५ ॥ "कषायदंत" मूषक के विषसे निद्रा आवे हृदयमें खुश्की हो और कृशता इसमें सिरसका सार फल छाल इन्हें शहतमें मिलाकर चाटे ॥ १६ ॥ " कुलिंग " नाम मूषकके विषसे दंश मंडलकी (विष स्पर्श या काटनेकी) जगह रेखासी होजावें पीडा और सोथ होवे इसमें दोनों सहा (शालपर्णी पृश्निपर्णी) और सँभालू इन्हें शहत मिलाके चाटे॥ १७॥ "अजित" नाम मूषकके विषसे वमन मूर्च्छा हृदयमें रोक और नेत्रोंका कालापन ये लक्षण होतेहैं इसमें थोहरके दूधमें निसोथ पीस शहत मिलाकर चाटे ॥ १८ ॥ " चपल " के विषसे वमन हो मूर्च्छा और तृषा हो इसमें देवदारु जटामांसी और त्रिफला इन्हें शहतके संग चाटे ॥ १९ ॥ और "कापिल" नाम मूषकके विषसे व्रणमें सडन हो ज्वर हो और शरीरमें ग्रंथी हो इसमें श्वेतस्पंद और सांठीको त्रिफला और शहतके संग चाटे (अथवा श्वेतपुनर्नवा ऐसा एक पदभी मानते हैं) (इसका विष जहां लगता है वहां व्रण हो जाता है और फिर दुर्गंधित होजाता है) ॥ २० ॥

ग्रंथयः कोकिलेनोग्रा ज्वरो दाहश्च दारुणः ।
वर्षाभूनीलिनीक्काथसिद्धं तत्र घृतं पिबेत् ॥ २१ ॥

" कोकिल " नामक मूषिकके विषसे उग्र ग्रंथि ज्वर और तीक्ष्ण दाह होता है इसमें पुनर्नवा और नीलनीके क्काथसे सिद्ध किया हुआ घृत पीवे ॥ २१ ॥

अरुणेनानिलः क्रुद्धो वातजान् कुरुते गदान् । महाकृष्णेन पित्तं च श्वेतेन कफ एव च ॥ २२ ॥ महता कपिलेनासृक् कपोतेन चतुष्टयम् । भवंति चैषां दंशेषु ग्रंथिमंडलकर्णिका ॥ २३ ॥ पिडकोपचयाश्चोग्राः शोफश्च भृशदारुणः । दधिक्षीरघृतप्रस्थास्त्रयः प्रत्येकशो मताः ॥ २४ ॥ करंजारग्वधव्योषबृहत्यंशुमतीस्थिराः ॥ २५ ॥ निःक्काथ्य चैषां क्काथस्य चतुर्थांशः पुनर्भवेत् । त्रिवृत्तिलामृताचक्रसर्पगंधासमृत्तिका ॥ २६ ॥ कपित्थदाडिमत्वक्च सुपिष्टानि तु दापयेत् । तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २७ ॥ पंचानामरुणादीनां विषमेतद्व्यपोहति ॥ २८ ॥

" अरुण " नामक मूषकके विषसे वायु क्रुद्ध होकर वायुके रोग करता है और " महाकृष्ण " के विषसे पित्त (कुपित होकर पित्तके उपद्रव करता है) तथा " श्वेत " मूषकके विषसे कफ कुपित होता है (और कफकी व्याधियां करता है) ॥ २२ ॥ और " महा कपिल " के विषसे रुधिर कुपित होता है तथा " कपोत " मूषकके विषसे चारों दोष कुपित होजाते हैं । इनके दंशस्थानमें या जहां इनका विष लगे वहां गांठ होजावे चकद्दे और कर्णिका पड जावे ॥ २३ ॥ दारुण फोडा पैदा होजावे और दारुण सोथ होवे । इनके लिये ऐसा करे कि दही दूध और घृत ये एक एक तीन प्रस्थ लेवे ॥ २४ ॥ और करंज अमलतास त्रिकटु बडी कटेली अंशुमती (शालपर्णी) स्थिरा (काकोली)(स्थिराका अर्थ शालपर्णीभी है और काकोलीभी है यहां काकोली है) ॥ २५ ॥ इन सबका क्काथ करके उसे चतुर्थांश रहे उतारके निशोथ तिल गिलोय तगर नाकुली और मिट्टी (काली मिट्टी) ॥ २६ ॥ कैथ और अनारकी छाल इन सबको पीसकर उस क्काथमें डाले और घृतादिकभी डाल दे और मंद अग्निसे पकावे ॥ २७ ॥ यह घृत अरुणादिक पांचों मूषकोंके विषको नष्ट करनेवाला है ॥ २८ ॥

(श्लो० २५) अंशुमती शालपर्णी स्थिरा अत्र काकोली ।
(श्लो० २८) एतत्घृतं पानाभ्यंजनादितः अरुणादीनां विषं व्यपोहति नाशयति ।

सामान्य यत्न ।

काकादनीकाकमाचीस्वरसेष्वथ वा कृतम् । शिराश्च स्रावयेत्प्राज्ञः कुर्यात्संशोधनानि च ॥ २९॥ सर्वेषां च विधिः कार्यो मूषिकानां विषेष्वयम् । दग्ध्वा विस्रावयेद्दंशं प्रच्छितं च प्रलेपयेत् । शिरीषरजनीकुष्ठकुंकुमैरमृतायुतैः ॥ ३० ॥

काकादनी और काकमाची इनके स्वरसमें सिद्ध किया घृत देवे अथवा और शिरा वेधन और वमन विरेचन द्वारा बुद्धिमान् वैद्य संशोधन भी करे ॥ २९ ॥ सब प्रकारके मूषकोंके विषमें यह विधि करनी चाहिये कि दंशकी जगह जलाकर रुधिर निकाल दे पछने लगाकर शिरस, हलदी, कूट, कुंकुम, (केसर) और गिलोय इन्हें पीसकर लगा देवे ॥ ३० ॥

वमनका उपयोग ।

छर्दनं जालिनीक्वाथैः शुकाख्यांकोटयोरपि । शुकाख्याकोशवत्योश्च मूलं मदन एव च ॥ ३१॥ देवदालीफलं चैव दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ॥ ३२॥ फलं वचा देवदाली कुष्टं गोमूत्रपेषितम् । पूर्वकल्पेन योज्याः स्युः सर्वोदुरविषच्छिदः ॥ ३३ ॥

और जालिनी (कडुतोरई) के क्वाथसे वमन करे सोना पाठा और अंकोलके क्वाथसे अथवा श्योनाक और कोशातकी इनकी मूल और मैनफल तथा देवदाली (श्योनाक) का फल इन्हें दहीके संग पीकर वमन करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अथवा मैनफल वच श्योनाक कूट इन्हें गोमूत्र में पीकर पूर्वोक्त वमन करे यह सब मूषकोंके विषका नाशक हैं ॥ ३३ ॥

विरेचन नस्य अंजन और अवलेह ।

विरेचने त्रिवृद्दंतीत्रिफलाकल्क इष्यते । शिरो विरेचने सारः शिरीषफलमेवच ॥ ३४ ॥ कटुत्रिकाद्यश्च हितो गोमयस्वरसोंजने । कपित्थगोमयरसः सक्षौद्रो लेह इष्यते ॥ ३५ ॥

निसोथ, दंती, त्रिफला, इनका कल्क विरेचनमें श्रेष्ठ है (अर्थात् इनसे विरेचन करावे) और शिरसका सार और शिरसके बीजोंकी नस्य करके (शिरका रेचन करे) ३४ ॥ त्रिकटु और गोबरका रस इनका अंजन करे और कैथ गोबरका रस और शहत इन्हे चाटे ॥ ३५ ॥

रसांजनहरिद्रेंद्रयवकट्वीषु वा कृतम् । कल्कं सातिविषं प्रातर्लिह्याच्च क्षौद्रसंयुतम् ॥ ३६ ॥ तंडुलीयकमूलेषु सर्पिःसिद्धं पिबेन्नरः । आस्फोत मूलसिद्धं वा पंचकापित्थमेव वा ॥ ३७ ॥

रसोत दोनों हलदी इंद्रजौ कुटकी और अतीस इनका कल्क करके शहत मिलाकर प्रातःकाल नित्य चाटे ॥ ३६ ॥ अथवा चौलाईकी जडमें सिद्ध किया हुवा घृत पीवे अथवा आस्फोत (कोविदार) के मूलमें सिद्ध किया घृत पीवे अथवा कपित्थके पंचांगमें सिद्ध घृत पीवे (जड छाल पत्र पुष्प फल इन्हें पंचांग कहते हैं) ॥ ३७ ॥

मूषिकानां विषं प्रायैः कुप्यत्यभ्रेषु निर्हृतम् । तत्राप्येष विधिः कार्यो यश्च दूषीविषापहः ॥ ३८ ॥ स्थिराणां रुजतां वापि व्रणानां कर्णिकां भिषक् । पाटयित्वा यथादोषं व्रणवच्चापि शोधयेत् ॥ ३९ ॥

मूषिका (चूहों) का विष ठहरा हुवा वर्षाके दिनोंमें कुपित होता है इसमें भी दूषीविष नाशक विधि करनी चाहिये ॥ ३८ ॥ जो इनका विष स्थिर हो जावे पीडा करे तो व्रणोंकी कर्णिका (चकल) को शस्त्रसे चीरकर दोषोंके अनुसार व्रणोंके समान उन्हें शुद्ध करें ॥ ३९ ॥

शृगाल कुक्कुर आदिकी उन्मत्तता ।

शृगालश्वतरक्षृक्षव्याघ्रादीनां यदानिलः ।
श्लेष्मप्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञां संज्ञावहाश्रितः ॥ ४० ॥

स्यार कुत्ता तरखू रीछ और व्याघ्र आदि जो जीव हैं जब इनके शरीरमें वायु कफ करके दूषित हो जाता है और संज्ञा वहा शिराओंमें स्थित होता है तब इनकी संज्ञा (बुद्धि) नष्ट हो जाती है ॥ ४० ॥

उन्मत्त कुत्ते स्यार आदिके लक्षण ।

तदा प्रस्रस्तलांगूलः हनुस्कंधोऽतिलालवान् ।
अत्यर्थबधिरोंधश्च सोऽन्योन्यमभिधावति ॥ ४१ ॥

जब ये कुत्ते आदि उन्मत्त होते हैं तब इनकी पूँछ सीधी हो जाती है जबडे और कंधे ढीले पड जाते हैं (या अकड जाते हैं) मूँहसे राल बहती है अत्यंत बहरा या अंधा हो जाता है और जिस तिसकी तरफ दौडता है ॥ ४१ ॥

(श्लो० ३८) शिष्टस्य विषस्य कोपसमये वृद्धवाग्भट्टइत्याह " सशेषंमूषिकाविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने । यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु ।

(श्लो० ४०) आदिशब्देनात्र वृकचित्रकादयो हिंस्राः पशवो ग्राह्याः ।

इनके काटेहुएके लक्षण ।

तेनोन्मत्तेन दष्टस्य दंष्ट्रया सविषेण तु । सुप्तता जायते दंशे कृष्णं चाति स्रवत्यसृक् । दिग्धविद्धस्य लिंगं न प्रायशश्चोपलक्षितः ॥ ४२ ॥

इन कुत्ते आदि उन्मत्त जीवोंकी विषयुक्त डाढसे कटे हुए मनुष्यके शरीरमें डाढकी जगह सुन्न पड़जाती है और उसमेंसे बहुतसा काला रक्त निकलता है और उसमें प्रायः विषलिप्त शस्त्रके व्रणकेसे लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

इनकी असाध्यता ।

येन चापि भवेद्दष्टस्तस्य चेष्टारुतं नरः । बहुशः प्रतिकुर्वाणः क्रियाहीनो विनश्यति ॥ ४३ ॥ दंष्ट्रिणा येन दष्टश्च तद्रूपं यदि पश्यति । अप्सुवा यदिवाऽऽदर्शे रिष्टं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ४४ ॥ त्रस्यत्यकस्माद्योऽभीक्ष्णं श्रुत्वा दृष्ट्वाऽपि वा जलम् । जलत्रासं तु विद्यात्तं रिष्टं तमपि कीर्तितम् ॥ ४५ ॥

जिस पशुने मनुष्यको काटा हो यदि वह बहुधा उसीकेसी चेष्टा और शब्द करे और क्रियाओंसे हीन हो जावे तौ वह मनुष्य मरजाता है ॥ ४३ ॥ और जिस कुक्कुर आदि पशुने उसे कटाहो यदि पानी या कांचमें उसीकी मूर्ति दीखे तो उसे अरिष्ट (असाध्य) कहना चाहिये ॥ ४४ ॥ और जो पानीको देखकर या उसका शब्द सुनकर अकस्मात् डरने लगे तो उसे जलत्रास जानो और उसेभी अरिष्टही कहा है (अर्थात् उसेभी असाध्य समझिये) ॥ ४५ ॥

अदष्टो वा जलत्रासी न कथंचन सिध्यति ।
प्रसुप्तोऽथोत्थितोवापि स्वस्थस्त्रस्तो न सिध्यति ॥ ४६ ॥

विनाही काटे हुए यदि कोई जलसे डरने लगे तो वह मृत्युको प्राप्त होवे और जो सोता हुवा अथवा सोता उठकर स्वस्थ मनुष्य जलसे डरे (और उपरोक्त चेष्टा करे) तो वह भी असाध्य होता है ॥ ४६ ॥

(वक्तव्य) यदि कोई स्वप्नमें डरे तो उसे ऐसा नहीं समझना–विना काटे हुए कफकी प्रधानसे हृदयमें कफ छा जाने से भी जलादिसे डर और कुचेष्टा हो जाया करती हैं । देखो टिप्पणी।

(श्लो० ४३) रुतं शब्दम् ।

(श्लो० ४६) अदष्ट इत्यादि बुद्धिस्थानं यदा श्लेष्म केवलं प्रतिपद्यते। तदा बुद्धौ निरुद्धायां श्लेष्मणाधिष्ठितो नरः । जाग्रत्सुप्तोत्थमात्मानं मज्जंतमिव मन्यते । सलिले त्रस्यति तदा जलत्रासं तु तं विदुरिति (नि० सं०) त्रस्तः जलेन त्रस्त इति ।

उन्मत्त कुत्ते आदिकी चिकित्सा।

विस्राव्य दंशं तं दष्टं सर्पिषा परिदाहितम्। प्रदिह्यादगदैः सर्पिः पुराणं वापि पाययेत् ॥ ४७ ॥ अर्कक्षीरयुतं चास्य दद्याच्छीर्षविरेचनम्। श्वेतां पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तूरकायुताम् ॥ ४८ ॥ पललं तिलतैलं च रूपिकायाः पयो गुडः। निहंति विषमालर्कं मेघवृंदमिवानिलः ॥ ४९ ॥

इन उन्मत्त कुत्ते आदिके काटे हुएको डाढकी जगहका रुधिर निकालकर गरम घृतसे जला देवे (जिससे विष निःशेष हो) फिर महा अगदादिका लेप कर देवे और पुराना घृत पिलावे ॥ ४७ ॥ और आकके दूध युक्त (नस्योंसे) शिरका विरेचन करे अथवा सुपेद साटीमें धतूरा युक्त करके देवे ॥ ४८ ॥ पलल (तिल-कुट) और तिलका तैल और आकका दूध और गुड ये अलर्क (उन्मत्त कुक्कुर) के विषको नष्ट करते हैं जैसे बहुतसे बादलोंको वायु उडा देता है ॥ ४९ ॥

विषकोपकरणविधिः।

मूलस्य शरपुंखायाः कर्षं धत्तूरकार्द्धिकम्। तंडुलोदकमादायपेषयेत्तंडुलैः सह ॥ ५० ॥ उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु सवेष्टचापूपकं पचेत्। खादेदोषर्ध-काले तदलर्कविषदूषितः ॥ ५१ ॥

शरपुंखा (नीलझोझरू) की जड़ एक कर्ष और धतूरेकी जड़ आधा कर्ष ले इनमें थोडे चावल मिलाकर चावलोंके जलसे पीस ले और लुगदीसी बना ले ॥ ॥ ५० ॥ फिर उसपर धतूरेके (छः सात) पत्ते लपेटकर उसे पका लेवे इसे उन्मत्त कुत्तेके काटे हुएके विषसे दूषित मनुष्य औषधके समय खावे ॥ ५१ ॥

करोत्यन्यान्विकारांस्तु तस्मिञ्जीर्यति चौषधे। विकाराः शिशिरे याप्या गृहे वारि विवर्जिते ॥ ५२ ॥ ततः शांतविकारस्तु स्नात्वा चैवापरेऽहनि। शालिषष्टिकयोर्भक्तं क्षीरेणोष्णेन भोजयेत् ॥ ५३ ॥

(श्लो० ४७) विस्राव्य निष्पीडनेन स्रावयित्वा। अगदैर्महागदैः।

(श्लो० ४८) श्वेता पुनर्नवाविशेषणं अन्ये तु कटभीमाहुः। धत्तूरमूलस्यार्द्धेन युतां इति अन्यत्तु धत्तूर फलमाहुः (इति नि० सं०)।

(श्लो० ४९) पललं तिलकल्कः सस्नेहः (इति डल्हनः)।

(श्लो० ५०) धत्तूरार्धिकं धत्तूरजटाया अर्द्धकार्षिकभागमिति (नि० सं०)।

(श्लो० ५१) उन्मत्तस्य धत्तूरस्य अपूपकं न पूयते विशीर्यते तदपूपकं चूर्णपिष्टकमित्यर्थः। (इति श० स्तो०) अलर्कः उन्मत्तकुक्कुर इति (नि० सं०)।

(श्लो० ५२) तस्मिन्नौषधे जीर्यति सति [illegible]कारान् करोति ते विकाराः शिशिरे वारिवर्जिते गृहे याप्याः शमनीयाः।

इस औषधके पचते समय जो यह कोई और विकार (उन्मत्तता आदि) करे तो उन विकारोंको जलवर्जित शीतल मकानमें शांत करे ॥ ५२ ॥ और जब विकार शांत हो जावे तब दूसरे दिन स्नान कराके शालि या सांठी चावलोंका भात गरम दूधके साथ भोजन करावे ॥ ५३ ॥

दिनेत्रये पंचमे वा विधिरेषोऽर्द्धमात्रया । कर्तव्यो भिषजावश्यमलर्क-विषनाशनः ॥ ५४ ॥ कुप्येत्स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः । तस्मात्प्रकोपयेदाशु स्वयं यावन्न कुप्यति ॥ ५५ ॥

तीसरे या पांचवें दिन फिर आधी मात्रासे यही विधि करे वैद्यको उन्मत्त कुकुरके विष नाश करनेको अवश्य यह विधि करनी चाहिये (यह विधि इस लिये है कि वह विष इसके करनेसे कुपित होजावे यह उस विषके कोप करनेके लिये है इसका प्रयोजन अगले श्लोकसे विदित हो जावेगा) ॥ ५४ ॥ जिसके इनका विष आपसे आप कुपित होता है वे नहीं जीवते हैं इससे विषके स्वयं कुपित होनेसे पहले शीघ्रही औषधादिसे कुपित कर देना चाहिये (क्योंकि औषधादि द्वारा कुपित किया विष शांत होकर निःशेष होजाता है और आपसे कोप हुआ शांत नहीं होता) ॥ ५५ ॥

तंत्रविधिः ।

बीजरत्नौषधीगर्भैः कुंभैः शीतांबुपूरितैः । स्नापयेत्तं नदीतीरे समंत्रैर्वा चतुष्पथे ॥ ५६ ॥ बलिं निवेद्य तत्रापि पिण्याकं पललं दधि । माल्यानि च विचित्राणि मांसं पक्कामकं तथा ॥ ५७ ॥ अलकाधिपते यक्ष सारमेयगणाधिप । अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात् ॥ ५८ ॥

विषनाशक बीज रत्न और औषधी जिसमें पड़ी हो शीतल जलसे भरे हुये घड़ोंसे उस मनुष्यको नदीके किनारे या चौराहेमें मंत्रयुक्त स्नान करावे ॥ ५६ ॥ और वहांही खल (कुटे तिल) दही पुष्पमाला (भांतभांतके पुष्प) और कच्चा पक्का मांस इनकी बलि देवे ॥ ५७ ॥ बलि देते समय और स्नान कराते समय " अलकाधिपते यक्ष सारमेयगणाधिप । अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात् " यह मंत्र

(श्लो० ५६) बीजरत्नौषधीगर्भैरिति विषघ्नबीजानि शिरीषादीनां विषघ्नरत्नानि च विषघ्नऔषधानि कटभीपुनर्नवादीनि गर्भे येषां एवं भूतैः शीतांबुपूरितैः घटैः समंत्रैश्च स्नापयेदित्यर्थः ।

(श्लो० ५८) अलका कुबेरस्य नगरी अलकाधिपते इत्यत्र अलर्काधिपते इति वा पाठः अलर्कः उन्मत्त-कुक्कुरः सारमेय इति सरमायाः कश्यपपत्न्याः जाताः कुक्कुरजातयः ।

पढे इसका अर्थ यह है कि हे अलकापुरीके स्वामी यक्ष (कुबेर) हे सारमेय (कुक्कुरों) के गणोंके अधिपति इस कुत्तेके काटे हुयेको आप मेरे लिये शीघ्रही निर्विष कीजिये ॥ ५८ ॥

दद्यात्संशोधनं तीक्ष्णमेवं स्नातस्य देहिनः । अशुद्धस्य सुरूढेपि व्रणे कुप्यति तद्विषम् ॥ ५९॥ श्वादयोऽभिहिता व्याला वातपित्तप्रकोपनाः । अतः करोति दष्टस्तु तेषां चेष्टां रुतं नरः ॥ ६० ॥ बहुशः प्रतिकुर्वाणो न चिरान्म्रियते च सः ॥ ६१ ॥ नखदंतक्षतं व्यालैर्यत्कृतं तद्विमर्दयेत् । सिंचेत्तैलेर्न कोष्णेन ते हि वातप्रकोपजाः ॥ ६२ ॥

इति सुश्रुते कल्पस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार स्नान किये पीछे रोगीको तीक्ष्ण शोधन (वमन रेचन) करावे क्योंकि विना शोधन किये हुयेका घाव भर भी जावे तो भी फिर (काल पाकर) विष कुपित हो सकता है ॥ ५९ ॥ कुत्तेकी आदि लेकर जो डाढसे काटनेवाले चतुष्पद हिंस्रक जीव होते हैं ये वात पित्तके प्रकोप करनेवाले होते हैं इससे उनका काटा हुवा मनुष्य उनकेसी चेष्टा और शब्द करता है ॥ ६० ॥ जो बहुधा ऐसा करे वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होवे ऐसा जानना ॥ ६१ ॥ इन जीवोंके नख या दांतके काटेका जो घाव हो उसे दबाकर (रुधिर निचोड़कर) निवाये तैलसे सेचन करना चाहिये क्योंकि वे व्रण वायुके कोपसे उत्पन्न हुये हैं ॥ ६२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकभाषाटीकायां कल्पस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो दुंदुभिस्वनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम दुंदुभिस्वनीय (अर्थात् नगारे आदिके ऊपर विषनाशक औषध लेप करके उसके शब्दसे विष दूर करनेकी विधि रूपक)अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

क्षारागद ।

धवाश्वकर्णतिनिशपलाशपिचुमर्दपाटलिपारिभद्रकाम्रोदुंबरकरहाटकार्जुन ककुभसर्जकपीतनश्लेष्मातकांकोटामलकप्रग्रहकुटजशमीकपित्थाश्मका-

---

(गद्य १) अर्जुनककुभ इत्येकार्थकशब्दयोर्द्वयोः पठनेन द्विगुणी मात्रा ग्राह्या इति।अत्र डल्हनस्तु ककुभः सुगंधिविटपिविशेष इत्याह । प्रग्रहः किरमालकः ।

र्कचिरबिल्वमहावृक्षारुष्करारलुमधुकमधुशिग्रुशाकगोजीमूर्वातिल्वकेक्षुर-कगोपघंटारिमेदानां भस्मान्याहृत्य गवां मूत्रेण क्षारकल्पेन परिस्राव्य विपचेत् ॥ १ ॥ दद्याँच्चात्र पिप्पलीमूलतंडुलीयकवरांगचोचकमंजिष्ठा-करंजिकाहस्तिपिप्पलीमरिचोत्पलसारिवाविडंगगृहधूमानंतासोमसरलाबा-ह्लीकगुहाकोशाम्रश्वेतसर्षपवरुणलवणप्लक्षनिचुलकवर्द्धमानवंजुलपुत्रश्रेणी सप्तपर्णदंडकैलावालुकनागदंत्यतिविषाभयाभद्रदारुकुष्टहरिद्रावचाचूर्णानि लोहानां च समभागानि ततः क्षारवदागतपाकमवतार्य लोहकुंभे निदध्यात् ॥ २ ॥

धव, महासर्ज, तिनिश, ढाक, नीब, पाढ, पारिभद्र, आंब, गूलर, करहाटक, (मैनफल) अर्जुन, कुहा, रालका वृक्ष, कपीतन, (शिरस) लहेसुवा, अंकोट, आंवला, प्रग्रह, (किरमाला,) कुडा, जांट, कैथ, अश्मंतक, आक, किरंज, थूहर, भिलावा श्योनाक, मुलेटी, मीठा, सोहँजना, शाक, गोजिह्वा, मूर्वा, लोध, तालमखाना, गोप-घोंटा, अरिमेद, (विट्खदिर) इनके मूल छाल पत्रादिकी भस्म कर गोमूत्रमें घोल क्षारविधिसे चुवाकर पकावे ॥ १ ॥ और पकते समय इसमें ये औषध डाले पीपलीमूल, चौलाई, वरांग (दालचीनी) चोचक (तज) मजीठ, करंज, गजपीपल, मिरचस्याह, कमलसारिवा, विडंग, घरका धूम, अनंता, सोमवल्क,सरला, (निसोथ) बाल्हीक, (कुंकुम) गुहा, (शालपर्णी) कोशाम्र,सपेद सरसों,वरणा,लवण,पिलखन, जलवेंत, वर्द्धमान, (अरंड) वंजुल, पुत्रश्रेणी (दंती) सप्तपर्ण, (सातला) दंडक, (श्योनाक) एलवालुक, नागदंती, (इंद्रवारुणी) अतीस, हरडे, देवदारु, कूट,हलदी, वच,इनका चूर्ण करके डाले और लोहका चूर्ण भी सबके समान डाले और जब क्षारकी भांत पकाव पर आजावे तब उतार ले और लोहेके घड़ेमें भर रक्खे ॥ २ ॥

अनेन दुंदुभिं लिंपेत्पताकातोरणानि च । श्रवणाद्दर्शनात्स्पर्शाद्विषा-त्संप्रतिमुच्यते ॥ ३ ॥ एष क्षारागदो नाम शर्करास्वश्मरीषु च । अर्श-स्सुवातगुल्मेषु कासशूलोदरेषु च ॥ ४ ॥ अजीर्णे ग्रहणीदोषे भक्तद्वेषे च दारुणे ।शोफे सर्वसरे चापि देयः श्वासे च दारुणे ॥ ५ ॥ एष सर्व-विषार्तानां सर्वथैवोपयुज्यते । तथा तक्षकमुख्यानामयं दर्पांकुशोऽ-गदः ॥ ६ ॥

इस उपरोक्त क्षारागदको नगारों आदि बाजोंपर लेप करे और ध्वजाओं और पताकाओं परभी लेप करे उन बाजोंके शब्द सुनने और ध्वजा आदिके देखने छूने आदिहींसे मनुष्य विषसे छूट जावे ॥ ३ ॥ यह क्षारागद नाम औषध शर्करा पथरी बवासीर वायुके गुल्म खाँसी शूल उदररोग इनमें ॥ ४ ॥ तथा अजीर्ण ग्रहणीदोष भक्तद्वेष दारुण सर्वांग सोथ और बढे हुये श्वास इतने रोगोंमें देवे (खिलावे) ॥ ५ ॥ यह सब प्रकारके विषपीडितों को सब भांत (खाने लगाने आदिमें) उपयोग कर सकते हैं यह तक्षक आदि सर्पोंके भी दर्पका अंकुश है ॥६॥

(वक्तव्य) तक्षकमुख्यानां यह तो विशेषोक्ति है हां इससे प्रयोजन यह है कि बडे विषधर सर्पोंके भी विषको नष्ट कर सकता है तौ और क्षुद्र सर्प तथा कृमि मूषकादिके विषकी तो क्या गणना है ॥

कल्याण घृत ।

विडंगत्रिफलादंतीभद्रदारुहरेणवः । तालीशपत्रमंजिष्ठाकेशरोत्पलपद्मकम् ॥ ७ ॥ दाडिमं मालतीपुष्पं रजन्यौ सारिवे स्थिरे । प्रियंगुस्तगरं कुष्टं बृहत्यौ चैलवालुकम् ॥ ८ ॥ सचंदनगवाक्षीभिरेतैः सिद्धं विषापहम् । सर्पिः कल्याणकं ह्येतद्ग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ९ ॥ पांड्वामयगरश्वासमंदाग्निज्वरकासनुत्।शोषिणां स्वल्पशुक्राणां वंध्यानां च प्रशस्यते १०

विडंग त्रिफला दंती देवदारु हरेणु तालीसपत्र मंजीठ नागकेशर कमल पद्माख ॥ ७ ॥ अनार मालतीपुष्प दोनों हलदी दोनों सारिवा दोनों स्थिरा (अर्थात् शालपर्णी पृश्निपर्णी) प्रियंगु तगर कूट दोनों कटेली और एलवालुक ॥ ८ ॥ चंदन इंद्रायण इन सबमें सिद्ध किया हुवा घृत विषका नाश करता है यह कल्याणघृत है ग्रह मृगी इन्हें नष्ट करता है ॥ ९ ॥ और पांडुरोग गर (कृत्रिम विष) श्वास मदाग्नि ज्वर खाँसी इन्हें भी नष्ट करता है शोषरोगवाले अल्प वीर्यवाले और वंध्या स्त्रियोंको भी श्रेष्ट है ॥ १० ॥

अमृताख्य घृत ।

अपामार्गस्य बीजानि शिरीषस्य तथैव च । श्वेते द्वे काकमाचीं च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥ ११ ॥ सर्पिरेतैस्तु संसिद्धं विषसंशमनं परम् । अमृतं नाम विख्यातमपि संजीवयेन्मृतम् ॥ १२ ॥

ओंगेके बीज और शिरसके बीज दोनों प्रकारकी श्वेता (कटभी और महाकट भी) और काकमाची (मकोह) इन्हें गोमूत्रमें पीसे ॥११॥इनसे सिद्ध किया हुवा

घृत विषका परम शमन करता है यह अमृत नामक विख्यात घृत है विषसे मरे हुए तकको भी जिला देता है ॥ १२ ॥

महासुगंधि अगद ।

चंदनागुरुणी कुष्टं तगरं तिलपर्णिकम् । प्रपौंडरीकं नलदं सरलं देवदारु च ॥ १३ ॥ भद्रश्रियं यवफलां भार्गीं नीलीं सुगंधिकाम् । कालेयकं पद्मकं च मधुकं नागरं जटाम् ॥ १४ ॥ पुन्नागैलैलवालूनि गैरिकं ध्यामकं बलाम् । तोयं सर्जरसं मांसीं सितपुष्पां हरेणुकाम् ॥ १५ ॥ तालीशपत्रं क्षुद्रैलां प्रियंगुं सकुटन्नटाम् । शैलपुष्पं सशैलेयं पत्रं कालानुसारिवाम् ॥ १६ ॥

चंदन दोनों भांतका अगुरु कूट तगर तिलपर्णी प्रपौंडरीक नरसल सरल देव दारु ॥ १३ ॥ भद्रश्रिय (सुपेद चंदन) यवफला (दूधी) भाडंगी नीली सुगंधिका (नाकुली) कालेयक (पीतचंदन) पद्माख मुलेटी सोंठ जटा (रुद्रजटा) ॥ १४ ॥ पुन्नाग, इलायची, एलवालुक, गेरु, ध्यामकतृण, खरेंटी, नेत्रवाला, राल, जटामांसी सितपुष्पा (मल्लिका) हरेणुका ॥ १५ ॥ तालीसपत्र, छोटी इलायची, प्रियंगु, श्योनाक, शैलपुष्प (पत्थरका फूल यह इस नामसे प्रसिद्ध है कई पुष्पकासीस कहते हैं) शैलेय (शिलारस) पत्रज कालानुसारिवा (तगरका भेद) ॥१६॥

कटुत्रिकं शीतशिवं काश्मर्यं कटुरोहिणीम् । सोमराजीमतिविषां पृथ्विकामिंद्रवारुणीम् ॥ १७ ॥ उशीरं वरुणं मुस्तं नखं कुस्तुंबुरुं तथा । श्वेते हरिद्रे स्थौणेयं लाक्षां च लवणानि च ॥ १८ ॥ कुमुदोत्पलपद्मानि पुष्पं चापि तथार्कजम् । चंपकाशोकसुमनस्तिलकप्रसवानि च ॥१९॥ पाटलीशाल्मलीशेलुशिरीषाणां तथैव च । सुरस्यास्तृणशूल्याश्च सिंधुवारस्य यानि च ॥ २० ॥ धवाश्वकर्णयोश्चापि पुष्पाणि तिनिशस्य च । गुग्गुलुं कुंकुमं बिंबीं सर्पाक्षीं गंधनाकुलीम् ॥ २१ ॥ एतत्संभृत्य संभारं सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । गोपित्तमधुसर्पिर्भिर्युक्तं शृंगे निधापयेत् ॥२२॥

(श्लो० १७) पृथ्वीका श्यामवर्णकः स्थूलजीरकः ।

(श्लो० १८) स्थौणेयम् ।

(श्लो० २०) तृणशूल्याः केतक्याः (इति नि० सं०) ।

त्रिकटु, कपूर, खंभारी, कुटकी, वाकुची, अतीस, पृथ्वीका, (कालाजीरा) इंद्रायन ॥ १७ ॥ खस, वरणा, मोथा, नख, (सुगंध द्रव्य) धनियां, दोनों श्वेता, दोनों हलदी, थुनेरा, लाख, सब नमक ॥ १८ ॥ कमोदनी, कमलपद्म, आकके फूल, चंपा, अशोक इनके फूल (अथवा सुमन चमेली) तिलका पंचांग ॥ १९॥ पाटल, संभल, ल्हेसुवा, शिरस, तुलसी, केतकी, सिंभालू, इन सबके फूल ॥ २० ॥ और धव और महासर्ज और तिनिश इनकेभी फूल, गूगल, केसर, कंदूरी, सर्पाक्षी और गंधनाकुली (नाकुलीका भेद) ॥ २१ ॥ इन सबको इकट्ठा करके महीन चूर्ण कर लेवे इसमें गोरोचन शहत और घृत मिलाकर सींगमें भर देवे और रक्खे ॥ २२ ॥

इसके गुण ।

भग्नस्कंधं विवृत्ताक्षं मृत्योर्दंष्ट्रांतरं गतम्।अनेनागदमुख्येन मनुष्यं पुनराहरेत् ॥ २३ ॥ एषोऽग्निकल्पं दुर्वारं क्रुद्धस्यामिततेजसः । विषं नागेपतेर्हन्यात्प्रसभं वासुकेरपि ॥ २४ ॥ महासुगंधिनामाऽयं पंचाशीत्यंगयोजितः। राजाऽगदानां सर्वेषां राज्ञो हस्ते भवेत्सदा ॥ २५ ॥ तेनानुलिप्तस्तु नृपो भवेत्सर्वजनप्रियः । भ्राजिष्णुतां च लभते शक्रमध्यगतोपि सन् ॥ २६ ॥

जिसके कंधे टूटगये हों नेत्र फट गये हों मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होगया हो उस मनुष्यकोभी वैद्य इस अगदश्रेष्ठसे फिर उभार सकता है ॥ २३ ॥ यह अग्निके तुल्य दुर्निवार्य क्रोधयुक्त अप्रमित तेजस्वी नागोंके पति वासुकी जैसे सर्पोंके विषको नष्ट कर देवे ॥ २४ ॥ यह महासुगंधि नामक अगद पिच्चासी (८५) औषधों के योगसे बना है यह सब अगदयोगोंका राजा है यह सदा राजाके हाथमें रहना चाहिये ॥ २५ ॥ इसे राजा अनुलेपन करे तो सब मनुष्योंका प्यारा होवे और इंद्रादि देवताओंके बीचमेंभी कांतिमान् मालूम होवे और शोभाको प्राप्त हो ॥२६॥

उष्णवर्ज्यो विधिः कार्यो विषार्तानां विजानता ।
मुक्त्वा कीटविषं तद्धि शीतेनाभिप्रवर्द्धते ॥ २७ ॥

जानकार वैद्य विषपीडितोंके लिये उष्णतारहित (शीत) विधि करे परंतु कीटोंके विषमें शीत विधि नहीं करे क्योंकि यह कीटविष शीतसे बढ़ता है ॥ २७ ॥

विषातुरके पथ्यापथ्य ।

अन्नपानविधावुक्तमुपधार्य शुभाशुभम्॥शुभं देयं विषार्तेभ्यो विरुद्धेभ्यश्च

वर्जयेत् ॥ २८ ॥ फाणितं शिग्रुसौवीरमजीर्णाध्यशनं तथा । वर्जयेच्च समासेन नवधान्यादिकं गणम् ॥ २९ ॥ दिवास्वप्नं व्यवायं च व्यायामं क्रोधमातपम् । सुरातिलकुलत्थांश्च वर्जयेद्धि विषातुरः ॥ ३० ॥

अन्नपान विधिमें पहले सबके गुणागुण कह चुके हैं उनको अच्छा बुरा विचार कर विषार्तोंको जो हित हो वह देवे और विरुद्धसे बचावे ॥ २८ ॥ फाणित (राब) सोहँजना कांजी और अजीर्ण भोजनपर भोजन तथा नया धान्य इत्यादिसे वर्जित रक्खे ॥ २९ ॥ दिनका सोना मैथुन परिश्रम क्रोध धूप मदिरा तिल कुलथी इन्हेंभी विषपीडित मनुष्य त्याग देवे ॥ ३० ॥

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं सममूत्रजिह्वम् ।
प्रसन्नवर्णेंद्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ३१ ॥

इति कल्पस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जिसके वातादि दोष प्रसन्न हों अर्थात् ठीक हों और शरीरकी सब धातु अपनी प्रकृतिके अनुकूल हों और भोजनमें वांछा हो मूत्र और जिह्वा समान हो (इनमें फरक न हो) वर्ण और इंद्रिय सब प्रसन्न हों तथा चित्त और चेष्टा सब अच्छे हों तो उस मनुष्यको वैद्य विषरहित समझे और इनसे विपरीतको विषयुक्त जाने ॥ ३१ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः भाषाटीकायां कल्पस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः कीटकल्पं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी अब हम कीटकल्प (अर्थात् अनेक प्रकारके कीड़ोंके विषकी क्रिया) का व्याख्यान करतेहैं-

सर्पाणां शुक्रविण्मूत्रशवपूत्यंडसंभवाः । वाय्वग्न्यंबुप्रकृतयः कीटास्तु विविधाः स्मृताः ॥ १ ॥ सर्वदोषप्रकृतिभिर्युक्ताश्चापरिणामतः । कीट-त्वेपि सुघोरास्ते सर्व एव चतुर्विधाः ॥ २ ॥

सर्पोंके शुक्र विष्ठा मूत्र मृतशरीरके सड़ाव और अंडोंसे उत्पन्न हुये वायु अग्नि और जलकी प्रकृतिवाले नाना प्रकारके कीड़े होतेहैं ॥ १ ॥ तथा सब दोषोंकी प्रकृतिवालेभी होतेहैं (इनके सिवाय स्थावर विष वृक्षादिजन्य तथा च तीक्ष्ण वस्तु

समुदायादिजन्यभी अनेक प्रकारके कृमि उत्पन्न होजातेहैं) जो कीड़े होकरभी बड़े घोर होते हैं ये कृमि सब चार प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

वायवीय कृमि ।

कुंभीनसस्तुंडिकेरी शृंगी शतकुलीरकः। उच्चिटिंगोऽग्निनामा च चिच्चिटिंगो मयूरिका ॥ ३ ॥ आवर्त्तकस्तथोरभ्रः सारिकामुखवैदलौ । शरावकुर्दोऽभीराजी परुषश्चित्रशीर्षकः ॥ ४ ॥ शतबाहुश्च यश्चापि रक्तराजिः प्रकीर्तितः ॥ अष्टादशेति वायव्याः कीटाः पवनकोपनाः ॥ ५ ॥ तैर्भवंतीह दष्टानां रोगा वातनिमित्तजाः ॥ ६ ॥

कुंभीनस तुंडिकेरी शृंगी शतकुलीर उच्चिटिंग अग्निनामा चिच्चिटिंग मयूरिका॥ ३॥ आवर्तक उरभ्र सारिका मुखवैदल शरावकुर्द अभीराजी परुष और चित्रशीर्ष ॥४ ॥ शतबाहु और रक्तराजी ये अठारह भांतिके कृमि वायुप्रकृतिवाले और वायुकोप करनेवाले कहे हैं इनके काटेसे वायु निमित्तक रोग होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

आग्नेय (पैत्तिक) कृमि ।

कौंडिल्यकः कणभको वरटी पत्रवृश्चिकः। विनासिका ब्रह्मणिका बिंदुलो भ्रमरस्तथा ॥ ७ ॥ बाह्यकी पिच्चिटः कुंभी वर्चः कीटोऽरिमेदकः। पद्मकीटो दुंदुभिको मकरः शतपादकः ॥ ८ ॥ पंचालकः पाकमत्स्यः कृष्णतुंडोऽथ गर्दभी । क्लीतः कृमिशरारी च यश्चाप्युत्क्लेशकः स्मृतः ॥ ॥ ९ ॥ एते ह्यग्निप्रकृतयश्चतुर्विंशाः प्रकीर्तिताः । तैर्भवंतीह दष्टानां रोगाः पित्तनिमित्तजाः ॥ १० ॥

कौंडिल्यक कणभ वरटी (वालूचींटी) पत्रवृश्चिक विनासिका ब्रह्मणिका बिंदुल भ्रमर (भमरी) ॥ ७ ॥ बाह्यकी, पिच्चिट, कुंभी, वर्चकीट, अरिमेदक, पद्मकीट, दुंदुभी, मकर, शतपादक, पंचालक, पाकमत्स्य, कृष्णतुंड, गर्दभी, क्लीत, कृमिशरारी

(श्लो० ३) कुंभीनसादीनां रूपभेदाश्च नानादेशीयलोकादवगंतव्याः यतः ।सुरसवीरनंदिवराहजैज्जटगयदासादिभिः टीकाकारैर्न व्याख्याताः (इति डल्हनः) ।

(श्लो० ५) येषां कुंभीनसादीनांमध्ये शृंगीचिच्चिटिंगशरावकुर्दाचित्रशीर्षकान् वर्जयित्वा शेषाश्चतुर्दश मुखसंदंशविषा इति (नि. सं.) ।

(श्लो० ७) एषां कौंडिल्यकादीनां मध्ये कौंडिल्यकवरटीभ्रमरपिच्चिटवर्चःकीटमकरशतपादपंचालक पाकमत्स्यकृष्णतुंडान् विहाय शेषाश्चतुर्दशमुखसंदंशविषाः ।

और उत्क्लेशक ॥८॥ ९ ॥ ये चौवीस भांतिके कृमि अग्नि प्रकृति कहे हैं इनके काटेसे पित्त निमित्तक (दाह औषचोषादिक) व्याधियां होती हैं ॥ १० ॥

सौम्य (श्लैष्मिक) कृमि ।

विश्वंभरः पंचशुक्लः पंचकृष्णोथ कोकिलः । सैरेयकः प्रचलको वलभः किटिमस्तथा ॥ ११ ॥ सूचीमुखा कृष्णगोधा यश्च काषायवासिकः । कीटगर्दभकश्चैव तथा त्रोटक एव च ॥ १२ ॥ त्रयोदशैते सौम्याः स्युः कीटाः श्लेष्मप्रकोपनाः । तैर्भवंतीह दष्टानां रोगाः कफनिमित्तजाः॥ १३॥

विश्वंभर, पंचशुक्ल, पंचकृष्ण, कोकिल, सैरेयक, प्रचलक, वलभ, किटिम, ॥ ११ ॥ सूचीमुख, कृष्णगोधा, कषायवासिक, कीटगर्दभ और त्रोटक ॥ १२ ॥ ये तेरह कृमि सौम्य हैं और कफ कुपित करनेवाले हैं इनके काटेसे कफ निमित्तक (कंडुज्वरादिक) व्याधियां होती हैं ॥ १३ ॥

प्राणहर (सांनिपातिक) कृमि ।

तुंगीनासो विचिलकस्तालको वाहकस्तथा । कोष्ठागारी कृमिकरो यश्च मंडलपुच्छकः ॥ १४ ॥ तुंगनाभः सर्षपिको वल्गुली शंबुकस्तथा । अग्निकीटश्च घोराः स्युर्द्वादश प्राणनाशनाः ॥ १५ ॥ तैर्भवंतीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् । तास्ताश्च वेदनास्तीव्रा रोगा वै सान्निपातिकाः ॥ १६ ॥

तुंगीनास विचिलक तालक वाहक कोष्ठागारी कृमिकर मंडलपुच्छक ॥ १४ ॥ तुंगनाभ सर्षपिक वल्गुली शंबुक और अग्निकीट ये बारह घोर कीड़े प्राणनाश करनेवाले होते हैं ॥ १५ ॥ इनके काटे हुएके वेग सर्पके समान होते हैं और वेही वेही तीव्र पीडा तथा सन्निपातके उपद्रव होते हैं ॥ १६ ॥

क्षाराग्निदाघवद्दंशो रक्तपीतसितारुणः । ज्वरांगमर्दरोमांचवेदनाभिः समन्वितः ॥ १७ ॥ छर्द्यतीसारतृष्णा च दाहो मोहविजृंभिका । वेपथुश्वासहिक्काश्च दाहः शीतं च दारुणम् ॥ १८ ॥ पिडकोपचयः शोफो ग्रंथयो मंडलानि च । दद्रवः कर्णिकाश्चैव विसर्पाः किटिभानि च॥ १९॥

(श्लो० ११) श्लेष्मप्रकोपिणां मध्ये विश्वंभरप्रचलककृष्णगोधाकषायवासिकांश्चतुरो वर्जयित्वा नवान्ये मुखसंदंशविषा इति (नि० सं०) ।

तैर्भवंतीह दष्टानां यथास्वं चाप्युपद्रवाः। येऽन्ये तेषां विशेषास्तु तूर्णं तेषां समादिशेत् ॥ २० ॥

क्षार (तेजाब) या अग्निसे जलेके समान इनके काटेकी जगह लाल पीली सुपेद तथा नारंजी रंगकी होजाती है रोम खड़े होजाते हैं ज्वर और अंग टूटते हैं ये वेदना होती हैं ॥ १७ ॥ वमन अतिसार तृषा दाह मोह (मूर्च्छा) और जँभाई कांपना श्वास हिचकी और दाह या दारुण शीत होता है ॥ १८ ॥ फुनसियां होजाती हैं, शोथ ग्रंथि और चकद्दे दाद कर्णिका विसर्प और किटिभ ये सब उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥ इनके काटेमें और यथा दोष उपद्रव होजाते हैं इनके अतिरिक्त और जो विशेषकर (विषप्रकोप और उपद्रव होते हैं उन) के भेद भी सुनने और विचार करने चाहियें ॥ २० ॥

दूषीविषप्रकोपाच्चे तथैव विषलेपनात्। लिंगं तीक्ष्णविषेष्वेतच्छृणु मंदविषेष्वतः ॥ २१ ॥ प्रसेकोऽरोचकश्छर्दिः शिरोगौरवशीतता। पिडकाकोठकंडूनां जन्म दोषविभागतः ॥ २२ ॥

इन कीड़ोंके सिवाय दूषी विषके प्रकोपसे तथा विषके लेपनसे भी विषके उपद्रव होते हैं उनमें तीक्ष्ण विषसे जो उपद्रव होते हैं वे ऊपरके समान होतेहैं तथा मंत्र मंद विषसे जो लक्षण होतेहैं उन्हें सुनो॥२१॥मुँहसे राल बहना अरुचि वमन शिरका भारीपन शीतता फुन्सी दाफड़ और खाज पैदा होना ये उपद्रव दोषोंके भेदसे हो जातेहैं ॥ २२ ॥

(वक्तव्य) ऊपर जो जो कृमियोंकी जाति लिखी हैं उनमेंसे प्रायः बहुत से अप्रसिद्ध और अप्राप्य हैं पहलेके समयमें वन उद्यान अधिक थे और प्रायः लोग गह्वर वनों और दुर्गम पर्वतोंके स्थानोंमें रहते थे वहां उनको उपरोक्त कृमि दीखते और उनके दंश आदिसे काम पड़ताथा अब गांव वस्तीके लोग केवल बिच्छु भिड (भमरी) मच्छर मकडी आदिहीको जानते हैं और इन्हींसे बहुधा काम पड़ता है उपरोक्त कृमियोंमेंसे पांच सातकके कुछ लक्षण डल्लनमिश्रजीने अपनी टीकामें लाटचायनोक्त लिखे हैं देखो टिप्पणी ॥

(श्लो० २२) अथ लाटचायनोक्तः कीटानां सामान्यज्ञानोपायो लिख्यते। कटुभिर्बिंदुलेखाभिः पक्षैः पादैर्मुखैर्नखैः। शूकैः कंटकलांगूलैः संश्लिष्टैः पक्षरोमभिः १ स्वनैः प्रमाणैः संस्थानैर्लिंगैश्चापि शरीरगैः। विषवीर्यैश्च कीटानां रूपज्ञानं विभाव्यते २ " तथा केचित् कीटा विशिष्टाकृतिवर्णादिभिस्तदुक्ता एव लिख्यंते " अजाप्रतिमरूपो यः शूकहीनस्तनुरोमशः। सितः " शरकुलीर " स्तु क्ष्वेडचूर्णविषः स्मृतः ३ गिरिकाभो "महाकीटः" सपक्षो मार्जितोदरः। खेचरो गुदशूकश्च "कौंडिल्य" इति स स्मृतः ४ कुरंडः पुष्पवर्णाभः सपक्षो मार्जितोदरः।

गरके लक्षण।

योगैर्नानाविधैरेषां चूर्णानि गरमादिशेत्।
दूषीविषप्रकाराणां तथैवाप्यनुलेपनात् ॥ २३ ॥

इन्ही विष जंतुवों आदिके चूर्णको नाना प्रकारके योगों (स्थावर विषादि) से मिलाते हैं उसेही गर (कृत्रिम विष) समझो तथा दूषीविषके प्रकारका अथवा लेपनका विष द्रव्य (भी गरसंज्ञिक) होजाता है ॥ २३ ॥

एक जातिके कृमियोंके गण।

एकजातीनतस्तूर्द्ध्वं कीटान्वक्ष्यामि भेदतः। सामान्यतो दष्टलिंगैः साध्यासाध्यक्रमेण च ॥ २४ ॥ त्रिकंटकः कुणी चापि हस्तिकक्षोऽपराजितः। चत्वार एते कणभा व्याख्यातास्तीव्रवेदनाः ॥ २५ ॥ तैर्दष्टस्य श्वयथुरंगमर्दो गुरुता गात्राणां दंशकृष्णश्च भवति ॥ २६ ॥

यहांसे अगाडी अब हम एक एक जातिके कीटोंको भेदपूर्वक कहते हैं और उनके काटे हुएके लक्षण और साध्यासाध्य सब क्रमसे कहते हैं ॥ २४ ॥

कणभके ४ भेद।

त्रिकंटक, कुणी, हस्तिकक्ष, और अपराजित इस तरहसे कणभके ये चार भेद कहे हैं. यह तीक्ष्ण वेदना करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ इनके काटेसे शोथ अंगोंका टूटना शरीरका भारी होना और दंशकी जगह काला पड़ना ये होते हैं ॥ २६ ॥

गौधेरक (गुहेरे) के भेद।

प्रतिसूर्यः पिंगभासो बहुवर्णो महाशिराः। तथा निरुपमश्चापि पंच गौधेरकाः स्मृताः ॥ २७ ॥ तैर्भवंतीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत्। रुजश्च विविधाकारा ग्रंथयश्च सुदारुणाः ॥ २८ ॥

कुंडशूकविषः कीटः " कोष्ठागारी " ति संज्ञितः ५ लाक्षारुधिरवर्णाभः श्वेतबिंदुर्विचित्रितः। क्षुद्रको ह्यग्निसंकाशो भ्राजते निशि चाग्निवत् ।कीटः "खद्योत" इत्युक्तो दष्टस्तेनापि दह्यते ६ दंष्ट्राविषः श्वेतबिंदुः सपक्षो हठदुःखकः। स तु वै "शंबुको" नाम कालकः सप्तमंडलः ७ चतुष्पदो दीर्घपत्र उल्ललाटो बहुप्रजः। वृक्षालयो दंतविषः "कृकलास " इति स्मृतः ८ चंद्राभः कृकलासोऽन्यस्तद्भेदस्तु " त्रिकंटकः"।

(श्लो० २४। २५) एकजातीनतस्तूर्द्ध्वमित्यादिभेदत इति भेदं वीक्ष्य चत्वारः कणभाः अत्र कणभत्वमेकजातित्वम्।

(श्लो० २७) गौधेरकविषये चरको यथाह–सर्पो गौधेरको नाम गोधाख्यः स्याच्चतुष्पदः। कृष्णसर्पेण तुल्यःस्यान्नाना स्युर्मिश्रजातयः इति। गौधेरकलक्षणं तंत्रांतरात् निबंधसंग्रहे डल्लनो यथाह–कृष्णसर्पेण गोधायां भवेद्यस्तु चतुष्पदः। सर्पो गौधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति (इति नि० सं०)।

प्रतिसूर्य पिंगभास बहुवर्ण महाशिरा और निरूपम ऐसे पांच प्रकारके गौधेरका (गुहेरे) होते हैं ॥ २७ ॥ इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होते हैं और नाना प्रकारकी व्याधियां और दारुण ग्रंथियां हो जाती हैं ॥ २८ ॥

गलगोली ।

गलगोली श्वेतकृष्णा रक्तराजी रक्तमंडला सर्वश्वेता सर्षपिकेत्येवंषट् । ताभिर्दष्टे सर्षपिकावर्ज्यं दाहशोफक्लेदा भवंति।सर्षपिकायां हृदयपीडाति-सारश्च ॥ २९ ॥

गलगोली श्वेतकृष्णा (सुपेद कुछ स्याह) रक्तराजि (लाल धारीवाली) रक्तमं-डला (लाल चकत्तेवाली) सर्वश्वेता (सब सुपेद) और सर्षपिका (जिसपर सरसोंकेसे दाने हों और सरसोंकासा रंग हो) ऐसे छः प्रकारकी गोह होती हैं जिनके काटेमें सर्षपिकाके सिवाय दाह सोथ और क्लेदनता होती हैं और सर्षपिकाके काटेमें हृदयमें पीडा और अतीसार होता है ॥ २९ ॥

शतपदी (कनखजूरा) ।

शतपदस्तु परुषा कृष्णा चित्रा कपिलिका पीतिका रक्ता श्वेता अग्नि-प्रभा इत्यष्टौ।ताभिर्दष्टे शोफो वेदना दाहश्च हृदये । श्वेताग्निप्रभाभ्यामेतदेव दाहो मूर्च्छा चातिमात्रं श्वेतपिडकोत्पत्तिश्च ॥ ३० ॥

शतपदी (कनखजूरा) आठ प्रकारका होता है परुष कृष्ण (काला) चितकबरा कपिलरंगका पीला लाल सुपेद और अग्निके वर्णका इनके काटेमें सोथ पीडा और हृदयमें दाह होता है और सुपेद तथा अग्निवर्णकेमें दाह मूर्च्छा और बहुतसी सुपेद फुन्सियोंकी उत्पत्ति ये लक्षण होते हैं ॥ ३० ॥

(वक्तव्य) यद्यपि इनका काटना भी हो सकता है पर आज कल इनका पंजे गाडकर चिमटना प्रसिद्ध है जिसमें उपरोक्त सब वेदना होती हैं ।

विषयुक्त मेंडक ।

मंडूकाः कृष्णः सारः कुहको हरितो रक्तो यववर्णाभो भृकुटी कोटिकश्चे-त्यष्टौ । तैर्दष्टस्य दंशकंडूर्भवति पीतफेणागमश्च वक्रात् । भृकुटीकोटि-काभ्यामेतदेव दाहश्छर्दिर्मूर्च्छा चातिमात्रम् ॥ ३१ ॥

मंडूक अर्थात् (मेंडक) आठ प्रकारके होते हैं जैसे कृष्ण, सार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भृकुटी और कोटिक इनके काटनेसे काटेकी जगह खाज होती है

और मुहसे पीले झाग आते हैं यह तो सामान्य लक्षण हैं और भृकुटी तथा कोटि-कके काटेमें उपरोक्त लक्षणोंसे विशेष दाह छर्दि और अत्यंत मूर्च्छा येभी होतेहैं॥ ३१॥

(वक्तव्य) इनमेंसे कोटिकका काटा असाध्य होता है. डल्लनमिश्रने तंत्रांतरसे यों लिखा है कि इसके काटेसे मृत्यु होती है इसका कोई यत्न नहीं. देखो टिप्पणी ॥

विश्वंभरा कृमि ।

विश्वंभराभिदष्टे दंशः सर्षपाकाराभिः पिडकाभिश्चीयते शीतज्वरार्तश्च पुरुषो भवति ॥ ३२ ॥

विश्वंभरा नामक कृमिके काटनेसे काटेकी जगह सरसोंजैसी फुन्सियोंसे व्याप्त हो जाती है और मनुष्य शीतज्वरसे पीडित हो जाता है ॥ ३२ ॥

अहिंडुकादि ।

अहिंडुकाभिर्दष्टे तोददाहकंडूश्वयथवो मोहश्च । कंडूमकाभिर्दष्टे पीतांगश्छर्द्यतीसारज्वरादिभिरभिहन्यते । शूकवृंतादिभिर्दष्टे कंडूकोठाः प्रवर्द्धन्ते शूकं चात्र लक्ष्यते ॥ ३३ ॥

अहिंडुका कृमिके दंशसे पीडा दाह खाज सोथ और मोह होता है कंडूमकाके दंशसे शरीर पीला होजावे वमन अतिसार और ज्वरादि व्याधि होकर मनुष्य मरभी जाता है और शूक वृंतादि कृमियोंके काटनेसे खाज दाफड़ बढते हैं और इनमें रूवेसे मालूम देते हैं ॥ ३३ ॥

पिपीलिकाः ।

पिपीलिकाः स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिकांगुलिका कपिलिका चित्रवर्णेति षट् । ताभिर्दष्टे दंशे श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दाहशोफौ भवतः ॥ ३४ ॥

पिपीलिका (चेंटी) स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिका अंगुलिका कपिलिका और चित्रवर्ण ऐसे छः प्रकारकी होती हैं इनके काटनेसे काटनेकी जगह सोजा और अग्निके स्पर्शके समान दाह और सोथ होता है ॥ ३४ ॥

(वक्तव्य) इसमें श्वयथु और शोफ ये दोनों एकार्थवाची दो शब्द क्यों है ? इसका समाधान यह है कि, श्वयथुसे दंशकी जगह सूजना अभिप्राय है और शोफसे अन्यत्र शरीरमेंभी सोथ और दाफड़ होजाते हैं उन्हें समझे और इनमें स्थूलशीर्ष मकोड़ेको कहते हैं तथा कपिलिका सुनहरी वालू कीड़ीको समझिये ॥

(वा० ३१) मंडूको गोपतिस्तज्ज्ञैः कोटिकः परिकीर्तितः। तेन दष्टस्य मरणं नहि तस्य प्रतिक्रिया। इति (डल्लनः)।

(वा० ३४) अत्र श्वयथुकथनेन दंशस्थाने ज्ञेयशोफेनांगशोफः अतो न द्विरुक्तिदोषः ।

मक्षिकाः ।

मक्षिकाः कांतारिका कृष्णा पिंगलिका मधूलिका काषायी स्थालिकेत्येवं षट् । ताभिर्दष्टस्य दाहशोफौ भवतः । स्थालिकाकाषायीभ्यामेतदेव पिडकाश्च सोपद्रवा भवंति ॥ ३५ ॥

माक्षिका (मक्खी), कांतारिका, कृष्णा (काली मक्खी), पिंगलिका (सुनहरी) मधूलिका (गेहूंके रंगकी), काषायी (भगवां रंगकी), और स्थालिका ऐसे छः प्रकारकी होती हैं जिनके काटेसे दाह और सोजा होता है और स्थालिका और काषायीसे उपद्रवयुक्त फुन्सी होती हैं ॥ ३५ ॥

(वक्तव्य) निर्विष घरोंकी मक्खियां इनसे जुदी हैं ।

मशक (मच्छर) ।

मशकाः सामुद्रः परिमंडलो हस्तिमशकः कृष्णः पार्वतीयः इति पंच । तैर्दष्टस्य तीव्रकंडूर्दंशशोफश्च पार्वतीयैस्तु कीटैः प्राणहरैस्तुल्यलक्षणैः । नखावकृष्टेत्यर्थं पिडकासदाहपाका भवंति । जलौकसां दष्टलक्षणमुक्तं चिकित्सितं च ॥ ३६ ॥

मशक (मच्छर), सामुद्र (समुद्रके मच्छर), परिमंडल (जो गोलबांधे रहते हैं) हस्ति, मशक, (बडे मोटे मच्छर अर्थात् डांस) कृष्ण (काले मच्छर) और पार्वतीय (पहाड़ी मच्छर) इस प्रकार ये पांच भांतिके होते हैं इनके काटेसे विशेष खाज होती है काटेकी जगह सूज जाती है और पार्वतीय मच्छर तौ प्राणनाशक कृमियोंके समान लक्षणवाले होते हैं यदि उनके काटेको नखसे खुजा लिया जावे तौ बहुत फुन्सी दाह और पाकवाली पैदा हो जाती हैं. जलौक (जोखों) के काटेके लक्षण और चिकित्सा (तथा सविष निर्विषके भेद आदि) पहलेही कहे जा चुके हैं (देखो जलौकोंवचारणीय अध्याय सूत्रस्थान) ॥ ३६ ॥

असाध्य कृमि ।

भवंति चात्र । गौधेरकः स्थालिका च ये च श्वेताग्निसंप्रभे ।
भृकुटी कोटिकश्चैव न सिद्ध्यंत्येकजातिषु ॥ ३७ ॥

यह श्लोक है कि-गौधेरक (गुहेरा), स्थालिका (एक जातिकी मक्खी) तथा श्वेत और अग्निसंप्रभ (दो जातिकी शतपदी) और भृकुटी तथा कोटिक (ये दो

जातिके मेंडक) इतने एक जाति कृमियोंमेंसे सिद्ध नहीं होते (अर्थात् इनका काटा हुआ असाध्य होता है) ॥ ३७ ॥

शवमूत्रपुरीषैस्तु सविषैरवमर्षणात् । स्युः कंडूदाहकोठारुः पिडकातोदवेदनाः ॥ ३८ ॥ प्रक्लेदवांस्तथा स्रावो भृशं संपाचयेत्त्वचम् । दिग्धविद्धक्रियास्तत्र यथावदवचारयेत् ॥ ३९ ॥ नावसन्नं न चोत्सन्नमतिसंरंभवेदनम् । दंशादौ विपरीतार्तिः कीटदष्टं सुबाधकम् ॥ ४० ॥

विषयुक्त इनके शव (मृत देह) मूत्र विष्ठा ये शरीरसे मले जावें तो खाज दाह कोठ (ददोड़े) और क्षत पिडका तोद (चीस) और वेदना ये होते हैं ॥ ३८॥तथा क्लेदवाला स्राव होता है त्वचाको बहुत पका देता है इसमें दिग्ध विद्ध (विषलिपे शस्त्रके घाव) की क्रिया यथायोग्य करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ और जो न तो नीचा हो (क्षत घाव चिह्नादि कुछ न हो) और न ऊँचा हो (अर्थात् सोथ फुन्सी आदि कुछ न हो) और अत्यंत कुपितकेसी पीडा हो और दंशके आरंभमें विपरीत पीडा हो ऐसा कीडोंका दंश कष्टसाध्य होता है ॥ ४० ॥

इनकी चिकित्सा ।

कीटैर्दष्टानुग्रविषैः सर्पवत्समुपाचरेत् । त्रिविधानां तु सर्पाणां त्रैविध्येन क्रिया हिताः ॥ ४१ ॥ स्वेदमालेपनं सेकं चोष्णमत्रावचारयेत्।अन्यत्र मूर्च्छितादंशात्पाककोथप्रपीडितात् ॥ ४२ ॥ विषघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्संशोधनानि च । शिरीषं कटुकं कुष्टं वचारजनिसैंधवैः ॥ ४३ ॥ क्षीरमज्जावसासर्पिः शुंठीपिप्पलिदारुषु । उत्कारिका स्थिरादौ वा सुकृता स्वेदने हिता ॥ ४४ ॥

उग्र विषवाले कीड़ोंके काटनेमें सर्पके समान उपचार करने चाहियें जैसे तीन प्रकारके (वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक) सर्पोंकी तीनही प्रकारसे क्रिया हित है (वैसेही कीड़ोंकीभी समझें) ॥ ४१ ॥ सामान्यतासे स्वेद और उष्ण लेपन तथा उष्णही सेचन करे परंतु दंश मूर्च्छित हो गया हो, पक गया हो, और सड़कर पीडित हो ऐसी अवस्थामें स्वेद और उष्ण लेपसेकादि नहीं करें ॥ ४२ ॥ तथा सब प्रकारकी

(श्लो० ३६ व ३८) कृष्णा कर्बुरा अलगर्दा इंद्रायुधा सामुद्रिका गोचंदनाचेति सविषा जलौकसः । अवमर्षणात् मर्दनात् । अरुः क्षतं (इति शब्दस्तोमः) ।

(श्लो० ४०) सुबाधकं कृच्छ्रसाध्यम् । (इति नि० सं०) ।

(श्लो० ४३) अत्र कटुकं कुष्टस्य विशेषणम् ।

विषघ्न विधि करें तथा वमन रेचनसे शोधन करें (अथवा कोथ व्रणका शोधन करे) और शिरस तथा कटु कूट वच हलदी सैंधानमक ॥ ४३ ॥ दूध, मज्जा, चरबी, घृत, सोंठ, पीपल, दारु (देवदारु) इनकी लूपरीसी बनाकर अथवा शालपर्णी आदिकी लूपरी बनाकर उससे स्वेदन करना हित है ॥ ४४ ॥

न स्वेदयेत्तथा दंशं धूमं वक्ष्यामि वृश्चिके ।
अगदानेकजातीषु प्रवक्ष्यामि पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥

विच्छूके काटेको स्वेदन दिलावे (सेके नहीं) किंतु उसके लिये जो अगाडी कहेंगे वह धूनी देवे और एक जातीके कृमियोंके लिये जुदे जुदे अगद (औषध) भी अगाडी अब वर्णन करते हैं ॥ ४५ ॥

कुष्टं चक्रं वचा बिल्वमूलं पाठा सुवर्चिका । गृहधूमं हरिद्रे द्वे त्रिकंटकविषे हिता ॥ ४६ ॥ आगारधूमरजनी चक्रं कुष्टं पलाशजम् । गलगोलिकदष्टानामगदो विषनाशनः ॥ ४७ ॥ कुंकुमं तगरं शिग्रु पद्मकं रजनीद्वयम् । अगदो जलपिष्टोऽयं शतपद्विषनाशनः ॥ ४८ ॥ मेषशृंगी बचा पाठा निचुलो रोहिणी जलम् । सर्वमंडूकदष्टानामगदो विषनाशनः ॥ ४९ ॥ वचाश्वगंधातिबला बला सातिगुहा गुहा । विश्वंभराभिदष्टानामगदोविषनाशनः ॥ ५० ॥ शिरीषं तगरं कुष्टं हरिद्रे सुमती सहे । अहिंडिकाभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः ॥ ५१ ॥

कूट चक्र (तगर) वच बिल्वकी जड़ पाठा सुवर्चिका (सज्जी) घरका धूँवाँ और दोनों हलदी ये त्रिकंटकके विषको (लेपन करनेसे) हित हैं ॥ ४६ ॥ घरका धूम हलदी तगर कूट ढाकके बीज यह अगद गलगोलीके काटेके विषको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥ केसर तगर सोहँजना पद्माख दोनों हलदी इन्हें जलमें पीसे वह शतपदीके विषको नाश करता है ॥ ४८ ॥ मेढासींगी, वच, पाठा, जलवेतस हरड़ नेत्रवाला यह अगद सब विषैले मेंडकोंके काटेका विष नष्ट करता है ॥४९॥ वच, असगंध, कंधी, खरेटी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी यह अगद विश्वंभराके काटेके विषको नाश करता है ॥ ५० ॥ शिरस तगर कूट दोनों हलदी शालपर्णी और सहा पृश्निपर्णी यह अगद (औषधयोग) अहिंडिकाके काटे हुएके विषको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

(श्लो० ४५) वृश्चिकदंशे स्वेदनिषेधस्तूग्रमध्यविषवृश्चिकविषयः । मंदवीर्यदंशेऽग्रे स्वेदस्योपयोगात् ।

कंडूमकाभिदष्टानां रात्रौ शीताः क्रिया हिताः । दिवा ते नैव सिध्यंति सूर्यरश्मिबलार्दिताः ॥ ५२ ॥ चक्रं कुष्टमपामार्गः शुक्रवृंतविषेऽगदः । भृंगस्वरसपिष्टा वा कृष्णवल्मीकमृत्तिका ॥ ५३ ॥ पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा । गोमूत्रेण युतो लेपः कृष्णवल्मीकमृत्तिका ॥ ५४ ॥ प्रतिसूर्यकदष्टानां सर्पदष्टवदाचरेत् ॥ ५५ ॥

कंडूमकके काटे हुएपर रातको शीत क्रिया करनी हित हैं दिनमें सूर्यकी किरणोंकी गरमीसेये सिद्ध नहीं होते ॥ ५२ ॥ तगर, कूट, ओंगा ये शुक्रवृंतके विषमें हित हैं अथवा भंगरेके रसमें बंबईकी मिट्टी लगाना ॥ ५३ ॥ चेंटी मक्खी और मच्छर इनके काटेपर गोमूत्रमें भिगोकर बँबईकी काली मिट्टीका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥ और प्रतिसूर्यक नाम कृमिके काटे हुएका सर्पके समान उपचार करे ॥ ५५ ॥

विच्छुओंके भेद ।

त्रिविधा वृश्चिकाः प्रोक्ता मंदमध्यमहाविषाः । गोशकृत्कोथजा मंदा मध्याः काष्ठेष्टिकोद्भवाः । सर्पकोथोद्भवास्तीक्ष्णा ये चान्ये विषसंभवाः॥ ॥ ५६ ॥ मंदा द्वादश मध्यास्तु त्रयः पंचदशोत्तमाः । दशविंशतिरित्येते संख्यया परिकीर्तिताः ॥ ५७ ॥

विच्छू तीन भांतिके होते हैं मंदविष मध्यविष और महा विषवाले. इनमेंसे गौ भैंस आदिके गोवर और मूत्रादिसे उत्पन्न मंद विषवाले होते हैं और काठ ईंट इत्यादिमें (कुछ गोवर आदि कुछ सर्पके मलमूत्रअंडा आदिके मेलसे) पैदा होनेवाले मध्यविष होते हैं और सर्पोंके कोथ (सडे हुये देह) से जो पैदा होवें तथा अन्य प्रकारके विषेस जो उत्पन्न होवें वे तीक्ष्ण विषवाले होते हैं ॥ ५६ ॥ इनमेंसे मंद विषवाले १२ प्रकारके होते हैं और मध्य विषवाले तीन प्रकारके तथा उग्रविषवाले १५ प्रकारके होते हैं इस भांति सब विच्छू तीस प्रकारके कहे हैं ॥ ५७ ॥

मंदविष विच्छू ।

कृष्णः श्यावः कर्बुरः पांडुवर्णो गोमूत्राभः कर्कशो मेचकश्च । श्वेतो रक्तो रोमशः शाड्वलाभो रक्तश्चैते मंदवीर्या मतास्तु ॥ ५८ ॥ एभिर्दष्टे वेदना

(श्लो० ५६) गोशकृदित्यत्र गोमहिष्यादि शकृन्मूत्रकोथजा मंदाः । (इति नि० सं०) । मध्यास्तु सर्पमूत्रोच्चारादि संभवत्वमित्युभयं हेतूपादानात् व्यस्तसमस्तोभयहेतूद्भवत्वं मध्यानां बोद्धव्यं मतांतरेण दिग्धविद्ध सर्पदष्टानां च शरीरकोथे मध्यानां जन्म प्रतिपादितमिति (नि० सं०) ।

(श्लो० ५८) शाड्वलं तृणांकुरं तदाभः । अरक्तः किंचिद्रक्तः ।

वेपथुश्च गात्रस्तंभ कृष्णरक्तागमश्च । शाखादष्टे वेदनाश्चोर्द्ध्वमेति दाह-
स्वेदौ दंशशोफो ज्वरश्च ॥ ५९ ॥

कृष्ण (काला) श्याव (नीला) कबरा, पांडुर, गोमूत्रके रंगका, कर्कश मेचक (बहुत काला) सुपेद लाल रोमवाला घासके रंगका और अरक्त (गुलाबीसा) ऐसे ये बारह भांतिके विच्छू मंदवीर्य कहे हैं ॥५८॥ इनकेभी काटनेसे वेदना कंप गात्रक स्तंभ कालारक्त निकलना और हाथ पैरमें काटनेसेभी वेदना ऊपरको चढती है दाह पसीना डंककी जगह सोजा और ज्वरभी होजाता है ॥ ५९ ॥

मध्य विष विच्छूकी आकृति और लक्षण ।

रक्तः पीतः कापिलेनोदरेण सर्वे धूम्राः पर्वभिश्च त्रिभिः स्युः । एते मूत्रो-
च्चारपूत्यंडजाता मध्या ज्ञेयास्त्रिप्रकारोरगाणाम् ॥६० ॥ यस्यैतेषामन्व-
वायः प्रसूतो दोषोत्पत्तिं तत्स्वरूपाश्च कुर्यात् । जिह्वाशोफो भोजनस्या-
वरोधो मूर्च्छा चोग्रा मध्यवीर्याभिदष्टे ॥ ६१ ॥

लाल पीला और कपिल (सुनहरा) ये तीनों पेटमेंसे धूम्र वर्णके होते हैं और इनके देहमें तीन पर्व (विभाग) होतें हैं, ये तीनों प्रकारके सर्पोंके मूत्र मल और सडे हुए अंडोंके मलसे पैदा हुये जानने चाहिये ॥ ६० ॥ तीन प्रकारके (दर्वीकर मंडली और राजिमंत) सर्पोंमेंसे इसके अंशसे इनमें जो पैदा हुवा होता है उसीके अनुसार दोषोंकी उत्पत्ति करता है जिह्वामें सोजा भोजनमें अवरोध और उग्र मूर्च्छा ये लक्षण मध्यवीर्य विच्छूके काटेमें होते हैं ॥ ६१ ॥

तीक्ष्ण विष विच्छूकी आकृति लक्षणादि ।

श्वेतश्चित्रः श्यामलो लोहिताभो रक्तश्वेतो रक्तनीलोदरौ च । पीतो रक्तो
नीलपीतोऽपरस्तु रक्तो नीलो नीलशुक्लस्तथा च ॥ ६२ ॥ रक्तो बभ्रुः
पूर्ववच्चैकपर्वा यश्चापर्वा पर्वणी द्वे च यस्य । नानारूपा वर्णतश्चापि
घोरा ज्ञेयाश्चैते वृश्चिकाः प्राणचौराः ॥ ६३ ॥ जन्मैतेषां सर्पकोथात्प्र-
दिष्टं देहेभ्यो वा घातितानां विषेण । एभिर्दष्टे सर्पवेगप्रवृत्तिः स्फोटोत्प-
त्तिर्भ्रांतिदाहौ ज्वरश्च । खेभ्यः कृष्णः शोणितं चापि तीव्रं तस्मात्प्राणै-
स्त्यज्यते शीघ्रमेव ॥ ६४ ॥

(श्लो० ६०) मंदमध्यमहाविषवृश्चिकानामुत्पत्तौ वृद्धवाग्भट इत्याह ते गवादि शकृत्कोथाद् दिग्धदष्टादि कोथतः । सर्पकोथाच्च संभूता मंदमध्यमहाविषाः इति।ते यथासंख्यं मंदमध्यमहाविषाज्ञेयाः । रक्तइत्यादि कापि-लेनसह रक्तः पीतश्चेतित्रयः सर्वेत उदरेण धूम्रा स्त्रिभिरेव पर्वभिस्स्युरित्यन्वयः ।

सुपेद, चित्रित, श्याम, रुधिरके वर्णका, लाल सुपेद मिला हुवा, रक्तोदर, नीलोदर, पीतरक्त, नीलपीत, और रक्तनील, नीलशुक्र ॥ ६२ ॥ रक्तबभ्रु और एकपर्व अपर्व और द्विपर्व ऐसे ये पंदरह भांतिके नाना प्रकारके रूप और रंगवाले घोर विच्छू प्राणोंके नष्ट करनेवाले जानने चाहिये ॥ ६३ ॥ इनकी उत्पत्ति सर्पोंके कोथसे या तीक्ष्ण विषसे मरे हुयेके देहसे (एवं तीक्ष्ण विष कोथोंसे) होती है, इनके काटेसे सर्पके तुल्य वेग होते हैं शरीर पर फोड़े पैदा हो जावें भ्रम दाह और ज्वर होवे तथा स्रोतों (मुख गुदादि) से तीव्र काला रुधिर निकले जिसके साथ शीघ्रही प्राण निकल जाते हैं ॥ ६४ ॥

विच्छूके काटेके यत्न ।

उग्रमध्यविषैर्दष्टं चिकित्सेत्सर्पदष्टवत् । दंशं मंदविषाणां तु चक्रतैलेन सेचयेत् ॥ ६५ ॥ विदार्यादिसुसिद्धेन सुखोष्णेनाथवा पुनः । कुर्याच्चोत्कारिकास्वेदं विषघ्नैरुपनाहनैः ॥ ६६ ॥ आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छितं प्रतिसारयेत् । रजनीसैंधवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः ॥ ॥ ६७ ॥ मातुलुंगाम्लगोमूत्रपिष्टं च सुरसाग्रजम् । लेपे स्वेदे सुखोष्णं च गोमयं हितमिष्यते ॥ ६८ ॥

उग्र विषवाले तथा मध्य विषवाले विच्छुवोंके काटे हएकी चिकित्सा सर्पके काटे हुएके समान करें और मंदविषवालोंके काटे हुएके डंककी जगह चक्रतैलसे सेचन करना चाहिये ॥ ६५ ॥ अथवा विदार्य्यादिसे सिद्ध किये निवाये तैलका सेक करें तथा विषनाशक द्रव्योंकी उत्कारिका (लुपरी) से उपनाहन स्वेद करावे ॥ ६६ ॥ दंशके आसपास स्वेदित कराकर पछने लगाके (खोदके) हलदी सैंधानमक, त्रिकटु शिरसके बीज और फूल इन्हें पीसकर रगड़दे (लगादें) ॥ ६७ ॥ अथवा नीबूके रसमें या गोमूत्रमें तुलसीदल पीसकर लेप करदें तथा गोवर निवाया करके बांध दे और इससे स्वेदित करे ॥ ६८ ॥

पाने क्षौद्रयुतं सर्पिः क्षीरं वा बहुशर्करम् । गुडोदकं वा सुहिमं चातुर्जातकवासितम् ॥ ६९ ॥ पानमस्मै प्रदातव्यं क्षीरं वा सगुडं हिमम् । शिखिकुक्कुटबर्हाणि सैंधवं तैलसर्पिषी ॥ ७० ॥ धूमो हंति प्रयुक्तोऽयं शीघ्रं वृश्चिकजं विषम् ॥ कुसुंभपुष्पं रजनी निशा वा कोद्रवं तृणम् ॥ ७१ ॥ एभिर्घृताक्तैर्धूपस्तु पायुदेशे प्रयोजितः नाशयेदाशु कीटोत्थं वृश्चिकस्य च यद्विषम् ॥ ७२ ॥

पीनेके लिये शहत मिलाकर घृत देवे अथवा बहुतसी खांड डालके दूध देवे अथवा गुड़का पानी ठंढ़ा चातुर्जात (तज पत्रज, इलायची, नागकेसर) से सुगंधित किया हुवा देवे ॥ ६९ ॥ अथवा ठंढे दूधमें गुड़ मिलाकर पिलावे और मोर मुर्गा इनके पंख सैंधानमक तैल घृत इनकी धूनी देवे. यह धूम शीघ्र विच्छूके विषको दूर करता है अथवा कसूंभे के फूल (कसूंभा) हलदी दूसरी हलदी और कोदोंके तृण इन्हें घृतमें मिलाकर इनकी धूनी गुदापर देवे इससे कीड़ोंका विष तथा विच्छूका विष शीघ्र दूर हो जाता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

(वक्तव्य) अपामार्गकी जड़ विच्छूके काटे पर पानीमें घिसकर लगानेसे तात्काल फायदा होताहै तथा श्वेत पुनर्नवाकी जड़भी इसी प्रकार लगाना हित है ये अनुभव किये हुए योग हैं. बल्कि यहांतक इनका प्रभाव है कि अल्प विषवाले विच्छूके डंकको उक्त जड़ोंका ठीक २ स्पर्शही होजावे तो वह विच्छूही निर्विष हो जाता है ।

लूताओंका वर्णन ।

लूताविषं घोरतमं दुर्विज्ञेयतमं तु तत् । दुश्चिकित्स्यतमं चापि भिषग्भिर्मन्दबुद्धिभिः ॥ ७३ ॥ सविषं निर्विषं चैतदित्येवं परिशंकिते । विषघ्नमेव कर्तव्यमविरोधि यदौषधम् ॥ ७४ ॥ अगदानां हि संयोगो विषजुष्टस्य युज्यते । निर्विषे मानवे युक्तोऽगदः संपद्यतेऽसुखम् ॥ ७५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्यो विषनिश्चयः । अज्ञात्वा विषसद्भावं भिषग्व्यापादयेन्नरम् । ॥ ७६ ॥

लूता (अर्थात् मकड़ियोंका विष) बड़ा घोर होता है और कठिनतासे जाना जाता है और मंद बुद्धिवाले वैद्योंसे कठिनतासे चिकित्सा योग्य होता है ॥ ७३ ॥ यह विषयुक्त है अथवा निर्विष है यही शंका रहती है इससे ऐसी विषनाशक क्रिया करनी चाहिये जो विषके न होनेपरभी विरुद्ध न हो ॥ ७४ ॥ क्योंकि अगद (विषनाशक) औषधोंका उपयोग विषयुक्त मनुष्योंके नियुक्त करना चाहिये. यादि विषरहित मनुष्योंको अगद (उस औषध) का उपयोग कराया जावे तौ उससे असुख अर्थात् दुःख होता है ॥ ७५ ॥ इस कारण सब प्रकारसे विषका निश्चय करना चाहिये क्योंकि विषके होने न होनेको न जाननेवाला वैद्य मनुष्योंकी मृत्यु कर देता है ॥ ७६ ॥

प्रोद्भिद्यमानस्तु यथांकुरेण न व्यक्तजातिः प्रविभाति वृक्षः। तद्वद्दुरालक्ष्यतमं हि तासां विषं शरीरे प्रविकीर्णमात्रम् ॥ ७७ ॥

जैसे अंकुर फूटतेही वृक्ष प्रगट जातिवाला नहीं विदित होता (अर्थात् यह काहेका वृक्ष है ऐसा नहीं जाना जाता) इसी भांति इनका विषभी शरीरमें प्रविष्ट हुआ मात्रही कठिनाईसे जाना जा सकता है अर्थात् देहमें विकीर्ण होतेही नहीं जाना जा सकता ॥ ७७ ॥

लूता विषका प्राकट्य ।

ईषच्चं कण्डूश्चलं सकोठमव्यक्तवर्णं प्रथमेऽहनि स्यात् । अंतेषु शूनं परिनिम्नमध्यं प्रव्यक्तरूपं च दिने द्वितीये ॥ ७८ ॥ त्र्यहेण तद्दर्शयतीह दंशं विषं चतुर्थेऽहनि कोपमेति । अतोऽधिकेऽन्हि प्रकरोति जंतोर्विषप्रकोपप्रभवान्विकारान् ॥ ७९ ॥ षष्ठे दिने विप्रसृतं च सर्वान्मर्मप्रदेशान्भृशमावृणोति । तत्सप्तमेऽत्यर्थपरीतगात्रं व्यापादयेन्मर्त्यमतिप्रवृद्धम् ॥ ८० ॥

इन लूताओंका विष पहले दिन ऐसा रहता है कि कुछ खाज आवे थोड़ा झनमनाटसा होवे कुछ दाफड़से होवें पर इसका रंग रूप ठीक २ प्रगट नहीं होता है फिर दूसरे दिन जड़ोंमें सोजा और बीचमें निचाई ऐसे ददोड़ेसे प्रगट होते हैं ॥ ७८ ॥ तीसरे दिन दंश दीखने लगता है और चौथे दिन विष कोपको प्राप्त होता है इसके अगले (पांचवें) दिन प्राणीके विषकोपजन्य विकार (ज्वरादि) कर देता है ॥ ॥ ७९ ॥ फिर छठे दिन फैले हुये सब मर्म स्थानोंको आच्छादन कर लेता है और सातवें दिन बहुत बढ़कर सब शरीरमें व्याप्त होकर मनुष्यको मार देता है ॥ ८० ॥

लूताविषकी अवधि ।

यास्तीक्ष्णचंडोग्रविषा हि लूतास्ताः सप्तरात्रेण विनाशयंति । अतोधिकेनापि निहन्युरन्या यासां विषं मध्यमवीर्यमुक्तम् ॥ ८१ ॥ यासां कनीयो विषवीर्यमुक्तं ताः पक्षमात्रेण विनाशयंति । तस्मात्प्रयत्नं भिषगत्र कुर्यादादंशपाताद्विषघातियोगैः ॥ ८२ ॥

(श्लो० ७८ से ८०) दिनार्द्धलक्ष्यतेनैव दंशोलूताविषोद्भवः । सूचीव्यधइवाभाति ततोसौप्रथमेहनि १ अव्यक्तवर्णःप्रचलः किंचित्कंडूरुजान्वितः। द्वितीयेऽभ्युन्नतोंतेषु पिटकैरिवचाचितः २ व्यक्तवर्णैस्ततो मध्ये कंडूमान्ग्रंथिसंनिभः । तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमंडलः ३ शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु सास्रवः महांश्चतुर्थे श्वयथुस्तापश्वासभ्रमप्रदः ४ विकारान्कुरुते तांस्तान्पंचमेविषकोपजान् । षष्ठे व्याप्नोति रोमाणि सप्तमे हंति जीवितम् ५ (इति वृद्ध वा० भ०) ।

जो लूता तीक्ष्ण प्रचंड और उग्र विषवाली हैं वे तौ मनुष्यको सातही दिनमें मार देती हैं और जिनका विष मध्यवीर्यवाला कहागया है वे इससे जादा (आठ नौ और ग्यारा) दिनमें मार देती हैं ॥ ८१ ॥ और जिनका विष कनिष्ठ अर्थात् मंद कहा है वे (विना यथार्थ यत्न हुये) पंदरा दिनमें मृत्यु कर देती हैं, इस कारणसे वैद्य जबसे दंशपात हुआ हो (विष शरीरमें पहुँचाहो) तभीसे विषनाशक योगोंसे प्रयत्न करे ॥ ८२ ॥

सात प्रकारका लूताविष ।

विषं तुं लालानखमूत्रदंष्ट्रारजःपुरीषैरथ चेन्द्रियेण ।
सप्तप्रकारं विसृजंति लूतास्तदुग्रमध्यावरवीर्यमुक्तम् ॥ ८३ ॥

ये लूता (मकाड़ियां) सात प्रकारसे विष पैदाकरती और छोड़ती हैं यथा रालसे, नखसे, मूत्रसे, डाढ़से, रजसे, विष्ठासे तथा इंद्रिय (वीर्य) से अर्थात् इनके राल (चेप,) नख, मूत्र, विष्ठा आदि सबमें विष होताहै वह विष उग्र मध्य और अवर (मंद) ऐसे तीन प्रकारका होता है ॥ ८३ ॥

सात प्रकारके विष दंशके लक्षण ।

सकंडु कोठं स्थिरमल्पमूलं लालाकृतं मंदरुजं वदंति । शोफश्च कंडूश्च पुलानिका च धूमायनं चैव नखाग्रदंशे ॥ ८४ ॥ दंशं तु मूत्रेण सकृष्णमध्यं सरक्तपर्यन्तमवेहि दीर्णम्। दंष्ट्राभिरुग्रं कठिनं विवर्णं जानीहि दंशं स्थिरमंडलं च ॥ ८५ ॥ रजःपुरीषेन्द्रियजं हि विद्धि स्फोटं विपक्वामलपीलुपांडुम् ॥ ८६ ॥

जो मकड़ीकी राल (या चेप) का विष चढता है उसमें खाज आती है ददौड़े पड़ जाते हैं जिनकी जड़ स्थिर और अल्प होती है और पीडा उसमें कम होतीहै और जो पंजेके नख (अर्थात् नोक) के लगजानेसे जो विष होता है उसमें सूजन खाज और ऊँचे २ दाफड़ तथा धूँवांसा निकलना ये लक्षण कहते हैं॥८४॥मूत्र लगजानेसे जो दंश होता है वह बीचसे काला और किनारोंपरसे लाल और विदीर्ण हो जाता है तथा जिसके ये लूता काठ खाती हैं उनके डाढ़का विष उग्र होता है दंशकी जगह करड़ी विवर्णकी होती है एवं स्थिर चकद्दे हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ रज वीट और

(श्लोक. ८४) पुलानिका उच्चकर्णिका । धूमायनं धूमदर्शनमिव ।
(श्लो० ८५) दीर्ण विदीर्ण ।
(श्लो० ८६) रजः आर्तवम्, इंद्रियजं शुक्रम् (इति नि० सं०) अर्द्धमेतत्पद्यम् ।

शुक्र इनसे जो विष चढता है उससे पके हुए आंवले अथवा पीलूके समान पांडुवर्णका फोड़ा हो जाता है ॥ ८६ ॥

एतावदेतत्समुदाहृतं तु वक्ष्यामिलूताप्रभवं पुराणम् । सामान्यतो दंष्ट्रमसाध्यसाध्यं चिकित्सितं चापि यथाविशेषम् ॥ ८७ ॥

इतना ऊपर इनके विषका वर्णन किया अगाड़ी इनकी आरंभसे उत्पत्ति और सामान्यतासे दंश और उनकी साध्यता असाध्यता चिकित्सा और यथाविशेष कुछ इन लूताओंके लक्षण भेदभी वर्णन करेंगे ॥ ८७ ॥

लूताओंकी उत्पत्ति ।

विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदृषिसत्तमम् । वशिष्ठं कोपयामास गत्वाश्रमपदं किल ॥ ८८ ॥ कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात्स्वेदबिंदवः । अपतन्दर्शनादेवमधस्तात्तीक्ष्णवर्चसः ॥ ८९ ॥ लूने तृणे महर्षीणां धेन्वर्थसंभृतेऽपि च । ततो जातास्त्विमा घोरा नानारूपा महाविषाः ॥ ९० ॥ अपकाराय वर्तन्ते नृपसाधनवाहने । यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिंदवः ॥ ९१ ॥ तस्माल्लूतेति भाष्यंते संख्यया ताश्च षोडश । कृच्छ्रसाध्यास्तथाऽसाध्या लूतास्तु द्विविधाः स्मृताः ॥ ९२ ॥ तासामष्टौ कृच्छ्रसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव तु ॥ ९३ ॥

एकसमय राजोंमें श्रेष्ठ (राजर्षि) विश्वामित्र ऋषियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीके आश्रममें जाकर उन्हें क्रोधित करते भये ॥ ८८ ॥ वशिष्ठ मुनि कुपित हुए तब उनके मस्तकसे उग्र तेजवाली पसीनेकी बिंदु नीचे गिरी ॥ ८९ ॥ महर्षियोंकी गौवोंके लिये जो तृण संचित था वह इन बिंदुवोंसे भस्म होने लगा उससे अनेक रूपवाली महाविषैली घोर ये लूता (मकड़ियां) उत्पन्न हुई ॥ ९० ॥ और राजाओंके साधन (सामान) और वाहन (सवारी आदि) के अपकार करनेके लिये वे लूता प्रवर्त होती भई जोकि नष्ट हुए जले हुए तृणमेंसे ये मुनिके पसीनेकी बिंदु (लूतारूप) प्राप्त हुई इससे इन्हें लूता कहने लगे ये संख्यामें सोला प्रकारकी हैं ये सब लूता दो प्रकारकी होती हैं कष्टसाध्य और असाध्य ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इनमेंसे आठ कष्टसाध्य हैं और आठ त्यागने योग्य (असाध्य) हैं ॥ ९३ ॥

(श्लो० ८७) पुराणं प्रभवं आद्युत्पत्तिकारणं एतत्तु सामान्यतो वक्ष्यामि चिकित्सितंच यथाविशेषं विशेषानतिक्रमेण चकाराल्लक्षणमपि विशेषानतिक्रमेण वक्ष्यामीति संबंधः (इति नि० सं०) ।

इनके भेद ।

त्रिमंडला तथा श्वेता कपिला पीतिका तथा।आलमूत्रविषा रक्ता कसना चाष्टमी स्मृता ॥ ९४ ॥ ताभिर्दष्टे शिरोदुःखं कंडूर्दंशे च वेदना । भवंति च विशेषेण गदाः श्लैष्मिकवातिकाः ॥ ९५ ॥

त्रिमंडला (तीन घेरेवाली) सुपेद कपिल रंगकी तथा पीली आलविषा मूत्रविषा रक्त और आठवीं कसना ॥ ९४ ॥ इनके विषदंशसे शिरमें दर्द और दंशकी जगह खाज और पीडा होवे तथा विशेष करके कफ वायुके विकार होते हैं ॥ ९५ ॥

असाध्य लूता ।

सौवर्णिका लाजवर्णा जालिन्येणपदी तथा।कृष्णाऽग्निवर्णा काकांडा मालागुणाष्टमी स्मृता ॥ ९६ ॥ ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरो दाहोतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ९७ ॥ पिडका विविधाकारा मंडलानि महांति च । शोफो महांतो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ९८ ॥

सौवर्णिक (सुनहरी) लाजवर्ण (धानकी खील जैसी) जालिनी एणपदी (हिरनके खुर जैसी) काली अग्निवर्णा काकांडा (काकके अंडेसी) और आठवीं मालागुणा ॥ ९६ ॥ इनके दंशसे दंश स्थानका सड़ना और रुधिरकी प्रवृत्ति ज्वर दाह अतिसार और त्रिदोषके रोग ॥ ९७ ॥ तथा कई प्रकारकी फुन्सी और बडे २ चकद्दे तथा फैले हुये कोमल रक्त और काले सोथ शरीरपर कई जगह होजावें ॥ ९८ ॥

लूताओंके पृथक् २ दंशके लक्षण और यत्न ।

सामान्यं सर्वलूतानामेतदादंशलक्षणम् ।
विशेषलक्षणं तासां वक्ष्यामि सचिकित्सितम् ॥ ९९ ॥

सब लूताओंके दंशसे आदि लेकर लक्षण सामान्यतासे इस प्रकार होते हैं (सो वर्णन किये गये) और इनके विशेष लक्षण (जुदे जुदे) चिकित्सा सहित अब अगाडी वर्णन करते हैं ॥ ९९ ॥

त्रिमंडला दंश लक्षण यत्न ।

त्रिमंडलाया दंशेऽसृक् कृष्णं स्रवति दीर्यते । बाधिर्यं कलुषा दृष्टि-

स्तथा दाहश्च नेत्रयोः ॥ १०० ॥ तत्रार्कमूलं रजनी नाकुली पृश्निप-
र्णिकी । नस्तकर्मणि शस्यंते पानाभ्यंगांजनेषु च ॥ १०१ ॥

त्रिमंडला लूताके दंशसे काला रुधिर झिरता है और दंशस्थान फट जाता है बधिरता और दृष्टि बिगड़ी हुई होजाती है और नेत्रोंमें दाह होता है ॥ १०० ॥ इसमें आककी जड़ हलदी नाकुली और पृश्निपर्णी इनकी नस्य देना और पिलाना मलना और अंजन करना श्रेष्ठ है ॥ १०१ ॥

श्वेताके दंशके लक्षण यत्न ।

श्वेतायाः पिडका दंशे श्वेता कंडूमती भवेत् । दाहमूर्च्छाज्वरवती
विसर्पक्लेदरुक्करी ॥ १०२ ॥ तत्र चंदनरास्नैलाहरेणुनलवंजुलाः । कुष्टं
लामज्जकं चक्रं नलदं चागदो हितः ॥ १०३ ॥

श्वेता मकड़ीके विषसे दंशमें सुपेद खाज युक्त फुन्सी होजाती हैं जिसमें दाह मूर्च्छा और ज्वर भी हो जाते हैं और यह विसर्प और क्लेद तथा पीडा करने वाली होती है ॥ १०२ ॥ इसमें चंदन रास्ना इलायची हरेणु नरसल, जलवेतस, कूट, लामज्जक (सुगंधि तृण अर्थात् अजखर) चक्र (तगर) नलद (खस) इनका उपयोग हित है ॥ १०३ ॥

कपिलाके दंशके लक्षण यत्न ।

आदंशे पिडका ताम्रा कपिलायाः स्थिरा भवेत् । शिरसो गौरवं दाह-
स्तिमिरं भ्रम एव च ॥ १०४ ॥ तत्र पद्मककुष्टैलाकरंजककुभत्व-
चः । स्थिरार्कपर्ण्यपामार्गदूर्वाब्राह्मी विषापहा ॥ १०५ ॥

"कपिला" मकड़ीके दंशसे आस पास ताम्र वर्ण स्थिर फुन्सी हो जाती हैं शिरमें भारीपन दाह और आखों अगाड़ी अंधेरी आती है और भ्रम हो जाता है ॥ १०४ ॥ इसमें पद्माख, कूट, इलायची,करंज, कुहेकी छाल, शालपर्णी, अर्कपर्णी, ओंगा, दूब और ब्राह्मी ये विषको नष्ट करदेती हैं ॥ १०५ ॥

पीतिका ।

आदंशे पीतिकायास्तु पिडका जायते स्थिरा । तथा छर्दिर्ज्वरः शूलं
रक्ते स्यातां च लोचने ॥ १०६ ॥ तत्रेष्टाः कुटजोशीरतुंगपद्मकव-
ञ्जुलाः । शिरीषकिणिहीशेलुकदंबककुभत्वचः ॥ १०७ ॥

"पीतिका" के विषसे दंशके आस पास स्थिर फुन्सी हो जाती हैं और वमन ज्वर तथा शूल होता है दोनों नेत्र लाल हो जाते हैं ॥ १०६ ॥ इसके विषके लिये कुडा, खस, तुंग (पुन्नाग) पद्माख जलवेतस शिरस किणही शेलु (ल्हेसुवा) कदंब और कुहेकी छाल ये श्रेष्ठ हैं ॥ १०७ ॥

अलविषा ।

रक्तमंडनिभे दंशे पिडकाः सर्षपा इव । जायंते तालुशोषश्च दाहश्चाल- विषान्विते ॥ १०८ ॥ तत्र प्रियंगु ह्रीवेरं कुष्टं लामज्जवञ्जुलाः । अग- दः शतपुष्पा च सपिप्पलवटांकुरा ॥ १०९ ॥

आलविष लूताके विषयुक्त दंशके स्थानमें रक्तमंड जैसी रंगत हो जाती है और सरसों जैसी फुन्सियां होती हैं तालूमें खुश्की और दाह होता है ॥ १०८ ॥ इसमें प्रियंगु नेत्रवाला कूट लामज्जक तृण जलवेतस सोया पीपल और वडकी कोंपल यह अगद हित होता है ॥ १०९ ॥

मूत्रविषा ।

पूतिमूत्रविषादंशो विसर्पी कृष्णशोणितः । कासश्वासवमीमूर्च्छाज्वर- दाहसमन्वितः ॥ ११० ॥ मनःशिलालमधुककुष्टचंदनपद्मकैः।मधुमिश्रैः सलामज्जैरगदस्तत्र कीर्तितः ॥ १११ ॥

" मूत्र विषवाली " लूताके दंशसे विसर्प काला रक्त निकलना सड़जाना कास श्वास वमन मूर्च्छा ज्वर दाह ये उपद्रव होते हैं ॥ ११० ॥ इसमें (शुद्ध और सिद्ध करी हुई) मैनसिल और हरताल तथा मुलेटी कूट चंदन पद्माख लामज्जक इनको शहतमें मिलाकर उपयोग करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १११ ॥

रक्तलूता ।

दंशश्च पांडुपिडको दाहक्लेदसमन्वितः।रक्तांया रक्तपर्यंतो विज्ञेयो रक्तसं- युतः ॥ ११२ ॥ कार्यस्तत्रागदस्तोयचंदनोशीरपद्मकैः । तथैवार्जुन- शेलुभ्यां त्वग्भिराम्रातकस्य च ॥ ११३ ॥

" रक्तलूता " का दंश पीली फुन्सीयुक्त और दाह क्लेदसहित होता है और किनारे लाल होते हैं और रक्तसंयुक्त होता है ॥ ११२ ॥ इसमें नेत्रवाला चंदन खस पद्माख तथा अर्जुन शेलु तथा आमड़ेकी छाल इनसे यत्न करे ॥ ११३ ॥

कसना ।

पिच्छेलं कसनादंशाद्रुधिरं शीतलं स्रवेत् ।
कासश्वासौ च तत्रोक्तं रक्तलूताचिकित्सितम् ॥ ११४ ॥

" कसना " नामक लूताके दंशसे शीतल और गाढा रुधिर झिरता है खाँसी श्वास ये भी होजाते हैं इसमें उपरोक्त रक्तलूताकी विधि करे ॥ ११४ ॥

(वक्तव्य) इन योगोंमें यह नहीं कहा कि इन औषधोंका क्या उपयोग करें इसका समाधान यह है कि सबसे प्रथम त्रिमंडलाके यत्नमें लिख चुके हैं कि नस्य पान अभ्यंग (लेप) तथा अंजन करे बस इसीसे वैद्य जहां जो यथोचित हो उपरोक्त योगोंको उपयुक्त करे ॥

असाध्य लूताओंके यत्न ।

कृष्णलूता ।

पुरीषगंधिरल्पासृक् कृष्णाया दंश एव तु । ज्वरमूर्च्छावमीदाहकासश्वाससमन्वितः ॥ ११५ ॥ तत्रैलाचक्रसर्पाक्षीगंधनाकुलिचंदनैः । महासुगन्धिसहितैः प्रत्याख्यायागदः स्मृतः ॥ ११६ ॥

कृष्णा मकड़ीके दंशसे विष्ठाकेसी गंधवाला थोड़ा रुधिर निकलता है और ज्वर मूर्च्छा वमन दाह खाँसी और श्वास ये भी होते हैं ॥ ११५ ॥ इसमें पहले यह कह देवे कि यह असाध्य है अच्छा हो या नहो फिर यह औषध करे इलायची तगर सर्पाक्षी (नाकुली) गंध नाकुली (इसका दूसरा भेद) चंदन इनमें (दुंदुभिस्वनीय अध्यायोक्त) महासुगंधि औषध मिलाकर उपयोग करे ॥ ११६ ॥

अग्निवर्णा दंश लक्षण और यत्न ।

दंशे दाहोऽग्निवर्णायाः स्रावोत्यर्थं ज्वरस्तथा । चोषकंडूरोमहर्षौ दाहश्चं स्फोटजन्म च ॥११७॥ कृष्णाप्रशमनं चात्र प्रत्याख्याय प्रयोजयेत् । सारिवोशीरयष्टयाह्वचंदनोत्पलपत्रकम् ॥ ११८ ॥

अग्निवर्णाके दंशमें अग्निकासा दाह होता है और बहुतही स्राव होता है तथा ज्वर चोष खाज रोमहर्ष तथा शरीरमें दाह होता है और फोड़े पैदा होजातेहैं ॥११७॥ इसमें असाध्य है ऐसा कहकर उपरोक्त कृष्णा लूताकी शांतिके समान यत्न करे और सारिवा, खस, मुलेठी, चंदन और कमल पत्र इनका उपयोग करे ॥ ११८ ॥

सर्वासामेव युंजीत विषे श्लेष्मातकत्वचः ।
भिषक् सर्वप्रकारेषु तथा च क्षीरपिप्पलम् ॥ ११९ ॥

सबके विषमें सामान्यतासे वैद्य ल्हेसुवेकी छालका उपयोग करे और सब प्रकार के विषमें दूध पीपल उपयुक्त करे ॥ ११९ ॥

कृच्छ्रसाध्यविषा ह्यष्टौ प्रोक्ता द्वे च यदृच्छया ।
अवार्यविषवीर्याणां लक्षणानि निबोध मे ॥ १२० ॥

ऊपर पहले जो आठ लूता कृच्छ्रसाध्य कहीं उनमेंसे उपरोक्त दो (कृष्णा और अग्निवर्णा) कदाचित् दैव योगसे सिद्ध होभी जावें और शेष छह ऐसी हैं जिनके विषका वीर्य निवारण होही नहीं सकता उनके लक्षण मुझसे सुनो (और विचारो) ॥१२०॥

असाध्य लूताओंके दंशके लक्षण ।

ध्मातः सौवर्णिकादंशः सफेनो मत्स्यगंधकः । कासश्वासौ ज्वरस्तृष्णा मूर्च्छा चात्र सुदारुणा ॥ १२१ ॥ आदंशे लाजवर्णाया आमं पूति स्रवेदसृक् । दाहो मूर्च्छातिसारश्च शिरोदुःखं च जायते ॥ १२२ ॥ घोरदंशेस्तु जालिन्याराजिमानवदीर्यते । स्तंभः श्वासस्तमोवृद्धिस्तालुशोषश्च जायते ॥ १२३ ॥ एणीपद्यास्तथा दंशो भवेत्कृष्णतिलाकृतिः । तृष्णा मूर्च्छाज्वरश्छर्दिकासश्वाससमन्वितः ॥ १२४ ॥ दंशः काकांडकादष्टे पांडुरक्तोऽतिवेदनः ॥ १२५ ॥ रक्तो मालागुणादंशो धूमगंधोऽतिवेदनः । विदीर्यते च बहुधा दाहमूर्च्छाज्वरान्वितः ॥ १२६ ॥

सौवर्णिका नाम लूताके दंशसे आध्मान हो और झाग आवे तथा मछलीकेसी गंध आवे खाँसी श्वास ज्वर तृषा और इसमें दारुण मूर्च्छा होती है ॥ १२१ ॥ लाजवर्णाके दंशसे उसके आस पासमें दुर्गन्धित कच्चा रक्त झिरता है दाह मूर्च्छा अतिसार और शिरमें दर्द होता है ॥ १२२ ॥ जालिनीका दंश घोर रेखावाला फटा हुवा होता है इसमें स्तंभ श्वास तमोगुणकी वृद्धि और तालूमें खुश्की ये रोग होते हैं ॥ १२३ ॥ एणीपदीके दंशसे काले तिलके समान चित्ती हो जाती है तृषा

(श्लो० ११९) क्षीर पिप्पलमिति " लूताविषेषु सर्वेषु पानलेपांजनादिना । प्रयोज्यः पिप्पलः क्षीराज्जातःश्लेलुत्वचोथवा " इति क्षीराद्दुग्धात् पिप्पलः अश्वत्थः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः अथवा केचिदित्याहुः,पिप्पलः अश्वस्थः क्षीराज्जातः जलमणिः श्लेलुत्वक् अथवा श्लेलुत्वचो जातः श्लेलुनिर्यासः इत्याहुः ।

(श्लो० १२०) यदृच्छया दैवयोगेन ।

(श्लो० १२१) ध्मातः दग्धेष्टकावत् सवर्ण इति डल्लनः अपरे चाध्मानयुक्त इत्याहुः ।

मूर्च्छा ज्वर वमन खांसी श्वास ये भी होते हैं ॥ १२४ ॥ काकांडा के दंशसे दंश स्थान पीला लाल हो जावे और बडी दारुण वेदना होवे ॥ १२५ ॥ और मालागुणा के दंशमें रक्तवर्ण धुवांकेसी गंध और अतिपीडा होवे और बहुत जगहसे विदीर्ण हो जावे तथा दाह मूर्च्छा और ज्वर ये भी हो जावें ॥ १२६ ॥

इनकी चिकित्साकी आज्ञा ।

असाध्यानां भिषक् प्राज्ञः प्रयुंजीत चिकित्सितम् ।
दोषोच्छ्रायविशेषेण छेदकर्मविवर्जितम् ॥ १२७ ॥

यद्यपि ये उपरोक्त असाध्य हैं इनकी औषध नहीं कही तो भी बुद्धिमान् वैद्य दोषोंकी उल्बणताके अनुसार इनकी भी चिकित्सा करे (कि शायत् ईश्वरकी दयासे आराम हो भी जाय) परंतु छेद कर्म इनमें वर्जित है वह नहीं करना चाहिये॥१२७॥

लूतादंशका छेदन प्रकार ।

साध्याभिराभि र्लूताभिर्दष्टमात्रस्य देहिनः। वृद्धिपत्रेण मतिमान्सम्यगादंशमुद्धरेत् ॥ १२८ ॥ जाम्बोष्ठेनाग्नितप्तेन दहेदाकरवारणात् । अमर्मणि विधानज्ञो वर्जितस्य ज्वरादिभिः ॥ १२९ ॥ दंशस्योत्कर्तनं कुर्यादल्पश्वयथुकस्य च । मधुसैंधवसंयुक्तैरगदैर्लेपयेत्ततः ॥ १३० ॥ प्रियंगुरजनीकुष्टसमंगामधुकस्तथा ॥ १३१ ॥

साध्य जो ये लूता हैं इनके दंश वाले मनुष्यके दंशके आसपासके स्थानको वृद्धि पत्रसे बुद्धिमान् वैद्य काटडाले(इसमें कई ऐसा अर्थ करते हैं आभिः पदसे उपरोक्त असाध्योंको भी लेते हैं अर्थात् साध्योंसे दष्ट और (आभिःअसाध्याभिश्च)इन असाध्योंसे दष्ट वस्तुतः दष्टः मात्र मनुष्यके दंशको काटडाले यही तात्पर्य है)॥१२८॥ और जाम्बोष्ठको तप्त करके फिर उसे जलादे और "आकरवारणात्" इसका यह प्रयोजन है कि अपने हाथको वैद्य बचाता रहै ऐसा नहो वह विष संक्रामकतासे वैद्यके हाथमें चढ जावे अथवा "आकरवारणात्" अर्थात् करवारण पर्यंत दग्ध करे जबतक रोगीका शुद्ध चर्म जलन लगे और वह हाथसे रोके जहां तक जलावे परंतु

(श्लो० १२८) आभिरितिपदेन केचिदसाध्याभिर्दष्टस्य ग्रहणं चापिकुर्वंति ।

(श्लो० १२९) अमर्माणि विधानज्ञो वर्जितस्य ज्वरादिभिरेतं अर्द्धं केचित्तु अग्रिमेण दंश स्योत्कर्तनं कुर्यादित्यनेन सह युंजंति अन्येच पूर्वेण जांबोष्ठेनाग्नितप्तेन दहेदित्यनेन सह युंजंतीति, आकरवारणादिति वैद्यः स्वस्य करस्य वारणं रक्षणं यथा स्यात्तथा दहेत् अथवा आकरवारणात् करवारणपर्यंतं यावदातुरः करेण वारणं कुर्यात् तावद्दहेत् ।

हमारी संमतिमें पहला अर्थ अच्छा है और विधानज्ञ वैद्य मर्म से पृथक् दंशहो और रोगीको ज्वरादिक दारुण उपद्रव नहों और सोजाभी कम हो तो दंशस्थानको काटे और फिर उसपर शहत और सैंधवयुक्त महासुगंधादि अगदोंका लेप करदे ॥१२९॥१३०॥ तथा प्रियंगु हलदी कूट मँजीठ मुलेठी इनका लेप करे ॥ १३१ ॥

पान और सेचन।

सारिवा मधुकं द्राक्षा पयस्या क्षीरमोरटम् । विदारीगोक्षुरक्षौद्रमधुकं पाययेत वा ॥ १३२ ॥ क्षीरिणां त्वक्कषायेण सुशीतेन च सेचयेत् । उपद्रवान्यथादोषं विषघ्नैश्च प्रसाधयेत् ॥ १३३ ॥

सारिवा मुलेठी मुनक्का क्षीरकाकोली और क्षीरमोरटा (दूधका पानी) इन्हें पिलावे अथवा विदारी गोखरू मुलेठी शहत इन्हें पिलावे ॥ १३२ ॥ और दूधवाले (वट आदि) वृक्षोंकी छालके ठंढे क्वाथसे सेचन करे और जो जो उपद्रव हों दोषों के अनुसार विषघ्न औषधों से साधन करे ॥ १३३ ॥

नस्यांजनाभ्यंजनपानधूमं तथावपीडं कवलग्रहं च ।
संशोधनं चोभयतःप्रयुंज्याद्रक्तं हरेच्चापि जलायुकाभिः॥ १३४॥

(लूताओंके विषमें विषघ्न औषधोंको) नस्य देने अंजन कराने अभ्यंजन (मलने या लेप करने) तथा पिलाने और अवपीडन एवं कवलग्रह करानेके काममें यथायोग्य लावे और वमन स्वेदन द्वारा दोनों तरफसे (ऊपर नीचेसे) शोधन करे और जलौका (जोंकें) लगाकर रुधिरभी निकाले ॥ १३४ ॥

कीटदुष्टव्रणान्सर्वानहिदष्टव्रणानि च । आदंशपाकं यत्नेन चिकित्से-त्सर्पदष्टवत् ॥ १३५ ॥ विनिवृत्ते ततः शोफे कर्णिकापातनं हितम् । निंबपत्रं त्रिवृद्दंती कुसुंभं रजनी मधु ॥ १३६ ॥ गुग्गुलुः सैंधवं किण्वं वर्चः पारावतस्य च । विषवृद्धिकरं चान्नं हित्वा संभोजनं हितम् ॥ ॥ १३७ ॥ विषेभ्यः खलु सर्वेभ्यः कर्णिकामरुजां स्थिराम् । प्रच्छ-यित्वा मधुयुतैः शोधनीयैरुपाचरेत् ॥ १३८ ॥

कीडोंके काटे हुएके दुष्टव्रणोंको तथा सर्पके काटेके व्रणोंको दंशके पकने पहले यत्न पूर्वक सर्पके काटेहुएके समान चिकित्सा करनी चाहिये (कई आदंश पाककी जगह आदाहपाकं ऐसा पाठ मानते हैं अर्थात् जबतक दाह और पाकरहे तबतक चिकित्सा करे) ॥ १३५ ॥ और जब सोजा उतर जावे तब कर्णिका

(श्लो० १३५) आदंशपाकमित्यत्र आदाहपाकमितिवापाठः ॥

(किनारेदार गांठसी होजाती है उसे) पातन करना हित है नींबके पत्ते निसोथ दंती कसूँभा हलदी गूगल सैंधानमक मद्यका बीज और कबूतरकी बीट (इनको उसपर) (कर्णिकापर) (लगावे इससे साफ होजाती है) और विष बढ़ानेवाले अन्न (कोद्रवादि) को त्यागकर हितकारक (घृतादियुक्त) भोजन करे ॥ १३६ ॥ ॥ १३७ ॥ सब प्रकारके विषोंमें विना पीडाकी स्थिर कर्णिका (गांठसी) पड़जाती है उसपर पछने लगाकर शहतयुक्त शोधनीय द्रव्योंसे शुद्ध करनेका यत्न करे ॥ १३८ ॥

(वक्तव्य) ऊपर जो अनेकभांतिकी भयंकर मकड़ियां लिखी सो यहां पहले वन जंगल अधिक थे तब बहुत होतीथीं तथा अबभी अफ्रीका देशके भयंकर जंगल वनों आदिमें होती हैं परंतु भरतखंडकी बस्तियोंमें भी पांच चार प्रकारकी होती हैं जिनका विषभी बड़ा दुःखदायक होता है ॥

सप्तषष्टेश्च कीटानां शतस्यैतद्विभागशः ।
दष्टलक्षणमाख्यातं चिकित्सा चाप्यनंतरम् ॥ १३९ ॥

हमने इस तंत्रमें कीटोंके एक सौं सतसठ (१६७) भेद कहे हैं और प्रायः उनके दंशके लक्षण और उनके पीछे उनकी चिकित्साकाभी वर्णन किया है १३९॥

(वक्तव्य) इन कीटोंके भेद इस प्रकारसे १६७ हैं कि–१८ प्रकारके वायव्य २४ प्रकारके आग्नेय १३ सौम्य १२ प्राणहर सान्निपातिक फिर ४ भांतिके कणभा ५ भांतिके गोधेर ६ गलगोली ८ शतपदी ८ मंडूक ४ विश्वंभरादि ८ पिपीलिका ६ मक्षिका ५ मशक और ३० प्रकारके बिच्छू तथा १६ प्रकारकी लूता इस तरह सब १६७ भांतिके कीट कहे हैं ॥

सविंशमध्यायशतमेतदुक्तं विभागशः ।
इहोद्दिष्टाननिर्दिष्टान्सर्वान्वक्ष्याम्यथोत्तरे ॥ १४० ॥

सूत्र स्थानसे लेकर कल्पस्थानपर्यंत १२० अध्यायोंका विभागपूर्वक वर्णन किया और इसमें कहे हुए (शालाक्य कौमार भृत्यकाय चिकित्सा) जिनका वर्णन अबतक इसमें नहीं किया गया है उन सबका वर्णन हम उत्तर तंत्रमें करेंगे ॥ १४० ॥

(श्लो० १४०) इह उद्दिष्टान् शालाक्यकौमारभृत्यकायचिकित्साभूतविद्यारूपान् अनिर्दिष्टान् अनुक्तान् सर्वान् उत्तरे वक्ष्यामि ॥

आयुर्वेदकी उत्तमता।

सनातनत्वाद्वेदानामक्षरत्वात्तथैव च । तथा दृष्टफलत्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम् ॥ १४१ ॥ वाक्समूहार्थविस्तारात्पूजितत्वाच्च देहिभिः । चिकित्सितात्पुण्यतमं न किंचिदपि शुश्रुम ॥ १४२ ॥

सुश्रुतजी कहते हैं कि, हमने चिकित्साशास्त्रसे बढ़कर और कोई पुण्यतम (अति पवित्र) नहीं सुना क्योंकि वेद (आयुर्वेद) सनातन है और अक्षर (अखंड और अकाट्य) है तथा चिकित्साशास्त्र दृष्टफल वाला है (अर्थात् इसका फल प्रत्यक्ष है) और प्राणियोंका हित साधन करनेवाला है और इसमें वाक्योंका समूह और अर्थोंके विस्तार हैं तथा यह प्राणियों करके पूजित भी है (अर्थात् प्राणी मात्र इसका सत्कार करते हैं) (इन कारणोंसे यह सर्व श्रेष्ठ है) ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

ऋषेरिंद्रप्रभावस्यामृतयोनेर्भिषग्गुरोः । धारयित्वा तु विमलं मतं परमसंमतम् । उक्ताहारसमाचार इह प्रेत्य च मोदते ॥ १४३ ॥

इति सुश्रुते कल्पस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ इति कल्पस्थानं समाप्तम् ।

इंद्रके समान प्रभाववाले अमृतके संग उत्पन्न हुए वैद्योंके गुरु ऐसे राजर्षि श्री भगवान् धन्वंतरिजीके निर्मल और परम सम्मत (सबको मान्य) मतको अर्थात् इस संहिताको जो धारण करके (पढ़कर या सुनकर) इसके अनुसार (स्वास्थ्य रक्षा तथा रोग निवृत्तिके अर्थ) आहार (खान पान औषधादि) तथा समाचार (आचार विहारादि) को करेंगे वे इस लोकमें तथा परलोकमें सुख (और हर्ष) में रहेंगे ॥ १४३ ॥

इति श्रीपं०मुरलीधरविरचितसुश्रुतसंहितायाःसान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्टभाषाटीकायांकल्पस्थानेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

पूर्तिश्लोकः ।

पंचेष्वंकज्यामितवर्षे सितपक्षे भाद्रे मासे मन्मथतिथ्यां विधुवारे । शैलानाख्ये सुश्रुतटीकारचनायां कल्पस्थानं याति सुपूर्तिं शुभमेतत् ॥ १ ॥

संवत् १९५५ भाद्रपद शुक्ला १३ चंद्रवारको सैलाना नामक राजधानीमें सुश्रुत संहिताकी टीकाकी रचनामें यह शुभ कल्पस्थान समाप्त हुवा ॥

इसके अगाडी परिशिष्ट भागमें विषोपयोगकी कुछ विधि तंत्रांतरोंसे लिखतेहैं ॥

परिशिष्ट-भाग (१)

विषोपयोगविधि ।

यद्यपि विष महा तीक्ष्ण प्राणों के नाश करनेवाले होते हैं परंतु युक्तिपूर्वक उपयोग किये जानेसे यह असाध्य रोगोंको नष्ट कर सकते हैं परम रसायन और अत्यंत वाजीकरण और बृंहण होते हैं इस कारण हम इनका विधान तंत्रांतरसे लिखते हैं ।

विषके गुण (भा० प्र०) ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च । आग्नेयं वातकफहृत् योगवाहि मदावहम् ॥ १ ॥ तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् । योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ २ ॥

(यद्यपि) विष प्राण हरनेवाले हैं व्यवायि और विकाशि हैं आग्नेय गुणवाले हैं वात कफके हरनेवाले योगवाही (गरमके संग अति गरम और शीतलके संग महा शीतल) हैं तथा मदकारक हैं ॥ १ ॥ (तथापि) ये युक्तिसे उपयोग किये हुवे प्राणोंके देनेवाले रसायन और योगवाही होकर तीनों दोषोंके शांत करनेवाले तथा बृंहण (शरीरकी धातुवोंकी पुष्टि) और वृद्धि करनेवाले तथा वीर्यके बढ़ानेवाले होते हैं ॥ २ ॥

विषोंके शोधनका हेतु ।

ये दुर्गुणा विषे शुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात् ।
तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ (भा० प्र०)

अशुद्ध विषमें जो दुर्गुण (हानिकारक दोष) होते हैं वे शोधन करनेसे हीन हो जाते हैं इस कारण विषोंको शोधन करके प्रयोगोंमें उपयुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

(वक्तव्य) इस संहितामें जो कंद संज्ञक १३ उग्र विष लिखे हैं उनमेंसे प्रायः नहीं मिलते बहुत करके दो विष मिलते हैं १ वत्सनाभ २ शृंगीविष. इससे इन्हें शोध कर उपयोग करना चाहिये ।

विषशोधन विधि ।

गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुध्यति ।
रक्तसर्षपतैलाक्ते तथा धार्यं च वाससि ॥ ४ ॥ (भा० प्र०)

विषको टुकडे २ करके तीन दिनतक गोमूत्रमें भिगोया रक्खे फिर उसे धोकर साफ करे इससे वह शुद्ध होजाते हैं फिर सुरख सरसोंके तैलमें चिकने किये हुए वस्त्रमें लपेटकर रक्खे ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) विषके शोधनकी परिपाटी प्रायः यह है कि विषको प्रथम उपरोक्त प्रकारसे गोमूत्रमें भिगोवे फिर धोकर साफ करके महीन कपड़ेमें बांधकर उसे गोदुग्धमें दोलायंत्रसे पकावे. जब दुग्ध गाढा होजावे और फट जावे तब उसमेंसे निकालकर धोकर साफ करके सुखाकर रक्खे और बहुत सावधानीसे काममें लावे ॥

विषकी मात्रा । (वृ० वा०)

चतुर्भिः षड्भिरष्टाभिः हीनमध्योत्तमां यवैः।मात्रां विषस्य मौलस्य प्रयुंजीत यथायथम् ॥ ५ ॥ दष्टस्य द्वौ यवौ कीटैस्तिलमात्रं तु वृश्चिके॥६॥

मूल और कंदविषोंकी मात्रा ४ जौके बराबर हीन मात्रा है ६ जौके बराबर मध्यमात्रा और ८ जौके बराबर उत्कृष्ट मात्रा समझनी चाहिये और महाविषधरके प्रतिकारमें या महाघोर व्याधिमें उत्कृष्टमात्रा और मध्यमके लिये मध्यम और मंदके लिये हीनमात्रा यथायोग्य उपयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥ और उग्रविष कीटके विषके प्रतिकारमें दो जौके बराबर तथा मंदविष विच्छूके प्रतिकारमें तिलमात्र मूलविषकी मात्रा उपयोग करे ॥ ६ ॥

विषकी नियोजना । (वृ० वा०)

विषे प्रतिविषं योज्यं मंत्रतंत्रैरसिध्यति । अतीते पंचमे वेगे सप्तमस्यानतिक्रमे । प्रभोर्निवेद्य प्रयतेन्नैव व्याख्याय कस्य चित् ॥ ७ ॥

जब औषध और मंत्र तंत्र इन किसीसेभी सिद्ध नहो तब विषके प्रति (प्रतिकूलरूपक) विषहीकी योजना करे. जब पांच वेग होचुकें उसके पीछे सातवें वेगके पहले पहले ईश्वरसे निवेदन करके और किसीसे भी न कहकर (उस घोर अवस्थामें विषपर) विषका उपयोग करे ॥ ७ ॥

प्रति विषयोजनाका हेतु । (वृ० वा०)

श्लेष्मतुल्यं गुणं प्रायः स्थिरमूर्द्धगमं विषम् । प्रायः पित्तगुणैर्युक्तं मध्यगामि च जंगमम् ॥ ८ ॥ गुणैरेभिर्विपर्यस्तैर्निहतास्ते परस्परम् । युंज्यान्मूलविषं तस्माद्दष्टानां पानलेपयोः ॥ ९ ॥ विषपीतं च कुशलो दंशयेत्पवनाशिभिः । न विषप्रतिमं किंचिन्निर्विषीकरणं विषे ॥ १० ॥

स्थावर विष प्रायः कफके तुल्य गुणवाले होते हैं और ऊपरको गमन करते हैं (अर्थात् आमाशयादिसे रक्तादिकी तरफ गमन करते हैं) और जंगम विष प्रायः पित्तके गुणसे युक्त होते हैं और मध्यगामी (अर्थात् रक्तमें प्रविष्ट हुये भीतरकी तरफ गमन करनेवाले) होते हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार एकसे दूसरी प्रकारके विषोंमें

विपरीत गुण होनेसे परस्पर एक दूसरेको नष्ट करते हैं इसी कारण सर्प (आदि) के डसे हुयोंको स्थावर मूल विषोंमेंसे किसीका उपयोग पिलाने खिलाने और लेपमें करना योग्य है ॥ ९ ॥ और जिस किसीने स्थावर विष खा पी लिये हों और भयंकर असाध्य दशा हो गई हो तो उसे सर्पसे कटवाना चाहिये क्योंकि बिषके अति असाध्य अवस्थामें दूसरे प्रति विषके सिवाय और कोईभी उपाय निर्विषीकरणका नहीं है ॥ १० ॥

इसपर और प्रमाण । (चरकः)

जंगमं स्यादधोभागमूर्द्ध्वभागं तु मूलजम् ।
तस्माद्दंष्ट्रिविषं मौलं हंति मौलं च दंष्ट्रिजम् ॥ ११ ॥

जंगम (सर्प विच्छू मूषक कुक्कुरादि जीवोंके काटेका) विष अधो भागकी तरफ गमन करता है और मूलज (कंद मूल आदिका स्थावर) विष ऊर्द्ध्व भागमें गमन करता है इससे डाढसे काटने वालोंके जंगम विषको मूल स्थावर विष नष्ट करता है तथा स्थावर विषको जंगम विष नष्ट करता है (धन्वंतरिजीनेभी प्रति विषके उपयोगकी आज्ञा दी है देखो दूषीविष व्याधि दूष्योदरकी चिकित्सा) ॥ ११ ॥

(वक्तव्य) और "विषस्य विषमौषधम्" यह प्रसिद्ध ही है इसकाभी यही अर्थ है कि एक प्रकारके विषजन्य उपद्रवोंको दूसरे प्रकारका विषही शांत कर सकता है. अन्य साधारण औषधकी सामर्थ्य उसका प्रभाव नष्ट करनेका उतना नहीं है परंतु यह काम बहुतही विचारका है साधारण करनेका नहीं है ॥

ग्राह्य विष । (वृ० वा०)

साक्तुकं मुस्तकं शृंगी पालकं सर्षपाह्वयम् । वत्सनाभं च कर्माणं विषं स्निग्धं घनं गुरु । न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं कालकूटं विशेषतः ॥ १२ ॥

साक्तुक मुस्तक शृंगी (सींगी मोहरा) पालक (अथवा बालक) सर्षपक और वत्सनाभ येही विष काममें लाने योग्य हैं स्निग्ध हैं भारी और गुरु हैं (इन्हींमेंसे किसीका उपयोग करना उचित है) इनसे अन्य विष कदापि उपयोगमें नहीं लाने चाहियें और विशेष करके कालकूट उपयोगमें कभी भी नहीं लावें ॥ १२ ॥

विषपर अनुपान । (वृ० वा०)

विषेवचारिते तीक्ष्णे पेयं घृतमनंतरम् । सभार्ङ्गी
दधिमंडोत्थसारिवा तंडुलीयकम् ॥ १३ ॥

तीक्ष्ण विषके उपयोगके पीछे निरंतर घृत पीना चाहिये और भांर्गी दहीके मंड से निकला (मक्खन) सारिवा और चौलाई ये खावें ॥ १३ ॥

विषके दर्प और उपद्रव नाशक यत्न ।

अगारधूममंजिष्ठायष्ट्याह्वैर्वा समन्वितम् । लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां चूर्णिता-मर्ज्जुनत्वचम् ॥ १४ ॥ क्षीरक्षौद्रघृतैर्युक्तं पीतं हंति विषं विषम् । ससिंदुवारतगरं मृतसंजीवनं विषम् ॥ १५ ॥

घरका धूम मंजीठ, मुलेठी,इनके संग अथवा अर्जुन वृक्षकी छालके चूर्णको शहत और घृतके संग चाटे ॥ १४ ॥ दूध शहत और घृतके संग थोडा और दूसरी प्रकृत्ति विष पीनेसे पूर्व विषका प्रभाव नष्ट होजाता है और सिभालू और तगर इनमें दूसरी प्रकृतिका विष मिलाकर उपयोग करनेसे मृत मनुष्यको संजीव कर सकता है ॥ १५ ॥

(वक्तव्य) स्थावर विषोंमें भी सभी प्रकृतिप्रधान विष होते हैं और जंगममें भी इससे एक प्रकृतिके (जैसे कफ प्रकृतिको विष उपयोग करने) से उपाधी हुई हो तो दूसरा (स्थावर ही पित्त प्रकृतिवाला) उपरोक्त योगसे प्रयुक्त किया जावे तौ पहले वालेके उपद्रवोंको वह शांतकर देता है ॥

नित्य विष सेवन । (वृ० वा०)

विषं युंजीत नित्यं च रसायनगुणेषिणः । घृतोपस्कृतदेहस्य विशुद्धस्य हिताशिनः ॥ १६ ॥ सात्विकस्योदिते भानौ योज्यं शीतवसंतयोः । ग्रीष्मे चात्ययिके व्याधौ न च वर्षासु दुर्दिने ॥ १७ ॥

जो मनुष्य घृतसे खूब स्निग्ध देहवाला हो उसे वमन रेचनादिसे शुद्ध करके और हित आहारका नियम करके रसायनके गुणकी इच्छासे नित्य बहुतही सूक्ष्म मात्रासे शोधन किया हुवा विष उपयोग करावे ॥ १६ ॥ विषके उपयोग करनेवाला मनुष्य सात्विक होवे उसे शीतऋतु तथा वसंत ऋतुमें सूर्योदयके समय यथायोग्य विषकी मात्राका नित्य उपयोग करावे और अति आवश्यक और उग्र व्याधि हो तौ ग्रीष्म ऋतुमें भी उपयोग करा सकते हैं परंतु वर्षाऋतु मेघाच्छादित दिनोंमें कदापि उपयोग न करावें ॥ १७ ॥

विषसे वर्जित मनुष्य ।

न क्रोधने न पित्तार्ते न क्लीबे राजनि द्विजे । क्षुत्तृष्णाश्रमघर्माध्वव्याध्यं-तरनिपीडिते । गर्भिणीबालवृद्धेषु न रूक्षेषु न मर्मसु ॥ १८ ॥

इतने मनुष्योंको विषका सेवन कदापि न करावें जैसे क्रोधी पित्तके रोगवाला वा पित्ताधिक नपुंसक (सहज क्लीब) राजा ब्राह्मण क्षुधायुक्त (भूखे) प्यासे

परिश्रमसे गरमीसे मार्ग चलनेसे पीडित तथा रोग संकर कई एकसे दूसरी विपरीत व्याधियोंसे पीडित गर्भवती स्त्री बालक वृद्ध रूक्ष देहवाले इन्हें विषोपयोग अनुचित होता है और मर्मस्थानके रोगोंमें अथवा मर्मस्थानों पर ऊपर लेपनादिमें उपयोग न करे ॥ १८ ॥

विषोपयोगमें पथ्य ।

स्वभ्यस्तेपि विषे यस्माद्वर्जनीयान्विवर्जयेत् । कट्वम्लतैललवणदिवास्वमातपानलान् ॥ १९ ॥ रूक्षमन्नं विशेषेण भयं वाऽजीर्णतः सदा । दृग्विभ्रमं कर्णरुजामन्यांश्वानिलजान्गदान् । विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेवत्वजीर्णतः ॥ २० ॥

जो कि विषके अभ्यास पड़ जानेपरभी वर्जनीय वस्तुवोंको त्याग करे जैसे चरपरा (लाल मिरची आदि) खटाई तेल लवण दिनका सोना धूप और अग्निका ताप ॥ १९ ॥ विशेष करके रूक्ष भोजन और अजीर्णसे भय होता है इनसे सदा बचे क्योंकि विष रूखा भोजन करनेवालेके दृष्टिमें भ्रम, कानमें पीडा और अन्य वायुके (रोग आक्षेपकादि) करता है और अजीर्णसे मृत्यु कारक होता है ॥ २० ॥

कतिपय रोगोंपर विषोपयोग । (वृ० वा०)

निकुंभकुंभत्रिफलासर्पिर्मधुविषैः कृतः । निहंति मोदको जीर्णज्वरमेहत्वगामयान् ॥ २१ ॥ विषं यष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकंदकम् । तंदुलोदकपीतानि रक्तपित्तस्य भेषजम् ॥ २२ ॥ विषं रसांजनं भार्ङ्गी वृश्चिकाली महासहा । सवेदने सपाके च व्रणे दुष्टे प्रलेपनम् ॥ २३ ॥ सिताविषक्षीरतरुप्रवाला मधुना द्रुताः । श्वासहिक्कापहा लीढाश्छर्दिघ्नास्तु विषान्विता । क्षौद्रोशीरमधुक्षाररजनीकुटजत्वचः ॥ २४ ॥

निकुंभ (दंती) कुंभ (निसोथ) त्रिफला घृत शहत और विष इनसे बनाई हुई गोली " जीर्णज्वर प्रमेह त्वचाके रोग " इनको नष्ट करें हैं ॥ २१ ॥ विष मुलेटी रास्ना सेव्य (खस) कमलकंद इन्हें मिला चावलोंके जलसे पीवे तौ यह " रक्तपित्त " का औषधी है ॥ २२ ॥ शींगीमुहरा रसोत भाडंगी वृश्चिकाली और शालपर्णी इन्हें पीसकर वेदनायुक्त पाकयुक्त " दुष्टव्रण " पर लेप करनेसे वह शुद्ध होजावे ॥ २३ ॥ मिसरी सींगीमोहरा दूधके वृक्षोंकी कोंपल इन्हें शहतमें मिलाकर चाटनेसे " श्वास और हिचकी " नष्ट होवे तथा शहत खस मुलेटी जवाखार हलदी कुडाकी छाल इनमें सींगीमोहरा मिलाकर चाटनेसे " वमन " शांत होवे ॥ २४ ॥

कृच्छ्रघ्नं विषपथ्याग्निदंतीद्राक्षानिशाविषम् । शिलाजतु विषं मूत्रमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ २५ ॥ समूलपिप्पलीमूत्रं विषं शूलहरं तथा । त्रिफला स्वर्जिका क्षारो विषं गुल्मप्रभेदनम् ॥ २६ ॥ वायसीमूलनिःक्काथपीतं कुष्ठहरं विषम् । नष्टशुक्रे पयो द्राक्षा कपिकच्छुवचाविषम् ॥ २७ ॥ स्वरसं बीजपूरस्य वचा ब्राह्मी रसं घृतं । वंध्या पिबंती सविषं सुपुत्रैः परिवार्यते ॥ २८ ॥

सींगीमोहरा हरीतकी चित्रक तथा दंती द्राक्षा हलदी विष (सींगीमोहरा) ये मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करते हैं और शिलाजीतमें सींगीमोहरा मिलाकर गोमूत्रसे उपयोग करनेसे उदावर्त और पथरी नष्ट होते हैं ॥ २५ ॥ मूल (पोहकर मूल) पिप्पली विष (सींगीमोहरा) इन्हें गोमूत्रसे पीवे तो शूल नष्ट होवे तथा त्रिफला सज्जीखार विष (वत्सनाभ) इनका उपयोग करनेसे गुल्म नष्ट होजावे ॥ २६ ॥ वायसी (काकोदुंबर) की जडके क्राथ संग विष (सींगीमोहरा) पान करे इससे कुष्ठका नाश होवे तथा नष्ट वीर्य पुरुष दूध द्राक्षा केवचके बीज वच और सींगीमोहरा इनका सेवन करे ॥ २७ ॥ बिजोरेका रस वच ब्राह्मीका रस घृत और शृंगीविष इन्हें वंध्या पीवे तौ सुपुत्रोंका परिवार होजावे ॥ २८ ॥

विषं धात्रीफलरसैरसकृत्परिभावितम् । अंजनं शंखसहितं प्रगाढतिमिरप्रणुत् ॥ २९ ॥ नस्यं शिरोरुक्शमनं प्रत्यक्पुष्पी सिता विषम् । कटुतैलं विषं नस्यं पलिताऽरुंषिकापहम् ॥ ३० ॥ स्वर्जिकाक्षारसिंधूत्थशुक्तयुक्तं विषं परम् । कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिबर्हणम् ॥ ३१ ॥ देवदारु विषं सर्पिर्गोमूत्रं कंटकारिका । वाचः स्खलनतां हंति पीतमित्याह काश्यपः ॥ ३२ ॥

विष (शृंगी) को आंवलोंके रसकी अनेक (सात) भावना देकर उसे शंखके साथ घिसकर अंजन करनेसे तिमिर (नेत्ररोग) नष्ट होवे ॥ २९ ॥ प्रत्यक्पुष्पी मिसरी और उक्त विष इनकी नस्यसे शिरका रोग (दर्द) शांत हो जाता है तथा कडुवा तैल और विष इनकी नस्य लेनेसे पलित (सुपेद बाल होना) और अरुंषिका ये नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ सज्जीखार सैंधानमक उक्त विष इन्हें सिरकेमें मिलाकर कानोंमें डालनेसे तीव्र कर्णशूल नष्ट हो जावे ॥ ३१॥ देवदारु विष गोमूत्र

(श्लो० २७-२८) इनमें वचाकी जगह कई बला ऐसा पांठातर मानते हैं. बला खरेंटी ।

घृत कटेली इन्हें पीनेसे वाणीकी स्खलनता (अटकना या हलकापन) नष्ट हो जाती है यह काश्यप ऋषि कहते हैं ॥ ३२ ॥

शत्रुप्रयुक्ताद्विषतो गराद्वा भूताद्भुजंगाखुगणाज्जरायाः ।
अकालमृत्योर्ग्रहपाप्मतो वा विषाशिनो नास्ति भयं नरस्य ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य विषको उचित रीतिसे सेवन करते हैं उन्हें शत्रुके दिये हुये विषसे अथवा गर (कृत्रिम विष) से भूत सर्प विषयुक्त मूषकोंसे बुढ़ापेसे अकाल मृत्युसे पापग्रहोंसे कभी भय नहीं होता ॥ ३३ ॥

(वक्तव्य) विषोंका जो उपयोग लिखा है इससे हरेक मनुष्यका यह काम नहीं है वे पूर्वापर विचारे और विना पूर्ण अभ्यासी वैद्यकी संमतिके, विषका उपयोग करें या औरको उपयोग करनेकी संमति दें किंतु ऐसा करनेसे बड़ी हानि होती है जो अच्छे परिपूर्ण वैद्य हैं वेभी इसके उपयोगमें बहुत सोच विचारके युक्तिपूर्वक काम करें और जब देखें कि अन्य औषधोंसे काम नहीं होता अर्थात् वे काम नहीं देती और रोग महा असाध्य है वहां पर परम आवश्यकतामें इसका उपयोग करें और बहुतही थोड़ी मात्रासे आरंभ करे (इति विषोपयोगविधिः)

परिशिष्ट (भाग २)

डाक्टरीमतसे कुछ विषोंका वर्णन ।

अंगरेजीमें विषको " पाइजन " (Poison) कहते हैं. यद्यपि इनके यहां प्राकृतिक (स्वयं पैदा हुये स्थावर जंगम) विषभी माने जाते हैं और काममें आते हैं पर विशेषकरके कृत्रिम विष इनके यहां बहुत हैं अर्थात् किसी तेज वस्तुका सत्व निकाला हुवा महा तीक्ष्ण विषके तुल्य होजाता है उसेभी एक प्रकारका कृत्रिम विषही जानिये जैसे " नाइट्रिक एसिड" (शोरेका तेजाब) इत्यादि ।

इनके यहां विषकी तीन किसमें की गई हैं (१) " इरीटेंट " (जिससे कै और दस्त बहुत जादा जारी होजावे; (२) " नारकाटिक " जिससे दिमाग या दिलके कर्तव्यमें फरक होजावे और शरीरके हरेक भागकी गतिमें सुस्ती होकर बेहोशी वगेरा हो जावे; (३) " नारकोटीक्यू इरीटेंट" (जिससे दोनों बातें होजावें) ॥

यद्यपि डाक्टरी मतसे विषोंकी कुछ गिनती नहीं और हैं भी असंख्यात; परंतु जो बहुत प्रसिद्ध हैं प्रायः उनके नाम उपद्रव मारक मात्रा तथा मारक अवधि यहां लिखते हैं जिससे मनुष्य एहतियात रक्खे और साथमें हरेकका संक्षेपमात्र यत्न भी लिखते हैं कि दैवयोगसे किसी ऐसी जगह काम पड़ जावे जहां डाक्टर वैद्य हकीम कोईभी न हों तौ यथासंभव कुछ तौ यत्न कर सकें ॥

विषका नाम.	मारकमात्रा	उपद्रव.	मारक अवधि.	यत्न.
आरसनिक. (संखिया)	२ ग्रेन.	खाने पीछे मेदेमें दर्द जलन मिचली कै दस्त प्यास गलेमें ऐंठ खुश्की फिर श्वासमें तकलीफ शरीर ठंढा क्लेदन.	२ घंटेसे २४ घंटे तक	इस्टमिक पंप लगाना लीले थोथेसे कै कराना सील गरम पानीमें हैड्रेटिडपर औक्साइड आफ आइरन मिलाके पिलाना जादामिकदारमें लाइट मेगनेशिया देना.
स्ट्रेक्निया. (कुचलेका सत्व)	$\frac{1}{4}$ ग्रेनसे १ ग्रेन तक.	पदोंका खिचना वदन टूटना ऐंठन.	१० मिनटसे ६ घंटेतक.	क्लोरल क्लोरोफारम टिंचर एकोनाइट टिंचर क्लाडोना इनमेंसे कोई ठीक मात्रासे दे.
एकोनाइटीना. (सींगीमोहरेका सत्व)	$\frac{1}{10}$ ग्रेन	एकोनाइट रूटके समान.	डेढ घंटेसे २० घंटेतक.	एकोनाइट रूटके समान.
एकोनाइट रूट. (सींगीमोहरा)	आधे ड्रामसे जादी.	मुँहहलकमेंसुन्नता झन्नाट शिरघूमना कैदस्तभी होजावें.	उपरोक्त.	नीले थोथेसे कै कराना उत्तेजक दवा देना तथा मलना (देसी देवा) जदवार निर्विषी पिलाना.
इस्ट्रीमूनियाइ. (धतूरा)	”	मुँहहलकमेंखुश्की अतिप्यास मिचली कै नेत्रोंकी पुतली फैल जावे.	२४ घंटेके अंदर.	सपेद तूतियेसे कै करावे शिरपर ठंढा पानी डाले.

“ इस्टमिक पंप ” एक पिचकारीमें एक तरफ रबरकी नली लगी होती है उसे मेदेमें प्रविष्ट करते हैं दूसरी तरफ और नली होती है पिचकारीसे मेदेके अंदरका विषयुक्त द्रव खैंचकर दूसरी तरफसे बाहर निकाल दिया जाता है इसे इस्टमिक पंप कहते हैं ।

विषका नाम.	मारक मात्रा	उपद्रव.	मारक अवधि.	यत्न.
ओपियम. (अफीम)	४ ग्रेनसे जादा.	नींद शिरमें चक्कर बेहोशी श्वासमें खर्राटा.	२४ घंटेके अंदर	सपेद तूतिये से कै करावे चलाना फिराना इस्टमिकपैंप लगाना (देशी दवा) हींग खिलाना.
ओकजिली कएसिड.	आधा ओंस.	हलक कंठ मेदेमें जलन हरी कै	दश मिनट या कुछ जादा.	वमन कराना इस्टमिकपंपलगाना खडिया मिट्टी मेगनेशिया पानीमें घोलके पिलना.
विलाडौना	"	इसके उपधतूरके समान.	२४ घंटा	पानीका तरडा देना कै कराना.
टारट्रामेटिक.	२ ग्रेन.	आंतोंमें मेदेमें जलन कै दस्त प्यास सर्द पसीना	कई घंटे	टैनन कत्था और वानस्पत्य संग्राहक वस्तु दे.
टुबेको (तमाखू)	आधा ड्राम	चक्कर आना कै होना बेहोशी.	चंद घंटे.	ताजा दूध पिलाना देशी यत्न है.
सल्फेट ऑफ कापर(तूतिया)	आधा ओंस	जी मिचलाना कै मेदेमें दर्द चेहरा फीका.	४ से ८ घंटे तक.	गरमपानी पिलाना अंडे दूधमें फेंटकर देना.
सलफेट आफ जिंक (सुपेद तूतिया)	"	"	"	"
सलफ्यूरिक एसिड (गंधकका तेजाब)	१ ड्राम	शीघ्रमुँह कंठमेदेमें जलनकादर्द जहां लगे उसका गल जाना गला घुटना	१ या २दिनमें	मैगनेशिया-लुआबदार स्निग्धपदार्थ-पिलाना
पासफोरस.	१ ग्रेन	पेटमें जलनका दर्द प्यास चमकती कै दस्त.	४ घंटे या जादे	लुआबदार अर्क पिलाना थोड़ीसी अफीम देना.

विषका नाम.	मारक मात्रा	उपद्रव.	मारक अवधि	यत्न.
कारबोलिक एसिड.	आधा ओंस	पेटमें जलनका दर्द प्यास चमकती कै दस्त.	आध घंटेसे ४ घंटे तक.	लुआबदार अर्क पिलाना थोड़ीसी अफीम देना.
क्रोजेसिबली मेंट (रस-कपूर)	४ ग्रेन.	खातेही गरमीजलन कंठमेंहोनापेटमें दर्द कै में खून.	४ घंटे.	एलब्यूमन अंडेकी सपेदी दूध
कोनाइन.	२ ड्राम	गलेमें खुश्की प्रलाप श्वास रुकना शिरमें घुमनी.	कईदिन.	तात्काल कै कराना दूध देना.
क्लोराफारम.	१ ड्राम	बेहोशी खर्राटेसे श्वास शरीर ढीला होनादिलकी गति रुक जाना.	चंद घंटे.	ताजा हवा बिजली लगाना कृत्रिम श्वास दिलाना उत्तेजक दवा देना.
कैंथराइडज	४८ ग्रेन.	मेदेमें जलन का दर्द कै दस्त कमरमें दर्द मूत्र में रुधिर मूत्र बंद मेढ्र उन्नत हो जावे.	१या डेढ दिन.	वमन कराना लुआबदार अर्क पिलाना अफयू नदे जरूरत हो तो रुधिर निकाले.
नाइटिकएसिड (शोरेका तेजाब)	२ ड्राम.	गंधक के तेजाब के समान.	२ दिन.	ये भी गंधकके तेजाब (सलफ्यूरक एसिड)
निकस्वामिका (कुचला)	३ ग्रेनसे जादा.	कंठमें खराश कुजाजकी ऐंठन.	६ घंटेके करीब.	तमाखूके खेशादे का हुकना(बस्ति) करना देशीयत्नदूधघीपिलाना
हेड्रोस्यानिक एसिड.	१ ग्रेन.	एकाएक गाफिल हो जावे.	२ से२०मिनट तक.	"
हैड्रोक्लौरिक एसिड.	२ ड्राम.	सलफ्यूरिकएसिड को देखो.	१ रोज.	सलफ्यूरिक एसिड के समान.

(वक्तव्य) डाक्टरीमें इरेक वस्तुके प्रायः सत्व काममें लाये जाते हैं और वह इतने तेज होते हैं कि झट प्रभाव करते हैं यद्यपि उनसे रोगोंमें फायदा बहुत

जल्दी होता है परंतु उन्हींकी मात्रा जादे खाई जावे तो वेही विषका काम देते हैं इससे डाक्टरी दवाको बहुत विचारके साथ काममें लाना चाहिये बलिक विना डाक्टर की रायके कोई दवा नहीं खाना पीना चाहिये इनकेयहां सैंकडों क्या हजारों दवायें तेज विषके तुल्य होती हैं कहाँ तक उनको लिखें ऊपर कुछ थोडे प्रसिद्ध २विषोंका कुछ हाल निदर्शन रूप लिख दिया है ऊपर लिखे हुऐ विष तथा अन्य विष या विषैली औषधें जिन जिन रोगोंमें फायदा करती हैं उनका वर्णन ग्रंथ बहुत बढ़ जानेसे नहीं लिखा जाता इसके लिये "मेटरया मेडीका" डाक्टरी निघंटु देखो उसमें इन विषों तथा अन्य औषधोंके उपयोगकी रीति और गुण लिखे हैं ।

यूनानी मतसे विषोंका कुछ वर्णन ।

यद्यपि यूनानी हकीमोंके मतमें जो वस्तु चौथे दरजेकी गरम या सरद या खुश्क हैं (अर्थात् महा गरम महा शीतल अत्यंत रूक्षहैं) प्रायः वे सभी विषहैं परंतु फिरभी इनके यहां विषकी तीन किस्म लिखी हैं १ मादनी; (जो खानसे निकले), २ नवाताती जो वृक्ष वनस्पतिके जड़ पत्ते फल आदिसे विष हो; ३ हैवानी विष जो जीव जंतुओंसे पैदा होवे ॥

(१) मादनी विष प्रायः वे इस भांति मानते हैं जैसे पारा, मुरदाशंग, रांग, सुपेदा कासगरी, संखिया, शिगरफ, जंगाल, हरताल, मैनसिल, सिंदूर, कसीस और दालचिकनाइत्यादि ॥

(२) नवाताती विष इस भांति मानते हैं सींगीमोहरा बत्सनाभ (जिसे विष कहतेहैं) भिलावां कनेर धतूरा कुचला अफयून और रेवदंचीनी आदि ॥

(३) हवानी विष सर्पका जहर बिच्छू आदि अनेक जहरीले जानवरोंका जहर तथा अनेक जानवरोंका मांस जैसे गिरगटका मांस इत्यादि ॥

इनकाभी विशेष वर्णन ग्रंथ बढ जानेसे नहीं किया गया इनकी मारक मात्रा तथ अवधि उपद्रव यत्न आदिके जाननेको इच्छा हो तो उनके पुस्तक देखिये ॥

इति सुश्रुतटीकायां विषतंत्रं समाप्तम् ॥

जाहिरात।

जाहिरात।

नाम.	की. रु. आ.
वैद्यक भाषा।	
चिकित्साधातुसार भाषा ...	०–६
रसराजमहोदधि भाषा प्रथम-भाग–वैद्यक यूनानी हिकमत और यूनानीदवा और फकीरोंकी जडी बूटी और सन्तोंके पुस्तकोंका संग्रह है	०–१२
रसराजमहोदधि दूसराभाग (उपरोक्तसर्वालंकारों समेत छपकर तय्यार है)	०–१२
अमृतसागर कोशसहित हिंदुस्थानी भाषामें सर्वदेशोपकारक	१–४
डाक्टरीचिकित्सार भाषा (अं. दे. वै.)	०–१०
शिवनाथसागर (वैद्यक)	४–०
व्यंजनप्रकाश (नैमित्तिक भोजनके समस्त पदार्थ अचारादि बनानेकी सुगमता और गुण)	०–८
शालिहोत्र नकुलकृत (घोडोंके शुभाशुभ लक्षण और उनके रोगोंकी औषधि)	०–१०
पशुचिकित्सा छन्दबद्ध अर्थात् वृषकल्पद्रुम (इसमें बैल, गऊ, भैंसोंके शुभाशुभ लक्षण यंत्र चिकित्सा पहिचान भली भांति लिखीहै)	१–०
रामानुजसांप्रदायिग्रंथाः।	
स्तोत्ररत्नावली रामानुजसांप्रदायीभाग १ ला ...	१–४
” भाग २ रा ...	१–४
” भाग ३ रा ...	१–४
गोवर्द्धनसूरिप्रभाव वृंदावनस्वामीका	०–४
स्तोत्रदशकम्	०–४
नारायणसारसंग्रह	०–५
सन्मार्गदीपक	०–१०
गभवद्धर्मदर्पण दूसराभाग...	०–१०
निगमांतार्थदीपिका संस्कृत और भाषा	०–१०
वेदोक्तरामपद्धति	०–८
राममहिम्न	०–१
रामपटल	०–४
ब्रह्मोत्सव आनन्दनिधि दोहावलीसहित जिसमें श्रीवृन्दावनके श्रीरंगजीके मन्दिरके सब उत्सवोंका वर्णनहै. चित्रभी सबलिखेहैं....	०–८
मुकुंदमाला	०–१

संपूर्ण पुस्तकोंका "बड़ासूचीपत्र" अलग है.
देखना हो तो मँगालीजिये।

पुस्तकोंके मिलनेका पत्ता–
खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–मुंबई.